मत्स्यपुराणम्

उत्तरभागः

[श्लोक, हिन्दी अनुवाद, पाठ भेद सहित]

•

अनुवादक

रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

•

सम्पादक

पं० तारिणीश झा

•

शक १९१० : सन् १९८८
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-२११००३

●

प्रकाशक
डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री ● हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

●

प्रकाशन वर्ष : शक १९१० : सन् १९८८
द्वितीय संस्करण
मूल्य : ~~१२~~ रु० २५०

●

मुद्रक
उपेन्द्र नाथ त्रिपाठी
३४, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद-२११००२

ख्या

१७५
१७५ मौ
१७६ चन्द्रमा
अग्निमाया
६ दैत्यों की दुर्द
कालनेमि का भ

प्रकाशकीय

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः ।
भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ।

हमारी पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत मत्स्यपुराण का प्रकाशन पंचम पुष्प है । पूर्व प्रकाशित पुराणों का विज्ञ पाठकों ने स्वागत किया और भरपूर क्रयादेश देकर हमारे गुरुतर व्ययभार को लघुतर बनाने में सहायता की है । अतः हम उनके प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझते हैं ।

लगभग दो वर्ष पूर्व हमने मत्स्यपुराण को मुद्रणार्थ प्रेस में भेजा था । पर 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार इसके मुद्रण में विलम्ब और ग्राहकों की मांगों में त्वरा देखकर इस पुराण का लगभग आधा भाग दूसरे प्रेस में दे दिया, जिसने अल्प समय में ही इसे प्रकाशित कर दिया, अतः बाध्य होकर इसे दो भागों में हमें प्रकाशित करना पड़ा । यह दूसरा भाग है । इसके पहले भाग में अनुवादक की लिखी भूमिका छपी है । उसमें पुराण सम्बन्धी बहुत सी ज्ञातव्य बातें लिखी गई हैं । उन्हें वहीं देखना चाहिए । इस भाग में अध्याय १६५ से लेकर अध्याय २९१ तक मुद्रित हैं । यों तो इस पुराण के दूसरे भाग की विषय-सूची इसमें मुद्रित की गई है, परन्तु इसी भाग के अन्तिम अध्याय में इस पुराण की क्रमिक सूची संक्षेप में बता दी गई है, जो बहुत ही उपादेय है । पाठकों से हमारा आग्रह है कि इस महान् ग्रन्थ का सारांश समझने के लिए इसके अंतिम अध्याय का अवलोकन अवश्य करें ।

अन्त में इस पुराण प्रकाशन को गतिशील करने में हम अपने परम सहयोगी आचार्य श्री तारिणीश झा, श्री रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री हरिमोहन पाण्डेय तथा श्री हरिमोहन मालवीय को धन्यवाद देते हुए अपने पाठकों से नम्र निवेदन करते हैं कि हमारी इस योजना को अग्रसारित करने के लिए पूर्ववत् अधिकाधिक क्रयादेश देकर सहयोग-सहायता बनाएँ रखें ।

जया दशमी
२०४५ वि०

प्र

हिन्दी साहि

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१६५	चारों युगों की प्रवृत्तियाँ और अवधि	१
१६६	सृष्टि का प्रलय वर्णन	४
१६७	विष्णु का शयन	६
१६७	सृष्टि का प्रादुर्भाव	८
१६७	मार्कण्डेय को आश्चर्य	१०
१६७	विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद	१३
१६८	पाँचों महाभूतों की दिव्य उत्पत्ति	१४
१६९	ब्रह्मा का प्रादुर्भाव	१६
१७०	मधु और कैटभ की दिव्य उत्पत्ति	१८
१७०	मधु कैटभ का निधन	२०
१७१	ब्रह्मा को मानस पुत्रों की प्राप्ति	२२
१७१	दक्ष की बारह कन्याओं का वृत्तान्त	२३
१७१	ब्रह्मा द्वारा सृष्टि का विकास	२५
१७१	विविध देवयोनियों का प्रादुर्भाव	२८
१७२	विष्णु के विविध अवतारों की कथा	२९
१७२	विष्णु के विराट शरीर में चराचर जगत् की अवस्थिति	३०
१७२	दैत्यों के अत्याचारों से देवताओं को कष्ट	३१
१७२	देवताओं की करुण प्रार्थना	३३
१७३	दैत्यों और दानवों की युद्धार्थ तैयारी	३४
१७४	देवताओं का युद्धार्थ अभियान	३८
१७५	देवताओं और असुरों का लोमहर्षक संग्राम	४३
१७५	मय की अग्निमाया	४७
१७५	और्व की कथा	५०
१७६	चन्द्रमा की सहायता से वरुण द्वारा अग्निमाया को शान्त करना	५१
६	दैत्यों की दुर्दशा	
	कालनेमि का भीषण युद्ध	
१७७	कालनेमि की विजय और देवों की पराजय	६२
१७८	कालनेमि का अमर्ष	६४
१७८	विष्णु और कालनेमि का भीषण युद्ध	६६
१७८	कालनेमि की मृत्यु	६८
१७८	देवताओं की पुनः निजपद प्राप्ति	७१
१७९	अन्धकासुर का युद्ध	७२
१७९	मातृकाओं की सृष्टि	७३
१७९	अन्धक की मृत्यु और गणेशत्व की प्राप्ति	७४
१७९	मातृकाओं की विध्वंसलीला	७८
१७९	विष्णुनिर्मित देवियों द्वारा मातृकाओं का अवरोध	८०
१८०	काशी माहात्म्य प्रसंग में हरिकेशयक्ष की कथा	८१
१८०	अविमुक्त की शोभा	८९
१८०	काशी की अद्भुत महिमा	९२
१८१	यक्ष को वरप्राप्ति	९४
१८२	नन्दिकेश्वर द्वारा सनत्कुमार को काशीमाहात्म्य बतलाना	९८
१८२	काशी के विविध तीर्थ	९९
१८२	स्कन्द द्वारा काशी की स्थिति का वर्णन	१००
१८२	अविमुक्त द्वारा महान पापों के विनाश का माहात्म्य	१२३
	के विविध माहात्म्य के प्र	
	ोर महादेव का संवाद	
	महिमा	

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१८५	व्यास को अमर्ष और काशी का विचित्र माहात्म्य	१२२
१८६	नर्मदा का अद्भुत माहात्म्य	१२९
१८७	नर्मदा माहात्म्य प्रसंग में बाण और अनौपम्या से नारद का संवाद	१३५
१८८	त्रिपुर विध्वंस का वर्णन और नर्मदा का माहात्म्य	१४२
१८८	त्रिपुर में सुन्दरियों का दहन	१४२
१८८	त्रिपुर की सुन्दरियों का अग्निदेव को कोसना	१४३
१८८	अग्निदेव का प्रकट होना और अपनी सफाई देना	१४४
१८८	बाणासुर का भगवान शंकर से लिंग रक्षा की प्रार्थना	१४५
१८८	बाणासुर द्वारा शिव की स्तुति	१४६
१८८	बाणासुर को शंकर का वरदान	१४८
१८८	शिव का त्रिपुर दाह को रोकना	१५०
१८८	त्रिपुर के एक पुर का अमरकण्टक पर गिरना	१५१
१८८	अमरकण्टक माहात्म्य वर्णन	१५२
१८९	मार्कण्डेय से ऋषियों का कावेरी संगम का माहात्म्य पूछना	१५३
१८९	मार्कण्डेय जी का कावेरी और नर्मदा के संगम का माहात्म्य कहना	१५४
१८९	कुबेर की तपस्या	१५५
१८९	शंकर द्वारा कुबेर को वरप्राप्ति	१५५
१८९	नर्मदा माहात्म्य का वर्णन	१५५
९०	यंत्रेश्वर और धारा आदि तीर्थों का वर्णन	१५६
	ावर्त, कपिला, करंज, कुण्ड अनेक तीर्थों का वर्णन	
	स्तोत्र	
१९१	शूलभेद नामक तीर्थ का वर्णन	१५९
१९१	रावणेश्वर और पिंगलेश्वर आदि तीर्थों का वर्णन	१६०
१९१	एरण्डी, स्कन्द, वटेश्वर, कोटि आदि तीर्थों का माहात्म्य-कथन	१६१
१९१	गर्गेश्वर, संगमेश्वर आदि तीर्थों का माहात्म्य-कथन	१६३
१९१	मरुतालय, सोम, तापसेश्वर आदि तीर्थों का वर्णन	१६६
१९१	कुसुमेश्वर तीर्थ का वर्णन	१७०
१९२	भार्गवेश तीर्थ का वर्णन	१७१
१९२	ईश्वर द्वारा शुक्ल तीर्थ की महत्ता का वर्णन	१७२
१९२	ईश्वर द्वारा शुक्ल तीर्थ में स्नानादि करने का फल-कथन	१७४
१९३	अनरक तीर्थ का माहात्म्य वर्णन	१७५
१९३	गंगेश्वर तीर्थ का माहात्म्य वर्णन	१७६
१९३	दशाश्वमेध के पश्चिम में भृगु की तपस्या	१७७
१९३	पार्वती की इच्छानुसार शिव का वृषभ रूप धारण करना और भृगु की तपस्या भंग करना	१७८
१९३	वृषभ पर भृगु का क्रोध	१७९
१९३	शिव का भृगु के सामने प्रकट होना	१८
१९३	भृगु का शंकर की स्तुति करना	१८
१९३	शिव का प्रसन्न होना और भृगु को वरदान देना	१
१९३	भृगु तीर्थ का माहात्म्य वर्णन	
१९३	कनखल, हंस, वाराह और कन्या तीर्थ का वर्णन	
४	अंकुशेश्वर, मनोहर, पैताम आदि तीर्थों का	

अ.

सहयोग-स

जया दशमी

२०४५ वि०

हिन्दी साहि

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१९४	आषाढ़, जामदग्न्य और विबटन तीर्थ का वर्णन	१८९
१९४	नर्मदा तट पर स्थित सभी तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन	१९०
१९५	मनु का मत्स्य भगवान से ऋषियों का वृत्तान्त पूछना	१९१
१९५	ऋषियों की उत्पत्ति और उनके नामों का वर्णन	१९२
१९५	भृगु की वंश-परम्परा का वर्णन	१९४
१९६	अंगिरा की वंश परम्परा का वर्णन	१९५
१९६	ऋषियों के गोत्रों और प्रवर का वर्णन	१९७
१९६	ऋषियों के प्रवर का वर्णन	१९९
१९७	अत्रि-वंश का वर्णन	२००
१९८	अग्नि के अतिरिक्त अन्य वंशधरों का वर्णन	२०२
१९८	विश्वामित्र की वंश परम्परा का वर्णन	२०३
१९९	कश्यप वंश में उत्पन्न ऋषियों का वर्णन	२०४
२००	वसिष्ठ के वंश का वर्णन	२०६
२०१	निमि का वसिष्ठ के पास जाकर यज्ञ करने की प्रार्थना करना	२०८
२०१	वसिष्ठ का यज्ञ करने की इच्छा न प्रकट करना	२०९
२०१	निमि और वशिष्ठ का परस्पर विदेह होने का शाप देना	२१०
२०१	दोनों का विदेह होकर ब्रह्मा के पास पहुंचना	२११
२०१	ब्रह्मा का निमि को पलकों में आश्रय देना	२१२
२०१	वशिष्ठ का मित्रावरुण के वीर्य से पुनर्जन्म होना	२१२
२०१	पराशर के वंश का वर्णन	२१२
२०२	अगस्त्य के वंश का वर्णन	२१३
२०२	पुलह पुलस्त्य और क्रतु के वंशधरों का वर्णन	२१४
२०३	धर्म वंश का वर्णन	२१५
२०४	श्राद्ध अभिलाषी पितरों की इच्छाओं का वर्णन	२१६
२०५	ब्यायी हुई गौ के दान का माहात्म्य	२१९
२०६	कृष्ण मृग चर्म की दान विधि और उसका माहात्म्य	२२१
२०७	उत्तम वृषभों के शुभ लक्षण	२२५
२०७	निकृष्ट वृषभों के लक्षण	२२६
२०७	वृषभदान की विधि और उसका माहात्म्य	२२९
२०८	राजा अश्वपति की तपस्या	२३०
२०९	सावित्री देवी का वरदान	२३३
२०९	सत्यवान से सावित्री का विवाह	२३४
२०९	वन में सावित्री के साथ सत्यवान का विचरण	२३५
२०९	वन का प्राकृतिक दृश्य	२३६
२१०	सत्यवान के शिर में पीड़ा और यमराज का आगमन	२३७
२१०	सावित्री का अनुगमन और यम से संवाद	२३९
२११	सावित्री को वापस करने की यम की कोशिश	२४१
२११	सावित्री की पतिभक्ति की पराकाष्ठा और दो वरदानों की प्राप्ति	२४३
२१२	सावित्री की तृतीय वर-प्राप्ति	२४४
२१३	सत्यवान को जीवन-लाभ	२४८
२१४	सास और ससुर के साथ सावित्री की प्रसन्नता	२५०
२१५	राज्याभिषेक के पश्चात् राजा के कर्त्तव्य	२५३

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
२१५	विविध राज कर्मचारियों की नियुक्ति कैसे हो	२५४
२१५	राजा की शिक्षा	२५५
२१५	राजा की जीवन-चर्या	२६१
२१५	राजा को सब ओर दृष्टि रखनी चाहिये	२६३
२१६	राजा के साथ अनुचरों के कर्त्तव्य	२६४
२१६	अनुचरों के साथ राजा का कर्त्तव्य	२६५
२१६	राजा का निवास कैसे और कहाँ हो	२६६
२१६	दुर्ग कहाँ बनवाना चाहिए	२६६
२१६	दुर्ग में किसको स्थान देना चाहिये	२६७
२१६	दुर्ग में संग्रहणीय वस्तुएं	२६८
२१६	दुर्ग में संग्रहणीय औषधियाँ	२६८
२१७	विषों को शान्त करनेवाली संग्रहणीय औषधियाँ	२६९
२१७	विष शान्ति के विविध उपाय	२७६
२१८	राजा के रक्षार्थ संग्रहणीय अन्यान्य साधन	२७७
२१९	विष पहचानने की अनेक युक्तियाँ	२८१
२१९	विषयुक्त भोजन की पहचान	२८४
२२०	राजपुत्र को शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए	२८५
२२०	राजाओं के मित्र कितने प्रकार के होते हैं	२८६
२२०	मित्रों के साथ राजा के कर्त्तव्य	२८७
२२०	राज्य के कितने अंग होते हैं	२८८
२२०	राज्यांगों में राजा के कर्त्तव्य	२८९
२२०	राजा को इन्द्रियजित् होना चाहिये	२८९
२२१	भाग्य और पौरुष—दोनों में श्रेष्ठ कौन	२९०
२२२	साम आदि उपायों की विधियाँ	२९२
२२३	साम आदि का प्रयोग किन पर हो	२९३
२२३	भेद की उपयोगिता और महत्ता	२९४
२२४	दान की प्रशंसा और प्रयोग विधि	२९५
२२५	दण्ड नीति की उपयोगिता	२९६
२२५	क्या दण्ड देनेवाला पापी है	२९७
२२५	दण्ड की जागरूकता	२९८
२२६	राजा कैसे बनाया गया	२९९
२२६	राजा में सभी देवताओं के गुण	३००
२२७	विविध प्रकार के अपराध और दण्ड	३०१
२२७	अपराध को स्वीकार करने वाला अर्ध दण्ड का भागी	३०२
२२७	अपराधों में कुछ अपवाद	३०३
२२७	व्यभिचारियों को दण्ड	३०४
२२७	माता पिता आदि पतित होने पर भी त्याज्य नहीं	३०५
२२७	ब्राह्मण को देश निर्वासित किया जाय ?	३०६
२२७	विविध प्रकार के क्षुद्र अपराधों पर भीषण दण्ड	३२२
२२८	महान अद्भुत दैनिक उपद्रवों पर शान्ति का विधान	३२३
२२९	अद्भुत उपद्रवों से फलाफल	३२७
२३०	विविध अद्भुत उपद्रव और उनके परिणाम	३३०
२३१	मूर्ति आदि में अद्भुत उपद्रव और उनके परिणाम	३३२
२३२	वृक्षों में विविध उपद्रव और उनके परिणाम	३३४
२३३	अतिवृष्टि और अनावृष्टि के फलाफल	३३६
२३४	नदियों आदि में उपद्रव का भय और शान्त उपाय	३३७
२३५	स्त्रियों की अकाल सन्तानोत्पत्ति से दुर्भाग्य सूचना	३३८
२३६	रथादि में अद्भुत उपद्रव और शान्ति के उपाय	३३९
२३७	पशुओं आदि का उपद्रव और फलाफल	३४०
२३८	राजभवनादि द्वारा उपद्रव के लक्षण और उनकी शान्ति के उपाय	३४१

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
२३९	ग्रहयज्ञ का विधान और उसका माहात्म्य	३४४
२४०	राजाओं की दिग्विजय यात्रा के शुभ मुहूर्त	३४९
२४०	शुभशकुन	३५०
२४०	विजय यात्रा किस तरह की जाय	३५१
२४१	अपशकुन	३५२
२४१	अंगों के फड़कने से शुभाशुभ की सूचना	३५४
२४२	यात्रा एवं स्वप्न के शुभाशुभ दृश्य	३५५
२४२	अशुभ स्वप्नों की शान्ति कैसे ?	३५६
२४२	राज्यप्रद शुभ स्वप्न	३५७
२४३	विजय यात्रा में शुभशकुन	३५८
२४४	वामनावतार की कथा	३६२
२४५	अदिति की प्रार्थना	३६८
२४५	भगवान् का आश्वासन	३७०
२४५	बलि की चिन्ता	३७१
२४५	प्रह्लाद का विषाद	३७२
२४५	बलि और प्रह्लाद की मंत्रणा	३७३
२४५	प्रह्लाद का क्रोध और बलि की क्षमा प्रार्थना	३७४
२४५	ब्रह्मा द्वारा विष्णु की स्तुति	३७६
२४५	भगवान् का आश्वासन	३७८
२४६	शुक्राचार्य और बलि की बातचीत	३७९
२४६	बलि की श्रद्धा और शुक्र की कूटनीति	३८०
२४६	बलि की सभा में वामन का आगमन	३८२
२४६	बलि और वामन का संवाद	३८४
२४६	वामन द्वारा त्रैलोक्य का अतिक्रमण	३८६
२४६	बलि की याचना और वामन का वरदान	३८९
२४७	वाराह अवतार की कथा	३९०
२४८	ब्रह्माण्ड का वर्णन	३९५
२४९	पृथ्वी की प्रार्थना	४०४
२४९	भगवान द्वारा शूकर रूप धारण करने का निश्चय	४०५
२४९	पृथ्वी का उद्धार	४०६
२४९	देवताओं को अमरत्व की प्राप्ति	४०७
२४९	समुद्र मंथन की मंत्रणा	४०८
२४९	कूर्म की सहायता	४०९
२४९	देवों तथा दानवों द्वारा समुद्र का मंथन	४१२
२५०	समुद्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति	४१३
२५०	अन्य रत्नों की उत्पत्ति	४१४
२५०	समुद्र से कालकूट की उत्पति	४१५
२५०	कालकूट और देवासुरों का संवाद	४१८
२५०	शिवद्वारा कालकूट का पान	४२०
२५१	धन्वन्तरि की उत्पत्ति	४२१
२५१	अमृत की उत्पत्ति और राहु का शिरश्छेद	४२२
२५१	असुरों का संहार	४२३
२५१	मन्दर की पुनः स्थापना	४२४
२५२	वास्तुविज्ञान के आचार्य	४२५
२५२	वास्तु की उत्पत्ति	४२६
२५३	गृह-निर्माण के शुभ मुहूर्त	४२८
२५३	गृह-निर्माण की प्रारम्भिक विधि	४२९
२५३	वास्तु में इक्यासी पद का चक्र	४३२
२५४	प्रासादों का निर्माण	४३३
२५४	दिशाओं के अनुसार भवनों की संज्ञा और फलाफल	४३४
२५४	ब्राह्मणादि चारों वर्णों के भिन्न-भिन्न भवन	४३७
२५५	स्तम्भ निर्माण की विधि	४३८
२५५	वेध और उसकी शान्ति	४४०
२५६	गृह-निर्माण की सामान्य विधि	४४१
२५६	गृह निर्माण एवं गृह-प्रवेश के समय शुभाशुभ परीक्षा	४४३

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
२५७	काष्ठ काटने की विधि	४४५
२५७	वृक्षों द्वारा गृह के शुभाशुभ की सूचना	४४७
२५८	देवप्रतिमा का निर्माण	४४८
२५८	प्रतिमा के मान एवं गठन के प्रकार	४४९
२५८	प्रतिमा के विभिन्न अंगों के गठन और मान	४५२
२५८	प्रतिमा का प्रमाण	४५५
२५९	कुछ विशेष देवताओं की प्रतिमा का वर्णन	४५६
२६०	अर्धनारीश्वर शिव की प्रतिमा का प्रकार	४५९
२६०	पार्वती की प्रतिमा का निर्माण	४६०
२६०	शिवनारायण की प्रतिमा का निर्माण	४६६
२६१	इन्द्रादि देवताओं की प्रतिमा का निर्माण	४६७
२६१	दिवाकर की प्रतिमा	४६८
२६१	कुबेर आदि लोकपालों की प्रतिमा	४७०
२६१	देवी की प्रतिमा	४७२
२६२	पीठिका के भेद और निर्माण प्रकार	४७३
२६३	लिंग के भेद और निर्माण प्रकार	४७६
२६४	प्रतिमा के स्थापन की विधि और माहात्म्य	४७९
२६५	मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा	४८३
२६५	प्रतिष्ठापकों की योग्यता	४८४
२६५	अधिवासन समारोह	४८७
२६६	देवायतन का निर्माण किस प्रकार हो	४८८
२६६	एक ही आयतन में अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की विधि	४९०
२६६	शान्ति के उपाय	४ ४
२६७	प्रतिमा के स्नान की विधि	४९५
२६८	वास्तु दोष की शान्ति के उपाय	४९९

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
२६९	वास्तु के सोलह विभाग और उनके विविध निर्माण प्रकार	५०३
२७०	मण्डपों के विविध लक्षण और निर्माण प्रकार	५०८
२७१	राजवंशो का वर्णन	५१२
२७२	राजवंशों का वर्णन	५१५
२७३	भविष्यकालिक राज ओं के वंश वर्णन	५१९
२७४	महादान की विधि और माहात्म्य	५२०
२७५	दोनों के भेद और विधि	५३०
२७५	तुला पुरुष दान की विधि और माहात्म्य	५३१
२७५	हिरण्यगर्भ दान की विधि और माहात्म्य	५३९
२७६	ब्रह्माण्ड दान की विधि और माहात्म्य	५४०
२७७	कल्पपादप दान की विधि और माहात्म्य	५४३
२७८	सहस्र गो-दान की विधि और माहात्म्य	५४६
२७९	हिरण्यकामधेनु दान की विधि और माहात्म्य	५४९
२८०	हिरण्याश्वदान की विधि और माहात्म्य	५५१
२८१	अश्वरथ दान की विधि और माहात्म्य	५५३
२८२	हस्तिरथ दान की विधि और माहात्म्य	५५६
२८३	पंचलांगलक दान की विधि और माहात्म्य	५५८
२८४	धरा दान की विधि और माहात्म्य	५६१
२८५	विश्वचक्र दान की विधि और माहात्म्य	६५३

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
२८६	महाकल्पता दान की विधि और माहात्म्य	५६६
२८७	सप्त सागर दान की विधि और माहात्म्य	५६९
२८८	रत्न धेनु दान की विधि और माहात्म्य	५७१
२८९	महाभूत घट दान की विधि और माहात्म्य	५७४
२९०	कल्पों के भेद और उनकी घटनाएँ	५७६
२९१	मत्स्य महापुराण वर्णित विषयों की संक्षिप्त सूची	५७९
२९१	पुराणों के सुनने के विधान और निषेध	५८४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा रविनन्दन ॥१
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः । स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः ॥२
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः । कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः[1] स्थिताः ॥३
तदा [2]सत्यं च शौचं च धर्मश्चैव विवर्धते । सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्याप्यते च वै ॥४
एतत्कार्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव । प्राणिनां धर्मसङ्ज्ञानामपि वै नीचजन्मनाम् ॥५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते । तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते ॥६
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः । यत्र सत्यं च सत्त्वं च[3] त्रेताधर्मो विधीयते ॥७
त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेते न संशयः । चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः ॥८

अध्याय १६५

मत्स्य ने कहा—सूर्यपुत्र मनु जी ! सतयुग की अवधि चार सहस्र दिव्य वर्ष कही गई है, उसकी संध्या की अवधि आठ सौ वर्ष की है ।१। उसमें धर्म अपने चारों चरणों से निवास करता है, अधर्म का एक चरण रहता है, उसमें उत्पन्न होनेवाले मानव अपने-अपने धर्म में निरत रहनेवाले होते हैं ।२। ब्राह्मण लोग धर्मपरायण, राजा (क्षत्रिय) गण राजकीय वृत्ति में, वैश्य कृषि कर्म में तथा शूद्र सेवा कार्य में तल्लीन रहते हैं ।३। उस युग में सत्य, पवित्रता, तथा धर्म की अभिवृद्धि होती है, सत्पुरुषों द्वारा किये गये कर्म को लोग करते हैं तथा उसी की प्रसिद्धि करते हैं ।४। राजन् ! सभी जातियों के लोगों में सतयुग में यही व्यवहार पाया जाता है वे चाहे धर्म प्राण उच्च जाति वाले हों अथवा नीच कुल में उत्पन्न हों । सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म में व्यवस्थित रहते हैं ।५। त्रेतायुग की अवधि तीन सहस्र वर्षों की कही गई है, उसकी संध्या छः सौ वर्षों की मानी गई है ।६। उसमें अधर्म दो चरणों तथा धर्म तीन चरणों से व्यवस्थित रहता है । त्रेता-धर्म सत्य एवं सत्त्वगुण प्रधान माना गया है ।७। ये ब्राह्मणादि वर्ण त्रेतायुग में विकार को प्राप्त हो जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं । इन चतुर्वर्णवालों के विकारयुक्त होने के कारण आश्रम धर्म भी दुर्बल हो जाते हैं ।८।

---

[1] ङ. °षस्तथा । त° । [2] ङ. सत्त्वं च सत्यं च धर्मश्चैवातिवर्तते । [3] ङ. च त्रिधा ध° ।

एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता । द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९
द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन । तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा युगमुच्यते ॥१०
तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः । सर्वे नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन ॥११
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः । [1]विपर्ययाच्छनैर्धर्मः धंक्षयमेति कलौ युगे ॥१२
ब्राह्मे[2]ण्यभावस्य ततस्तथौत्सुक्यं विशीर्यते । व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥१३
तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते अपि । संध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम् ॥१४
यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः । कामिनस्त[3]पसा[4] हीना जायन्ते तत्र मानवाः ॥१५
[5]नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् । नास्तिका [6]ब्रह्मभक्ता वा जयन्ते तत्र मानवाः ॥१६
अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः । विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे ॥१७
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संपरिवर्तते । वर्णानां चैव संदेहो युगान्ते रविनन्दन ॥१८
विद्याद्द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम् । एवं सहस्रपर्यन्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते ॥१९

भगवान् द्वारा रचित यह विचित्र व्यवस्था त्रेतायुग की कही गई है। अब द्वापर युग की जो रूपरेखा है उसे भी सुनो ।९। द्वापर की अवधि दो सहस्र दिव्य वर्ष है, उसकी संध्या चार सौ दिव्य वर्षों की कही जाती है। सूर्यपुत्र मनुजी ! उस द्वापर युग में रजोगुण के कारण लोग अर्थ नीति में तत्पर रहते हैं, प्रायः सभी लोग निष्कर्म एवं क्षुद्र विचारवाले होते हैं ।१०-११। पूर्व त्रेतायुग में धर्म अपने दो चरणों से तथा अधर्म तीन चरणों से अवस्थित रहता है किन्तु द्वापर युग में क्रमशः क्षीण होता हुआ धर्म कलयुग में आकर क्षय को प्राप्त होता है ।१२। इस प्रकार द्वापर की समाप्ति आने तक जनता में ब्राह्मणत्व की उत्कण्ठा का विनाश हो जाता है, लोग व्रत उपवास आदि को छोड़ देते हैं ।१३। तदुपरान्त एक सहस्र वर्ष तथा दो सौ वर्ष—अर्थात् संध्या समेत बारह सौ वर्षों तक क्रूर कलियुग की अवधि मानी गई है ।१४। जिसमें अधर्म चार चरणों से तथा धर्म एक चरण से विद्यमान रहता है। उस कलियुग में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, कामी तथा तपस्या से रहित होते हैं ।१५। अहंकार से ग्रस्त तथा स्नेह से रहित होते हैं। न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक होता है, न कोई साधु अथवा सत्यवादी ही होता है, प्रायः परलोक न माननेवाले एवं ब्रह्म की उपासना करनेवाले लोग उत्पन्न होते हैं। उस कलियुग में सभी ब्राह्मण शूद्रों का सा आचरण करनेवाले हो जाते हैं ।१६-१७। इस प्रकार कलियुग के पूर्णतया प्रवर्तित होते-होते आश्रम धर्म का उलट-फेर हो जाता है। रविनन्दन ! युग की समाप्ति आते-आते तो वर्णों में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् वे सभी मिल जाते हैं ।१८। इस प्रकार पहले कहे गए इन बारह सहस्र वर्षों की संख्या चारों युगों की अवधि मानी गई है। इस प्रकार एक सहस्र चतुर्युगी का ब्रह्मा

---

[1] ग. °यंयशतैधं° । [2] ग. °ह्मण्यं क्षयधर्मश्च तथौ' । [3] ङ. °स्तमसाऽऽच्छन्नाजा° । [4] क. ख. °साच्छन्ना जा । [5] ग. ङ. °वावसायिकाः । घ. °वावसायिकः । [6] ङ. °ह्मक्ताश्च जा° ।

ततोऽह्नि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम् । शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः[1] ॥२०
देवतानां च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते । दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ॥२१
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजंगानां च पार्थिव । पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम ॥
तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां कृमिणां तथा ॥२२
महाभूतपतिः पञ्च [2]हृत्वा भूतानि भूतकृत् । जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥२३
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाऽऽददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत् ॥२४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥८६००॥

का एक दिन होता है ।१९। इस ब्रह्मा के एक दिन के बीतने पर सभी जीवों के शरीर को अस्त होते हुए देखकर लोक के संहार करने की भावना से सभी ब्रह्मा आदि देवताओं, दैत्यों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, पक्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सर्पों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यग् योनिवालों (विच्छू आदि) एवं कृमियों के शरीरों से पांचों महाभूतों—पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि तथा वायु—का हरण करके महाभूत पति, भूतों का स्रष्टा भगवान् समस्त चराचर के संहारार्थ महान् विनाश करता है । २०-२३। वह सूर्य बनकर सभी लोगों के नेत्रों की ज्योतियों को ग्रहण करता है, वायु होकर सभी के प्राणों को समेटता है, अग्नि होकर समस्त लोकों को जलाता है, एवं मेघ होकर भयानक वृष्टि करता है ।२४।

श्री मत्स्यमहापुराण में पद्मोद्भव-प्रादुर्भाव नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६५॥

---

[1] ग. घ. ङ. °द्धिना । दे° । [2] ग. घ. ङ. भूत्वा ।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

भूत्वा नारायणो योगी सत्त्वमूर्तिर्विभावसुः । गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥१
ततः पीत्वाऽर्णवान्सर्वान्नदीः कूपांश्च सर्वशः । पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः ॥२
भित्वा गभस्तिभिश्चैव महीं [1]गत्वा रसातलात्[2] । पातालजलमादाय पिबते रसमुत्तमम् ॥३
मूत्रासृक्क्लेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् । तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥४
वायुश्च[3] बलवान्भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् । प्राणापानसमानाद्यान्वायूनाकर्षते हरिः ॥५
ततो देवगणाः[4] सर्वे भूतान्येव च यानि तु । गन्धो घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संश्रिता गुणाः ॥६
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः । रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाऽऽश्रिता गुणाः ॥
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवने संश्रिता गुणाः । शब्दः श्रोत्रं च खान्येव गगने संश्रिता गुणाः ॥८
लोकमाया भगवता मुहूर्तेन विनाशिता[5] । मनो बुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति[6] यः श्रुतः ॥९

अध्याय १६६

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु जी ! उसी प्रकार वे योगी सत्त्वमूर्ति नारायण भगवान् सूर्य का रूप धारण कर अपनी जलती हुई किरणों से समुद्रों को सोख लेते हैं, और सभी समुद्रों को पीकर सभी नदियों तथा कूपों को जल रहित कर देते हैं। किरणों से पर्वतों के जल को ग्रहण कर लेते हैं और पुनः उन्हीं किरणों से पृथ्वी को भिन्न करके रसातल को जाते हैं और पाताल के सुन्दर जल को पान कर जाते हैं।१-३। फिर प्राणियों में निश्चय रूप से रहने वाले मल, मूत्र, मांस, मज्जा आदि जलीय उपादानों को भी वे कमलनेत्र पुरुषोत्तम भगवान ग्रहण करते हैं।४। फिर बलवान् वायु बनकर समस्त जगत् को प्रकम्पित करते हुये वे हरि प्राण, अपान समान आदि वायुओं को खींचते हैं।५। तदन्तर सभी देवगण एवं अन्य भूतों के तत्त्व तथा ग्रन्थ, घ्राण (नासिका) एवं शरीर—ये सब पृथ्वी में मिल जाते हैं।६। जिह्वा, रस, एवं स्नेह (चिकनाहट)—ये जल में मिल जाते हैं। रूप, नेत्र तथा विपाक ये अग्नि में, स्पर्श, प्राण तथा चेष्टा—ये पवन में मिल जाते हैं। शब्द, श्रोत्र तथा इन्द्रियां-ये आकाश में मिल जाते हैं।७-८। इस प्रकार पुराकाल में उस भगवान् ने इस समस्त लोक की माया को क्षण भर में विनष्ट कर दिया, जो सभी प्राणियों का मन एवं बुद्धि है, जो क्षेत्रज्ञ नाम से प्रसिद्ध हैं,

---

[1] ग. ङ. दग्ध्वा। घ. दृष्ट्वा। [2] ङ. °तले। पा°। [3] क. ख. °श्च भगवा°। [4] ग. °गणानां च सर्वेषां चैव देहिनां। पञ्चेन्द्रियगणानां च भू°। ङ. °गणानां च सर्वेषां चैव देहिनाम्। पञ्चेन्द्रियगणाः सर्वे भूतान्येवानुयान्ति व। घ्रेयं घ्रां°। [5] घ. ङ. °शिताः। म°। [6] ग. °ति विश्रुतः। ङ. °ति संस्मृताः। तं°।

तं वरेण्यं परमेष्ठी हृषीकेशमुपाश्रितः । ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ॥१०
*वायुनाऽऽक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासु चाऽऽश्रितः । तेषां संघर्षणोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् ॥११
अदहच्च तदा सर्वं वृतः संवर्तकोऽनलः । सपर्वतद्रुमान्गुल्मॉंल्लतावल्लीस्तृणानि च ॥१२
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च । यानि चाऽऽश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥
भस्मीकृत्य ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः । भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा ॥१४
सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः । दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥१५
ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा । शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥१६
तेन रोधेन संछन्ना पयसां वर्षतो धरा । एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥१७
महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम् । नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ॥१८
संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि[1] देहिनः । दग्ध्वा संप्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ॥१९
पौराणं रूपमास्थाय[2] स्वपित्यमितविक्रमः । एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः ॥२०
अनेकानि सहस्राणि[3] युगान्येकार्णवाम्भसि । न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥२१

उस श्रेष्ठ परमेष्ठी हृषीकेश भगवान् के समीप में अवस्थित सूर्य की किरणों से व्याप्त, वायु द्वारा आक्रान्त, वृक्षों की शाखाओं पर आश्रित, बृक्षादि के संघर्ष से उत्पन्न सैकड़ों लपटों में जलते हुए संवर्तक नामक अग्नि ने समस्त जगत् को भस्म कर दिया । उसने पर्वत, वृक्ष, लता, गुल्म एवं तृणों को, दिव्य विमानों को तथा उन अनेक पुरों को, जो सभी आश्रम के लिए थे, भस्म कर दिया ।९-१३। इस प्रकार समस्त लोकों को लोकेश भगवान् विष्णु ने भस्म कर पुनः युगान्तकारी अन्याय्य कर्मों द्वारा सृष्टि का विनाश किया ।१४। महाबलवान् उस भगवान् ने सैकड़ों सहस्रों प्रकार की वृष्टि का स्वरूप धारण कर दिव्य जल से तथा हवि से पृथ्वी कों पूरित कर दिया ।१५। जिससे उस परम स्वादिष्ठ अपार जल राशि से, जो परम कल्याणकारिणी एवं पवित्र थी, पृथ्वी चारों ओर से डूब गई । अपार जल वृष्टि एवं जल के समूह से छिपी हुई पृथ्वी एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गई, और उसपर निवास करनेवाले सभी जीव-जन्तु भी विनष्ट हो गये ।१६-१७। बड़े-बड़े जीव जन्तुओं एवं सामर्थ्यवान् अत्यन्त तेजस्वी प्राणियों का भी विनाश हो गया । सूर्य, पवन एवं आकाश के नष्ट हो जाने पर जगत् की सभी वस्तुएँ सूक्ष्म रूप में परिणत हो गई ।१८। इस प्रकार समुद्रों एवं देहधारियों का शोषण कर, जला कर तथा जल से आप्लावित कर वह सनातन भगवान् एकाकी होकर शयन करता है ।१९। वह अनुपम पराक्रम शालीं, एक समुद्र रूप में परिणत समस्त जगन्मण्डल रूप जल में व्याप्त रहनेवाला भगवान् योग बल का आश्रय लेकर अपने पुराने स्वरूप को ग्रहण कर अनेक सहस्र वर्षों तक यहाँ शयन करता है । कोई उस अव्यक्त भगवान् का पता प्रकट रूप में नहीं ज्ञात कर सकता ।२०-२१। वह कौन पुरुष है । उसका क्या

---

* अत्रार्धेऽयं पाठो ग. पुस्तके—वायुनाऽऽक्रम्यमाणाश्च द्रुमशाखासमाश्रिता इति । [1] ग. घ. ङ. °द्राणि च दे° । [2] ङ. °य स ह्येको मि° । [3] ग. घ. ङ. °णि शतान्ये° ।

कश्चैव पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान् । असौ क्रियन्तं कालं च एकार्णवविधिं प्रभुः ॥
करिष्यतीति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥२२
न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः । तस्य न ज्ञायते किं चित्तमृते देवसत्तमम् ॥२३
नभः क्षितिं पवनमपः [1]प्रकाशकं[2] प्रजापतिं[3] भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं प्रशाम्य भूयः शयनं ह्यरोचयत् ॥२४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥८९२४॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः । प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वीं हंसो [4]नारायणस्तदा ॥१

योग है ? कौन योग करता है ? कितने दिनों तक वह जगत् को एक समुद्र रूप में किये रहेगा ? और पुनः सब की रचना कब करेगा—ऐसी बातों को कोई नहीं जानता ।२२। न कोई उसे देखनेवाला है, न कोई उसके समीप जा सकता है, न कोई उसे जानता है, न कोई उसके समीप में ही पहुँचने वाला है। उसे, उसी देवश्रेष्ठ को छोड़ कर कोई अन्य जान भी नहीं सकता कि वह वास्तव में कौन है ? ।२३। (अर्थात् वही अपने को जानता है।) इस प्रकार वह आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, प्रजापति, भुवन को धारण करने वाले (पहाड़ अथवा देवता) सुरेश्वर, पितामह ब्रह्मा, वेदों के समूह एवं महामुनि सबको प्रशान्त करके पुनः शयन की इच्छा करता है ।२४।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार जगत् के एक समुद्र रूप में परिणत हो जाने पर उस महासमुद्र रूपी सरोवर में महा द्युतिमान् भगवान् विष्णु हंस स्वरूप हो जल से पृथ्वी को आच्छन्न कर शयन करते हैं ।१।

---

१ क. ख. °काशं प्र° । २ ग. °शयन्प्रजा° । ३ ग. °पतिर्भुवनसुरासुरे° । ४ ङ. °यणोऽविहा । म° ।

महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै। विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म[1] यद्विदुः ॥२
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः। मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत्सत्यमासत ॥३
याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतं तद्ब्रह्मणा[2] पुरा। रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम् ॥४
पुरुषो यज्ञ इत्येतद्यत्परं परिकीर्तितम्। यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात्स एष पुरुषोत्तमः ॥५
ये च यज्ञकरा विप्रा ये चर्त्विज इति स्मृताः। अस्मादेव पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा ॥६
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम्। होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥७
ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारं च सर्वशः। तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात्प्रतिप्रस्तारमेव च (?) ॥८
उदरात्प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव। अच्छावाकमथोरुभ्यां नेष्टारं चैव पार्थिव ॥९
पाणिभ्यामथ चाऽऽग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च जानुतः। ग्रावस्तुतं तु पादाभ्यामुन्नेतारं च याजुषम् ॥१०
एवमेवैष भगवान्षोडशैव जगत्पतिः। प्रवक्तॄन्सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥११
तदेष वै वेदमयः पुरुषो [3]यज्ञसंज्ञितः। वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ॥१२

महान् रजोराशि के मध्य में सागर रूपी सरोवर में सोनेवाले उन्हीं को, रजोगुण रहित, महाबाहुशाली अक्षय ब्रह्म कहा जाता है।२। उस समय वह प्रभु अंधकार से घिरे हुए उस महासमुद्र में अपने स्वरूप के प्रकाश से प्रकाशमान एवं सत्त्वगुण युक्त मन में समाधिलीन हो विराजमान था। यही उसका सत्त्व भाव था।३। वही प्रभु यथार्थतः परम ज्ञानमय है, उसी से पूर्वकाल में ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। वही आरण्यक का रहस्य एवं उपनिषदों का ज्ञान कहा गया है।४। जो यज्ञपुरुष कहा गया है, जो उसके बाद का पुरुष कहा गया है, एवं जो पुरुषोत्तम कहा गया है, वह सब वही पुरुषोत्तम है।५। इसी यज्ञपुरुष से प्राचीनकाल में यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणगण एवं पुरोहितगण उत्पन्न कहे गये हैं। प्रभु ने सर्वप्रथम मुख से ब्रह्मा को तथा दोनों बाहुओं से उद्गाता,[1] सामग,[2] होता,[3] तथा अध्वर्यु, को उत्पन्न किया था।६-७। उस परब्रह्म के पृष्ठभाग में ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता, मित्रावरुण[7] तथा प्रस्थाता[8] उत्पन्न हुये।।८। हे राजन्! उदर से प्रतिहर्त्ता[9] तथा पोता[10] तथा दोनों उरुओं,—जंघाओं—से अच्छावाक्[11] और नेष्टा[12] को उत्पन्न किया।९। दोनों हथेलियों से आग्नीध्र[13] को और जानुभाग से सुब्रह्मण्य[14] को, दोनों चरणों से ग्रावस्तुत्[15] तथा उन्नेता[16] को, जो यजुर्वेद के ऋत्विक् माने गये हैं, उत्पन्न किया।१०।—इस प्रकार जगत् पति ने सभी प्रकार के यज्ञों के प्रवक्ता इन श्रेष्ठ ऋत्विजो को उत्पन्न किया।११। सो यह वेदमय पुरुष ही यज्ञ नामधारी है, छहों अंगों के समेत वेद, उपनिषद् तथा क्रियाएँ—ये सभी उसमें निहित है।१२। प्राचीनकाल में जिस समय समस्त जगत् एक समुद्ररूप में परिणत था, उस समय आश्चर्यमय जो घटना घटित हुई, हे विप्रवृन्द! प्राचीनकाल में मार्कण्डेय को आश्चर्य-

---

१-१६ ये सोलह पुरोहित चारों वेदों के माने गये हैं। १ क. ख. °ह्मयं विदुः। २ ङ. °ह्मणो सतम्। र°। ३ क. ख. घ. °संस्थितः।

स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा । श्रूयतां तद्यथा विप्रा मार्कण्डेयकुतूहलम्[1] ॥१३
गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव [2]महामुनिः । बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१४
अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीं[3] तीर्थगोचराम् । आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च ॥१५
देशान्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च । जपहोमपरः शान्तस्तपो[4] घोरं समास्थितः ॥१६
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिः सृतः । स [5]निष्क्रामन्न चाऽऽत्मानं जानीते देवमायया ॥१७
निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत् । सर्वतस्तमसाऽऽच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववक्षत ॥१८
तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं[6] संशयश्चाऽऽत्मजीविते । देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः ॥१९
चिन्तयञ्जलमध्यस्थो मार्कण्डेयो[7] विशङ्कितः । किं नु [8]स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥२०
व्यक्तमन्यतमो [9]भावस्तेषां[10] संभावितो मम । न हीदृशं[11] जगत्क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति ॥२१

चकित करनेवाली उस घटना को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ सुनिये ।१३। वे महामुनि मार्कण्डेय जी उस भगवान् की उदरस्थली में उनके वरदान की महिमा से अनेक सहस्र वर्षों तक टहलते हुए विराजमान थे ।१४। वहीं पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से पृथ्वीतल पर दिखाई देनेवाले तीर्थों को देखते हुये पुण्यप्रद आश्रमों तथा देव मन्दिरों को देखते हुए, अनेक प्रकार के राष्ट्र, देश, विचित्र-विचित्र ग्रामों में टहलते हुये वे मार्कण्डेय जी जप, हवन आदि पुण्यकर्मों को करते हुये शान्त चित्त हो घोर तपस्या में निरत रहते थे ।१५-१६। इस प्रकार मार्कण्डेय जी भगवान् के उदर में घूमते हुये धीरे-धीरे मुख भाग से बाहर निकल पड़े; किन्तु भगवान् की माया की महिमा से वे अपने को भगवान् के उदर में अवस्थित अथवा उनके मुख द्वार से निकला हुआ नहीं जान सके ।१७। भगवान् के मुख से निकलकर समस्त जगत् को उन्होंने एक समुद्र के रूप में चारों ओर से घोर अन्धकार में छिपा हुआ देखा, जिससे उनके हृदय में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ और अपने जीवन में भी उन्हें सन्देह हो गया । उसी समय चित्त में भगवान् के दर्शन से अति प्रसन्न होकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए ।१८-१९। जल के बीच में खड़े हुए मार्कण्डेय जी सोचने लगे कि यह मेरे मन में इसी प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो रही है या मुझे मोह तो नहीं हो गया है अथवा मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा है ।२०। परन्तु स्पष्ट है कि मैं इनमें से किसी एक का अनुभव कर रहा हूँ, इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से अयुक्त संसार तो सचमुच नहीं हो सकता ।२१। चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पर्वत, पृथ्वीतल आदि से विहीन यह भला

---

१ ग. घ. ङ. च. °हलात् । जीर्णो । २ ङ. °हाद्युतिः । व° । ३ क. ख. °थिवीतीर्थगोचरान् । आ° । घ. °थिवीतीर्थगोचरम् । आ° । ङ. °थिवीतीर्थगोचरः । आ° । ४ ङ. °पोरतिमयः । श्रुतः । ५ ग. घ. च. °तः । निष्क्रामन्तं स आत्म° । ङ. °तः । निष्क्रम्यमाण आत्मा° । ६ घ. °व्रं व्यथयन्स्वात्म° । ङ. °व्रं कथयन्स्वात्मजीवितम् । ७ क. ख. °योऽन्ववैक्षत । किं । ८ ङ. स्यादात्मचि° । ९ ङ. °व एतेषां माविता मम । १० च °षां भाविनता मम । ११ च. °दृशमसंक्ले° ।

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले । कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ॥२२
ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् । सलिलेऽर्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे ॥२३
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम् । शर्वर्यां जाग्रतमिव भास्वन्तं[1] स्वेन तेजसा ॥२४
देवं द्रष्टुमिहाऽऽयातः को भवानिति विस्मयात् । तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः ॥२५
संप्रविष्टः पुनः कुक्षिं[2] मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः । तथैव तु पुनर्भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम् ॥२६
स तथैव यथापूर्वं यो धरामटते पुरा । पुण्यतीर्थबलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च ॥२७
क्रतुभिर्यजमानाश्च समाप्तवरदक्षिणान्[3] । अपश्यद्देवकुक्षिस्थान्याजकाञ्छतशो द्विजान् ॥२८
सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः । चत्वारश्चाऽऽश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टा मया तव ॥२९
एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः । चरतः पृथिवीं सर्वां न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः ॥३०
ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिः सृतः । सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत ॥३१
तथैवैकार्णवजले नीहारेणाऽऽवृताम्बरे[4] । अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥३२

कौन-सा लोक है—इस प्रकार की चिन्ता उनके हृदय में उत्पन्न हुई ।२२। आगे चलकर उन्होंने पर्वत के समान विशालकाय पुरुष को जल में आधा डूबा हुआ शयन करते हुये देखा, जो समुद्र में बादल की भांति शोभायमान हो रहा था ।२३। अपने तेज से वह किरणों से उदीप्त भास्कर की भाँति दिखाई पड़ रहा था । अपने तेज एवं प्रकाश से उस अन्धकारमयी रजनी में वह जाग्रत-सा दिख रहा है ।२४। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि जिस समय उस विशेष पुरुष को यथार्थ रूप में निश्चित करने के लिये कि 'आप कौन हैं, विस्मयान्वित होकर समीप पहुँचे, उसी समय पुनः उदर प्रदेश में कर दिये गये ।२५। इस प्रकार पुनः उदरगत होकर मार्कण्डेय अत्यन्त विस्मित हुए और बाहर के उस आश्चर्यमय दृश्य को स्वप्न माना ।२६। वहां पहुँच कर जिस प्रकार पहले वह तीर्थ यात्रा आदि में निरत रहते थे उसी प्रकार पुनः पृथ्वी-पर्यटन करने लगे और वहाँ पवित्र तीर्थ स्थानों एवं पवित्र जलवाली नदियों, विविध प्रकार के पवित्र आश्रमों को देखने लगे ।२७। भगवान् के उदर में अवस्थित यजमानों को यज्ञ कराकर दक्षिणा ग्रहण करनेवाले यज्ञकारी ब्राह्मण पुरोहितों को सैकड़ों की संख्या में देखा ।२८। वहाँ रहनेवाले ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने-अपने धर्म एवं आश्रमों में सत्कर्म में परायण थे, उन चारों आश्रमों को मैं तुम्हें बता चुका हूँ ।२९। इस प्रकार सौ वर्ष तक बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनि के समस्त पृथ्वी के घूमते रहने पर भी भगवान् की उदरस्थली का अन्त नहीं दिखाई पड़ा ।३०। इसी के बाद वे फिर घूमते-घूमते मुख द्वार से बाहर निकल पड़े और सामने बरगद की शाखा में छिपे हुए एक बालक को उन्होंने देखा ।३१। पूर्व की भाँति उस समय भी समस्त जगत् एक महासमुद्र के रूप में था, आकाश चारों ओर हिम से आच्छादित था, लोक के इतने विशाल प्रदेश में कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था

---

[1] ग. घ. ङ. °सयन्स्वेन । [2] क. °ण्डेयस्य वि° । ग. ङ. °ण्डेयः सवि° । [3] ग. च. °क्षिणैः । अ° ।
[4] ग. घ. ङ °तान्तरे । अव्यक्तः क्री° ।

स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः । बालमादित्यसंकाशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥३३
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसंनिधौ । पूर्वंदृष्टमिदं[1] मेने शङ्कितो देवमायया ॥३४
अगाधसलिले तस्मिन्मार्कण्डेयः[2] सविस्मयः[3] । प्लवंस्तथाऽऽर्तिमगमद्भयात्संत्रस्तलोचनः ॥३५
स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान् । बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ॥३६
मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवाऽऽयाहि मेऽन्तिकम्[4] । मार्कण्डेयो मुनिस्त्वाह बालं तं श्रमपीडितः ॥३७

मार्कण्डेय उवाच

*को मां नाम्ना कीर्तयति तपः[5] परिभवन्मम । दिव्यं वर्षसहस्राख्यं[6] धर्षयन्निव मे वयः ॥३८
न ह्येष वः समाचारो[7] देवेष्वपि ममोचितः । मां ब्रह्माऽपि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥३९
कस्तमो[8] घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः । मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति ॥४०

तथापि वह बालक व्यग्र नहीं था।३२। उसे देख कौतूहल से युक्त मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हुये और सूर्य के अति तेजस्वी उस बालक की ओर देखने में असमर्थ से हो गये।३३। चिन्ता में निमग्न मार्कण्डेय मुनि जल में खड़े हुए देव की माया से विमोहित होकर इस दृश्य को पूर्वकाल में देखा हुआ सा मानने लगे।३४। और उस अगाध जलराशि में विस्मित होकर भय से संत्रस्त नेत्र हो दुःखित होने लगे। तत्पश्चात् बाल योगधारी पुरुषोत्तम भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से मार्कण्डेय के लिए स्वागत वचन कहा—और कहा 'वत्स! मत डरो, तुम्हें डरना नहीं चाहिये यहां मेरे पास चले आओ।' भगवान् की वाणी सुनकर भय श्रम आदि से पीड़ित मार्कण्डेय मुनि बाल रूप धारी भगवान् से बोले।३५-३७।

मार्कण्डेय ने कहा—'कौन है, जो इस तरह मेरा नाम लेकर मेरी कठोर तपस्या का अपमान कर रहा है, तथा दिव्य सहस्र वर्षों तक कहीं आनेवाली मेरी दीर्घायु को भी अपमानित कर रहा है।३८। देवताओं में भी मेरा ऐसा व्यवहार समुचित नहीं हैं, अर्थात् यदि तुम कोई देवता हो तब भी तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये। देवेश ब्रह्मा भी मुझे 'दीर्घायु' कहकर पुकारते हैं।३९। कौन है, जो ऐसे महान् अज्ञानांधकार में लीन होकर जीवन रहित हो 'मार्कण्डेय' इस प्रकार मेरा नाम लेकर मृत्यु का मुख देखना चाहता है?'।४०।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके-को मां कीर्तयते भीतं शीतवर्षातपः सहम्। इति।

---

[1] क. ख. ग. °दं मन्येश। [2]. क. ख. घ. °यः सुवि'। [3] ट. सविस्मितः। [4] ग. ङ. °मितआया°। [5] ग. तेजः। [6] ग. ध. ङ. °ख्वं वर्षयंश्चैव। [7] ङ. सदाचारो देवेष्वपि समो मतः। [8] क. क. ख. ग. °स्तपोघो।

सूत उवाच

एव+माभाष्य[1] तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः । तथैव भगवान्भूयो बभाषे मधुसूदनः ॥४१

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः । आयुष्प्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि ॥४२
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसो मुनिः । पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ॥४३
×ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोदमितौजसम् । उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिममितौजसम् ॥४४
कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः[2] । द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगवर्त्मना ॥४५
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः । मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥४६
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः । तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत् ॥४७

मार्कण्डेय उवाच

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ । यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥४८
किंसंज्ञश्चैव भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो । तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति ॥४९

सूत ने कहा—इस प्रकार बालरूपधारी भगवान् से क्रोधपूर्वक कहकर महामुनि मार्कण्डेय जब चुप हो गये तब मधुसूदन भगवान् उसी प्रकार पुनः बोले । ।४१।

श्री भगवान् ने कहा—'वत्स ! मैं तुम्हारा पिता हृषीकेश हैं, मैं ही तुम्हारी दीर्घायु का देने वाला पुराण प्रसिद्ध गुरु हूँ, तुम क्यों नहीं मेरे पास आते ? ।४२। पुत्र की इच्छा करने वाले तुम्हारे पिता अंगिरा मुनि ने पूर्वकाल में अति घोर तपस्या करके मेरी आराधना की थी तब अति प्रभावशाली आत्मभूत महर्षि की उस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने अमित तेजस्वी तुमको पुत्र रूप में उन्हें प्राप्त होने का वरदान दिया था ।४३-४४। अपने आत्मीय भक्त के पुत्र तुम्हारे बिना कौन ऐसा साहस कर सकता है जो इस एक समुद्र में योग मुद्रा में क्रीड़ा करते हुए मुझे देख सके' ।४५। तदनन्तर भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विस्मय से विकसित नेत्र हो लोकपूजित दीर्घायु महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने शिर से अञ्जलि बाँधकर प्रसन्नमुख हो अपने नाम तथा गोत्र का उच्चारण कर उस बाल रूपधारी भगवान् की प्रार्थना की ।४६-४७।

मार्कण्डेय ने कहा— निष्पाप ! मैं तुम्हारी इस माया को तात्त्विक दृष्टि से जानना चाहता हूँ, जो आप इस प्रकार का बालक रूप धारण कर इस विशाल समुद्र के मध्य में अवस्थित हो रहे हैं ।४८। प्रभो ! आप किस नाम से लोक में प्रसिद्ध होते हैं, इस प्रकार जल में शयन करने वाले आपको मैं महनीय आत्मा समझ रहा हूँ, आपके बिना कौन इस प्रकार यहाँ अवस्थित हो सकता है ? ।४९।

+अत्राभाषतेत्येवं भवितुं युक्तम् । ×एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—स तप्त्वा घोरतपसा प्रावृणोत्त्वां सुतेजसमिति ।

[1] ङ. °भाषते को° । [2] ग. घ. °त्मकः । द्र° ।

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मन्सर्वभूतविनाशनः[1] । अहं सहस्रशीर्षाख्यो[2] यः पदैरभिसंज्ञितः ॥५०
आदित्यवर्णः पुरुषो[3] मखे ब्रह्ममयो मखः । अहमग्निर्हव्यवाहो[4] यादसां पतिरव्ययः ॥५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो[5] वर्षाणां परिवत्सरः । अहं योगी युगाख्यस्य युगान्तावर्त एव च ॥५२
अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि तु । भुजंगानामहं शेषस्तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम् ॥५३
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः । अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥५४
अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः । यत्तत्सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥५५
अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमं पदम् । अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५६
अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः । अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥५७
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः । क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः ॥५८
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः । अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम्[6] ॥५९
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य संभवः । यत्किंचित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किंचन ॥६०

श्री भगवान ने कहा— 'ब्रह्मन् ! सभी भूतों का विनाशकर्त्ता मैं नारायण हूँ, जिसे लोग 'सहस्रशीर्षा' (सहस्त्र शिरोंवाला) आदि नामों से पुकारते हैं ।५०। मैं आदित्य वर्ण पुरुष हूँ, यज्ञों में मेरा नाम ब्रह्ममय यज्ञ है । मैं हवि का वहन करने वाला अग्नि हूँ, जल में निवास करनेवाले जीवों का स्वामी हूँ, अव्यय (कभी न नाश होने वाला) हूँ ।५१। मैं ही इन्द्र के स्थान पर शोभित शक्र हूँ । वर्षों में मैं परिवत्सर हूँ, मैं योगी हूँ, मैं ही युग कहा जाता हूँ, युगों का अन्त करने वाला भी मैं ही हूँ ।५२। मैं ही समस्त जीवों देवताओं एवं अन्य वस्तुओं में निवास करने वाला हूँ । भुजंगों में मैं शेष हूँ, सब पक्षियों में मैं गरुड़ हूँ सब जीवों का मैं कृतान्त हूँ, समस्त जगत् का काल भी मुझे कहा गया है । मैं सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म हूँ ।५३-५४। तप भी मेरा नाम है, मैं दिव्य नदी हूँ, क्षीर का महा समुद्र मैं ही हूँ, जो कुछ परम तत्त्व है, वह सब मैं एक प्रजापति रूप में हूँ ।५५। मैं सांख्य हूँ, मैं योग हूँ । मैं वह परम पद हूँ, मैं यज्ञ दान आदि की क्रियाएँ हूँ । मैं समस्त विद्याओं का स्वामी कहा गया हूँ ।५६। मैं ज्योति हूँ, मैं वायु हूँ, मैं पृथ्वी हूँ, मैं आकाश हूँ, मैं जल हूँ, समुद्र हूँ, नक्षत्र समूह हूँ, दशों दिशाएँ मैं ही हूँ ।५७। मैं वर्ष हूँ, मैं चन्द्रमा हूँ मैं बादल हूँ मैं सूर्य हूँ, क्षीर सागर में निवास करने वाला हूँ, समुद्र में मैं वडवा मुख नामक अग्नि हूँ ।५८। संवर्तक नामक अग्नि होकर मैं ही जलरूप हवि का पान करता हूँ, मैं ही परम पुराण कहा जाता हूँ उसी प्रकार मैं ही सब का आश्रय दाता हूँ ।५९। मैं ही भूत, भविष्य एवं वर्तमान— सब की उत्पत्ति करता हूँ । हे विप्र ! जो कुछ

---

१ क. ख. °र्वभूः सर्वना° । २ क. ख. °र्षाख्यैर्यः प° । ३ ग. घ. °षोमुखे । ङ. षो मुख्यो ब्र° ।
४ ग. घ. ङ. °वाहः सदसत्पतिरद्भुतः । अ° । ५ ग. घ. ङ. शक्रः क्रतूनां प° । ६ ग. ङ. °म् । भविष्ये
वारि सर्वत्र भविष्यत्सर्वसं ।

यल्लोके चानुभवसि तत्सर्वं मामनुस्मर । विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्य माम् ॥६१
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् । तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥६२
शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम । मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह ॥६३
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छासुरद्विषम् । अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ॥६४
परस्त्रिवर्गादोंकारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः । एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ॥६५
*वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् । ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥
स तस्मिन्सुखमेकान्ते शुश्रूषुर्हंसमव्ययम्[1] ॥६६
योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ।
शनैश्चरन्प्रभुरपि[2] हंससंज्ञितोऽसृजज्जगद्विहरति कालपर्यये ॥६७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥८९९१॥

तुम देख रहे हो, जो कुछ सुन रहे हो, लोक में जो कुछ अनुभव कर रहे हो, उन सब में मेरा ही स्मरण करो। मैंने ही पूर्वकाल में समस्त जगत् की सृष्टि की है, मुझे ही इसकी रचना पुनः करनी है, मुझे देखो ! ।६०-६१। हे मार्कण्डेय ! प्रत्येक युगों में पुनः मैं ही इस समस्त जगत् की सृष्टि करूँगा । अतः इन सब वस्तुओं का सम्बन्ध मुझसे ही समझो ।६२। मेरे धर्म के श्रवण की इच्छा से ही तुम पुनः आकर मेरे उदर में सुखपूर्वक विचरण करो, समस्त देवताओं तथा ऋषियों के साथ ब्रह्मा मेरे शरीर में ही अवस्थित हैं ।६३। प्रकट एवं अप्रकट योगवाले मुझको असुरों का संहारकर्त्ता मानो। मैं ही एकाक्षर रूप एवं तीन अक्षर रूप तारक मंत्र हूँ ।६४। तीनों वर्गों से परे, तीनों वर्गों का प्रयोजन देनेवाला ओंकार मैं ही हूँ । समस्त जगत् के स्वामी महामतिशाली भगवान् ने इस प्रकार की बातें कहते समय शीघ्रता से अपने मुख को पुनः विकसित किया परिणामतः मुनिसत्तम मार्कण्डेय भगवान् के उदर प्रदेश में पुनः प्रविष्ट हो गये । और उस एकान्त प्रदेश में शाश्वत हंस रूप भगवान् के विषय में अधिकाधिक श्रवण करने की इच्छा से सुखपूर्वक विचरण करने लगे ।६५। वहाँ घूमते हुए मार्कण्डेय ने इस प्रकार हंस ध्वनि सुनी । 'मैं ही वह शाश्वत हंस हूं, जो समर्थ होकर चन्द्रमा, तथा सूर्य से रहित भी इस विशाल समुद्र में धीरे धीरे घूमता हुआ पुनः इस विशाल संसार की रचना करता हूँ ।६६-६७।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव के प्रसंग में एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६७॥

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ पुस्तके—वक्त्रं व्यावृत्तवानाशु मार्कण्डेयो महामुनिरिति । [1] ग. घ. °म् । तदक्षयो विविधमयाश्रितां तनुं म° । [2] क. ख. ग. °रथहंससंज्ञितेऽसृजज्जगदिरहितका° ।

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

आपवः[1] स विभुर्भूत्वा[2] चारयामास वै तपः । छादयित्वाऽऽत्मनो देहं[3] यादसां कुलसंभवम् ॥१
ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने । महतां पञ्चभूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत् ॥२
तस्य चिन्तयमानस्य निर्वाते संस्थितेऽर्णवे । निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे । ३
ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं [4]सलिलाश्रयः[5] । अनन्तरोर्मिभिः सूक्ष्ममथ च्छिद्रमभूत्पुरा ॥४
शब्दं प्रति तदोद्भूतो मारुतश्छिद्रसंभवः । स लब्ध्वाऽन्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः ॥५
विवर्धता बलवता वेगाद्विक्षोभितोऽर्णवः । तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मन्थिते ॥
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरो महान् ॥६
ततः संशोषयामास पावकः सलिलं बहु । क्षयज्जलनिधेश्छिद्रमभवद्विस्तृतं नभः ॥७
आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः । आकाशं छिद्रसंभूतं वायुराकाशसंभवः ॥८

अध्याय १६८

मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार जल में निवास करते हुए उस महान् आत्मा ने अपने शरीर को छिपाकर जल में ही तपस्या की, उस समय वे जलचर जन्तुओं के कुल में उत्पन्न हुए ।१। तदनन्तर उस महाबलवान् महान् आत्मा ने लोक के सर्जन करने की इच्छा की और पाँच महाभूतों की समष्टि से बने हुए उस विश्व का चिन्तन किया ।२। वायुरहित समुद्र में विश्व का चिन्तन करने वाले भगवान् के सम्मुख उस आकाश रहित जलमय गम्भीर समुद्र के जल में, जिसमें जगत् सूक्ष्म रूप से वर्तमान था, कुछ संक्षोभ उत्पन्न हुआ । उसी से उठनेवाली लहरों से सूक्ष्म छिद्र उत्पन्न हुआ, उस छिद्राकाश से अभिहत होकर शब्द एवं वायु का प्रादुर्भाव हुआ। दुर्द्धर्ष वायु वहीं पर अवकाश प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त हुई ।३-५। उस बढ़ती हुई वायु से समुद्र पुनः विक्षुब्ध हुआ और संक्षोभित हुए उस समुद्र की जलराशि मन्थन के समान उद्वेलित हुई एवं मथे हुए उस जल में काले धूमोंवाली वैश्वानर नामक अग्नि उत्पन्न हुई ।६। उस अग्नि ने समुद्र का बहुत-सा जल सोख लिया, जिसमें समुद्र के जल के विनाश हो जाने से छिद्रविस्तृत आकाश रूप में परिणत हो गया ।७। उस विभु के आत्म तेज थे उद्भूत जल अत्यन्त पवित्र तथा अमृत के रस के समान सुस्वादु हुआ । छिद्र से आकाश उत्पन्न हुआ

---

[1] ग. घ. च. °प एव वि° । [2] ग. च. °त्वा चर° । घ° त्वा वरया° । ङ. °त्वा तापया° । [3] ग. °हं तपसा कुशसंभवः । त° । घ. ङ. च. °हं पयसा कुशसंभवः । त° । [4] ङ. च. °लाश्रितः । [5] ग. °श्रयम् । अ° ।

आभ्यां संघर्षणोद्भूतं पावकं वायुसंभवम् । दृष्ट्वा प्रीतो महादेवो महाभूतविभावनः ॥९
दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम् । [1]ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो व्यचिन्तयत् ॥१०
चतुर्युगाभिसंख्याते[2] सहस्रयुगपर्यये । [3]बहुजन्मा हि विश्वात्मा ब्रह्मणो हविरुच्यते ॥११
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् । [4]ज्ञानं दृष्टं तु विश्वार्थे योगिनां याति मुख्यताम् ॥
तं योगवन्तं विज्ञाय संपूर्णैश्वर्यमुत्तमम् । पदे ब्रह्मणि [5]विश्वेशं न्ययोजयत योगवित् ॥१३
ततस्तस्मिन्महातोये महीशो हरिरच्युतः । [6]जले क्रीडंश्च विधिवन्मोदते सर्वलोककृत् ॥१४
पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा । सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥१५
हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभमुपस्थितं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम्[7] ॥१६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥६००७॥

और आकाश से वायु प्रादुर्भूत हुई ।८। इन आकाश और वायु के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जो वायु से उत्पन्न कही जाती है । महाभूतों को उत्पन्न करनेवाले देवाधिदेव इन तत्वों को उद्भूत हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, ।९। एवं लोक सृष्टि के लिए इन महाभूतों को उपस्थित देखकर ब्रह्मा की उत्पत्ति एवं अनेक स्वरूपवाली अन्य आवश्यक वस्तुओं के विषय में चिन्तन किया ।१०। चारों युगों के सहस्र बार बीत जाने पर अनेक जन्म लेने पर विश्वात्मा को ब्रह्म का हवि कहते हैं । योग के जानने वाले प्रभु ने, पृथ्वी पर तपस्या ये पवित्र आत्मावाले महर्षियों में जो ज्ञान देखा जाता है, योगियों में योग करने की जो क्षमता पाई जाती है, उन सब गुणों से युक्त, सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त, उस विश्व के रचने की योग्यतावाले महात्मा को विश्व की सृष्टि के लिए ब्रह्मा के पद पर नियुक्त किया ।११-१३। तदनन्तर उस अपार जलराशि में महीश अच्युत भगवान् विष्णु ने जो सभी लोकों की रचना करनेवाले हैं, स्वयं क्रीडा करते हुए विधिपूर्वक आनन्द का अनुभव किया ।१४। और अपनी नाभि से सहस्र पंखड़ियोंवाले रजरहित सुवर्णमय एक कमल की उत्पत्ति की, जो सूर्य के समान अनुपम कान्ति से युक्त था ।१५। अग्नि की जलती हुई लपटों के समान देदीप्यमान, निज शरीर की रोमावलि के समान सुन्दर दिखाई पड़नेवाला, मनोहर कान्ति युक्त, शरत्कालीन सूर्य के समान शोभित वह कमल परम शोभासम्पन्न था ।१६।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ अरसठवां अध्याय समाप्त ॥१६८॥

---

[1] ङ. °णो रूपस° ।
[2] ग. °ख्याने स° ।
[3] क. ख. °जन्मविशुद्धात्मब्रह्मणेह निरु° ।
[4] ग. ज्ञातं द्रष्टुं तु । घ ज्ञातु दृ° ।
[5] ग. घ. ङ. °शं व्ययों° ।
[6] क. ख. स्वयं ।
[7] ग. घ. ङ. ° रुशैलवत् ।

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्भूरितेजसम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम्[1] ॥१
यस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम् ॥२
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम् । नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः[2] ॥३
या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते । ये पद्मसारगुरवस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥४
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च । कैलासं[3] मुञ्जवन्तं च तथाऽन्यं गन्धमादनम् ॥५
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च । उदयं पिञ्जरं चैव विन्ध्यवन्तं च पर्वतम् ॥६
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् । आश्रयाः पुण्यशीलानां[4] सर्वकामफलप्रदाः ॥७
एतेषामन्तरे देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः । जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र वै क्रियाः ॥८
एभ्यो यत्स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् । दिव्यास्तीर्थशताधाराः[5] सुरम्याः सरितः स्मृताः[6] ॥९
स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणि समन्ततः । असंख्येयाः पृथिव्यास्ते विश्वे वै धातुपर्वताः ॥१०

अध्याय १६९

मत्स्य ने कहा—तदनन्तर भगवान् ने समस्त भुवन के स्रष्टा योगियों में श्रेष्ठ अति तेजस्वी चारों ओर मुंहवाले ब्रह्मा की रचना की और अनेक योजनों में विस्तृत उस सुवर्णमय कमल में सभी राज-लक्षणों से सुशोभित तेजोमय सभी गुणों से संयुक्त ब्रह्मा उत्पन्न हुए । पुराणों की महिमा जाननेवाले उस कमल को पृथ्वी का उत्तम स्वरूप मानते हैं, महर्षिगण उसे नारायण से उत्पन्न हुआ मानते हैं ।१-३। जो पद्मा है वही रसा नाम से पृथ्वी देवी कही जाती है , और जो उस पद्म में बोझीले पदार्थ हैं, उसे लोग दिव्य गुणयुक्त पर्वत जानते हैं ।४। हिमवान्, सुमेरु, नील, निषध, कैलास, मुंजवान्, गन्धमादन, पवित्र त्रिशिखर, सुन्दर मन्दर, उदय, पिंजर तथा विन्ध्य— ये पर्वत पुण्यशील सिद्ध महात्माओं तथा देवताओं के समूहों के निवास स्थान तथा सभी प्रकार के मनोरथ एवं फलों को देनेवाले हैं ।५-७। इन सभी पर्वतों के मध्यभाग में जम्बू द्वीप की अवस्थिति कही जाती है । जम्बू द्वीप की पहचान है, जहाँ पर यज्ञ की क्रियाएँ होती हैं ।८। इन उपर्युक्त पर्वतों से दिव्य अमृत रस के समान सुस्वादु जल चूकर जिसमें बहता है वे ही दिव्य, सैकड़ों तीर्थ स्थानों से युक्त सुरम्य नदियाँ कही जाती है ।९। उस कमल के चारों ओर जो अत्यन्त सुरम्य केसर हैं, वे ही इस पृथ्वी के असंख्य धातु पर्वत कहे जाते हैं ।१०। राजन् ! जो उस

---

[1] ङ. °म् । तस्मि° । [2] ङ. मनीषिणः । [3] ङ. 'लासमृक्षव° । [4] ङ. °ण्यतीर्थानां । [5] ङ. °र्थसिता । [6] ग. घ. ङ. °ताः । यान्येतानि च प° ।

यानि पद्मस्य पर्णानि भूरीणि[1] तु नराधिप । ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥११
[2]यान्यधोभागपर्णानि ते निवासास्तु भागशः । दैत्यानामुरगाणां[3] च पतङ्गानां च पार्थिव ॥१२
तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम् । महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥१३
पद्मस्यान्तरतो यत्तदेकार्णवगता मही । प्रोक्ताऽथ दिक्षु सर्वासु चत्वारः सलिलाकराः ॥१४
एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसंभवा । प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः ॥१५
एतस्मात्कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः[4] । [5]याज्ञिकैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे[6] पद्मविधिः स्मृतः ॥१६
एवं भगवता तेन विश्वेषां[7] धारणाविधिः । पर्वतानां नदीनां च ह्रदानां चैव निर्मितः ॥१७
विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकराभो वरुणः[8] सितद्युतिः ।
*शनैः स्वयंभूः शयनं सृजत्तदा जगन्मयं पद्मविधिं महार्णवे ॥१८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥९०२५॥

पद्म के अधिक संख्या पत्ते हैं, वे ही पहाड़ों से घिरे हुए दुर्गम म्लेच्छों के देश हैं, जो नीचे के पत्ते वाले हैं, वे क्रमशः दैत्यों, सर्पों, तथा पतंगों के निवास स्थान कहे जाते हैं ।११-१२। उन सब दैत्यों, सर्पों आदि का महासमुद्र जहाँ पर है, वह रसा नाम से कहा जाता है, वहीं पर महापाप करनेवाले मानव डूबते हैं ।१३। उस पद्माकार पृथ्वीमण्डल के चारों ओर चार समुद्र कहे गये हैं ।१४। इस प्रकार नारायण की इच्छा मात्र से वह पुष्कर से पृथ्वी उत्पन्न कही गई है, अबः उसके उत्पन्न होने का वृत्तान्त भी पुष्कर नाम से प्रसिद्ध है ।१५। यही कारण है कि उस वृत्तान्त को जाननेवाले प्राचीन महर्षियों ने, जो परम याज्ञिक माने गये हैं, वेद के दृष्टान्तों से यज्ञ में पद्म का विधान बतलाया है ।१६। इस प्रकार उस भगवान् ने समस्त पृथ्वी का पर्वत, नदी एवं सरोवरों के साथ निर्णय किया ।१७। तदुपरान्त अतुलित प्रभावशाली, सूर्य के समान शोभाशाली, सामर्थ्यवान् स्वयम् उत्पन्न होनेवाले भगवान् जगन्मय उस पद्म का विधान करके उस महासमुद्र में धीरे से पुनः शयन करने लगे ॥१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥

---

*एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. घ, पुस्तकयोः । शनैः स्वयंभूः श्रयते सृजज्जगज्जगन्मयः पद्मनिधिर्महार्णवे । इति । १ ग. घ. ङ. भूरिपूर्वं न° । २ ग. घ. °न्यष्टौ भा° । ३ ङ. नामसुराणां । ४ ग. घ. °भिः । यज्ञियैर्वे० । ५ ग. °र्यज्ञैः पूर्वचितिः कृता ए° । घ. °र्यज्ञैः सूपचितिः कृता । ए° । ६ ङ. ज्ञेषूपचितिः कृता । ए° । ७ ग. घ' विश्वया वरया वि° । ८ क. ख. °रणासि' । ङ. °रुणोऽमरद्यु° ।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

विघ्नस्तपसि[1] संभूतो मधुर्नाम महासुरः । तेनैव च सहोद्भूतो[2] ह्यसुरो नाम कैटभः ॥१
तौ रजस्तमसौ विष्णोः[3] संभूतौ तामसौ गणौ । एकार्णवे जगत्सर्वं क्षोभयन्तौ महाबलौ ॥२
दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ[4] । किरीटकुण्डलोदग्रौ[5] केयूरवलयोज्ज्वलौ ॥३
महाविवृतताम्राक्षौ[6] पीनोरस्कौ महाभुजौ । महागिरेः संहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ॥४
नवमेघप्रतीकाशावादित्यसदृशाननौ[7] । विद्युदाभौ[8] गदाग्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ[9] ॥५
तौ पादयोस्तु विन्यासादुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् । कम्पयन्ताविव हरिं शयानं मधुसूदनम् ॥६
तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम्[10] । योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा ॥७
नारायणसमाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः । दैवतानि च विश्वानि मानसानसुरानृषीन् ॥८

अध्याय १७०

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू के योग निद्रा में निमग्न हो जाने पर तपस्या के विघ्न स्वरूप रजस्तमोमय मधु और कैटभ नामक दो असुर एक ही समय उत्पन्न हुए ।१। रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न वे दोनों महाबलबान् विघ्नकारी राक्षस उस महासमुद्र में समस्त जगत् को क्षुब्ध करने लगे ।२। उस समय वे दोनों लाल वर्ण के दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए थे, उनके अगले दाँत अति उज्ज्वल होने से चमक रहे थे, वे किरीट तथा कुण्डल धारण किये हुए थे, उज्ज्वल केयूर और वलय से सुशोभित थे ।३। उनकी विशाल आँखें लाल थीं, वक्षस्थल दृढ़ थे भुजाएं विशाल थीं आकृति देखने में महागिरि के समान दिखाई पड़ती थी । उस समय वे चलते हुए पर्वत के समान लग रहे थे ।४। उनके मुख नवीन मेघ के समान श्यामल तथा सूर्य के समान तेजोमय थे, वे गदा के अग्रभाग तथा हाथों से विद्युत् के समान अत्यन्त भीषण दिख रहे थे ।५। वे दोनों पैरों के विन्यास से समुद्र को फेंकते हुए के समान मालूम हो रहे थे और शयन करते हुए मधुसूदन भगवान् विष्णु को कम्पित से कर रहे थे ।६। इस प्रकार महा समुद्र में घूमते हुए उन दोनों ने कमल में विराजमान योगियों में श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा को देखा, जो उस समय अत्यन्त तेजोमय थे तथा नारायण की आज्ञा से मानसिक संकल्प द्वारा समस्त प्रजाओं की एवं सभी देवताओं, ऋषियों तथा असुरों की सृष्टि कर रहे थे ।७-८। उन आसन्न असुरनायकों ने ब्रह्मा के समीप जाकर

---

१ ङ. बिष्णौ स्वपित सं° । २ क. ख. °तो रजसा कैटभस्ततः । तौ । ३ क. ख. विघ्नसं° । ग. घ. विघ्नो सं० । ४ क. ख. घ. °दीप्ताग्र° । ५ ग. ङ. °टमुकुटोद° । ६ क. ख. °विक्रमता° । ग. घ. बिकृतता° । ७ क. ख. घ. नगमे° । ८ ङ. °दाभोगवद्ग्राह्यः क° । ९ ग. घ. ङ. °णौ । पादसंचारवि° । १० ङ. च. °मुखे । यो° ।

ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ । दीप्तौ मुमूर्षू[1] संक्रुद्धौ रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥९
कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः । आधाय[2] नियमं मोहादास्से त्वं विगतज्वरः ॥१०
एह्यागच्छाऽऽवयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव । आवाभ्यां परमीशाभ्यामशक्तस्त्वमिहार्णवे ॥११
तत्र कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वाऽसि न योजितः । कः स्रष्टा कश्च ते गोप्ता केन नाम्ना विधीयसे ॥१२

ब्रह्मोवाच

एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक् । तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम् ॥१३

मधुकैटभावूचतुः

नाऽऽवयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामते । आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसाऽथ वै ॥१४
रजस्तमोमयावावामृषीणामवलङ्घितौ । छाद्यमानौ धर्मशीलौ दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥१५
आवाभ्यामुह्यते लोको दुष्कराभ्यां युगे युगे । *आवामर्थश्च कामश्च यज्ञः स्वर्गपरिग्रहः ॥१६
सुखं यत्र मुदा युक्तं यत्र श्रीः कीर्तिरेव च । येषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय ॥१७

अति क्रोध से व्याकुलित नेत्र हो कहा—'चार भुजावाले, श्वेत रंग की पगड़ी बाँधे कमल के मध्य में निवास करनेवाले तुम कौन हो? अज्ञान से योग की आराधना कर शान्तचित्त हो यहाँ मौज कर रहे हो ।९-१०। यहाँ आवो । कमल से उत्पन्न होने वाले ! मुझ दोनों के साथ युद्ध करो, इस महा समुद्र में तुम हम दो महान् स्वामियों के सामने एक नगण्य व्यक्ति हो, असमर्थ हो, यहाँ कहाँ से तुम्हारी उत्पत्ति हो गई है ? किसने तुम्हें इस काम में नियुक्त किया है ? तुम्हारी सृष्टि किसने की है ? तुम्हारी रक्षा भला कौन करता है ? तुम्हारा नाम क्या है ?' ।११-१२।

ब्रह्मा ने कहा—सहस्र नेत्रों वाला, जिसे लोग जान नहीं सकते वह प्रभु लोक में एक कहा गया है, तुम दो दिखाई पड़ रहे हो, अतः तुम दोनों के नाम तथा काम को मैं जानना चाहता हूँ ।१३।

मधु कैटभ ने कहा—महा बुद्धिमान् ! हम दोनों से बढ़कर इस विश्व में कोई नहीं है, हम दोनों ने रजोगुण तथा तमोगुण से समस्त विश्व को आवृत कर लिया है ।१४। हम दोनों रजोगुण एवं तमोगुण से संयुक्त हैं, ऋषिगण हम दोनों से पार नहीं पा सकते, हम धर्म एवं शील को छिपाते हुए समस्त देहधारियों से पराजित नहीं किये जा सकते ।१५। प्रत्येक युग में हमी दोनों लोक का वहन करते हैं, हम दोनो के लिए ही अर्थ, काम, यज्ञ एवं स्वर्ग का विधान बना हुआ है ।१६। जहाँ पर आनन्द एवं सुख है, लक्ष्मी एवं यज्ञ है, प्राणियों के मन में जितनी अभिलाषाएँ हैं, वे सब मुझ दोनों की ही समझनी चाहियें ।१७।

---

* इतः प्रभृतिविचिन्तयेत्यन्तग्रन्थो न ङ. पुस्तके । १ ग. घ. ङ. युयुत्सू । २ ङ. आवामगणयन्मोहा° ।

ब्रह्मोवाच

यत्नाद्योगवतो दृष्टचा योगः पूर्वं मयार्जितः । तं समाधाय गुणवत्सत्त्वं चास्मि समाश्रितः ॥१८
यः परो योगमतिमान्योगाख्यः[1] सत्त्वमेव च । रजसस्तमसश्चैव यः स्रष्टा विश्वसंभवः ॥१९
ततो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च । स एव हि [2]युवां[3] नाशे वशी देवो[4] हनिष्यति ॥२०
स्वपन्नेव ततः श्रीमान्बहुयोजनविस्तृतम् । बाहुं नारायणो ब्रह्मा कृतवानात्ममायया[5] ॥२१
कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुना बाहुशालिनः[6] । चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ ॥२२
ततस्तावाहतुर्गत्वा तदा देवं सनातनम् । पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य स्थितावुभौ ॥२३
जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम्[7] । त्वमावां पाहि हेत्वर्थमिदं नौ बुद्धिकारणम् ॥२४
अमोघदर्शनः स त्वं यतस्त्वां विद्व(ः)शाश्वतम् । ततस्त्वामागतावावामभितः प्रसमीक्षितुम् ॥२५
तदिच्छामो वरं देव त्वत्तोऽद्भुतमरिंदम । अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिंजय ॥२६

ब्रह्मा ने कहा— योग के यत्न से एवं दृष्टि से मैंने पूर्व काल में योग की आराधना की थी, उसी के कारण मैं सत्त्व गुण को प्राप्त कर सका हूँ ।१८। जो इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ है, मतिमान् है, जिसकी संज्ञा ही 'योग' है, जो वास्तव में सत्त्वरूप ही है, जो विश्व का उत्पत्तिकर्ता एवं रजोगुण तथा तमोगुण का भी सृष्टिकर्ता है, उसी से सत्त्वगुण युक्त, रजोगुणमय एवं तमोगुणमय जीवों की उत्पत्ति होती है । वही देव आप दोनों के विनाश करने में समर्थ है, और वही संहार भी करेगा ।१९-२०। ठीक इसी अवसर पर भगवान् विष्णु ने शयन करते हुए अपनी माया से अपनी बाहु को अनेक योजन तक विस्तृत बनाया ।२१। जिससे उस लम्बी बाहु वाले की बाहु से खींचे जाते हुए वे दोनों दैत्य इधर-उधर दीन दशा में घूमते हुए मोटे पक्षी की भाँति दिखाई पड़ने लगे ।२२। तदनन्तर वे दोनों दैत्य सर्वदा एकरूप में रहनेवाले हृषीकेश पद्मनाभ भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रणाम करते हुए बोले ।२३। —देव ! विश्व को उत्पन्न करनेवाले ! पुरुषोत्तम ! एक मात्र आप को हम जानते हैं, हम दोनों की आप रक्षा करें, आप ही हमारे कल्याण रूप हैं ।२४। आप का दर्शन किसी को कभी विफल नहीं होने देता, आपको हम लोग शाश्वत जानते हैं. इसीलिये आपके दर्शनार्थ हम दोनों यहाँ आये हुए हैं ।२५। शत्रुओं को वस में करनेवाले देव ! अतएव हम आपसे यह वर दान प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं । युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले ! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता' ।२६।

---

[1] ग. घ. °तिनायो गा° । ङ. °तिनायोऽक्षरः स° । [2] च. युवामर्थे व° । [3] ग. घ. नाशं । [4] च. °वोऽत्र तक्षति । [5] क. ख. ब्रह्म । [6] ङ. °लिनौ । चे° । [7] ग. घ. °म् । न मायायां हि । °म् । तन्मायया हि तत्त्वार्थमिह नो बु° ।

श्रीभगवानुवाच

किमर्थं हि द्रुतं ब्रूतं वरं ह्यसुरसत्तमौ । दत्तायुष्कौ पुनर्भूयो[1] रहो जीवितुमिच्छथः ॥२७

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन्न कश्चिन्मृतवान्देव तस्मिन्प्रभो वधम् । तमिच्छावो[2] वधश्चैव[3] +त्वत्तो नोऽस्तु महाव्रत ॥२८

श्रीभगवानुवाच

बाढं युवां तु प्रवरौ भविष्यत्कालसंभवे । भविष्यतो न संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥२९

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरः सुरोत्तमः ।
रजस्तमोवर्गभवायनौ यमौ ममन्थ तावूरुतलेन वै प्रभुः ॥३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे मधुकैटभवधे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥९०५५॥

श्री भगवान् ने कहा—दानवों में श्रेष्ठ असुरद्वय ! किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आप लोग इस वरदान को माँग रहे हैं, आप लोगों की आयु तो समाप्त हो गई है । क्या अभी जीवित रहने को इच्छुक हैं ? ।२७।

मधुकैटभ ने कहा— महाव्रतशाली देव ! जिस स्थल पर कोई भी नहीं मरा है, वहाँ और आपके हाथों द्वारा हम दोनों अपनी मृत्यु की अभिलाषा करते हैं ।२८।

श्री भगवान् ने कहा—'तुम दोनों दैत्यों की उत्पत्ति भविष्य में अवश्य ही श्रेष्ठ शक्तिशाली रूप में होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, मैं सत्य कह रहा हूँ ।२९। इस प्रकार उन श्रेष्ठ दैत्यों को वरदान देकर विश्व में श्रेष्ठ सुरोत्तम सनातन भगवान् विष्णु ने रज एवं तमोगुणमय उन भयानक दैत्यों के जोड़े को अपनी जाँघों के मूल भाग पर रखकर मार डाला ।३०।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव प्रसङ्ग में मधुकैटभ वध नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

+अत्र नौ त्वत्तोऽस्तु महाव्रतेति भवितुं युक्तम् । [1] ङ. °भूय आहो । [2] ग. तदिच्छा° । [3] क. ख. वधं चै° ।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

स्थित्वा च तस्मिन्कमले[1] ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः ॥१
प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः । बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुभिः ॥२
अथान्यद्रूपमास्थाय शंभुर्नारायणोऽव्ययः । आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः ॥३
सांख्याचार्यो हि मतिमान्कपिलो ब्राह्मणो वरः । उभावपि महात्मानौ स्तुवन्तौ[2] क्षेत्रतत्परौ ॥४
तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् । परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥५
ब्रह्मात्मदृढबन्धश्च विशालो जगदास्थितः । ग्रामणीः सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः ॥६
*तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा[3] ब्रह्माऽभ्याहृतयोगवित् । त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथेयं[4] ब्रह्मणः श्रुतिः + ॥७
पुत्रं[5] च शंभवे चैकं समुत्पादितवानृषिः । तस्याग्रे[6] वाग्यतस्तस्थौ ब्रह्मा[7] तामसमव्ययम् ॥८
सोत्पन्नमात्रो ब्रह्माणमुक्तवान्मानसः सुतः । किं कुर्मस्तव साहाय्यं ब्रवीतु भगवानृषिः ॥९

अध्याय १७१

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी ब्रह्मा जी उस कमल में अवस्थित होकर ऊपर हाथ किये हुए घोर तपस्या कर रहे थे।१। उस समय वे अपने अतिशय तेज तथा शोभा से चारों ओर घनीभूत अंधकार का विनाश कर रहे थे, एवं अपनी अनुपम आभा से सहस्र किरणों वाले सूर्य की भाँति दिखाई पड़ रहे थे।२। उस समय अव्यय नारायण भगवान् ने, जो समस्त जगत् को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं, अति तेजस्वी महा यशस्वी योगाचार्य का स्वरूप धारण किया । ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सांख्याचार्य परम बुद्धिमान् कपिल भी आ गये, फिर वे दोनों अपने-अपने मार्ग में तत्पर, भूत एवं भविष्य को जानने वाले, महर्षियों से पूजित महात्मा स्तुति करते हुए अमित तेजस्वी ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले— ।३-५। विशाल जगत् के रचने वाले तीनों लोकों में पूजे जाने वाले दृढ़ आसन पर विराजमान ब्रह्मा ही सभी जीवों के निर्माण करनेवाले तथा प्रमुख हैं' ।६। उन दोनों प्रार्थना करनेवालों की ऐसी बात सुनकर योगज्ञानी ब्रह्मा ने अपने योगबल द्वारा इन तीनों लोकों की रचना अपनी ब्रह्मशक्ति के अनुरूप की।७। तदनन्तर ऋषि ने एक मंगलाचार सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति की । ब्रह्मा का वह मानस पुत्र उत्पन्न होते ही अजन्मा एवं अव्यय ब्रह्मा के अग्रभाग में चुपचाप विनम्र भाव से खड़ा हुआ और बोला—'भगवन् ! मैं आप की क्या सहायता करूँ, उसे बतलाइये' ।८-९।

---

*एतदर्धेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—यतस्तद्वचनं श्रुत्वा सायोज्यमुभयोस्तदेति । +इतः परं मानसः सुत इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ग. पुस्तके । १ ख. ग. ङ. तस्मिंस्तुमुले । २ ङ. कूजन्तौ । ३ ख. ग. घ. °त्वा विप्रो व्याहृ° । ४ ङ. °थेष्टं ब्रह्मणः श्रुतम् । पु° । ५ ङ. °त्रं स्वायं चै० । ६ ङ. °स्याऽऽश्रमादस्थस्य ब्रह्मा मानसम° । ७ क. °ह्माणमजमव्य° ।

ब्रह्मोवाच

य एष कपिलो ब्रह्म[1] नारायणमयस्तथा । वदते[2] भवतस्तत्त्वं तत्कुरुष्व महामते ॥१०
ब्रह्मणस्तु तदर्थं तु तदा भूयः समुत्थितः । शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं करोमि कृताञ्जलिः ॥११

श्रीभगवानुवाच

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म[3] ह्यष्टादशविधं तु तत् । यत्सत्यं यदृतं तत्तु परं पदमनुस्मर ॥१२
एतद्वचो निशम्यैव ययौ स दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानतेजसा[4] ॥१३
ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः । संकल्पयित्वा मनसा तमेव च महामनाः ॥१४
ततः सोऽथाब्रवीद्वाक्यं किं करोमि पितामह । पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१५
ब्रह्माभ्यासं तु कृतवान्भुवश्च पृथिवीं गतः । प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥१६
तस्मिन्नपि गते पुत्रे तृतीयमसृजत्प्रभुः[5] । मोक्षप्रवृत्तिकुशलं भूर्भुवं नामतो विभुम् ॥१७
गोपतित्वं[6] समासाद्य तयोरेवागमद्गतिम् । एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येत उक्ताः शंभोर्महात्मनः ॥१८
तान्गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रयातः स्वार्जितां गतिम् । नारायणश्च भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः ॥१९

ब्रह्मा ने कहा—'महाबुद्धिमान् ! यह जो कपिल नामक महर्षि तथा नारायण ब्रह्म रूप भगवान् सम्मुख खड़े हैं, वे तुमसे जो तत्त्व की बातें बतायें, उनका पालन करो ।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर वह पुत्र हाथ जोड़कर पुनः भगवान् और कपिल के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला 'भगवन् ! मैं क्या करूँ ? ।१०-११।

भगवान् ने कहा—'ब्रह्मन् ! जो कुछ सत्य एवं शाश्वत कहा गया है वह अठारह प्रकार का है, जो सत्य है, अनश्वर है, वही परम पद है, तुम उसी का अनुसरण करो ।१२। ऐसी बातें सुनते ही वह पुत्र उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँच कर अपने ज्ञान के तेज से उसने ब्रह्मत्व की प्राप्ति की ।१३। तदनंतर महामना भगवान् ब्रह्मा ने मन से उसी प्रकार के 'भुव' नामक द्वितीय पुत्र को उत्पन्न किया और वह भी उनके सम्मुख आकर बोला—पितामह ! मैं क्या करूँ ?' पितामह की आज्ञा से उस द्वितीय पुत्र भुव ने भी पृथ्वी से जाकर उन सांख्य एवं योग के आचार्य कपिल तथा विष्णु से वेदाभ्यास किया और कालान्तर में चलकर परम पद प्राप्त किया ।१४-१६। उस दूसरे पुत्र के भी इस प्रकार चले जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने सांख्य आदि विषयों में प्रवीण 'भूर्भुव' नामक तीसरे पुत्र को उत्पन्न किया ।१७। ब्रह्मा के इस तृतीय पुत्र ने भी उन्हीं दोनों भाइयों की भाँति गोपतित्व (इन्द्रियजित्त्व) की प्राप्ति कर उत्तम गति प्राप्त करी । इस प्रकार ये तीन पुत्र महात्मा शम्भु (ब्रह्मा) के जिस प्रकार उत्पन्न हुए वैसा मैं तुम्हें कह चुका ।१८। तदनन्तर ब्रह्मा के उन पुत्रों को अपने साथ ले भगवान् नारायण तथा यतीश्वर कपिल जी अपने

---

[1] ग. घ. ङ. ब्रह्मा । [2] ग. वदेच्च भ° । ङ. वदत्येव म° । [3] क. ख. °हृन्नष्टा° । [4] ग. °मद्ध्यान° । [5] क. ख. °भुः । सांख्यप्र° । [6] ग. घ. ङ. °पतिधर्मभा° ।

यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तं कालमेव हि । ततो घोरतमं भूयः संश्रितः परमं व्रतम् ॥२०
न रेमेऽथ ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् । शरीरार्धात्ततो[1] भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम् ॥२१
तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च । सदृशीमात्मनो देवीं समर्थां लोकसर्जने ॥२२
तया समाहितस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपश्चरन् । * ततो जगाद त्रिपदां गायत्रीं वेदपूजिताम् ॥२३
[2]सृजन्प्रजानां[3] पतयः(?) सागरांश्चासृजद्विभुः[4] । अपरांश्चैव[5] चतुरो वेदान्गायत्रिसंभवान् ॥२४
आत्मनः सदृशान्पुत्रानसृजद्वै पितामहः । विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः ॥२५
विश्वेशं प्रथमं तावन्महातापसमात्मजम् । सर्वमन्त्रहितं[6] पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥२६
दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥२७
अथैवाद्भुतमित्येते ज्ञेयाः पैतामहर्षयः । त्रयोदशगुणं[7] धर्ममालभन्त महर्षयः ॥२८
अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिका मुनिः । ताम्रा क्रोधाऽथ सुरता विनता कद्रुरेव च ॥२९
दक्षस्यापत्यमेता वै कन्या द्वादश पार्थिव+। मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किल ॥३०

स्थान को चले गये।१९। जिस समय वे दोनों चले गये उसी समय ब्रह्मा जी पुनः अपने आसन पर बैठकर परम व्रत एवं तपस्या में लीन हुए।२०। किन्तु इस प्रकार अकेले तपस्या करते हुए वे कुछ भी आत्म-सन्तोष का लाभ नहीं कर सके। तदनन्तर उन्होंने शरीर द्वारा एक परम सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया, जो तपस्या, तेजस्विता, ओजस्विता एवं नियम में उन्हीं के समान एवं लोक सृष्टि में भी समर्थ थी।२१-२२। तपस्या में तत्पर रह कर ब्रह्मा ने उसी स्त्री के साथ विहार करते हुए काल यापन किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने वेदों द्वारा पूजित तीन चरणों वाली गायत्री की सृष्टि की।२३। फिर भगवान् ने प्रजापतियों का निर्माण किया और समुद्रों की भी सृष्टि की, तथा गायत्री से उत्पन्न हुए वेदों को भी प्रकट किया।२४। फिर पितामह ने अपने ही समान तेजस्वी पुत्रों की सृष्टि की, जो विश्व में विविध प्रजाओं के सृष्टिकर्त्ता हुए, समस्त प्रजाएँ उन्हीं से उत्पन्न हुईं। सर्वप्रथम उन्होंने अपने पुत्र महातपस्वी धर्म को उत्पन्न किया, जो सभी मंत्रों से अभिरक्षित, अति पवित्र तथा महान् तपस्वी थे।२५-२६। फिर दक्ष, मारीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अंगिरा और मनु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया।२७। इन अत्यन्त अद्भुत कर्मशाली, पितामह के महर्षि पुत्रों ने तेरह प्रकार की विशेषताओं से युक्त धर्म का प्रतिपादन एवं अनुसरण किया।२८। राजन्! अदित, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, ताम्रा, क्रोधा, सुरता, विनता, और कद्रु — ये बारह दक्ष की कन्याएँ थीं। मरीचि के कश्यप नामक पुत्र उनके तपोबल के माहात्म्य से उत्पन्न हुआ।२९-३०। सूर्यपुत्र! तदनन्तर दक्ष ने अपनी उन बारह

---

*एतदर्धं सृजन्प्रजानामित्येतदर्धात्परं विद्यते ग. घ. च. पुस्तकेषु। +इत उत्तरमेतदर्धं विद्यते ग. घ. ङ. पुस्तकेषु—नक्षत्राणि च चन्द्रस्य सप्तविंशतिमूर्जिताम्। इति। १ क. ख. घ. रात्तां ततो। २ ग. घ. जत्प्रजा°। ३ ङ. °नां सप्तशतीः सा°। ४ ङ. °श्चाऽऽत्मजानिव। अ°। ५ ग. ङ. अकरोच्चैव। ६ ग. घ. ङ. °मंत्र सहितं। ७ ग. घ. ङ. °गुणारम्भा ये वंशास्तु महर्षिणाम्। अ°।

तस्मै कन्या द्वादशान्या दक्षस्ताः प्रददौ तदा । नक्षत्राणि च सोमाय तदा वै दत्तवानृषिः ।।३१
रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि रविनन्दन । [1]लक्ष्मीर्मरुत्वती साध्या विश्वेशा च मता शुभा ।।३२
देवी सरस्वती चैव ब्राह्मणा निर्मिताः पुरा । एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव ।।३३
दत्ता भद्राय धर्माय ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा । या[2] तु रूपवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी ।।३४
सुरभिः सा[3] हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता । ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः ।।३५
लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तमः । ×जज्ञिरे च सुतास्तस्यां विपुला धूमसंनिभाः ।।३६
नक्तसंध्याभ्रसंकाशाः प्रादहंस्तिग्मतेजसः । ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गर्हयन्तः पितामहम् ।।३७
रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा इति ततः स्मृता । निर्ऋतिश्चैव शंभुर्वै तृतीयश्चापराजितः ।।३८
मृगव्याधः कपर्दी च [4]दहनोऽथेश्वरश्च वै । अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चापि पिङ्गलः ।।३९
सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः । तस्यामेव सुरभ्यां च गावो यज्ञेश्वराश्च वै[5] ।।४०
प्रकृष्टाश्च तथा[6] माया[7] सुरभ्याः पशवोऽक्षराः । अजाश्चैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम् ।।४१

कन्याओं को कश्यप को सौंप दिया और रोहिणी आदि पवित्र सभी नक्षत्र संज्ञक कन्याओं को चन्द्रमा को समर्पित किया ।३१½। लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या, शुभा विश्वेशा तथा सरस्वती इन पाँच कल्याणदायिनी देवियों की रचना ब्रह्मा ने पूर्वकाल में की थी। राजन् ! सभी कार्यों को देखनेवाले ब्रह्मा ने इन कन्याओं कों श्रेष्ठ देवता धर्म को समर्पित किया ।३२-३३½। जो ब्रह्मा की अर्धरूपवती इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाली जगत् का कल्याण करनेवाली परम हितैषिणी रूपवती स्त्री थी वह अपनी इच्छा के अनुरूप सुरभि (गौ) का रूप धारण कर ब्रह्मा के समीप आई ।३४½। लोकपूजित ब्रह्मा ने लोक सृष्टि के उद्देश से गौओं की उत्पत्ति के लिए उसके साथ समागम किया जिससे उसमें धूम के समान काले आकार वाले विशाल पुत्र उत्पन्न हुए, जो रात्रि होने के पूर्व सन्ध्या के बादलों के समान भीषण थे और अपने तेज से सब को भस्म से कर रहे थे ।३५-३६½। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले वे पुत्र रोते हुए दौड़ते हुए पितामह की निन्दा कर रहे थे । इसी रोने तथा दौड़ने के कारण वे सभी रुद्र नाम से पुकारे जाते हैं ।३७½ निर्ऋति, शम्भु, अपराजित मृगव्याध, कपर्दी, दहन[1] ईश्वर अहिर्बुध्न्य, कपाली, पिंगल, तथा महातेजस्वी सेनानी—ये ग्यारह रुद्र के नाम से विख्यात हैं ।३८-३९½। उसी सुरभि नामक देवी में यज्ञ की साधन भूत समस्त गौएँ, उत्तम (माया ?) गौएँ तथा पशु, जिनका कभी विनाश नहीं होता, बकरियाँ, हंस तथा उत्तम अमृत उत्पन्न हुए । जितनी उत्तम रसयुक्त औषधियाँ हैं, वे भी उसी में

× अत्रायं पाठो ग. घ ङ. पुस्तकेषु —जज्ञे चैकादशांस्तान्व विपुलान्धूमसंनिभान् । नक्तसंध्याभ्रसंकाशान्दहत-स्तिग्मतेजसा । इति । १ ग. घ. °क्ष्मीरूर्जवतीसध्या । २ क. ख. ङ. या रूपार्धव° । ३ ग. ङ. °भिः हि° । ४ क. ख. °नोऽथ खर° । ५ ग. घ. ङ. वै । अकृ° । ६ घ °था शाखाः सिकताः पृष्टयोऽक्ष° । ७ ग° माषाः सिकताः पृष्टयोऽक्ष° । १. एक पुस्तक में इस स्थान पर 'खर' पाठ आया है ।

ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरस्यास्ताः समुत्थिताः । धर्माल्लक्ष्मीस्तथा कामं साध्या साध्यान्व्यजायत ॥४२
भवं च प्रभवं चैव हीशं चाऽऽसुरहं तथा[1] । अरुणं चाऽऽरुणिं चैव विश्वावसुबलध्रुवौ ॥४३
हविष्यं च वितानं च विधानशमितावपि । वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम् ॥४४
सुपर्वाणं बृहत्कान्तिः साध्या [2]लोकनमस्कृताः । वासवानुगता देवी जनयामास वै सुरान् ॥४५
वरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् । विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोमसीश्वरम् ॥४६
[3]ततोऽनुरूपमयं च यमस्तस्मादनन्तरम् । सप्तमं च तथा वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम् ॥४७
धर्मस्यापत्यमेतद्वै [4]सुदेव्यां समजायत । विश्वे देवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः ॥४८
दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्वन एव च । चाक्षुषस्तु मनुश्चैव तथा मधुमहोरगौ ॥४९
[5]विश्रान्तकवपुर्बालो विष्कम्भश्च महायशाः । गरुडश्चातिसत्त्वाजौ भास्करप्रतिमद्युतिः ॥५०
[6]विश्वान्देवान्देवमाता विश्वेशाऽजनयत्सुतान् । मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत्सुतान् ॥५१
*अग्निं चक्षुं रविज्योतिः सावित्रं मित्रमेव च । अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महाभुजम् ॥५२

उत्पन्न हुईं । लक्ष्मी ने धर्म के संयोग से काम की तथा साध्या ने साध्य देवगणों को उत्पन्न किया ।४०-४२। भव[1] प्रभव, ईश, असुरहन्ता, अरुण, अरुणि, विश्वावसु, बल, ध्रुव, हविष्य, वितान, विधान, शमित, वत्सर, सभी असुरों विनाशक भूति एवं सुपर्वा नामक देवताओं को अति सुन्दरी वासव की अनुगामिनी साध्या देवी ने, जिसे लोक नमस्कार करता है, उत्पन्न किया ।४३-४५। सुदेवी में धर्म के संयोग से प्रथम वर[2] दूसरे कभी विनष्ट न होने वाले ध्रुव, तीसरे विश्वावसु चोथे भगवान् सोम तदन्तर अपने ही अनुरूप आप उसके उपरान्त यम, सातवें वायु तथा आठवें निर्ऋति[3] नामक वसु उत्पन्न हुंए ।४६-४७। ये सभी धर्म के सन्तान कहे जाते हैं । इसी प्रकार सुना जाता है कि धर्म के संयोग से विश्वा में विश्वदेवों (गणदेवता) की उत्पत्ति हुई ।४८। महाबाहु दत्त, पुष्करस्वन, चाक्षुष मनु, मधु, महोरग, विश्रान्तकवपु, बाल, महायशस्वी विष्कम्भ, अत्यत पराक्रमी, तेजस्वी एवं सूर्य के समान कान्तिवाले गरुड इन विश्वेदेव संज्ञक पुत्रों को देवताओं की माता विश्वा ने उत्पन्न किया ।४९-५०½। मरुत्वती ने मरुत्वान् नामक पुत्रों को उत्पन्न किया अग्नि, चक्षु, रवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुकर्ष, महाभुज, विराजवाच विश्वावसु, मति, अश्वमित्र, चित्ररश्मि, निषधन

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. ङ. पुस्तकयोः—अग्निश्चक्षु रविज्योतिः सावित्री मित्र एव च । इति ।
१ ग. घ. °था । वरुणं वारुणिं । २ क. °स्कृताः । तमेवा° । ३ ङ. °मार्यं च य° । ४ ङ. सुरभ्याः । ग. सुरभ्यां । ५ ग. घ. विश्वन्तकमनुर्वा° । ङ. विश्वरूपवसुर्वा° । ६ ग. घ. विश्वेदेवां' । ङ. विश्वश्वरी देव ।

[1] अग्नि पुराण में साध्यों की संख्या बारह दी गई है, और उनके नाम इस प्रकार हैं, मनः, मन्ता, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान, विनिर्भय, नय, हंस, नारायण, वृष और प्रमुञ्च । [2] पूना की मूल पुस्तक में 'वर' पाठ पाया जाता है । [3] अग्नि पुराण तथा ऋग्वेद संहिता में वसुओं का नाम इस प्रकार दिया गया है, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष तथा प्रभास ।

विराजं चैव वाचं च विश्वावसुर्मतिं तथा । अश्वमित्रं चित्ररश्मिं तथा निषधनं नृप ।।५३
हूयन्तं वाडवं चैव चारित्रं मन्दपन्नगम् । बृहन्तं वै बृहद्रूपं तथा वै पूतनानुगम् ।।५४
मरुत्वती पुरा जज्ञ एतान्वै मरुतां गणान् । अदितिः कश्यपाज्जज्ञ आदित्यान्द्वादशैव हि ।।५५
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः । पूषा मित्रश्च [1]धनदो धाता पर्जन्य एव च ।।५६
इत्येते द्वादशाऽऽदित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः । आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञाते द्वौ सुतौ वरौ ।।५७
तपः श्रेष्ठौ [2]गुणश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यापि संमतौ । दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत ।।५८
माला तु वै कालकेयानसुरान्सुरसा[3] तु वै । अनायुषायास्तनया व्याधयः सुमहाबलाः ।।५९
सिंहिका ग्रहमाता वै गन्धर्वजननी मुनिः । ताम्रा त्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतोद्भव ।।६०
क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव पार्थिव । जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशांपते ।।६१
चतुष्पदानि सत्त्वानि तथा गावस्तु सौरभाः[4] । सुपर्णान्पक्षिणश्चैव विनता च व्यजायत ।।६२
महीधरान्सर्वनागान्देवी कद्रूर्व्यजायत । एवं वृद्धिं समगमन्विश्वे लोकाः परंतप ।।६३
तदा वै [5]पौष्करो राजन्प्रादुर्भावो महात्मनः । प्रादुर्भावः पौष्करास्ते मया द्वैपायनेरितः ।।६४

हूयन्त, बाडव, चारित्र, मन्दपन्नग, बृहन्त, बृहद्रूप और पूतनानुग—इन मरुत संज्ञक देवताओं को पूर्वकाल में मरुत्वती ने उत्पन्न किया था ।५१-५४½। अदिति ने कश्यप के संयोग से बारह आदित्य संज्ञक देवताओं को उत्पन्न किया ।५५। इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा वरुण, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, धनद, धाता और पर्जन्य —इन आदित्य संज्ञक पुत्रों को जो स्वर्ग में निवास करनेवाले देवताओं में सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं, अदिति ने उत्पन्न किया था । आदित्य की सरस्वती नामक पत्नी में दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए जो समस्त स्वर्ग निवासी देवताओं के पूज्य तपःश्रेष्ठ और गुणश्रेष्ठ कहे जाते हैं। दनु ने दानवों को तथा दिति ने दैत्यों को उत्पन्न किया । ।५६-५८। काला ने कालकेय नामक असुरों तथा राक्षसों को उत्पन्न किया । अनायुषा के पुत्र महाबलवान् व्याधि संज्ञक पुत्र उत्पन्न हुए ।५९। सिंहिका ग्रहों की माता तथा मुनि गन्धर्वों की माता कही जाती है । हे राजन् ! इसी प्रकार ताम्रा पवित्रात्मा अप्सराओं की माता कही जाती है ।६०। राजन् ! क्रोधा के सभी भूत तथा पिशाच कहे जाने वाले पुत्र उत्पन्न हुए । नृपतिवर ! यक्षों तथा राक्षसों के समूहों को भी क्रोधा ने उत्पन्न किया था, ।६१। चार पैरों वाले जीव —विशेष कर गौएँ— सुरभी की सन्तति कही जाती हैं विनता ने गरुड़ तथा अन्य पक्षधारी जीवों को उत्पन्न किया ।६२। देवी कद्रू ने पृथ्वी को धारण करनेवाले सभी नागों को उत्पन्न किया । परमतपस्विन् ! इसी प्रकार से समस्त लोक की सृष्टि वृद्धि को प्राप्त हुई ।६३। राजन् ! उस समय महान् आत्मा विष्णु भगवान् की पुष्कर संम्बन्धी सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विस्तार उक्त प्रकार से हुआ, व्यास द्वारा कहे गये

---

१ ग. घ. ङ. परदो। २ क. ख. गुणिश्रे’। ३ क. ख. ग. घ. ‘रात्राक्षसांस्तु वै। ४ ख. °रसाः। सु°। ५ ग. °ष्करे राजन्प्रादुर्भावे म°। घ. ग. °ष्करं राजन्प्रादुर्भावं म°।

पुराणः पुरुषश्चैव मया विष्णुर्हरिः प्रभुः । कथितस्तेऽनुपूर्वेण संस्तुतः परमर्षिभिः ॥६५
यश्चेदमग्र्यं शृणुयात्पुराणं सदा नरः पर्वसु[1] गौरवेण ।
अवाप्य लोकान्स हि वीतरागः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥६६
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् । प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति ॥६७
राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम् । क्षीणायुर्लभते चाऽऽयुः पुत्रकामः सुतं तथा ॥६८
यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च । प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च ॥६९
यद्यत्कामयते किंचित्तत्तल्लोकेश्वराद्भवेत् । सर्वं विहाय य इमं पठेत्पौष्करकं हरेः ॥७०
प्रादुर्भावं नृपश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत् । एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥
कीर्तितस्ते महाभाग व्यासश्रुतिनिदर्शनात् ॥७१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥९१२६॥

पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि का वर्णन मैं कर चुका और उस सृष्टि से महर्षियों द्वारा स्तुति किये गये पुराण पुरुष विष्णु एवं हरि प्रभृति नामों से विख्यात प्रभु की महिमा भी बतला चुका। जो मनुष्य सर्वदा विशेष कर—पर्वकाल में—इस पुराण की श्रेष्ठ गाथा को गौरवपूर्वक सुनता है वह सभी प्रकार के रागद्वेष से मुक्त हो कर ऐहलौकिक सुखों का अनुभव कर पारलौकिक—स्वर्गीय—सुखों के फलों का उपभोग करता है।६४-६६। नेत्र, मन, वचन एवं कर्म द्वारा जो व्यक्ति कृष्ण को प्रसन्न करता है उसे कृष्ण भी प्रसन्न रखते हैं।६७। इसके प्रभाव से राजा राज्य की प्राप्ति करता है, निर्धन को उत्तम धन की प्राप्ति होती है, नष्ट आयु वाले को दीर्घायु की प्राप्ति होती है, पुत्र का अभिलाषी पुत्र प्राप्त करता है।६८। विष्णु की भक्ति करनेवाला प्राणी यज्ञ, वेद, मनोरथ, विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा उत्पन्न हुए फल, सम्पत्ति एवं अन्य विविध पुण्यों को प्राप्त करता है।६९। जिस-जिस मनोरथ की वह अभिलाषा करता है, वह लोकेश्वर भगवान से उसे प्राप्त होता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ! जो सभी कार्यों को छोड़कर भगवान् विष्णु की इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव की कथा को सुनता है, उसका कभी अमंगल नहीं होता। हे महाभाग्यशाली! महान् आत्मा भगवान् विष्णु के इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव एवं विस्तार की कथा का व्यास के वाक्यों एवं श्रुतियों के आधार पर मैं कीर्तन कर चुका।७०-७१।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

---

[1] ङ. °सु चेत्पठेत वा। अ°।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वं च कृते युगे । वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥१
ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणां गहना गतिः । संप्रत्यतीतान्भव्यांश्च शृणु राजन्यथातथम् ॥२
अव्यक्तो व्यक्तिलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः । नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः । ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रो बृहस्पतिः ॥४
अदितेरपि [1]पुत्रत्वमेव याति युगे युगे । एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः ॥५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् । वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः । सोऽसृजत्पुर्वपुरुषः पुराकल्पे [2]प्रजापतीन् ॥७
असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् । तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम् ॥८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् । कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥९

अध्याय १७२

मत्स्य ने कहा— राजन् ! अब सतयुग में भगवान् विष्णु के विष्णुत्व तथा हरित्व का देवताओं में उनके वैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में उनके कृष्णत्व का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो । उस ईश्वर के कर्मों की गति अत्यन्त गहन है। उसके बीते हुए तथा भविष्य में होने वाले अवतारों की कथा यथार्थतया सुनो ।१-२। जो यह अव्यक्तात्मा भगवान् हैं वे चिह्न वाले भी कहे जाते हैं, उन्हें नारायण, अनन्त आत्मा, सभी के उत्पत्तिकर्ता एवं अव्यय नाम से भी कहते हैं ।३। वे सर्वदा एक रूप में रहनेवाले भगवान् नारायण (जलशायी) होकर भी ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र तथा बृहस्पति रूप में प्रकट होते हैं ।४। प्रत्येक युगों में वे अदिति के पुत्र होते हैं ।५। अतएव भगवान् विष्णु (उपेन्द्र) नाम से इन्द्र के छोटे भाई के रूप में भी वे विख्यात होते हैं ।५। इन भगवान् का अदिति के घर में पुत्र रूप में जन्म देवताओं के शत्रु दैत्य, दानव एवं राक्षसों के संहार के लिए होता है ।६। महान् आत्मा भगवान् ने प्राचीन काल में सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति की और उस सर्व प्रथम पुरुष ने प्राचीन कल्प में प्रजापतियों की उत्पत्ति की ।७। और पुनः ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न होनेवाले उत्तम चरित्रवाले मनुष्यों को उत्पन्न किया । उन महात्माओं के संयोग से शाश्वत ब्रह्म, जो अबतक एक रूप में वर्तमान था, अनेक रूपों में विभक्त हुआ । यह आश्चर्यमय कीर्तन करने योग्य भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन, जिसे मैं कर रहा हूँ सुनो ।८-९। सतयुग में विख्यात वृत्रासुर के निधन हो जाने

---

[1] क. ख. °त्रत्वं समेत्य रविनन्दन । ए° । [2] ग. घ. °पतिः । अ° ।

वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे । आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः सङ्ग्रामस्तारकामयः ॥१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे सङ्ग्रामदुर्जयाः । घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥११
ते वध्यमाना विमुखाःक्षीणप्रहरणा रणे । त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुम् ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः । सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम्[1] ॥१३
*चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्ह्रादकारिणः । अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः ॥१४
दीप्ततोयाशनिघनैर्वज्रवेगानलानिलैः । रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि । दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१६
चतुर्युगान्तपर्याये[2] लोकानां यद्रूयं भवेत् । अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१७
जातं च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन । तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश ॥१८
विवेश रूपिणां काली कालमेघावगुण्ठिता । द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसाऽऽवृता ॥१९
तान्घनौघान्सतिमिरान्दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः । वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥२०

पर त्रैलोक्य विख्यात तारकामय युद्ध हुआ था । जिसमें संग्राम में कठिनता से जीते जानेवाले भयानक दानवों ने सभी देवताओं के समूहों,यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों का घोर संहार किया था । युद्ध भूमि में निर्बल दैत्यों द्वारा मारे जाते हुए देवगण युद्ध से विमुख होकर मन से अपने रक्षक भगवान् नारायण की शरण में गये ।१०-१२। इसी अवसर पर मेघों ने धूम रहित अंगारे के समान जलती हुई कान्ति से सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहों के समूहों के साथ समस्त आकाश-मण्डल को आवृत कर लिया, उस समय उनमें प्रचण्ड विजलियाँ उद्दीप्त हो रही थीं, वे भयानक शब्द कर रहे थे । एक दूसरे के वेग से अभिहत होकर सातों वायु भी बहने लगी थीं ।१३-१४। उद्दीप्त विजली एवं जल को बरसानेवाले मेघों के समूहों से, वज्र के समान वेगशाली अनल एवं अनिल से तथा अति भयानक उत्पातों से सारा आकाशमण्डल जल सा रहा था । उस समय आकाशमण्डल में सहस्रों उल्काएँ पृथ्वी पर गिर रही थीं । दिव्य देवताओं के विमान इधर से उधर गिरते-पड़ते हुए उड़ रहे थे । चारों युगों के बीत जाने पर सभी लोकों का जिस प्रकार भयकारी विनाश होता है उसी प्रकार उस उत्पात के समय सभी वस्तुएँ रूप रहित हो गई थीं अर्थात् अंधकार में लीन हो गयीं ।१५-१६। सभी पदार्थ शोभा हीन हो गये, कहीं पर किसी वस्तु के अस्तित्व का कोई पता ही नहीं लगता था । अंधकारराशि में छिपी हुई दसों दिशाएँ भी उस समय नहीं प्रकाशित हो रही थीं ।१८। उस समय प्रलयकालीन मेघों से घिरी हुई काली रूप धारणी देवी आकश में प्रविष्ट हुईं एवं घोर अंधकार से आवृत आकाशमण्डल; जिसमें सूर्य छिप गए थे, नहीं शोभित हो रहा था। उस अवसर पर भगवान ने अपने दोनों हाथों से

---

* इत आरम्भ दह्यमानमिवाम्बरमित्यन्तग्रन्थो न. ग. पुस्तके ।

[1] क. ख. घ. °म् । वेणुवि° ।   [2] ग. 'गानुष° ।

बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् । तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥२१
दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् । धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥२२
चतुर्द्विगुणपीनांसं किरीटच्छन्नमूर्धजम् । बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ॥२३
चन्द्रार्ककिरणोद्द्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् । नन्दतकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ॥२४
[1]शक्तिचित्रबलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम् । विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं [2]शार्ङ्गशृङ्गिणम् ॥२५
[*त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् । सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्त्वमनोहरम् ॥२६
नानाविमानविटपं तोयदाम्बुमधुस्रवम् । विद्याहंकारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम् ॥२७
विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् । दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोकप्रकाशितम् ॥२८
+सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम् । मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ॥२९
शीलार्थचारुगन्धाढ्यं [3]सर्वलोकमहाद्रुमम् । अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहंकारफेनिलम् ॥३०

उस अत्यन्त निविड अन्धकार के साथ उन मेघ समूहों को खींचकर अयने दिव्य श्यामल शरीर को दिखलाया ।१९-२०। मेघ एवं कज्जल के समान श्यामल वर्ण, मेघ के समान केश वाले, तेज एवं शरीर-दोंनों काले पर्वत के समान दिखाई पड़ने वाले जाज्वल्यमान पीताम्बर धारण किये हुए, तपाये हुए सुवर्ण के आभूपण से विभूषित धूम एवं अन्धकार के समान काले शरीरवाले, उठी हुई प्रलयकालीन अग्नि के समान देदीप्यमान, चतुर्भुज, द्विगुणित पुष्ट कंधे वाले, किरीट से बालों को छिपाये हुए, स्वर्ण के समान शोभायमान, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित भगवान् को लोगों ने देखा ।२१-२३। चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों के समान सुप्रकासित पर्वत के शिखर की भाँति ऊँचा दिखाई पड़नेवाले, नन्दक नामक अपने खड्ग से सुशोभित हाथवाले, सर्पों के मुख के समान तीक्ष्ण बाणों को धारण किये हुए विचित्र एवं उद्दण्ड शक्ति, शंख चक्र एवं गदा युक्त अद्भुत एवं विशाल पर्वत के समान विष्णु भगवान् को लोगों ने देखा । क्षमा मूल थी, श्रीवृक्ष थी, शार्ङ्ग धनुष शिखर था, वह स्वर्ग निवासी देवताओं को सुन्दर फल देनेवाला था, स्वर्ग की सुन्दरियाँ पल्लव रूप थीं, वह पर्वत सभी लोकों के मन को रमणीय लगनेवाला तथा सभी जीवों को मनोहर दिखाई पड़नेवाला था ।२४-२६। विविध देवताओं के विमान उस पर वृक्ष रूप थे, बादलों से गिरनेवाला जल मीठे झरनों का जल था, विद्या एवं अहंकार सारभूत सामग्री थी, महाभूत उस पर उगनेवाले वनस्पति थे, वे विशेष पत्रों से शोभायमान थे, ग्रह एवं नक्षत्रगण पुष्प रूप में थे । दैत्यों के लोक उसके कन्धे थे, इस प्रकार वह विष्णुरूप शैल मर्त्य लोक में सुप्रकाशित हो रहा था ।२७-२८। रसातल के महान् आश्रय पर टिका हुआ वह विष्णुरूप महासमुद्र घोर शब्द कर रहा था, बड़े-बड़े मृगेन्द्र को फँसानेवाले पाश उसमें फैल रहे थे, पक्षधारी जन्तुगण उसमें आवास ले रहे थे । शील एवं अर्थ उसमें पवित्र सुगन्धि की समृद्धि बिखेर रहे थे, सभी लोक बड़े विशाल वृक्ष के समान थे । परमेश की जो अव्यक्त एवं अनन्त सत्ता थी वही उसमें जल रूप थी, व्यक्त जो अहंकार था

---

* धनुश्चिदान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति । +इत आरम्भ महाद्रुममित्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति ।
[1] क. ख. °त्रफलोदग्रश° । [2] क. ख. °ङ्गधन्विनम् । त्रि° । [3] च. °हाद्भुतम् । अ° ।

महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् । [१]विमानविहगव्याप्तं [२]तोयदाडम्बराकुलम् ॥३१
जन्तुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् । त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥३२
वीरवृक्षलतागुल्मं [३]भुजगोत्कृष्टशैवलम् । द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ॥३३
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् [४]संध्यासंख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम् ॥३४
दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझषाकुलम् । पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ॥३५
श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् । कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम्[५] ॥३६
तं तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम् । देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम् ॥३७
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम्] । हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ॥३८
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते । अनन्तरश्मिभिर्युक्ते[६] विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ॥३९

वही उसका फेन था ।२९-३०। महाभूत गण ही उसमें तरंगों के समूह थे, ग्रह एवं नक्षत्र उसमें बुदबुदों के समान शोभायमान हो रहे थे, देवताओं के विमान ही पक्षी रूप में व्याप्त हो रहे थे, बादल ही उस समुप्र के आटोप एवं उत्कर्ष से विदित हो रहे थे ।३१। उस महा समुद्र में जन्तुओं एवं मत्स्यों के समूह व्याप्त थे, पर्वत उसमें शंखों के समूह थे । सत्त्व, रजस् एवं तमस्—इन तीनों गुणों के विषय ही उसमें तरंग रूप थे, सभी लोक बड़े-बड़े मत्स्य रूप में दिख रहे थे ।३२। वीरगण वृक्ष एवं लताओं के गुल्म रूप में थे, बड़े-बड़े भुजंग ही सेवार थे द्वादश आदित्य ही उस समुद्र के महाद्वीप थे, एकादश रुद्र उसके नगर थे ।३३। आठ वसु रूपी पर्वतों से वह संयुक्त था, उस महासमुद्र में त्रैलोक्य में व्याप्त सलिल राशि थी । संध्याओं की संख्या ही उसमें लहरियाँ थीं, सुपर्णरूप वायु से वह सेवित हो रहा था ।३४। दैत्यों एवं राक्षसों के समूह उसमें ग्राह रूप थे, यक्ष एवं सर्प बड़े बड़े मत्स्य रूप में थे, महा बलवान् पितामह एक मात्र उसमें प्रभावशाली जीव थे। वह समुद्र सभी स्त्री रूप रत्नों से शोभायमान था ।३५। श्री, कीर्ति, कान्ति तथा लक्ष्मी रूप नदियों से सुशोभित था । काल, योग एवं महापर्वों के विनाश एवं जत्पत्ति का कर्त्ता था ।३६। इस प्रकार योग के महान् तट वाले उस महासमुद्र रूप विष्णु को, जो देवताओं के भी देवता, वरदायक अपने भक्तों के ऊपर दयाभाव रखनेवाले, अनुग्रह करनेवाले, शान्ति प्रदान करनेवाले एवं मंगलदायी हैं, देवताओं ने देखा । उस समय वे भगवान् हरे घोड़े वाले इन्द्र के रथ पर विराजमान थे, उस रथ की पताका पर गरुड़ विराजमान थे ।३७-३८। ग्रहगण, चन्द्रमा एवं सूर्य भी उसमें यथास्थान शोभायमान हो रहे थे, मन्दराचल उस अथ में श्रेष्ठ धुरी के स्थान पर था । इस प्रकार उस रथ में असंख्य प्रकाश-किरणें प्रकाशित हो रही थीं, जिससे प्रकाशमान होकर वह विशाल रथ सुमेरु पर्वत की भाँति गम्भीर दिखाई पड़ रहा था ।३९। विचित्र ढंग की

---

[१] क. ख. घ. °नगरुतव्या° । [२] ग. °दानुचरा° । [३] ग. घ. °गोत्सृष्ट° । [४] ग. घ. °संध्योर्मि° । [५] ग. °म् । जन्तुयो° । घ. च. °म् । तत्तु यो° । [६] ग. °क्ते ददृशे मेरुकूबरे ।

तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे । भयेष्वभयदं[1] व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥४०
ददृशुस्ते स्थितं[2] देवं दिव्ये लोकमये रथे । ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥४१
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः । स तेषां तां गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम् ॥४२
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे । आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥४३
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः । शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ॥४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् । ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥४५
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम् । ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः ॥४६
प्रववुश्च शिवा वाताः [3]प्रशान्ताश्च दिशो दश । शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणाम् ॥४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः । विरजस्का × भवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः ॥४८
यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः । आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चै*रधीयत । यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०

ताराएँ उसमें पुष्पों के स्थान पर थीं। ग्रह एवं नक्षत्र भी उसमें यथास्थान जुड़े हुए थे, इस अनुपम दिव्य रथ में समासीन, भयानक परिस्थिति में अभयदान देनेवाले भगवान् को आकाश मार्ग में दैत्यों द्वारा पराजित देवताओं ने देखा और इन्द्र को आगे कर हाथ जोड़कर जय जय कार करते हुए उन शरणागत वत्सल भगवान् की शरण में प्रस्थान किया ।४०-४१। देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने देवताओं की उस करुणापूर्ण वाणी को सुनकर महायुद्ध में दानवों का विनाश करने का विचार किया और आकाश में अवस्थित हो उत्तम शरीर को धारण कर प्रतिज्ञा पूर्ण यह वचन कहा ।४२-४३$\frac{१}{२}$। 'मरुत्गण (देवताओ) ! शान्ति धारण कीजिये, डरिये मत। मैं सभी दानवों को जीत चुका हूँ, आप लोग पुनः अपने तीनों लोकों को वापिस लीजिये।' दृढ़प्रतिज्ञ भगवान् की अमृत के समान आनन्द-दायिनी ऐसी बात को सुनकर वे देवगण अति सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हुए । तदन्तर वह निविड अन्धकार नष्ट हो गया और वे बादल भी छिन्न-भिन्न हो गये ।४४-४६। शान्तिपूर्ण सुखदायिनी वायु बहने लगी, दसो दिशाएँ भी अति शान्त हो गईं, नक्षत्रों एवं चन्द्रमा की ज्योति शुभ्र हो गई और वे सभी प्रदक्षिणा करने लगे ।४७। ग्रहगण किसी प्रकार का उपद्रव नहीं कर सके और समुद्र भी प्रशान्त हो गये, सभी मार्ग धूल से रहित हो गये तथा स्वर्ग आदि तीनों वर्गों में भी शान्ति स्थापित हो गई ।४८। नदियाँ जैसे पहले शान्ति काल में बहा करती थीं वैसी हो गईं तथा समुद्रों का विक्षोभ भी बन्द हो गया। मनुष्यों की इन्द्रियाँ मांगलिक विचारों एवं कामों में लगने लगीं और अन्तरात्मा शुद्ध हो गई। महर्षिगण शोक-दुःख आदि से विरत रह कर उच्च स्वर से वेदों का पाठ करने लगे, यज्ञों में सुन्दर सुस्वादु पके हुए हविष्यान्न को अग्नि प्राप्त

× अत्र संधिरार्षः। * अडभाव आर्षः। [1] ङ. °दं देवं देवदैत्यापराजितम् । द° । [2] ङ. °तं दिव्यं दिव्वलो° । [3] ङ. प्रसन्नाश्च ।

प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः । विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वाऽरिनिधने गिरम् ॥५१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६१७७॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा [1]दैत्याश्च दानवाः । उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ॥१
मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम् । चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुगम् ॥२
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् । रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ॥३
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् । दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरविनादितम् ॥४
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् । गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ॥५

करने लगे । इस प्रकार भगवान् विष्णु के शत्रुओं के विनाशार्थ प्रतिज्ञा पूर्ण वचन को सुन कर सभी लोग आनन्दित मन से अपने धर्मों में तल्लीन हो गये ॥४९-५१॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

मत्स्य ने कहा— इस प्रकार उस समय भगवान् विष्णु के अभय वचन को सुनकर दैत्यों तथा दानवों ने उस युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए विपुल उद्योग किया ।१। मय दानव ने अपने सुवर्ण निर्मित बारह सौ हाथ लम्बे अक्षय रथ पर, जो अति विशाल सुन्दर विस्तृत जुआ से संयुक्त, चार चक्कों वाला, किंकिणी के जालों से शब्दायमान, गैंड़े के चर्म से मढ़ा हुआ, रुचिर रत्नों के जालों एवं सुवर्ण से परिष्कृत, जटित मृगों के समूहों से आकीर्ण, पक्षियों की पंक्तियों से विराजमान, दिव्य अस्त्र एवं तरकसों से सजाया हुआ, मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करनेवाला, सुन्दर धुरी से युक्त, मनोहर तल से संयुक्त, गगन के समान, गगनचुम्बी पताका से विभूषित, गदा तथा परिघ से भरा हुआ, मूर्तिमान् समुद्र की भाँति दिखाई पड़ने वाला, सुवर्ण के बने हुए केयूर तथा वलय से आभूषित, सुवर्ण से मढ़े हुए कूबर (पहिये काष्ठ को संयुक्त करनेवाला काष्ठ) वाले, सुन्दर पताका एवं ध्वजा से युक्त, आदित्य (सूर्य) समेत मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ने वाला

---

[1] ग. घ. ङ. दैतेयदा° ।

हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् । सपाताकध्वजोपेतं सादित्यमिवमन्दरम्[1] ॥६
गजेन्द्राभोगवपुषं[2] क्वचित्केसरिवर्चसम् । युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम्[3] ॥७
दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् । [4]अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्त इवांशुमान् ॥८
तारमुत्क्रोशविस्तारं सर्वं हेममयं रथम् । शैलाकारमसंबाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥९
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम् । तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥१०
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् । आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥११
प्रासैः पाशैश्च [5]विततैरसंयुक्तैश्च कण्टकैः । शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ॥१२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् । युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ॥१३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः । प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥१४
युक्तं[6] रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः । स्यन्दनं वाहयामास[7] सपत्नानीकमर्दनः ॥१५

गजराज के चर्म से आवेष्टित, कहीं कहीं सिंह के रूप से युक्त, एक सहस्र रीछों से जुते हुए, घने बादल के समान भीषण गर्जना करनेवाला था, अधिरोहण किया ।२-७। वह दिव्य सुन्दर रथ आकाश मार्ग में चल रहा था और शत्रुओं के रथों को पराजित करनेवाला था । सुमेरु के समान उस सुन्दर रथ पर सूर्य की भाँति मय युद्ध की आकांक्षा से अधिरूढ़ हुआ ।८। तारकासुर एक ऐसे रथ पर सवार हुआ जो शब्द कर रहा था, जिसके सभी अंग सुवर्णमय थे, आकार में पर्वत के समान दिखाई पड़ रहा था, अति घने काले कज्जल के समूह के समान शोभा पा रहा था, काले लौह की बने हुए दिव्य पहियों तथा जुआ से सुसज्जित किया गया था, कहीं कहीं पर अंधकार को दूर करती हुई किरणें बाहर प्रकाशित हो रही थीं । वह रथ चलते हुए ऐसा शब्द कर रहा था मानों बादल गरज रहा हो । लोहे के बने हुए बड़े बड़े गवाक्षों एवं खिड़कियों से वह भली भाँति सुशोभित था, लोहे के बने हुए परिघ, क्षेपणी (भिन्दिपाल) तथा मुद्गरों से भी भरा हुआ था, भाले, फाँसी तथा असंयुक्त कंटकों से आकीर्ण था, भयदायी तोमर एवं परशु भी उसमें सुशोभित हो रहे थे । शत्रुओं की सेना की ओर झुका हुआ वह रथ दूसरे मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ रहा था, उसमें एक हजार गधे जुते हुए थे । तारकासुर दानव उस भीषण रथ पर अधिरूढ़ हुआ ।९-१३। तदनन्तर अति क्रुद्ध होकर विरोचन नामक दानव हाथ में गदा लेकर उस सेना के मुख भाग में देदीप्यमान शिखरवाले पर्वत के समान अवस्थित हुआ ।१४। शत्रु की सेना को विध्वंस करने वाला हयग्रीव नामक दानव अन्य सहस्र रथों के साथ अपने विशाल रथ पर आरूढ हुआ ।१५। एक सहस्र किष्कु (एक किष्कु का परिमाण बारह अंगुल का है) के परिमाण में विस्तृत विशाल धनुष को ग्रहण कर टंकोर करते हुये वराह नामक दानव ने वृक्षों समेत पर्वत की भाँति युद्ध

---

१ ग. घ. ङ. मन्दिरम् । २ ग. घ. ङ. °पुषा क्वचित्केसरि वर्चसा । यु° । ३ ङ. °दिना । दी ।
४ ङ. °ष्ठजयाका° । ५ क. ख. °तैर्नरसंयुक्तक° । ६ ग. ङ. °क्तं हयस° । ७ ङ. °स परानी° ।

व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् । [1]वराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ॥१६
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् । स्फुरद्दन्तोष्ठनयनः सङ्ग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ॥१७
त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः । व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान् ॥१८
[2]विप्रचित्तिसुतः[3] श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः[4] । श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धयाभिमुखे स्थितः ॥१९
*अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधः । युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ॥२०
किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर[5] इति[6] चोदितः । सबला दानवाश्चैव [7]संनह्यन्ते यथाक्रमम् ॥२१
अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः । लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् । स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनोष्ठेक्षणायुधः ॥२३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः । अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ॥२४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे । [8]केचित्खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः* ॥२५

भूमि में प्रवेश किया ।१६। खर नामक दानव अति दर्प के कारण अपने नेत्रों से क्रोध द्वारा उत्पन्न जल को गिराता हुआ, दातों एवं ओठों को कटकटाता हुआ संग्राम के लिए उपस्थित हुआ ।१७। अतिशय पराक्रमशाली त्वष्टा नामक दानव आठ हाथियों से युक्त रथ पर सवार होकर दानवों की सेना को एक व्यूह में खड़ा करने के लिए इधर उधर भ्रमण करने लगा ।१८। विप्रचित्ति दानव का पुत्र श्वेत नामक दानव श्वेतवर्ण के कुण्डल को धारण कर, श्वेत पर्वत के समान विशाल आकार युक्त हो युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ ।१९। बलवान् बलि का पुत्र अरिष्ट नामक दानव, जो पर्वत को कँपा देनेवाला था, पर्वत की शिलाओं को हथियार बना कर युद्धार्थ प्रस्तुत हुआ ।२०। अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर किशोर नामक दैत्य भी युद्ध में आया । इस प्रकार क्रमानुसार दैत्यगण कवच पहनकर युद्ध में उपस्थित हुए ।२१। नवीन मेघ के समान श्यामल वर्ण का लम्ब नामक दानव, लम्बे वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर उस दैत्य की सेना में सूर्य की भाँति उदित हुआ ।२२। मुख, दांत एवं आंख से भी युद्ध करनेवाला स्वर्भानु नामक दैत्य दैत्यों की सेना में इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था जैसे कुहरे में सूर्य ।२३। शत्रुओं के लिए अति भयानक हंस नामक दानव दैत्यों में सबसे आगे उपस्थित हुआ, कुछ लोग घोड़ों पर सवार थे, अन्य कुछ लोग हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए थे, अन्य कुछ लोग सिंह तथा बाघों पर सवार थे, कुछ अन्य वाराह और रीछों पर भी बैठे थे ।२४½। कुछ गधों और ऊंटों पर चढ़ कर चल रहे थे, कुछ कुत्तों पर भी बैठे हुए थे । कुछ अन्य भयानक मुखवाले पैदल चल रहे थे, कुछ एक पाद तथा कुछ आधे पाद

---

* एतदर्धं नास्ति ङ. च. पुस्तकयोः । १ क. ख. वाराहः । २ ख. ग. °त्तिवपुश्चैव श्वे° । ३ क. °सुतश्चैव श्वे° । ४ क. ख. घ. °णः । श्वेतः श्वेतप्र° । ५ क. ख. घ. °स्त्वभिसं° । ६ ग. ङ. इव । ७ ग. संगृह्यन्ति । ८ ङ. °ष्ट्रगन्तारः केचित्तोयद° । * इत उत्तरमेतदर्धं ङ. पुस्तके—केचिच्छरभसंस्थाश्च द्वीपश्चापदवाहना इति ।

पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः । एकपादार्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥२६
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथा परे । हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुंगवाः ॥२७
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः । बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥२८
पाशैः प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः । चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥२९
गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः । चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् । देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥३१
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्त मिवाऽऽवभासे ॥३२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६२०६॥

वाले राक्षस युद्ध की अभिलाषा से नाच रहे थे ।२५-२६। बहुतेरे उसी में शब्द कर रहे थे कुछ कूद रहे थे कुछ खुश होकर सिंहों की भाँति दहाड़ रहे थे अन्य कुछ बलवान दानव गण शोर मचा रहे थे ।२७। इस प्रकार युद्ध भूमि में उपस्थित वे दानवगण शिला, मूसल, गदा तथा भयानक परिघ आदि हथियारों को लेकर परिघ के समान भीषण अपने हाथों से देवताओं को धमकी देने लगे और फांसी, भाले, परिघ, तोमर, अंकुश, पट्टिश, तोप, शतधार तथा मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों से युद्धक्रीडा करने लगे ।२८-२९। बड़ी बड़ी शिलाओं, पर्वत के शिखरों, उत्तम लोहे के बने हुए परिघों तथा चक्रों से वे बड़े बड़े दैत्यगण आनन्दित होकर सेना में घूमने लगे। इस प्रकार युद्ध में अति बलवान् एवं मदोन्मत्त उन दानवों की सारी सेना उद्धत बादलों की सेना के समान देवताओं के सम्मुख उपस्थित हुई ।३०-३१। अद्भुत पराक्रमशाली सहस्रों दैत्यों से आकीर्ण वायु, अग्नि, पर्वत एवं बादल के समान भीषण वह दानवों की सेना उस रणभूमि में युद्ध करने की प्रबल इच्छा से पागलों की भाँति दिखाई पड़ने लगी ।३२।

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारो रविनन्दन । सुराणामपि सैन्यस्य विस्तारं वैष्णवं शृणु ॥१
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ । सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथाक्रमम् ॥२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् । ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विषम् ॥३
+मध्ये चास्य रथः[1] [2]सर्वपक्षिप्रवररंहसः । सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः । दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥५
[3]वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्युदिन्द्रायुधोदितैः[4] । युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥६
[5]यमारुढः स भगवान्पर्येति सकलं जगत् । हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ॥७

अध्याय १७४

मत्स्य भगवान् ने कहा— रविनन्दन ! तुम दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन तो सुन चुके हो, अब देवताओं की— विशेषकर विष्णु भगवान् की— सेना का विस्तार भी सुनो ।१। आदित्यगण, वसुगण रुद्रगण, महाबलवान् दोनों अश्विनीकुमार— इन सबों ने अपनी-अपनी सेना एवं अपने-अपने अनुचरों को साथ लेकर क्रमानुसार कवच धारण किया ।२। सबसे आगे लोकों की पालना करनेवाले, सहस्रनेत्र पुरुहूत इन्द्र, जो समस्त देवताओं के सेनापति हैं, सुरगज ऐरावत[1] पर आरूढ़ हुए ।३। उसके मध्य भाग में सभी श्रेष्ठ पक्षियों के समान वेगवाला उनका रथ था, जो सुन्दर बने हुए चक्कों से सुशोभित तथा सुवर्ण और मणि आदि से विभूषित था । सहस्रों की संख्या में देवता, गन्धर्व एवं यक्षगण उनके पीछे चल रहे थे । अति शोभाशाली, ब्रह्मर्षिगण, जो सदस्यरूप में वहाँ उपस्थित थे स्तुति कर रहे थे । उस रथ के चारों ओर वज्र के घोर शब्दों से निनादित, विद्युत प्रकाश एवं इन्द्रधनुष से संयुक्त पर्वतों के समान भयंकर एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले बादलों के समूह घिरे हुए थे ।४-६। उस रथ पर आरूढ़ होकर भगवान इन्द्र ने समस्त लोक को व्याप्त

---

[1] यहाँ पर कई पुस्तकों में 'सुरद्विषम्' पाठ है । जो वस्तुतः समुचित प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर इन्द्र का रथ में आरोहण करना लिखा गया है, एक ही स्थल दो वाहनों पर चढ़ना ठीक नहीं प्रतीत होता, जिसका अर्थ 'असुरों पर आरूढ़ (आक्रमण शील) हुए', होता है ।

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—सर्वे चास्य रथौवाश्च पक्षप्रवरसंघश इति ।

[1] ग. °थः पार्श्वे प° । [2] घ. सर्वे प° । [3] ग. °तैर्दिव्यादित्यायुतप्रभैः । यु° । [4] ङ. युधप्रभैः । यु° । [5] ङ. °मारुह्य स ।

स्वग शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसां गणाः ॥८
केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः । युक्तो हयसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥९
स स्यन्दनवरो भाति गुप्तो मातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥१०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य [1]कालयुक्तश्च मुद्‌गरम् । तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥११
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः । शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२
कालपाशान्समाविध्यन्हयैः शशिकरोपमैः । वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वंल्लीलाः सहस्रशः ॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः । [2]मणिश्यामोत्तमवपुहरिभारर्पितो[3] वरः ॥१४
वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् । युद्धवेलामभिलषन्भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५
यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि । युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥१६
राजराजेश्वरः श्रीमान्गदापाणिरदृश्यत । विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ॥१७
स राजराजः शुशुभे [4]युद्धार्थी नरवाहनः । उक्षाणमास्थितः संख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥१८

सा कर लिया । उस समय यज्ञों में उपस्थित होनेवाले ऋषिगण स्तुति पाठ करने लगे । स्वर्ग लोक में इन्द्र के युद्धार्थ सुसज्जित होने पर देवतागण तुरही बजाने लगे, सुन्दरी अप्सराएँ सैकड़ों की संख्या में नृत्य करने लगीं ।७-८। नागराज द्वारा विराजमान रवि की भाँति, अति विशाल ध्वजा द्वारा शोभित मन एवं पवन के समान वेगशाली सहस्रों घोड़ों पर चढ़े हुए के इन्द्र भगवान् शोभित हो रहे थे । उस समय मातलि द्वारा हाँका जाता हुआ वह श्रेष्ठ रथ सूर्य की आभा से परिव्याप्त सुमेरु पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था ।९-१०। काल (मृत्यु) समेत यमराज अपने दण्ड एवं मुद्‌गर को उठाकर देवताओं की सेना में अपने भीषण नाद से दैत्यों को भयभीत करते हुए विराजमान हुए ।११। चार समुद्रों तथा भीषण जिह्वा को लपलपाते हुए सर्पों से युक्त वरुणदेव शंख तथा मुक्ताजटित विजायठ से सुशोभित जलमय शरीर धारण किये हुए चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेतवर्ण के घोड़ों पर, जो वायु के समान वेगशाली एवं जल के समान थे, सवार होकर काल पाश धारण कर सहस्रों लीलाएँ करते हुये, पीले वर्ण के वस्त्र को धारण कर, मनोहर प्रवाल जटित अंगद से विभूषित हो, पाश धारण कर देवताओं की सेना के मध्यभाग में अवस्थित हुये । उस समय उनके वस्त्र हिल रहे थे । इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने के समय की प्रतीक्षा करते हुए वरुण उस समय उद्वेलित समुद्र की भाँति शोभित हो रहे थे ।१२-१५। इसी प्रकार यक्षों एवं राक्षसों की सेना तथा गुह्यकों के समूहों से युक्त होकर पद्म एवं शंख लिये हुए धनाधिपति राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर पुष्पक विमान में अवस्थित हो हाथ में गदा लिये हुए दिखाई पड़े ।१६-१७। विमान पर चढ़कर युद्ध करने के लिये आये हुए राजराजेश्वर नरवाहन कुबेर युद्ध में उस समय इस प्रकार शोभित हुए जैसे नन्दिकेश्वर पर बैठे हुए साक्षात् शिवजी स्वयमेव आये हुए हों ।१८। उस युद्धभूमि

---

[1] ग. ङ. °युक्तं च म° ।
[2] ग. घ. °पुर्हरिभा° ।
[3] ङ. °रितारार्पितोदरः ।
[4] ङ. युवा वैच° ।

पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः । वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥१९
चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः । स्वासु दिक्षु स्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते ॥२०
सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना । श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥२१
उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना । त्रिदिवद्वारचक्रेण तपसा लोकमव्ययम् ॥२२
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा । चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥२३
सोमः श्वेतहये[1] भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् । [2]हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२४
तमृक्षपूगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् । शशच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥२५
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम् । ओषधीनां [3]सहस्राणां निधानममृतस्य च ॥२६
जगतः प्रथमं भागं सौम्य[4] सत्यमयं रथम् । ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम् ॥२७
यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु । [5]सप्तधातुगतो लोकांस्त्रीन्दधार चचार च ॥२८
यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् । सप्तस्वरगतो यश्च नित्यं गीर्भिरुदीर्यते ॥२९

में सहस्रनेत्र इन्द्र पूर्व दिशा में, वरुण पश्चिम दिशा में तथा नरवाहन कुबेर उत्तर दिशा में अवस्थित हुए ।१९। ये चारों दिशाओं के महाबलशाली लोकपाल गण, चारो दिशाओं में स्थित होकर अपनी-अपनी दिशाओं में स्वयं अपनी रक्षा करते हुए उस देव सेना की भी रक्षा करते रहे ।२०। तदनन्तर अति शोभा से जाज्वल्यमान, अति द्रुतगामी सात अश्वों से युक्त रथ पर अधिरूढ़, सुप्रकाशित रश्मियों (लगाम की रस्सी) से युक्त, सुमेरु की प्रदक्षिणा करनेवाले उदय एवं अस्त दोनों अंचलों पर जानेवाले, स्वर्ग के द्वार के समान सुशोभित चक्रशाली, सभी अविनश्वर लोकों को सुप्रकाशित करते हुए, परम तेज से देदीप्यमान सहस्रकिरणों से युक्त होकर समस्त लोकों के मध्य में द्वादशात्मक दिनेश्वर सूर्य रणभूमि में भ्रमण करने लगे ।२१-२३। चन्द्रमा श्वेत घोड़ों से जुते हुए रथ पर शीतल रश्मियों से युक्त हो, वर्फ मिले जल से पूर्ण अपनी कान्ति द्वारा जगत् को आनन्दित करते हुए युद्धभूमि में आये ।२४। पीछे चलनेवाले नक्षत्र समूहों से युक्त शिशिरांशु, द्विजराज मृग के चिह्नवाले, रात्रि के घने अंधकार का विनाश करनेवाले, नक्षत्रों एवं ग्रहों के स्वामी, रस प्रदान करनेवाले, सहस्रों ओषधियों एवं अमृत के निधान, जगत् के एक अंश के समान विशाल, सत्यमय, सुन्दर दिखाई पड़नेवाले रथ पर आरूढ़ आकाशमार्ग में अवस्थित हिम से प्रहार करनेवाले चन्द्रमा को दैत्यों ने देखा ।२५-२७। जो सभी जीवों का प्राण रूप एवं मनुष्यों में पाँच विभागों में विभक्त है, जो सातों धातुओं में पाया जाता है, एवं तीनों लोकों को धारण करनेवाला तथा तीनों लोकों में विचरण करनेवाला है, लोग जिसे अग्नि का उत्पत्तिकर्त्ता कहते हैं, सभी की उत्पत्ति जिससे होती है, जो अति सामर्थ्यशाली, सात प्रकार के स्वरों में प्राप्त होकर जो वाणी द्वारा नित्य उदित होता है, जिसे लोग सभी भूतों में उत्तम भूत तथा शरीर से रहित बतलाते हैं, जिसे लोग आकाशगामी

---

[1] ग. घ. ङ. °हयो भा° । [2] ङ. °मतोयप्रपू° । [3] ङ. पवित्राणां । [4] ग. ङ. °म्यं सैन्यम° ।
[5] ग. घ. ङ° °प्तस्कन्धग° ।

[+यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् । यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोगिनम्[1] ॥३०
स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः[2] स्वेन तेजसा । ववौ प्रव्यथयन्दैत्यान्प्रतिलोमं सतोयदः ॥३१
मरुतो दिव्यगन्धर्वैर्विद्याधरगणैः सह । चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ॥३२
सृजन्तः [3]सर्पपतयस्तीव्रतोयमयं विषम् । शरभूता दिवीन्द्राणां चेरुर्व्यात्तानना दिवि ॥३३
पर्वतैश्च[4] शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः । उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्तुं [5]दानवं बलम् ॥३४
यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः । [6]युगान्तकृष्णवर्त्माभो[7] विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥३५
सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक्क्रतुसंस्थितः । [8]भूम्यापोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥३६
अरिघ्नममरादीनां चक्रं गृह्य गदाधरः । अर्कं नागादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७
सव्येनाऽऽलम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम् । करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम् ॥३८
अन्यैर्भुजैः प्रदीप्तानि[9] भुजगारिध्वजः प्रभुः । दधाराऽऽयुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः ॥३९

कहते हैं शीघ्रगामी एवं शब्द का उत्पत्तिकर्त्ता भी जिसे लोग कहते हैं, वह वायु देवता सभी जीवों का आयुरूप हो अपने ही तेज से युद्धभूमि में उद्भूत हुआ और दैत्य समूहों को व्यथित करता हुआ बादलों के साथ दैत्यों की प्रतिकूल दिशा में बहने लगा ।२८-३१। उस समय वे मरुत् गण गन्धर्व एवं विद्याधर के समूहों के साथ श्वेतवर्ण की उन तलवारों द्वारा, जो म्यान से रहित होने पर सर्पों के समान विकराल दिखाई पड़ रही थी, क्रीडा करने लगे, और बड़े-बड़े सर्पों के स्वामी तीव्र, जलमय विष की धारा को छोड़ते हुए रणभूमि में मुँह फैलाये हुए बाणों की अविरल धारा के समान आकाश में विचरण करने लगे ।३२-३३। पर्वतों, शिलाओं, शिखरों एवं सैकड़ों वृक्षों के साथ लेकर दानवों की सेना में विनाश करने के लिए अन्याय देवगण भी उपस्थित हुए ।३४। जो देव-देव हृषीकेश, पद्मनाभ एवं त्रिविक्रम के नाम से विख्यात हैं, युगान्त में जो कृष्णवर्ण शरीर धारण कर समस्त जगत् का विनाश करते हैं, जो सभी प्रकार के जीवों की उत्पत्तिस्थली है, मधु दैत्य के शत्रु हैं, यज्ञों में उपस्थित होकर हवनीय द्रव्यों का भोग लेते हैं, उन्हीं भूमि, जल, आकाश स्वरूप धारण करनेवाले, श्याम, शान्ति देने वाले, शत्रु संहारक भगवान् गदाधर ने रणभूमि में देवताओं के शत्रुओं के विनाश करने वाले सुदर्शन चक्र को, जो अपने अनुपम तेज से उदयाचल से उठते हुए सूर्य की भाँति देदीप्यमान था, उठाकर बाएँ हाथ से सभी असुर गणों की विनाशिनी विशाल गदा को उठाया, जो काले वर्ण की आकृति से ही शत्रु को मृत्यु के मुख में सौंपने वाली थी ।३५-३८। अपनी अन्य तेजस्विनी भुजाओं से गरुड़ध्वज महाबली

+ एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो न विद्यते घ. पुस्तके ।

---

[1] ग. °योनिजम् । स । [2] ग. ङ. °रुद्धतः । [3] ग. सर्वशस्त्रास्त्रतीव्रं रोषम° । [4] ग. पर्वताश्च । [5] क. ख. घ. ङ. °नवे बले । यः । [6] क. ख. घ. °गान्ते कृष्णवर्णाभो । [7] ङ. °र्मा यो वि° । [8] घ. भूत्या यो व्यो° । [9] क. ख. °प्ताभिर्भुज° ।

स कश्यपस्याऽऽत्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम् । पवनाधिकसंपातं गगनक्षोभणं [1]खगम् ॥४०
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् । अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम् ॥४१
देवासुरविमर्देषु बहुशो [2]दृष्टविक्रमम् । महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ॥४२
शिखिनं बलिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम् । [3]विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम् ॥४३
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा । भोगिभोगावसक्तेन[4] मणिरत्नेन भास्वता ॥४४
पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया । युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥४५
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलंकृतम् । केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥४६
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः । सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः । [5]गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरः सरम् । द्विजराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ॥४९
चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समवर्तत* । पवनाविद्धनिर्घोषं संप्रदीप्तहुताशनम् ॥५०

भगवान् ने शार्ङ्ग धनुष आदि को धारण किया ।३९। तदनन्तर भगवान् कश्यप के पुत्र, सर्पभक्षी, द्विज (पक्षिराज) पवन से भी अधिक वेगवाले, गगन मण्डल को क्षुब्ध करनेवाले, मुख में एक सर्प लिये हुए, आकाशगामी, खगराज, अमृत मन्थन के उपरान्त मन्दराचल के समान शोभाशाली, देवासुर संग्राम में कई बार अतिशय पराक्रम दिखलानेवाले, अमृत के हरण के समय इन्द्र से युद्ध कर उनके वज्र द्वारा चिह्नित, शिखाधारी, बलवान् तपाये हुए सुवर्ण के कुण्डल से विभूषित, विचित्र रङ्ग के पंखे को धारण करनेवाले, धातुमान् पर्वत की भाँति शोभायमान, विशाल वक्षःस्थल पर, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल सर्पों के फणस्थ मणियों से सुशोभित, प्रलयकालीन इन्द्र धनुषों से युक्त दो बादलों की भाँति दोनों पंखों से लीलापूर्वक आकाश मण्डल को व्याप्त कर, नीली, लाल, पीली पताकाओं से विभूषित, पताका के समान वेश से छिपे हुए महान् एवं विशाल शरीरवाले अरुण के अनुज गरुड़ पर आरूढ़ होकर वे युद्धभूमि में उपस्थित हुए । उस समय गरुड़ का शरीर सुन्दर सुवर्ण के के समान शोभायमान हो रहा था ।४०-४७। भगवान के उपस्थित होने पर देवगण इनके पीछे-पीछे आये उस समय समाधि में मग्न होकर मुनिगण अति उत्कृष्ट मंत्रों द्वारा जनार्दन की स्तुति करने लगे ।४८। इस प्रकार जब कुबेर से युक्त, सूर्य पुत्र यमराज से सुशोभित, द्विजराज गरुड़ से समन्वित, देवराज इन्द्र से सुशोभित, चन्द्रमा की कान्तियों से विभूषित देवताओं की वह विशाल वाहिनी युद्ध के लिए रणभूमि में प्रस्तुत हुई तब बृहस्पति

---

* इतः परं सार्धश्लोकोऽधिको ङ. पुस्तके ।

---

[1] ङ. खलग्र् । [2] क. ख. घ. दृढवि° । [3] ङ. पट्टव° । [4] क. ख. घ. °वसिक्ते । [5] ग. च. ऋग्भिः ।

विष्णोर्जिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा तमसाऽऽवृतम् । बलं बलवदुद्वृत्तं युद्धाय समवर्तत ॥५१
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत । स्वस्त्यस्तु दानवानीक उशना वाक्यमाददे ॥५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसङ्ग्रामे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥९२६१॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा । सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥१
दानवा दैवतैः सार्धं नानाप्रहरणोद्यताः । समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ । धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥३
ततो [1]रथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः । उत्पतद्भिश्च [2]गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥४

ने देवताओं के लिए 'कल्याण हो' ऐसा स्वस्तिवाचन किया इसी प्रकार शुक्र ने दैत्यों की सेना में स्वस्तिवाचन पढ़ा ।४९-५०।

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥१७४॥

अध्याय १७५

मत्स्य ने कहा— इस प्रकार देवताओं तथा दानवों की विशाल वाहिनी जब एक दूसरे को विजित करने की इच्छा से रणभूमि में उपस्थित हुई, तब दोनों सेनाओं में अत्यन्त तुमुल युद्ध छिड़ गया ।१। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस हुए दानव गण देवताओं के साथ युद्ध करते हुए इस प्रकार मालूम हुए मानों पर्वतों से पर्वत लड़ रहे हों ।२। देवताओं तथा दानवों से संयुक्त वह अद्भुत धर्म एवं अधर्म से, गर्व एवं विनय से युक्त वह युद्ध शोभित हो रहा था ।३। तदनन्तर अलग अलग चलते हुए रथ, प्रेरित किये गये हाथियों,

---

[1] ग. रथैः प्रजवितैर्वा° । [2] ग. गनमुत्पतद्भिः स° ।

क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः संपतद्भिश्च सायकैः । चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम् । जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥६
हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः । दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७
ते वध्यमाना [1]बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः । विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥८
तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः । भिन्नोरस्का दितिसुतैर्व + सृ रक्तं व्रणैर्बहु ॥९
वेष्टिताः[2] शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः । प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्[3] ॥१०
अस्तं गतमिवाऽऽभाति निष्प्राणसदृशाकृति । बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥११
दैत्यचापच्युतान्घोरांच्छित्त्वा वज्रेण ताञ्छरान् । शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२
स दैत्यप्रमुखान्हत्वा तद्दानवबलं महत् । तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च । घोरेण तमसाऽऽविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४

आकाश मण्डल में चलती हुई हाथों से युक्त तलवारों, चारो ओर से चलते हुए मुसलों, गिरने वाले बाणों, टँकोर युक्त धनुषों, शत्रुओं पर फेंके जाते हुए मुद्गरों से वह भयानक युद्ध देवताओं तथा दानवों से संकुलित हो गया और महाप्रलय के समान समस्त जगत् को त्रास युक्त कर दिया ।४-६। उस रण में दानवगण हाथों से छोड़े गये परिघों तथा ऊपर से फेंके गये पर्वतों द्वारा इन्द्र आदि देवताओं को आहत करने लगे ।७। विजय के इच्छुक, बलवान् उन दानवों द्वारा मारे जाते हुए वे देवगण अति विषाद युक्त हो युद्ध में परम चिन्तित हुए ।८। उन दिति पुत्रों के अस्त्रों तथा शूलों द्वरा अति घायल, परिघों द्वारा छिन्न-भिन्न मस्तक वाले, कटी हुई छाती वाले देवगणों के घावों से रक्त की अविरल धाराएँ बहने लगीं ।९। असुरों के बाणों के समूहों द्वारा घायल होकर देवगण कुछ भी करने में निष्फल रहे, यहाँ तक कि दानवों को युद्ध की उस भीषण माया में पड़कर उनका होश हवास तक गुम हो गया ।१०। इस प्रकार राक्षसों द्वारा देवताओं की सारी सेना अस्तप्राय कर दी गई, सब सब सैनिक प्राण रहित से दिखाई पड़ने लगे, उनके हथियारों के सारे प्रयत्न भी निष्फल हो रहे ।११। तब अनेक नेत्रोंवाले इन्द्र अपने वज्र से दैत्यों की धनुषों से छूटे हुए उन विकराल बाणों को काटते हुए दैत्यों की त्रिकराल सेना में प्रविष्ट हुए ।१२। और बड़े-बड़े दानवों का संहार कर अपने तामस अस्त्र के जाल से उन दैत्यों की विशाल वाहिनी को अंधकार में आच्छन्न कर दिया ।१३। इस प्रकार इन्द्र के अद्भुत पराक्रम से निविड अंधकार में छिपे हुए वे दानवगण आपस में एक दूसरे को देखने एवं पहचानने में भी असमर्थं हो गये, यहाँ तक कि देवताओं के वाहनों तक को वे न पहचान सके ।१४। इन्द्र के प्रयत्न से उक्त माया

+ अत्र एत्वाभ्यासलोप आर्षः ।

---

[1] क. ख. °वैर्जयका° । [2] ग. घ. ङ. स्यन्दिताः । [3] ग. °म् । तैः स्तम्भित° । ङ. °म् । विस्तम्भित° ।

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः । वपूंषि दैत्यसिंहानां तमोभूतान्यपातयन् ॥१५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा । पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥१६
तद्घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे । दानवं देवकदनं तमोभूतमिवाभवत् ॥१७
[1]तदाऽसृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन् । युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८
सा ददाह [2]ततः सर्वान्मायाा मयविकल्पिता । दैत्याश्चाऽऽदित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१९
मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः । [3]भेजिरे चन्द्रविषयं [4]शीतांशुसलिलप्रदम् ॥२०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः । शशंसुर्वज्रिणं देवाः संतप्ताः शरणैषिणः ॥२१
संतप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः । चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२
[5]पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपे सुदारुणम् । [6]ऊर्वः सपूर्वतेजस्वी सदृशो ब्राह्मणो गुणैः ॥२३
तं तपन्तमिवाऽऽदित्यं तपसा जगदव्ययम् । उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह ॥२४
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः । ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥२५

पाश से छूटे हुए बड़ें-बबड़े देवगण प्रयत्नपूर्वक अंधकार में विलीन उन पराक्रमी दानवों के शरीरों को काटने लगे, जिससे अंधकार में विलीन, होश हवास रहित देवताओं द्वारा हताहत वे दानवगण पृथ्वी पर कटे हुए पक्षवाले पर्वतों की भाँति गिरने लगे ।१५-१६। समुद्र में घोर अंधकार की भाँति देवताओं के शत्रु उन दानवों की सारी सेना अंधकार में विलीन थी, और बड़ें-बड़े दैत्य गण उसमें छिपे हुये थे ।१७। उस समय मय नामक दानव ने इन्द्र की उस तामसी माया को विध्वस्त करनेवाली महाभयानक और्व नामक अग्नि से उत्पन्न होने वाली तथा प्रलय काण्ड उपस्थित करनेवाली अपनी माया की रचना की ।१८। मय द्वारा रची गई उस भीषण माया ने सभी देवताओं को जलाना प्रारम्भ किया और दानवगण सूर्य के समान तेजस्वी शरीर धारण कर शीघ्र ही पुनः युद्धार्थ उठ खड़े हुए ।१९। उस और्वी माया के प्रभाव से जलते हुए देवगण, इन्द्र तथा शीतलकिरणों वाले तथा जलप्रद चन्द्रमा की शरण में पहुँचे ।२०। जिस समय इस प्रकार शरणार्थी देवगण और्वाग्नि की माया से विह्वल एवं सन्तप्त होकर वज्रधारी इन्द्र की शरण में जाकर कहने के लिए प्रस्तुत हुए उस समय दानवों की घोर माया से सेना के हताहत हो जाने से इन्द्र के पूछने पर वरुण ने कहा ।२१-२२। इन्द्र ! प्राचीनकाल में महर्षि-पुत्र ऊर्व, जो अतिशय तेजस्वी तथा गुणों में ब्रह्मा के समान थे, घोर तपस्या कर रहे थे ।२३। तपस्या करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, तपस्या से अव्यय लोक की प्राप्ति करनेवाले ऊर्व के पास दिव्य तेजोमय महर्षिगण देवर्षि-गण के साथ उपस्थित हुए, उसी समय दानवराज हिरण्यकशिपु भी वहाँ पहुँचा । उस परम तेजस्वी ऋषि ऊर्व से ब्रह्मर्षियों ने धर्मपूर्वक वचन को निवेदित किया ।२४-२५। ऋषियों ने कहा—'भगवन् ! ऋषियों के वंश में यह

---

१ ग. ततस्ताम° । २ ङ. तमः सर्वं माया । ३ क. ख. °रे चेन्द्रवि° । ४ ङ. °लिलं हृदा । ते ।
५ क. घ. उर्वो । ६ क. ख. ग. और्वः ।

ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम् । ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम् ॥२६
एकस्त्वमनपत्यश्च [१]गोत्रजोऽन्यो न वर्तते । कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥२७
बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् । एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥२८
[२]एवमुच्छिन्नमूलैश्च[३] पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् । भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ॥२९
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्धयाऽऽत्मानमात्मना । [४]त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम् ॥३०
स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मर्मसु ताडितः । जगर्हे तानृषिगणान्वचनं चेदमब्रवीत् ॥३१
यथाऽयं विहितो धर्मो मुनीनां [५]शाश्वतः पुरा । आर्षं वै सेवतः कर्म वन्यमूलफलाशिनः ॥३२
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य [६]ब्राह्मणस्याऽऽत्मदर्शिनः । ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥३३
जनानां वृत्तयस्तिस्रो[७] ये गृहाश्रमवासिनः । अस्माकं तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा । अश्मकुट्टा[८] ह्यशनकाः पञ्चातपसहाश्च ये ॥३५

पद विनष्ट हो रहा है, उसका मूल ही नष्ठ हो रहा है, उसमें तुम एक मात्र सन्तान थे, तुम्हारे भी कोई सन्तति नहीं है, जो गोत्र की अभिवृद्धि कर सके, और तुम तो कौमार (ब्रह्मचर्य) व्रत को अंगीकार कर क्लेश का सहन करते हुए तपस्या कर रहे हो, उच्चाशय मुनियों तथा ब्राह्मणों के अनेक वंश केवल एक व्यक्ति में शेष हैं, बिना सन्तति के सभी छिन्न-भिन्न से हो रहे हैं ।२६-२८। इस प्रकार मूल के उच्छिन्न हो जाने पर पुत्र उत्पत्ति का कोई कारण शेष नहीं दिखाई पड़ता । आप तो तपस्या के प्रभाव से अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त कर प्रजापति के समान तेजस्वी एवं प्रभावशाली हो गये हैं अतः अपने उस शरीर से वंश की वृद्धि के लिए भी कोई उपाय कीजिये और अपने प्रभाव से अपने वंश की अभिवृद्धि कीजिये । आपने इस शरीर से बहुत धर्म का अर्जन किया है अतः दूसरे शरीर को बनाइये । अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रयत्नशील होइये ।२९-३०।' मुनियों के इस प्रकार कहने पर ऊर्व के मर्मस्थल में आघात हुआ और उन्होंने उन ऋषियों की निन्दा करते हुये कहा—'मुनियों के लिए जिस प्रकार इस धर्म का विधान बनाया गया है, वह कभी नष्ट होने वाला नहीं है । इस धर्म मार्ग में रहकर आर्ष धर्म की सेवा में तत्पर रह जंगल में उत्पन्न होनेवाले मूल फलादि का भोजन कर आत्माभिमानी, ब्राह्मण कुलोत्पन्न मुनि का भली भाँति अर्जित किया हुआ ब्रह्मचर्य ब्रह्मा को भी विचलित कर सकता है ।३१-३३। गृहस्थाश्रम में निवास करनेवाले मनुष्यों के लिए अन्य तीन वृत्तियों का विधान किया गया है, पर वन में आश्रम बनाकर निवास करनेवाले हम जैसे लोगों के लिए यही— हमारी—वृत्ति सब से अच्छी है ।३४। जल पीकर, वायु पान कर, दाँत द्वारा तथा उलूखल(खरल)में कूट कर या पत्थर से कूटकर जो वस्तु खाई जा सके उसे खाकर दस और

---

१ क. ख. घ. गोत्रे चान्यो । २ ग. एवं तच्छन्नभूतेषु पुत्र मे ना° । ३ घ. मुच्छन्नभूतेषु पु° ।
४ ग. त्वमात्ममूर्तिजं तेजो द्वि° । घ. ङ. त्वमावत्मोर्जितं तेजो द्वि° । ५ क. ख. °श्वेतस्तु सः । आ° ।
६ ग. ङ. °त्मवर्तिनः । ७ क. ख. °स्रो यद्गृहाश्रमवासिनाम् । अ° । ८ क. °ट्टादशतपाः प° ।

एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः । ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम् ॥३६
ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते । एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥३७
ब्रह्मचर्ये[1] स्थितं सत्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः । ये स्थिता ब्राह्मचर्ये तु ब्राह्मणा दिवि संस्थिताः ॥३८
नास्ति योगं विना [2]सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः । नास्ति[3] लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात्परं तपः ॥३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् । ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥४०
अयोगे [4]केशधरणमसंकल्पव्रतक्रियां[5-6] । अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञकम् ॥४१
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व चभावविपर्ययः । नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥४२
यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं [7]विदितात्मनाम् । सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ॥४३
मनसा निर्मिता [8]योनिराधातव्या तपस्विभिः । न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे [9]मतम् ॥४५

या पाँच ओर धूनी जलाकर अग्नि का सेवन करने वाले जो मुनि लोग हैं, वे इससे भी कठोर दुष्कर व्रतों का का निर्वाह करते हुए तपस्या में लगे रहते हैं, और सर्व प्रधान लक्ष्य ब्रह्मचर्य की विधिवत् रक्षा कर परम गति की प्राप्ति करते है ।३५-३६। ब्राह्मण को तो ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है, ब्रह्मचर्य की महिमा को जानने वाले लोग इसी प्रकार परलोक में ब्रह्मचर्य को फलदायी बतलाते हैं ।३७। ब्रह्मचर्य में स्थित रहने पर धैर्य रह सकता है, ब्रह्मचर्य के रहते हुए ही तपश्चर्या हो सकती है, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहते हैं वे स्वर्ग में स्थित रहते हैं ।३८। बिना योग के सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती, सिद्धि के बिना यश नहीं मिलता, लोक में ब्रह्मचर्य से बढ़कर यश का मूल कारण कोई अन्य तप नहीं है ।३९। जो प्राणी अपने इन्द्रिय-समूहों तथा पाँचो भूतों को स्ववश रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके समान घोर तपस्या कोई अन्य नहीं है ।४०। विना योगाभ्यास के केशों को रखा लेना, विना संकल्प के व्रत की क्रिया करना, बिना ब्रह्मचर्य के अन्य पुण्य कार्यों को करना— ये तीनों निरे पाखण्ड कहे गये हैं ।४१। कहाँ स्त्री है ? कहां संयोग होता है ? कहाँ पर स्त्री पुरुषों के भाव विकृत होते हैं ? यह तो निश्चय है कि यह ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि संकल्पों से होनेवाली है और ये सारी प्रजाएँ उसकी मानसिक सृष्टि से उद्भूत हुई हैं ।४२। यदि आप जैसे आत्मज्ञानी मुनियों में तपस्या का कोई बल है तो ब्रह्मा की भाँति मानसिक सृष्टि की रचना कर मानस पुत्रों को उत्पन्न कीजिये ।४३। तपस्वीगण तो मन से संकल्पित योनि में आधान करते हैं, तपस्वियों के लिये स्त्री का संयोग अथवा गर्भयोनि में बीजाधान करने का कोई नियम नहीं कहा गया है ।४४। यह जो धर्म और अर्थ से हीन, सज्जनों द्वारा न कहने योग्य बातें आप लोगों ने निर्भय होकर मेरे सम्मुख कही हैं, वे मेरी समझ में अज्ञानियों की भाँति हैं ।४५। अपने शरीर को

---

१ क.ख. घ. धैर्यं । २ ङ. द्धिर्नास्तियोगं वि° । ३ ङ. स्ति योगो वशो । ४ घ. °शवपरम° । ५ ङ. क्रिया । ६ ग. °या । ब्रह्मचर्येऽपि चर्या । ङ. °या । ब्रह्मचर्याहिसर्या । ७ ग. ङ. विजिता । ८ ग. °राश्रित° । ९ ए. घ. °म् । बहुदीप्ता° ।

वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत्कृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ।।४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति[1] । वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ।।४७
ऊर्वस्तु [2]तपसाऽऽविष्टो निवेश्योरुं हुताशने । ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम् ।।४८
तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः । जगदो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ।।४९
ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामाऽन्तकोऽनल । दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः ।।५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं [3]क्षीणया गिरा । क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्ष्ये त्यजस्व माम् ।।५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश । निर्दहन्सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ।।५२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं [4]सभाजयन् । उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयां कुरु ।।५३
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये स्थानमुत्तमम् । [5]तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणु त्वं वदतां वर ।।५४

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुहीतोस्मि यन्मेऽद्य भगवाञ्छिशोः । मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ।।५५
प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे । भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ।।५६

जो प्रकाशित आत्मा से संयुक्त है, मन से सम्बद्ध कर मैं बिना स्त्री समागम के ही आत्म शरीरोत्पन्न पुत्र की सृष्टि करूँगा ।४६। इस प्रकार मेरी आत्मा इस जंगली (वानप्रस्थियों के करने योग्य) विधि से समस्त प्रजा को जलाते हुए अपनी दूसरी आत्मा-पुत्र - को उत्पन्न करेगी ।४७। ऐसा कहकर ऊर्व ऋषि तपस्या के आवेश से युक्त हो अपने ऊरु (जंघा) भाग को अग्नि में प्रविष्ट कर एक कुशा से अरणि की भाँति मन्थन किया ।४८। जिससे शीघ्र हीं उनके भेदन कर ज्वाला से युक्त, इन्धन रहित, जगत् के विध्वंस के लिए इच्छुक अग्नि रूपी एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।४९। इस प्रकार ऊर्व के ऊरु को फाड़कर और्व नामक जगत् का विनाशक अग्नि तीनों लोकों को भस्मसात् करते हुए की भाँति अति क्रोधयुक्त हो उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होते ही अपने पिता से विनम्र स्वर में बोला— 'तात ! मैं भूख से पीडित हूँ, मुझे छोड़िये, जगत् भोजन करने की आज्ञा मुझे प्रदान कीजिये ।५०-५१।' ऐसा कहकर स्वर्ग तक पहुंचती हुई लपटों से युक्त होकर दसों दिशाओं में फैला हुआ वह और्व अग्नि समस्त जीवों को भस्मसात् करता हुआ बढ़ने लगा। इसी अवसर पर ब्रह्मा जी महर्षि ऊर्व की प्रशंसा करते हुए आये और बोले— 'विप्रवर ! अपने पुत्र को रोको, दया कर जगत् की रक्षा करो । मैं तुम्हारे पुत्र के निवासार्थ उत्तम स्थान का प्रबन्ध कर दूँगा, हे बोलने वालो में श्रेष्ठ ! पुत्र ! मेरी यह बात सच मानों' ।५२-५४।

ऊर्व ने कहा— भगवन् ! आज मैं धन्य हो गया । आपने यह मेरे ऊपर अनुग्रह किया । मेरे शिशु के लिए मुझे ऐसी बुद्धि दी, किन्तु प्रातः काल होने पर जब वह भूखा होकर मुझसे भोजन

---

[1] ग ति° । कृतेना° । ङ. °ति । धक्ष्ये । [2] ग. तमसा° । [3] ग. ङ. दीनया । [4] ग. ङ. समागतः । स° । [5] ग. ङ. °तन्मम वचः शृ° ।

कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम् । विधास्यतीह [1]भगवान्वीर्यतुल्यं महौजसः ।।५७

ब्रह्मोवाच[2]

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति । मम योनिर्जलं विप्र तस्य पीतवतः [3]सुखम् ।।५८
यत्राहमास नियतं पिबन्वारिमयं हवि । [4]तद्धविस्तव पुत्रस्य[5] विसृजाम्यालयं च तत् ।।५९
ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च पुत्रक । सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणमृणापहः ।।६०
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशो मयाकृतः । दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ।।६१
एवमस्त्विति तं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः । प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरि प्रभाम् ।।६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः । और्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः ।।६३
हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् । [6]उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ।।६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् । तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ।।६५

माँगेगा तब उसे मैं किन पदार्थों द्वारा संतुष्ट करूँगा ? कहाँ उसका निवास होगा ? भोजन क्या करेगा ? आप उस महा तेजस्वी के अनुरूप ही प्रबन्ध करेंगे ? ।५५-५७।

ब्रह्मा ने कहा— विप्र ! समुद्र में निवास करनेवाली वडवा के मुख में इस तुम्हारे पुत्र का निवास स्थान होगा, मेरा उत्पत्ति स्थान जल है, उसे पीकर तुम्हारे पुत्र को महान सुख होगा ।५८। उसीं स्थान पर मैं भी जलमय हवि का पान करते हुए निवास करता हूं, वही हवि तुम्हारे पुत्र के लिए भी भोजनार्थ अर्पित करूँगा और वही उसका भी निवास स्थान होगा ।५९। पुत्र ! युगान्त के समय हम और यह तुम्हारा पुत्र— दोनों सन्तान रहित प्राणियों के पितृ-ऋण का मोचन करने के लिए एक ही साथ विचरण करेंगें, यह जल का भोजन करनेवाला तुम्हारा पुत्र अन्तकाल (महाप्रलय) में देव असुर राक्षस आदि सभी जीवों को जलानेवाला होगा ।६०-६१। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुन 'ऐसा ही हो' कह कर ऊर्व ने अनुमोदन किया और वह और्व अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओं के मण्डल से युक्त होकर अपनी कान्ति को पिता में निक्षिप्त कर निष्प्रभ हो समुद्र मुख में प्रविष्ट हुआ ।६२। तदुपरान्त वे सब महर्षि, जो वहाँ आये हुए थे, और ब्रह्मा, उर्व में अग्नि की प्रभा का प्रवेश हुआ देखकर अपने-अपने गन्तब्य स्थानों को प्रस्थित हुए ।६३। इस प्रकार की घटना घटित होते देख हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने दण्डवत् प्रणाम कर उच्चस्वर से ऊर्व से ऐसा निवेदन किया ।६४। भगवन् ! यह अति अद्भुत बात हुई है, सारा लोक इसे साक्षीरूपेण देख रहा है, मुनिश्रेष्ठ ! आपकी इस घोर तपस्या से पितामह भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये हैं ।६५। महाव्रती ! मैं आपका तथा आपके पुत्र का किंकर

---

[1] ग. न्वीर्यंतु स्वम । [2] ङ. च. °च । चन्द्रे वायौ च व° । [3] ग. °म् । अत्राहमात्मनि° । ङ. म् । अस्मिन्हयास्ये नि° । [4] ङ. तद्गृद्धिस्त° । [5] ङ. °स्यनिमृष्याप्यालपन्व्रतम् । त° । [6] ग. और्व ।

अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत । भृत्य इत्यवगन्तव्यः [1]साध्यो यदिह कर्मणा ॥६६
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाऽऽराधने रतम् । यदि [2]सीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ॥६७

औौर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं [3]गुरुः स्थितः । नास्ति [4]मे तपसाऽनेन भयमद्येह सुव्रत ॥६८
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् । निरिन्धनामग्निमयीं दुर्धर्षं पावकैरपि ॥६९
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगाऽरिविनिग्रहे । संरक्षत्मात्मपक्षं च विपक्षं च [5]प्रधक्ष्यति ॥७०
एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुंगवम् । जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥७१
एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा । औौर्वेण निर्भिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥७२
तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः । शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥७३
यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी । दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः ॥७४

हूँ, ऐसा सच जानिये, जो कुछ भी आवश्यकता हो, उसके लिए हमें आप आज्ञा दे सकते हैं, मुझे अपनी ही शरण में आया हुआ समझिये, मैं आपही की आराधना में निरत हूँ,यदि इस प्रकार अनन्य भाव से आपकी शरण में रहते हुए भी मैं कष्ट पाता हूँ इससे आपकी ही पराजय होगी ।६६-६७।

ऊर्व ने कहा— 'सद्व्रत परायण ! मैं धन्य तथा अनुग्रहीत हो गया जो तुम्हारा गुरु हुआ, मुझे अपनी इस कठोर तपस्या एवं सिद्धि से क्या मिलेगा यदि मेरे रहते तुम्हें कष्ट मिले ।६८। तो तुम मेरे पुत्र द्वारा निर्मित उसी अग्निमयी माया को ग्रहण करो, जो बिना इन्धन के अग्नि में भी बढ़कर भीषण तथा दुर्द्धषं है ।६९। शत्रुओं को वश में करते समय यह माया तुम्हारे वंश वालों के वश में रहेगी, अपने पक्ष वालों की यह रक्षा करेगी और विपक्षियों का विनाश करेगी ।७०।' मुनि की ऐसी बातें सुन दानव हिरण्यकशिपु मुनिपुंगव ऊर्व को प्रणाम कर अति प्रसन्न चित्त एवं कृतार्थ होकर स्वर्ग को प्रस्थित हुआ ।७१। (वरुण कहते हैं) यह पूर्वकाल में ऊर्व पुत्र अग्मि स्वरूप औौर्व द्वारा निर्मित माया अत्यन्त कठोर तथा असह्य है, देवगण भी इसे सहन नहीं कर सकते ।७२। किन्तु उस हिरण्यकशिपु दैत्य के मर जाने पर यह याया निर्वीय हो जायेगी — इसमें कोई सन्देह नहीं ऐसा शाप पूर्वकाल में उन्हीं मुनि ऊर्व ने उसे दिया था, जिसने इसे निर्मित किया था ।७३। भगवन् ! यदि इस माया को निष्फल कर सब को सुखी करना चाहते हैं तो जल के आश्रय स्थान निशाकर

---

[1] ग. ङ. श्लाध्यो । [2] क. ख. घ सीदे मुनि° । [3] ग. ङ. गुरुर्महान् । ना° । [4] ग. ङ. ते । [5] क. ख. घ. °र्धाशित ।

तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः । मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥७५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकांमयसङ्ग्रामे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

॥आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६३३६॥

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः । संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१
गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै । असुराणां विनाशाय जयार्थं च दिवौकसाम् ॥२
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः । त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ॥३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले । *परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥५
[1]लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः [2]शशसंनिभः । न विदुः सोम+देवापि ये च नक्षत्रयोनयः ॥५

चन्द्रमा को हमारे मित्ररूप में नियुक्त कीजिये ।७४। जिससे उनके तथा जलचरों के साथ आप की कृपा से हम लोग इस माया का विध्वंस कर सकें । मेरे इस कथन में आप संशय न करें ।७५।

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ पचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

मत्स्य ने कहा— वरुण की ऐसी प्रार्थना सुनने पर देवताओं को बढ़ानेवाले इन्द्र अति प्रसन्न होकर शिशिरायुध चन्द्रमा को प्रमुखरूपेण उस युद्ध में सहयोग करने के लिए आदेश दिया और कहा ।१। 'सोम ! तुम जाओ और असुरों के विनासार्थ तथा देवताओं के विजयार्थ पाशधारी वरुण की सहायता करो ।२। तुम मुझसे भी बलवान् हो, ज्योतिःपुञ्ज नक्षत्रों के स्वामी हो रसज्ञ लोग समस्त लोक में व्याप्त रहनेवाले रस को तुमसे ही युक्त जानते हैं ।३। तुम्हारे मण्डल में भी सागर की भाँति क्षय एवं वृद्धि व्यक्त होती है, जगत् में काल (समय) का योग करते हुये तुम दिन तथा रात्रि का परिवर्तन करते हो ।४। तुम्हारा चिह्न लोक की छाया से युक्त है, तुम्हारे अंक में मृग का चिह्न है । सोम ! तुम्हारी महिमा को वे देवतागण भी नहीं जानते, जो

---

* अत्रपरस्मैपदमार्षम् । + अत्र संधिरार्षः । १ ग. लोके छाया° । २ ग. ङ. °शावभ्रमः । न ।

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः । तमः प्रोत्सार्य महसा भासयस्यखिलं जगत् ॥६
श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी । [१]अधिकृत्कालयोगात्मा [२]इष्टो [३]यज्ञरसोऽव्ययः ॥७
ओषधीशः [४]क्रियायोनिर्हरशेखरभाक्तथा[५-६] । शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥८
त्वं [७]कान्तिवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम । सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ॥९
तद्गच्छ त्वं [८]महासेन वरुणेन वरूथिना । शमय त्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ॥१०

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज वरप्रद । एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥११
एतान्मच्छीतनिर्दग्धान्पश्य[९] त्वं हिमवेष्टितान् । विमायान्विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ॥१२
× इत्युक्त्वा तारकाधीसः सजलेशः शिवोदकैः । प्लावयामास सैन्यानि सुराणां शान्तिवृद्धये ॥१३
तेषां हिमकरोत्सृष्टाः[१०] सपाशा हिमवृष्टयः । वेष्टयन्ति स्म तान्घोरान्दैत्यान्मेघगणा इव ॥१४

स्वयं नक्षत्रों के उत्पत्तिकर्ता हैं ।५। तुम सूर्य के पथ से भी ऊपर, अन्य नक्षत्रगणों के भी ऊपर अवस्थित हो। तुम अपने अनुपम तेज से अंधकार को दूर कर समस्त जगत् को प्रकाशित करते हो ।६। तुम श्वेतभानु कहे जाते हो, हिम शरीर हो, नक्षत्रों के स्वामी हो, शशलांछन हो, काल योगों के स्वामी हो, कभी नष्ट न होने वाले यज्ञ स्वरूप हो, औषधीश हो। समस्त जगत् के कार्यों को उत्पन्न करने वाले, जल से उत्पन्न होनेवाले, शीतल कान्तिवाले, शीतांशु, अमृत के आश्रय, चंचल एवं श्वेत वाहन हो ।७-८। शोभाशालियों की शोभा तुम्हीं हो, सोमपान करने वाले देवताओं के लिए सोम तुम्हीं हो सभी जीवों में सुन्दर तुम्हीं हो, तुम अंधकार के विनाशकर्ता तथा नक्षत्रों के स्वामी हो ।९। महासेन ! इसीलिये मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम कवचधारी वरुण के साथ जाकर इस आसुरी माया को शान्त करो जिससे हम लोग इस समय जल रहे हैं' ।१०।

सोम ने कहा— 'वरदान देनेवाले देवराज ! यदि आप मुझे युद्ध के लिये आज्ञा प्रदान कर रहें हैं तो अब मैं दैत्य की माया को हरने वाले शिशिर की वर्षा कर रहा हूँ, ।११। इस मेरे बरसाये हुये हिम से आच्छादित एवं शीत से सिकुड़े हुये दानवों को देखिये, इस महायुद्ध में मैं इन सभी बड़े बड़े दैत्यों को माया से रहित कर दूँगा और इन सब का गर्व खर्व कर दूँगा ।१२। ऐसा कहकर तारापति चन्द्रमा जल के स्वामी वरुण के साथ मांगलिक जल द्वारा देवताओं की सेना के सभी सैनिकों को शान्त करने के लिये ठंडा कर दिया ।१३। उनके हिमयुक्त किरणों से छूटी हुई तुषारों की वृष्टि ने वरुण के पाश के साथ उन घोर दैत्यों के समूहों को मेघ के समान आच्छन्न कर लिया ।१४। वे पाश और शीतमय किरणों के धारण करने वाले

× न विद्यतेऽयं श्लोकः क. ख. ग. घ. पुस्तकेषु ।

१ ग. °योगत्वादिष्टाज्यायज्ञसा धन्यः । २ ङ. इष्टायरजसो° । ३ क ख. ज्ञश्च साऽ । ४ ग. °यादक्षोह° । ५ क. ख. °निरब्जयोनिरनुष्णभाः । शी° । ६ ग. °रयुक्त । ७ ङ. कान्तव° । ८ ग. ङ. °हासैन्यं व° । ९ क. ख. °श्यस्वहि° । १० ग. °ष्टाः सासारा हि° । ङ. °ष्टाः शिशिरा हि° ।

12615

तौ पाशशीतांशुधरै वरुणेन्दू महाबलौ । जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१५
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ । मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१६
ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत । जगत्संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिव संवृतम् ॥१७
तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ । शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥१८
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे । न शेकुश्चलितं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥१९
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः । हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥२०
तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै । विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥२१
तान्पाशहस्तग्रथितांश्छीतरश्मिभिः[1] । मयो ददर्श मायावी दानवान्दिवि दानवः ॥२२
स[2] शिलाजालविततां [3]खड्गचर्माट्टहासिनीम्[4] । [5]पादपोत्कटकूटाग्रां[6] कन्दराकीर्णकाननाम् ॥२३
सिंहव्याघ्रगणाकीर्णं नदद्भिर्गजयूथपैः । ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२४
निर्मितां स्वेन [7]यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् । प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्स समन्ततः ॥२५

महाबलवान् वरुण और चन्द्रमा अपने पाशों और तुषारों की वृष्टि कर दानवों की सेना को आहत करने लगे ।१५। युद्ध भूमि में पाश और हिम के हथियारों का प्रयोग करने वाले दोनों जल के स्वामी, समर में जल के वेग से अत्यन्त क्षुब्ध दो महासमुद्रों की भाँति विचरण करने लगे ।१६। इस प्रकार उन दोनों द्वारा जल में डुबोई गई वह दानवों की सेना प्रलयकालीन संवर्तक नामक मेघों से आप्लावित जगन्मण्डल की भाँति दिखाई पड़ने लगी ।१७। युद्धभूमि में लड़ते हुये उन —शशलांछन चन्द्रमा तथा वरुण —दोनों देवताओं ने दैत्येन्द्र द्वारा विनिर्मित माया को शान्त कर दिया ।१८। युद्ध में चन्द्रमा की शीतमय किरणों द्वारा जलाये गये तथा वरुण के पाशों द्वारा बाँधे गये दैत्यगण शिर रहित होकर पर्वतों के समान दिखाई पड़ रहे थे ।१९। शीतरश्मियों द्वारा और तुषार द्वारा पीड़ित, हिम द्वारा आप्लावित समस्त अंगोंवाले वे दानव ऊष्मा रहित अग्नि की भाँति शोभित हो रहे थे ।२०। उनदैत्यों ये विचित्र ढंग के बने हुए रथों को कान्ति नष्ट हो गई और वे आकाश मार्ग में इधर-उधर गिरने पड़ने लगे ।२१। इस प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणों द्वारा आच्छादित, वरुण के पाश द्वारा बाँधे हुए आकाश में अवस्थित उन दानवों को मायावी मय ने देखा ।२२। और शिलाओं के समूहों से संयुक्त, खड्ग एवं चर्म (ढाल) से युक्त होकर घोर शब्द करनेवाली, घने वृक्षों से युक्त, अति भयानक शिखरोंवाली, कदराओं एवं जंगलों से आकीर्ण सिंह तथा व्याघ्र के समूहों से संकुलित, गरजते हुए बड़े-बड़े गजराजों से युक्त, विविध जाति के भृगों से अकीर्ण, पवन द्वारा कँपाये जाते वृक्षों से संयुक्त, अपने ही प्रयत्न से बनाई गई, घोर शब्द करनेवाली, इच्छानुरूप शत्रु पर जानेवाली पर्वत की माया को देवताओं की

---

[1] ग. ङ. °श्मिना । म° । [2] ग. घ. ङ. सशैल° । [3] ङ. °ङ्गदंष्ट्रोग्रहा° । [4] ग. र्मासिहा° ।
[5] ग. दपात्क्टां तां च क° । [6] ङ. °टरूपाग्रां । [7] ग. ङ. पुत्रेण ।

[1]ससिशब्दैः शिलवर्षैः संपतद्भिश्च पादपैः । जघान देवसंघांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२६
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः । असिभिश्चाऽऽयसगणैः किरन्देवगणान्रणे ॥२७
साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसंकटा । अभवद्घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥२८
[2]अश्मना [3]प्रहताः केचिच्छिलाभिः शकलीकृताः । नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन ॥२९
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् । निप्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥३०
स हि युद्धगतः [4]श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत । सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥३१
कालज्ञः कालमेघाभः *समीक्षन्कालमाहवे[5] । देवासुरविमर्दं तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥३२
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ । चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ॥३३
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे । दग्धा स पार्वती माया भस्मीभूता[6] ननाश ह ॥३४
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः । दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्छितौ ॥३५

सेना के चारों ओर छोड़ा ।२३-२५। मय द्वारा छोड़ी गयी वह माया खड्गों का शब्द करती हुई शिलाओं की वृष्टि एवं ऊपर गिरते हुए वृक्षों द्वारा देवताओं का संहार करने लगी और दानव गणों को जलाने लगी ।२६। उसके प्रभाव से चन्द्रमा तथा वरुण दोनों की माया अन्तर्हित हो गई। दैत्य ने रण में लोहे के विविध अस्त्रों तथा तलवारों से देवताओं के समूहों को आच्छादित कर पृथ्वी को पत्थरों, अस्त्रों, वृक्षों, तथा पर्वतों को गिराकर पर्वतों की भाँति दुर्गम बना दिया ।२७-२८ कुछ देवता पत्थरों द्वारा मार डाले गये, कुछशिलाओं से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये, और कुछ वृक्षों से छिपे से दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार वह देवताओं की सारी सेना, बेकार सी हो गई, उस सेना में केवल गदाधर भगवान् विष्णु को छोड़ कर शेष सभी लोगों के धनुष टूट गये और अन्य सभी हथियार व्यर्थ से हो गये ।२९-३०। युद्ध भूमि में विराजमान शोभा सम्पन्न वे जगत् के स्वामी भगवान् तनिक भी अपने स्थान से विचलित नहीं हुए, और सहन शील होने के कारण क्रुद्ध भी नहीं हुए ।३१। काल की महिमा जाननेवाले कृष्ण मेघ के समान शोभायमान् वे भगवान् उस समय देवासुर संग्राम को देखने की से युद्ध में उपयुक्त अभीष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए अवस्थित थे ।३२। तदन्तर युद्ध में भगवान् विष्णु से देखे गये अग्नि और पवन इन दोनों देवताओं ने उन्हीं की आज्ञा से उस मय की माया को अपने में खींचना प्रारम्भ किया ।३३। उस महायुद्ध में अति वेगशाली, पूर्ण वृद्धि की सीमा को पहुंचे हुए उन दोनों देवताओं के प्रभाव से वह पर्वत की माया जल गई और भस्मसात् होकर एकदम नष्ट हो गई, तथा वह पवन अग्नि के साथ, तथा अग्नि पवन के साथ मिलकर युगान्त की भाँति अति विह्वल होकर दैत्यों को सेना को जलाने लगे ।३४-३५।

---

* अत्रपरस्मैपदमार्षम् ।

[1] ग. सिसंघैः शि° । [2] ग. °ना च हता देवा शिलाभिश्च वशीकृ° । [3] ङ. °हता देवाः शिलाभिश्च समुद्धरैः । न चारु° । [4] ग. °मानसौ न° । [5] ङ. °मीक्ष्य काल° । [6] ग. ङ. °ता गता तदा सो ।

वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् । चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ॥३६
भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च । दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ॥३७
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके । मायाबन्धे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ॥३८
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने । संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ॥३९
जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये । दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे ॥४०
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे । प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चरित्रबन्धुषु ॥४१
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु । अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ॥४२
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च । लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु+ ॥४३
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् । देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ॥४४
त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे । अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे ॥४५
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु[1] सद्धर्मेष्वाश्रमे षु च । प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥४६

युद्धभूमि में आगे-आगे वायु देव दौड़ने लगे, उनके पीछे अग्नि चले, फिर पीछे वायु दौड़े, इस प्रकार अग्नि की क्रीड़ा करते हुए दौडंने लगे' ।३६। दैत्यों र्क सेना जलती हुई इधर-उधर भागने लगी, दानवों के विमान इधर-उधर गिरने लगे दैत्यों के कंधे वायु से अकड़ गये, फिर अग्नि से जल गये —इस प्रकार जब दैत्य की माया नष्ट हो गई, चारो ओर से गदाधर भगवान् की स्तुति होने लगी, दैत्य गण निष्प्रयत्न हो गये, त्रैलोक्य का बन्धन छूट गया, देवतागण प्रसन्न होकर चारों ओर से 'बड़ा अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ' कहकर शोर गुल करने लगे ।३७-३९। सहस्र नेत्र इन्द्र की सेना जीत गई और दैत्य गण पराजित हो गये, सारी दिशाएं स्वच्छ हो गईं, धर्म का विस्तार हो गया ।४०। चन्द्रमा शुभ्र होकर प्रकाशित हो गये, सूर्य अपने स्थान पर विराजमान हो गये तीनों लोक निश्चिन्त हो गये, सभी में चरित्र बल एवं परिवार की भावना आ गई ।४१। यजमान गण यज्ञ करने लगे, पाप शान्त हो गये, मृत्यु का बन्घन बँध गया, अग्नि में विधिवत् हवन होने लगा ।४२। यक्षों की शोभा बढ़ानेवाले देवगण स्वर्ग की प्राप्ति के लिए होने वाले इन शुभ कर्मों को देखने लगे, लोक पाल गण अपने अपने निवास स्थानों को प्रस्थित हो गये ।४३। सिद्ध तपस्वी गण पुण्य कर्मों में प्रवृत्त हो गये, पाप कर्मों का आभाव हो गया, देव पक्ष प्रमुदित हो गया, दैत्य पक्ष चिन्तित हो गया ।४४। धर्म तीन चरणों द्वारा स्थित हुआ, अधर्म का एक चरण रह गया, सत्पथ महा द्वार खुल गया, सभी लोग सधर्म में और अपने-अपने आश्रमों में प्रवृत्त हो गये । राजा लोग प्रजा की रक्षा में तत्पर होकर शोभित होने लगे ।४५-४६। इस प्रकार उस रण में अग्नि और

+ इतः परं सत्पथ इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ङ. पुस्तके ।

[1] क. ख. °षु सुधर्मे° । घ. ङ. °षु सुधर्मे ।

प्रशान्तकलमषे लोके शान्ते तमसि [1]दानवे । अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते सङ्ग्रामकर्मणि ॥४७
[2]तन्मया [3]विपुला [4]लोकास्ताभ्यां कृतजयक्रियाः । पूर्वं दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ॥४८
कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत । [5]भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥४९
मन्दराद्रिप्रतीकाशो महारजतसंवृतः । शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ॥५०
शतशीर्षः स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्गः इवाचलः । कक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः ॥५१
धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुः संदष्टौपुटाननः । त्रैलोक्यान्तरविस्तारि धारयन्विपुलं वपुः ॥५२
बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्यां महीधरान् । ईरयन्मुखनिःश्वासैर्वृष्टियुक्तान्बलाहकान् ॥५३
तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् । दिधक्षन्तमिवाऽऽयान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे ॥५४
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश । संवर्तकाले [6]तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ॥५५
सुतलेनोच्छ्रायवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा । लम्बाभरणपूर्णेन [7]किंचिच्चलितकर्मणा ॥५६

वायु के घोर संग्राम होने के बाद लोक का पाप शान्त हो गया और तमोगुण रूप दानव दब गये ।४७। सभी विशाल लोक उन दोनों देवताओं के पराक्रम द्वारा प्राप्त किये विजय लाभ से युक्त हो गये । तब उस अवसर पर अग्नि और वायु द्वारा उत्पन्न दानवों के लिए अति भय की चर्चा सुन कालनेमि नाम से विख्यात दानव रणभूमि में दिखाई पड़ा । उसका मुकुट सूर्य के समान था, सुन्दर शब्द करते हुए अंगद आदि आभूषणों से वह अलंकृत था ।४८-४९। उस समय वह सुवर्ण से युक्त मन्दराचल के समान शोभायमान हो रहा था, उसने अति भयानक सौ हथियार धारण किये थे, उसके सौ बाहु थे, सौ मुख थे ।५०। सौ सिरों से शोभायमान वह दानव रण भूमि में सौ शिखरवाले पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था । विस्तृत युद्ध के मैदान में तेज से अतिशय बढ़ा हुआ वह दानव ग्रीष्म कालीन अग्नि की भाँति दिखाई पड़ रहा था ।५१। धुएँ के समान उसके केश थे, दाढ़ी हरे रंग की थी, ओठों के दल फड़क रहे थे । त्रैलोक्य भर में विस्तृत विपुल शरीर धारण किये हुए था ।५२। बाहुओं से आकाश को नापता हुआ-सा पैरों से पर्वतों को फेंक रहा था, मुख द्वारा फेंकी गरम श्वासों से वह जलयुक्त बादलों को इधर से उधर कर देता था ।५३। इस प्रकार उस तिरछे किये हुए बड़े बड़े लाल नेत्रोंवाले, मन्दराचल की भाँति उत्कट तेजोमय सभी देव समूहों को जलाते हुए की भाँति आये हुए कालनेमि को, जो इशारे मात्र से देवताओं को भयभीत कर रहा था, तथा विशाल शरीर से दसों दिशाओं को आच्छादित कर रहा था, युद्ध में आये हुए वीरों ने देखा । उस समय वह प्यासे प्रलयकाल को भाँति उठा हुआ दिखाई पड़ रहा था ।५४-५५। रणभूमि में आये हुए कालनेमि ने मोंटी गाँठोंवाली अंगुलियों से युक्त, सुन्दर हथेलियों वाले, ऊँचे

---

[1] ङ. दारुणे । [2] ग. °न्मयो विमलो लोकस्ता° । च. °न्मये विमले लोके ताभ्यां । [3] ङ. विमला । [4] क. ख. °भ्यां तज्जयकृत्क्रि° । घ. °भ्यां जयभृतक्रियाः । पू° । ङ. °भ्यां जयधृतिक्रियाः । पू° । [5] ग. ङ. °टः स्फूर्जिता° । [6] ग. हृषितं । [7] ख. घ. °तवर्भ° ग. °तवर्ष्मगा । ङ. °तधर्म° ।

उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता । दानवान्देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ॥५७
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम् । वीक्षन्ते स्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ॥५८
तं [1]वीक्षन्ते स्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् । [2]त्रिविक्रमाधिकमतं नारायणमिवापरम् ॥५९
[3]सोऽत्युच्छ्रयपुरःपादमारुताघूर्णिताम्बरः । प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयायास देवताः ॥६०
स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे । कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः ॥६१
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः । कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ॥६२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥९३९८॥

दाहिने हाथ से, जिसमें लटकते हुए आभूषण शोभित हो रहे थे, और जो उस समय कुछ चंचल हो रहा था, देवताओं द्वारा मारे गये दानवों से कहा — 'अब तुम सब उठो' ।५६-५७। इस प्रकार दैत्यों को उद्बोधित करते हुए शत्रुओं के लिए काल के समान भीषण चेष्टावाले कालनेमि को सब देवगण अतिभयपूर्ण कातर नेत्रों से देखने लगे ।५८। रणभूमि में घूमते हुए उस भयानक कालनेमि को सभी प्राणियों ने स्वर्ग में घूमते हुए दूसरे नारायण के समान देखा ।५९। अति विशाल शरीर वाले उस कालनेमि के वेग पूर्वक चलते हुए पैरों की वायु से आकाश कंपित होने लगा । इस प्रकार उसने देवताओं को युद्ध में भयभीत कर दिया ।६०। रण के मैदान में कालनेमि के आने पर मय ने उसे छाती से लगाया, उस समय वह दैत्य इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था मानों विष्णु भगवान् के साथ मन्दराचल दिखाई पड़ रहा हो ।६१। दूसरे काल की भाँति युद्ध के मैदान में आये हुए कालनेमि को देखकर इन्द्र आदि समेत सभी देवगण अत्यन्त दुःखी हुए ।६२।

श्री मत्स्य महापुराण में तारकामय युद्ध नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७६॥

---

[1] क. ख. घ. °क्षन्ति स्म । [2] क. ग. ङ. °क्रम बिक्रमन्तं ना° । [3] ग. ङ. सोऽम्युच्छ्रिय पुरः पादं मां° ।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

[1]दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः । व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥१
*तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः । उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वाऽमृतमनुत्तमम् ॥२
ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः। तारकामयसङ्ग्रामे सततं जितकाशिनः ॥३
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः । मन्त्रमभ्यसतां तेषां [2]व्यूहं च परिधावताम् ॥४
प्रेक्षतां चाभवत्प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् । ये तु [3]तत्र मयस्याऽऽसन्मुख्या युद्धपुरःसराः ॥५
ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः । मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि । अरिष्टो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः । एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः ॥८
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम् । ते [4]गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैरथ परश्वधैः ॥९

अध्याय १७७

मत्स्य ने कहा—दानवों की सेना में महातेजस्वी तथा परम बलशाली वह कालनेमि दैत्य वर्षा ऋतु के बादल के समान दिखाई पड़ रहा था ।१। तीनों लोकों के अन्दर आये हुए उसको देख कर बड़े-बड़े दानव गण विना किसी परिश्रम का अनुभव किये ही उठ खड़े हो गये। और सब लोग उत्तम अमृत रस का पानकर भय को छोड़ मय तथा तारकासुर को प्रथम रख उस तारकामय संग्राम में सर्वदा जीतनेवाले के समान शोभाशाली हुए और युद्ध की अभिलाषा से मैदान में भविष्य के बारे में सलाहें करने लगे, इधर-उधर दौड़ने लगे, व्यूह रचना करने लगे, एक दूसरे को देखने लगे । और सभी के चित्त में कालनेमि के प्रति प्रेमभाव का उदय हुआ ।२-४½। फिर उस युद्ध में जो मय की सेना के आगे चलनेवाले प्रमुख दानव थे, वे सब भय को छोड़कर अति हर्षित हो युद्ध करने के लिए उपस्थित हुए ।५½। मय, तारक, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत, दोनों खर और लम्ब, बलि का पुत्र अरिष्ट, किशोर, स्वर्भानु प्रसिद्ध चामर, महाअसुर वक्त्रयोधी —ये सब के सब दानव शस्त्रास्त्र विद्या के जाननेवाले तथा तपस्या में सुनिपुण थे ।६-८। युद्ध में वे सब बलवान् एवं निपुण दानव उद्धत चित्तवाले कालनेमि के पास गये और गदा, भुशुण्डि

---

* इत आरभ्य पुरोगमा इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ग. पुस्तके ।

[1] ग. °वानां च पिप्रीषुः का° । घ. °वानां तु पिप्रीषुः का° । [2] ग.च. गूहं । [3] ग. °त्र भयादासन्युद्धात्सर्वे पराङ्मुखाः । ते । [4] ग. °भिश्च गुर्वीभिश्चक्रै° ।

कालकल्पैश्च मुसलैःक्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ॥१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः । घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥११
युगैर्यन्त्रैश्च [1]निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः । [2]दोर्भिश्चाऽऽयतदीप्तैश्च प्रासैः पाशैश्च मूर्छनैः ॥१२
[3]भुजंगवदनैः[4] क्रूरैर्लेलिहानैश्च सायकैः । वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ॥१३
विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः । दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥१४
ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे । सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यनां रुरुचे [5]चमूः ॥१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा [6]घनानीलाम्बुदागमे । देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ॥१६
उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः । वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥१७
तोयदा विद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी । यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च [7]धीमता ॥१८
संप्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा । सा समुद्रौघ सदृशी दिव्या देवमहाचमूः ॥१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी । तयोश्चम्वोस्तदानीं तु बभूव स समागमः ॥२०
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये । तद्युद्धमभवद्धोरं देवदानवसंकुलम् ॥२१

चक्र, रथ, फरसा, काल के समान मूसल, फेंके जानेवाले मुद्गर, पर्वत के समान भीषण शिलाएँ, अतिदारुण बड़ी-बड़ी पत्थरों की चट्टानें, पट्टिश,, भिन्दिपाल, श्रेष्ठ लोहे के बने परिघ, बड़ी भीषण एवं संहार करनेवाली तोपें, हाथों से छोड़े गये अति भयानक बाण, अति दीप्त भाले, पाश, मूर्च्छन, जीभ लपलपाते हुए सर्पों के समान मुखवाले चलते हुए तीक्ष्ण बाण, फेंके जाते हुए वज्र, चमकते हुए तोमर, अति तीक्ष्ण म्यान रहित तलवार, श्वेत निर्मलशूल—आदि शस्त्रास्त्रों से युक्त क्रोध से जलते हुए मतवाले दैत्यों ने धनुष लेकर युद्ध भूमि में विजयार्थ युद्ध प्रारम्भ किया ।९-१४। उस महायुद्ध में कालनेमि को आगेकर जलते हुए भयानक अस्त्रों से लैस दैत्यों की वह सेना इस प्रकार सुशोभित होने लगी मानो सारा आकाश मण्डल काले बादलों से छुप गया हो ।१५½। उधर इन्द्र द्वारा सुरक्षित देवताओं की विशाल सेना श्वेत और कृष्ण रङ्ग की दिखाई देती हुई सूर्य तथा चन्द्रमा से युक्त' वायु के वेग से युक्त, तारागणों को पताका बनाये हुए अति सुन्दर दिखाती हुई, वस्त्र की भाँति बादलों से युक्त तथा ग्रहों और नक्षत्रों से हँसती हुई सी, यमराज, वरुण, इन्द्र एवं बुद्धिमान कुबेर से अभिरक्षित प्रज्ज्वलित अग्नि रूप नेत्रों से युक्त और नारायण के आश्रित हो सुशोभित हो रही थी । इस प्रकार अति भयदायिनी वह देवसेना यक्षों एवं गन्धर्वों के गणों से युक्त सागर समूह के समान विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थी । युद्धभूमि में उन दोनों विशाल वाहिनियों

---

१. ग. °णैर्य. त्रता° । घ. °णैरग्र° । २ ग. ङ. °तपीनाभिः प्रा° । ३ ग. च. °जंगैर्लेलिहानैश्च विसर्प । ४ क. ख. घ. °गवक्त्रैर्लेलिहानैः विसर्पद्भिश्च । ५ घ. °मूः । तैर्नि° । ६ ग. °नानां चाभ्युपाग° । ७ ग ङ. °ता । सा प्रदीप्ताग्निवदना ।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च । निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु [१]भीमास्तत्र सुरासुराः ॥२२
पुर्वापराभ्यां [२]संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः । ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ॥२३
वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां [३]यथाऽऽगमाः । समाजघ्नुस्ततो भेरीः [४]शङ्खान्दध्मुरनेकशः ॥२४
स शब्दो द्यां भुवं खं च दिशश्च समपूरयत् । ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ॥२५
दुंदभीनां च निनदो [५]दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् । तेऽन्योन्यमभिसंपेतुः पातयन्तः परस्परम् ॥२६
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वंद्वमन्ये युयुत्सवः । [६]देवास्तु चाशनिं घोरं परिघांश्चोत्तमायसान् ॥२७
निस्त्रिंशान्ससृजुः संख्ये गदा गुर्वीश्च दानवाः । गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः ॥२८
परिपेतुर्भृशं केचित्पुनः केचित्तु जघ्निरे । ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाऽऽशुगामिभिः ॥२९
समीयुस्ते सुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे । संवर्तमानाः समरे संदष्टौष्ठपुटाननाः ॥३०

का समागम हुआ ।१९-२०। वह समागम उस समय प्रलयकालीन आकाश तथा पृथ्वी के समागम की भाँति भयावना था । देवताओं तथा दानवों की विशाल भीड़ से अति घोर युद्ध होने लगा ।२१। क्षमा, पराक्रम, दर्प एवं विनयपूर्वक वह युद्ध हो रहा था । कुछ अति भयानक देवता तथा दानव, देवताओं तथा दैत्यों की सेना से निकल कर युद्ध करने लगे ।२२। पूर्व और पश्चिम में खड़ी हुई उन सेनाओं से निकलते हुए वे वीर इस प्रकार दिखलाई पड़ रहे थे मानों पूर्व तथा पश्चिम के समुद्रों से अति विशाल एवं क्षुब्ध बादलों के समूह । उस समय देव तथा दानवों की सेना इस प्रकार प्रसन्नचित्त घूम रही थी मानों पर्वत के फूले हुए जङ्गलों में हाथियों के समूह घूम रहे हों ।२३½। तदनन्तर उन दोनों सेनाओं में अनेक प्रकार के शंख, भेरी आदि रणवाद्यों का बजना प्रारम्भ हुआ और वे शब्द आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग एवं दसों दिशाओं भर में व्याप्त हो गये, धनुषों की प्रत्यञ्चा के कठोर शब्द सुनाई देने लगे । देवताओं की दुन्दुभियों के स्वर ने दैत्यों के रण वाद्यों के स्वरों को दबा दिया । दोनों सेनाओं के सैनिक परस्पर एक दूसरे को लक्ष्य कर प्रहार करने लगे, और आहत कर गिराने लगे ।२४-२६। हाथों से हाथों में प्रहार करने लगे, युद्ध के अभिलाषी कुछ द्वन्द्व युद्ध करने लगे । देवतागण अति भयानक वज्र, तथा लोहे के बने हुए श्रेष्ठ परिघों को दानवों के ऊपर छोड़ने लगे ।२७। दैत्यगण युद्ध में भारी गदाएँ तथा छुरियाँ और कटारें लेकर प्रहार करने लगे । गदाओं की चोटों से टूटे-फूटे अंगों वाले, बाणों से टुकड़े टुकड़े किये गये कुछ देवतागण बारम्बार पृथ्वीतल पर गिरने लगे और कुछ मृत्यु के मुख में चले गये ।२८½। घोड़ों समेत रथों से तथा शीघ्र चलनेवाले विमानों से अतिक्रुद्ध हुए वीरगण युद्ध में एक दूसरे के ऊपर घोर प्रहार करने लगे ।२९½। रण के मैदान में आये हुए वीरगण ओठों को फड़काते हुए से रथों रथों पर और

---

[१] ग. ङ. °माभ्यां तु महासुराः । [२] ङ. सरवाः । [३] क. ख. °था गजाः । °ग । ग. ङ. °था नगाः । सु° । [४] ग. ङ. °शः । अपोभुवं च खं चैव दि° । [५] घ. °दंधे स्व° । [६] ग. ङ. देवताः शरवृष्टीश्च प° ।

रथा [१]रथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः। तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ॥३१
[२]नभोनभश्च हि यथा नभस्यैर्जलदस्वनैः। बभञ्जुस्तु [३]रथान्केचित्केचित्संमर्दिता रथैः ॥३२
संबाधमन्ये संप्राप्य न सेकुश्चलितुं [४]रथाः। अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ॥३३
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः। अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हता युधि ॥३४
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां [५]समागमे। तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ॥३५
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ। तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥३६
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ। एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः [६]कालनेमिः स दानवः ॥३७
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः। तस्य [७]विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ॥३८
गात्रैर्नागगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः। [८]क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य [९]भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ॥३९
[१०]साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः। तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ॥४०

पैदलों से पैदलों पर आक्रमण करा रहे थे। शब्द करते हुए उन दोनों सेनाओं के रथों के एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए ऐसा मालूम हो रहा था मानों भाद्रपद के बादलों के समूह परस्पर भिड़ गये हों कुछ वीर तो रथों को ही तोड़ रहे थे और कुछ रथों की मार से मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे।३०-३२। कुछ अन्य रथ आगे युद्ध भूमि के अवरुद्ध हो जाने के कारण आगे चलने में असमर्थ हो रहे थे युद्ध में वीरगण एक दूसरे को अपनी बाहुओं से घसीट-घसीट कर, पटक-पटक कर मारने लगे।३३। चर्म धारण करनेवाले कुछ वीरों के आभूषण शब्द कर रहे थे, कुछ अन्य वीरगण अस्त्रों से अत्यन्त घायल होकर रक्त वमन कर रहे थे।३४। इस प्रकार युद्धभूमि में जल की भाँति रक्त बहाते हुए वे दानवगण सचमुच बादलों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। अस्त्रों तथा शस्त्रों से संयुक्त, फेंकी और प्रहार की जाती हुई गदाओं से आकीर्ण, देवताओं तथा दानवों से संकुलित एवं क्षुब्ध वह युद्ध शोभित हो रहा था देवताओं के हथियारों से सुशोभित वह दानव सैन्यरूपी महामेघ शोभित हो रहा था।३५-३६। एक दूसरे की वाणवृद्धि से युद्ध रूप दुर्दिन (वर्षा काल) उपस्थित हो गया था। इसी बीच कालनेमि दानव युद्ध भूमि में आगे निकला, उस समय वह क्षुब्ध समुद्र से वृद्धि को प्राप्त हुए बादल की भाँति शोभित हो रहा था।३७½। उसके विजली के समान चंचल दिखाई पड़ने वाली शिर की मालाओं से युक्त शरीर के अंगो से टकराकर हाथी तथा पर्वत के समान भीषण जलते हुए वज्र के बरसाने वाले बादल इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। क्रोध से श्वास खींचते हुए तथा भृकुटि के टेढ़े करने से पसीना बहने के साथ ही साथ उसके विकराल मुख से अग्नि की चिनगारियों से युक्त ज्वालाएँ निकलने लगीं, उसकी विशाल बाहुएँ आकाश में टेढ़ी मेढ़ी होकर बढ़ने लगीं वे

---

१ ङ. 'न्ते पदा°। २ ग. °भस्यौ हि। ङ. °भस्यौ हि यथा नभस्ये ज°। ३ ग. ख. °त्संपाटिता। ४ क. ख. रथान्। ग. रणात्। ५ क. ख. घ. °ग। तैरस्त्रश°। ६ क. ख. °नेमी स। ७ क. ख. °पीडैः प्र°। ८ ङ. °स्य क्लेदस्वेदैर्विव°। ९ ग. ददर्शिनः। सा°। १० ग. °ग्नि धूमयुतास्तस्य मु°।

पर्वतादिव निष्क्रान्ता पञ्चास्या इव पन्नगाः । सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ॥४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव । सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ सङ्ग्रामलालसः ॥४२
संध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः । उरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ॥४३
अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन् । बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः ॥४४
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि । मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचित्तु विदलीकृताः ॥४५
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः । तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥४६
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः । तेन शक्रः सहस्राक्षः स्पन्दितः शरबन्धनैः ॥४७
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह । निर्जलाम्भोदसदृशो [1]निर्जलार्णवसप्रभः ॥४८
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे । रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा ॥४९
+ वित्तदोऽपि[2] कृतः संख्ये निर्जितः कालनेमिना । यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे ॥५०
[3]याम्यामवस्थां संत्यज्य भीतः स्वां दिशमाविशत् । स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषां च कर्म तत् ॥५१

उस समय ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानों पाँच मुख वाले सर्प पर्वत से निकल रहे हों ।३८-४०½। उस दानव ने अपने अनेक प्रकार के अस्त्रों के समूहों से, धनुषों से तथा परिघों से आकीर्ण आकाश मण्डल को मानों उच्च पर्वतों से आच्छादित सा कर दिया ।४१½। उस समय उसके वस्त्र वायु से हिल रहे थे, जिससे संग्राम का अभिलाषी वह दानव, रणभूमि में सायंकालीन धूप से प्रकाशित चट्टानोंवाले साक्षात् सुमेरु पर्वत की भाँति दिखलाई पड़ रहा था। जंघों के वेग से तोड़े गये शैल शिखर के अग्रवर्ती वृक्षों से मार-मारकर देवताओं को वह इस प्रकार पृथ्वी पर सुला दिया जैसे वज्र से विशाल पर्वत तोड़े गये हों ।४२-४३½। कालनेमि द्वारा आहत अनेक प्रकार की छूरियों तथा कटारों से कटे फटे केशोंवाले देवगण युद्धभूमि में चलने में असमर्थ हो गये, मुष्टि के प्रहार से कुछ तो मर गये और कुछ टूट फूट कर छिन्न-भिन्न हो गये, बड़े बड़े-सर्पों के साथ यक्षों ओर गन्धर्वों के यूथपति गिर पड़े ।४४-४५½। उस कालनेमि से डराये गये देवगण युद्ध भूमि में अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी बेहोशी के कारण कुछ भी करने में असमर्थ रहे। बाणों के बन्धनो से कँपाये गये सहस्रनेत्र इन्द्र भी रण में ऐरावत पर बैठे हुए इधर उधर टस से मस तक नहीं हो सके। उस समय उनकी दशा निर्जल बादल के समान और निर्जल समुद्र के समान हो रही थी ।४६-४८। युद्ध में पाश रहित वरुण भी उस दानव से निर्व्यापार कर दिये गये थे। इच्छानुरूप स्वरूप धारण करनेवाले दानव कालनेमि ने परिघों से मार कर विश्रवण धनपति कुबेर को भी युद्ध में पराजित कर दिया। उस मृत्युदायक रण में सब को विनष्ट करनेवाले यमराज भी पराजित कर दिये गये, वे भयभीत होकर अपनी दक्षिण दिशा में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार सभी लोकपालों को रण

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—विलपं लोकपालेशः स्त्याजितो धनदक्रियामिति ।

[1] ङ. °व संवपुः । नि° । [2] ग. °दो विक्र° । [3] ख. घ. याम्यां दिशं तु संत्यज्य भीतः स्वान्यां समाविश° ।

दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा । स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं [१]स्वर्भानुदर्शनम् ॥५२
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् । चालयामास [२]दीप्तांशुं [३]स्वर्गद्वारात्स भास्करम् ॥५३
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च । सोऽग्निं [४]देवमुखं दृष्ट्वा चकाराऽऽत्ममुखाश्रयम् ॥५४
वायुं च तरसा जित्वा[५] चकाराऽऽत्मवशानुगम् । स समुद्रान्समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ॥५५
चकाराऽऽत्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः । अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥५६
स स्वयंभूरिवाऽऽभाति महाभूतपतिर्यथा । सर्वलोकमयो दैत्यः [६]सर्वभूतभयावहः ॥५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान् । स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥५८
[७]पावकानिलसंपातो रराज युधि दानवः । पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां [८]प्रभवाप्यये ॥
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥५९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६४५७॥

के मैदान से बाहर खदेड़ कर उनके कर्मों को उसने स्वयं सम्हाला ।४९-५१। और चारो दिशाओं में अपने शरीर को चार भागों में विभक्त कर स्थापित किया । नक्षत्रों के विचरण करने योग्य दिव्य मार्ग में जाकर उसने राहु की अभिलषित चन्द्रमा की शोभा को हर कर उसके अधीन रहनेवाले महान् साम्राज्य एवं कार्यों को भी अपने अधीन किया । स्वर्ग द्वार में प्रदीप्त किरणों वाले भास्कर को अपने स्थान से विचलित कर दिया ।५२-५३। और उनके सायन एवं दिन आदि के रचने की शक्ति को स्वाधीन कर लिया । उसने अग्नि को सब देवताओं का मुख रूप देख कर उसे अपने ही मुख में कर लिया । और वायु को पराजित कर अपने अधीन बना लिया ।५४½। अपने अनुपम पराक्रम से सभी समुद्रों को तथा नदियों को बलपूर्वक अपने मुख में रख लिया । इस प्रकार नदियाँ उसके शरीर के अधीन हो गईं । आकाश और भूमि —सभी स्थलों पर वर्तमान जलराशि को अपने अधीन कर वह महाभूपति स्वयम्भू उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा के समान शोभित हुआ । उस समय सारे लोग उससे व्याप्त थे, सभी जीवों को वह भय देने वाला था ।५५-५७। इस प्रकार सभी लोकपालों के एक मात्र मूर्तमान रूप उस दानवराज ने जो चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य ग्रहपिण्डों से भी संयुक्त था, पर्वतों से सुरक्षित जगती तल स्थापित किया ।५८। इस प्रकार युद्ध के मैदान में अग्नि और वायु के वेग के समान शक्तिमान् वह दानव कालनेमि सभी लोकों के उत्पत्ति-कर्त्ता परमेष्ठी ब्रह्मा के समान पद पर अवस्थित होकर शोभित हुआ । दानव गण उसकी स्तुति करने लगे, उस समय वह देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए ब्रह्मा के समान शोभित हो रहा था ।५९।

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय युद्ध नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७७॥

---

[१] ग. ङ °दर्शितम् । ज° ।
[२] ग. ङ. °शुं धर्मद्वा° ।
[३] घ. °द्वारां सभास्कराम् । सा° ।
[४] ग. घ. °मुखा द्धत्वा च° ।
[५] ङ. °त्वा विदधे स्वव° ।
[६] ग. ङ. °र्वं लोक भ° ।
[७] ग. ङ. °संयोगो र° ।
[८] क. ख. ग. °भवोपमे । तं ।

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा । वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१
स तेषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः । वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम् ॥२
स ददर्श [1]सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् । दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥३
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् । स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनं कश्यपं खगम् ॥४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम् । दानवो विष्णुमक्षोभ्यं [2]बभाषे [3]क्षुब्धमानसः ॥५
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः । [4]अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥६
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते । अनेन [5]संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः ॥७
अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः । येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥८

अध्याय १७८

मत्स्य ने कहा—विरुद्ध कर्म करने के कारण उस दानव के वश में पाँच पदार्थ—वेद, धर्म, क्षमा, सत्य, तथा भगवान् नारायण के आश्रय में रहनेवाली लक्ष्मी —नहीं हुए ।१। अतः उनकी अनुपस्थिति से वह दानवेश्वर कालनेमि क्रोध समेत विष्णुपद की प्राप्ति की इच्छा से मारायण के समीप गया ।२। वहाँ जाकर उसने गरुड़ पर समासीन शंख, चक्र, गदाधारी, सजल बादल के समान कृष्णवर्ण भगवान् विष्णु को, जो विद्युत के समान पीताम्बर धारण किये हुए गरुड़ पर शोभायमान होकर दानवों के विनाशार्थ अपनी सुन्दर गदा को घुमा रहे थे, देखा वहीं पर उसने सुन्दर आकृति, सुवर्ण के समान सुन्दर पंखवाले शिखा-युक्त कश्यप के पुत्र आकाशगामी गरुड़ को भी देखा ।३-४। दैत्यों के विनाशार्थं स्वस्थचित्त अनुपम पराक्रमी भगवान् एवं गरुड़ को रण के मैदान में देखकर दानव ने खिन्न चित्त हो भगवान् की ओर कहा ।५। हम लोगों के पूर्बजों का यही प्राणनाशक शत्रु है, समुद्र में निवाश करनेवाले मधु एवं कैटभ का जीवन इसने ही नष्ट किया है ।६। इसके साथ हम दानवों का वैर प्रसिद्ध है कि कभी शान्त नहीं है, आज ही युद्ध के मैदान में अनेक दानवों की इसने हत्या की है ।७। यह लोक में एक मात्र निर्मम एवं स्त्री और बालकों का संहार करनेवाला शर्म रहित वीर है, इसने दानवों की स्त्रियों के केशों को उपारा है ।८। यह स्वर्ग निवासी देवताओं का विष्णु एवं

---

१ ग. ङ. च. °स्थं स्वं स्थं । च° २ क. ख. °षे षलुब्ध° । ३ घ. ङ. नसम् । अ° । ४ ग. ङ. °सिनश्चैव मधुकैटभयोरपि । अने° । ५ ङ. गे° त्वद्य ।

अयं स विष्णुर्देवानां [1]वैकुण्ठश्च दिवौकसाम् । अनन्तो [2]भोगिनामप्सु स्वपन्नाद्यः स्वयंभुवः ॥९
अयं स नाथो [3]देवनामस्माभिर्व्यथितात्मनाम् । अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१०
अस्य च्छायामुपाश्रित्य [4]देवा मखमुखे श्रिताः । आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति [5]विधौ हुतम् ॥११
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । यस्य वक्त्रं प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥१२
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः । सवितुस्तेजसा तुल्यं [6]चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥१३
अयं स कालो दैत्यानां [7]कालभूतः समास्थितः । अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं [8]प्राप्स्यति केशवः ॥१४
दिष्टयेदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः । अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणयिष्यति ॥१५
यास्याम्यपचितिं दिष्टया पूर्वेषामद्य संयुगे । इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः । जात्यन्तरगतोऽप्येष बाधते दानवान्मृधे ॥१७
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥१८

वैकुण्ठ है, सर्पों में इसका नाम अनन्त विख्यात है, यही सर्व प्रथम स्वयम् उत्पन्न होनेवाला आद्य पुरुष है, यह हम लोगों के द्वारा व्यथित किये जाने वाले देवताओं का स्वामी है, इसके क्रोध का भाजन होकर हिरण्यकशिपु मारा गया ।९-१०। इसकी छाया का आश्रय प्राप्तकर देवगण यज्ञों में भाग लेते हैं और महर्षियों द्वारा दिये जाने वाले हवनीय द्रव्यों का, जो तीन प्रकार से अग्नि में डाला जाता है, उपभोग करते हैं । यही सभी देवशत्रुओं की मृत्यु का प्रमुख कारण कहा गया है, हमारे परिवार के लोग युद्ध में इसी के चक्र में प्रविष्ट हो गये हैं ।११-१२। प्रसिद्ध है कि देवताओं के कार्य के लिये यह युद्ध में जीवन की बाजी लगाकर युद्ध करता है और सूर्य के तेज के समान परम तेजस्वी अपने चक्र का शत्रुओं पर प्रयोग करता है ।१३। यह देवताओं का काल रूप है, और काल ही होकर यहाँ स्थित है किन्तु अब यह विष्णु अपने बीते हुये अच्छे समय का फल प्राप्त करेगा ।१४। भाग्यवश मेरे ही सामने वह केशव आ गया है, अब तो मेरी बाहुओं से पिस कर यह मुझे ही प्रेम करेगा ।१५। बड़ा अच्छा संयोग है कि आज युद्ध में मैं दानवों को भय देनेवाले इस त्रिष्णु का संहार कर अपने पूर्वजों की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करूँगा ।१६। इसके बाद शीघ्र ही देवताओं के समूहों का नाश करूँगा । अन्य जन्म धारण करके भी यह दानवों को पीड़ा पहुँचाता है ।१७। प्राचीन काल में यही अनन्त रूपधारी विष्णु पद्मनाभ होकर सृष्टि के प्रारम्भ में, जबकि समस्त जगत् एक समुद्र के रूप में था, उन मधु तथा कैटभ नामक दानवों का संहार किया था ।१८। अपने शरीर को दो भागों में एक भाग में मनुष्य

---

[1] ग. ङ. °कुण्ठोऽयं दि° । [2] ग. °नामस्सि स्वयंभूश्चं स्व° । [3] क. ख. घ. °स्माकं व्यथि° । [4] ग. ङ. °वा हविर्मुखे स्थिताः । [5] क. ख ग. त्रिधा । [6] क. ख. चक्रे । [7] ग. ङ. च. °लरूपे मयि स्थिते । अ° । [8] ग. °प्स्यसि केशव । दि° ।

द्विधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्धं नरस्य च । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥१९
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः[1] । त्रींल्ँलोकानुज्जहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥२०
भूयस्त्विदानीं सङ्ग्रामे संप्राप्ते तारकामये । मया सह समागम्य सह[2] देवैर्विनङ्क्ष्यति ॥२१
एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे । वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥२३
अल्पं दर्पबलं दैत्य स्थिरमक्रोधजं बलम् । हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद्भाषसे [3]क्षमाम् ॥२४
[4]अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् । न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥२५
अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिणम् । प्रजापतिकृतं सेतुं भित्त्वाकः स्वस्तिमान्व्रजेत् ॥२६
अद्य त्वां नाशयिष्यामि [5]देवव्यापारघातकम् । स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥२७
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि । जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान् ॥२८
स बाहुशतमुद्यम्य [6]सर्वास्त्रग्रहणं रणे । क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ॥२९

तथा दूसरे में सिंह का स्वरूप धारण कर इसी ने मेरे पितर हिरण्यकशिपु का संहार पहले किया है ।१९। देवताओं की माता अदिति ने इसी देवताओं के मंगलकारी को गर्भ में धारण किया था, इसी ने अपने तीन डगों से तीनों लोको का हरण किया था ।२०। अब इस तारकामय संग्राम में यह पुनः आ गया है, अतः मेरे साथ भिड़ कर अब देवताओं समेत नष्ट होगा ।२१। रण के मैदान में इस प्रकार की असह्य बातें करते हुए नारायण को अनेक प्रकार से धमकाते हुये उसने युद्ध करने ही की अभिलाषा प्रकट की ।२२। असुरपति के इस प्रकार असह्य आक्षेपों को सुनकर श्री गदाधर भगवान् विष्णु अपनी अपार क्षमा की महिमा से तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए प्रत्युत हँसते हुए बोले ।२३। 'दैत्य ! दर्प का बल तो बहुत अल्पकाल तक टिकता है, बिना क्रोध का जो बल होता है, वही स्थिर बल है । क्षमा को छोड़कर जो तुम ऊट पटाँग की बातें कर रहे हो, उसी गर्व के कारण अब तुम्हारा विनाश होगा ।२४। मेरी समझ में तुम अधीर दिख रहे हो, तुम्हारी इस वाक् शक्ति को धिक्कार है, जहाँ पर पुरुष नहीं रहते वहाँ स्त्रियां भी डींग हाँका करती हैं ।२५। दैत्य ! अपने पूर्वजों के अनुचित मार्ग पर तुम्हें भी चलते देख रहा हूँ, कौन ऐसा है जो ब्रह्मा की स्थापित की गई सेतु रूप कार्य प्रणाली को तोड़कर कुशल पूर्वक रह सकता है ।२६। देवताओं के कार्यों की हानि करने वाले तुम्हें मैं आज ही नष्ट करूँगा, और सभी देवताओं को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करूँगा' ।२७। रण में श्रीवत्स चिह्न से विभूषित भगवान् के ऐसा कहने पर दानव ने हँसकर अपने हाथों में हथियारों को धारण किया ।२८। रण में अति क्रोध के कारण द्विगुणित लाल नेत्रों

---

१ ग. °णि । त्रैलोक्यमाजह्रा° । २ क. ख. घ. स देवो विनशिष्यति । ३ क. ख. क्षयम् । ४ ग. ङ अधर्मस्त्वं । ५ ग. °व्यापत्तिदायिनम् । स्वे° । ६ ग. °स्त्रशरणं ।

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः । उद्यतायुधनिर्स्त्रिशा विष्णुमभ्यद्रवन्रणे ॥३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः [1]सर्वोद्यतायुधैः । न चचाल ततो युद्धेऽकम्पमान इवाचलः ॥३१
संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः । सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि । कर्मणा तेन दैत्यस्य [2]विष्णुर्विस्ममाविशत् ॥३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा । सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा [3]क्षतं च वपुरात्मनः ॥३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे । व्यवर्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥३५
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश । प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः ॥३६
ववृधे च पुनर्लोकान्क्रान्तुकाम [4]इवौजसा । तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले ॥३७
[5]ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् । सर्वान्किरीटेन लिहन्साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥३८
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः । स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥३९
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् । सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ॥४०

से अपने सौ हाथों में सभी प्रकार के अस्त्रों कों ग्रहण कर उसने विष्णु की छाती पर प्रहार किया ।२९। अन्य दानवों ने भी मय और तारकसुर को आगे कर अति तीक्ष्ण छुरी तथा कटारों से विष्णु भगवान् पर आघात किया ।३०। सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त उन अति बलवान् दैत्यों से आहत किये गये भगवान् विशाल पर्वत की भाँति रण से तनिक भी टस से मस नहीं हुए ।३१। गरुड़ द्वारा आहत महाबलवान् कालनेमि ने क्रुद्ध होकर तमाम बूते से अपनी सभी बाहुओं द्वारा अति बिशाल भयानक तथा जलती हुई गदा को उठाकर गरुड़ के ऊपर प्रहार किया । दैत्य के उस अद्भुत कर्म को देखकर विष्णु भगवान् विस्मय में आ गये ।३२-३३। जब उसने गरुड़ के ऊपर उस भीषण गदा से प्रहार किया तब गरुड़ को अति व्यथित तथा अपने को भी घायल देखकर क्रोध से लाल नेत्र हो भगवान् विष्णु ने अपने चक्र को हाथ में सम्हाला और वेगपूर्वक चलते हुये गरुड़ को साथ ले रणभूमि में आगे बढ़े ।३४-३५। उनकी भुजाएँ दशों दिशाओं में फैल गयीं । इस प्रकार केशव ने आकाश तथा पृथ्वी को आच्छादित कर लिया ।३६। और पुनः अपने परम तेज से सभी लोकों को अतिक्रान्त करते हुए से रण में बढ़े । आकाश मण्डल में असुरपतियों को तर्जित करने के लिए बढ़ते हुये मधुसूदन भगवान् की ऋषियों तथा गन्धर्वों ने स्तुति की । उस समय भगवान् विष्णु ने अपने किरीट तथा वस्त्रों से बादलों समेत आकाश को छूते हुए पैरों से पृथ्वी को आक्रान्त कर, बाहुओं से दिशाओं को व्याप्त कर अपने उस सुदर्शन चक्र को धारण किया, जो सूर्य की किरणों के समान चमक रहा था, शत्रुओं का नाश करनेवाला था, जिसमें एक सहस्र अरे लगे हुये थे ।३७-३९। भीषण अग्नि की भाँति घोर होते हुए भी वह सुदर्शन (देखने में सुन्दर) था,

---

[1] ङ. सर्वायुधोद्यतैः । न । [2] म. °मागमत् । य° ङ. °मागतः । य° । [3] क. ख. घ. कृतं ।
[4] ङ. °सा । तं जयाय सु° । [5] ग. षयः सहगन्धर्वैस्तु° । ङ. षयः सिद्धग° ।

मेदोस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसंभवैः । अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥४१
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् । स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥४२
[१]महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् । क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः[२] सस्थाणुजङ्गमाः ॥४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यन्ति महामृधे । [३]तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा ॥४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः । स मुष्णन्दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥४५
चिच्छेद बाहुं चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः । तच्च वक्त्रशतं घोरं [४]साग्निपूर्णाट्टहासि वै ॥४६
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः । स च्छिन्नबाहुर्विशिरा[५] न प्राकम्पत दानवः ॥४७
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः । संवितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम् ॥४८
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् । स तस्य देहो विमुखो विबाहुः खात्परिभ्रमन् ॥४९
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम् । तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ॥५०

सुवर्ण की धूलि से सुशोभित तथा वज्र की नाभि से युक्त था, शत्रुओं को भय देनेवाला था ।४०। उस में दानवों के शरीर से निकले हुये मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रक्त लगे हुये थे, उसकी उपमा किसी अन्य अस्त्र से नहीं की जा सकती । उसके मण्डल के चारों ओर छुरे के समान तीक्ष्ण धारें थीं ।४१। उसमें मालायें तथा हार सुशोभित हो रहे थे, वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला तथा अभीप्सित स्थान पर जाने वाला था । सभी शत्रुओं को भय प्रदान करनेवाले उन श्रेष्ठ चक्र को स्वयम् भगवान् ब्रह्मा ने बनाया था, महर्षियों के क्रोधों से आविष्ट तथा युद्ध में सर्वदा विजय प्राप्त कर गर्व करने वाला था । उसके प्रहार करने पर सभी स्थावर जंगम जीव भयभीत हो जाते थे ।४२-४३। महा समर में जब उसका प्रहार होता था तब मांस खानेवाले जीव तृप्ति प्राप्त करते थे, इस प्रकार सूर्य के समान अति तेजस्वी उस चक्र के सभी कर्म अनुपम एवं उग्र थे ।४४। उस भीषण सुदर्शन चक्र को उठा कर गदाधर भगवान् ने क्रोध से जलते हुए की भाँति रणभूमि में अपने तेज से दानव के तेज को अस्त करते हुये प्रहार किया और कालनेमि के बाहु को काट डाला । तदनन्तर उस दैत्य के अग्नि के समान तेजस्वी भीषण अट्टहास करते हुये सौ मुखों को भी हरि ने काट डाला ।४५-४६½। किन्तु शिर और बाहु से विहीन होकर भी वह दानव रण के मैदान से विचलित नहीं हुआ । उसका शिर रहित कबन्ध (धड़) रण में डाल रहित वृक्ष की भाँति खड़ा ही रह गया ।४७½ तदनन्तर गरुड़ ने अपने दोनों पंखों को को फैलाकर अपने वेग को वायु के समान कर अपनी छाती से धक्का मारकर कालनेमि को नीचे गिरा दिया ।४८½। आकाश से गिराया गया उस दानव का शिर तथा बाहु रहित शरीर पृथ्वी तल को क्षुभित करते हुये नीचे गिरा ।४९½। उसके गिरने पर ऋषियों समेत देवगण भगवान् वैकुण्ठ (विष्णु) के समीप आकर 'बहुत

---

[१] ग. °वैर्गविष्टं नित्यमाहवजृम्भित° । [२] ङ. °काः स्थावरज° । [३] ग. ङ. °कर्माणं स° । [४] ग. °ग्निचूर्णविहा° । ङ °ग्निकृत्वाऽट्ट° । [५] ङ. °रा निपपात च दा° ।

साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् । अपरे ये तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः ॥५१
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे । कांश्चित्केशेषु जग्राह [1]कांश्चित्कंठेषु पीडयन् ॥५२
चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येऽगृह्णादथापरम् । ते गदा चक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः[2] ॥५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गाः निपेतुर्धरणीतले । तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥५४
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वाकृतकर्मा गदाधरः । तस्मिन्विमर्दे सङ्ग्रामे निवृत्ते तारकामये ॥५५
तं देशमाजगामाऽऽशु ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥५६
देवदेवो हरिं देवं पूजयन्वाक्यमब्रवीत् । कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ॥
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः ॥५७
योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमिर्महासुरः । त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥५८
एष देवान्परिभवँल्लोकांश्च [3]सचराचरान् । ऋषीणां कदनं कृत्वा [4]मामपि प्रति गर्जति ॥५९
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा । यदयं कालकल्पस्तु [5]कालनेमिर्निपातितः ॥६०

अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनकी पूजा करने लगे ।५०½। भगवान् के इस अद्भुत पराक्रम को देखनेवाले अन्य दैत्यगण उनकी भुजाओं से अवरुद्ध होकर रणभूमि में चल भी नहीं सके, भगवान् ने किन्हीं के केशों को पकड़ कर पटका, किन्हीं के कंठों पर आघात कर पीड़ा पहुँचाई ।५१-५२। किसी के मुख को फाड़ डाला, किसी दूसरे की कमर तोड़ दी, इस प्रकार भगवान् की भीषण गदा और उस भयंकर चक्र से जलाये गये दानव गण रणभूमि में निर्जीव होकर गिरने लगे आकाश से सभी अंगो के कट कट कर गिर पड़ने के कारण सभी दानव पृथ्वी पर गिरने लगे । इस प्रकार उन सभी असुरों के मारे जाने पर पुरुषोत्तम भगवान् इन्द्र के मनोवांछित प्रिय कार्य को सम्पन्न कर कृतार्थ हो गदा धारण कर रणभूमि में अवस्थित हुए ।५३-५४½। उस भीषण तारकमय संग्राम के समाप्त हो जाने पर उस युद्ध के मैदान में तुरन्त ही सभी ब्रह्मर्षियों, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों को साथ लेकर देवाधिदेव लोकपितामह ब्रह्मा जी आये ।५५-५६। और विष्णु भगवान् का समादर करते हुए बोले देव ! आपने देवताओं का महान् कार्य किया है, उनके काँटों को आपने निकाल कर फेंक दिया । दैत्यों के इस संहार से हम सभी को परम सन्तोष प्राप्त हुआ है ।५७। विष्णो ! आपने जिस महान् असुर कालनेमि का संहार किया है, आप को छोड़कर उसका रण में संहार करने वाला कोई अन्य नहीं था ।५८। वह दानव चराचर सभी प्राणियों का अपमान कर के देवताओं को जीत कर ऋषियों का संहार कर मुझे भी डाट फटकार सुना रहा था ।५९। सो अब तुम्हारे इस काल के समान भीषण कालनेमि के वध रूप अति उत्तम कार्य से हम लोग

---

[1] ग. घ. ङ. °कर्त क° । [2] ग. °व । क्षणेनोद्भ° । [3] क. ख घ. ससुरासुरान् । [4] ङ. मामेष प्र° ।
[5] ग. °मिविधाति° ।

[1]तदागच्छ स्वभवनं गच्छामि दिवमुत्तमम् । ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥६१
कं चाहं तव दास्यामि वरं [2]वरवतां वर । सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥६२
[3]निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् । अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥६३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः । देवाञ्छक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥६४

विष्णुरुवाच

शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः । श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥६५
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः । दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥६६
अस्मिन्महति [4]सङ्ग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ । विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥६७
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च । याम्यां यमः पालयितामुत्तरां च धनाधिपः ॥६८
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः । [5]अब्दमृतुमुखे सूर्यो[6] भजतामयनैः सह ॥६९
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः । हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥७०

सन्तुष्ट हो गये, तो अब आइये, अब हम अपने उत्तम आवास स्थान स्वर्ग को चल रहे हैं, वहाँ पर सभा में उपस्थित हुए ब्रह्मर्षि गण आप के आगमन की प्रतीक्षाकर रहे हैं ।६०-६१। वरदान देने वालों में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें कौन सा वरदान दूँ । तुम तो स्वयं देवताओं तथा दैत्यों सभी को वरदान देने वाले हो ।६२। विष्णो ! अब इस त्रैलोक्य को, जिसमें से असुररूपी कण्टक दूर कर दिये गये हैं । इसी युद्ध के मैदान में महात्मा इन्द्र को वापस कर दीजिये । इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर अव्यय भगवान् विष्णु ने इन्द्र प्रभृति सभी प्रमुख देवताओं से शान्तिपूर्ण वाणी में कहा ।६३-६४।

भगवान् ने कहा—जितने भी देवता यहाँ मेरे पास आये हुए हैं, वे सभी इन्द्रादि प्रमुख देवगण सावधानतया मेरी बातों को ध्यान से सुनें ।६५। हम सभी लोगों ने इस संग्राम में इन्द्र से भी बलवान् पराक्रम शाली कालनेमि प्रभृति दैत्यों का संहार तो कर दिया, किन्तु इस घोर संग्राम से तो दो दैत्य भाग गये । उनके नाम दैत्येन्द्र विरोचन तथा महाग्रह राहु हैं ।६६-६७। अब इन्द्र अपनी दिशा को चले जायँ, वरुण भी अपनी दिशा का आश्रय लें, यमराज दक्षिण का पालन करें तथा धनाध्यक्ष कुबेर उत्तर दिशा का पालन करें ।६८। नक्षत्रों को साथ लेकर चन्द्रमा, जैसे कि पहले रहा करते थे अपने स्थान को चले जायँ, सूर्य अपने अयनों के साथ प्रत्येक ऋतुओं में वर्तमान होकर वर्षों का भोग करें ।६९। सदस्यों द्वारा अभिपूजित होकर देवगण यज्ञों में अपना भाग ग्रहण करें, ब्राह्मण लोग वेदानुकूलविधि से अग्नि में हवन करें ।७०। देवता लोग अग्निहोम से, महर्षिगण अपने स्वाध्याय से

---

[1] क. ख. घ. च्छस्व भद्रं ते गच्छामदि° । [2] घ. ङ. रभृतां । [3] ग. निर्वापयित्वा त्रैलो° । [4] ग. °मे द्वावेतौ तु विनिर्गतौ । [5] ग. अयं ऋतुगणं सू° । घ. अब्दं ऋतुमुखः सू° । [6] ग. °र्यो गच्छता° ।

देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः । श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ॥७१
वायुश्चरतु मार्गस्थास्त्रिधा दीप्यतु पावकः । त्रींस्तु + वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चाऽऽत्मजैर्गुणैः ॥७२
क्रतवः संप्रवर्तन्तां [1]दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः । दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः [2]पृथक्पृथक् ॥७३
गां तु सूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु । तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्व एव स्वकर्मभिः ॥७४
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः । त्रैलोक्यमातरः सर्वा समुद्रं यान्तु सिन्धवः ॥७५
दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः । स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥७६
स्वगृहे स्वर्गलोके वा सङ्ग्रामे वा विशेषतः । विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ॥७७
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा । सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवं [3]धनम् ॥७८
एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुः सत्यपराक्रमः । जगाम ब्रह्मणा [4]सार्धं स्वलोकं तु महायशाः ॥७९

पितरगण श्राद्ध को प्राप्त कर सुखपूर्वक सन्तोष लाभ करें ।७१। वायु अपने तीनों मार्गों से बहते रहें, अग्नि अपने गुणों से तीनों वर्णों को, तथा तीनी लोकों को तृप्त करते हुए प्रकाशित हों ।७२। दीक्षा देने योग्य ब्राह्मणों की देख रेख में यज्ञों की प्रवृत्ति बढ़े । यज्ञ करनेवाले लोग पृथक्-पृथक् दक्षिणाओं के वितरण करने का प्रबन्ध करें ।७३। सूर्य पृथ्वी को, चन्द्रमा रसों को, वायु प्राणधारियों के प्राणों को तृप्त करते हुए अपने- अपने योग्य कर्मों में प्रवृत्त हों ।७४। महेन्द्र और मलय प्रभृति पर्वतों से निकलनेवाली, तीनों लोकों की माता रूप सभी नदियाँ, जैसे पूर्वकाल में अवस्थित थीं—उसी क्रम से, समुद्रों में प्रविष्ट हों ।७५। देवगण ! दैत्यों से भय करना छोड़ दो, तुम लोगों का कल्याण हो, अब मैं सनातन ब्रह्म लोक को जा रहा हूँ ।७६। आप लोग अपने अपने घरों में, स्वर्ग लोक में—विशेषतया संग्राम में—कभी भी दैत्यों का विश्वास न करें, क्योंकि ये दानव सर्वथा क्षुद्र विचार रखनेवाले हैं, छिद्रों में प्रहार करनेवाले हैं, इनकी अवस्थिति कभी निश्चित नहीं रहती । आप लोगों जैसे सौम्य सरल स्वभाववाले देवताओं का तो सरलता ही परम धन है' ।७७-७८। देवताओं से इस प्रकार की बातें कर महायशस्वी, सत्य पराक्रमी भगवान् विष्णु ब्रह्मा के साथ अपने लोक को चले गये ।७९। मत्स्य ने कहा—

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. पुस्तके—त्रयोवर्णाश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयन्त्वात्मजैर्गुणैरिति ।

---

[1] ग. °क्षणाद्यैर्द्वि° । ङ. °क्षणायै द्विजा° । [2] ग ङ. कृगाश्च सू° । [3] ग. मतम् । ङ. मनः ।
[4] ग. ङ. °र्धे ब्रह्मलोकं म° । घ. र्धे विष्णुलोकम्° ।

एतदाश्चर्यमभवत्सङ्ग्रामे तारकामये । दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं [1]परिपृष्टवान् ।।८०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रहो नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७८।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।६५३७।।

अथ नवसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात विस्तरेण त्वयेरितः । समासाद्भवमाहात्म्यं [2]भैरवस्याभिधीयताम् ।।१

सूत उवाच

तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम् । आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ।।२

तपसा महता युक्तो ह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम् । स कदाचिन्महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।।३

क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे । तस्य युद्धं तदा घोरमभवत्सह [3]शंभुना ।।४

तुमने जिस तारकामय संग्राम के बारे में मुझसे प्रश्न किया था, वह आश्चर्यकारी दानवों का और विष्णु का संग्राम इसी प्रकार सम्पन्न हुआ था ।।८०।।

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव संग्रह नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७८।।

अध्याय १७९

ऋषियों ने कहा—तात ! तुम्हारे द्वारा कहे गये पद्मोद्भव का विस्तृत वृत्तान्त तो हम लोग सुन चुके, अब संक्षेप में भैरव भव का माहात्म्य हम लोगों को सुनाइये ।१।

सूत ने कहा—ऋषिगण ! उन देवाधिदेव भैरव के उत्तम चरित्र को भी तुम लोग सुनो । प्राचीनकाल में अन्धक नामक अंजन के समूह के समान दिखाई पड़नेवाला एक दैत्य था, जो अपनी अनुपम तपस्या के कारण स्वर्गवासियों द्वारा नहीं मारा जा सका ।२३। उस दैत्य ने एक बार पार्वती समेत क्रीडा करते हुए भगवान् महादेव को देखकर पार्वती को हरण करने का उपक्रम किया, तब शंभु के साथ उसका घोर संग्राम

---

१ ग. घ. ङ. पृच्छसि । इ° । २ क. ख. °यस्य विधी° । ३ क. ख. °ना । आवन्त्ये ।

अवन्तिविषये घोरे महाकालवनं प्रति । तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥५
[1]मुमुचे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत् । रुद्रबाणधिनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु ॥६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः । तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ॥७
बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् । एवं मायाविनं दृष्ट्वा तं च देवस्तदाऽन्धकम् ॥८
[2]पानार्थमन्धकास्तस्य सोऽसृजन्मातृ*रस्तदा । +माहेश्वरी तथा ब्राह्मी [3]कौमारी मालिनी तथा ॥९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै [4]नैर्ऋती तथा । सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ॥१०
वाराही नारसिंही च वैष्णवी च चलच्छिखा । शतानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी ॥११
बला चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डिका । मातृनन्दा सुनन्दा च बिडाली शकुनी तथा ॥१२
रेवती च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका । जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च । सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ॥१४
अदितिश्च दितिश्चैव मारी वै मृत्युरेव च । कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकी च घटोदरी ॥१५

हुआ ।४। अवन्ती प्रान्त में महाकाल नामक बन है । उसी बन के पास वह घोर युद्ध हुआ था । उस भयानक युद्ध में अन्धक द्वारा अति दुःखित होकर रुद्र भगवान् शंकर ने अत्यन्त उग्र पाशुपत नामक अस्त्र का प्रयोग किया । रुद्र के बाण के आघात से अन्धक के शरीर से जो रक्तपात हुआ, उससे सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में अन्धकों की उत्पत्ति हुई ।५-६½। उनके फाड़े जाने पर जो रक्त निकला फिर उससे भी हुए, जो अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहे थे । मतलब यह कि इस प्रकार उन उत्पन्न होनेवाले अन्धकों से अन्य अन्धक उत्पन्न हुए उनसे समस्त जगन्मण्डल आकीर्ण हो गया, बढ़ते हुए उस मायाबी अन्धक को देखकर भगवान् शंकर ने उसके रक्त को पान करने के लिये अनेक माताओं की सृष्टि की । ।७-८½। माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैर्ऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छिला, भगमालिनी, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभि, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, कालीं, महाकाली, दूती, सुभगा, दुर्भगा कराली, नन्दिनी, अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी भुशुण्डी, शांकरी, चण्डा, लांगली, कुटसी, खेटा, सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी

---

* अत्र द्वितीयार्थे प्रथमाऽवगन्तव्या । +मातृनामसु सर्वत्र द्वितीयान्तपाठो वर्तते ग. ङ. घ. पुस्तकेषु ।

[1] क. ख. घ. सुषुवे । [2] ङ. च °स्य ससृजे मात । [3] ङ. री° चानलां त° । [4] ङ. °ऋर्ति त° ।

कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा । भुशुण्डी शांकरी चण्डा माङ्गली कुटभी तथा ॥१६
खेटा सुलोचना धूम्र[१] एकवीरा करालिनी । विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटी कुक्कुटी तथा ॥१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा । सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी[२] गर्दभी तथा ॥१८
भ्रुकुटी [३]बहुपुत्री च प्रेतयाना विडम्बिनी । क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरसा दनुः ॥१९
उषा रम्भा मेनका च सलिला चित्ररूपिणी । स्वाहा स्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठा कपर्दिनी ॥२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च संगमा । मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी ॥२१
कुमारी रोचना भीमा सदाहा सा मदोद्धता । अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी ॥२२
केशिनी शङ्खिनी लम्बा पिङ्गला लोहितामुखी । घण्टारवाऽथ दंष्ट्राला रोचना [४]काकजङ्घिका ॥
[५]गोकर्णिकाऽजमुखिका महाग्रीवा महामुखी । उल्कामुखी धूमशिखा [६]कम्पिनी परिकम्पिनी ॥२४
मोहना कल्पना क्ष्वेला निर्भया बाहुशालिनी । सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोका नन्दिनी तथा ॥२५
ज्योत्स्नामुखी च रभसा निकुम्भा रक्तकल्पना । अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला । अबाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ॥२७
चित्ता चित्तचला कोणा [७]शान्तिकाऽघविनाशिनी । लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ॥२८
स्खलन्ती दीर्घकेशी च [८]सुचिरा सुन्दरी शुभा । अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनी च तथाऽशनी ॥२९

विशालदंष्ट्रिणी, श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भ्रकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना, विडम्बनी, क्रौंचा, शैलमुखी, विनता, सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा, कपर्दिनी, माया, विचित्ररूपा, कामरूपा, संगमा, मुखेविला, मंगला, महानासा, महामुखीं, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी, कुंभकर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घण्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजंघिका, गोकर्णिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी, धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कल्पना, क्ष्वेला, निर्भया, बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निम्भा, रक्तकम्पना, अविकारा, महाचित्रा, चंद्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातंगी, लम्बमेखला, अबाला, बञ्चना, कालीं, प्रमोदा, लाङ्गलावती, चित्ता, चित्तजला, कोणा, शान्तिका, अघविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसटा, विसटा, वासचूर्णिनी, स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, आशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, शंकुकर्णी, महानादा,

---

[१] ग. °म्रा करालीं च क° । [२] ग. केकरां । [३] ग. °पुत्रां च । [४] ग. कारुज° । ङ. कालज° । [५] ङ. °र्णिकां मूषिकां च ग° । [६] ग. कम्पनां परिकम्पनाम् । मो° । [७] ङ. °काह्यमितशि° । [८] ग. सुवीरा ।

कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी । सामान्य हासिनी लम्बा कोविदारी [१]समासवी ॥३०
शङ्कुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी । हूंकारी रुद्रसुसटा रुद्रेशो भूतडामरी ॥३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा । एताश्चान्याश्च देवेशः सोऽसृजन्मातरस्तदा ॥३२
[२]अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा । [३]ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः ॥३३
तासु तृप्तासु संभूता भूय एवान्धकप्रजाः । अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥३४
ततः स शंकरो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः । जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ॥३५
ततस्तु भगवान्विष्णुः सृष्टवाञ्शुष्करेवतीम् । या पपौ सकलं तेषामन्धकानामसृक्क्षणात् ॥३६
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसंभवम् । तथा तथाऽधिकं देवी[१२] संशुष्यति जनाधिप ॥३७
पीयमाने तया तेषामन्धकानां तथाऽसृजि । अन्धकास्तु क्षयं नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ॥३८
मूलान्धकं तु विक्रम्य तदा [१३]शर्वास्त्रिलोकधृक् । चकार वेगाच्छूलाग्रे स च तुष्टाव शंकरम् ॥३९
अन्धकस्तु महवीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः । सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ॥४०
ततो [१४]मातृगणाः सर्वे शंकरं वाक्यमब्रुवन् । भगवन्भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान् ॥
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥४१

महादेवी, महोदरी, हुंकारी, रुद्रसुसटा, रुद्रेशी, भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी,—तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुतेरी मातृकाओं की देवाधिदेव ने उस समय सृष्टि की ।९-३२। उत्पन्न हुई इन महा भयानक मातृकाओं ने उन अन्धकों के रक्त का पान किया और परम तृप्ति का लाभ किया; ।३३। किन्तु उनके तृप्त हो जाने के बाद भी पुनः प्रचुर संख्या में अन्धकों के सन्तान उत्पन्न हुए । शूल, मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों समेत इन अन्धकों के प्रहार करने से महादेव अति व्यथित हुए और अन्धकों द्वारा व्याकुल चित्त होकर वे अजन्मा भगवान् वासुदेव की शरण में गये ।३४-३५। शंकर को शरण में आया देख भगवान् विष्णु ने शुष्करेवती नामक एक देवी की उत्पत्ति की, जिसने क्षण भर में ही उन समस्त असुरों के रक्त को पान कर लिया ।३६। राजन् ! ज्यों ज्यों उन अंधकों के शरीर से रक्त को देवी ने पान किया त्यों-त्यों वह अधिक सूखती हुई-सी दिखाई पड़ने लगी ।३७। उसके रक्त को पान कर लेने के बाद सभी अन्धकों को त्रिपुरारि शंकर ने विनष्ट कर दिया ।३८। अन्ततः जब त्रिलोक को धारण करनेवाले भगवान् शंकर ने अति पराक्रम से उस मुख्य अन्धक को वेगपूर्वक अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर रख लिया, तब उसने शंकर की स्तुति की ।३९। वह प्रमुख अन्धक महाबलवान् था, उसके ऊपर प्रसन्न होकर शंकर ने उसे सर्वदा अपने समीप में रहने के लिए नियुक्त किया और गणेश का पद समर्पित किया ।४०। तदनन्तर उन सभी मातृकाओं ने शंकर से कहा—'भगवन् ! हम सब

---

[१] ङ. सवासवी । [२] ङ. °कान्ता म° । [३] ग. °सृजं पीत्वा प° । [४] ङ. °वी तं शु° ।
[५] ग. °स्त्रिशूलधृ° । [६] ग. °गणः सर्वः शंकरं वाक्यमब्रवीत् । भ ।

शंकर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः । तस्माद्घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ॥४२
इत्येवं शंकरेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा । भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४३
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै । नृसिंहमूर्तिं देवेशं प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः ॥४४
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् । [१]दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ॥४५
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम् । कल्पान्तमारुतक्षुब्धं [२]सप्तार्णवसमस्वनम् ॥४६
वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम् । मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ॥४७
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम् । नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम्[३] ॥४८
बद्धाङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम् । श्रेणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥४९
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् । [४]तेजसाऽऽक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम्[५] ॥५०

तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर इस समस्त जगत् को—देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्यों समेत—खा जायँगी, अतः इसके लिए हमें आज्ञा प्रदान कीजिये ।४१।

शंकर ने कहा—आप लोगों को समस्त प्रजा की रक्षा करनी चाहिये, न कि विनाश । अतः शीघ्र ही इस भयंकर अभिप्राय से अपने-अपने मन को लौटा लीजिये ।४२। शंकर की ऐसी बात का उन लोगों ने अनादर कर दिया और अत्यन्त उग्र स्वरूप होकर चराचर तीनों लोकों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया ।४३। इस प्रकार उन मातृ गणों द्वारा खाये जाते हुये त्रैलोक्य को देखकर भगवान् शंकर ने नरसिंह स्वरूप उन देवाधिदेव भगवान् का ध्यान किया ।४४। जो कभी मृत्यु को नहीं प्राप्त होते, जिनका प्रारम्भ नहीं, जो सभी लोकों के उत्पन्न करने वाले थे । दैत्यपति हिरण्यकशिपु की छाती फाड़ने के कारण उससे निकले हुये रक्त से उनके भीषण नाखून रंगे हुये थे, उनकी जीभ बिजली की भाँति लपलपा रही थी, उनके दाँत महाभयानक थे, कंधे पर केसर का जाल शोभायमान था, वे प्रलयकालीन वायु की भाँति अति क्षुभित हुये दिख रहे थे, उनका भीषण स्वर सातों समुद्रों के भयानक स्वरों की भाँति था ।४५-४६। नख वज्र के समान अतिपुष्ट तथा तीक्ष्ण थे, भीषण मुख कान तक फैला हुआ था, आँखें सुमेरु पर्वत पर उदित हुए प्रातः कालीन सूर्य के समान तेजोमयी थी ।४७। आकृति हिमवान् पर्वत के शिखर के समान थी, मुख की शोभा सुन्दर दाँतों की श्वेतता से अधिक बढ़ रही थी । जो भीषण नख की क्रोधाग्नि की ज्वाला तथा केसरों से युक्त थे ।४८। जिनके विशाल शरीर पर बँधा हुआ अंगद, सुन्दर मुकुट, हार तथा केयूर विराजमान हो रहे थे, कटि प्रदेश में अति विस्तृत सुवर्णमय कमर की करधनी भी सुशोभित थी ।४९। नीले कमल की पंखुड़ियों की भाँति दो नीले वस्त्र विराजित हो रहे थे, अपने-अपने अनुपम तेज से जिन्होंने निखिल ब्रह्माण्ड को आक्रान्त-सा कर लिया था ।५०। हवन को जलाती

---

१ ङ. °ताद्रंम° । २ ग. °वमहास्व° । ३ क. ख. °म् । वज्राङ्ग° । ४ ङ. °ण्डान्तरमण्डपम् । प° ।
५ ग. °रमण्डल° ।

पवनभ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् । आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ॥५१
[1]सर्वपुष्पविचित्रां च धारयन्तं महास्रजम् । स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम् ॥५२
यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रूद्रेण धीमता । तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ॥५३
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शंकरः ॥५४

शंकर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर । दैत्यनाथसृजापूर्णनखशुक्तिविराजित[2] ॥५५
ततः सकलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह । नतोऽस्मि पद्मनाभ त्वां सुरशक्रजगद्गुरो ॥५६
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ । सहस्रयमसंक्रोध सहस्रेन्द्रपराक्रम ॥५७
[3]सहस्रधनदस्फीत [4]सहस्रवरुणात्मक । सहकालरचित सहस्रनियतेन्द्रिय ॥५८
[5]सहस्रभूर्महाधैर्य [6]सहस्रानन्तमूर्तिमन् । सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रग्रहविक्रम ॥५९
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत । सहस्रबाहुवेगोग्र सहस्रास्यनिरीक्षण ॥
सहस्रयन्त्रमथन सहस्रवधमोचन ॥६०

हुई अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के समान देदीप्यमान जिनकी केसर पवन द्वारा इधर-उधर हिल रही थी, जल की भँवरों के समान घुँघराले शरीर के बालों से जो संयुक्त थे ।५१। जिन्होंने कंठ में सभी चित्र विचित्र रंगवाले फूलों को बनाई हुई मनोरम माला धारण की थी ।' शिव को ध्यान करते ही भगवान् ने अपना दर्शन दिया ।५२। परम बुद्धिमान् रुद्र ने जिस प्रकार के स्वरूप का ध्यान किया था, उसी प्रकार के देवताओं द्वारा न देखे जाने योग्य भीषण स्वरूप से संयुक्त होकर भगवान् ने अपना दर्शन उन्हें दिया । दर्शन पाते ही शंकर जी ने हाथ जोड़कर देवाधिदेव की स्तुति की ।५३-५४।

शंकर ने कहा—'जगत्स्वामी नरसिंह शरीर धारण करनेवाले ! दैत्य पति हिरण्यकशिपु के रक्त से सम्पूर्ण नख को रंजित करनेवाले ! पद्मनाभ सुवर्ण के समान शरीरधारी, इन्द्रादि देवताओं समेत समस्त जगत् के गुरो ! युगान्त के मेघों की भाँति भीषण स्वर करनेवाले ! करोड़ सूर्य के समान कान्तिमान् ! सहस्र यमराज के समान अति क्रुद्ध ! सहस्र इन्द्र जितने पराक्रमी ।५५-५७। सहस्र कुबेर के समान शोभायमान ! सहस्र वरुण की भाँति पराक्रमी ! सहस्रों काल की भाँति विनाश करनेवाले ! सहस्रों इन्द्रियजित् महर्षियों के समान मन को स्ववश रखनेवाले ।५८। सहस्रों बार उत्पन्न होनेवाले, महाधैर्यशालिन् ! सहस्रों, असंख्य मूर्ति धारण करनेवाले ! सहस्रों चन्द्रमा के समान शोभायमान, सहस्रों ग्रहों के समान पराक्रमी ! ।५९। सहस्र रुद्र के समान तेजस्वी ! सहस्रों ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जानेवाले ! सहस्रबाहु अति उग्र एवं वेगवान् सहस्रों मुख तथा नेत्र धारण करनेवाले ! सहस्रों यन्त्र के समान नाश करनेवाले ! सहस्रों का वध एवं मोक्ष करनेवाले ।६०। मैंने अन्धकों के

---

[1] ङ. वंरन्न वि° । [2] क. ख. °खशक्ति° । [3] ङ. च. °स्रवदनस्फी° । [4] घ. ङ च. °स्रवरणा° । [5] घ. च. °भूमिसंधै° । [6] घ. °स्रावर्तमू° ।

अन्धकस्य विनाशाय याः सृष्टा मातरो मया । अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्युद्यताः प्रजाः ॥६१
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित । स्वयं कृत्वा कथं तासां [१]विनाशमभिकारये ॥६२
एवमुक्तः स रुद्रेण [२]नरसिंहवपुर्धरः । ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वागीश्वरीं हरिः ॥६३
हृदयाच्च तथा [३]माया गुह्याच्च [४]भवमालिनी । अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना ॥६४
यया तद्रुधिरं पीतमन्धकानां[५] दुरात्मनाम्[६] । या चास्मिन्कथिता लोके नामतः शुष्करेवती ॥६५
द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः । तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ॥६६
सर्वास्तास्तु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च । त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्त्ववशंकरी ॥६७
तथा च चक्रहृदया [७]पञ्चमी व्योमचारिणी । शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसंकर्षणी तथा ॥६८
इत्येताः पृष्ठगा राजन्वागीशानुचराः स्मृताः । संकर्षणी तथाऽश्वत्था बीजभावाऽपराजिता ॥६९
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका । इति देव्यष्टकं राजन्मायानुचरमुच्यते ॥७०
अजिता सूक्ष्महृदया [८]वृद्धावेशाश्मदंशना । नृसिंहभैरवा [९]बिल्वा गरुत्मद्धृदया जया ॥७१
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृप मातरः । आकर्णनी संभटा च तथैवोत्तरमालिका ॥७२

विनाश के लिये जिन मातृकाओं की सृष्टि की थी, सबों ने मेरी निषेधाज्ञा का अनादर कर प्रजा का भक्षण करना आरम्भ कर दिया है ।६१। अपराजित ! उनकी सृष्टि करके अब मैं संहार नहीं कर सकता, स्वयं निर्माण करके उनका विनाश भला कैसे कर सकता हूँ ।६२। रुद्र के ऐसा करने पर नरसिंह रूप धारी महनीय आत्मा भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम जिह्वा से वागीश्वरी देवी की सृष्टि की ।६३। इसी प्रकार हृदय से माया का, गुह्य प्रदेश से भवमालिनी का तथा हड्डियों से उस काली की सृष्टि की ।६४। उसी काली ने उस दुरात्मा अन्धकों के रक्त का पान किया था और वही इस लोक में शुष्करेवती नाम से प्रसिद्ध है ।६५। तदनन्तर सुदर्शन चक्रधारी विष्णु ने अपने अंगों से बत्तीस मातृकाओं का निर्माण किया, उन बत्तीसों के नामों का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो उन सब देवियों के नाम, महाभाग्यशालिनी घण्टाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, पुण्य देनेवाली सर्वसत्त्ववशंकरी, चक्रहृदया, व्योमचारिणी, लेखनी और कालसंकर्षिणी । हे राजन् ! ये सब देवियाँ वागीश की अनुचरी तथा पृष्ठगामिनी सुनी गई ।६६-६८½। संकर्षिणी, अश्वत्था, बीजभावा, अपराजिता, कल्याणी, मधुदंष्ट्री, कमलहस्तिका, तथा उत्पलहस्तिका । हे राजन् ! ये आठ देवियाँ माया की अनुचरी कही गई है ।६९-७०। अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धावेशा, अश्मदंशना, नृसिंहभैरवा, बिल्वा, गरुत्महृदया, जया—हे राजन् ! ये आठ भवमालिनी की अनुचर देवियाँ हैं ।७१½। आकर्णनी, संभटा, उत्तरमालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका

---

[१] ग. ङ. च. °भिरोचये । [२] ङ. °पुर्हरिः । स° । [३] ग. ङ. मायां । [४] ग. घ. ङ. °लिनीम् । अ° । [५] क. ग. °नां महात्म° । [६] ख. °त्मना । या । [७] ङ. °मी काम° । [८] ग. वृक्षकेशा° । [९] ग. भीरा ।

ज्वालामुखी भीषणिका कामधेनुश्च बालिका । तथा पद्मकरा [1]राजन्रेवत्यनुचराः स्मृताः ।।७३
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः । त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ।।७४
ताः सृष्टमात्रा देवेन क्रुद्धा मातृगणस्य तु । प्रधाविता महाराज क्रोधविस्फारितेक्षणाः ।।७५
अविषह्यतमं तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् । तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ।।७६
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्ति[2] चिरात्सुतान् । जयन्ति ते तथैवाऽऽशु यथा वै देवतागणाः ।।७७
भवन्त्यस्तु तथा लोकान्पालयन्तु मयेरिताः । [3]मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ।।७८
न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके । ये च मां संस्मरन्तीह ते च रक्ष्याः सदा नराः ।।७९
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः । सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वं [4]तथैव च ।।८०
उच्छासनादिकं ये [5]च कथयन्ति मयेरितम् । [6]ते च रक्ष्याः सदा लोका [7]रक्षितव्यं च शासनम् ।।८१
रौद्रीं चैव परां [8]मूर्तिं महादेवः प्रदास्यति । युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षयथ ।।८२
मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगसाध्वसः । एष नित्यं विशालाक्षो मयैव सह रंस्यते ।।८३

तथा पद्मकरा—ये आठ रेवती की अनुचर देवियाँ हैं। ये सब विष्णु भगवान् के शरीर से उत्पन्न अति बलशालिनी तथा तीनों लोकों की सृष्टि और संहार करने में समर्थ थीं ।७३-७४। महाराज ! भगवान् विष्णु द्वारा उत्पन्न किये जाते ही ये देवियाँ उन मातृकाओं के ऊपर अति क्रोध से विस्तृत नेत्र हो दौड़ पड़ीं ।७५। उस समय उनकी आँखों से असह्य तेज दिखाई पड़ रहा था । इन देवियों को देखकर जगत् के विनाश में उद्यत वे मातृकाएँ नरसिंह की शरण में गईं । शरण में जाने पर नरसिंह ने कहा ।७६।—'जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु चिरकाल तक अपनी सन्तति का पालन करते हैं, और शीघ्र ही देवताओं की भाँति विजय प्राप्त करते हैं ।७७। उसी प्रकार मेरी प्रेरणा से आप लोग भी समस्त लोक का पालन करें । मनुष्य तथा देवगण त्रिपुरशत्रु शंकर जी की अराधना करें । जो लोग त्रिपुरान्तक शिव में भक्ति भावना रखनेवाले हैं, उनके कार्यों में बाधा न होनी चाहिये । जो लोग यहाँ मेरा स्मरण करते हैं, उनकी सर्वदा रक्षा करनी चाहिये ।७८-७९। जो मनुष्य आप लोगों के लिए सर्वदा वलि कर्म करते हैं, उनके सभी मनोरथों को पूर्ण करें ।८०। जो लोग मेरे द्वारा कहे गये महात्मा आदि का वर्णन करते हैं उनकी सर्वदा रक्षा करनी चाहिये, शासन की भी आप लोगों को रक्षा करनी चाहिये ।८१। महादेव रौद्री नामक एक परम तेजस्विनी मूर्ति प्रदान करेंगे, आप लोग महादेवी के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसकी भी रक्षा करेंगी । उनके द्वारा कही गयी बातों की भी आप लोगों को रक्षा करनी होगी ।८२। मैंने जिन लज्जाभय से रहित मातृगण की सृष्टि की है, वह विस्तृत नेत्रोंवाला मातृकाओं का समूह

---

[1] ङ. °जन्वधंग्यनु° । [2] ङ. °न्ति विराजनम् । ज° । [3] ग. ङ. °जैश्चैव गन्धर्वैर्य° । [4] ङ. च । तच्छा° । [5] ङ. च. हरिष्यन्ति हरेरि° । [6] ङ. ते नर° । [7] क. ख. °व्यं मदास° । [8] ग. शक्ति ।

मया सार्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ । पृथक्सुपूजिता लोकैः सर्वान्कामान्प्रदास्यथ ॥८४
शुष्कां संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः । तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यति न संशयः ॥८५
एवमुक्त्वा तु भगवान्सह [1]मातृगणेन तु । ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥८६
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः । [2]तत्रापि [3]पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥८७
रौद्रस्य मातृवर्गस्य[4] दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव । रौद्रीं दिव्यां तनुं तत्र मातृमध्ये व्यवस्थितः ॥८८
सप्त ता मातरो देव्यः सार्धनारीश्वरः[5] शिवः । निवेश्य रौद्रं तत्स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ॥८९
समातृवर्गस्य हरस्य मूर्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे ।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः ॥९०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽन्धकवधो नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥९६२७॥

नित्य मेरे साथ विहार करेगा ।८३। मेरे ही साथ आप लोगों को भी मनुष्यों द्वारा समर्पित की गई पूजा प्राप्त होगी । लोग अलग से भी पूजा करेंगे, उनके मनोरथों को पूर्ण करना होगा ।८४। जो पुत्र के इच्छुक मनुष्य शुष्का देवी की पूजा करेंगे, उन सबको वह देवी पुत्र देंगी, इसमें सन्देह नहीं ।८५। इस प्रकार की बातें कह कर मातृकाओं के साथ, ज्वाला के समूहों से व्याप्त शरीर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।८६। उसी स्थान पर एक तीर्थं उत्पन्न हुआ, जो 'कृतशौच' के नाम से प्रसिद्ध है । राजन् ! उसी स्थान पर आदिदेव जगत् के दुःखों का हरण करने वाले भगवान् शंकर उस रौद्र मातृ समूह को अपना अति रौद्र दिव्य शरीर दिया और स्वयं उन्हीं के मध्य भाग में अवस्थित हुए ।८७-८८। इस प्रकार अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर उन सात देवियों को उसी स्थान पर स्थापित कर स्वयं अन्तर्हित हो गये ।८९। मातृवर्ग के समेत शिव की मूर्ति जब जब उनके तथा नरसिंह शरीरधारी देवेश्वर विष्णु के समीप में जाती है तब तब त्रिपुरदाहक अन्धक-शत्रुशिव की पूजा करते हैं ।९०।

श्री मात्स्य महापुराण में अन्धक वध नामक एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९॥

---

१ ङ. °गणाननु । ज्वा° । २ ङ. तस्यापि । ३ ङ. °वंतो दे° । ४ ग. °स्य रुषा रु° । ५ क. ख. °रीनरः ।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

श्रुतोऽन्धकवधः सूत यथावत्त्वदुदीरितः । वाराणस्यास्तु महात्म्यं श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ॥१
भगवान्पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः । अन्नदत्वं च संप्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ॥२
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वं च कथं गतः । एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत त्वया ॥३

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः । अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं[1] वाराणसी त्विह ॥४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान् । हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ॥५
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा । तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन् । भुञ्जानोऽथ पिबन्वाऽपि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७

अध्याय १८०

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! तुमसे कहे गये अन्धक के वध का वृत्तान्त तो, जो कुछ था, उसे हम लोग सुन चुके, अब वाराणसी के माहात्म्य का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं ।१। उस वाराणसी में महाद्युति भगवान् पिंगल किस प्रकार गण रूप को प्राप्त हुए ? और किस प्रकार अन्नदान करने का पद उन्हें प्राप्त हुआ ।२। वे किस प्रकार क्षेत्रपाल और कैसे शंकर के प्रिय हुए ? हे ब्रह्मपुत्र ! इन सब बातों को हम लोग तुमसे सुनना चाहते हैं ।३।

सूत ने कहा—ऋषिगण ! पिंगल ने जिस प्रकार गणेशत्व की प्राप्ति की और जिस प्रकार लोक को अन्नदान देने का पद उन्हें प्राप्त हुआ, वाराणसी नगरी जैसे उनको मिली—उन सब कथाओं को मैं कह रहा हूँ, सुनिये ।४। प्राचीन काल में पूर्णभद्र का पुत्र प्रतापशाली, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों का प्रतिपालक धार्मिक हरिकेश नामक एक यक्ष था ।५। उसकी जन्म से ही भगवान् शंकर में परम भक्ति थी, उन्हीं के नमस्कार करने में, उन्हीं की भक्ति में तथा उन्हीं की शरण में वह सर्वदा लीन रहता था ।६। सोते, जागते, चलते, फिरते उठते, बैठते, खाते पीते—सब समय वह रुद्र के ही ध्यान में मग्न रहा करता था ।७। शंकर की भक्ति में इस

---

[1] ङ. °नं च गणतां चहि ।

तमेवं युक्तमनसं पूर्णभद्रः पिताऽब्रवीत् । न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा ॥८
न हि यक्षकुलीनानामेतद्वृत्तं [१]भवस्युत । गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात्क्रूरचेतसः ॥९
क्रव्यादाश्चैव किंभक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक । मैवं [२]कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ॥१०
स्वयंभुवा [३]यथाऽऽदिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत् । आश्रमान्तरजं कर्म न [४]कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ॥११
हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभिर्विविधैश्चर[५] । यत्त्वमेवं विमार्गस्थो [६]मनुष्याज्जात एव च[७] ॥१२
यथावद्विविधं तेषां कर्म [८]तज्जातिसंश्रयम् । मयाऽपि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः ॥१३

सूत उवाच

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान् । उवाच [९]निष्ठुरं क्षिप्रं गच्छ पुत्र यथेच्छसि ॥१४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं संबन्धिनस्तथा । वाराणसीं समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः । संनियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः ॥१६

प्रकार अनन्य भाव से लीन अपने पुत्र को देख कर उसके पिता पूर्णभद्र ने कहा कि मैं तुम्हें अपना बेटा नहीं मानता, तुम निश्चय ही किसी दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न हुए हो ।८। यक्षों के कुल में उत्पन्न होनेवालों की ऐसी वृत्ति नहीं होती, क्योंकि वे तो स्वभाव से ही क्रूर चित्तवाले होते हैं ।९। कच्चा मांस खाते हैं, कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं, हिंसक होते हैं । पुत्र ! यदि तुम सचमुच मेरे पुत्र हो तो ऐसा मत करो, क्योंकि महापुरुषों ने हम लोगों के लिए ऐसी वृत्ति नहीं बतलाई है । भगवान् ब्रह्मा ने जिस प्रकार के कर्मों का उपदेश हमारी जातिवालों को दिया है यदि तुम उसे छोड़ रहे हो तो अनुचित कर रहे हो किसी गृहस्थाश्रमी परिवारवाले व्यक्ति को दूसरे आश्रम वालों के कर्मों के करने का अधिकार नहीं है ।१०-११। अतः तुम अपने मानवीय स्वभाव का परित्याग कर यक्षों के विचित्र कर्मों को करो । यदि तुम वैसा नहीं करोगे और इस प्रकार अन्य के मार्ग पर रहोगे तो मैं जानूंगा कि निश्चय ही तुम्हारी उत्पत्ति मनुष्य से हुई है ।१२। अतः यक्षों के करने योग्य विविध कर्मों का, जिन्हें मैं करता हूँ, तुम अनुसरण करो, इसमें सन्देह नहीं है कि वे मेरे द्वारा किये गये कर्म यक्ष जाति के करने योग्य हैं ।१३।

सूत ने कहा—प्रतापशाली पूर्णभद्र ने अपने पुत्र से इस प्रकार की बातें कर और उस पर अपनी बातों का कोई प्रभाव न देख कर निष्ठुरता पूर्ण स्वर में कहा—'हे पुत्र ! यदि तुम मेरे कथन पर ध्यान नहीं दे रहे हो तो शीघ्र ही यहाँ से, जहाँ तुम्हारा मन कहे, चले जाओ' ।१४। पिता की ऐसी बातें सुनने पर हरिकेश ने अपने परिवार, सम्बन्धियों तथा घरवालों को छोड़कर वाराणसी नगरी की शरण ली और वहाँ पहुँच कर अति दारुण तपस्या प्रारम्भ की ।१५। वहाँ वह बिना आँखों को खोले सूखे हुये काष्ठ तथा शिला की भाँति स्थाणुवत्

---

१ ग. °वत्पुरा । गु° । ङ. °वत्पुनः । गु° । २ ग. कार्या न ते । ३ ग. °था सृष्टा । ४ ङ. कुर्याद्गुणवान्सुतः । °हि° । ५ ङ. °र । देवत्वं नो विमार्गेषु मनुष्याजातिमेव । ६ ग. °नुष्या जातिमेव । ७ ङ. च. । अथ चेद्वि° । ८ ग. ङ. तत्प्राप्य सं° । ९ क. ख. ङ. निष्क्रम क्षि° ।

अथ तस्यैव[1] तपसि संस्थितस्य महात्मनः । सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यभ्यवर्तत ॥१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः । वज्रसूचिमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च ॥१८
[2]निर्मांसरुधिरत्वक्च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः । अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि ॥१९
एतस्मिन्नन्तरे देवी व्यज्ञापयत शंकरम् ॥२०

देव्युवाच

उद्यानं पुनरेवेदं द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा । क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥
यतश्च प्रियमेतत्ते तथाऽस्य फलमुत्तमम् ॥२१
इति विज्ञापितो देवः[3] शर्वाण्या [4]परमेश्वरः । सर्वं पृष्टं यथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२२
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शंकरः । उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ॥२३

देवदेव उवाच

प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं[5] लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरुढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥२४

निश्चल हो सभी इन्द्रियों को स्ववश कर अवस्थित रहा ।१६। इस प्रकार उस महान् आत्मा के घोर तपस्या में अवस्थित होने पर एक सहस्र दिव्य वर्ष का समय व्यतीत हो गया ।१७। उसके शरीर के चारों ओर बिले बन गईं । वज्र की बनी हुई के समान तीक्ष्ण मुखवाले चीटों ने शरीर को खा खा कर बींध डाला ।१८। जिससे मांस, रक्त तथा चमड़े से रहित हो वह अस्थि मात्र शेष रह कुन्द के पुष्प तथा शंख के समान दिखाई पड़ने लगा । किन्तु इतने पर भी वह देवाधिदेव शंकर के ध्यान में मग्न रहा । इसी अवसर पर पार्वती देवी ने शंकर से यह निवेदन किया ।१९-२०।

देवी ने कहा—हे देव ! मैं पुनः इस उपवन को देखना चाहती हूँ, और इस काशी क्षेत्र के महात्म्य का वर्णन सुनने की मुझे उत्कंठा है, क्योंकि यह तुम्हें विशेष प्रिय है और उसके श्रवण करने का फल भी उत्तम कहा जाता है ।२१। पार्वती के इस प्रकार निवेदन करने पर परमेश्वर शंकर ने इन पूछी गई बातों के बारे में, जैसा कुछ कहा गया है—यथार्थतया सुनाने का निश्चय किया । फिर पार्वती को साथ लेकर पिनाकधारी देवाधिदेव शंकर ने देवी को उस उपवन का दर्शन कराया ।२२-२३।

देवाधिदेव शंकर ने कहा—हे प्रिये ! मन को हरनेवाले अति सुन्दर उपवन को देखो । देखो, झुकी हुई लताओं की वल्लरियों से वह सुशोभित हो रहा है, खूब खिले हुए विविध प्रकार के लता गुल्म उसमें शोभायमान हो रहे हैं, चारो ओर से प्रियंगु की मनोहारिणी लताएँ फूलों से लदी हुई दिखाई पड़

---

[1] क. ख. °वमनिशं तत्परस्य तदाशिषः । स° । [2] ग. धिरः शुष्कः कु° । [3] ग. °वः पार्वत्या स पिनाकधृक् । स° । [4] क. ख. °रः । शर्वः पृष्टो य° । [5] च. °तानं सफलं म° ।

[1]तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वशः ।
अशोकपुंनागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः ॥२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणु[2]रूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः ॥२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च [3]कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥२७
[4]मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनादिभिर्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥२८
प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं प्रवृत्तनृत्याप्सरसां गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥२९
[5]मृगेन्द्रनादाकुलसत्त्वमानसैः क्वचित्क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः [6]सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित् ॥३०

रही हैं, काँटोंवाली केतकी के समूहों में भी खूब फूल खिले हुए हैं ।२४। अति सुगंधियुक्त तमाल के गुल्मों से यह उपवन भरा पड़ा है, सभी प्रकार के कनेर तथा वकुल भी खिले हुए हैं, इसमें भ्रमरों के समूहों से युक्त पुष्पों से लदे हुए अशोक तथा पुन्नाग के वृक्ष कितने सुन्दर फूले हुए हैं ।२५। इस उपवन में कहीं पर खिले हुए कमलों के मकरन्दों से धूसरित विविध पक्षी गण अति सुन्दर कलरव कर रहे हैं, कहीं पर सारस आदि जल पक्षी कलनाद कर रहे हैं ।२६। कहीं पर मतवाले पपीहे और जलकाक पक्षियों की सुरीली ध्वनि हो रही है । कहीं पर चक्रवाक पक्षीं के सुन्दर स्वर सुनाई पड़ रहे हैं, कहीं पर हंसों के छोटे-छोटे बच्चे किलोलें मार रहे हैं, कहीं पर कलहंसों के समूह अपनी मतवाली ध्वनि सुना रहे हैं । एक ओर कहीं मतवाले भ्रमरों के समूह गूंजते हुए उड़ रहे हैं ।२७। इस उपवन के किसी बाग में काम मद से आकुल देवांगनाएँ विहार कर रही हैं, कहीं दूसरी ओर खूब फूले हुए आम्र के वृक्ष तथा लताओं से आवेष्टित तिलक के वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ।२८। किसी भाग में सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूह गान करने में मग्न हैं तो दूसरी ओर अप्सराओं के वृन्द नाचने में प्रवृत्त हैं। अति प्रमोद में लीन विविध प्रकार के पक्षीगण इस उपवन में उड़ रहे हैं, कुछ मतवाले हारीत पक्षी कलरव मचा रहे हैं ।२९। कहीं पर सिंह दहाड़ रहा है, कहीं पर हिरणों के जोड़े विहार कर रहे हैं । कहीं पर तालाबों में अनेक प्रकार के सुन्दर कमल खिले हुए हैं और कहीं पर मनोहर तालाब शोभित हो रहे हैं ।३०। अति नील वर्ण मनोरम दिखाई पड़नेवाले मनोहर मयूरों

---

१ ग ङ. °लपुष्पैर्नि° । २ ग. ङ. °णुभूषि° । ३ ङ. °म्बचकोरकै° । ४ ग, ङ. °भिर्भ्रम° ।
५ घ. च. °सन्नमा° । ६ क. ख. °स्तटाकैरु° ।

[1]निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं [2]मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥३१
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
[3]क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं [4]किंपुरुषव्रजैः क्वचित् ॥३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैरभ्रंकषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥३३
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तैस्तोयाशयैः समनुशोभितदेयमार्गम् ।
मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्तिसंबद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ॥३४
तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै- ।
[5]र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां संप्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥३५

से शोभायमान वह उपवन प्रमुदित तथा उन्मत्त विहंगों के समूहों से गुंजरित होकर सुशोभित हो रहा है, फूली हुई वृक्षों की डालियों में लगे हुए उन्मत्त भ्रमर के समूह गुंजार कर रहे है । वृक्षों की शाखावों में नवीन कोपलों के मनोहारि गुच्छे सुशोभित हो रहे हैं ।३१। कहीं पर हाथियों से तोड़ी गयी मनोरम लताएँ पड़ी हुई हैं, कहीं पर सुन्दर लताएँ वृक्षों पर आलिगन कर रही हैं कहीं पर विलास से अलसाये मयूरगण मन्द-मन्द विचरण कर रहे हैं, कहीं पर किन्नरों के समूह विहार कर रहे हैं ।३२। श्वेत वर्ण के मनोहारि सुन्दर दिखाई पड़नेवाले गगनचुम्बी सुन्दर शिखर, जिस पर कबूतरों की ध्वनियाँ गुंजरित हो रही हैं, विराजमान हो रहे हैं, उन पर्वतों के शिखरों पर मुक्तहास सूचित करनेवाले पुष्पों के समूह बिखरे हुए हैं और स्वर्ग निवासी अनेक देवगण विहार कर रहे हैं ।३३। फूले हुए कमल एवं अगुरु के सहस्रों वितानों से युक्त जलाशयोंवाले इस उपवन के मार्ग देवमार्गों की भाँति शोभित हो रहे हैं, इन मार्गों पर विचित्र प्रकार के पुष्प बिखरे हुए हैं और सुन्दर गुच्छेवाले वृक्ष, जिन पर पक्षीगण कलरव कर रहे हैं, विराजमान हैं । इस उपवन में कहीं पर ऊँची डालियों पर खिले हुए श्यामल वर्ण के पुष्प के गुच्छों के भार से अवनत शाखाओं से सुशोभित अशोक के वृक्ष, जिनके भीतर मद से उन्मत्त सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ कानों को सुख देनेवाली मनोहारिणी गीतों की ध्वनि करती हुई शोभायमान हो रही हैं, सुशोभित हैं । और कहीं पर रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति से समानता प्राप्त करनेवाले फूले हुए तिल के वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं । कहीं पर वृक्षों की छाया में सोते हुए, बैठे हुए तथा खड़े हुए हरिणों के समूहों से चरे गये कुशों के अग्रभाग शोभित हो

---

[1] ग. ङ. च. नीडं । [2] ङ °हङ्गं भृङ्गना° । [3] ङ. मिनीभिर्निषे । [4] ङ. °रुषाङ्गनाभिः । पा° ।
[5] ग. °ताक्षैर्म° ।

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम् ।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितै रञ्जितक्ष्माप्रदेशं
देशे देशे [१]विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम् ।।३६
सारङ्गैः [२]क्वचिदपि सेवितप्रदेशं संछन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः ।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किंनराङ्गनाभिः [३]क्षीबाभिः [४]समधुरगीतवृक्षखण्डम् ।।३७
[५]संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम् ।
आमूलात्फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरुत्तुङ्गैः [६]पनसमहीरुहैरुपेतम् ।।३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम् ।
रम्यप्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं [७]भृङ्गावलीस्खलितचारुकदम्बपुष्पम् ।।३९
[८]पुष्पोत्करानिलविघूर्णितपादपाग्रमग्रेसरैर्भुवि निपातितवंशगुल्मम् ।
[९]गुल्मान्तरप्रसृतभीतमृगीसमूहं संमुह्यतां तनुभृतामपवर्गदातृ ।।४०

रहे हैं।३४-३५। इस उपवन में हंसों के पंखों के हिलाने-डुलाने के कारण हिलते हुए कमलों से युक्त स्वच्छ विस्तीर्ण जलराशि शोभित हो रही है, जलराशि के तट पर उत्पन्न फूले हुए केले के पौदोंवाले मार्ग पर नाचते हुए मयूर गण दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं पर मयूरों के चन्द्रक युक्त पंख गिरे हुए हैं, जिनसे पृथ्वी तल शोभित हो रहा है। सभी ओर फैले हुए विहार करनेवाले हारीत पक्षीगण वृक्षों पर शोभित हो रहे हैं।३६। इस उपवन के किसी भाग में सारंग मृग के समूह बैठे हुए हैं, कहीं पर विचित्र रंग के पुष्पों के समूह से पृथ्वी तल छिपा हुआ है, कहीं पर उन्मत्त किन्नरों की स्त्रियाँ अति हर्षित होकर विहार कर रही हैं। उनके सुमधुर गीतों की ध्वनियाँ वृक्षों के गुच्छों में प्रतिध्वनित हो रही हैं।३७। कहीं पर मुनिजनों द्वारा बनाये गये लीप पोतकर स्वच्छ एवं बिछाये गये पुष्पों से सुशोभित आवास स्थलों से युक्त वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं पर जड़ तक फलों से लदे हुए ऊँचे तथा फैले हुए कटहल के वृक्ष-समूह सुशोभित हैं।३८। इस उपवन के किसी भाग में सिद्धाङ्गनाओं के सुवर्ण निर्मित नूपुर की सुमधुर ध्वनियों से गुंजरित एवं मोतियों के समान खूब फूली हुई लताओं से आवेष्टित सिद्धों के लीला-गृह विराजमान हैं, कहीं पर सुन्दर प्रियङ्गुलता की मंजरी में लीन मधुपगण गुंजार कर रहे हैं, और कहीं पर मृगों के समूहों द्वारा गिराये गये मनोहर कदम्ब के पुष्प सुशोभित हैं।३९। कहीं पर पुष्पों के समूहों को गिराने वाले वायु से प्रकम्पित वृक्षों की डालियों के अग्रभाग झुककर बाँस की कोठों को नीचे गिरा रहे हैं, उन झुकी हुई बाँस की कोठों में डरी हुई हरिणियों के समूह छिपे हुए हैं, सचमुच यह उपवन देखनेवाले प्राणियों को अपवर्ग का सा सुख प्रदान करने वाला है।४०। इस

---

१ ग. वृन्दम्। सा° । २ ङ. चिदुपशोभित° । ३ ङ. °वाभिर्मधुरसुगीतवृक्षखण्डैः । सं° । ४ ग. °धुपगी° । ५ ग. च. संमृष्टैः । ६ ङ. °महाद्रुमैरु° । ७ क. ख. °लीषु स्खलिताम्बुक° । ङ. °लीसवलिताम्बुक° । ८ क. ख. °सरो भुवि । ९ क. ख. °प्रभृतिली. नमृ° ।

चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
[1]चामीकरप्रतिसमैरथ कर्णिकारैः फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ॥४१
[2]क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसंनिभैः । क्वचित्काञ्चनसंकाशैः [3]पुष्पैराचितभूतलम् ॥४२
पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनमितम् ।
रम्योपान्तश्रमहरपवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम् ॥४३
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं तुहिनशिखरिपुत्र्याः सार्धमिष्टैर्गणेशैः ।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्टमुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः ॥४४

देव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव शोभया परया युतम् । क्षेत्रस्य तु गुणान्सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि ॥४५
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा । श्रुत्वाऽपि हि न मे तृप्तिरतो भूयो वदस्व मे ॥४६

देवदेव उवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम । सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥४७

उपवन में कहीं पर सिन्दूर, केसर तथा कुसुम्भ की भाँति लालवर्ण के अशोक सुशोभित हो रहे हैं, और कहीं लम्बी डालियोंवाले सुवर्ण की कान्ति के समान दिखाई पड़नेवाले फूलों से सुशोभित कनेर के वृक्ष हैं और कहीं पर कमल खिले हुये हैं, कहीं चाँदी के बने हुये पत्रों की भाँति श्वेत वर्ण के, कहीं पर विद्रुम की भाँति लाल वर्ण के और कहीं पर सुवर्ण की भाँति पीले वर्ण के पुष्प समूहों से यह भूतल शोभायमान हो रहा है। कहीं पर पुन्नाग के वृक्षों पर पक्षियों के कलरव, कहीं पर लाल अशोकों के गुच्छों के भार से विनम्र डालियाँ, कहीं पर रमणीक स्थल में परिश्रम को दूर करनेवाले वायु के झोंके और कहीं पर विकसित कमलों पर गुंजार करते हुए भ्रमरों की पंक्तियाँ सुख देती हुई शोभायमान हो रही हैं ।४१-४३। इस प्रकार उस समय समस्त लोकों के स्वामी लोकनाथ भगवान् शंकर ने अपने प्रिय गणेश्वरों को साथ लेकर उस विविध प्रकार के विशाल वृक्षों से सुशोभित तथा उन्मत्त एवं हर्षित करनेवाले मनोहर उपवन को हिमवान् की पुत्री पार्वती को दिखलाया ।४४।

देवी ने कहा—हे देव ! अनुपम शोभायुक्त इस उद्यान को तो आप मुझे दिखला चुके अब इस क्षेत्र के समस्त माहात्म्य का वर्णन मुझ से करें। इस परम पुण्यप्रद अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं प्राप्त होती अतः पुनः इसको मुझसे कहिये ।४५-४६।

देवाधिदेव शंकर ने कहा—हे देवि ! सर्वदा सभी जीवों को मोक्ष देने की हेतु रूप यह वाराणसी नगरी

---

१ क. ख. ग. घ. °कराभनिचयैर° । २ ग. °चिदञ्जनपूर्णा° । ३ ग. °रावृत° ।

[1]अस्मिन्सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः । [2]नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ।।४८
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः । नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते ।।४९
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलंकृते । अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे ।।५०
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु । मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ।।५१
यथा मोक्षमिहाऽऽप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् । एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।।५२
[3]ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः । अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम ।।५३
विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदा च न । महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम् ।।५४
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे । [4]स्नानात्संसेविताद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।।५५
इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते । प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ।।५६
प्रयागादपि [5]तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम् । जैगीषव्यः [6]परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ।।५७
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात् । जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ।।५८

मेरा अति गोपनीय क्षेत्र है । मेरे व्रत में रहने वाले सिद्धगण विविध प्रकार के शरीर धारण कर सर्वदा मेरे लोक की आँकाक्षा करते हुए इसमें निवास करते हैं और इन्द्रियों को वश में कर मुक्तात्मा हो श्रेष्ठ योग का अभ्यास करते हैं ।४७-४८। अनेक प्रकार के वृक्षों से आकीर्ण, विविध प्रकार के पक्षियों से गुञ्जरित, कमल, उत्पल आदि पुष्प समूहों से सुशोभित, सुन्दर, सरोवरों से अलंकृत, सर्वदा अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों से सुसेवित इस शुभ क्षेत्र में, जिस कारण सर्वदा निवास करना मुझे भाता है, वह सब सुनो । मेरे वे भक्त, जो अपनी सभी क्रियाओं को करके मुझ में ही अर्पित करते हैं, मेरा ही चिन्तन करनेवाले हैं, जिस प्रकार सुगमता से यहाँ मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उस तरह कहीं अन्यत्र नहीं । यह मेरा महान् पुर अति दिव्य गुणसम्पन्न तथा अति एकान्त में है ।४९-५२। इससे बढ़कर कोई भी क्षेत्र मुझे प्रिय नहीं है, इस बात को या तो ब्रह्मादि देवतागण जानते हैं । क्योंकि मैंने अपने इस क्षेत्र कों कभी नहीं छोड़ना चाहता हूँ । अतएव इस महान् क्षेत्र का नाम अविमुक्त कहा जाता है ।५३-५४। नैमिषारण्य में, कुरुक्षेत्र में, हरिद्वार में तथा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने तथा ध्यानपूजनादि से सामान्यतः मोक्ष नहीं प्राप्त होता, और यहाँ आने पर जिस कारण वश प्राप्त होता है अतएव इसकी विशेषता है । प्रयाग में मोक्ष प्राप्त होता है और यहाँ मेरे स्थान होने के कारण प्रणियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है ।५५-५६। किन्तु तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग से भी अधिक महत्त्व है । महातपस्वी जैगीषव्य ने, जो परम सिद्धि प्राप्त करनेवाले थे, इस काशी क्षेत्र के माहात्म्य से तथा मेरी भक्ति के कारण यहीं पर नित्य मेरा ध्यान करते हुए योगियों की परमोच्च पदवी को प्राप्त किया था ।५७-५८। मनुष्य को मेरा ध्यान करने पर काशी क्षेत्र

---

[1] ग. अत्र सिद्धः सगन्धर्वाः पितरश्च समाश्रिताः । [2] ग. °नाव्रतध° । [3] ङ. °दयो न जा° । [4] ग. °बात्सुसेवनाद्वा° । [5] घ. र्थाग्र्यमिद° । [6] ग. पुरा ।

ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम् । कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम् ॥५९
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः । इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः ॥६०
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम् । आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च ॥६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा सर्वार्पितक्रियः । क्षेत्रसंवसनादेव गणेशत्वमवाप ह ॥६२
संवर्तो भविता यश्च सोऽपि [1]भक्तो ममैव तु । इहैवाऽऽराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम् ॥६३
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः । धर्मकर्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि क्षेत्रेऽस्मिन्मुनिपुंगवः । ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः । उपासते महात्मानः सर्वे मामेव सुव्रते ॥६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः । अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा ॥६७
अलर्कश्च पुरीमेतां मत्प्रसादादवाप्स्यति । स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् ॥६८
स्फीतां [2]जनसमाकीर्णां भक्त्या च सुचिरं नृपः । मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ॥६९

में उद्दीप्त योगाग्नि प्राप्त होती है, जिससे वह कैवल्य पद की प्राप्ति करता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ।५७-५९। सभी सिद्धान्तों के जानने वाले मुनिगण, अप्रकट रूप में छिपे हुए इस क्षेत्र में देवताओं तथा दानवों के लिये भी दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, उन सब को मैं उत्तम ऐश्वर्य एवं भोग देता हूँ, और अंत में अपनी समीपता, एवं उनके मनोवांछित स्थान को भी देता हूँ ।६०-६१। मेरे लिए सभी क्रियाओं का समर्पण कर इस क्षेत्र में निवास करने के कारण ही यक्षराज कुवेर ने गणेशत्व की पदवी प्राप्त की है । देवि ! भविष्यत् काल में संवर्त नामक जो तपस्वी होगा, वह भी मेरा भक्त होगा, इसी क्षेत्र में मेरी आराधना कर वह परम श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करेगा । हे पद्माक्षि ! महा तपस्वी योगी मुनिपुंगव पराशर के पुत्र व्यास भी, जो वेदों की मर्यादा के प्रवर्त्तक तथा धर्म कार्यों के कर्त्ता होंगे, इसी क्षेत्र में तपस्या करते हुए निवास करेंगे। यहाँ ब्रह्मर्षियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु वायु, सूर्य, देवराज इन्द्र तथा इनके अतिरिक्त अन्य जो देवगण हैं, वे सभी महान् चेता मेरी उपासना करते हैं ।६२-६६। अन्य जो महाव्रत धारी योगाभ्यास में निरत सिद्ध महात्मा हैं, वे प्रच्छन्न रूप धारण कर अनन्य चित्त हो यहाँ मेरी सर्वदा उपासना करते हैं । मेरी ही कृपा से इस काशी पुरी को राजा अलर्क प्राप्त करेगा । वह इस काशी पुरी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों के पालन करने वाले मनुष्यों से आकीर्ण कर चिरकाल तक मेरी भक्ति से इसका उपभोग करता हुआ अपने सभी कार्यों को मुझको समर्पित कर अन्त में मुझे प्राप्त करेगा ।६७-६९। सुन्दरि ! उसी समय से लेकर जो

---

[1] क ख. भक्त्या । [2] घ. ङ. °नपदाकी° ।

ततः प्रभृति चार्वङ्गि येऽपि क्षेत्रनिवासिनः । गृहिणो लिङ्गिनो वाऽपि मद्भक्ता मत्परायणाः ॥७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभं । विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥७१
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत् । ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेन्द्रियाः ॥७२
व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः । देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः ॥
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते ॥७३
जन्मान्तरसहस्रेषु [1]युञ्जन्योगमवाप्नुयात् । तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ॥७४
एतत्संक्षेपतो देवि क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् । अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम् ॥७५
अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि । एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि ॥७६
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम् । एतदेव परं ब्रह्म एतदेव परं पदम् ॥७७
वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ।
अत्राऽऽगता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ॥७८

कोई प्राणी इस क्षेत्र में निवास करते हुए मेरी भक्ति तथा मेरी शरण में रहकर—चाहे वे गृहस्थाश्रमी हों–अथवा संन्यासी हों मेरी ही कृपा से परम दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करेंगे । जो प्राणी अपने वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर सर्वदा विषयों में आसक्त रहनेवाले हैं, वे भी इस क्षेत्र में शरीर त्याग कर पुनः संसार में जन्म नहीं धारण करते। सुव्रते ! फिर तो, जो अहंकार रहित, धैर्यवान्, सत्त्ववृत्ति में निरत रहनेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्या में निरत, निरारम्भ एवं संगवर्जित तथा मेरी भक्ति से भावित हैं, वे भी परम बुद्धिमान् शरीर को छोड़कर मेरी कृपा से परम मोक्ष की प्राप्ति करते हैं ।७०-७३। योगी लोग सहस्रों जन्मों में योगाराधना कर के जिस परम पद की प्राप्ति करते हैं, उसको इस काशी क्षेत्र में शरीर त्याग कर प्राप्त करते हैं । हे देवि ! संक्षेप में यही इस अतिगोपनीय अविमुक्त क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण फल है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका । हे महेश्वरि ! इससे बढ़कर गोपनीय सिद्धि की बात कोई नहीं है, इसे योग के माहात्म्य को जानने वाले ही जानते हैं, अथवा वह लोग जानते हैं जो इस पृथ्वी मण्डल में योगेश्वर माने जाते हैं । यही सबसे श्रेष्ठ स्थान है, यही सबसे श्रेष्ठ फल देने वाला क्षेत्र है, यही परमब्रह्म है, यही परम पद है ।७४-७७। हे गिरिराज पुत्रि ! यह रमणीय वाराणसी पुरी, जो तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ है, परम प्यारी नगरी है, यहाँ पर आकर अनेक प्रकार के पाप कर्मों के करनेवाले पापी जन भी पाप कर्मों के क्षय हो जाने से रजोवृत्ति रहित होकर सुशोभित होते हैं। देवि ! विचित्र प्रकार के वृक्षों एवं लताओं के गुल्मों एवं पुष्पों से सुशोभित, कभी नष्ट न होने वाला अविमुक्त क्षेत्र मेरा अति प्रिय क्षेत्र

---

[1] ग. °न्योगी समाप्नु° ।

एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासुपुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति *मूर्खागमेन *रहितापि न संशयोऽत्र ॥७९

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम् । दातुं [१]प्रसादं यक्षाय [२]वरं भक्ताय भामिनि ॥८०
भक्तो मम वरारोहे तपसा हतकिल्बिषः । अहो वरमसौ लब्धुमस्मत्तो भुवनेश्वरि ॥८१
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः । जगाम यक्षो यत्राऽऽस्ते कृशो धमनिसंततः ॥८२
+ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती । श्वेतवर्णं विचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम् ॥८३
देवी प्राह तदा देवं दर्शयन्ती च गुह्यकम् । सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शंकर ॥८४
ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् । अतः क्षेत्रे महादेव पुण्ये सम्यगुपासिते ॥८५
कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः । शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात्परमेश्वर ॥८६
एवं मन्वादयो देव वदन्ति परमर्षयः । रुष्टाद्वा चाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत् ॥
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदा शिवात् ॥८७

कहा गया है, इस मेरे क्षेत्र में शरीर त्याग करनेवाले शरीरधारी, चाहे वे मूर्ख अथवा वेद विरुद्ध क्यों न हों, परम पद की प्राप्ति करते हैं ।७८-७९।

सूत ने कहा—इसके बाद देवाधिदेव शंकर ने गिरिपुत्री पार्वती से कहा—'हे भामिनि ! भक्त यक्ष को वरदान देने के लिए चलना चाहिये । हे सुन्दरि भुवनेश्वरि ! वह यक्ष मेरा भक्त है, जो अपनी घोर तपस्या के प्रभाव से निष्पाप हो चुका है, अब मुझसे वरदान प्राप्त करने का वह अधिकारी है ।' ऐसा कह कर पार्वती के साथ महादेव वहाँ गये, जहाँ पर धमनियों के जाल रूप में अवशेष वह यक्ष अवस्थित था । वहाँ पहुँच कर उस समय श्वेतवर्ण चर्मरहित स्नायु से बंधे हुए अस्थि के पंजर रूप में अवशेष यक्ष को देखती हुई पार्वती ने महादेव को उसे दिखलाया और कहा—'हे शंकर ! देवताओं ने आप का नाम जो उग्र रखा है, वह सत्य है, क्योंकि ऐसी घोर तपश्चर्या में लीन होनेवाले को तुम वरदान नहीं देते ।८०-८४½। ! देवाधिदेव इस पुण्यप्रद क्षेत्र में इतनी घोर उपासना करके यह यक्ष का कुमार क्यों इतने घोर क्लेश को अभी तक सहन कर रहा है, हे परमेश्वर ! शीघ्र ही इसके ऊपर प्रसन्न होकर वरदान दीजिए । हे देव ! मनु आदि परम ऋषिगण आप के विषय में ऐसी चर्चा करते हैं कि सदाशिव से रुष्ट होने पर तथा संतुष्ट होने पर—दोनों दशाओं में इस लोक में भोग की प्राप्ति तथा राज्य मिलता है, और शरीरान्त होने पर मोक्ष की

---

* अत्र संधिरार्षः । +इत आरम्भ धमनिसंतत इत्यन्तग्रन्थो नास्ति ग. ङ. पुस्तकयोः ।

---

[१] क. ख. °सादाद्यक्षा° । [२] ङ. °रं शक्ताऽसि भा° ।

एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः । जगाम यक्षो यत्राऽऽस्ते कृशो धमनिसंततः ।।८८
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः । दिव्यं चक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत्स शंकरम् ।।८९
अथ यक्षस्तदादेशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी । अपश्यत्सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ।।९०

देवदेव उवाच

वरं ददामि ते पूर्वं [1]त्रैलोक्ये दर्शनं तथा । [2]सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः ।।९१

सूत उवाच

ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च । पादयोः प्रणतस्तस्थौ कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।।९२
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदितः । भगवन्भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे ।।९३
[3]अन्नदत्वं च लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम् । अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ।।
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।।९४

देवदेव उवाच

जरामरणसंत्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः । भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ।।९५

प्राप्ति होती ।८५-८७। पार्वती के ऐसा कहने पर शिव उन्हें साथ लेकर उस स्थान पर गये जहाँ वह यक्ष धमनियों के जाल रूप में अवशेष हो तपस्या में निरत था । वृषभध्वज ने भक्ति से नमस्कार करते हुए उसे देख कर दिव्य नेत्र प्रदान किया, जिससे उसने शंकर को स्पष्टतया देखा । तदनन्तर यक्ष ने शिव के आदेश से अपनी आँखों को धीरे से खोल कर गण समेत उपस्थित वृषभध्वज शंकर का यथेष्ट दर्शन किया ।८८-९०।

देवदेव ने कहा—तुम्हें मैं सर्वप्रथम इस त्रिलोक में दर्शन करने का वरदान दे रहा हूँ, पुनः अपने शरीर के समान तुम्हारे शरीर के वर्ण होने का वरदान भी दे रहा हूँ, अब सभी दुःखों से तुम दूर हो कर मुझे देखो ।९१।

सूत ने कहा—शिव से वरदान की प्राप्ति कर सुन्दर व्रणरहित शरीर को प्राप्त कर उस यक्ष ने हाथों को मस्तक में लगा शिवजी के चरणों पर गिरकर निवेदन किया—'भगवन् देवदेव ! आप यदि हमें वरदान दे रहे हैं तो आप के चरणों में मेरी अटूट निश्चल भक्ति हो—ऐसा वरदान दीजिये तथा सभी लागों को अन्नदान देने का तथा गणों के स्वामी होने का अक्षयपद मुझे प्रदान कीजिये, जिससे आपसे कभी नहीं छोड़े गये इस अविमुक्त क्षेत्र का मैं सर्वदा दर्शन करता रहूँ, मैं इसी सर्वश्रेष्ठ वरदान को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ ।९२-९४।

देवदेव ने कहा—यक्ष ! तुम वृद्धावस्था एवं मृत्यु से तथा सभी प्रकार की व्याधियों से रहित हो सब

---

[1] ग. घ. °लोक्यद° । [2] लावर्ण्यं । [3] ङ. °न्नदः सर्वलो° ।

अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः । अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालो भविष्यसि ॥९६
महाबलो महासत्त्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः । त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ॥९७
उद्भ्रमः संभ्रमश्चैव गणौ ते परिचारकौ । तवाऽऽज्ञया करिष्येते लोकस्योद्भ्रमसंभ्रमौ ॥९८

सूत उवाच

एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् । जगाम [1]वासं देवेशः सह [2]तेन महेश्वरः ॥९९

इति श्री मात्स्ये महापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये दण्डपाणिवरप्रदानं
नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥९७२६॥

के पूज्य एवं गणों के स्वामी धनपति होगे, अतुल ऐश्वर्य एवं योग की प्राप्ति कर सभी प्राणियों द्वारा अजेय होकर सभी लोगों के अन्नदाता तथा क्षेत्रपाल होंगे । मेरे प्रिय होकर महाबलवान् परम पराक्रमी सत्त्वगुणसम्पन्न, ब्राह्मणोपकारक, तीन आँखोंवाले, दण्डपाणि तथा महान् योगाभ्यासी होगे । उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे सेवक होंगे, और तुम्हारी आज्ञा से वे लोक के चित्त को व्याकुल तथा क्षुब्ध करने वाले होंगे ।९५-९८।

सूत बोले—इस प्रकार देवेश महेश्वर भगवान् शिव ने उस यक्ष को गणों का स्वामी बनाकर उसके अपने निवास स्थान को प्रस्थान किया ।९९।

श्री मात्स्य महापुराण में वाराणसी प्रसंग में दण्डपाणि वर प्रदान नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८०॥

---

[1] क. ख. ग. वामदे° । [2] क. ख. ग. घ. ते नामरेश्व° ।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

इमां पुण्योद्भवां स्निग्धां कथां पापप्रणाशिनीम् । शृण्वन्तु ऋषयः [1]सर्वे [2]सुविशुद्धास्तपोधनाः ॥१
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम् । सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् ॥२
ब्रूहि गुह्यं यथातत्त्वं यत्र नित्यं भवः स्थितः । [3]महात्मा सर्वभूतानां परमात्मा महेश्वरः ॥३
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः । आभूतसंपप्लवं यावत्स्थाणुभूतो महेश्वरः ॥४

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम् । तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥५
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया । कथितं भुवि विख्यातं यत्र नित्यं [4]स्वयं स्थितः ॥६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी । महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ॥७

अध्याय १८१

सूत बोले—परम शुद्धचित्त तपस्वी ऋषिगण ! इस पाप को नष्ट करनेवाली पुण्य प्रदायिनी मनोहर कथा को आप सब लोग सुनें । एक समय रुद्र के समान पराक्रमी गणेश्वरों के स्वामी नन्दिकेश्वर से भगवान् सनत्कुमार ने पूछा था—'हे नन्दिकेश्वर ! परमात्मा, सभी जीवों के स्वामी, महान्चेता महेश्वर भगवान् शंकर जहाँ पर नित्य अवस्थित रहते हैं, ऐसे पवित्र अति गोपनीय स्थान का पता हमें बतलाइये, जहाँ सृष्टि के स्थाणु रूप भगवान् महेश्वर महाप्रलय पर्यन्त अति भयानक देवताओं तथा दैत्यों के लिए भी दुष्कर स्वरूप को धारण कर स्थित रहते हैं' ।१-४।

नन्दिकेश्वर ने कहा—देवाधिदेव शंकर ने पहले जिस उत्तम पुण्यप्रदायिनी कथा को मुझसे कहा है, उसी सारी कथा को महेश्वर को प्रणाम कर मै आप से बतला रहा हूँ । पार्वती के कल्याण की भावना से अति सन्तुष्ट होकर शिव ने पृथ्वी पर विख्यात उस पवित्र स्थान को बतलाया था, जहाँ वे नित्य निवास करते थे । सुमेरु के शिखर पर महादेव जी के आधे आसन पर विराजमान यशस्विनी पार्वती जी ने उनसे विनम्र होकर एकबार ऐसा पूछा ।५-७।

---

[1] ग. °र्वे योगज्ञानसमं हिताः । [2] ङ. °शुद्धाः समाहिताः । [3] क. ख. ग. घ. महात्म्यं । [4] ख. घ. ङ. भवः ।

देव्युवाच

[१]भगवन्देवदेवेश चन्द्रार्धकृतशेखर । धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्ध्वरेतसाम् ॥८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् । [२]ध्यानाध्ययनसंपन्नं कथं भवति चाक्षयम् ॥९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम् । कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाऽऽचक्ष्व शंकर ॥१०
[३]यस्मिन्व्यवस्थितो भक्त्या [४]तुष्यसि त्वं महेश्वर । व्रतानिनियमाश्चैव आचारो धर्म एव च ॥११
सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षय्यगतिदायकम् । वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥१२

महेश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् । सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रियं मम ॥१३
[५]अष्टषष्टिः पुरा प्रोक्ता स्थानानां स्थानमुत्तमम् । यत्र साक्षात्स्वयं रुद्रः कृत्तिवासाः स्वयं स्थितः ॥१४
यत्र संनिहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् । तत्क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥१५
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः । जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६

देवी ने कहा—देवदेवेश ! मस्तक पर आधे चन्द्रमा से सुशोभित ! भगवन् ! इस पृथ्वी मण्डल पर ऊर्ध्वरेता मनुष्यों के धर्मों का उपदेश मुझे दीजिये । किस प्रकार से जपा हुआ जप, हवन किया हुआ यज्ञ, विधिपूर्वक की गई तपस्या, ध्यान एवं अध्ययन से प्राप्त की गई पुण्य तथा विद्या शाश्वत फलदायी हो जाती है । जो पाप पूर्वकाल से—सहस्रों जन्मों से—संचित होता चला आता है, वह किस प्रकार नष्ट हो जाता है, हे शंकर ! इस बात को मुझसे बतलाइये । हे महेश्वर । जिस क्षेत्र में अवस्थित होकर आप भक्ति से सन्तुष्ट हो जाते हैं और जहाँ पर किये गये व्रत, आचार नियम, धर्म आदि सम्पूर्ण सिद्धियों के देने वाले होते हैं और कभी नष्ट नहीं होते, उसके बारे में समस्त वृतान्त को सुनने के लिये मुझें वड़ा कुतूहल हो रहा है, कृपया आप कहें ।८-१२।

महेश्वर ने कहा—हे देवि ! सभी क्षेत्रों में विख्यात, अति एकान्त एवं गोपनीय मेरे प्रिय अविमुक्त क्षेत्र का वर्णन सुनो, मैं कह रहा हूँ । जहाँ पर पूर्व काल से ही अति उत्तम अड़सठ स्थान गिनाये गये हैं उस अविमुक्त क्षेत्र में रुद्र मूर्ति धारण कर गजेन्द्र का चर्म पहन कर मैं स्वयं निवास करता हूँ ।१३-१४। निरन्तर निवास करते हुये मैंने उस क्षेत्र को कभी भी नहीं छोड़ा है । अत; वह अविमुक्त के नाम से विख्यात है । उस अविमुक्त क्षेत्र में परम सिद्धि प्राप्त होती है, परमगति मिलती है । जहाँ पर किये गये गये जप, दान, हवन,

---

१ ग. °वन्सर्वदे । २ ङ. ध्यानं चैव तथा सम्यक्कथं । च. ध्यानमध्ययनं दानं क° । ३ क. ख. °यस्मिश्च पूजितो । ४ क. ख. ध्यसे परमेश्व° । ग. °ध्यते परमेश्वरः । व्र° । ५ ङ. षष्टिपुरोक्तानां स्था° । च. °षष्टिपुराणोक्तस्था° ।

ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् । जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम् ॥१७
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् । अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाऽऽहितम् ॥१८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः । कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ॥१९
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ॥२०
चन्द्रार्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः । शिवे मम पुरे देवि [1]मोदन्ते तत्र मानवाः ॥२१
अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा । अविमुक्ते त्यजन्प्राणान्मम लोके महीयते ॥२२
अविमुक्तं यदागच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । अश्मना चरणौ [2]भित्त्वा तत्रैव निधनं व्रजेत् ॥२३
अविमुक्तं गतो देवि न निर्गच्छेत्ततः पुनः । सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२४
[3]वस्त्रपदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम् । गोकर्णं रुद्रकर्णं च सुवर्णाक्षं तथैव च ॥२५
[4]अमरं च महाकालं तथा कायावरोहणम् । एतानि हि पवित्राणि सांनिध्यात्संध्ययोर्द्वयोः ॥२६
कालिञ्जरवनं चैव शङ्कुकर्णं स्थलेश्वरम् । एतानि च पवित्राणि सांनिध्याद्धि मम प्रिये ॥
अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः ॥२७

यज्ञाराधन, तपस्या, ध्यान तथा अध्ययन आदि कर्म कभी नष्ट नहीं होते । पूर्वकाल के सहस्रों जन्मों में किये गये सभी पाप कर्म, जो संचित हो जाते हैं, अविमुक्त में प्रवेश करते ही नष्ट हो जाते हैं । रुई के समान इकट्ठे हुये वे पाप अविमुक्त रूप अग्नि से तुरन्त जल जाते हैं।१५-१८। हे प्रिय ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्ण संकर, कृमि, म्लेच्छ, अन्य पापयोनि में उत्पन्न होने वाले नीच मनुष्य, कीट, चीटे आदि, अन्य जो पशु तथा पक्षी जाति के जीव हैं, वे सभी काल के प्रभाव से यदि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करते हैं तो आधे चन्द्रमा से विभूषित मस्तक वाले हो, ललाट में मेरी ही भाँति तृतीय नेत्र तथा वृषभध्वज हो मेरे शिवपुर में आनन्द का उपभोग करते हैं ।१९-२१। देवि ! कामयुक्त हो वा निष्काम हो, चाहे तिर्यक् योनि में ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, इस अविमुक्त में प्राण छोड़कर मेरे लोक में पूजित होता हैं । जो मनुष्य कभी काल क्रम से अविमुक्त की यात्रा करता और पत्थर के टुकड़ों से चरणों को बाँधकर या तोड़कर प्राण त्याग करता है, अविमुक्त को प्राप्त कर फिर कभी उससे बाहर नहीं निकलता, वह भी मेरे स्थान को प्राप्त करता है, इसके बारे में शंका समाधान करने की आवश्यकता नहीं ? ।२२-२४। वस्त्र पद, रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर महालय, (सिद्धेश्वर का विशाल आवासस्थान), गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुवर्णाक्ष, अमर महाकाल, कायावरोहण—ये सब स्थान दोनों–प्रातःकाल तथा सन्ध्याकाल कीं–सन्ध्याओं में मेरे सन्निधान के कारण परम पवित्र रहते हैं । हे प्रिये ! कालिंजर नामक वन, शंकुकर्ण, स्थलेश्वर—

---

[1] क. ख. जायन्ते । [2] क. ख. बद्ध्वा । [3] ग ङ. च. वस्त्रापदं । घ चम्वापदं । [4] ग. अपरं ।

हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं [1]गुह्यमाम्रातकेश्वरम् । [2]जालेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ॥२८
[3]महालयं तथा [4]गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम् । गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च ॥२९
अष्टावेतानि स्थानानि सांनिध्याद्धि मम प्रिये । अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः ॥३०
यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुव्रते । अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं संनिहितानि वै ॥३१
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने । स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम् ॥३२

इति श्री मात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्य एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥९७५८॥

ये सब भी मेरे सन्निधान से परम पवित्र हैं । अविमुक्त में मैं तीनों सन्ध्याओं मे निवास करता हुँ । परम एकान्त हरिश्चन्द्र, आम्रांतकेश्वर, जालेश्वर, श्री पर्वत, महालय, कृमिचण्डेश्वर, अति एकान्त केदार तथा महाभैरव—ये आठ स्थान मेरे तीनों संस्थाओं में निवास करने के कारण अति पवित्र हैं । हे सुन्दरि ! इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ—इसमें संशय नहीं ।२५-३०। हे सुव्रते ! तीनों लोकों में जितने पुण्यप्रद स्थान बतलाये गये हैं, वे सभी अविमुक्त के चरणों में सर्वदा सन्निहित रहते हैं । शोभने ! इसके बाद अविमुक्त की दिव्य कथा तथा भक्ति में लीन ऋषियों के वृत्तान्त को स्कन्द कहेंगे ।३१-३२।

श्री मत्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

---

१ क. ख. घ. °म् । जले° । २ च जालं वनं प° । ३ ङ. °यं भद्रेकर्ण मरुच° । ४ ग. °ह्यं हरच° ।

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

कैलासपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम् । पप्रच्छुर्ऋषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः ॥१
तथा राजर्षयः सर्वे ये भक्तास्तु महेश्वरे । ब्रूहि त्वं स्कन्द भूर्लोके यत्र नित्यं भवः स्थितः ॥२

स्कन्द उवाच

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः । घोररूपं [1]समास्थाय दुष्करं देवदानवः ॥३
आभूतसंप्लवं यावत्स्थाणुभूतः[2] स्थितः प्रभुः । गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम् ॥४
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्र नित्यं भवः स्थितः । अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तं त्वीश्वरेण तु ॥५
[3]स्थानं परं पवित्रं च तीर्थमायतनं तथा । श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितं च यत् ॥६
भूर्लोके नैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम् । अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥७

अध्याय १८२

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! प्राचीनकाल में सनकादि परम तपस्वी ऋषिगण तथा महेश्वर में भक्ति रखने वाले जितने राजर्षि हैं—उन सबों ने एक बार कैलास की पीठ पर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से पूछा—'हे स्कन्द ! मुझे पृथ्वीतल के उस स्थान का माहात्म्य बतलाइये जहाँ पर नित्य भगवान् शंकर निवास करते हैं ।१-२।

स्कन्द ने कहा—सभी जीवों के आत्मस्वरूप देवाधिदेव, कभी नष्ट न होनेवाले, महनीय आत्मा भगवान् शंकर देवताओं तथा दानवों से दुष्करणीय महा भयानक रूप धारण कर जिस स्थान पर महाप्रलय तक स्थाणु रूप से निवास करते हैं, वह अति गोपनीय एवं एकान्त अविमुक्त नामक क्षेत्र है। उस अविमुक्त क्षेत्र में, जहाँ नित्य शंकर निवास करते हैं, सर्वदा सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, स्वयं शिव ने उस अविमुक्त का जो माहात्म्य कहा है, उसे मैं कह रहा हूँ ! यह काशी क्षेत्र परम पवित्र क्षेत्र है, इसमें अनेक पवित्र तीर्थ एवं देवमन्दिर हैं । इसमें श्मशान भूमि पर अवस्थित एक दिव्य भवन है, जो सर्व साधारण को दिखाई नहीं पड़ता ।३-६। धरातल से उस शिवालय का संयोग नहीं है, प्रस्तुत वह आकाशमार्ग में अवस्थित है । उस शिवालय को जो लोग ब्रह्मचारी अथवा योगी नहीं हैं वे नहीं देख पाते, केवल योगी जन

---

[1] ङ. °मासाद्य दु । [2] ग. °तः सनातनः । गु° । [3] क. ख. स्थानान्तरं ।

[1]ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः । आ देहपतनाद्यावत्तत्क्षेत्रं यो न [2]मुञ्चति ॥८
ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक्सम्यगिष्टं [3]मखैर्भवेत् । अपापात्मा गतिः सर्वा या तूक्ता च क्रियावताम् ॥९
[4]यस्तत्र [5]निवसेद्विप्रोऽसंयुक्तात्माऽसमाहितः । त्रिकालमपि भुञ्जानो [6]वायुभक्षसमो भवेत् ॥१०
निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्ते तु [7]भक्तिमान् । ब्रह्मचर्यसमायुक्तः परमं प्राप्नुयात्तपः ॥११
योऽत्र मासं वसेद्धीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः । सम्यक्तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥१२
जन्ममृत्युभयं [8]तीर्त्वा स याति परमां गतिम् । *नै श्रेयसीं गतिं पुण्यां तथा योगगतिं व्रजेत् ॥१३
न हि योगगतिर्दिव्या जन्मान्तरशतैरपि । प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात्प्रभावाच्छंकरस्य तु ॥१४
ब्रह्महा योऽभिगच्छेत्तु अविमुक्तं कदाचन । तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ब्रह्महत्या निवर्तते ॥१५

समाधिस्थ होकर उसका दर्शन करते हैं। वेदान्त के जाननेवाले ब्रह्मचर्य व्रत में निष्ठ सिद्ध लोग भली भाँति ब्रह्मचर्य का पालनकर तथा विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान कर जिस गति को प्राप्त करते हैं उस गति को इस अविमुक्त क्षेत्र को शरीरान्त तक कभी न छोड़ने वाला मनुष्य, जो कभी पाप कर्म नहीं करता, प्राप्त करता है। वह गति क्रियानिष्ठ जनों के लिये कही जाती है।७-९। जो ब्राह्मण इस अविमुक्त क्षेत्र में कभी समाधि में निमग्न न हो कर एवं आत्मा के साथ सम्बन्ध न करके तीनों वेला भर पेट भोजन करते हुए निवास करता है वह भी वायु भक्षण कर जीवन-यापन करनेवाले योगी की भांति उत्तम गति का अधिकारी होता है। भक्तिपूर्वक जो मनुष्य क्षण भर भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए इस अविमूक्त में निवास करता है वह परम तपस्या का फल प्राप्त करता है।१०-११। जो धीर पुरुष अल्प भोजन कर इन्द्रियों को स्ववश में रख कर एक मास तक निवास करता है वह भली भांति महापाशुपत नामक दिव्य व्रत का अनुष्ठान करता है तथा जन्म एवं मृत्यु की भीति छोड़कर परम गति प्राप्त करता है एवं निःश्रेयस् प्राप्त करानेवाली पुण्यगति को प्राप्त कर योगगति का भी अधिकारी होता है।१२-१३। सैकड़ों जन्म प्रयत्न करते रहने पर भी वह दिव्य योगगति मनुष्य को प्राप्त होनेवाली नहीं है; परन्तु भगवान् शंकर के प्रभाव तथा इस अविमूक्त क्षेत्र के माहात्म्य से वह उस मनुष्य को प्राप्त हो जाती है। ब्राह्मण की हत्या करनेवाला भी यदि कभी अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र यात्रा करता है तो वह भी उस क्षेत्र के माहात्म्य से ब्रह्महत्या से छुटकारा पा जाता है।१४-१५। जो मनुष्य शरीरान्त पर्यन्त इस अविमुक्त

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—पुण्यां तथा योगगतिं मनुष्यो निर्मलां लभेत् इति।

---

१ ङ. ॅर्यं युतः शान्तोऽप्यथ वेदान्तगो द्विजः। आ°। २ ङ. °ति। वेदहीनो व्रती चापि सम्य°। ३ ङ. °त्। पापात्मनो गतिः सद्योया। ४ ङ. त्र वसते विप्रः संयतात्मा। ५ ग. °द्विप्रः सं°। ६ ङ. भक्षः सदा भ°। ७ ङ. तिष्ठति। ८ ङ. हित्वा।

आ देहपतनाद्यावत्क्षेत्रं यो न विमुञ्चति । न केवलं ब्रह्महत्या [1]प्रवाकृतं च [2]निवर्तते ॥१६
प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न [3]स भूयोऽभिजायते । अनन्यमानसो भूत्वा [4]योऽविमुक्तं न मुञ्चति ॥१७
तस्य देवः सदा तुष्टः सर्वान्कामान्प्रयच्छति । +द्वारं यत्सांख्ययोगानां स तत्र वसति प्रभुः ॥१८
सगणो हि भवो देवो भक्तानामनुकम्पया । अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः ॥१९
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम् । अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम् । २०
यदीच्छेन्मानवो धीमान्न [5]पुनर्जायते क्वचित् । मेरोः शक्तो गुणान्वक्तुं द्वीपानां च तथैव च ॥२१
समुद्राणां च सर्वेषां नाविमुक्तस्य शक्यते । अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु मर्मसु ॥२२
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते । अविमुक्ते ह्यन्तकाले भक्तानामीश्वरः स्वयम् ॥२३
कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजापं [6]प्रयच्छति । मणिकर्ण्यां त्यजन्देहं गतिमिष्टां व्रजेन्नरः ॥२४
ईश्वरप्रेरितो याति दुष्प्रापामकृतात्मभिः । अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्विषम् ॥२५

क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसकी ब्रह्महत्या ही तथा पुराने कई जन्मों के किये गये घोरातिघोर पाप भी छूट जाते हैं। विश्वेश्वर भगवान् शिव का परम पवित्र पद पाकर वह फिर कभी मर्त्यलोक में उत्पन्न नहीं होता। जो मनुष्य अनन्य चित्त हो अविमुक्त क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसके सभी मनोरथों को प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रदान करते हैं। वे भगवान् शंकर भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए अपने गणों समेत वहाँ निवास करते हैं, जो सांख्य तथा योग का द्वार है।१६-१८। वह अविमुक्त सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है, उसमें परमगति की प्राप्ति होती है। उस अविमुक्त में परम सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसमें परम पद की प्राप्ति होती है, देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित उस अविमुक्त का सेवन अवश्य करना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष इस अविमुक्त क्षेत्र की इच्छा करता है वह पुनर्जन्म कभी नहीं धारण करता। सुमेरु पर्वत एवं सभी समुद्रों के तथा द्वीपों के गुणों का वर्णन तो किया जा सकता है पर अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा नहीं की जा सकती।१९-२१½। मनुष्यों के शरीरान्तकाल में जब कि उसका मर्मस्थल छिन्न-भिन्न होने लगता है, वायु का प्रबल वेग उठने लगता है, स्मृति भी शेष नहीं रहती, सभी कर्मों के फल उदित हो जाते हैं, उस समय भगवान् शंकर स्वयमेव अपने उन भक्तो के कानों में गुरुमंत्र का उपदेश करते हैं। मणिकर्णिका नामक तीर्थ पर शरीर को त्यागनेवाला मनुष्य इष्टगति प्राप्त करता है।२२-२४। ईश्वर की प्रेरणा से वह ऐसी उत्तम गति प्राप्त करता है, जो दुष्कर्मियों के लिए सर्वथा दुष्प्राप्य है।

+ एतदर्धं न विद्यते ङ. पुस्तके ।

---

[1] क. ख. °वकृता च । [2] ग. विमुञ्चति । [3] क. ख. सा । [4] ङ. क्तंनिषेवते । त° । [5] ङ. °नर्जन्म ात्मनः । मे° । [6] ग. ङ. °ति । अविमुक्ते त्यजेद्देहं ।

अविमुक्तं निषेवेत संसारभयमोचनम् । [1]योगक्षेमप्रदं दिव्यं बहुविघ्नविनाशनम् ॥२६
विघ्नैश्चाऽऽलोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्चति । स मुञ्चति जरां मृत्युं जन्म चैतदशाश्वतम् ॥
अविमुक्तप्रसादात्तु शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥२७

इति श्री मात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६००७॥

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

देव्युवाच

हिमवन्तं गिरिं त्यक्त्वा मन्दरं गन्धमादनम् । कैलासं निषधं चैव मेरुपृष्ठं महाद्युतिम् ॥१
रम्यं त्रिशिखरं चैव मानसं सुमहागिरिम् । देवोद्यानानि रम्याणि नन्दनं वनमेव च ॥२
सुरस्थानानि मुख्यानि तीर्थान्यायतनानि च । तानि सर्वाणि संत्यज्य अविमुक्ते रतिः कथम् ॥३

अनेक पापपूर्ण प्रपंचों से भरे हुए इस मानवजीवन को नाशवान् समझकर मनुष्य को सांसारिक भय को दूर करने वाले इस अविमुक्त क्षेत्र का सेवन करना चाहिये, यह योग क्षेम का देनेवाला, दिव्यगुण युक्त एवं अनेक विघ्नों को नष्ट करनेवाला है। अनेक विघ्नों से विचलित किये जाने पर भी जो अविमुक्त को नहीं छोड़ता वह वृद्धावस्था, मृत्यु तथा नश्वर जन्म को छोड़ता है एवं अविमुक्त के माहात्म्य से शिव की समीपता प्राप्त करता है ॥२५-२७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८२॥

अध्याय १८३

पार्वती ने कहा—शंकर ! अति शोभाशाली हिमवान् गिरि को छोड़कर तथा मन्दराचल, गन्धमादन, कैलास, निषध, सुमेरु के पृष्ठभाग, सुरम्य त्रिशिखर, महागिरि मानस, आदि पर्वतों एवं परम मनोहर देवताओं की विविध अमराइयों, तथा प्रसिद्ध नन्दन वन, प्रमुख देवताओं के स्थानों मन्दिरों तथा तीर्थों को छोड़कर तुम्हारी अनुरक्ति इस अविमुक्ति क्षेत्र में क्यों हुई ? इसमें अति गोपनीय कौन-सा ऐसा पुण्य है, जिसके

---

[1] ग. °ग मोक्षप्रदं नित्यं ब° । ङ. °गमोक्षप्रदं पुण्यं ब° ।

किमत्र सुमहत्पुण्यं [१]परं गुह्यं वदस्व मे । येन त्वं रमसे नित्यं [२]भूतसंपद्गुणैर्युतः[३] ॥४
क्षेत्रस्य प्रवरत्वं च ये च तत्र निवासिनः । तेषामनुग्रहः कश्चित्तत्सर्वं ब्रूहि शंकर ॥५

शंकर उवाच

अत्यद्भुतमिमं प्रश्नं यत्त्वं पृच्छसि भामिनि । तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥६
[४]वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता । प्रविष्टा त्रिपथा गङ्गा तस्मिन्क्षेत्रे मम [५]प्रिये ॥७
*ममैव प्रीतिरतुला [६]कृत्तिवासे च सुन्दरि । सर्वेषां चैव स्थानानां स्थानं तत्तु यथाऽधिकम् ॥८
तेन कार्येण सुश्रोणि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम । तस्मिँल्लिङ्गे च सांनिध्यं मम देवि सुरेश्वरि ॥९
क्षेत्रस्य च प्रवक्ष्यामि गुणान्गुणवतां वरे । याञ्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१०
यदि [७]पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः । मुच्यते [८]सर्वपापेभ्यो ह्यविमुक्तं व्रजेद्यदि ॥११
प्रलये सर्वभूतानां लोके स्थावरजङ्गमे । न हि [९]त्यजामि तत्स्थानं महागणशतैर्वृतः ॥१२

कारण तुम सभी भूतों, समृद्धियों तथा गुणों समेत उसमें नित्य निवास करते हो। इस क्षेत्र को कौन ऐसी महिमा है. कौन-सा बड़प्पन है, वहाँ के निवासीगण कैसे होते हैं ? उनके ऊपर अपने द्वारा किये गये किसी अनुग्रह की कथा—इन सब के बारे में यथार्थ रूप में मुझसे कहिये ।१-५।

शंकर ने कहा—प्रिये ! तुम जिस प्रश्न को कर रही हो वह अत्यन्त अद्भुत है, उन सभी बातों को मैं बतला रहा हूँ सुनो ।६। उस मेरे परमप्रिय क्षेत्र में वाराणसी नगरी है, जिसमें सिद्धों तथा गन्धर्वों से सेवित पुण्यसलिला त्रिपथगा गंगा बहती हुई प्रविष्ट होती हैं। हे सुन्दरि ! कृत्तिवासा (गजचर्म पहिनने वाले) नामक लिंग में मेरी परम प्रीति है और सभी तीर्थ स्थानों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इस अबिमुक्त क्षेत्र में भी मेरी परम प्रीत है। हे सुरेश्वरि ! इसीलिये वहाँ के लिंग में मेरा सान्निध्य है। सभी गुणवानों में श्रेष्ठ ! मैं उस अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य अपने सभी पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।७-१०। यदि पापात्मा, दुष्ट एवं अधार्मिक मनुष्य भी हों और वे अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करें तो सभी पापकर्मों से छुटकारा पा जाते हैं। प्रलय काल उपस्थित होने पर भी, जब कि सभी स्थावर जंगमात्मक जगत् का विनाश होने लगता है, मैं अपने सौ महान् गणों को साथ लेकर इस अविमुक्त क्षेत्र की रक्षा करता हूँ और इस को उस समय भी नहीं छोड़ता ।११-१२। 'महाभाग्य शालिनी !

---

* इत आरम्भ सुरेश्वरि इत्यन्तग्रन्थो ङ. पुस्तके न विद्यते ।

---

१ ङ. °रं कौतूहलं हि मे। २ ग. °तसर्वैर्गुणै° । घ. °तसम्यग्गुणै° । ३ ङ. °संघैर्गणैः° । ४ ङ. °णसी पुरी पु° । ५ क. ख. °ये । मामेव प्रीतिसंतुष्टा कृत्तिवासश्च सु° । ६ ग. °सेश्वरं प्रभुम् । स° । ७ ङ. °पोऽथ पाखण्डो यद्यप्यर्थातिगो न° । ८ ङ. °पेभ्यः कृत्तिवासस्य दर्शनात् । प्र° । ९ क. ख. त्यक्ष्यामि ।

यत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । वक्त्रं मम महाभागे प्रविशन्ति युगक्षये ॥१३
तेषां साक्षादहं पूजां प्रतिगृह्णामि पार्वति । सर्वगुह्योत्तमं [1]स्थानं मम प्रियतमं शुभम् ॥१४
धन्याः प्रविष्टाः सुश्रोणि मम भक्ता द्विजातयः । मद्भक्तिपरमा [2]नित्यं ये मद्भक्तास्तु ते नराः ॥१५
तस्मिन्प्राणान्परित्यज्य गच्छन्ति परमां गतिम् । सदा यजति रुद्रेण सदा दानं प्रयच्छति ॥१६
सदा तपस्वी भवति अविमुक्तस्थितो नरः । यो मां पूजयते नित्यं तस्य तुष्याम्यहं प्रिये ॥१७
सर्वदानानि यो [3]दद्यात्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । [4]सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च स प्रपद्येत मामिह ॥१८
अविमुक्तं सदा देवी ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः । ते तिष्ठन्तीह [5]सुश्रोणि मद्भक्ताश्च त्रिविष्टपे ॥१९
मत्प्रसादात्तु ते देवि [6]दीप्यन्ते शुभलोचने । दुर्धराश्चैव दुर्धर्षा भवन्ति विगतज्वराः ॥२०
अविमुक्तं शुभं प्राप्य मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः । निर्धूतपापा विमला भवन्ति विगतज्वराः ॥२१

पार्वत्युवाच

दक्षयज्ञस्त्वया देव मत्प्रियार्थे निषूदितः । अविमुक्तगुणानां तु न तृप्तिरिह जायते ॥२२

कल्पान्त के समय, जब देवता लोग गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों समेत मेरे मुख में प्रविष्ट हो जाते हैं, पार्वति ! उस समय उन सब की दी हुई पूजा को साक्षात् मैं ग्रहण करता हूँ । यह मेरा स्थान सभी गोपनीय स्थानों में एक है, यह मेरा अति प्रिय एवं कल्याणकारी स्थान है । सुन्दरि ! वे ब्राह्मणादि द्विजातिवर्ण मेरे भक्त धन्य हैं । जो मेरी भक्ति में तल्लीन होकर नित्य मेरी पूजा में तत्पर रहते हुए इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं । वे लोग इस परम पुण्यप्रद क्षेत्र में प्राणों को छोड़कर परम गति की प्राप्ति करते हैं । इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले मनुष्य सर्वदा तपस्या करनेवाले, सर्वदा रुद्र के मंत्रों से यज्ञाराधना करनेवाले तथा सर्वदा दान देनेवाले होते हैं ।१३-१६। हे प्रिये ! जो मनुष्य मेरी नित्य पूजा करता है उसके ऊपर मैं प्रसन्न रहता हूँ । इस अविमुक्त में निवास कर जो मनुष्य सभी प्रकार के दान करते हैं, सभी यज्ञों से दीक्षित होते हैं, सभी तीर्थों के जलों से अभिषिक्त होते हैं, वह मुझे प्राप्त करते हैं । हे देवि सुन्दरि ! जो मनुष्य निश्चिन्त होकर सर्वदा अविमुक्त की यात्रा करते हैं, वे मेरे भक्त इस स्वर्गरूप अविमुक्त में निवास करते हैं । हे सुन्दर नेत्रोंवाली ! मेरे प्रसाद से वे मनुष्य तेज से प्रकाशित रहते हैं, शत्रुओं द्वारा वश में नहीं किये जाते, अति पराक्रमी होते हैं तथा उनके सभी सन्ताप दूर हो जाते हैं । निश्चय पर पहुँचे हुए मेरे भक्तगण इस कल्याणकारी अविमुक्त को प्राप्तकर सभी पापों तथा सन्तापों से उन्मुक्त होकर निर्मल हो जाते हैं ।१७-२१।

पार्वती ने कहा—हे देव ! आप ने मेरे ही प्रिय कार्य को करने के लिये दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था । अतः पुनः उसी मुझे प्रिय लगनेवाली कथा को मुझसे कहिये क्योंकि अविमुक्त के गुणों के श्रवण करने से मुझे तृप्ति तो होती ही नहीं ।२२।

---

[1] ङ. °न तन्मे प्रियतरं शुभे । ध° । [2] ङ. °त्यं नान्यभक्ताश्च ये न° । [3] ङ. °यज्ञैर्यजेत्तव । स° ।
[4] क. ख. °णि त्वद्भ° । [5] क. ख. दीव्यन्ति । [6] ग. तु सर्वां स्तान° ।

ईश्वर उवाच

क्रोधेन दक्षयज्ञस्तु त्वत्प्रियार्थं विनाशितः । महाप्रिये महाभागे नाशितोऽयं वरानने ॥२३
अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः । न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥२४

देव्युवाच

दुर्लभास्तु गुणा देव अविमुक्ते तु कीर्तिताः । सर्वांस्तान्मम तत्त्वेन कथयस्व महेश्वर ॥२५
कौतूहलं महादेव हृदिस्थं मम वर्तते । तत्सर्वं मम तत्त्वेन आख्याहि परमेश्वर ॥२६

ईश्वर उवाच

अक्षया ह्यमराश्चैव ह्यदेहाश्च भवन्ति ते । मत्प्रसादाद्वरारोहे मामेव प्रविशन्ति वै ॥२७
ब्रूहि ब्रूहि विशालाक्षि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥२८

देव्युवाच

अविमुक्ते महाक्षेत्रे अहो पुण्यमहो गुणाः । न तृप्तिमधिगच्छामि ब्रूहि देव पुनर्गुणान् ॥२९

ईश्वर उवाच

महेश्वरि वरारोहे शृणु तांस्तु मम प्रिये । अविमुक्ते गुणा ये तु तथाऽन्यानपि तच्छृणु ॥३०

महादेव ने कहा—हे महाभाग्यशालिनि ! परम प्रियतमे ! सुन्दरि ! सच है, तुम्हारे प्रिय कार्य को करने ही के लिये मैंने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था, अतः पुनः तुम्हारे प्रिय कार्य को कर रहा हूं, सुनो । जो मेरे भक्त किसी एक निश्चय पर पहुँचकर इस अविमुक्त क्षेत्र में यज्ञ करते हैं, वे सैकड़ों कोटि वर्षों के बाद भी इस मर्त्यलोक में पुनः नहीं आते ।२३-२४।

पार्वती ने कहा—महेश्वर ! आप अविमुक्त के दुर्लभ गुणों का वर्णन तो कर चुके अब पुनः उनका यथार्थ वर्णन कीजिये । देवाधिदेव ! मेरे हृदय में बड़ा कौतूहल हो रहा है, परमेश्वर ! अविमुक्त के उन सब गुणों के तात्त्विक वर्णन मुझसे करें ।२५-२६।

महादेव ने कहा—सुन्दरि ! जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करते हुये मेरी पूजा करते है वे अन्त में देवयोनि प्राप्त करते हैं, एवं कलुषित देह से रहित होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे जैसा स्वरूप प्राप्त करते हैं । विशाल नेत्रोंवाली ! पुनः कहो, तुम्हे अन्य कौन-सी कथा सुनायें ।२७-२८।

देवी ने कहा—देव ! उस अविमुक्त क्षेत्र में अतिशय पुण्य प्राप्ति होती है, उसके गुण अपरिमित जान पड़ते हैं, उन सबका वर्णन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, आप पुनः उनका वर्णन कीजिये ।२९।

ईश्वर ने कहा—सुन्दरि ! महेश्वरि ! इस मेरे अति प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में जो अन्यान्य गुण हैं,

शाकपर्णाशिनो दान्ताः संप्रक्षाल्या मरीचिपाः । दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथा परे ॥३१
मासि मासि कुशाग्रेण जलमास्वादयन्ति वै । वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे ॥३२
आदित्यवपुषः सर्वे जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । एवं बहुविधैर्धर्मैरन्यत्र चरितव्रताः ॥३३
त्रिकालम प भुञ्जाना येऽविमुक्तनिवासिनः । तपश्चरन्ति वाऽन्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
येऽविमुक्ते वसन्तीह स्वर्गे प्रतिवसन्ति ते ॥३४
मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्ति योषिताम् । अविमुक्तसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ॥३५
अविमुक्ते परो योगो ह्यविमुक्ते परागतिः । अविमुक्ते परोमोक्षः क्षेत्रं नैवास्ति तादृशम् ॥३६
परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि तत्त्वेन वरवर्णिनि । अविमुक्ते महाक्षेत्रे यदुक्तं हि मया पुरा ॥३७
जन्मान्तरशतैर्देवि [1]योगोऽयं यदि लभ्यते । मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा ॥३८
अविमुक्ते न संदेहो मद्भक्तः कृतनिश्चयः । एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति ॥३९

उन्हें तुम सुनो । इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेबाले एवं तीनों बेला भर पेट भोजन करने वाले प्राणी, अन्यत्र रह कर शाक एवं पत्तों पर निर्वाह करनेवाले, संयमी, भलीभाँति स्नानादि से पवित्र हो सूर्य की किरणों को पान करने वाले, दाँत से कच्चे फलों का भोजन कर निर्वाह करनेवाले, उलूखल में कूट कर पत्थर पर पीस कर भोजन करनेवाले, महीने महीने तक कुशा के अग्रभाग से जल पीकर निर्वाह करनेवाले वृक्ष की जड़ों पर शयन करनेवाले, पत्थर की शिलाओं पर सोनेवाले, सूर्य के समान तेजस्वी शरीरवाले, क्रोध को वश में रखनेवाले, इन्द्रियों को जीतनेवाले इसी प्रकार के अन्याम्य कठोर उपायों द्वारा साधना में निरत रहनेवाले तपस्वियों के समान महान् पुण्य प्राप्त करते हैं अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्यत्र रह कर तपस्या करनेवाले मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते। जो इस अविमुक्त में निवास करते हैं वे मानों साक्षात् स्वर्ग लोक में निवास करते हैं।३०-३४। मेरे समान जिस प्रकार जगत् में कोई अन्य पुरुष नहीं है और तुम्हारे समान कोई अन्य स्त्री नहीं है उसी प्रकार अविमुक्त के समान न तो कोई क्षेत्र था और न होगा। अविमुक्त में परम योग की प्राप्ति होती है, अविमुक्त में परम गति मिलती है, अविमुक्त में परम मोक्ष प्राप्त होता है। इसके समान अन्य कोई क्षेत्र नहीं है।३५-३६। हे सुन्दरि ! मैं उस अति गोपनीय बात को बतला रहा हूँ, जिसे इसी अविमुक्त क्षेत्र में मैंने प्राचीन काल में कहा है। हे देवि ! सैकड़ों जन्मों के संचित बड़े भाग्य से जो भली भाँति योग का अभ्यास करता है, वह सैकड़ों हजारों जन्मों में मोक्ष प्राप्त करता है या नहीं, इसमें तो संदेह रहता है, किन्तु इस बात में तो तनिक भी संदेह नहीं है कि जो मेरा भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करता है वह एक ही जन्म में योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति करता है।३७-३९। हे देवि ! जो मनुष्य अति निश्चयपूर्वक

---

[1] ग. यो योगं सम्यगभ्यसेत् ।

अविमुक्तं नरा देवि ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः । ते विशन्ति परं स्थानं मोक्षं परमदुर्लभम् ॥४०
पृथिव्यामीदृशं क्षेत्रं न भूतं न [1]भविष्यति । चतुर्मूर्तिः सदा धर्मस्तस्मिन्संनिहितः प्रिये ॥
चतुर्णामपि वर्णानां गतिस्तु परमा स्मृता ॥४१

देव्युवाच

श्रुता गुणास्ते क्षेत्रस्य इह चान्यत्र ये प्रभो । वदस्व भुवि विप्रेन्द्राः कं वा यज्ञैर्यजन्ति ते ॥४२

ईश्वर उवाच

इज्यया चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये । न तेषां भयमस्तीति भवं रुद्रं यजन्ति [2]यत् ॥४३
अमन्त्रो मन्त्रको देवि द्विविधो विधिरुच्यते । सांख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते ॥४४
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥४५
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥४६
निर्गुणः सगुणो वाऽपि योगश्च कथितो भुवि । सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः ॥४७
एतत्ते कथितं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥४८

अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करते हैं वे परम मोक्ष के पद को प्राप्त करते हैं, जो जगत् में अति दुर्लभ है । इस पृथ्वी मण्डल में इस प्रकार का कोई क्षेत्र न तो था और न होगा । हे प्रिये ! उस अविमुक्त क्षेत्र में धर्म चारमूर्ति में सर्वदासन्निहित रहता है । उसमें निवास करनेवाले चारों वर्णों के लिए परम गति कही गयी है ।४०-४१।

देवी ने कहा—प्रभो ! आप के इस अविमुक्त क्षेत्र के ऐहिक एवं पारलौकिक फल प्रदान करनेवाले गुणों को तो मैं सुन चुकी । अब यह बताइये कि पृथ्वीतल पर ब्राह्मण गण यज्ञों द्वारा किस की आराधना करते हैं ।४२।

ईश्वर ने कहा—पार्वति ! वे ब्राह्मण लोग दान एवं मंत्रों द्वारा मेरी पूजा करते हैं, उनको किसी प्रकार का भी भय नहीं रहता जो भव तथा रुद्र की पूजा करते हैं । बिना मंत्र का तथा मंत्रों सहित—ये दो प्रकार को विधियाँ कही गई हैं । सांख्य और योग—ये दो योग माने गये हैं । एकनिष्ठ होकर जो सभी प्राणियों में अवस्थित मेरी सेवा करता है वह योगी सर्वदा गृहकार्य में रहकर भी मुझमें निवास करता है । अपनी तरह जो सभी जीवों में व्यवहार करता है तथा संसार की सभी चराचर वस्तुओं का अस्तित्व मुझही में देखता है, उसको मैं कभी नहीं छोड़ता और न वह कभी मुझे छोड़ता है । पृथ्वी तल पर निर्गुण और सगुण—ये योग के मार्ग कहे गये हैं । सगुण योग का ही ज्ञान हो सकता है, निर्गुण योग तो मन से परे की वस्तु है । हे देवि ! जिस बात को तुमने मुझसे पूछा था, वह मैं तुम्हें बतला चुका ।४३-४८।

---

[1] ङ. °ति । अविमुक्ते चतुष्पादो धर्मः स° । [2] ग. ये । ङ. ते ।

देव्युवाच

या भक्तिस्त्रिविधा प्रोक्ता भक्तानां बहुधा त्वया । तामहं श्रोतुमिच्छामि [1]तत्त्वतः कथयस्व मे ॥४९

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति देवेशि भक्तानां भक्तिवत्सले । प्राप्य सांख्यं च योगं च दुःखान्तं च नियच्छति ॥५०
सदा यः सेवते [2]भिक्षां तमो भवति रञ्जितः । रञ्जनात्तन्मयो भूत्वा लीयते स तु भक्तिमान् ॥५१
शास्त्राणां तु [3]वरारोहे बहुकारणदर्शिनः । न मां पश्यन्ति ते देवि ज्ञानवाक्यविवादिनः ॥५२
[4]परमार्थज्ञानतृप्ता[5] युक्ता जानन्ति योगिनः । विद्यया विदितात्मानो योगस्य च द्विजातयः ॥५३
प्रत्याहारेण शुद्धात्मा नान्यथा चिन्तयेच्च तत् । तुष्टिं च परमां प्राप्य योगं मोक्षं परं तथा ॥
त्रिभिर्गुणैः समायुक्तो ज्ञानवान्पश्यतीह माम् ॥५४
एतत्ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि । भूय एव वरारोहे कथयिष्यामि सुव्रते ॥५५
गुह्यं पवित्रमथवा यच्चापि हृदि वर्तते । तत्सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ॥५६

देवी ने कहा—हे शंकर ! बहुधा भक्तों को तुमने तीन प्रकार की भक्ति का उपदेश किया है, उसे मैं सुनाना चाहती हूँ, तत्त्वतः उसको मुझे बताओ ।४९।

ईश्वर ने कहा—हे भक्तों की रक्षा करने वाली पार्वति ! देवेशि ! मनुष्य सांख्य एवं योग की उपलब्धि करके अपने दुःखों का अन्त करता है ।५०। भक्तजन सर्वदा भिक्षाटन करते हुए भी परमानन्द का उपभोग करते हैं, एवं उस परमानन्द के कारण तन्मय होकर मुझी में लीन हो जाते हैं । हे सुन्दरि ! शास्त्रों में अनेक कारणों एवं वादों के देखनेवाले तथा ज्ञान के वाक्यों पर विवाद करनेवाले मुझे नहीं देख पाते किन्तु परमार्थ ज्ञान से संयुक्त जो योगी जन हैं वही मुझे भली भाँति जान पाते हैं । बिद्याद्वारा आत्मा को यथार्थ रूप में जाननेवाले, योग को जाननेवाले ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग प्रत्याहार (निवृत्ति, मनोनिग्रह) द्वारा शुद्धात्मा होकर, अन्यथा चिन्तन न करते हुए, अर्थात् परमात्मा को मुझसे अतिरिक्त न मानते हुए परम सन्तोष, परम योग तथा परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं । इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों गुणों से युक्त होकर ज्ञानवान् पुरुष मेरा दर्शन करता है ५१ ५४। देवि ! यह वृत्तान्त तो मैं तुमसे कह चुका अब इसके अतिरिक्त तुम क्या सुनना चाहती हो, बताओ। सुन्दरि ! सुव्रते ! पुनः अविमुक्त के विषय में तुमसे वर्णन कर रहा हूँ । प्रिये ! अति गोपनीय, पवित्र जो कुछ भी मेरे हृदय में भाव विद्यमान हैं, उन सब को तुमसे कह रहा हूँ, स्थिरचित्त होकर सुनो ।५५-५६।

---

[1] ङ. तत्तेन क° । [2] ङ. भक्तवत्स° । [3] ग. ङ. हे हेतुः का° । [4] ग. °नयुक्तास्वासा जा° ।
[5] ङ प्ता मुक्ताः पश्यन्ति ।

देव्युवाच

त्वद्रूपं कीदृशं देव युक्ताः पश्यन्ति [1]योगिनः । एतं मे संशयं ब्रूहि नमस्ते सुरसत्तम ।।५७

श्रीभगवानुवाच

अमूर्तं चैव मूर्तं च ज्योतीरूपं हि तत्स्मृतम् । तस्योपलब्धिमन्विच्छन्यत्नः कार्यो विजानता ।।५८
गुणैर्वियुक्तो भूतात्मा एवं वक्तुं न शक्यते । शक्यते यदि वक्तुं वै दिव्यैर्वर्षशतैर्न वा ।।५९

देव्युवाच

किंप्रमाणं तु तत्क्षेत्रं समन्तात्सर्वतोदिशम् । यत्र नित्यं स्थितो देवो महादेवो गणैर्युतः ।।६०

ईश्वर उवाच

द्वियोजनं तु तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम् । अर्धयोजनविस्तीर्णं तत्क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम् ।।६१
वरणाऽसी नदी [2]यावत्तावच्छुक्लनदी तु वै । भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके ।।६२
गणा [3]यत्रावतिष्ठन्ते संनियुक्ता विनायकाः । [4]कूष्माण्डगजतुण्डश्च जयन्तश्च मदोत्कटाः ।।६३
सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद्विकटाः कुब्जवामनाः । यत्र नन्दी महाकालश्चण्डघण्टो महेश्वरः ।।६४

देवी ने कहा—देव ! योगी लोग तुम्हारे किस प्रकार के रूप का दर्शन करते हैं, देवताओं में श्रेष्ठ ! मेरे इस संशय को तुम बतलाकर दूर करो, मेरा नमस्कार है ।५७।

श्री भगवान् ने कहा—वह मेरा ज्योतिःस्वरूप अमूर्त एवं मूर्त स्मरण किया गया है, उसकी प्राप्ति की इच्छाकर ज्ञानवान् पुरुष को यत्न करना चाहिये । मैं तीनों गुणों से सर्वदा रहित एवं निखिल प्राणिरूप हूँ, इस प्रकार से मेरा वर्णन कोई नहीं कर सकता । यदि कोई करे भी तो वह सैंकड़ों दिव्य वर्षों में कर सकता है या नहीं—इसमें भी सन्देह है ।५८-५९।

देवी ने कहा—शंकर वह तुम्हारा क्षेत्र जिसमें तुम अपने गणों के साथ सर्वदा स्थित रहते हो चारों ओर दिशाओं में कितनी दूर तक फैला हुआ है ? ।६०।

ईश्वर ने कहा—वह मेरा क्षेत्र पूर्व से पश्चिम में दो योजन तथा दक्षिण उत्तर में आधे योजन तक फैला हुआ है । वरणा से लेकर असीकी शुक्ल (?) नदी पर्यन्त वाराणसी नगरी है, भीष्म चण्डिका से प्रारम्भ होकर पर्वतेश्वर तक इसका विस्तार है, जहाँ पर कूष्माण्ड, गजतुण्ड, जयन्त प्रभृति उत्कट पराक्रमशाली विनायकगण नियुक्त हैं ।६१-६३। इन गणों में से कोई तो सिंह तथा व्याघ्र के समान विकराल मुखवाले हैं, कुछ बड़े विशाल हैं, कुछ बौने हैं तथा कुछ कूबरे हैं । नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, महेश्वर, दण्डचण्डेश्वर,

---

[1] क. घ. °नः पश्यन्मे सं° । [2] ग. दी भवेत् । भीमच° । [3] ङ. °न्ते तथा विघ्नवि° । [4] क. ख. °ण्डराजः शंभोश्च ज° ।

दण्डचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः । एते चान्ये च बहवो गणाश्चैव गणेश्वराः ॥६५
महोदरा महाकाया वज्रशक्तिधरास्तथा । रक्षन्ति सततं देवि ह्यविमुक्तं [1]तपोवनम् ॥
द्वारे द्वारे च तिष्ठन्ति शूलमुद्गरपाणयः ॥६६
[2]सुवर्णशृङ्गींरौप्यखुरां चैलाजिनपयस्विनीम् । वाराणस्यां तु यो [3]दद्यात्सवत्सां कांस्यभाजनाम् ॥६७
गां दत्त्वा तु वरारोहे ब्राह्मणे वेदपारगे । आसप्तमं कुलं तेन तारितं नात्र संशयः ॥६८
यो दद्याद्ब्राह्मणे किंचित्तस्मिन्क्षेत्रे वरानने । कनकं रजतं वस्त्रमन्नाद्यं बहुविस्तरम् ॥
अक्षयं चाव्ययं चैव स्यातां तस्य सुलोचने ॥६९
शृणु तत्त्वेन तीर्थस्य विभूतिं व्युष्टिमेव च । तत्र स्नात्वा महाभागे भवन्ति [4]नीरुजा नराः ॥७०
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः । तदवाप्नोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने[5] ॥७१
बहुस्वल्पे च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे । शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते ॥७२
*वाराणसीजाह्नवीभ्यां संगमे लोक विश्रुते । दत्त्वाऽन्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते ॥७३

महावलवान् घंटाकर्ण तथा इन सबों के अतिरिक्त अन्य बहुतेरे गण तथा गणेश्वर वहाँ निवास करते हैं। ये बड़े विशाल उदरवाले, महाकाय, वज्र एवं शक्ति धारण किये हुए इस अविमुक्त तपोवन की निरन्तर रक्षा किया करते हैं। शूल और मुद्गर हाथ से लेकर प्रत्येक द्वार पर वहाँ ये सदा अवस्थित रहते हैं।६४-६६। सुन्दरि ! जो कोई मनुष्य सुवर्ण की सींगों वाली, चांदी की खुरों वाली, सुन्दर वस्त्र एवं चर्म से सुशोभित, दूध देनेवाली, सवत्सा गौ को कांसे के बने हुई दोहन पात्र समेत इस काशी पुरी में वेदों के पारगामी ब्राह्मण को दान करता है, वह अपने सातवें पूर्व पुरुषों तक को नरक से उबार लेता है, इसमें सन्देह नहीं।६७-६८। हे सुमुखि ! उस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य ब्राह्मण को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र अन्नादि का किंचित् भी दान देता है, हे सुलोचने ! वह उसे अक्षय एवं अव्यय रूप में प्राप्त होते हैं। हे महाभागे ! अब उस अविमुक्त की विभूति तथा फल को यथार्थतः सुनो। वहाँ स्नान करके मनुष्य रोग से मुक्त हो जाते हैं। हे वरानने ! उस अविमुक्त क्षेत्र में स्नान कर धर्मात्मा मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है।६९-७१। अपनी सामार्थ्य के अनुकूल अधिक वा न्यून, जो कुछ भी वेदों के पारगामी-ब्राह्मण को दान करता है वह शुभ गति प्राप्त करता है तथा अग्नि की भाँति तेजस्वी होता है। लोक में विख्यान गंगा और वाराणसी के संगम पर मनुष्य विधिपूर्वक अन्नदान देकर पुनः मृत्युलोक में उत्पन्न नहीं

---

*इतआरभ्य यः कृत्वेत्यन्तग्रन्थो नास्ति घ. पुस्तके।

---

[1] ङ. सुरेश्वरम्। [2] ग. °रां ताम्रपृष्ठां प°। [3] क. ख. °द्यात्त्रिवर्णां कञ्जलोचने। गां। [4] ङ विरुजा। [5] ग. °मे स्वल्पमर्थं च।

एतत्ते कथितं देवि तीर्थस्य फलमुत्तमम् ॥७४
+पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तीर्थस्य फलमुत्तमम् । उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान्संतर्पयेन्नरः ॥
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥७५
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र वरानने । [1]यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥७६
अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥७७
×कुर्वन्त्यनशनं ये तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः । न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥७८
अर्चयेद्यस्तु मां देवि अविमुक्ते तपोवने । तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि यदवाप्नोति मानवः ॥७९
दशाश्वमेधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥८०
दशसौवर्णिकं पुष्पं [2]योऽविमुक्ते प्रयच्छति । अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु ॥
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम् ॥८१
संमार्जने पञ्चशतं सहस्रमनुलेपने । मालया शतसाहस्रमनन्तं [3]गीतवाद्यतः ॥८२

होता । हे देवि ! उस अविमुक्त तीर्थ का यह सुन्दर फल मैं तुम्हें सुना चुका ।७२-७४। पुनः दूसरा फल इसी तीर्थ का तुम्हें बतला रहा हूँ। जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में उपवास करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है, वह सौत्रामणि नामक यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ।७५। हे वरानने ! जो कोई मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में एक मास तक निवास करता है, वह अपने समस्त गत जीवन के किये गये पापों से मुक्ति प्राप्त करता है। हे वरानने ! इस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य विधानपूर्वक अग्नि प्रवेश करते हैं वे निस्सन्देह मेरे ही मुख में प्रवेश करते हैं। जो मेरे भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में आकर अनशनपूर्वक निवास करते हैं वे शत कोटि कल्प में भी कभी जन्म नहीं ग्रहण करते ! हे देवि ! मैं तुम्हें इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले मनुष्य के लिये अपनी पूजा करने का विधान बतला रहा हूँ, जिस प्रकार उसे पूजा करनी चाहिये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरी बतलाई हुई विधि से मेरी पूजा करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के पुण्य को प्राप्त करता है ।७६-८०। जो इस अविमुक्त क्षेत्र में पुष्पों द्वारा मेरी पूजा करता है वह दस सुवर्ण मुद्रा के दान करने का फल प्राप्त करता है। धूप देने से अग्निहोत्र का फल प्राप्त करता है. अब गन्ध दान का फल सुनो। वह गन्ध दान अन्यत्र के भूमिदान के बराबर माना जाता है। भली भाँति स्नान करने से पाँच सौ तथा चन्दन लगाने से एक सहस्र मुद्रा का फल होता है। माला से सौ सहस्र मुद्रा का फल एवं गायन तथा वादन के द्वारा अनन्त मुद्रादान का फल प्राप्त होता है ।८१-८२।

+एतदर्धं न विद्यते क. ख. पुस्तकयोः। ×इत आरभ्य संशय इत्यन्तग्रन्थः क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति।

---

[1] ग. °पं शतधा त°। ङ. °पं मासेनैकेन न°। [2] ङ. विप्राय। [3] ग. छ. °वादने। दे।

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देव स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्। रहस्यं श्रोतुमिच्छामि यदर्थं त्वं न मुञ्चसि ॥८३

ईश्वर उवाच

आसीत्पूर्वं वरारोहे ब्रह्मणस्तु शिरो वरम् । पञ्चमं शृणु सुश्रोणि जातं काञ्चनसप्रभम् ॥८४
ज्वलत्तत्पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः । तवैवमब्रवीद्देवि जन्म जानामि ते ह्यहम् ॥८५
ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च । वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण च्छिन्नं तस्य शिरो मया ॥८६

ब्रह्मोवाच

यदा निरपराधस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम । तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि ॥
[1]ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चर तीर्थानि भूतले ॥८७
ततोऽहं गतवान्देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् । तत्र नारायणः श्रीमान्मया भिक्षां प्रयाचितः ॥८८
ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् । स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता ॥८९
प्रयाता साऽतिविस्तीर्णा योजनार्धशतं तदा । न संपूर्णं कपालं तु घोरमद्भुतदर्शनम् ॥९०
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा [2]प्रवाहिता । प्रोवाच भगवान्विष्णुः कपालं कुत ईदृशम् ॥९१

देवी ने कहा—देव अति अद्भुत इस स्थान का वर्णन तो तुम कर चुके अब मैं इस रहस्य को जानना चाहती हूँ कि किसलिये तुम इसे नहीं छोड़ते ? ।८३।

ईश्वर ने कहा—सुन्दरि! प्राचीन काल में महात्मा ब्रह्मा को सुवर्ण के समान कान्तिमान् एक पाँचवा शिर उत्पन्न हुआ था। जो अति तेज से देदीप्यमान हो रहा था। देवि ! ब्रह्मा के उस पाँचवें शिर ने मुझसे इस प्रकार कहा कि 'मैं तुम्हारा जन्म जानता हूँ।' उसकी इस अपमानपूर्ण बात को सुनकर क्रोध युक्त एवं लाल नेत्र हो मैंने अपने वायें अंगूठे के नख के अग्रभाय से उस शिर को काट डाला ।८४-८६।

ब्रह्मा ने कहा—जो तुमने बिना किसी अपराध के ही मेरे शिर को इस प्रकार काट दिया सो मेरे शाप के कारण तू कपाल धारण करनेवाला हो जा और ब्रह्महत्या के पाप से आकुलित हो पृथ्वी के सभी तीर्थों में भ्रमण कर। देवि ! ब्रह्मा की ऐसी बात सुन मैं पर्वतराज हिमालय के ऊपर गया और वहाँ पर विराजमान श्रीयुत् नारायण भगवान् से भिक्षा की याचना की। उन भगवान् ने अपने पार्श्व स्थान को नख के अग्रभाग से विदीर्ण किया, जिससे उनके रक्त की एक विशाल धारा बह निकली ।८७-८९। बहते हुए अति विस्तृत रूप में वह धारा पचास योजन तक बह चली किन्तु तब भी मेरा वह अति अद्भुत एवं घोर दिखाई पड़ने वाला कपालपूर्ण नहीं हो सका। इस प्रकार जब एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वह धारा अविरत रूप में प्रवाहित होती रही, तब भगवान् विष्णु ने कहा कि 'यह इस प्रकार का अद्भुत कपाल कहाँ से आ गया।

---

१ घ. ङ. °ह्महाकुलितो भू° । २ क. °हिणी । प्रो° । ख. च. °हिनी । प्रो° ।

आश्चर्यभूतं देवेश संशयो हृदि वर्तते । कुतश्च संभवो देव सर्वं मे ब्रूहि पृच्छतः ॥९२

देवदेव उवाच

[1]श्रूयतामस्य हे देव कपालस्य तु संभवः । शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥९३
ब्रह्माऽसृजद्वपुर्दिव्यमद्भुतं लोमहर्षणम् । तपसश्च प्रभावेण दिव्यं काञ्चनसंनिभम् ॥९४
ज्वलत्तत्पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः । निकृत्तं तन्मया देव तदिदं पश्य दुर्जयम् ॥९५
यत्र यत्र च गच्छामि कपालं तत्र गच्छति । एवमुक्तस्ततो देवः प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥९६

श्रीभगवानुवाच

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं [2]ब्रह्मणस्त्वं प्रियं कुरु । तस्मिन्स्थास्यति भद्रं ते कपालं तस्य तेजसा ॥९७
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । गतोऽस्मि [3]पृथुलश्रोणि न क्वचित्प्रत्यतिष्ठत ॥९८
ततोऽहं समनुप्राप्तो ह्यविमुक्ते महाशये । अवस्थितः स्वके स्थाने शापश्च विगतो मम ॥९९
विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा । स्फुटितं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥१००

देवेश ! यह तो अति आश्चर्यंमय कपाल है, मेरे हृदय में संशय उत्पन्न हो रहा है, अतः मुझसे बताइये कि यह कहाँ से आप को प्राप्त हुआ ?' ।९०-९२।

देववेव ने कहा—देव ! इस आश्चर्य पूर्ण कपाल की उत्पत्ति सुनिये । सौ सहस्र वर्षों तक अति घोर तपस्या करके ब्रह्मा ने अति अद्भुत विशाल एवं रोमांचकारी शरीर की सृष्टि की, उनकी घोर तपस्या के प्रभाव से उनका शरीर अति दिव्य तेजोमय एवं सुवर्ण के समान शोभायमान था। महात्मा ब्रह्मा को फिर अति तेज से देदीप्यमान एक पाचवें शिर की उत्पत्ति हुई । हे देव ! मैंने उस पांचवें शिर को काट लिया । उस दुर्जय शिर को आप देखिये, वही यह है, मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ यह कपाल मेरे ही साथ जाता है ।' इस प्रकार शिव जी के कहने पर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने कहा—।९३-९६।

श्री भगवान् ने कहा—शिव ! जाओ ! अपने स्थान को लौट जाओ, और वहाँ जाकर ब्रह्मा को प्रसन्न करो, वहीं जाने पर उनके अमिट प्रभाव से यह कपाल तुम्हारे साथ जाने से रुकेगा । हे सुन्दर कटि वाली ! तब मैं सभी तीर्थों एवं पुण्यप्रद स्थानों का परिभ्रमण कर चुका था, किन्तु कहीं भी वह कपाल रुका नहीं था । तदनन्तर मैं इस अति प्रभावशाली अविमुक्त क्षेत्र में आया, इस स्थान पर पहुँचते ही वह रुक गया और इस प्रकार मेरा वह शाप निवृत्त हो गया । सुन्दरि ! यहाँ आने पर भगवान् विष्णु की कृपा से वह कपाल सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण होकर स्वप्न की सम्पत्ति की भाँति विलीन हो गया । तभी से इस अविमुक्त क्षेत्र को मैंने ब्रह्महत्या के दोष को दूर करने वाला बनाया । देवि ! देवताओं का यह पवित्र तीर्थ पृथ्वी पर कपाल-

---

[1] ग. °स्य दिव्यस्य क° । [2] ङ. °ह्महत्यापहं कु° । [3] ङ. °णि पृथिव्यां यानि सन्ति हि । ततो° ।

ब्रह्महत्यापहं तीर्थं क्षेत्रमेतन्मया कृतम् । *कपालं मोचनं देवि देवानां प्रथितं भुवि ॥१०१
कालो भूत्वा जगत्सर्वं संहरामि सृजामि च । +ततस्तत्पतितं तत्र शापश्च विगतो मम ॥१०२
कपालमोचनं तीर्थमभूद्धत्याविनाशनम् । तत्रस्थोऽस्मि जगत्सर्वं सुकरोमि सुरेश्वरि ॥
देवेशि [1]सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम ॥१०३
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति विष्णुभक्तास्तथैव च । ये भक्ता भास्करे देवि लोकनाथे दिवाकरे ॥
तत्रस्थो यस्त्यजेद्देहं मामेव प्रविशेत्तु सः ॥१०४

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देव यदुक्तं पद्मयोनिना । त्रिपुरान्तकरस्थानं [2]गुह्यमेतन्महाद्युते ॥१०५
यान्यन्यानि सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । यत्र [3]तिष्ठति देवेशो यत्र तिष्ठति शंकरः ॥१०६
गङ्गा [4]तीर्थसहस्राणां तुल्या भवति वा न वा । त्वमेव भक्तिर्देवेश त्वमेव गतिरुत्तमा ॥१०७

मोचन तीर्थ के नाम से विख्यात है । मैं ही समस्त जगत् का काल रूप होकर निर्माण करता हूँ तथा संहार भी मैं ही करता हूँ ।९७-१०१। सुरेश्वरि ! इसी कपालमोचन तीर्थ में आने पर वह कपाल गिर पड़ा और शाप की भी निवृत्ति हो गई । यह कपालमोचन ब्रह्महत्या को भी दूर करनेवाला है, यहाँ पर अवस्थित होकर मैं समस्त जगत् की सुव्यवस्था परिचालित करता हूँ । देवेशि ! मेरे सभी गोपनीय स्थानों में यह अविमुक्त इसीलिये मुझे अति प्रिय है । मेरी भक्ति करनेवाले तथा भगवान् विष्णु की भक्ति करनेवाले मनुष्य इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं । देवि ! लोकनाथ भगवान् भास्कर के भक्त गण भी इसी तीर्थ की यात्रा करते हैं । यहाँ पर अवस्थित रहकर जो शरीर को त्यागता है वह मुझमें ही प्रवेश करता है ।१०२-१०४।

देवी ने कहा—देव ! भगवान् ब्रह्मा ने जो बात कही है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है । महाद्युतिवाले ! यह त्रिपुरान्तक शिव का—तुम्हारा—गोपनीय स्थान है । जगत् के अन्यान्य जो तीर्थ स्थान हैं, वे इसकी सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते, जहाँ पर साक्षात् देवाधिदेव शंकर—तुम निवास करते हो । सहस्रों तीर्थों के समान पुण्यप्रदायिनी गङ्गा हैं, या नहीं, इसमें तो संदेह है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य तीर्थ इस पवित्र तीर्थ की समानता नहीं कर सकते । देवेश ! तुम्हीं भक्ति के स्वरूप हो, तुम्हीं उत्तम गति

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठः क. ख. पुस्तकयोः—श्मशानमेतद्भद्रं मे देवानां वरवर्णिनि । + अयं सार्धश्लोको न विद्यते क. ख. ग. पुस्तकेषु ।

---

[1] ग. तीर्थानां । [2] क. ख. °ते । संनिधानात्तु ते सर्वे क° । [3] ङ. तिष्ठन्ति मुनयो° । [4] ङ. °णां तत्तुल्यं वर्तते न वा । यत्र त्वमसि वै शुद्धस्तथाऽन्ये पापिनो भृशम् । ब्र ।

ब्रह्मादीनां [1]तु ते देव गतिरुक्ता सनातनी । श्राव्यमेतद्द्विजातीनां भक्तानामनुकम्पया ॥१०८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥६८६३॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

महेश्वर उवाच

सेवितं बहुभिः सिद्धैरपुनर्भवकाङ्क्षिभिः । विदित्वा तु परं [2]क्षेत्रमविमुक्तनिवासिनाम् ॥१
तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम् । परं स्थानं तु ते यान्ति संभवन्ति न ते पुनः ॥२
ज्ञाने विहितनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम् । या गतिर्विहिता सद्भिः साऽविमुक्ते मृतस्य तु ॥३
भवस्य [3]प्रीतिरतुला ह्यविमुक्ते [4]ह्यनुत्तमा । असंख्येयं फलं तत्र ह्यक्षया च गतिर्भवेत् ॥४
परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम् । अविमुक्तं न सेवन्ते [5]वञ्चितास्ते नरा भुवि ॥५

हो । देव ! ब्रह्मादि देवगणों की गति को कभी नष्ट न होनेवाली बतलाया जाता है। इस अविमुक्त के उत्तम माहात्म्य को द्विजाति ब्राह्मणादि भक्तों को अनुकम्पापूर्वक श्रवण करना चाहिये ।१०५-१०८।

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

अध्याय १८४

महेश्वर ने कहा—अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले प्राणियों के इस परम प्रभावशाली क्षेत्र का माहात्म्य समझकर अनेक सिद्धों ने, जो पुर्नजन्म की इच्छा नहीं करते, उसका सेवन किया है। देवाधिदेव का वह तीर्थ तथा तपोवन अति गोपनीय है। इसका सेवन कर वे सिद्धगण उस परम स्थान को जाते है जहाँ जाकर पुनः उत्पन्न नहीं होते ।१-२। महर्षियों ने ज्ञान में निष्ठा रखनेवाले, परमानन्द के इच्छुक प्राणियों की जो गति बतलाई है, वह गति इस अविमुक्त में मरनेवाले की होती है। यह अविमुक्त क्षेत्र परम एकान्त में है, श्मशान भी इसे कहते हैं। जो मनुष्य पृथ्वी पर उत्पन्न होकर अविमुक्त का सेवन नहीं

---

[1] ग. तु देवानां ग° । ङ. तु सर्वेषां ग°। [2] ङ. मुक्तं समाश्रयेत् । त° । [3] ङ. 'तिरुप्तन्ना ह्य° । [4] ग. ङ. ह्यनौपमा । [5] ग. °स्तेऽनिशं भु° ।

अविमुक्ते स्थितैः पुण्यैः पांशुभिर्वायुनेरितैः । अपि दुष्कृतकर्माणो यास्यन्ति परमां गतिम् ॥६
*अविमुक्तगुणान्वक्तुं देवदानवमानवैः । न [1]शक्यतेऽप्रमेयत्वात्स्वयं यत्र भवः स्थितः ॥७
अनाहिताग्निर्नो यष्टा नोऽशुचिस्तस्करोऽपि वा । अविमुक्ते वसेद्यस्तु स वसेदीश्वरालये ॥८
+तत्र नापुण्यकृत्कश्चित्प्रसादादीश्वरस्य च । अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥९
यत्किंचिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना । [2]अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत् ॥१०
सरितः सागराः शैलास्तीर्थान्यायतनानि च । भूतप्रेतपिशाचाश्च गणा मातृगणास्तथा ॥११
श्मशानिकपरीवाराः प्रियास्तस्य महात्मनः । न ते मुञ्चन्ति भूतेशे तान्भवस्तु न मुञ्चति ॥१२
रमते च गणैः सार्धमविमुक्ते स्थितः प्रभुः । [3]दृष्ट्वैतान्भीतकृपणान्पापदुष्कृतकारिणः ॥१३
अनुकम्पया तु देवस्य प्रयान्ति परमां गतिम् । भक्तानुकम्पी भगवांस्तिर्यग्योनिगतानपि ॥१४
नयत्येव वरं स्थानं यत्र यान्ति च [4]याज्ञिकाः । भार्गवाङ्गिरसः सिद्धा ऋषयश्च महाव्रताः ॥१५

करते वे ठगे जाते हैं। अविमुक्त क्षेत्र की वायु द्वारा उड़ाई गई पवित्र धूलि से चाहे घोर दुष्कर्म का भी करनेवाला क्यों न हो, परम गति को प्राप्त करता है।३-६। जिस अविमुक्त[1] क्षेत्र में साक्षात् शंकर जी निवास करते हैं, उसकी अमित महिमा का वर्णन देव दानव तथा मनुष्य—कोई भी नहीं कर सकते। कभी अग्निहोत्र न करनेवाला, यज्ञ न करनेवाला, अपवित्र रहनेवाला, चोर भी क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त में निवास करता है तो ईश्वर के भवन में निवास करता है।७-८। भगवान् की कृपा से वहाँ कोई पुण्य न करनेवाला प्राणी निवास नहीं कर पाता। चाहे जानकर वा विना जाने, स्त्री हो या पुरुष, यदि मानव सुलभ बुद्धिवश अशुभ कर्म करता है तो अविमुक्त में प्रवेश करने से वह सब भस्म हो जाता है। नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, पवित्र देवायतन, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ गण, मातृगण आदि उन महात्मा शंकर के जो प्रिय कहे गये हैं, श्मशान भूमि के चारों ओर अवस्थित रहते हैं, वे कभी भूतनाथ को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते और न उनको शंकर ही कभी छोड़ते हैं।९-१२। अविमुक्त में अवस्थित रहकर प्रभु अपने गणों को, भयभीत, अकिंचन, पांप कर्म में लीन तथा दुरात्मा देखकर भी उन्हीं के साथ विहार करते हैं। देव की अनुकम्पा से वे सभी परम गति को प्राप्त करते हैं। भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करनेवाले भगवान् तिर्यक् (अधम) योनि में उत्पन्न होनेवाले अपने भक्तों को भी श्रेष्ठ स्थान पर पहुँचा देते हैं, जहाँ पर कि यज्ञों के करनेवाले सिद्ध, महा तपस्वी भार्गव, अंगिरा आदि बड़े-बड़े ऋषि जाते हैं।१३-१५।

---

*इत आरभ्य परमां गतिमित्यन्तग्रन्थो न वर्तते क. ख. ङ. पुस्तकेषु। +एतदर्धं न विद्यते ग. पुस्तके।

---

[1] क. ख. ग. शक्यास्तेऽप्य प्रमे। [2] च. °मुक्तं प्र°। [3] च. °तान्दीनकृ°। [4] च. °काः। भृगवोऽङ्गिर°।

[1] कुछ मत्स्य पुराण की मूल पुस्तकों में यह पाठ नहीं मिलता। अनु०।

अविमुक्ताग्निना दग्धा अग्नौ तूलमिवाऽऽहितम् । न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ॥१६
सा गतिर्विहिता पुंसामविमुक्तनिवासिसनाम् । तिर्यग्योनिगताः सत्त्वा येऽविमुक्ते कृतालयाः ॥
कालेन निधनं प्राप्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥१७
मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः । अविमुक्तं समासाद्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥१८
श्मशानमिति विख्यातमविमुक्तं शिवालयम् । तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥१९
तत्र ब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः । [1]योगिनश्च तथा साध्या भगवन्तं सनातनम् ॥२०
उपासन्ते शिवं मुक्ता मद्भक्ता मत्परायणाः । या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम् ॥२१
अविमुक्ते मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा । [2]संहर्तारश्च कर्तारस्तस्मिन्ब्रह्मादयः सुराः ॥२२
सम्राड्विराण्मया लोका जायन्ते ह्यपुनर्भवाः । महर्जनस्तपश्चैव सत्यलोकस्तथैव च ॥२३
मनसः[3] परमो योगो भूतभव्यभवस्य च । [4]ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य [5]योनिः [6]सांख्यादिमोक्षयोः ॥२४

अविमुक्त रूपी अग्नि से पापकर्म रुई की भाँति नष्ट हो जाते हैं। जो गति कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार तथा पुष्कर में भी नहीं मिलती वह गति अविमुक्त में निवास करनेवाले पुरुषों को प्राप्त होती है। अधम योनि में उत्पन्न हुए प्राणी भी जो अविमुक्त में निवास करते हैं कालवश मृत्यु को प्राप्तकर परम गति प्राप्त करते हैं। ६-१७। पापपूर्ण कर्मों की सुमेरु एवं मन्दिर के समान विशाल राशि भी अविमुक्त में जाकर विनष्ट हो जाती है। शिव का निवास रूप वह अविमुक्त 'श्मशान' नाम से विख्यात है, देवाधिदेव का वह परम पवित्र गोपनीय तीर्थ तथा तपोवन है।१८-१९। वहाँ पर अवस्थित होकर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् विष्णु को अग्रगण्य बनाकर, तथा मेरे भक्त योगी तथा साधकगण मुक्तचित्त हो मुझी में लीन रहकर शिव का ध्यान करते हैं।२०। ज्ञानपूर्वक तपस्या करनेवाले को जो गति प्राप्त होती है, विविध यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाले को जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही शुभ गति अविमुक्त में प्राण त्याग करनेवाले को मिलती है। उसी अविमुक्त क्षेत्र में जगत् की सृष्टि करनेवाले तथा विनाश करनेवाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण सदा निवास करते हैं। इसी प्रकार सम्राट् विराट् प्रभृति लोकगण भी इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास कर पुनर्जन्म नहीं धारण करते। मह, जन, तप एवं सत्य लोक में निवास करनेवाले ब्रह्मा से लेकर के स्थावर जीवों तक, भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान काल के जीवगण, सांख्य एवं योग के अनुशीलन करनेवाले महर्षिगण—सभी इस क्षेत्र में सदा निवास करते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त का त्याग नहीं करते वे ही जगत् में जन्म लेकर ठगे नहीं जाते। अर्थात् वे ही परम चतुर तथा भाग्यवान् हैं।२१-२४। यह अविमुक्त क्षेत्र जगत् के सभी तीर्थों में,

---

[1] च. योगतः शतशः सिद्धा भ°। [2] ग. °र्ता स्थितिकर्ताऽस्मि अहं ब्रह्मा°। [3] ग. °सः प्रक्रमो।
[4] ग. घ. °दिस्तम्बभूतस्य यो°। [5] क. ख. योनौ। [6] च. सांख्यविमो°।

येऽविमुक्तं न मुञ्चन्ति नरास्ते नैव वञ्चिताः । उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत् ॥२५
क्षेत्राणामुत्तमं चैव श्मशानानां तथैव च । [1]तडागानां च सर्वेषां कूपानां स्रोतसां तथा ॥२६
[2]शैलानामुत्तमं शैलं तीर्थानामुत्तमं तथा[3] । पुण्यकृद्भवभक्तैश्च ह्यविमुक्तं[4] तु सेव्यते ॥२७
ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मणाऽध्यासितं च यत् । ब्रह्मणा सेवितं नित्यं ब्रह्मणा चैव रक्षितम् ॥२८
[5]अत्रैव सप्तभुवनं काञ्चनो मेरुपर्वतः । मनसः परमो योगः प्रीत्यर्थं ब्रह्मणः स तु ॥२९
ब्रह्मा तु तत्र भगवांस्त्रिसंध्यं चेश्वरे स्थितः । पुण्यात्पुण्यतमं क्षेत्रं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥३०
आदित्योपासनं कृत्वा विप्राश्चामरतां गताः । अन्येऽपि ये त्रयो वर्गा [6]भवभक्त्या समाहिताः ॥३१
अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा गच्छन्ति परमां गतिम् । अष्टौ मासान्विहारस्य यतीनां संयतात्मनाम् ॥३२
एकत्र चतुरो मासान्मासौ वा निवसेत्पुनः । अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥३३
न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रे पुरातने । मोक्षो ह्यसंशयस्तत्र पञ्चत्वं तु गतस्य वै ॥३४
स्त्रियः पतिव्रता याश्च भवभक्ताः समाहिताः । अविमुक्ते विमुक्तास्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥३५
अन्या याः कामचारिण्यः स्त्रियो भोगपरायणाः । कालेन निधनं प्राप्ता गच्छन्ति परमां गतिम् ॥३६

स्थानों में, क्षेत्रों में, श्मशानों में, कूपों में, तालाबों में, स्रोतों में तथा पर्वतों में श्रेष्ठ है। पुण्य कर्म करनेवाले शिव के भक्तगण इस अविमुक्त की सदा सेवा करते हैं। यह ब्रह्मा का परम स्थान है. ब्रह्माजी यहाँ पहले रह चुके हैं। वे नित्य इसमें निवास करते हैं, एवं नित्य इसकी रक्षा करते हैं यहीं पर सात भुवनों का तथा सुवर्णमय सुमेरु पर्वत का भी निवास स्थान है, ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिये मन का परम योग यहीं पर प्राप्त होता है।२५-२९। भगवान् ब्रह्मा यहाँ पर शिव में ध्यान लगाकर सर्वदा अवस्थित रहते हैं। यह सभी पुण्यप्रद क्षेत्रों में उत्तम है, पुण्यप्रद लोग सर्वदा इसमें निवास करते हैं। ब्राह्मण लोग यहीं पर आदित्य की उपासना कर देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं, अन्यान्य जो क्षत्रियादि तीन वर्णों के लोग हैं, वे शिव की भक्ति से समाधिस्थ हो इस अविमुक्त में अपने नश्वर शरीर को त्यागकर परम गति प्राप्त करते हैं। संयतात्मा यती लोगों को आठ महीने तक विहार करने का विधान है या एक बारगी वे लोग चार महीने का अथवा दो ही महीने के विहार का नियम पालन करें। किन्तु अविमुक्त में प्रविष्ट होने पर उनके लिए विहार के नियमों का कोई बन्धन नहीं रहता।३०-३३। प्राचीन शास्त्रों में यह देखा जा चुका है कि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करनेवाले प्राणी को पुनः शरीर नहीं मिलता, निस्सन्देह उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। शिव जी की भक्ति में तत्पर पतिव्रता स्त्रियाँ अविमुक्त क्षेत्र में विमुक्त होकर परम गति प्राप्त करती हैं। उनके अतिरिक्त अन्य जो कामुक भोग विलास में निरत रहनेवाली स्त्रियाँ हैं, वे भी कालक्रम से इस अविमुक्त में मृत्यु लाभकर परम गति प्राप्त करती

---

[1] क. ख. तटाकानां। [2] क. ख. °मं चैतत्तडागानां तथोत्तमम्। पु°। [3] च. °था। म्रियद्भिर्भव°। [4] ङ. °क्तं न मुच्यते। [5] ग. ङ. च. अस्यैव। [6] च. °भक्ताः स°।

यत्र योगश्च मोक्षश्चप्राप्यते दुर्लभो नरैः । अविमुक्तं समासाद्य नान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ।।३७
सर्वात्मना तपः [१]सेव्यं ब्राह्मणैर्नात्र संशयः । अविमुक्ते वसेद्यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः ।।३८
यतो मया न मुक्तं हि त्वविमुक्तं ततः स्मृतम् । अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसाऽऽवृताः ।।३९
विण्मूत्ररेतसां [२]मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः । कामः क्रोधश्च [३]लोभश्च दम्भस्तम्भोऽतिमत्सरः ।।४०
निद्रा तन्द्रा तथाऽऽलस्यं पैशुन्यमिति ते दश । अविमुक्ते स्थिता विघ्नाः शक्रेण विहिताः स्वयम् ।।
विनायकोपसर्गाश्च सततं मूर्ध्नि तिष्ठति । पुण्यमेतद्भवेत्सर्वं भक्तानामनुकम्पया ।।४२
परं गुह्यमिति ज्ञात्वा ततः शास्त्रानुदर्शनात् । व्याहृतं देवदेवैस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।४३
मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्जिता । पूता समभवत्सर्वा [४]महादेवेन रक्षिता ।।४४
संस्कारस्तेन क्रियते भूमेरन्यत्र सूरिभिः । ये [५]भक्त्या वरदं देवमक्षरं परमं पदम् ।।४५
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः । अविमुक्तमुपासन्ते तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।।४६
ते विशन्ति महादेवमाज्याहुतिरिवानलम् । तं वै प्राप्य महादेवमीश्वराध्युषितं शुभम् ।।४७

हैं ।३४-३६। जहाँ पर जाकर मनुष्य दुर्लभ योग एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है, ऐसे अविमुक्त क्षेत्र को छोड़कर उसे अन्य तपोवनों में नहीं जाना चाहिये । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि ब्राह्मणों को सभी उपायों द्वारा तप की अराधना करनी चाहिये । जो मनुष्य अविमुक्त में निवास करता है वह मेरे समान हो जाता है । मैंने कभी भी इस क्षेत्र को नहीं छोड़ा है अतः इसका नाम अविमुक्त (कभी न छोड़ा गया) क्षेत्र है । जो ऐसे अविमुक्त का सेवन नही करते वे अज्ञानान्धकार से घिरे हुए मनुष्य हैं ।३७-३९। बारम्बार उन्हें उसी मल-मूत्र-रज में निवास करना पड़ता है । स्वयं इन्द्र ने अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों के लिये काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, अतिमत्सर, निद्रा, तंद्रा, आलस्य और कुटिलता -- इन दस विघ्नों को नियत किया है, इनके अतिरिक्त शिव के गणों के उपद्रव तो निरन्तर शिर पर सवार रहते हैं, किन्तु भक्तों के ऊपर असीम कृपा रहने के कारण ये सभी पुण्यदायी हो जाते हैं । इन बातों को अति गोपनीय समझ कर शास्त्रों को देखकर देवदेव ने तथा तत्त्वदर्शी मुनियों ने स्वयं बतलाया है ।४०-४३। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह सारी पृथ्वी मधुकैटभ के रक्तादि से दूषित हो चुकी है, किन्तु इस अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र भूमि मधुकैटभ के मेद से परिप्लुत नहीं है, महादेव से सुरक्षित होने के कारण यहाँ की भूमि चारों ओर से अतिपवित्र है । यही कारण है कि पण्डित लोग अविमुक्त के अतिरिक्त अन्य स्थानों की भूमि का मांगलिक कार्यों में संस्कार करते हैं ।४४-४५। जो देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग आदि भक्ति एवं निष्ठापूर्वक अक्षय परम पद देनेवाले वरदायक शंकर की तथा अविमुक्त की उपासना करते हैं, वे अग्नि में आहुति की भाँति शिव के मुख में प्रविष्ट होते हैं । सभी देवताओं द्वारा पूजित कल्याणकारी उन महादेव को तथा अविमुक्त को प्राप्त कर ऋषि, देवता तथा असुरगण जप हवन में लीन रह-

---

१ ङ. °व्यं प्राणिनां नात्र । २ ग. °ध्ये निव° । ३ ङ. °श्च मदस्त° । ४ ग. मही दे° । ५ घ. ङ. भक्त्यैव° ।

अविमुक्तं कृतार्थोऽस्मीत्यात्मानमुपलभ्यते[1] । ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः ॥४८
यतिभिर्मोक्षकामैश्च ह्यविमुक्तं निषेव्यते । नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं यति किल्बिषी ॥४९
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् । द्वियोजनमथार्धं च तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम् ॥५०
अर्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम् । वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै ॥५१
एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन धीमता । लब्ध्वा योगं च मोक्षं च काङ्क्षन्तो ज्ञानमुत्तमम् ॥५२
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति तन्निष्ठास्तत्परायणाः । तस्मिन्वसन्ति ये मर्त्या न ते शोच्याः कदाचन ॥५३
योगक्षेत्रं तपःक्षेत्रं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । सरितः सागराः शैला नाविमुक्तसमा भुवि ॥५४
भूर्लोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि च । अतीत्य वर्तते[2] चान्यदविमुक्तं प्रभावतः ॥५५
ये तु ध्यानं समासाद्य[3] युक्तात्मानः समाहिताः । संनियम्येन्द्रियग्रामं जपन्ति शतरुद्रियम् ॥५६
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजातयः । भवभक्तिं समासाद्य [4]रमन्ते तु सुनिश्चिताः ॥५७
संहृत्य शक्तितः कामान्विषयेभ्यो बहिः स्थिताः । शक्तितः सर्वतो मुक्ताः शक्तितस्तपसि स्थिताः ॥५८
करणानीह चाऽऽत्मानमपुनर्भवभाविताः । तं वै प्राप्य महात्मानमीश्वरं निर्भयाः स्थिताः ॥५९

कर अपने को कृतार्थ मानते हैं । मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले जयहोमपरायण यति, ऋषि, देवता तथा असुर आदि सर्वदा इस अविमुक्त की सेवा करते हैं । कोई भी पापी अविमुक्त में मरकर नरक को नहीं जाते, ईश्वर की असीम अनुकम्पा से वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं ।४६-४९½। पूर्व पश्चिम में यह क्षेत्र ढाई योजन का तथा दक्षिण उत्तर में आधे योजन का कहा गया है । वरुणा और असी के समीप शुक्ल (?) नदी पर्यन्त वाराणसी का विस्तार स्वयम् परम बुद्धिमान् महादेव ने बतलाया है । अविमुक्त में निष्ठा रखनेवाले भक्तगण योग एवं मोक्ष को प्राप्तकर उत्तम ज्ञान की आकांक्षा से उसे कभी नहीं छोड़ते । उस क्षेत्र में जो मनुष्य निवास करते है, उनके लिए कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ती । वह अविमुक्त योग क्षेत्र है, तपः क्षेत्र है, सिद्ध एवं गन्धर्वों का निवास स्थान है, नदी, समुद्र एवं पर्वतों में कोई भी अविमुक्त के समान इस धरातल में नहीं है ।५०-५४। इस भूलोक में, आकाश में, तथा स्वर्ग में जितने भी तीर्थ हैं, उन सब का अपने अनुपम प्रभाव से अतिक्रमण करके यह अविमुक्त क्षेत्र अवस्थित है । जो ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग इस अविमुक्त क्षेत्र में समाधि लीन हो अन्तरात्मा एवं इन्द्रियों को अधीन रख शतरुद्री का नित्य पाठ करते हैं, वे सफल मनोरथ हो जाते हैं, एवं शिव जी की भक्ति को प्राप्तकर निश्चिन्त हो सदा विहार करते हैं। जो अपनी शक्ति के अनुरूप इच्छाओं का निरोध कर, विषयों से बाहर हो सभी विकारों से उन्मुक्त हो तपस्या में सदा निरत रहते हैं, एवं सभी इन्द्रियों को स्ववश रख पुनर्जन्म न होने की अभिलाषा से यहाँ अवस्थित रहते हैं, वे उन महान् आत्मा भगवान्

---

[1] ग. ङ. °लक्षये । ऋ° । [2] ङ. °ते तानि ह्य° । [3] क. ख. °द्यमुक्ता° । [4] ङ. °न्तेऽत्र सुनिवृंताः ।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। अविमुक्ते तु गृह्यन्ते भवेन विभुना स्वयम् ॥६०
उत्पादितं महाक्षेत्रं सिध्यन्ते यत्र मानवाः। उद्देशमात्रं कथिता अविमुक्तगुणास्तथा ॥६१
समुद्रस्येव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरम्। [1]मोहनं तदभक्तानां भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥६२
मूढास्ते तु न पश्यन्ति श्मशानमिति मोहिताः। हन्यमानोऽपि यो विद्वान्वसेद्विघ्नशतैरपि ॥६३
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति। जन्ममृत्युजरामुक्तः परं याति शिवालयम् ॥६४
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्। यां प्राप्य कृतकृत्यः [2]स्यादिति मन्येत पण्डितः ॥६५
न दानैर्न तपोभिर्वा न यज्ञैर्नापि विद्यया। प्राप्यते गतिरिष्टा या ह्यविमुक्ते तु लभ्यते ॥६६
नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डाला ये जुगुप्सिताः। किल्बिषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा ॥६७
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः। जात्यन्तरसहस्रेषु[3] ह्यविमुक्ते म्रियेत यः ॥६८
भक्तो विश्वेश्वरे देवे न स भूयोऽभिजायते। यत्र चेष्टं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥६९

शंकर को प्राप्तकर भयरहित हो जाते हैं।५५-५९। सैकड़ों कोटि कल्पों में भी कभी उनका पुनर्जन्म नहीं होता, भगवान् भव स्वयं उन्हें इस अविमुक्त में अपने में धारण कर लेते हैं। इस प्रकार अति महिमामय इस क्षेत्र को भगवान् ने उत्पन्न किया है, यहाँ पर आकर मानव की सारी अभिलाषायें सिद्ध हो जाती हैं। संक्षेप रूप में अविमुक्त के गुणों का मैने वर्णन किया है। समुद्रस्थित रत्नों की भाँति इसके भी गुणों की कोई गणना नहीं की जा सकती, जो भक्तिरहित मनुष्य हैं उनको तो ये अविमुक्त के गुण अज्ञान एवं वितर्क में डालने वाले हैं और जो भक्त हैं, उनकी भक्ति के बढ़ानेवाले हैं।६०-६२। वे वितर्की एवं अज्ञानी मूर्ख हैं, अतः अविमुक्त के उन महान् गुणों को न देखकर 'केवल श्मशान है इसी अज्ञान में वे भूले रहते हैं। सैकड़ों विघ्नों से व्याकुल होकर भी जो विद्वान् पुरुष इस अविमुक्त का सेवन करते रहते हैं, वे उस परम पद की प्राप्ति करते हैं, जहाँ जाकर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती, जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापा—इन तीनों कष्टदायिनी अवस्थाओं से मुक्त होकर वे मनुष्य शिव के लोक को प्राप्त करते हैं। मोक्ष की अभिलाषा करनेवालों की वह गति पुनः मृत्यु को प्राप्त करनेवाली नहीं है, पण्डित लोग उस दशा को इस प्रकार मानते हैं कि 'उस उत्तम गति को प्राप्तकर मनुष्य वास्तव में कृतकृत्य हो जाता है।' सारांश यह कि इस अविमुक्त क्षेत्र में वह शुभ गति प्राप्त होती है, जो कभी दान, तपस्या, यज्ञाराधन एवं विद्याध्ययन से नहीं प्राप्त हो सकती।६३-६६। अनेक जातियों में उत्पन्न, वर्णसंकर, चाण्डाल एवं घृणित कर्म करनेवाले, पाप कर्मों में सर्वदा निरत रहकर घोर पातकों से भरे हुए मनुष्यों के लिए भी परम उपयोगी ओषधि रूप में यह अविमुक्त क्षेत्र सेवन करने योग्य है—ऐसा बुद्धिमान् लोग जानते हैं। सहस्रों अन्य नीच जातियों से भी यदि कोई इस अविमुक्त में मृत्युलाभ करता है तो देवेश्वर भगवान् की भक्ति के कारण वह पुनः उत्पन्न नहीं होता।

---

१ ङ. °नं मूढबुद्धीनां बुधानां बुद्धि व°। २ ङ. स्यादित्यमन्यन्त सूरयः। न। ३ ङ. °हस्रैस्तु ह्यविमुक्ते मृतस्तु यः।

सर्वमक्षयमेतस्मिन्नविमुक्ते न संशयः । कालेनोपरता यान्ति भवे सायुज्यमक्षयम् ॥७०
कृत्वा पापसहस्राणि पश्चात्संतापमेत्य वै । योऽविमुक्ते वियुज्येत स याति परमां गतिम् ॥७१
उत्तरं दक्षिणं चापि अयनं न विकल्पयेत् । [1]सर्वस्तस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते [2]म्रियेत यः ॥७२
न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाऽशुभः । तस्य देवस्य [3]माहात्म्यात्स्थानमद्भुतकर्मणः ॥
सर्वेषामेव नाथस्य [4]सर्वेषां च विभोः स्वयम् ॥७३
श्रुत्वेदमृषयः सर्वे स्कन्देन कथितं पुरा । [5]अविमुक्ताश्रमं पुण्यं भावयेत्करणैः शुभैः ॥७४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ॥६९६७॥

जिस अविमुक्त क्षेत्र में जपे हुए जप, हवन, दान, तपस्या तथा सत्कर्म सभी अक्षयरूप में कर्त्ता को प्राप्त होते हैं, उसके विषय में कोई भी संशय नहीं किया जा सकता ।६७-६९½। काल क्रम से मृत्यु को प्राप्त होनेवाला प्राणी शिव की अक्षय समीपता को प्राप्त करता है । सहस्रों पातकों के करने के उपरान्त पश्चात्ताप कर जो मनुष्य इस अविमुक्त में शरीर त्याग करता है वह परम गति प्राप्त करता है ।७०-७१। उत्तरायण या दक्षिणायन का जो विकल्प न करके अविमुक्त में मरता है, उसके लिए सभी समय शुभदायी है । अविमुक्त क्षेत्र में समय की मीमांसा नहीं करनी चाहिए, चाहे शुभ मुहूर्त हो या अशुभ मुहुर्त हो, सभी समय उस अद्भुत माहात्म्यशाली देवता शंकर की कृपा से मृत्यु प्राप्त करनेवाले का वहाँ कल्याण तो होता ही है । शंकर जगत् के सभी चराचर जीवों के स्वामी हैं तथा सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् हैं । प्राचीन काल में स्कन्द के मुख से इस सब कथा को सुनकर सभी ऋषियों ने यह निश्चय किया था कि अवश्य ही वह अविमुक्त क्षेत्र अतिपुण्यप्रद क्षेत्र है, शुद्ध इन्द्रियों द्वारा सब को सदा उसका सेवन करना चाहिये ।७२-७४।

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८४॥

---

[1] क. ख. °र्वस्तेषां शु° । [2] क. ख. ङ. च. म्रियन्ति ये । न । [3] क. ख. °हात्म्यस्थान° । [4] क. ख. ग. °षां च विभुना स्व° । [5] ग. ङ. °श्रियं पु° ।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अविमुक्ते महापुण्ये [1]चाऽऽस्तिकाः [2]शुभदर्शनाः । विस्मयं परमं जग्मुर्हर्षगद्गदनिस्वनाः ॥१
ऊचुस्ते हृष्टमनसः स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम् । [3]ब्रह्मण्यो देवपुत्रस्त्वं ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ॥२
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद्ब्रह्मा ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मलोककृत् । [4]ब्रह्मकृद्ब्रह्मचारी त्वं ब्रह्मादिर्ब्रह्मवत्सलः ॥३
ब्रह्मतुल्योद्भवकरो ब्रह्मतुल्य नमोऽस्तु ते । ऋषयो भावितात्मानः श्रुत्वेदं पवनं महत् ॥४
तत्त्वं तु परमं ज्ञातं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामो [5]भूर्लोकं शंकरालयम् ॥५
यत्रासौ सर्वभूतात्मा स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः । सर्वलोकहितार्थाय तपस्युग्रे व्यवस्थितः ॥६
संयोज्य योगेनाऽऽत्मानं रौद्रीं तनुरुपाश्रितः । गुह्यकैरात्मभूतस्तु[6] आत्मतुल्यगुणैर्वृतः ॥७
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः । [7]विज्ञप्तः परया भक्त्या त्वत्प्रसादाद्गणेश्वर ॥८

अध्याय १८५

सूत ने कहा— ऋषिगण ! इस प्रकार महापुण्यप्रद अविमुक्त के विषय में अति श्रद्धासम्पन्न आस्तिक बुद्धिवाले सुन्दर स्वरूप भक्तिमान् ऋषिगण ऐसे अविमुक्त के परम पवित्र माहात्म्य को सुनकर परम विस्मित हुए एवं अति हर्ष से गद्गद वाणी में, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से बोले—'स्कन्द ! तुम ब्राह्मणों के रक्षक हो, महादेव के पुत्र हो, ब्रह्मज्ञानी हो, ब्राह्मणों के प्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो, ब्रह्म को जानने वाले हो, स्वयं ब्रह्मा हो, ब्रह्मा से भी बढ़कर हो, ब्रह्मलोक के कर्त्ता हो, ब्रह्म के निर्माणकर्त्ता, ब्रह्मचारी, ब्रह्मा से ज्येष्ठ तथा ब्रह्मा पर दया करनेवाले हो, ब्रह्म के समान हो, तुम्हें हम लोग नमस्कार करते हैं ।१-४। तुम्हारी ही कृपा से हम लोगों ने ऐसे परमतत्त्व की प्राप्ति की है, जिसे जानकर अमरत्व प्राप्त किया जाता है, तुम्हारा कल्याण हो, अब हम लोग भूलोक में शंकर के उस निवास स्थान अविमुक्त को जायंगे जहाँ पर सर्वभूतात्मा सृष्टि के स्थाणु रूप भगवान् शंकर सभी लोक की रक्षा के लिए उग्र तपस्या में निरत हो योग द्वारा अपनी रुद्र (भयानक) विभूति सम्पन्न देह में अवस्थित रह, अपने ही समान अनुपम गुणवाले गुह्यकों से घिरे हुए अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान हैं' ।५-६। इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध तथा महर्षिगण परम भक्तिपूर्वक स्कन्द से पुनः निवेदन करने लगे, 'गणेश्वर ! तुम्हारी कृपा से हम सब लोग सुनिश्चित होकर इस प्रकार उपयुक्त अनुपम गुणोंवाले उस अविमुक्त क्षेत्र में निवास

---

[1] ङ. °काः प्रियद° । [2] ग °र्शिनः । वि° । [3] क. ख. °ह्मणो देवपौत्रस्त्वं ब्रह्मण्यो ब्राह्मणः प्रि° ।
[4] ङ. °ह्मराशिश्च ब्र° । [5] ङ. °र्लोकाच्छंक° । [6] ङ. °भूतैस्तु । [7] ङ. विज्ञाप्य ।

वस्तुमिच्छाम नियतमविमुक्ते सुनिश्चिताः । एवंगुणे तथा मर्त्या ह्यविमुक्ते वसन्ति ये ॥९
धर्मशीला जितक्रोधा निर्ममा नियतेन्द्रियाः । ध्यानयोगपराः सिद्धिं[1] गच्छन्ति [2]परमाव्ययाम् ॥१०
योगिनो [3]योगसिद्धाश्च योगमोक्षप्रदं विभुम् । उपासते भक्तियुक्ता *गुह्यं देवं सनातनम् ॥११
अविमुक्तं समासाद्य प्राप्तयोगान्महेश्वरात् । सप्त ब्रह्मर्षयो नीता भवसायुज्यमागताः ॥१२
एतत्तु परमं क्षेत्रमविमुक्तं विदुर्बुधाः । अप्रबुद्धा न पश्यन्ति भवमायाविमोहिताः ॥१३
तेनैव चाभ्यनुज्ञातास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः । अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा शान्ता योगगतिं गताः ॥१४
स्थानं गुह्यं श्मशानानां सर्वेषामेतदुच्यते । न हि योगादृते मोक्षः प्राप्यते भुवि मानवैः ॥१५
अविमुक्ते निवसतां योगो मोक्षश्च सिध्यति । +एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि ॥
=अनेन जन्मनैवेह प्राप्यते गतिरुत्तमा ॥१६
अविमुक्ते निवसता व्यासेनामिततेजसा । नैव लब्धा क्वचिद्भिक्षा [4]भ्रममाणेन यत्नतः ॥१७

करने को इच्छुक हैं, जिसमें धर्मशील, जितक्रोध, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, ध्यान एवं योग के अभ्यासी मनुष्य निवास करते हैं तथा परम अव्यक्त गति को प्राप्त करते हैं ।८-१०। वे भक्तियुक्त मनुष्य योगाराधन में लीन हो योग में सिद्धि प्राप्तकर योग एवं मोक्ष के देनेवाले सनातन एकान्तप्रिय भगवान् की उपासना करते हैं। इस प्रकार परमयोगी महेश्वर के प्रसाद से उस अविमुक्त क्षेत्र को प्राप्तकर सातो ब्रह्मर्षि गण भव की समीपता को प्राप्त हुए ! बुद्धिमान् लोग इस अविमुक्त को परमक्षेत्र मानते हैं । संसार की माया से विमुग्ध हुए मूर्ख लोग अविमुक्त की उस विशेषता को नहीं देखते ।११-१३। उन्हीं शंकर की आज्ञा से वे उनके भक्त गण, जो सर्वदा उन्हीं के चरणों का ध्यान करते रहते हैं, उस अविमुक्त क्षेत्रमें शरीर त्याग कर शान्ति प्राप्तकर योगियों की गति प्राप्त करते हैं। वह अविमुक्त सभी स्थानों की अपेक्षा परम एकान्त तथा गोपनीय है । यह प्रसिद्ध है कि पृथ्वी तल पर विना योग के मोक्ष की प्राप्ति मनुष्य को नहीं हो सकती, किन्तु अविमुक्त में निवास करनेवाले को योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति एक ही साथ होती है। परमेश्वरि ! इस अविमुक्त क्षेत्र का यह एक विशेष प्रभाव अथवा महत्त्व है कि इसमें इसी (एक) जन्म में मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर सकता है ।१४-१६। एक समय की बात है कि इसी अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले अमित तेजस्वी व्यास जी प्रयत्न करने पर भी भ्रमण करते हुए एक बार कहीं से भिक्षा नहीं प्राप्त कर सके ।१७। तब क्षुधा से पीड़ित होकर उसे घोर शाप देने का वे विचार

---

* इत आरभ्य तनुं त्यक्त्वा, इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते क. ख. घ. पुस्तकेषु । +नैतदर्धं विद्यते क ख. पुस्तकयोः । =एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. ङ. च. पुस्तकेषु—एकेन जन्मना देवि मोक्षं पश्यत्यनुत्तमम् । इति ।

---

[1] ङ. °द्धि पदं गच्छन्त्यनामयम् । यो° । [2] ग. पदमव्ययम् । यो° । [3] ङ. °गभक्ताश्च । [4] ग. ङ. भ्राम्यमाणेन ।

क्षुधाविष्टस्ततः [१]क्रुद्धोऽचिन्तयच्छापमुत्तमम् । ×दिनं दिनं प्रति व्यासः षण्मासं योऽवतिष्ठति ॥१८
कथं ममेदं नगरं भिक्षादोषाद्धतं त्विदम् । विप्रो वा क्षत्रियो वाऽपि ब्राह्मणी विधवाऽपि वा ॥१९
संस्कृताऽसंस्कृता वाऽपि परिपक्वाः कथं नु मे । न प्रयच्छन्ति वै लोका ब्रह्मणाश्चर्यकारकम् ॥२०
एषां शापं प्रदास्यामि तीर्थस्य नगरस्य तु । तीर्थं चातीर्थतां यातु नगरं शापयाम्यहम् ॥२१
मा भूत्त्रिपौरुषी विद्या मा भूत्त्रिपौरुषं धनम् । मा भूत्त्रिपौरुषं सख्यं व्यासो वाराणसीं [२]शपन् ॥२२
अविमुक्ते निवसतां जनानां पुण्यकर्मणाम् । विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्न विद्यते ॥२३
व्यासचित्तं तदा ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः । [*भीतभीतस्तदा गौरीं तां प्रियां पर्यभाषत ॥२४
शृणु देवि वचो मह्यं यादृशं प्रत्युपस्थितम् । कृष्णद्वैपायनः कोपाच्छापं दातुं समुद्यतः ॥२५

देव्युवाच

किमर्थं शपते क्रुद्धो व्यासः केन प्रकोपितः । किं कृतं भगवंस्तस्य येन शापं प्रयच्छति ॥२६

करने लगे । उन्होंने सोचा कि एक-एक दिन करके मेरे छःमास व्यतीत हो गये पर क्या कारण है कि मेरा यह नगर भिक्षा के दोष से हतप्राय हो गया अर्थात् कोई भी भिक्षा देनेवाला नहीं दिखाई पड़ रहा है ।१८½। क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या विधवा, क्या सम्भ्रान्त क्या असम्भ्रान्त—किसी ने भी मुझे भिक्षा नहीं दी, इसका क्या कारण है ? यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि यहाँ के लोग ब्राह्मण को भिक्षा नहीं देते । अतएव अब मैं इन सबों को शाप दे रहा हूँ, साथ ही इस तीर्थ तथा नगर को शाप दे रहा हूँ ।१९-२०½। यह तीर्थ अब तीर्थ न रहे । नगर को यह शाप दे रहा हूँ कि इस नगर में निवास करनेवालों की विद्या तीन पीढ़ी तक न चले, धन तीन पीढ़ी तक न रहे, मित्रता तीन पीढ़ी तक न चले—इस प्रकार वाराणसी को शाप देते हुए व्यास ने 'अविमुक्त में निवास करनेवाले इन पुण्यकर्मा मनुष्यों को भी विघ्नपूर्ण कर दूँ, जिससे उन्हें किसी प्रकार की कभी सिद्धि न मिले' ।२१-२३। इस प्रकार का विचार किया । देवदेव उमापति व्यास के इस मनोभाव को देखकर अति भयभीत हुए और अपनी प्रियतमा गौरी से कहने लगे —'देवि ! यह एक दुःखपूर्ण विषय जिस प्रकार उपस्थित हो गया है उसे सुनो, कृष्णद्वैपायन व्यास क्रोध के कारण मुझे शाप देने को उद्यत हो गये हैं ।२४-२५।

देवी ने कहा—भगवन् ! किसने व्यास जी को इस प्रकार कुपित कर कर दिया है ? आपने उनका क्या ऐसा अपकार किया है जिससे वे शाप दे रहे हैं ? ।२६।

× इत आरभ्य नगरं शापयाम्यहमित्यन्तग्रन्थो नास्ति ग. ङ. च. पुस्तकेषु ।

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो नास्ति ग. ङ. च. पुस्तकेषु ।

---

[१] ग. °द्धो व्यसृजच्छा° । [२] ग. घ. च. शपेत् ।

देवदेव उवाच

अनेन सुतपस्तप्तं बहून्वर्षगणान्प्रिये । मौनिना ध्यानयुक्तेन द्वादशाब्दान्वरानने ॥२७
ततः क्षुधा सुसंजाता भिक्षामटितुमागतः । नैवास्य केनचिद्भिक्षा ग्रासार्धमपि भामिनि ॥२८
एवं भगवतः काल आसीत्षाण्मासिको मुनेः । ततः क्रोधपरीतात्मा शापं दास्यति सोऽधुना ॥२९
यावन्नैष शपेत्तावदुपायस्तत्र चिन्त्यताम् । कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रिये ॥३०
कोऽस्य शापान्न बिभेति ह्यपि साक्षात्पितामहः । अदैवं दैवतं कुर्याद्दैवं चाप्यपदैवतम् ॥३१
आवां तु मानुषौ भूत्वा गृहस्थाविहवासिनौ । तस्य तृप्तिकरीं भिक्षां प्रयच्छावो वरानने ॥३२
एवमुक्त्वा ततो देवी देवेन शंभुना तदा] । व्यासस्य दर्शनं दत्त्वा कृत्वा वेषं तु मानुषम् ॥३३
एह्येहि [1]भगवन्साधो [2]भिक्षां ग्राहय सत्तम । अस्मद्गृहे कदाचित्त्वं नाऽऽगतोऽसि महामुने ॥३४
एतच्छ्रुत्वा प्रीतमना भिक्षां ग्रहीतुमागतः । भिक्षां दत्त्वा तु व्यासाय षड्साममृतोपमाम् ॥३५
अनास्वादितपूर्वा सा भक्षिता मुनिना तदा । भिक्षां व्यासस्ततो भुक्त्वा चिन्तयन्हृष्टमानसः ॥३६

देवदेव ने कहा—प्रिये ! इस व्यास ने बारह वर्षों तक समाधिलीन हो मौन व्रत रख कर के घोर तपस्या की है। तपस्या से उठने पर इसे क्षुधा लगी, जिससे भिक्षाटन करते हुए वह यहाँ आये। भामिनि ! किन्तु यहाँ पर इसे किसी ने आधे ग्रास की भी भिक्षा नहीं दी। इस प्रकार मुनि के छः महीने व्यतीत हो गये। जिससे अति क्रोधयुक्त होकर यह शाप देने जा रहे हैं। जब तक शाप नहीं देते हैं, तब तक कोई उपाय निश्चिन्त कर लो। प्रिये ! इस कृष्णद्वैपायन व्यास को नारायण स्वरूप ही समझो।२९-३०। भला इसके शाप से कौन है ऐसा जो भयभीत न हो जाय ? साक्षात् पितामह भगवान् ब्रह्मा भी इसके शाप से भयभीत हो जायँगे। इसके शाप से दैव के अधीन जो कार्य होगा वह भी हो सकता है और जो नहीं अधीन होगा वह भी हो सकता है। वरानने ? इस लिए आओ हम दोनों यहाँ के निवासी बनकर गृहस्थ के वेश में, उसे तृप्ति करनेवाली भिक्षा का दान करे।' भगवान् शंकर ने इस प्रकार पार्वती से उस समय कहा।३१-३२। ऐसा विचार निश्चित करने के उपरान्त भगवान् शंकर तथा पार्वती मनुष्य का वेश धारणकर व्यास के सम्मुख उपस्थित हुए और बोले —'साधु ! आओ, यहाँ मेरे पास आओ ! श्रेष्ठ ! यह भिक्षा ग्रहण करो। महामुने ! तुम तो इतने दिनों तक रहकर भी हमारे यहाँ कभी नहीं आये'।३३-३४। शंकर की ऐसी बातें सुन व्यास जी प्रसन्नचित्त हो भिक्षा ग्रहण करने के लिए वहाँ गये। षड्रस व्यंजन समेत उत्तम भिक्षा को देकर पार्वती तथा शंकर वहीं खड़े रहे। मुनिवर व्यास उस अपूर्व स्वादिष्ठ भिक्षा का भोजन ग्रहण कर अति हर्षित हो चिन्तन करने लगे कि 'यह ऐसी अपूर्व भिक्षा कहाँ से प्राप्त हो गई।' थोड़ी देर बाद कमल के समान

---

[1] क. ख. घ. °वन्सद्यो भि°। [2] ङ. °क्षां गृह्ण महातपः। अ°।

ववन्दे वरदं देवं देवीं च गिरिजां तदा । व्यासः कमलपत्राक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥३७
देवो देवी नदी गङ्गा मिष्टमन्नं शुभा गतिः । वाराणस्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचते ॥३८
एवमुक्त्वा ततो व्यासो नगरीमवलोकयन् । चिन्तयानस्ततो भिक्षां हृदयानन्दकारिणीम् ॥३९
अपश्यत्पुरतो देवं देवीं च गिरिजां तदा । गृहाङ्गणस्थितं व्यासं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥४०
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं क्रोधनस्त्वं महामुने । एवं[1] विस्मयमापन्नो देवं व्यासोऽब्रवीद्वचः ॥४१

व्यास उवाच

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं दातुमर्हसि । एवमस्त्वित्यनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४२
न तद्गृहं न सा देवी न देवो ज्ञायते क्वचित् । एवं त्रैलोक्यविख्यातः पुरा व्यासो महातपाः ॥४३
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान्सर्वान्स्थितस्तस्यैव पार्श्वतः । एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं शंसन्ति पण्डिताः ॥४४
[2]अविमुक्तगुणान्सर्वान्कः समर्थो वदिष्यति । देवब्राह्मणविद्विष्टा देवभक्तिविडम्बकाः ॥४५
ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च तथा नैष्कृतिकाश्च ये । [3]लोकद्विषो गुरुद्विषस्तीर्थायतनदूषकाः ॥४६
सदा पापरताश्चैव ये चान्ये कुत्सिता भुवि । तेषां नास्तीति वासो वै स्थितोऽसौ दण्डनायकः ॥४७

सुन्दर नेत्रोंवाले व्यास ने पार्वती तथा वरदायी शंकर की वन्दना की और यह कहा—'भगवान् महादेव ऐसे देवता, पार्वती ऐसी देवी, भगवती गंगा ऐसी नदी, ऐसा सुस्वादु अन्न, मरने पर उत्तम गति—विशाल नेत्रों वाली ! ऐसे सुखद साधनों से सम्पन्न वाराणसी नगरी में भला किसे निवास करना न रुचेगा ।३५-३८। ऐसा कहकर व्यास उस नगरी को देखते हुए तथा हृदय को आनन्द देनेवाली उस अपूर्व स्वाद वाली भिक्षा को सोचते हुए अपने सम्मुख खड़े हुए भगवान् शंकर और भगवती पार्वती की ओर देखा । घर के आँगन में खड़े हुए व्यास को देखकर देवाधिदेव ने कहा—'महामुने ! तुम तो बड़े क्रोधी हो, अतः इस वाराणसी नगरी में तुम निवास मत करो ।' शिव की ऐसी वाणी सुन व्यास अति विस्मित हुए और शंकर से बोले ।३९-४१।

व्यास ने कहा—'देव ! केवल चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को मुझे यहाँ प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दीजिए ।' तदनन्तर शिव तथा पार्वती 'ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गए । व्यास ने देखा कि न तो वहाँ वह घर दिखाई पड़ रहा है न पार्वती जी हैं और न शिव जी । सूत ने कहा—इस प्रकार प्राचीन काल में तीनों लोकों में सुविख्यात महातपस्वी व्यास जी ने अविमुक्त क्षेत्र के उत्तम गुणों को जानकर उसी के बगल में अपना निवास स्थान निश्चित किया था । पण्डित लोग इस प्रकार काशी के समीप में व्यास को अवस्थित जान उस क्षेत्र की प्रशंसा किया करते हैं ।४२-४५। ऐसे अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? देवता तथा ब्राह्मणों से विद्वेष करनेवाले, देव भक्ति की उपेक्षा करनेवाले, ब्रह्महत्या करनेवाले, कृतघ्न, निष्कर्मण्य, लोकद्वेषी, गुरुद्वेषी, तीर्थं एवं देवमंदिरों को दूषण

---

[1] ग. ङ. °बं समय° । [2] क. ख. °णानां तु कः स° । [3] ग. घ. ङ. °द्विष्टागुरुद्विष्टास्ती° ।

रक्षाणार्थं नियुक्तं वै दण्डनायकमुत्तमम् । पूजयित्वा यथाशक्त्या गन्धपुष्पादिधूपकैः ॥४८
नमस्कारं ततः कृत्वा नायकस्य तु मन्त्रवित् । सर्ववर्णावृते क्षेत्रे नानाविधसरीसृपे ॥४६
ईश्वरानुगृहीता हि गतिं गाणेश्वरीं गताः । नानारूपधरा दिव्या नानावेषधरास्तथा ॥५०
सुरा वै ये तु सर्वे च तन्निष्ठास्तत्परायणाः । यदिच्छन्ति परं स्थानमक्षयं तदवाप्नुयुः ॥५१
परं पुरं[1] देवपुराद्विशिष्यते तदुत्तरं ब्रह्मपुरात्पुरः स्थितम् ।
तपोबलादीश्वरयोगनिर्मितं न तत्समं ब्रह्मदिवौकसालयम् ॥ ॥५२
मनोरमं कामगम ह्यनामयमतीत्य तेजांसि तपांसि [2]योगवत् ॥५३
[3]अधिष्ठितस्तु[4] तत्स्थाने देवदेवो विराजते । तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ॥५४
सर्वतीर्थाभिषेकं तु सर्वदानफलानि च । सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यमविमुक्ते तदाप्नुयात् ॥५५
अतीतं वर्तमानं च अज्ञानाज्ज्ञानतोऽपि वा । सर्वं तस्य च यत्पापं क्षेत्रं दृष्ट्वा विनश्यति ॥५६

देनेवाले, सर्वदा पाप कर्म में निरत, इनके अतरिक्त अन्य नीच प्रकृति के वे व्यक्ति, जो पृथ्वी पर अत्यन्त कुत्सित कर्मों में सदा लीन रहते हैं—सबके लिए अविमुक्त क्षेत्र में निवास स्थान नहीं है, क्योंकि दण्डनायक (भैरव)—वहाँ पर रक्षार्थ नियुक्त किये गये हैं।४६-४८। मंत्रज्ञाता लोग सुगन्धित द्रव्य पुष्पादि तथा धूप आदि पूजन की सामग्रियों से यथा शक्ति दण्डनायक की पूजा तथा नमस्कार कर सभी वर्णों के लोगों से घिरे हुए अनेक प्रकार के सर्पादि जन्तुओं से आकीर्ण अविमुक्त में ईश्वर के अनुग्रहवश गणेश्वर की गति प्राप्त करते हैं, अनेक प्रकार के रूपों को धारणकर विविध वेशों में देवगण इस अविमुक्त क्षेत्र में शिव जी में भक्ति तथा निष्ठा रखे हुए, जिस-जिस मुख्य पद की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं उस-उस पद को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं।४९-५२। यह शिव जी का पुर देवपुरी अमरावती से भी विशेषता रखनेवाला है, इसका उत्तरी भाग ब्रह्मपुरी की अपेक्षा भी विशेष पुण्यदायी है, यह शंकर के तपोबल एवं योगाराधना द्वारा इस प्रकार सुव्यवस्थित है। इसकी बराबरी में ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं के निवास स्थान भी नहीं हो सकते। यह अति मनोहारि, इच्छा को पूर्ण करने वाला, रोगरहित तथा योग की भाँति सभी तपस्या एवं तेजों का अतिक्रमण करनेवाला है।५३। इस अविमुक्त के ऐसे परम पवित्र क्षेत्र में देवाधिदेव शंकर जी सदा विराजमान रहते हैं, इसमें जो तपस्या की जाती है तथा जिन नियमों का पालन किया जाता है, वह अन्यत्र की अपेक्षा अक्षय फलदायी होता है। सभी तीर्थों में स्नानादि करने का जो फल है, सभी दानों के देने का जो पुण्य है, सभी यज्ञों से जो पुण्य प्राप्त होता है वह सब अविमुक्त में निवासमात्र से प्राप्त होता है। भूत काल में अथवा वर्तमान काल में जो कुछ भी पाप कर्म ज्ञान से अथवा अज्ञान से हो जाते हैं वे सभी इस पुण्य क्षेत्र के दर्शन मात्र से निवृत्त हो जाते हैं, !।५४-५६। मन एवं इन्द्रियों को स्ववश

---

१ ङ. °रं देवपदाद्वि°। २ ग. घ. ङ. योगवित्। ३ ग. धिष्ठाय तु तत्स्थानं देव°। ४ ङ. °ष्ठितं तु तत्स्थानं देवदेवेन रा°।

शान्तैर्दान्तैस्तपस्तप्तं यत्किंचिद्धर्मसंज्ञितम् । सर्वं च तदवाप्नोति अविमुक्ते जितेन्द्रियः ॥५७
अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः । कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥५८
अमरा ह्यक्षयाश्चैव क्रीडन्ति भवसंनिधौ । क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं न संशयः ॥५९
अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवन्ति वै । सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते तिष्ठन्त्यजरामराः ॥६०
सर्वकामाश्च ये यज्ञाः पुनरावृत्तिकाः स्मृताः । अविमुक्ते मृता ये च सर्वे ते ह्यनिवर्तकाः ॥६१
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम् । अविमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते ॥६२
कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि । न तेषां पुनरावृत्तिर्मृता ये क्षेत्र उत्तमे ॥६३
संसारसागरे घोरे भ्रमन्तः कालपर्ययात् । अविमुक्तं समासाद्य गच्छन्ति[1] परमां गतिम् ॥६४
ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम् । अविमुक्तं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि ॥६५
अविमुक्तं प्रविष्टस्तु यदि गच्छेत्ततः पुनः । तदा हसन्ति भूतानि [2]अन्योन्यकरताडनैः ॥६६
कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुवि मानवाः । [3]निष्क्रमन्ते नरा देवि दण्डनायकमोहिताः ॥६७

रख शान्त चित्त से जो अन्यत्र तपस्या की जाती है, अथवा धर्म के नाम से जो भी आचरण किये जाते हैं, वे सभी अविमुक्त में केवल इन्द्रियों को स्ववश रखने से प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र में जाकर शिव लिंग की पूजा करते हैं उनका सैकड़ों कोटि कल्पों में भी पुर्नजन्म नहीं होता, तथा वे अमर एवं अक्षय रूप में शिव के समीप क्रीडा करते हैं। सारांश यह कि यह अविमुक्त क्षेत्र संसार के अन्य क्षेत्रों तथा तीर्थों का उपनिषत्स्वरूप है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, जो अविमुक्त में महादेव जी की पूजा करते हैं तथा स्तुति करते हैं वे सभी पापों से निर्मुक्त होकर वृद्धावस्था तथा मृत्यु से भी छुट्टी पा जाते हैं ।५७-६०। सभी मनोरथों के पूर्ण करने के लिए प्रसिद्ध जो यज्ञादि हैं, उनके करने से भी मनुष्य को पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ता है, किन्तु जो अविमुक्त में केवल प्राणत्याग देते हैं वे पुनः लौट कर कभी नहीं आते। ग्रहों, नक्षत्रों एवं ताराओं का पतन तो काल योग से कभी हो सकता है किन्तु अविमुक्त में मरनेवाला कभी नहीं गिरता। इस उत्तम क्षेत्र में जो मरते हैं वे सैकड़ों कोटि कल्पों में क्या सहस्रों कोटि कल्पों में भी कभी पुनर्जन्म नहीं करते। इस घोर संसार सागर में कालक्रम से भ्रमण करता हुआ प्राणी जब अविमुक्त को प्राप्त कर कर लेता है तब परम गति को प्राप्त करता है। इस घोर हाहाकारमय अचेतन कलियुग को जानकर जो प्राणी अविमुक्त को नहीं छोड़ते वे ही पृथ्वी में कृतार्थ होते हैं। जो अविमुक्त में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर जाने लगता है, उसे देख सभी जीव ताली पीटकर हँसने लगते हैं। हे देवि! जो मनुष्य काम, क्रोध तथा लोभ से ग्रस्त होते हैं, वे प्राणी दण्डनायक की माया से विमोहित होकर इस अविमुक्त से बाहर जाते हैं ।६१-६७। जप एवं ध्यान न करने वाले अज्ञानी एवं दुःख से पीड़ित व्यक्तियों के

---

[1] क. ख. घ. °न्ति मणिकर्णिकाम् । ज्ञा° । [2] क. ख. °न्योन्यं करताडनम् । का° ।
[3] ङ. निष्क्रामन्ति ।

जपध्यानविहोनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम् । [१]ततो दुःखहतानां च गतिर्वाराणसी नृणाम् ॥६८
*तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने । दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः ॥६९
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका । एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम् ॥७०
एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि । एकेन जन्मना देवि मोक्षं पश्यन्त्यनुत्तमम् ॥७१
एतद्वै कथितं सर्वं देव्यै देवेन भाषितम् । अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य तत्सर्वं कथितं द्विजाः ॥७२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम पञ्चशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१००३८॥

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत्कथितं त्वया । इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यं वद सत्तम ॥१

लिए काशी ही एक मात्र गति है । विश्वेश के इस आनन्द कानन अविमुक्त में पाँच तीर्थ सम रूप हैं, दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, विन्दुमाधव तथा सर्वश्रेष्ठ मणिकर्णिका । इन्हीं पाँच अति उत्तम तीर्थों से अविमुक्त की प्रशंसा होती है । परमेश्वरि ! इस अविमुक्त क्षेत्र की यह एक विशेषता है कि मनुष्य इसमें आकर एक जन्म में ही उत्तम गति एवं मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है । ऋषिगण ! पार्वती के प्रति महादेव जी से कहे गये अविमुक्त क्षेत्र के इस माहात्म्य को मैं आप लोगों को सुना चुका ।६१-७२।

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८५॥

अध्याय १८६

ऋषियों ने कहा—श्रेष्ठ सूत जी ! अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य तो तुम विस्तारपूर्वक हम लोगों को सुना चुके अब उस नर्मदा के माहात्म्य को सुनाइये, जिसके साथ-साथ ओंकार तीर्थ का माहात्म्य

---

*इत आरभ्य कथितं द्विजा इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ग. ङ. च. पुस्तकेषु ।

---

[१] ग. तमोदु° । ङ. तमोभिः प्रगृहीता नां ग° ।

यत्रोंकारस्य माहात्म्यं कपिलासंगमस्य च । अमरेशस्य चैवाऽऽहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ॥२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा । मार्कण्डेयश्च [1]भगवान्न विनष्टस्तदा किल ॥
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ॥३

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना । नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्थो वनवासिना । पृष्टः पूर्वां महागाथां धर्मपत्रेण धीमता ॥५

युधिष्ठिर उवाच

श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम । भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत ॥६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता । नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ॥७

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥८
नर्मदायास्तु महात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् । तदेतद्धि महाराज तत्सर्वं कथयामि ते ॥९

कपिला संगम का माहात्म्य तथा अमरेश पर्वत का माहात्म्य पापों के विनाश करनेवाले कहे गये हैं ? प्रलयकाल आने पर भी प्राचीन काल में नर्मदा का नाश क्यों नहीं हुआ ? क्या ऐसा कारण है कि उस समय मार्कण्डेय ऋषि भी विनष्ट होने से बच रहे, तुम यद्यपि इन बातों को कह चुके हो, पर विस्तारपूर्वक इन्हीं सब बातों को पुनः कहो ।१-३।

सूत ने कहा—ऋषिगण ! प्राचीन काल में वन में निवास करते समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठर ने इसी नर्मदा के माहात्म्य की लम्बी कथा को परमतपोनिष्ठ वनवासी महामुनि मार्कण्डेय जी से एक बार पूछा था ।४-५।

युधिष्ठिर ने कहा—द्विजोतम ! अच्छे व्रत करनेवाले ! तुम्हारी कृपा से मैंने विविध प्रकार के धर्मों का उपदेश सुना है, और पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, मुझसे बताओ । हे महामुनि जी ! क्यों कर यह महापुण्य प्रदायिनी सर्वत्र विख्यात नर्मदा इतनी सुप्रसिद्ध हुई ? इस बात को मुझसे बताओ ।६-७।

मार्कण्डेय ने कहा— सभी पापों का विनाश करनेवाली, सभी नदियों में श्रेष्ठ यह नर्मदा नदी स्थावर जंगम— सभी प्रकार के जीवों को तारनेवाली है । हे महाराज ! नर्मदा के महात्म्य को, जैसा कि पुराणों में सुन चुका हूँ, यथाबत रूप में आप से निवेदित कर रहा हूँ ।८-९। कनखल तीर्थ में गंगा पुण्य

---

[1] ग. °वानष्यचष्ट तदा ।

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥१०
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥११
[1]कलिङ्गदेशे पाश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके । पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः ॥१३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः । उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥१४
जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि । पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१५
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥१६
[2]प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः । पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः ॥१७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । पितृकार्यं च कुर्वीत [3]विधिवन्नियतेन्द्रियः ॥१८
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत्पितृदेवताः । आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत[4] पाण्डव ॥१९
षष्टिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । [5]अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ॥२०

प्रदायिनी है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती का अधिक माहात्म्य है, किन्तु नर्मदा तो क्या ग्राम क्या जंगल सभी स्थानों पर परम पवित्र मानी गयी हैं । सरस्वती का जल तीन दिनों में, यमुना का जल सात दिनों में, गंगा का जल शीघ्र ही तथा नर्मदा का जल दर्शन करते ही मनुष्य को पवित्र करता है। कलिंग देश के पृष्ठ भाग में अमरकण्टक पर्वत पर तीनों लोकों में परम पवित्र, रमणीय एवं मनोहारिणी नर्मदा की अवस्थिति है ।१०-१२। हे महाराज ! वहाँ पर देवता, असुर, गन्धर्व आदि के समस्त परम तपस्वी महर्षिगण तपस्या कर परम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं । हे राजन् ! उक्त स्थान पर स्नान कर जितेन्द्रिय तथा नियम पूर्वक रहनेवाला मनुष्य एक रात उपवास करके अपने सौ कुल को तारता है । जालेश्वर नामक तीर्थ में स्नान कर जो मनुष्य विधिपूर्वक पितरों को पिण्ड दान करता है उसके पितर महाप्रलय तक सन्तुष्ट रहते हैं ।१३-१५। वहाँ पर्वत के चारों ओर एक करोड़ रुद्रों की प्रतिष्ठापना हुई है, जो कोई पुरुष वहाँ स्नानकर सुगन्धित द्रव्य पुष्प तथा चन्दनादि सामग्रियों से पूजन करता है, उसके ऊपर कोटि रुद्र शंकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें तनिक सन्देह नहीं । उस पर्वत की पश्चिम दिशा के छोर पर स्वयं देव महेश्वर का पुण्य अधिष्ठान है, वहाँ पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर जितेन्द्रिय तथा पवित्र मन होकर जो स्नान कर पितरों का श्राद्धादि कार्य करता है और उसी स्थान पर तिल मिश्रित जल से पितरों का तर्पण करता है ।१६-१८½। हे पाण्डुपुत्र ! उस मनुष्य का सातवाँ कुल तक इस पुण्य कार्य से स्वर्गलोक में आनन्द लाभ करता है और वह स्वयं सिद्धों तथा चारणों से सेवित; अप्सराओं के समूहों

---

१ च. °देशस्यार्धे च प°। २ ङ. प्रीतातस्य भवेत्सर्वा रु° । ३ ङ. पिदृष्टेन कर्मणा । ति° । ४ ङ. तिष्ठति । ५ ङ. °र्णे दिव्यस्त्रीपरिवारिते ।

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालंकारभूषितः । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥२१
धनवान्दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते । पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ॥२२
कुलानि तारयेत्सप्त रुद्रलोकं स गच्छति । योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ॥२३
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता । षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोटचस्तथैव च[1] ॥२४
सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके । ब्रह्मचारी शुचिर्भुत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥२५
सर्वाहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते [2]रतः । एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥२६
तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणुष्वावहितो मम । शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे [3]मोदेत पाण्डव ॥२७
[*अप्सरोगणसंकीर्णे[4] सिद्धचारणसेविते । दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥२८
क्रीडते [5]देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते[6] । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥२९
गृहं तु लभते वै स नानारत्नविभूतिम् । स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैडूर्यभूषितैः[7] ॥३०

से आकीर्ण स्वर्ग लोक में साठ सहस्र वर्षों तक पूजित होता है । तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर दिव्य सुगन्धित द्रव्यों को अंगों में लगाकर दिव्य अलंकारों से अलंकृत हो सम्पन्न कुल में जन्म धारण करता है ।१९-२१। उस जन्म में भी वह धनवान् दानशील तथा धार्मिक प्रवृत्ति का होता है, और पुनः उक्त तीर्थ का स्मरण कर वहाँ की यात्रा के लिए इच्छुक होता है. सात कुलों को तारता है तथा रुद्र लोक को प्राप्त करता है । वह पवित्र तथा उत्तम नर्मदा नदी सौ योजन से अधिक ही सुनाई पड़ती है ।२२-२३। राजेन्द्र ! विस्तार में दो योजन की चौड़ी मानी गयी है । साठ करोड़ तथा साठ सहस्र तीर्थ उसके चारों ओर अमरकण्टक में अवस्थित हैं । जो कोई मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर पवित्र मन हो क्रोध को जीतकर इन्द्रियों को वश में रख, सभी प्रकार की हिंसाओं से निवृत्त हो सभी जीवों के कल्याण में निरत हो अपने प्राणों को वहाँ छोड़ता है, राजन् ! उस पुरुष के पुण्य का फल सावधान होकर सुनिये ।२४-२६½। पाण्डुपुत्र ! इस प्रकार की विधि से नियम पालन करनेवाला पुरुष एक लाख वर्ष तक अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण, सिद्धों तथा चारणों से सुशोभित स्वर्ग लोक में स्वर्गीय पुष्पों से सुशोभित तथा दिव्य सुगंधित द्रव्यों तथा चन्दनों का लेपकर आनन्द का अनुभव करता है । देवलोक में स्थित हो देवताओं से साथ विहार करता है, तदनन्तर स्वर्ग से पुण्य क्षीण हो जाने पर पृथ्वी पर पराक्रमी राजा होता है, एवं अनेक रत्नों विभूषित दिव्य हीरा वैदूर्य आदि मणियों स

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति ।

---

[1] ग. ङ. च । पर्वत । [2] क. °तः । परं सर्व° । ख. घ. °तः । परं शर्व° । [3] ग. घ. च. मोदति । [4] ङ. च. °कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः । दि° । [5] ङ. °लोकेषु दै° । [6] ङ. शोभते । [7] ङ. °तैः चित्रितं विविधैश्चित्रैर्दासी ।

आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् । मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां ह्रेषितेन च ॥३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा । राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥३२
तस्मिन्गृह उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते । जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥३३
एवं भोगो [१]भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके । अग्नौ विषजले वाऽपि तथा चैव ह्यनाशके ॥३४
अनिर्वर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा । पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ॥३५
[२]कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे । तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ॥
दिव्यभोगैः सुसंपन्नः क्रीडते कालमक्षयम्] ॥३६
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो[३] नैव जायते । यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ पर्वतेऽमरकण्टके ॥३७
तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे । ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥३८
तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा । पितरो दश वर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ॥३९
दक्षिणे नर्मदाकूलेति कपिलेति महानदी । सकलार्जुनसंछन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ॥४०
साऽपि पुण्या महाभागा त्रिषुलोकेषु विश्रुता । तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ॥४१

सुशोभित खम्भों पर बने हुए कारगरी से युक्त, दासी दासों के समूहों से समन्वित राजभवन को प्राप्त करता है । मतवाले हाथी के चिग्घाड़ तथा घोड़ो की हिनहिनाहट से उसका राज द्वार सर्वदा इन्द्र के द्वार की भाँति क्षुब्ध रहता है ।२७-३१½। राजाधिराज, श्री सम्पन्न, सभी स्त्रियों का प्रिय होकर वह ऐसे विविध क्रीडा के साधनों वाले भवन में निवास करता हुआ सभी रोगों से रहित हो सौ वर्षों तक जीवित रहता है । अमरकण्टक पर्वत पर जो प्राणी मरता है उसे इस प्रकार का आनन्द उपभोग करने को मिलता है । अग्नि में, बिष में, जल में, तथा अनशन में— सर्वत्र उसकी ऐसी स्वच्छन्द गति रहती है जैसी वायु की आकाश में रहती है । हे राजन् ! जो प्राणी इस अमरेश पर्वत से अपने को गिराता है, उसके घर तीन सहस्र कन्याएँ—इनमें एक एक के लिए अन्यान्य भी रहती हैं—उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रार्थनीं रहती हैं । और दिव्य योगों से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल तक उनके साथ क्रीड़ा करता है ।३२-३६। नृपश्रेष्ठ ! इस अमरकण्टक पर्वत पर जिस प्रकार की विशेषता से युक्त यह तीर्थ अवस्थित है ऐसा कोई अन्य तीर्थ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वी मण्डल में भी नही हो सकता । उतने ही प्रभावशाली तीर्थ पर्वत के पश्चिमी भाग में भी जानना चाहिए । वहाँ तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर नामक एक सरोवर है जहाँ पिण्डदान तथा सन्ध्योपासन करने से पितरगण दस बर्ष तक तृप्त रहते हैं ।३७-३९। दाहिने तट पर कपिला नामक एक नदी है, जो बिल्कुल उसी के समीप में श्वेत अर्जुन के वृक्षों से ढकी हुई बहती है । वह महाभाग्यशालिनी नदी भी तीनों लोकों में अमित पुण्यप्रदायिनी बिख्यात है । युधिष्ठिर ! उसमें भी सौ कोटि तीर्थों का निवास है ।४०-४१। राजन् ! पुराणों में ऐसा सुना

---

[१] घ. ङ. °वेत्तेषां ये मृतमर° ।
[२] च. कन्यास्त्रीण स° ।
[३] ङ. यामेकच्छत्रो नृपो भवेत् । या° ।

पुराणे श्रूयते राजन्सर्वं [1]कोटिगुणं भवेत् । तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ॥४२
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् । द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा ॥४३
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् । तत्र देवगणाः सर्वे सकिंनरमहोरगाः ॥४४
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । [2]सर्वे [3]समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ॥४५
तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः । नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः ॥४६
उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४७
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् । कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ॥४८
*ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥४९
अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥५०
नर्मदायास्तु राजेन्द्र पुराणे यन्मया श्रुतम् । यत्र यत्र[4] नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥५१
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते । सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ॥५२
समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत् । परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके ॥५३

गया है कि वहाँ पर किये गये सभी पुण्यकर्म कोटिगुण फलदायी होते हैं। उस नदी के किनारे कालक्रम से गिरनेवाले वृक्ष भी नर्मदा के जल-स्पर्श से परम गति प्राप्त करते हैं। दूसरी एक विशल्यकरणी नामक शुभ नदी है, जिसमें स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही पीड़ा रहित हो जाता है।४३-४३½। वहाँ किन्नरों एवं महासर्पों समेत देवगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण— सभी अमरकण्टक पर्वत पर सर्वदा एकत्र होते हैं तथा उन सबों के साथ परम तपस्वी ऋषिवृन्द नर्मदा तट पर उपस्थित होते हैं। राजन्! सभी पापों को नष्ट करनेवाली महाभाग्यशालिनी यह नदी है, इसमें यदि ब्रह्मचारी मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखकर स्नान करे तथा एक रात्रि का भी उपवास करे तो अपने सौ कुलों को तारता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ! ऐसी कपिला और विशल्या नामक दो नदियाँ सुनी गयी हैं।४४-४८। ईश्वर ने प्राचीन काल में लोक के कल्याण की भावना से इन दोनों का ऐसा माहात्म्य स्वयं बतलाया था। राजन्! इनमें स्नान कर मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। नराधिप! इस पवित्र तीर्थ में जो व्यक्ति अनशन करता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त एवं विशुद्ध आत्मा हो शिवलोक को प्राप्त करता है। राजेन्द्र! पुराण में जो माहात्म्य मैंने सुना है वह यह है कि यहाँ स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।४९-५१। जो इसके उत्तरी तट पर निवास करते हैं वे रुद्रलोक में निवास करते हैं। युधिष्ठिर! गंगा, सरस्वती तथा नर्मदा इन तीन नदियों में स्नान करने एवं दान का समान फल है, जैसा कि शंकर जी ने मुझे बतलाया। जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत पर अपने प्राणों को छोड़ता है वह शतकोटि वर्षों तक रुद्रलोक में

---

* एतदर्थस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके— अवतीर्णा महापुण्या मानुष्यणां हितार्थतः । इति ।

---

[1] ग. टिफलं भ° । [2] च. सद्यः समा° । [3] ग. सस गरास्त° । [4] घ. तत्र ।

वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते । नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलंकृतम्[1] ॥५४
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते । नर्मदा[2] च सदा पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ॥५५
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया । एवं रम्या च पुण्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन ॥५६
त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी । वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने ॥५७
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः[3] संशितव्रताः । श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसंगमे ॥५८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१००९६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा पुण्या[4] पुण्यतमा हिता[5] । मुनिभिस्तु [6]महाभागैर्विभक्ता[7] मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥१

पूजित होता है।५२-५३½। नर्मदा के फेनिल लहरों से सुशोभित जल अति पवित्र पुण्यकारी एवं शिर से नमस्कार करने योग्य है, उसके प्रभाव से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। वह नर्मदा सर्वदा अति पुण्य प्रदायिनी तथा ब्रह्महत्या के पाप को भी दूर करने वाली है। उसके पवित्र किनारे पर मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रि का उपवास कर ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से भी छुटकारा पा जाता है। हे पाण्डुनन्दन! सचमुच नर्मदा इतनी मनोहारिणी तथा पुण्यप्रदायिनी है।५४-५६। संक्षप में यह महानदी तीनों लोकों में सर्वाधिक पुण्यप्रदायिनी है। हे ऋषिवृन्द! महापुण्यप्रद वटेश्वर तीर्थ में तथा तपोवन गंगाद्वार में निवास का उत्तम माहात्म्य बताया गया है किन्तु नर्मदा और समुद्र के संगमस्थल पर उपर्युक्त सभी स्थानों की अपेक्षा दस गुना अधिक पुण्य मिलता है।५७-५८।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ छियासीवां अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

मार्कण्डेय ने कहा—पाण्डुपुत्र! श्रेष्ठ नर्मदा नदी पुण्य से भी अति पुण्यप्रदा है। मोक्ष की

---

[1] ङ °भ्रिशतसं कुलम् । प° । [2] ङ. °दा सर्वतः पुण्या सर्वपापाप° । [3] ग. स्युः शंसित° । [4] क. ख. ग. °ण्यात्पुण्य° । [5] ग. ङ. हि सा । मु° । च. त्रिषु । [6] ङ. भागैः सेविता मो° । [7] ग. घ. °क्ता धर्मका° ।

यज्ञोपवीतमात्राणि[1] प्रविभक्तानि पाण्डव । तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र[2] सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२
[3]जलेश्वरं परं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तस्योत्पत्तिं कथयतः शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ॥३
पुरा [4]सुरगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः + । स्तुवन्ति ते महात्मानं देवदेवं महेश्वरम्[5] ॥
स्तुवन्तस्ते तु संप्राप्ता यत्र देवो महेश्वरः ॥४
विज्ञापयन्ति देवेशं सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः । भयोद्विग्ना विरूपाक्षं परित्रायस्व नः प्रभो ॥५

भगवानुवाच

स्वागतं तु सुरश्रेष्ठाः किमर्थमिह चाऽऽगताः । किं दुःखं को नु संतापः कुतो वा भयमागतम् ॥६
कथयध्वं महाभागा एवमिच्छामि वेदितुम् । एवमुक्तास्तु रुद्रेणाकथयन्संशितव्रताः[6] ॥७

ऋषय ऊचुः

अतिवीर्यो महाघोरो दानवो[7] बलदर्पितः । बाणो नमेति विख्यातो यस्य वै त्रिपुरं पुरम् ॥८
गगने सततं दिव्यं भ्रमते तस्य तेजसा । ततो भीता विरूपाक्ष त्वामेव शरणं गताः ॥९

अभिलाषा करनेवाले महाभाग्यशाली मुनियों ने सर्वदा इसका सेवन किया है । इसकी धारा यज्ञोपवीत की भाँति प्रवाहित होती है, राजेन्द्र ! नर्मदा की धाराओं में स्नानकर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर नामक अति उत्तम तीर्थस्थान है । हे पाण्डुपुत्र ! मैं उसकी उत्पत्ति बतला रहा हूँ, सुनो । प्राचीनकाल में इन्द्र तथा मरुत्गण के समेत सभी देवताओं ने देवदेव महादेव की स्तुति की थी । स्तुति करते हुए वे वहाँ पहुँचे थे जहाँ महादेव जी का निवास स्थान था । वहाँ पहुँच कर इन्द्र तथा मरुद्गणों के साथ देवताओं ने बिरूपाक्ष महादेव से प्रार्थना की थी कि 'प्रभो ! हम लोग भय से अति चिंतित हैं, हम सब की रक्षा कीजिये' ।१-५।

भगवान् शंकर ने कहा—'श्रेष्ठ देवगण ! आप सब का हम स्वागत करते हैं । कहिए, किस प्रयोजन से आप लोग यहाँ पधारे हैं ? क्या दुःख है ? कौन सा संताप है ? किससे आप लोगों को भय हो रहा है ? महाभाग्यशालियो ! कहिये, आप लोग किस प्रयोजन से यहाँ आये हुए हैं ? उसे हम जानने को इच्छुक हैं, । शिव के ऐसा पूछने पर तपस्वी ऋषियों ने कहा—।६-७।

ऋषियों ने कहा—एक अतिबलशाली, महाघोर, बलवान् बाण नामक विख्यात असुर है, जिसका त्रिपुर नामक महान दुर्ग है । उसके अनुपम तेज से वह दिव्य त्रिपुर निरन्तर आकाश में घूमता रहता है, बिरूपाक्ष ! उसी से हम लोग अत्यन्त भयभीत होकर तुम्हारी शरण में आये हुए हैं । महान्

+ इतः परं सार्धश्लोको न विद्यते ख. घ. ङ. पुस्तकेषु ।

---

१ ङ. °णि सन्ति तीर्थानि । २ ङ. °न्द्र नरः पा° । ३ ग. वटेश्वरं । ङ. च. जालेश्वरं । ४ क. ख. ग. मुनिगणाः । ५ ग. च. °मू । स्तूयमानस्तु संप्राप्तस्तत्र । ६ च. °द्रेण प्रोचुस्ते सं° । ७ ङ. °वो वरद° ।

त्रायस्व महतो दुःखात्त्वं हि नः परमा गतिः । [1]एवं प्रसादं देवेश सर्वेषां[2] कर्तुमर्हसि ॥१०
येन देवाः सगन्धर्वाः सुखमेधन्ति शंकर । परां निर्वृतिमायान्ति तत्प्रभो कर्तुमर्हसि ॥११

भगवानुवाच

एतत्सर्वं करिष्यामि मा विषादं गमिष्यथ । अचिरेणैव कालेन कुर्यां युष्मत्सुखावहम्[3] ॥१२
आश्वास्य स[4] तु तान्सर्वान्नर्मदातटमाश्रितः । चिन्तयामास देवेशस्तद्वधं प्रति मानद ॥१३
अथ केन प्रकारेण हन्तव्यं त्रिपुरं मया । [5]एवं[6] संचिन्त्य भगवान्नारदं चास्मरत्तदा ॥
स्मरणादेव संप्राप्तो नारदः समुपस्थितः ॥१४

नारद उवाच

आज्ञापय महादेव किमर्थं च स्मृतो ह्यहम् । किं कार्यं तु मया देव कर्तव्यं कथयस्व मे ॥१५

श्रीभगवानुवाच

गच्छ नारद तत्रैव [7]यत्रैतत्त्रिपुरं [8]महत् । बाणस्य[9] दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गत्वा च तत्कुरु ॥१६

दुःख से हम लोगों को उबारिये तुम्हीं हम लोगों की परम गति हो, देवेश ! हम सभी के ऊपर ऐसी महती कृपा करो, जिससे गन्धर्वों समेत सब देवगण सुख प्राप्त कर सकें, प्रभो ! जिस प्रकार से हम लोग परम सन्तोष का लाभ करें वैसा करने की कृपा कीजिये ।८-११।

भगवान् ने कहा–'देवगण ! जैसा कि आप लोग कह रहे हैं, मैं वह सब करूँगा, विषाद मत करते जाइये । थोड़े ही काल में तुम सब को मैं सुखी बनाऊँगा' । मानियों को मान देनेवाले ! इस प्रकार उन सभी देवताओं को आश्वासन देकर देवदेव शंकर ने नर्मदा के तट पर अवस्थित हो उस बाण के संहार की चिन्ता की कि 'किस उपाय द्वारा मुझे इस त्रिपुर का विनाश करना चाहिये' । इस प्रकार विचार करते हुए भगवान् ने नारद का स्मरण किया । स्मरण करते ही नारद वहाँ उपस्थित हो गये ।१२-१४।

नारद ने कहा—देवदेव ! कहिये, किस लिए आपने मेरा स्मरण किया है । देव ! मेरे लिए क्या करना है, उसे बतलाइये ।१५।

श्रीभगवान् ने कहा–'नारद जी ! तुम वहाँ जाओ जहाँ यह महान् त्रिपुर अवस्थित है, दानवेन्द्र बाण के पास जाकर जैसा मैं कह रहा हूँ वैसा करो । उसकी स्त्रियाँ पति को ही देवता मानने

---

१ ङ. कुरु । २ ङ. °षां दिविवासिनाम् । ये° । ३ ङ °म् । °समाश्वस्य तु । ४ ग. °स सुरान्स° । ५ क. ख. घ. परं । ६ ङ. °वं स चिन्तयित्वाऽथ सस्मार नारदं मुनिम् । एवं रुद्रेण संध्यातो ना° । ७ क. ख. घ. यत्र त° । ८ ग. ङ. पुरम् । ९ ङ. °स्य बलिपुत्रस्य संकाशमासु तद्व्राज । दानवानां स्त्रियस्तत्र सर्वा भर्तृपरायणाः । स्वभ° ।

ता भतृदेवतास्तत्र स्त्रियश्चाप्सरसां समाः । तासां वै तेजसा विप्र भ्रमते त्रिपुरं दिवि ॥१७
तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र मतिमन्यां [1]प्रचोदय । *देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितविक्रमः ॥१८
स्त्रीणां हृदयनाशाय[2] प्रविष्टस्तत्पुरं प्रति । शोभते यत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम् ॥१९
शतयोजनविस्तीर्णं[3] ततो द्विगुणमायतम् । ततोऽपश्यद्धि तत्रैव बाणं तु बलदर्पितम् ॥२०
मणिकुण्डलकेयूरमुकुटेन विराजितम्[4] । हेमहारशतै रत्नैश्चन्द्रकान्तविभूषितम् ॥२१
रशना तस्य रत्नाढ्या बाहू कनकमण्डितौ । चन्द्रकान्तमहावज्रमणिविद्रुमभूषिते ॥२२
द्वादशार्कद्युतितिनिभे निविष्टं परमासने । उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥२३

बाण उवाच

देवर्षे[5] त्वं स्वयं प्राप्तो ह्यर्घ्यं पाद्यं निवेदये । सोऽभिवाद्य यथान्यायं[6] क्रियतां किं द्विजोत्तम ॥२४

वाली हैं, वे सुन्दरता में सभी अप्सराओं के समान हैं। विप्र उन्हीं के तेजोबल से यह त्रिपुर आकाश में घूमता है। विप्रेन्द्र ! अतः तुम वहाँ जाकर उनकी बुद्धि को विकृत बना दो'। महादेव की बातें सुन नारद जी तुरन्त ही त्रिपुर निवासिनी स्त्रियों के हृदयंगत भावों को नष्ट करने के लिए उस दिव्य त्रिपुर में प्रविष्ट हुए। वह त्रिपुर अनेक रत्नों से सुशोभित हो रहा था ।१६-१९। उसकी चौड़ाई सौ योजन तथा लम्बाई दो सौ योजन में थी। वहाँ पहुँचकर नारद ने बल से उद्धत बाण को देखा, जो उस समय मणिजटित कुण्डल, केयूर तथा मुकुट से शोभायमान था। रत्नजटित सुवर्ण के सैकड़ों हार तथा चन्द्रकान्त मणि से शोभित हो रहा था, उसकी करधनी रत्नों से सुशोभित थी, दोनों विशाल बाहु सुवर्ण से विभूषित थीं, उसमें चन्द्रकान्त, महावज्र मणि तथा मूँगे भी सुशोभित हो रहे थे। बारह सूर्य के समान उच्च एवं तेजस्वी आसन पर वह बैठा हुआ था। नारद को देखकर महाबलशाली दानवेन्द्र बाण उठ खड़ा हुआ ।२०-२३।

बाण ने कहा—'देवर्षे ! आपने स्वयमेव हमारी पुरी में पदार्पण किया है —अर्घ्य एवं पाद्य मैं निवेदित कर रहा हूँ'। इस प्रकार नारद का अभिवादन कर बाण ने कहा—'द्विजोत्तम ! मुझे क्या आज्ञा है, विप्र ! बहुत दिनों बाद यहां आये हुए हैं, विप्रेन्द्र ! आयें यहाँ बिराजमान हों', इस प्रकार आदरपूर्ण

---

*एतदर्धस्यायं पाठो ङ. पुस्तके—शंकरस्य वचः श्रुत्वा नारदो मनसो गतिरिति ।

---

[1] घ. प्रबोधय । ङ. प्रवर्तय । [2] च. °य चलितस्त° । [3] ङ. °णं तावद्द्विगु° । [4] क. ख. °म् । हारदोरसुवर्णैश्च चन्द्र° । ग. °म् । हारोज्ज्वलसुवर्णैश्चचन्द्र° । [5] ङ. °र्षे स्वागतं तेऽस्तु स्थीयतां महदासनम् । आ° । अर्घपाद्यं प्रयच्छामि अभिवादनपूर्वकम् । अभि° । [6] ङ. °यं त्रियतां द्विजसत्त° ।

चिरात्त्वमागतो विप्र[1] आस्यतां मुनिपुंगव । एवं संभाषयित्वा तु नारदमृषिसत्तमम् ॥
तस्य भार्या महादेवी ह्यनौपम्या तु नामतः ॥२५

अनौपम्योवाच

[2]भगवन्मानुषे लोके केन तुष्यति केशवः । व्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसाऽपि वा ॥२६

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे । ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥२७
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । [3]मोदते चाक्षयं कालं यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२८
आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च । [4]कदम्बचम्पकाशोकपुंनागविविधद्रुमान् ॥२९
अश्वत्थपिप्पलं चैव कदलीवटदाडिमान्[5] । पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या ॥३०
स्तनौ कपित्थसदृशावूरू च कदलीसमौ । अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी ॥३१
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता । मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका ॥३२
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी । [6]कुक्कुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठो न शस्यते ॥३३

शब्दों में नारद का सत्कार बाण ने किया । उसकी स्त्री का नाम अनौपम्या था, जो वास्तव में महादेवी थी ।२४-२५।

अनौपम्या ने कहा—भगवन् ! मर्त्यलोक में भगवान् केशव किस व्रत, नियम, तपस्या अथवा दान द्वारा लोगों पर सन्तुष्ट होते हैं ? कृपया यह मुझे बतलाइये ! ।२६।

नारद ने कहा—जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण को तिल समेत धेनु का दान देता है, उसने मानो समस्त सागरों तथा वनों समेत पृथ्वी का दान दे दिया है । करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले विमानों द्वारा अक्षय काल तक, जब तक कि सूर्य चन्द्रमा तथा तारागण अवस्थित रहते हैं, आनन्द का अनुभव करता है । आम, इमली, कैथा, बेर, कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुन्नाग एवं विविध प्रकार के वृक्षों को, पीपल, केला, बरगद, अनार, नीम, महुआ, आदि के वृक्षों को जो स्त्री उपवास कर दान देती है उसके दोनों स्तन कैथे के समान तथा दोनों ऊरु भाग कदली के समान शोभायुक्त हो जाते हैं ।२७-३०½। अश्वत्थ के देने पर वह वन्दनीय होती है । नीम के देने पर सुगन्धिपूर्ण रहती है, चम्पक के देने पर चम्पक के समान दिखाई पड़ती है, अशोक के देने पर शोक से रहित हो जाती है, महुवे के देने पर मिष्टभाषिणी होती है, बरगद के देने पर मनोहर शरीरवाली होती है । बेर तो स्त्रियों को

---

[1] क. ख. ग. °प्र स्थीयतामिदमासनम् । [2] ग. ङ. °वन्केन धर्मेण देवास्तुष्यन्ति नारद । व्र° । [3] क. ख. ग. घ. °ते सुचिरं कालमक्षयं कृतशासनम् । आ° । [4] ग. °क अनेके विविधद्रुमाः । आ । [5] ग. घ. °न् । मुचुकुन्दमशोकं । [6] घ. कुर्कुटी । ङ. कुर्कटी ।

कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा । [१]अनग्निपक्वमन्नं[२] च पक्वान्नानामभक्षणम् ॥३४
फलानां च परित्यागः संध्यामौनं तथैव च । प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥३५
तस्या भवति वै भर्ता [३]मुखप्रेक्षी सदाऽनघे । अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा ॥३६
[४]संक्रान्तिर्विषुवच्चैव [५]दिनच्छिद्रमुखं तथा । एतांस्तु दिवसान्दिव्यानुपवसन्ति याः स्त्रियः ॥
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः ॥३७
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः । उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः ॥३८

अनौपम्योवाच

[६]अस्मिन्कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा । भवदागमनं [७]जातं किंचित्पृच्छाम्यहं व्रतम् ॥३९
अस्ति विन्ध्यावलिर्नाम बलिपत्नी यशस्विनी । [८]श्वश्रूर्ममापि विप्रेन्द्र न तुष्यति कदाचन ॥४०
[९]श्वशुरोऽपि सर्वकालं दृष्ट्वा चापि न पश्यति । अस्ति कुम्भीनसी नाम ननान्दा पापकारिणी ॥४१

सर्वदा महासौभाग्य प्रदान करनेवाली है । कर्कटी (ककड़ी) और कुक्कुटी का दान स्त्रियों को प्रशंसनीय नहीं माना गया है, इसी प्रकार कदम्ब से मिश्रित कनकमञ्जरी द्वारा पूजा एवं बिना अग्नि का पका हुआ अन्न तथा पके अन्न समूहों का अभक्षण, फलों का परित्याग, सन्ध्या काल में मौन साधन भी अप्रशंसनीय है ।३१-३४½। किसी भी पूजा के पहले प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए । निष्पापे ! इस प्रकार पूजा करनेवाली स्त्री का पति सर्वदा उसका मुँह जोहनेवाला होता है । अष्टमी, पंचमी, चतुर्थी तथा द्वादशी तिथि, संक्रान्ति तथा उस दिन, जब कि दिन तथा रात्रि बराबर होते हैं, तथा उस दिन, जब कि सूर्य का मुख ... ... ?, को जो स्त्रियाँ व्रत रहती हैं, उन धर्मपरायणा स्त्रियों का निवास स्वर्ग में होता है—इसमें सन्देह नहीं । कलि के दोषों से तथा सभी प्रकार के पाप कर्मों से उन्मुक्त उन उपवास करने वाली स्त्रियों के पास यमराज कभी नहीं जाता ।३५-३८।

अनौपम्या ने कहा— महर्षे ! मेरे इस जन्म के तथा पूर्व जन्म के सत्कर्मों के पुण्य फल से आपका सुभागमन यहाँ मेरे पुर में हुआ है । कुछ अन्य व्रतों को भी आप से पूछ रही हूँ । विप्रेन्द्र ! यशस्विनी विन्ध्यावली नामक बलि की पत्नी, जो मेरी सास लगती है, मुझसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहतीं, मेरे ससुर भी उनके इस व्यवहार को सर्वदा देखते हुए भी यह मालूम पड़ता है कि कुछ नहीं देखते या कुछ नहीं जानते, पाप कर्म में निरत रहने वाली कुम्भीनसी नामक मेरी ननद भी मुझे देखकर बराबर अँगुली

---

१ ङ. °पक्वकशनताऽनाकुले तिलभ° । २ ग. °मशनं प° । ३ क. ख. मुखप्रेक्षः । ग. सुखसेव्यः । ४ ङ. °क्रान्तौ वैष्णवे चैव । च. °क्रान्तौ विषुवे चैव । ५ ङ. °मुखे तथा । पुण्यान्येतानि सर्वाणि उपविशन्ति । ६ क. ख. ग. ग. अस्मत्कृते । ७ क. ख. भूतं । ८ ङ. श्वश्रूः सा मयि वि° । ९ ग. ङ. °पित्र मां दृष्टा सर्व कालं न तुष्यति ।

दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभङ्गं सदाकालं करोति माम् । दिव्येन[1] तु पथा [2]याति मम सौख्यं कथं वद ॥४२
ऊषरे न प्ररोहन्ति बीजाङ्कुराः कथंचन । येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम ॥
तद्व्रतं ब्रूहि विप्रेन्द्र दासभावं व्रजामि ते ॥४३

नारद उवाच

यदेतत्ते मया पूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने । अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि ॥४४
शंकरस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च । सावित्री ब्रह्मणश्चैव वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥४५
एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे । श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव मुखबन्धो भविष्यति ॥४६
एवं श्रुत्वा तु सुश्रोणि यथेष्टं कर्तुमर्हसि । नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥४७
प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र दानं ग्राह्यं यथेप्सितम् । सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥४८
तव [3]दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्लभम् । प्रगृहाण द्विजश्रेष्ठ प्रीयेतां हरिशंकरौ ॥४९

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिस्तु यो [4]द्विजः । अहं तु सर्वसंपन्नो मद्भक्तिः क्रियतामिति ॥५०

तोड़ती रहती हैं । अतः तुम यह बताओ कि ऐसी विषम स्थिति में किस सत्पथ द्वारा मुझे सौख्य की प्राप्ति हो सकती है। मैं जानती हूँ कि ऊसर खेत में बीजों के अंकुर किसी प्रकार भी नहीं उग सकते किन्तु फिर भी विप्रेन्द्र ! जिस व्रत के पालन करने से ये मेरे वश में हों, उसे मुझे बतलाइये, मैं आपकी दासी हूँ ।३९-४३।

नारद ने कहा—'सुन्दर मुखवाली ! सुन्दरि ! ऐसे व्रत का विधान मैं अभी तुम्हें बता चुका हूँ, उसी के पालन करने के कारण पार्वती शंकर के शरीर में, लक्ष्मी विष्णु के शरीर में, सावित्री (सरस्वती) ब्रह्मा के शरीर में, अरुन्धती वसिष्ठ के शरीर में आदरपूर्वक विराजमान रहती हैं ।४४-४५। इसी व्रत के पालन करने से तुम्हारा पति तुम्हारे वश में रहेगा, सास तथा ससुर को भी तुम्हें कुछ कहने का साहस नहीं होगा ।४६। सुन्दर कटिवाली ! तुम इस व्रत के नियम को तो सुन चुकी हो, अतः उसी का पालन करो'। नारद की ऐसी बातें सुन रानी ने कहा— विप्रेन्द्र ! मेरे ऊपर कृपा करो और मेरे दिये हुए दान को ग्रहण करो । सुवर्ण, मणि, विविध प्रकार के रत्न, वस्त्र तथा आभूषणादि— इन सबों के अतरिक्त अन्य अतिदुर्लभ सामग्रियों को मैं तुम्हें दान करना चाहती हूँ, द्विजश्रेष्ठ ! उन सब को तुम ग्रहण करो, जिससे विष्णु तथा शंकर मुझ पर प्रसन्न हों ।४७-४९।

नारद ने कहा—'भद्रे ! इन वस्तुओं को तुम किसी अन्य ब्राह्मण को दो, जिसे कोई वृत्ति

---

[1] ङ. दग्धेन ।
[2] ग. घ. तु यथा यासि मम ।
[3] ङ. याहि ।
[4] ङ. °जः । वयं रणे रता नित्यं म° ।

एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासां तु [1]पतिव्रतात् । जगाम भरतश्रेष्ठ स्वकीयं स्थानकं पुनः ।।५१
ततो[2] ह्यहृष्टहृदया अन्यलोगतमानसा । *पतिव्रतात्वमुत्सृज्य तासां तेजो गतं ततः ।।
पुरे च्छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः ।।५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८७।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।१०१४८।।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय तन्मे कथयतः शृणु । एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः ।।१
नाम्ना माहेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तस्मिन्स्थाने महादेवोऽचिन्तयत्त्रिपुरक्षयम्[3] ।।२

अन्यत्र नहीं मिलती, मैं तो सभी सम्पत्तियों से भरा-पुरा हूँ, तुम केवल मुझ पर भक्ति-भाव रखो'। भरतकुलश्रेष्ठ ? इस प्रकार की बातें कर नारद ने उन सभी स्त्रियों के मन को पतिव्रत धर्म से विचलित कर हरण कर लिया और पुनः अपने स्थान को प्रस्थान किया । तदनन्तर त्रिपुर की उन स्त्रियों के मन विचलित हो जाने के कारण अति दुःखी हुए, तथा पतिव्रत धर्म के छोड़ देने से उनके तेज नष्ट हो गये इस प्रकार पराक्रमी बाण के उस त्रिपुर में यह एक छिद्र पैदा हो गया ।५०-५२।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८७।।

अध्याय १८८

मार्कण्डेय ने कहा— कुन्तीपुत्र ! जिस प्रश्न को तुम मुझसे पूछ रहे थे उसे मैं अब बतला रहा हूँ, सुनो। नारद के त्रिपुर से चले जाने के बाद भगवान् रुद्र नर्मदा के तट पर तीनों लोकों में

---

*एतदर्धे नास्ति क. ख. ग. घ. पुस्तकेषु ।

---

[1] क. ख. व्रताः । ज° । [2] ङ. °तो हृष्टमनाः सा तु अन्यत्र ग° । [3] क. ख. °पुरे वधाम् । गा° ।

गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् । स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ॥३
शल्ये चाग्निं प्रतिष्ठाप्य [1]मुखे वायुं [2]समर्पयन् । हयांश्च चतुरो वेदान्सर्वदेवमयं रथम् ॥४
अभीषवोऽश्विनौ देवावक्षो वज्रधरः स्वयम् । स तस्याऽऽज्ञां समादाय तोरणे धनदः स्थितः ॥५
यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः । चक्रे त्वमरकोट्यस्तु गन्धर्वा लोकविश्रुताः ॥६
[3]प्रजापतिरथ श्रेष्ठो ब्रह्मा चैव तु सारथिः । एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम् ॥७
सोऽतिष्ठत्स्थाणुभूतस्तु सहस्रपरिवत्सरान् । यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे स्थितानि वै ॥८
[4]त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि व्यभेदयत् । शरः प्रचोदितस्तेन रुद्रेण त्रिपुरं प्रति ॥९
भ्रष्टतेजाः स्त्रियो जाता बलं तासां व्यशीर्यत । उत्पाताश्च पुरे तस्मिन्प्रादुर्भूताः सहस्रशः ॥१०
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपा *भवंस्तदा । अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति हया काष्ठमयास्तदा ॥११
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति [5]चित्ररूपिणः । स्वप्ने पश्यन्ति चाऽऽत्मानं रक्ताम्बरविभूषितम् ॥१२

विख्यात माहेश्वर नामक स्थान पर आये और वहाँ पर उन्होंने त्रिपुर के विध्वंस करने की बात सोची। उन्होंने मन्दराचल को गाण्डीव, वासुकि सर्प को डोरी, स्वामिकार्तिकेय को तरकस, विष्णु को एक बाण बनाया और बाण के अग्रभागों में अग्नि को स्थापित कर उनकी पुच्छों में वायु का वेग स्थापित किया।१·३$\frac{१}{२}$। चारों वेदों को रथ के घोड़े बनाकर रथ को सर्वदेवमय निर्मित किया, उसमें दोनों अश्विनीकुमारों को बागडोर तथा धुरी में साक्षात् वज्रधारी इन्द्र को नियत किया। धनाध्यक्ष कुबेर शिव की आज्ञा से पताका के स्थान पर नियत हुए, यमराज दाहिने हाथ पर तथा दारुण काल को स्थित कर चक्कों में करोड़ों देवता तथा लोकविख्यात गन्धर्वों को नियत किया।४-६। तदनन्तर देवताओं में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा जी शिव के सारथी हुए। इस प्रकार सभी देवताओं के सम्पर्क से निर्मित किये गये उत्तम रथ की रचना कर शिव जी स्थाणु रूप हो सहस्रों वर्षों तक प्रतिक्षा करते रहे। जब तीनों योग आकाश में एक साथ उपस्थित हुए तब उन्होंने तीन पर्वों तथा तीन फालों वाले बाण द्वारा उस त्रिपुर का भेदन किया।७-८। इस प्रकार जब शिव ने त्रिपुर को लक्ष्यकर अपना उक्त बाण छोड़ा तब वहाँ की स्त्रियों का तेज नष्ट हो गया तथा उनका पराक्रम छिन्न भिन्न हो गया। उस समय त्रिपुर में विविध प्रकार के सहस्रों उत्पात होते दिखाई पड़ने लगे। उस समय शिव त्रिपुर के विनाशार्थ प्रत्यक्ष काल स्वरूप हो गये, काष्ठ के बने हुए घोड़े भीषण अट्टहास करने लगे, चित्रों में स्थित आकृतियाँ नेत्र खोलने तथा मूंदने लगीं, लोग अपने को स्वप्न में लाल वस्त्रों से विभूषित देखने

---

*अत्र संधिरार्षः ।

---

[1] ङ. पुङ्खे । [2] ग. ङ. °मर्प्यं च । ह° । [3] क. ख. °पतिरथश्रेष्ठं ब्र° । [4] क. ख. °पर्वाणि त्रि° । ग. °पदेन त्रिशक्तेन । [5] ङ. °त्रकर्मगाः । स्व° ।

स्वप्ने तु सर्वे पश्यन्ति विपरीतानि यानि तु । एतान्पश्यन्ति उत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः ॥१३
तेषां बलं च बुद्धिश्च हरकोपेन नाशिते[1] । ततः सांवर्तको वायुर्युगान्तप्रतिमो महान् ॥१४
समीरितोऽनलस्तेन [2]उत्तमाङ्गेन धावति । ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च ॥१५
सर्वतो व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम् । भग्नोद्यानानि सर्वाणि [3]क्षिप्रं [4]तत्प्रत्यभज्यत ॥१६
तेनैव पीडितं [5]सर्वं ज्वलितं त्रिशिखैः शरैः । द्रुमाश्चाऽऽरामखण्डानि गृहाणि विविधानि च ॥१७
दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः । [6]मनःशिलापुञ्जनिभो दिशो दश विभागशः ॥१८
शिखाशतैरनेकैस्तु प्रजज्वाल हुताशनः । सर्वं किंशुकवर्णाभं ज्वलितं दृश्यते पुरम् ॥१९
गृहाद्गृहान्तरं नैव गन्तुं धूमेन शक्यते । [7]हरकोपानलैर्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम् ॥२०
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम् । प्रासादशिखराग्राणि व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥२१
[8]नानामणिविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा । गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना ॥२२

लगे ।९-१२। सभी त्रिपुर निवासी स्वप्न में अपनी विपरीत अमांगलिक दशा देखने लगे । इस प्रकार वहाँ के लोग विविध प्रकार के होनेवाले उपद्रवों को देखने लगे । शिव के क्रोध से सभी की बुद्धि तथा शक्ति क्षीण हो गई । उस समय सांवर्तक नामक वायु, जिस प्रकार प्रलयकाल में वेग पूर्वक बहती है, बहने लगी । उस भीषण एवं उग्र वायु से प्रज्वलित अग्नि की लपटें भी त्रिपुर में उठने लगीं, जिससे वृक्षों के समूह जलने लगे, पर्वतों की चोटियाँ ढहकर गिरने लगीं । सभी ओर से घोर हाहाकार मच गया, चराचर जगत् व्याकुल हो गया । सभी उद्यान एवं वाटिकाएं नष्ट हो गईं ।१३-१६। उस प्रकार तीन शिरों वाले उस भयानक रुद्र के बाण द्वारा सभी त्रिपुर जलने लगा, विविध प्रकार के वृक्षवाले बगीचे, विचित्र बने हुए राजप्रासाद सभी ओर से लगी हुई उस प्रचंड अग्नि की भीषण ज्वाला में समाविष्ट हो गये । भीषण अग्नि की लपटों में दसों दिशाएँ मैनशिल के पुञ्ज की भाँति प्रदीप्त दिखाई पड़ने लगीं । जलता हुआ त्रिपुर चारों ओर से फूले हुए पलाश की भाँति दिखाई पड़ने लगा । धुएँ की अधिकता से लोग एक घर से दूसरे घरमें भी नहीं जा सके ।१६-१९½। शिव की कोपाग्नि से जलता हुआ अनेक भीषण चीत्कारों तथा दुःखपूर्ण ध्वनियों से आकुल वह त्रिपुर सभी दिशाओं में जलता हुआ दिखाई पड़ने लगा । राजप्रसादों की चोटियाँ सहस्रों भागों में छिन्न भिन्न होकर नीचे गिरने लगीं । अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित विचित्र ढंग के बने हुए विमान तथा मनोहर भवन उद्दीप्त अग्नि की ज्वालाओं में भस्म होने लगे ।२०-२२। लोग दौड़कर वृक्षों की डालियों तथा भवनों के

---

१ ङ. घ. °शितम् । त° । २ ग. °ङ्गेषु धा° । च. °ङ्गेषु बाधते । ज्व° । ३ ग क्षिप्तं । ४ ङ. च. तत्र प्रभञ्जनः । ते° । ५ ङ. °र्वं ज्वालामालासमाकुलम् । द्रु° । ६ क ख. °लानां पुञ्जानि दि° । ७ ङ. °पाग्निना दग्धं संतापाद्भुवनश्य च । प्र° । ८ ङ. °णि गृहानादलान्यनेकशः । नानारत्नविमाननि द° ।

धावन्ति द्रुमखण्डेषु वलभीषु तथा जनाः । देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्तः प्रधाविताः ॥२३
क्रन्दन्ति [1]चानलप्लुष्टा रुदन्ति विविधैः स्वरैः । +गिरिकूटनिभास्तत्र [2]दृश्यन्तेऽङ्गाररराशयः ॥२४
गजाश्च गिरिकूटाभा दह्यमाना यतस्ततः । स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व नः प्रभो ॥२५
अन्योन्यं च [3]परिष्वज्य हुताशनप्रदीपिताः । स्नेहात्प्रदह्यमानाश्च तथैव विलयं गताः ॥२६
दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७
हंसकारण्डवाकीर्णा नलिन्यः सहपङ्कजाः । दृश्यन्तेऽनलदग्धानि पुरोद्यनानि दीर्घिकाः[4] ॥२८
अम्लानपङ्कजच्छन्ना विस्तीर्णा योजनायताः । गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादा रत्नभूषिताः ॥२९
पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव[5] । वरस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु ॥३०
निर्दयो व्यदहद्वह्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः । सहस्रशः प्रबुद्धाश्च सुप्ताश्च बहवो जनाः ॥३१
पुत्रमालिङ्गय ते गाढं दह्यन्ते त्रिपुराग्निना । *निदाघोऽभून्महावह्नेरन्तकाले यथा तथा ॥३२

बारजों पर छिपने लगे। सभी ओर से दौड़कर देवालयों में शरण लेने लगे, अग्नि की प्रचण्ड लपटों से जलते हुए वे चिल्लाने तथा अति आर्त स्वर में रुदन करने लगे। इस प्रकार त्रिपुर में अंगारों की राशि ऊँचे पहाड़ कीं चोटियों की भाँति दिखाई पड़ने लगी ।२३-२४। जिधर तिधर पर्वतों के शिखरों के समान विशाल आकृति वाले हाथी जलते हुए दिखाई पड़ने लगे। तब त्रिपुरवासी लोग देवदेव की स्तुति करने लगे कि 'हे प्रभो हम लोगों की रक्षा कीजिए' । अग्नि की लपटों में लीन एक दूसरे के शरीर से स्नेह के कारण लिपटकर वहाँ सैकड़ों क्या सहस्रों दानवगण मृत्यु को प्राप्त हुए ।२५-२७। हंस एवं कारण्डवों से शोभित, कमलों से युक्त त्रिपुर की पुष्करिणी तथा बावलियाँ भीषण अग्नि से जलकर नष्ट हो गईं ।२८। खिले हुए कमलों के सुशोभित योजनों तक फैली हुई उन बावलियों का कहीं पता भी नहीं रह गया। विविध रत्नों से अलंकृत पर्वत के शिखरों की भाँति दिखाई पड़नेवाले राजप्रासाद अग्नि से भस्म होकर जल रहित सरोवर की भाँति दिखाई पड़ने लगे। शिव के क्रोध से प्रेरित अग्नि की लपटें स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, गाय, पक्षी, अश्व आदि के झुण्डों को निर्ममतापूर्वक जलाने लगी सैकड़ों व्यक्ति जागते हुए भी जल गये, कितने सोये हुए थे वैसे ही भस्म हो गये, कितनी स्त्रियाँ पुत्रों को समेट कर उस त्रिपुर की अग्नि में भस्मसात् हो गई ।२९-३१½। उस विकराल अग्नि का ऐसा प्रचण्ड निदाघ काल हुआ जैसा अन्तकाल (प्रलयकाल) में हुआ करता है। कितने लोग जो भवनों के भीतर छिपे हुए थे, वहीं जलकर ढेर हो गये, कितने स्त्रियों के अंक में शयन कर रहे थे, वहीं रह गये। कितने अपने पिता तथा माता की गोद में छिपे हुए जल कर चल बसे

+ इतआरभ्य तथैव बिलयं गता इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते क. ख. घ. पुस्तकेषु ।

* इतःप्रभृति त्रिपुराग्निना इत्यन्तग्रन्थो नास्ति क. ख. ग. पुस्तकेषु ।

---

[1] ङ. °नलं दृष्ट्वा रु° । [2] ग. दह्यन्ते । [3] ङ. °रित्यज्य । [4] °काः । सुवर्णपङ्कजैश्छ° । [5] ङ. च. °व । सहस्त्री° ।

केचिद्गुप्ताः प्रदग्धास्तु भार्योत्सङ्गगतास्तथा । पित्रा मात्रा च सुश्लिष्टा दग्धास्ते त्रिपुराग्निना ॥
अथ तस्मिन्पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ॥३३
अग्निज्वालाहतास्तत्र ह्यपतन्धरणीतले । काचिच्छ्यामा विशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता ॥३४
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु पतिता धरणीतले । काचित्कनकवर्णाभा इन्द्रनीलविभूषिता ॥३५
भर्तारं पतितं दृष्ट्वा पतिता तस्य चोपरि । काचिदादित्यसंकाशा प्रसुप्ता च गृहे स्थिता ॥३६
अग्निज्वालाहता सा तु पतिता गतचेतना । उत्थितो दानवस्तत्र खड्गहस्तो महाबलः ॥३७
वैश्वानरहतः सोऽपि पतितो धरणीतले । मेघवर्णाऽपरा नारी हारकेयूरभूषिता ॥३८
श्वेतवस्त्रपरीधाना बालं स्तन्यं न्यधापयत् । दह्यन्तं बालकं दृष्ट्वा [1]रुदती मेघशब्दवत् ॥३९
एवं स तु दहन्नग्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः । काचिच्चन्द्रप्रभा सौम्जा वज्रवैडूर्यभूषिता ॥४०
सुतमालिङ्ग्य+वेपन्ती दग्धा पतति भूतले । काचित्कुन्देन्दुवर्णाभा[2] क्रीडन्ती स्व गृहे स्थिता ॥४१
गृहे प्रज्वलिते सा तु प्रतिबुद्धा शिखार्दिता । पश्यन्ती ज्वलितं सर्वं हा सुतो मे कथं गतः ॥४२

इस प्रकार भीषण अग्नि की ज्वाला में निमग्न उस त्रिपुर में अप्सराओं के समान सुन्दर स्त्रियाँ अग्नि की लपटों से आहत होकर पृथ्वी पर गिरने लगीं, कोई सुन्दरी, जिसके नेत्र बड़े बड़े थे तथा मोतियों की लड़ियां पहिने हुए थीं, धूएँ से व्याकुल नेत्र हो पृथ्वी तल पर गिर पड़ीं ।३२-३४½।कोई सुवर्ण के समान गौरांगिनी, जो इन्द्र नीलमणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी अपने प्रिय पति को जला हुआ देख उसी के ऊपर स्वयमेव गिर पड़ी । सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान कोई सुन्दरी अपने भवन में शयन कर रही थी, उसी समय अग्नि की ज्वाला से भस्म होकर बेहोश हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसी समय उसका पति दानव हाथों में तलवार लेकर उठा, किन्तु अग्नि की भीषण लपटों से जलकर वह भी गिरकर जमीन पर ढेर हो गया ।३५-३७½। मेघ के समान श्यामल वर्णवाली कोई सुन्दरी जो उत्तम हार तथा केयूर से सुशोभित हो रही थी, श्वेत वस्त्र पहिने थी, अपने दुधमुँहे बच्चे को गोद में लिए हुए खड़ी-खड़ी अपने बालक को जलते देख मेघ की गर्जना के समान रोती हुई स्वयं भस्म हो गयी ।इस प्रकार शिव के क्रोध से प्रेरित वह अग्नि त्रिपुर में वह भीषण काण्ड मचाने लगी । कोई चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दरी जो हीरों से जटित आभूषण धारण किये हुए थी, अपने पुत्र को गोद में ले काँपती हुई जलकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ।३८-४०½। कोई कुन्द के पुष्प तथा चन्द्रमा के समान गौरवर्णवाली सुन्दरी अपने भवन में क्रीड़ा कर रही थी, घर को अग्नि की लपटो में जलता हुआ देखकर वह आगाह हुई और चिल्लाने लगी कि 'हाय सब कुछ जला जा रहा है, मेरा बेटा कहाँ गया'— ऐसा कहते हुए उसने समीप में ही अपने पुत्र को जला हुआ देखा और स्वयं पृथ्वी

+अयमार्षः प्रयोगः ।

---

[1] क. ख. ग. रुदेत । [2] क. ख. । भा या शयाना गृ° ।

सुतं संदग्धमालिङ्ग्य पतिता धरणीतले । आदित्योदयवर्णाभा लक्ष्मीवदनशोभना ॥४३
त्वरिता दह्यमाना सा पतिता धरणीतले । काचित्सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता ॥४४
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु प्रसुप्ता धरणीतले । अन्या गृहीतहस्ता तु सखि दह्यति बालिका ॥४५
अनेकदिश्यरत्नाढ्या दृष्ट्वा दहनमोहिता । शिरसि ह्यञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम्[1] ॥४६
भगवन्यदि वैरं ते पुरुषेष्वपकारिषु । स्त्रियः [2]किमपराध्यन्ति[3] गृहपञ्जरकोकिलाः ॥४७
पाप निर्दय[4] निर्लज्ज कस्ते कोपः स्त्रियः प्रति । न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्यवर्जित ॥४८
अनेन ह्युपसर्गेण तूपालम्भं शिखिन्यदात् । किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याः शत्रुयोषितः ॥४९
किं तु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनोत्सादनं प्रति । न कारुण्यं[5] भयं वाऽपि दाक्षिण्यं न स्त्रियः प्रति ॥५०
दयां कुर्वन्ति म्लेच्छापि दहन्तीं वीक्ष्य योषितम् । म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवारो ह्यचेतनः ॥
एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति । आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं ते निपातने ॥५२

पर गिरकर भस्म हो गयी ।४१-४२½। उदयकालीन सूर्य की भाँति वर्णवाली लक्ष्मी के समान सुन्दर मुखवाली कोई सुन्दरी जलती हुई शीघ्रता से बचाव के लिए दौड़ने लगी, किन्तु पृथ्वी पर गिरकर भस्म हो गई। कोई सुवर्ण के समान गौर वर्णवाली सुन्दरी, जो नीलमणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी, प्रचण्ड धूएं से व्याकुल हो पृथ्वी पर लेट गई और वहीं भस्म हो गई ।४३-४४½। उसका हाथ पकड़े हुए कोई दूसरी सुन्दरी थी, वह कह रही थी, 'सखि ! बेटी जली जा रही है' सभी दिशाओं में उत्पन्न होनेवाले रत्नों से अलंकृत वह सुन्दरी अग्नि की भयावनी लपटों से भयभीत हो शिर पर अंजलियों को बांध कर अग्नि से निवेदन करने लगी—'भगवन् ! यदि तुम्हारा वैर अपकार करनेवाले त्रिपुर के पुरुषों से है तो घर रूप पिंजरे में रहनेवाली कोकिल रूप विवश बालाओं ने तुम्हारा क्या अपराध किया है ।४५-४७। पाप ! निर्लज्ज ! निर्दयी ! स्त्रियों के साथ तुम्हारा कब का वैर है, न तो तुम्हें कुछ विवेक है, न लज्जा है, न तुममें सत्य है, न पराक्रम बचा है ।इस प्रकार की आक्षेपपूर्ण बातों से वे लपटों में अग्नि की भर्त्सना करती हुई स्वयं भस्म होने लगी। 'क्या तुमने यह नहीं सुना है कि शत्रु की स्त्रियों पर प्रहार नहीं करना चाहिए, किन्तु इस क्रूर दहन कर्म एवं स्त्रियों के प्राण हरण में वे गुण रूप में तुझमें दिखाई पड़ रहे हैं, न तो तुझमें दया है, न किसी का भय है, न स्त्रियों के प्रति समुचित व्यवहार करने का विवेक ही है ।४८-५०। म्लेच्छ लोग भी स्त्रियों को जलती हुई देख दयाभाव प्रदर्शित करते हैं, किन्तु तू तो म्लेच्छों से भी कष्टदायी हो, दुर्दमनीय हो और जड़ हो ! इस प्रकार निर्दयतापूर्वक जलाने तथा मारने का नीचतापूर्ण काम तुझे नहीं शोभा देता । दुराचारी ! इन

---

१ ङ च.°म् । यदि वमिच्छसे वैरं पु° । २ ग. °राध्यास्ते गृ° । ३ क. °ध्यन्ते गृ° । ४ ग. °य निःशङ्क क° । ५ क. ख. ग. °ण्यं दया वा° ।

दुष्ट निर्घृण निर्लज्ज हुताशिन्मन्दभाग्यक । [१]निराशत्वं दुरावास बलाद्दहसि निर्दय ॥५३
[२]एवं [३]विलपमानास्ता जल्पन्त्यश्च बह्न्यपि । अन्याः क्रोशन्ति संक्रुद्धा बालशोकेन मोहिताः ॥५४
दहते निर्दयो वह्निः संक्रुद्धः पूर्वशत्रुवत् । पुष्करिण्यां जलं दग्धं कूपेष्वपि तथैव च ॥५५
अस्मान्संदह्य [४]म्लेच्छ त्वं कां गतिं प्रापयिष्यसि । एवं [५]प्रलपितं तासां श्रुत्वा देवो विभावसुः ॥
मूर्तिमान्सहसोत्थाय वह्निर्वचनमब्रवीत् ॥५६

अग्निरुवाच

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम् । अहमादेश कर्ता वै नाहं [६]कर्ताऽस्म्यनुग्रहम् ॥५७
रुद्रक्रोधसमाविष्टो [७]विचरामि यथेच्छया । ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम् ॥५८
सिंहासनस्थः प्रोवाच ह्यहं देवैर्विनाशितः । अल्पसत्त्वैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितम् ॥५९
अपरीक्ष्य त्वहं दग्धः शंकरेण महात्मना । नान्यः शक्तस्तु मां हन्तुं वर्जयित्वा त्रिलोचनम् ॥६०
उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् । निर्गतः स पुरद्वारात्परित्यज्य सुहृत्सुतान् ॥६१

स्त्रियों कों जलाने से तुझे भला क्या मिलेगा ? दुष्ट ! निर्दयी ! निर्लज्ज ! दुरात्मा ! अभागे ! क्रूरात्मा ! पामर ! तू क्यों बलपूर्वक हम सबों को जला रहा है ?' ।५१-५३। इस प्रकार भर्त्सना करती हुई त्रिपुर की सुन्दरियाँ अनेक उपालम्भपूर्ण बातें करती हुई जलने लगीं। उनमें से कुछेक तो अपने बालकों के जल जाने के शोक से मूर्छित थीं, कुछ चिल्ला चिल्लाकर कह रही थीं कि 'अरे पूर्वशत्रु की भांति क्रुद्ध होकर यह दुष्ट शत्रु अग्नि हम सबों को जला रहा है, पुष्करिणियों का जल भस्म हो गया, कूपों के जल भी जल गये। हे म्लेच्छ ! इस प्रकार हम लोगों को जलाकर तू भला कौन सी गति प्राप्त करेगा' ? इस प्रकार त्रिपुर की सुन्दरियों की भर्त्सनापूर्ण बातें सुन अग्निदेव मूर्तिमान् हो प्रत्यक्ष हुए तथा शीघ्रतापूर्वक आसन से उठकर बोले ।५४-५६।

अग्नि ने कहा— 'अपने वश में होकर मैं आप लोगों का विनाश नहीं कर रहा हूं, मैं तो आज्ञापालन करनेवाला हूं, भला मैं अनुग्रह किस प्रकार कर सकता हूँ ? रुद्र के क्रोध के कारण मैं आप लोगों के इस त्रिपुर में इच्छापूर्वक विचरण कर रहा हूँ' । अग्नि की ऐसी बातें सुन तथा त्रिपुर को इस प्रकार जलते देख महातेजस्वी सिंहासन पर बैठे हुए बाणासुर ने कहा — अहो देवताओं ने हमारा विनाश कर दिया, उन अल्प बलशाली तथा दुराचारियों ने शंकर से प्रार्थना कर ऐसा कार्य सम्पन्न कराया है ।५७-५९। महात्मा शंकर ने हम लोगों की बिना परीक्षा किये ही त्रिपुर का विध्वंस किया है। त्रिलोचन शंकर को छोड़कर कोई अन्य देवता मुझे मारने की शक्ति नहीं रखता' ।६०। ऐसा कहकर शिर पर त्रिभुवन के स्वामी शंकर के लिंग को धारण कर अमूल्य रत्नों, अनेक प्रकार की सुन्दरी स्त्रियों, मित्रों तथा परिवार के लोगों को उसी

---

१ ङ. °शस्त्वं दु° । २ ग. ङ. °वं लालप्यमा° । ३ ख° °लप्यमा° । ४ ङ. दुष्ट । ५ क. ख. ग. °लपता तासां व° । ६ ग. र्ता स्वसंग्र° । ७ क. ख. विविशामि ।

रत्नानि[1] यान्यनर्घाणि स्त्रियो नानाविधास्तथा । गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं गच्छन्गगनमण्डलम् ॥६२
स्तुवंश्च [2]देवदेवेशं त्रिलोकाधिपतिं शिवम् । त्यक्ता पुरी मया देव यदि वध्योऽस्मि शंकर ॥६३
त्वत्प्रसादान्महादेव मा मे लिङ्गं[3] विनश्यतु । अर्चितं हि मया देव भक्त्या परमया सदा ॥६४
त्वत्कोपाद्यदि वध्योऽहं तदिदं मा विनश्यतु । श्लाघ्यमेतन्महादेव त्वत्कोपाद्दहनं मम ॥६५
प्रतिजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम् । तोटकच्छन्दसा देव स्तौमि त्वां परमेश्वर ॥६६
शिव शंकर शर्व हराय नमो भव भीम[4] महेश्वर शर्व[5] नमः ।
कुसुमायुधदेहविनाशकर त्रिपुरान्तक अन्धकशूलधर ॥६७
प्रमदाप्रिय कान्त[6] विरक्त नमः[7] ससुरासुरसिद्धगणैर्नमित ।
*हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखैरतिह्रस्वसुदीर्घविशालमुखैः ॥६८

विपत्ति में छोड़ पुर द्वार से बाहर निकला । उस समय शिव लिंग को शिर पर रख आकाश मार्ग से देवाधिदेव त्रिलोक के अधीश्वर शिव की स्तुति करते हुए वह पुर से बाहर हुआ और बोला— 'हे देव शंकर ! यदि सचमुच मैं मारने योग्य हूँ तो अब मैं इस पुरी को छोड़ रहा हूँ । देव ! तुम्हारी कृपा से इस लिंग का विनाश न हो ।६१-६३½। देव ! मैने सर्वदा परम भक्ति से आपकी आराधना की है, यदि तुम्हारे क्रोध से मैं सचमुच विनाश का पात्र हूँ तो कोई हर्ज नहीं है । मेरे इस आराध्य लिंग का विनाश न हो— मैं यही चाहता हूँ । महादेव ! तुम्हारे कोप के कारण यह मेरा जलना भी प्रशंसनीय है, किन्तु यह मैं चाहता हूँ कि अपने प्रत्येक जन्मों में मैं तुम्हारे चरणों में लगा रहूँ । परमेश्वर ! इन तोटक[1] छन्दों से मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ ।६४-६६। शिव ! शंकर ! शर्व ! हर ! भव ! भीम ! महेश्वर ! सर्व ! कुसुमायुध के शरीर को विनष्ट करने वाले त्रिपुर के शत्रु ! अन्धक के विनाशक ! त्रिशूलधारी ! स्त्रियों के प्रिय ! मनोहर वेशवाले ! विरक्त सुरासुर तथा सिद्धों के समूहों द्वारा नमस्कृत ! तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ।६७½। अश्व, वानर, सिंह तथा हाथी के समान बहुत छोटे तथा बहुत बड़े अत्यन्त तेजोमय दीर्घ तथा विशाल मुखवाले ! तुम्हारे चरणों को प्राप्त करने में असमर्थ असुरों तथा सैकड़ों बाहुओं से युक्त मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । हे चंचल चन्द्रमा की कला से सुशोभित देव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है । अब पुत्र, स्त्री तथा अश्वादि की मेरे मन में इच्छा

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो विद्यते क. ख. पुस्तकयोः—हयवानरसिद्धगजेन्द्रमुखादति भास्वददीर्घविशालमुख, इति ।

---

१ ङ. °नि सुविचित्राणि । २ ग. ङ. च. °शं त्रैलोक्याधि° । ३ ग. °ङ्गं °शिवस्य तु । ४ ङ. भर्ग । ५ क. ख. शर्व । च. देव । ६ ङ. कामविभक्तरत असुरा° । ७ ग. °मः सुरसिद्धगसिद्ध-गणैर्नमितः । वृषवाहनसिं° ।

१. प्रार्थना तोटक छन्दों में की गई है ।

उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैः + प्रथितोऽस्मि च बाहुशतैर्बहुभिः ।
प्रणतोस्मिभवं भवभक्तिरतश्चलचन्द्रकलाङ्कुर[1] देव नमः ॥६९
[2]न च [3]पुत्रकलत्रहयादि धनं मम तु त्वदनुस्मरणं शरणम् ।
व्यथितोऽस्मि[4] शरीरशतैर्बहुभिर्गमिता च महानरकस्य गतिः ॥७०
न [5]निवर्तति जन्म न पापमतिः शुचिकर्म निबद्धमपि त्यजति ।
अनुकम्पति विभ्रमति त्रसति मम[6] चैव कुकर्म निवारयति ॥७१
यः पठेत्तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः । बाणस्येव यथा रुद्रस्तस्यापि वरदो भवेत् ॥७२
इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः । प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं वचनमब्रवीत् ॥७३

महेश्वर उवाच

न भेतव्यं त्वया वत्स सौवर्णे तिष्ठ दानव । [7]पुत्रपौत्रसुहृद्बन्धुभार्याभृत्यजनैः सह ॥७४
अद्यप्रभृति बाण त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि । भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव ॥७५
अक्षयश्चाव्ययो लोके विचरस्वाकुतोभयः । ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तदा ॥७६

नहीं है, मेरी तो एकमात्र गति तुम्हारी शरण ही है, मैं इस सैकड़ों वीरों जितने बलवान् शरीर को प्राप्तकर के भी व्यथित हूँ, इसके द्वारा तो मैं महा नरक में पड़ूँगा, न तो जन्म लेने से छुटकारा मिलेगा न पाप कर्म से बुद्धि ही निवृत्त होगी, चंचल मन निश्चय किये हुए भी पुण्य कर्मों को छोड़ देता है, बराबर डाँवाडोल रहता है, भ्रमता रहता है, डरता है, मेरे कुकर्म मुझे सत्कर्मों से निवारण करते हैं।६८-७?। जो मनुष्य इस दिव्य तोटक का पाठ मन को वश में रख तथा पवित्र मन से पाठ करता है उसको भी बाण के समान शंकर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। इस महादिव्य स्तोत्र को सुनकर देवदेव महादेव जी अति प्रसन्न हुए तथा स्वयम् बाण से बोले।७२-७३।

महेश्वर ने कहा—'वत्स ! तुम मत डरो, अपने पुत्र, पौत्र, सुहृत्, परिवार वर्ग, स्त्री तथा नौकरों के साथ सुवर्ण निर्मित त्रिपुर में निवास करो । बाण ! आज से तुम्हारा संहार देवता लोग भी नहीं कर सकते । पाण्डव ! इस प्रकार देवाधिदेव ने उसे पुनः वरदान दिया कि तुम नाशरहित हो, सभी लोकों में इच्छापूर्वक विचरण करो, कहीं भी तुम्हें भय का लेश नहीं है'। बाण से ऐसा कहकर शिव ने अग्नि को त्रिपुर दाह से रोक दिया।७४-७६। इस प्रकार शंकर बाण के तीसरे पुर की रक्षा की। तब से रुद्र के

+ इत आरम्भ शरणमित्यन्तग्रन्थो ग. घ. पुस्तकयोर्न विद्यते ।

---

[1] क. ख. °लाकुलदे°। [2] न हि पु°। [3] ङ. च. °त्र न चापिध° । [4] क. ख. °स्मि तु बहुश° । [5] ङ. °र्तयति तन्मम पा°। [6] ङ. °मु बुद्धिरियं विनि°। [7] ङ. °त्र स्वबन्धूनां भा° ।

तृतीयं रक्षितं तस्य[1] शंकरेण महात्मना । [2]भ्रमत्तु गगने दिव्यं रुद्रतेजः प्रभावतः ॥७७
एवं तु त्रिपुरं दग्धं शंकरेण महात्मना । ज्वालामालाप्रदीप्तं[3] तत्पतितं धरणीतले ॥७८
एकं निपतितं तत्र श्रीशैले त्रिपुरान्तके । द्वितीयं पतितं तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके ॥७९
दग्धेषु तेषु राजेन्द्र रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । ज्वलत्तदपतत्तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः ॥८०
[4]ऊर्ध्वेन प्रस्थितास्तस्य दिव्यज्वाला दिवं गताः । [5]हाहाकारस्तदा जातो देवासुरकृतो महान् ॥८१
शरमस्तम्भयद्रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे । एवं वृत्तं तदा तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके* ॥८२
चतुर्दशाख्यं भुवनं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन । वर्षकोटिसहस्रं तु त्रिंशत्कोटयस्तथाऽपराः ॥८३
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः । पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते स तु न संशयः ॥८४
[+ एवं पुण्यो महाराज पर्वतोऽमरकण्टकः । चन्द्रसूर्योपरागे तु गच्छेद्योऽमरकण्टकम् ॥८५
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः । स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र [6]महेश्वरम् ॥८६

तेज के प्रभाव से रक्षित वह तीसरा पुर गगनमण्डल घूमने लगा । महात्मा शंकर ने इसी प्रकार त्रिपुर का दहन किया था । ज्वालाओं में समूह से घिरे हुए त्रिपुर के दो पुर आकाशमण्डल से पृथ्वी तल पर गिरे थे, जिनमें से एक त्रिपुरान्तक के श्रीशैल पर तथा दूसरा अमरकण्टक पर्वत पर गिरा था । राजेन्द्र ! उनके जल जाने पर वहाँ रुद्र कोटि की प्रतिष्ठापना हुई थी । जलते हुए आकाश से गिरने के कारण उसका ज्वालेश्वर नाम पड़ा ।७७-८०। उससे उठनेवाली दिव्य ज्वाला स्वर्ग लोक को चली जिससे देवताओं तथा असुरों में महान् हाहाकार मच गया । रुद्र ने अपने माहेश्वर के उत्तम पुर पर चलाये गये बाण को स्तम्भित कर दिया । उस समय अमरकण्टक पर्वत पर इस प्रकार की घटना घटित हुई थी ।८१-८२। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार ऊपर कही हुई विधि से पूजन करनेवाला प्राणी चौदहों भुवनों का तीस करोड़ तथा सहस्र कोटि वर्षों तक उपभोग करता है । तदनन्तर पृथ्वीतल पर उत्पन्न होकर परम धार्मिक राज के कुल में उत्पन्न होता है तथा समस्त पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य करता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।८३-८४। महाराज ! इस प्रकार का पुण्यदायी वह अमरकण्टक पर्वत है । चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के अवसर पर जो अमरकण्टक की यात्रा करता है उसे अश्वमेध यज्ञ से दस गुना अधिक फल होता है । पण्डितों ने ऐसा कहा है कि वहाँ परमेश्वर का दर्शनकर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।८५-८६। राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने के अवसर

---

* इत उत्तरमयं ग्रन्थोऽधिको ङ. पुस्तके—यस्तत्र प्रेरयेत्कालं तस्य पुण्यफलं शृणु । संप्राप्य तेजसोदन्तं भुवनानि चतुर्दश ।। मोदते सुचिरं कालं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दनेति ।। + धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो नास्ति ङ. पुस्तके ।

---

१ क. ख. °स्यपुरं तेन म° । २ ङ. च. °मते ग° । ३ ग. घ. °दीप्ताग्तं पति° । ४ ग. ऊर्ध्वं तु प्रथिता° । ५ ङ. °कारं तत्र चक्रुः सदेवासुरकिंनराः । श° । ६ ग. °म् । सांनिध्यं ये ग° ।

ब्रह्महत्या गमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे । तदेवं निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके ॥८७
मनसाऽपि स्मरेद्यस्तं गिरिं त्वमरकण्टकम् । चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः] ॥८८
त्रयाणामपि लोकानां विख्यातोऽमरकण्टकः । एष पुण्यो गिरिश्रेष्ठः सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥८९
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः । मृगव्याघ्रसहस्रैस्तु सेव्यमानो महागिरिः ॥९०
यत्र संनिहितो देवो देव्या सह महेश्वरः । ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह ॥९१
ऋषिभिः किंनरैर्यक्षैर्नित्यमेव निषेवितः । [1]वासुकिः सहितस्तत्र क्रीडते[2] पन्नगोत्तमैः ॥९२
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥९३
तत्र ज्वालेश्वरं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥९४
ज्वालेश्वरे महाराज यस्तु प्राणान्परित्यजेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु तस्यापि शृणु यत्फलम्[3] ॥९५
सर्वकर्मविनिर्मुक्तो ज्ञानविज्ञानसंयुतः । रुद्रलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥९६
अमरेश्वरदेवस्य पर्वतस्य उभे तटे । तत्र ता ऋषिकोटचस्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रत ॥९७

पर जो प्राणी वहाँ जाता है उसकी ब्रह्महत्या छूट जाती है, समस्त अमरकण्टक की सीमा भर में ऐसा माहात्म्य कहा जाता है । जो व्यक्ति मन से भी उस अमरकण्टक पर्वत का स्मरण करता है वह सौ चान्द्रायण व्रत का पुण्यफल प्राप्त करता है— इसमें सन्देह नहीं । यह अमर कण्टक पर्वत तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, यह सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूहों से सेवित अति पवित्र श्रेष्ठ पर्वत है ।८७-८८। अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ इस पर फैली हुई हैं। विवध रंग के फूल खिले रहते हैं इस महा पर्वत में सहस्रों मृग तथा बाघ घूमा करते हैं । देवी पार्वती के साथ इस पर्वत पर भगवान् शंकर विराजमान हैं, उनके साथ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, तथा विद्याधरों के समूह भी इस पर्वत पर सन्निहित रहते हैं । ऋषि, किन्नर तथा यक्षगण नित्य इस महागिरि में निवास करते हैं। बड़े बडे सर्पों के साथ नागराज वासुकि भी उस पर क्रीड़ा करता है ।९०-९२। जो मनुष्य इस महागिरि अमरकण्टक की प्रदक्षिणा करता है वह पौण्डरीक नामक यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त करता है। उस अमरकण्टक पर ज्वालेश्वर नामक सिद्धों से सेवित पवित्र तीर्थ है। उसमें स्नान करनेवाला जीव मृत्यु के बाद पुनर्जन्म नहीं लेता ।९३-९४। हे महाराज ! उस ज्वालेश्वर तीर्थ में जो मनुष्य चन्द्र तथा सूर्य-ग्रहण के अवसर पर अपने प्राणों को छोड़ता है उसे भी जो फल होता है सुनों, सभी कर्मों से विनिर्मुक्त ज्ञान तथा विज्ञान से संयुक्त वह रुद्रलोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । हे सुव्रत ! इस अमरेश्वर पर्वत के पवित्र दोनों तटों पर कोटि-कोटि ऋषिगण तपस्या करते हैं, चारों ओर से एक योजन

---

[1] ग सुकिस्तक्षकस्तत्र । [2] क ख °ते यन्नगोत्तमे । प्र° । [3] ङ. °म् । अमरा नाम ते देवाः पर्वतेऽमरकण्टके । रुद्रलोके वसन्त्येते या° ।

[1]समन्ताद्योजनक्षेत्रो[2] गिरिश्चामरकण्टकः ॥९८
अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले । स्नात्वा[3] मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥९९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्येऽष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०२४७॥

अथ एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

पृच्छन्ति ते महात्मानो मार्कण्डेयं महामुनिम् । युधिष्ठिरपुरोगास्ते ऋषयश्च तपोधनाः ॥१
आख्याहि भगवंस्तथ्यं कावेरीसंगमं[4] महत् । लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च [5]विवृद्धये ॥२
सदा पापरता ये च [6]नरा दुष्कृतकारिणः । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम् ॥
एतदिच्छाम विज्ञातुं भगवन्वक्तुमर्हसि ॥३

के परिमाण में यह अमरकण्टक क्षेत्र विस्तृत है। किसी विशेष कामना से अथवा निष्काम भाव से जो मनुष्य नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करता है वह सभी पापकर्मों से मुक्त होकर रुद्र लोक की प्राप्ति करता है ।९५-९९।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदामाहात्म्य नामक एक सौ अठासीवां अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! युधिष्ठिर को प्रमुख बनाकर उन महात्मा तपस्वी ऋषियों ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा— 'भगवन् ! हम लोगों की अभिवृद्धि तथा लोक के मंगल की कामना से तुम कावेरी के उस महान् संगम का माहात्म्य बतलाओ, जिसके प्रभाव से सर्वदा पापाचरण में निरत दुष्कर्मी नर सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम पद की प्राप्ति करते हैं। हे भगवन् ! इसे जानने को हम लोगों की बड़ी इच्छा है, बतलाओ' ।१-३।

---

[1] °जनं क्षेत्रं गिरि चामरकण्टकम् । अ° । [2] ग क्षेत्रं गि° । [3] क. ख. °त्वा तैर्मुच्यते पापै रु° । [4] क. ख. °गमो महान् । लो° । [5] ग. घ. विषुद्ध° । [6] ग. °राश्चाकृत° ।

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः । अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः ॥४
इदं तीर्थमनुप्राप्य राजा[1] यक्षाधिपोऽभवत् । सिद्धिं प्राप्तो महाराज तन्मे निगदतः शृणु ॥५
कावेरी नर्मदा यत्र संगमो लोकविश्रुतः । तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः ॥६
तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत् । तस्य तुष्टो महादेवः[2] प्रादाद्वरमनुत्तमम् ॥७
भो भो यक्ष महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम् । ब्रूहि कार्यं यथेष्टं तु यत्ते[3] मनसि वर्तते ॥८

कुबेर उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम । अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपो भवे ॥९
कुबेरस्य वचः श्रुत्वा परितुष्टो महेश्वरः । एवमस्तु ततो[4] देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०
सोऽपि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं[5] लब्धफलोदयः[6] । पूजितः स[7] तु यक्षैश्च ह्यभिषिक्तस्तु पार्थिव ॥११
कावेरीसंगमं तत्र सर्वं पापप्रणाशनम् । ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः १२
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः । कवेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी ॥१३

मार्कण्डेय ने कहा—युधिष्ठिर तथा ऋषिगण ! सब लोग सावधानतापूर्वक सुनिये, सत्यपराक्रमी कुबेर नामक यक्षों का स्वामी, इसी तीर्थ की यात्रा कर यक्षों का स्वामी हुआ । महाराज ! जिस प्रकार उसने इस सिद्धि की प्राप्ति की है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये । लोकविख्यात कावेरी तथा नर्मदा का पवित्र संगम जिस स्थान पर हुआ है, उसी स्थान पर स्नान कर सत्य पराक्रम कुबेर ने पवित्र मन हो सौ वर्षों तक तपस्या की जिससे सन्तुष्ट होकर महादेव जी ने उसे उत्तम वरदान देते हुए कहा— 'महापराक्रमी यक्षराज ! जो वरदान चाहते हो उसे माँग लो' । जो कुछ भी तुम्हारे मन में अभिलाषा हो उसे बतलाओ' ।४-८।

कुबेर ने कहा—देव ! यदि सचमुच आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो यह वरदान मुझे दीजिए कि मैं आज से सभी यक्षों का स्वामी हो जाऊँ । कुबेर की बात सुन शंकर जी अति संतुष्ट हुए और 'ऐसा ही होगा' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये । कुबेर भी शंकर जी के वरदान को प्राप्तकर तथा वरदान के फल को शीघ्र ही अधिगतकर यक्षों द्वारा पूजित तथा स्वामित्व पद पर अभिषिक्त हुए । उस सभी पापों को नष्ट करनेवाले कावेरी के पवित्र संगम पर जो मनुष्य नहीं जाता सचमुच वह वंचित रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।९-१२। अतः सभी प्रयत्नों द्वारा मनुष्य को वहाँ स्नान करना चाहिये । हे राजेन्द्र ! जहाँ पुण्य

---

[1] ग. राजन्यज्ञाधि° । च राज्ञां चाप्यधिकोऽभ° । [2] क. ख. ग. °वः प्रदातुं वरमुत्त° । [3] क. ख. यद्वा म । ग. यद्यन्मन° । [4] ङ. च. ततश्चोक्त्वा तत्रै° । [5] क. °घ्रं यक्षकुलं गतः । पू° । [6] ङ. लो यतः । पू° । [7] ङ. च. सर्वय° ।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ह्यर्चयेद्वृषभध्वजम् । अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ।।१४
अग्निप्रवेशं यः कुर्याद्यश्च कुर्यादनाशकम् । अनिवर्त्या[1] गतिस्तस्य यथा मे शंकरोऽब्रवीत् ।।१५
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडते दिवि रुद्रवत् । षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिकोटयस्तथा पराः ।।१६
मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र तत्रैव गच्छति । [2]पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ।।१७
भोगवान्दानशीलश्च महाकुलसमुद्भवः । तत्र पीत्वा जलं सम्यक्चान्द्रायणफलं लभेत् ।।१८
स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्या ये पिबन्ति शुभं जलम् । गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ।।
कावेरीसंगमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते ।।१९
एवमादि तु राजेन्द्र कावेरीसंगमे महत् । पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ।।२०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्य एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८९।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।१०२६७।।

प्रदायिनी कावेरी तथा महानदी नर्मदा का समागम हुआ है, वहाँ स्नान कर वृषभध्वज शंकर की पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्तकर रुद्रलोक में पूजित होता है। वहाँ पर जो मनुष्य अग्नि में प्रवेश करता है, तथा अनशन करता है, उसकी सभी स्थानों में अप्रतिहत गति है —ऐसा ही शंकर जी ने मुझसे कहा है ।१३-१५। वह पुरुष सुन्दर अंगनाओं से सुसेवित होकर स्वर्ग में शंकर के समान साठ करोड़ तथा साठ सहस्र वर्षों तक क्रीडा करता है, रुद्र लोंक में विहार करता हुआ सभी स्थानों में जाने की गति रखता है, पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर भी धार्मिक राजा होता है, सभी योग्य सामग्रियों का उपभोक्ता होता हैं, दानशील तथा उच्चकुल में जन्म ग्रहण करता है। उस कावेरी के संगम स्थल पर जल का पान कर मनुष्य विधिवत् किये गये चान्द्रायण का फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य वहाँ के सुन्दर जल का पान करते हैं, वे गंगा यमुना के संगम का फल प्राप्त करते हैं। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार कावेरी के संगम स्थल की यात्रा महाफलदायिनी पुण्यप्रद तथा सभी पापों को विनष्ट करनेवाली है ।१६-२०।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।।१८९।।

---

[1] ङ. च. ॰र्तिका ग॰ । [2] ग. ॰ण्यलोकात्प॰ ।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं योजनविस्तृतम्[1] । यन्त्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम् ॥१
तत्र स्नात्वा नरो राजन्देवतैः सह मोदते । पञ्च वर्षसहस्राणि क्रीडते कामरूपधृक् ॥२
*गर्जनं च ततो गच्छेद्यत्र [2]मेघचयोत्थितः । इन्द्रजिन्नाम संप्राप्तस्तस्य तीर्थप्रभावतः + ॥३
मेघनादं ततो गच्छेद्यत्र मेघानुगर्जितम् । मेघनादो गणस्तत्र परमां गणतां गतः ॥४
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥५
नर्मदोत्तरतीरे [3]तु [4]धारातीर्थं तु विश्रुतम् । तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥६
सर्वान्कामानवप्नोति मनसा ये विचिन्तिताः । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र [5]ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम् ॥७

अध्याय १९०

मार्कण्डेय ने कहा—उस नर्मदा के उत्तरी किनारे पर एक योजन विस्तृत यन्त्रेश्वर नामक सभी पापों को दूर करनेवाला उत्तम तीर्थ है, हे राजन् ! उसमें स्नानकर मनुष्य देवताओं के साथ इच्छानुरूप स्वरूप धारणकर, पाँच सहस्र वर्षों तक आनन्द करते हैं, यन्त्रेश्वर से मनुष्य को गर्जन नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघों के समूह उठे हुए दिखाई पड़ते हैं, उसी तीर्थ के प्रभाव से मेघनाद ने इन्द्रजित् का पद प्राप्त किया था ।१-३। तदनन्तर मेघनाद की यात्रा करनी चाहिये जहाँ पर मेघों की गर्जना सुनाई पड़ती है, वहीं पर मेघ नामक शिव के गण ने गणाध्यक्षता प्राप्त की थी । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर आम्रातकेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । वहाँ स्नान कर मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । नर्मदा के उत्तरी किनारे पर धारातीर्थ का नाम विख्यात है उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिये, इससे वह मन से सोचे गये मनोरथों को प्राप्त करता है ।४-६½। राजेन्द्र ! तत्पश्चात् ब्रह्मावर्त तीर्थ की यात्रा करे, हे युधिष्ठिर ! जहाँ पर नित्य ही भगवान्

---

*एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ पुस्तके—राजानं च ततो गच्छेन्मेघनादतपःस्थितः । इति + इतः परमयं ग्रन्थोऽधिको ङ. पुस्तके—भीमेश्वरं ततो गत्वा सर्वव्याधिविनाशनम् । स्नानमात्रे नरो राजन्सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र ऊरीसंगममुत्तमम् । सोमतीर्थं ततो गच्छेत् । इति ।

---

१ क. ख. °म् । मन्त्रे° । २ ख. ग. °घस्तथोत्थि° । ३ क. ख. तु तीर्थं तु विश्रुतं भवेत् । त° । ४ ङ. तीर्थमनुत्तमम् । त° । ५ ङ. च. ब्रह्माविष्णू इति ।

तत्र संनिहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठिर । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते ॥८
[1]ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः । [2]सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥९
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलादानमाप्नुयात् ॥१०
[3]गच्छेत्करञ्जतीर्थं तु देवर्षिगणसेवितम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोलोकं समवाप्नुयात् ॥११
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम् । तत्र संनिहितो रुद्रस्तिष्ठते ह्युमया सह ॥१२
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र[4] स वन्द्यस्त्रिदशैरपि । पिप्पलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥१४
तत्र देवशिला रम्या चेश्वरेण विनिर्मिता । तत्र प्राणपरित्यागाद्रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥१५
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्रीन्द्रस्यार्धासनं लभेत् ॥१६
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता । तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥१७
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना । कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः ॥१८

ब्रह्मा का सन्निधान रहता है । हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है । तदनन्तर अंगारेश्वर तीर्थ की यात्रा नियत आहार एवं निश्चल चित्त होकर करनी चाहिए । ऐसा करने से वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है ।७-९। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कपिला नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है । तत्पश्चात् देवताओं तथा ऋषियों के समूहों से सेवित करंज नामक तीर्थ की यात्रा करें, हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने से गोलोक की प्राप्ति होती है । हे राजन् ! तत्पश्चात् कुण्डलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे । वहाँ पर पार्वती के साथ भगवान् शंकर का निवास रहता है । हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नानकर मनुष्य देवताओं से भी वन्दनीय हो जाता है ।१०-१२½। तदनन्तर सभी पापों को नष्ट करनेवाले पिप्पलेश तीर्थ की यात्रा करे, हे राजेन्द्र वहाँ स्नान कर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ भगवान् शंकर द्वारा निर्मित एक मनोहर शिला है, वहाँ प्राणत्याग करने से मनुष्य रुद्र लोक की प्राप्ति करता है । तत्पश्चात् पुष्करिणी तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य इन्द्र का आधा आसन प्राप्त करता है ।१३-१६। नदियों में श्रेष्ठ रुद्र के शरीर से निकली हुई नर्मदा सभी स्थावर तथा जंगम जीवों का उद्धार करनेवाली है । सभी देवताओं की अधि देवता भगवान् शंकर ने स्वयं इस बात को ऋषियों के समूहों में विशेषकर मुझसे बतलाई है । इस परम पवित्र एवं श्रेष्ठ नर्मदा

---

[1] ङ. च. तो गणेश्व° । [2] ङ. च. °विशुद्धात्मा रु° । [3] क. ख. °रजती° । [4] क. ख. °न्द्र ह्यवध्यस्त्रि° ।

मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी । रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया ॥१९
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता । संस्तुता [1]देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥२०
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनी । नमस्ते [2]पापनिर्दाहे नमो देवि वरानने ॥२१
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते ।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने ॥२२
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं नित्यं श्रद्धासमन्वितः । ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥२३
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां [3]गतिम् । अर्थार्थी लभते ह्यर्थं स्मरणादेव नित्यशः ॥२४
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः । तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥२५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०२९२॥

नदी की स्तुति मुनि लोग करते हैं, लोग की मंगल कामना से यह रुद्र के शरीर से निकली हुई है, सभी देवतागण इसको नमस्कार करते हैं यह सभी पापों को दूर करने वाली है, देवता, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूह सर्वदा इसकी स्तुति करते हैं। 'हे पुण्य जलवाली, सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाली, समुद्रगामिनी, नर्मदे ! तुम्हें नमस्कार है। हे सुन्दर मुखवाली ! पाप कर्मों को जलानेवाली ! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो। हे ऋषि वन्दों द्वारा सेवित ! तुम्हें नमस्कार है । हे शंकर के शरीर से निकलनेवाली ! तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है, हे धर्मिष्ठ प्राणियों को वरदान देनेवाली ! तुम्हें नमस्कार करता हूँ, हे सभी को पवित्र एवं निष्पाप करनेवाली ! तुम्हे हमारा नमस्कार स्वीकार हो' ।१७-२२। जो कोई मनुष्य इस स्तोत्र को नित्य श्रद्धायुक्त हो पाठ करता है, वह यदि ब्राह्मण है तो वेद का ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय है तो संग्राम में विजयी होता है, वैश्य है तो व्यापार में लाभ प्राप्त करता है, शूद्र हो तो शुभ गति प्राप्त करता है। धन की इच्छा रखनेवाला इस स्तोत्र के नित्य स्मरण मात्र करने से अर्थ की प्राप्ति करता है। इस पवित्र नर्मदा नदी का नित्य स्वयम् शंकर जी सेवन करते हैं। उसी से यह पवित्र नदी ब्रह्महत्या जैसे कठोर पापों को भी दूर करनेवाली जाननी चाहिये ।२३-२५।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदामाहात्म्य नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९०॥

---

[1] ङ. °रोभिः समन्ततः । न° । [2] क. ख. पशमनि न° । [3] ग. मतिम् ।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः । सेवन्ते नर्मदां राजन्रागक्रोधविवर्जिताः ॥१

युधिष्ठिर उवाच

*कस्मिन्निपतितं शूलं देवस्य तु महीतले । तत्र पुण्यं समाख्याहि यथावन्मुनिसत्तम ॥२

मार्कण्डेय उवाच

[1]शूलभेदमिति ख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत् । तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्देवं गोसहस्रफलं लभेत् ॥३
त्रिरात्रं कारयेद्यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते ॥४
भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नारदेश्वरमुत्तमम् । आदित्येशं [2]महापुण्यं स्मृतं किल्बिषनाशनम् ॥५

अध्याय १९१

मार्कण्डेय ने कहा— राजन् ! तभी से इस पवित्र नदी का सेवन ब्रह्मा आदि तपस्वी ऋषिगण क्रोध, राग आदि से रहित होकर करते हैं ।१।

युधिष्ठिर ने कहा— हे मुनि श्रेष्ठ ! इस पृथ्वी तल पर किस तीर्थ में महादेव जी का शूल गिरा था उस पवित्र तीर्थ का यथावत् माहात्म्य हमें बताइये ।२।

मार्कण्डेय ने कहा—वह अति पुण्यदायी शूलभेद नामक विख्यात तीर्थ है, वहाँ पर स्नानकर जो शिव जी की पूजा करता हैं वह सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। हे नराधिप ! जो इस तीर्थ में तीन रात्रि निवासकर महादेव जी की पूजा करता है, वह पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करता, उसके पश्चात् मनुष्य को भीमेश्वर तथा उत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। आदित्येश अति पुण्यदायी महा घोर पातकों को विनष्ट करनेवाला तीर्थ बताया गया है ।तदनन्तर नन्दिकेश्वर की यात्रा कर जन्म धारण करने का पर्याप्त फल प्राप्त करता है, तदनन्तर वरुणेश का दर्शन करना चाहिये, उसके बाद स्वतन्त्रेश्वर

---

* एतच्छ्लोकस्थानेऽयं पाठो ङ. च. पुस्तकयोः—यस्मिन्निपतितं दृष्ट्वा शूलं देवस्य भूतले । तस्य पुण्यं समाख्यातं शंकरेण महात्मना । इति ।

---

१ ग. ङ. च. °भेदेतिविख्या° । २ क. ख. घ. °ण्यं तथा घृतमधुस्रवम् । न° । ग. °ण्यं तथा देवं मधुस्रुवम् । न° ।

नन्दिकेशं [1]परिष्वज्य पर्याप्तं जन्मनः फलम्[2] । वरुणेशं ततः [3]पश्येत्स्वतन्त्रेश्वरमेव च ॥
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात् ॥६
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र युद्धं यत्र सुसाधितम् । कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र मोहिताः ॥७
यत्रैव निहता राजन्दानवा बलदर्पिताः । तेषां [4]शिरांस्यगृह्णन्त सर्वे देवाः समागताः ॥८
तैस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः । कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः ॥९
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमारुहेत् । यदा त्विन्द्रेण क्षुद्रत्वाद्वज्रं कीलेन यन्त्रितम् ॥१०
तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमार्गो निवारितः । +[5]यः स्तुतं श्रीफलं दद्यात्कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणाम्[6] ॥
[7]पर्वतं सहदीपं तु शिरसा चैव धारयेत् । [8]सर्वकामसुसंपन्नो राजा भवति पाण्डव ॥१२
मृतो रुद्रत्वमाप्नोति ततोऽसौ जायते पुनः । स्वर्गादित्य भवेद्राजा राज्यं कृत्वा दिवं व्रजेत् ॥१३
[9]बहुनेत्रं ततः पश्येत्त्रयोदश्यां तु मानवः । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥१४

नामक तीर्थ को जाना चाहिये । पंचायतन के दर्शन करने से उस मनुष्य को सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है ।३-६। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर वहाँ जाना चहिए, जहाँ पर युद्ध रचा गया था, वह कोटि तीर्थ नामक स्थान है, वहीं पर असुरगण मोहित हुए थे । हे राजन् ! उसी स्थान पर बड़े-बड़े बलवान् दानव मारे गये थे, वहीं पर आकर सभी देवताओं ने दैत्यों के शिरों को लिया था । वहीं पर वृषभध्वज शूलपाणि शिव की प्रतिष्ठापना हुई है । वहीं पर एक करोड़ दानवों का संहार हुआ था, अतः उसका कोटीश्वर नाम कहा जाता है । उस पवित्र तीर्थ के दर्शन करने से प्राणी सदेह स्वर्ग का आरोहण करता है । जिस समय इन्द्र ने क्षुद्रता के कारण वज्र को कील द्वारा बाँध दिया । तभी से लोगों का स्वर्ग जाने का मार्ग निवारित हो गया ।७-१०½। जो मनुष्य इस पवित्र तीर्थ की प्रदक्षिणा कर प्रार्थनापूर्वक बेल का दान करता है तथा दीप दान कर पर्वत को शिर से धारण करता है (नमस्कार करता है), हे पाण्डव ! वह सभी मनोरथों को प्राप्तकर राजा होता है, मृत्यु को प्राप्तकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है, तदनन्तर पुनः उत्पन्न होता है तथा स्वर्ग से उतरकर राजा होता है तथा राज्यसुख का अनुभव कर स्वर्गलोक को जाता है । तदनन्तर त्रयोदशी तिथि को मनुष्य को बहुनेत्र तीर्थ का दर्शन करना चाहिए, वहाँ पर स्नान मात्र करने से मनुष्य सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है ।११-१४। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् परम रमणीक मनुष्यों के समस्त पापों को दूर

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठः क. ख. पुस्तकयोः— सघृतं श्रीफलं जग्ध्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणामिति ।

---

[1] ङ. च. परिक्रम्य । [2] ङ. च. °म् । वारु° । [3] ङ. °श्येत्स राजेश्वरमुत्तमम् । स° च. °श्येत्सरोजेश्व । [4] ग. घ. °रांसि गृह्यन्ते सर्वैर्देवैः समागतैः । तं° । [5] ग. संयतं श्रीफलं जग्ध्वा गत्वा । [6] ङ. च. °म् । सर्वतः सह देवेन सहसा दीपधा° । [7] क. ख. पार्वतं । [8] ङ. स सर्वकामसंपूर्णो रा° । [9] ङ. महादेवं ।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । नराणां पापनाशाय ह्यगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥१५
तत्र स्नात्वा नरो [1]राजन्ब्रह्मलोके महीयते । कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥१६
घृतेन स्नापयेद्देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः । एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात्पदात् ॥१७
धेनुमुपानहौ छत्रं दद्याच्च [2]घृतकम्बलम् । भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र बलाकेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनपतिर्भवेत् ॥१९
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् । उपोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत् ॥२०
स्नानं कृत्वा [3]यथान्यायमर्चयेच्च जनार्दनम् । गोसहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२१
ऋषितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं नृणाम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकं च गच्छति ॥२२
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्[4] ॥२३
देवतीर्थं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ॥२४
अमरकण्टकं गच्छेदमरैः स्थापितं पुरा । स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥२५
ततो गच्छेच्च [5]राजेन्द्र रावणेश्वरमुत्तमम्[6] । नित्यं चाऽऽयतनं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६

करनेवाले उत्तम अगस्त्येश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । हे राजन् ! वहाँ स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है । कार्तिक महीने की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मनुष्य इन्द्रियों को स्ववश रख समाहित चित्त से घृत द्वारा महादेव जी को स्नान कराये । ऐसा करने से वह महादेव जी के सुन्दर स्थान से इक्कीसवीं पीढ़ी तक कभी नीचे नहीं गिरता । उस स्थान पर गाय, जूता, छाता, घृत तथा कम्बल का दान तथा ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि गुना अधिक फल होता है ।१५-१८। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम बलाकेश्वर की यात्रा करें । हे राजन् ! वहाँ स्नान कर मनुष्य सिंहासन का स्वामी होता है । नर्मदा के दाहिने किनारे पर इन्द्र का विख्यात तीर्थ है, वहाँ एक रात का उपवास कर विधिवत् स्नान तथा जनार्दन की पूजा करें, ऐसा करनेवाले को एक सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है तथा वह अन्त समय में विष्णु लोक को जाता हैं ।१९-२१। तदनन्तर मनुष्यों के सभी पापों को हरनेवाले ऋषितीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान मात्र करने से मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है। वहीं पर नारद जी का अति सुन्दर तीर्थ है, वहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है । तत्पश्चात् प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित देवतीर्थ की यात्रा करें । राजन् ! वहाँ पर स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है । तदनन्तर प्राचीनकाल में देवताओं द्वारा स्थापित अमरकण्टक की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! उसके बाद उत्तम रावणेश्वर नामक तीर्थ को जाय, वहाँ मन्दिर का प्रतिदिन दर्शनकर

---

[1] °जन्मुच्यते ब्रह्माहत्यया । का° । [2] ग. तकुम्भकम् । भो° । [3] ङ. च. °र्चयित्वा ज° । [4] ङ. च. तु । वेदती° । [5] ङ. च. °न्द्र वामनश्वे° । [6] क. ख. °म् । तत्पश्चाय° ।

ऋणतीर्थं ततो गच्छेदृणेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् । वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥२७
भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशम् । स्नातमात्रो नरो राजन्सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥२८
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तुरासङ्गमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयन्सिद्धिमाप्नुयात् ॥२९
सोमतीर्थं ततो गच्छेत्पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्भक्त्या परमया युतः ॥३०
तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम् । षष्टिर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥३१
ततो गच्छेतु राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । अहोरात्रोपवासेन[1] त्रिरात्रफलमाप्नुयात् ॥३२
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति । यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥३३
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप ॥३४
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । नर्मदातटमाश्रित्य [2]तिष्ठेयुर्ये नरोत्तमाः ॥३५
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा । सुरेश्वरं ततो गच्छेन्नाम्ना कर्कोटकेश्वरम् ॥३६
गङ्गाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः । नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥३७
तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते । ततो दीपेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥३८

मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है ।२२-२६। वहाँ से ऋणतीर्थ जाय । वहाँ जाने से निश्चय ही मनुष्य ऋणों से मुक्त हो जाता है, वहाँ से वटेश्वर तीर्थ की यात्रा करे, जिससे जन्म लेने का पर्याप्त फल प्राप्त हो जाता है । तत्पश्चात् सभी प्रकार की व्याधियों को नष्ट करनेवाले भीमेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे । हे राजन् ! वहाँ के स्नान मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति उत्तम तुरासंग नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ जाकर महादेव जी की पूजा करने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है ।२७-२९। तदनन्तर सोमतीर्थ जाकर उत्तम चन्द्रमा का दर्शन करे, हे राजन् ! वहाँ अति भक्तिपूर्वक स्नान करने से प्राणी उसी क्षण दिव्य शरीर धारण कर शिव के समान चिर काल तक आनन्द का अनुभव करता है तथा साठ सहस्रवर्षों तक रुद्र लोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम पिंगलेश्वर की यात्रा करे, वहाँ दिनरात के उपवास से तीन दिन-रात के उपवास का फल प्राप्त होता है ।३०-३२। हे राजेन्द्र ! उस पवित्र तीर्थ में जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, उस गो के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक उस दानी के वंश एवं कुल के लोग रुद्रलोक में पूजित होते हैं । हे नराधिप ! जो कोई प्राणी उस पवित्र तीर्थ में प्राणों को छोड़ता है, वह अक्षयकाल पर्यन्त— जबतक कि सूर्य तथा चन्द्रमा रहते हैं — आनन्द का अनुभव करता हैं । जो मनुष्य उत्तम नर्मदा के पवित्र तट पर निवास करते हैं, वे मरने पर जिस प्रकार सुकृती तथा सन्त जन स्वर्ग जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग को जाते हैं तत्पश्चात् कर्कोटकेश्वर नामक विख्यात सुरेश्वर यात्रा करनी चाहिये, उस पवित्र दिन में उस तीर्थ में गंगा उतरती हैं, इसमें सन्देह नहीं ।३३-३६½। तदनन्तर

---

१ ग. °न विष्णुयज्ञफलं लभेत् । त° क. २ ख °युर्यंत्र मानवाः । ते ।

निर्वर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी । हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता ॥३९
प्रदक्षिणां तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४०
व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतः प्राप्नुयादीप्सितं फलम् । सूत्रेण वेष्टयित्वा तु दीपो देयः सवेदिकः ॥४१
क्रीडते चाक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव च । गतो गच्छेच्च [1]राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम् ॥४२
संगमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः । ऐरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी ॥४३
अथवाऽऽश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु चाष्टमी । शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपरायणः ॥४४
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता । *ऐरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावानुरञ्जितः ॥
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य ह्यवगाह्य च वै जलम् ॥४५
नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥४६
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा । ततः सुवर्णसलिले स्नात्वा दत्त्वा तु काञ्चनम् ॥४७
काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते । ततः स्वर्गाच्च्युतः कालाद्राजा भवति वीर्यवान् ॥४८

नन्दी तीर्थ जाय और वहाँ स्नान करे, जिससे नन्दीश्वर भगवान् शंकर सन्तुष्ट होते हैं और स्नान करनेवाला चन्द्रलोक में पूजित होता है । तत्पश्चात् व्यास के तपोवन दीपेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । प्राचीन काल में उसी स्थान पर व्यास से डरकर महानदी पीछे को लौट पड़ी थी, उनके हुँकारने पर वह दाहिनी ओर से बहने लगी थी । हे नराधिप ! जो मनुष्य उस पवित्र तीर्थ में जाकर प्रदक्षिणा करता है वह अक्षयकाल तक— जब तक कि सूर्य तथा चन्द्रमा विद्यमान हैं— आनन्द का अनुभव करता है ।३७-४०। ऐसा करनेवाले के उपर व्यास प्रसन्न होते हैं और वह अपने मनोवांछित को प्राप्त करता है। एक सूत्र से बांधकर वेदी बनाकर वहाँ जाकर दीप दान करना चाहिये, जो मनुष्य ऐसा करता है वह रुद्र के समान अक्षय काल पर्यन्त क्रीडा करता हैं ! हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम एरण्डी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । संगम स्थल पर स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । यह एरण्डी पाप को नष्ट करनेवाली तीनों लोकों में विख्यात है ।४१-४३। उस एरण्डी तीर्थ में आश्विन महीने की शुक्ल अष्टमी तिथि को मनुष्य पवित्र मन से उपवास कर यदि एक ब्राह्मण को भोजन करा देता है तो मानो उसने एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन करा दिया। एरण्डी के पवित्र संगम स्थल पर भक्तिभाव में डूबा हुआ मनुष्य स्नान कर शिर पर मिट्टी रख पुनः जल में अवगाहन कर, नर्मदा के जल से मिश्रित होने के कारण वह सभी पापों से छूट जाता है । हे नराधिप ! जो मनुष्य उस तीर्थ में प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपोंवाली वसुन्धरा की मानो प्रदक्षिणा कर ली ।४४-४६½। ऐसा करने के बाद उसके सुवर्णवत सुन्दर जल में स्नान कर सुवर्ण का दान देकर मनुष्य सुवर्ण के सुन्दर

---

*एतदर्धं नास्ति क. ख. घ. पुस्तकेषु।

[1] ग. ङ. च. °न्द्र एर° ।

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु संगमम् । त्रैलोक्यविश्रुतं दिव्यं तत्र संनिहितः शिवः ।।४९
तत्र स्नात्वा नरो [1]राजन्गाणपत्यमवाप्नुयात् । स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्[2] ।।५०
आजन्म जनितं पापं स्नानमात्राद्व्यपोहति । लिङ्गसारं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।।५१
गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते । भङ्गतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।।५२
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र स्नानं तत्र समाचरेत् । सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५३
वटेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ।।५४
संगमेशं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नातमात्रान्नरस्तत्र चेन्द्रत्वं लभते ध्रुवम् ।।५५
कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं परम् । तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः ।।५६
तत्र तीर्थं समासाद्य दत्त्वा दानं तु यो नरः । तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।५७
अथ नारी भवेत्काचित्तत्र स्नानं समाचरेत् । गौरीतुल्या भवेत्साऽपि[illegible]त्यिन्द्रपत्नी न संशयः ।।५८
अङ्गारेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ।।५९

विमान में बैठकर रुद्रलोक में पूजित होता है और पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत हो पुनः कालक्रम से पराक्रमशाली राजा होता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर इच्छु नदी के संगम की यात्रा करे, यह पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है वहाँ सदाशिव जी का सन्निधान रहता है। हे राजन् उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य गणों का स्वामित्व प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी पापों को दूर करनेवाले स्कन्द तीर्थ की यात्रा करे उसकी यात्रा कर केवल स्नान करने से जन्म भर का किया हुआ पाप छूट जाता है।४७-५०½। उसके बाद लिंगसार नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करने से एक सहस्र गोदान का फल होता तथा वह रुद्रलोक में पूजित होता है तत्पश्चात् सभी पापों को नष्ट करने वाले भृङ्गतीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजेन्द्र ! वहाँ जाकर स्नान करे। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ स्नान करने से सात जन्म के किये हुए पापों से छुटकारा मिल जाता है। तदनन्तर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ बटेश्वर तीर्थ की यात्र करे। हे राजन्। वहाँ स्नान कर मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है।५१-५४। तत्पश्चात् सभी देवताओं से नमस्करणीय संगमेश तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य निश्चय ही इन्द्रत्व की प्राप्ति करता है। तदनन्तर सभी पापों को हरनेवाले परम पवित्र कोटि तीर्थ को जाय, जहाँ स्नान कर मनुष्य राज्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। उस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य दान देता है, तीर्थ के प्रभाव से उसका सौ कोटि गुना महत्त्व बढ़ जाता है। यदि कोई स्त्री वहाँ पर स्नान करती है तो वह भी गौरी के समान अथवा इन्द्र की पत्नी के समान हो सकती है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। तत्पश्चात् अंगारेश की यत्रा कर वहाँ स्नान करे। वहाँ के स्नान करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।५५-५९। अंगारक चतुर्थी को वहाँ स्नान करना चाहिये।

---

[1] ङ. च. °जन्गो. सहस्रफलं लभेत् । स्क° ।   [2] क. ख. °म् । तत्तीर्थं त्रिविधं पा° ।

अङ्गारकचतुर्थ्यां तु स्नानं तत्र समाचरेत् । अक्षयं मोदते कालं शुचिः प्रयतमानसः ॥६०
अयोनिसंभवे स्नात्वा न पश्येद्योनिसंकटम् । पाण्डवेशं तु तत्रैव स्नानं तत्र समाचरेत् ॥६१
अक्षयं मोदते कालमवध्यस्त्रिदशैरपि । विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडते भोगसंयुतः ॥६२
तत्र भुक्त्वा [1]महाभोगान्मर्त्यराजोऽभिजायते । [2]कठेश्वरं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥६३
[3]उत्तरायणसंप्राप्तौ यदिच्छेत्तस्य तद्भवेत् । चन्द्रभागां ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥६४
स्नातमात्रो नरो राजन्सोमलोके महीयते । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् ॥६५
पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्दानं दत्त्वा तु काञ्चनम् ॥६६
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत् । वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥६७
तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत् । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥६८
अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्राणां नराधिप । स्वामी भवति मर्त्येषु[4] तस्य तीर्थप्रभावतः ॥६९
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजंस्तर्पयेत्पितृदेवताः ॥७०
उपोष्य रजनीमेकां पिण्डं दत्त्वा यथाविधि । कन्यागते तथाऽऽदित्ये अक्षयं स्यान्नराधिप ॥७१

पवित्र एवं मन को वश में रख वहाँ जो स्नान करता वह अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द करता है। अयोनिसम्भव नामक तीर्थ में स्नान कर मनुष्य योनि संकट (जन्म कष्ट) नहीं देखता। वहीं पर पाण्डवेश नामक तीर्थ है, वहाँ जाकर जो मनुष्य स्नान करता है वह देवतारों से भी अवध्य होकर अक्षयकाल तक आनन्द प्राप्त करता है, तथा विष्णु लोक में जाकर अनेक भोग की प्राप्ति करता है।६०-६२। वहाँ अति उत्तम भोगों का उपभोग कर राजा होता है। तत्पश्चात् कण्ठेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करे। उत्तरायण के समय यदि वहाँ मनुष्य जाता है तो जिस वस्तु की इच्छा करता है वह उसे प्राप्त करता है। तत्पश्चात् चन्द्रभागा में जाकर वहाँ स्नान करे। हे राजन् वहाँ जाकर स्नान करने मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् इन्द्र के प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जो स्वयम् देवराज इन्द्र द्वारा पूजित एवं नमस्कृत हे। है राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो सुवर्ण का दान देता है अथवा नीले रंग के बैल को छोड़ता है' वह मनुष्य वृषभ के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक अपने कुल परिवार समेत शिवलोक में निवास करता है तदनन्तर वहाँ से पुण्यक्षीण हो जाने पर पराक्रमी राजा होता है।६३-६८। राजन् ! ऐसा करनेवाला मनुष्य श्वेतवर्ण के सहस्रों अश्वों का अधिपति होता है। उस तीर्थ के अद्भुत प्रभाव से मनुष्यों में वह राजा होता है। राजेन्द्र ! तदुपरान्त अति उपरान्त ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! वहाँ स्नान कर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे, रात भर का उपवास करे विधिपूर्वक पिण्डदान करे।६९-७०½। सूर्य के कन्या राशि पर स्थित होने के अवसर पर ऐसा करने से उसका पुण्य प्रभाव कभी नष्ट नहीं होता। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात्

---

[1] ङ. °न्यमर्त्ये राजाऽभि°। [2] ग. ङ. कण्ठान्तिकेश्वरं ग°। [3] ग. ङ. °प्राप्ते य°। [4] ङ. °षु तीर्थयात्राप्र°।

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलां यः प्रयच्छति ॥७२
संपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात् । नर्मदेशं[1] परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥७३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् । नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम् ॥७४
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वं यज्ञफलं लभेत् । तत्र सर्वोद्यतो राजा पृथिव्यामेव जायते ॥७५
सर्वलक्षणसंपूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः । नर्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥७६
आदित्यायतनं[2] दिव्यमीश्वरेण तु भाषितम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम् ॥७७
दरिद्रा [3]व्याधिता ये तु येतु दुष्कृतकर्मिणः । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं तु यान्ति ते ॥७८
माघमासे तु संप्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमी । वसेदायतने तत्र निराहारो जितेन्द्रियः ॥७९
न जराव्याधितो मूको न चान्धो बधिरोऽथवा । सुभगो रूपसंपन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥८०
एवं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम् । ये न जानन्ति राजेन्द्र वञ्चितास्ते न संशयः ॥८१
गर्गेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥८२

उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! इस कपिलातीर्थ में जाकर जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर के जो फल प्राप्त होता है वह फल प्राप्त करता है । नर्मदेश अति उत्तम तीर्थ स्थान है, उसके समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा ।७१-७३। हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर उत्तम संगमेश्वर नामक तीर्थ है, हे राजन् ! उसमें स्नान कर मनुष्य सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य इसी पृथ्वी तल पर ही सभी कार्यों में उद्योगशील राजा होता है, सभी राजलक्षण से युक्त तथा सभी व्याधियों से रहित रहता है । नर्मदा के उत्तरी किनारे पर अति रमणीक आदित्यायतन नामक दिव्य तीर्थ है, जिसकी चर्चा स्वयम् शिव ने की है । हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो यथाशक्ति दान दिया दिया जाता है वह उस तीर्थ के माहात्म्य से अक्षय हो जाता है ।७४-७७। जो लोग दरिद्र हैं, व्याधियों से पीड़ित हैं, पाप कर्म में निरत रहनेवाले हैं, वे भी उस तीर्थ के प्रभाव से सभी पापों से छूटकर सूर्यलोक को चले जाते हैं । माघ के महीने में शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को उस आयतन में निराहार तथा जितेन्द्रिय हो निवास करे, ऐसा करने से न तो न तो वृद्धावस्था से पीडित हो सकता है, न गूंगा हो सकता है, न अन्धा न बहिरा, प्रत्युत सुन्दर रूपवान् तथा स्त्रियों का प्रिय होता है । इस प्रकार के अति पुण्यप्रद तीर्थ की चर्चा मार्कण्डेयजी ने की थी । हे राजेन्द्र ! जो इनको नहीं जानते वे सचमुच जगत् में वंचित रह जाते हैं ।७८-८१। तदनन्तर गर्गेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य स्वर्गलोक की प्राप्ति

---

[1] ग. ङ. °देश्वरतीर्थे तु न भू° । [2] ग. ङ. °न रम्यमी° । [3] क. ख. °धिनो ये ।

मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश । समीपतः स्थितं तस्य नागेश्वरतपोवनम् ॥८३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नागलोकमवाप्नुयात् । बह्वीभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम् ॥८४
कुबेरभवनं गच्छेत्कुबेरो यत्र संस्थितः । कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः ॥८५
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसंपदमाप्नुयात् । ततः पश्चिमतो गच्छेन्मारुतालयमुत्तमम् ॥८६
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः । काञ्चनं तु ततो दद्याद्यथाशक्ति सुबुद्धिमान् ॥८७
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति । यवतीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर ॥८८
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत् । [1]नक्तभोज्यं ततः कुर्यान्न पश्येद्योनिसंकटम् ॥८९
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभिः प्रमोदते ॥९०
अहल्या च तपस्तप्त्वा तत्र मुक्तिमुपागता । चैत्रमासे तु संप्राप्ते शुक्लपक्षे [2]चतुर्दशी ॥९१
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत् । यत्र यत्र नरोत्पन्नो[3] नरस्तत्र प्रियो भवेत् ॥९२

करता है तथा स्वर्गलोक में तब तक निवास करता है जब तक चौदहों इन्द्र रहते हैं। उसी तीर्थ के समीप में नागेश्वर नामक तपोवन है। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से नागलोक की प्राप्ति होती है तथा वहाँ जाकर वह प्राणी अनेक नागकन्याओं के साथ अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है ।८२-८४। तत्पश्चात् कुवेर-भवन नामक तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर कुवेर का निवास है, वहीं पर कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थ भी है जहाँ कुवेर सन्तुष्ट किये गये थे। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को सभी सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं। तदनन्तर उससे पश्चिम अतिश्रेष्ठ मारुतालय नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! वहाँ पवित्र तथा समाहित चित्त हो स्नान कर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण का दान करे तो उसके प्रभाव से वह पुष्पक विमान द्वारा वायुलोक को जाता हैं ।८५-८७½। हे युधिष्ठिर! तदुपरान्त माघ महीने में यव नामक तीर्थ की यात्रा करे ओर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ स्नान करे और रात में भोजन करे ऐसा करने से वे जन्म लेने के संकट को नहीं देखता। तत्पश्चात् अहल्या-तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। उसी पवित्र तीर्थ में अहल्या ने तपस्या कर मुक्ति की प्राति की थी ।८८-९०½। चैत्र मास के आने पर शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को, जब कि कामदेव का दिन पड़ता है, जो उस तीर्थ में अहल्या की पूजा करता है, वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ-वहाँ सर्वसाधारण का प्रेम पात्र होता है, लक्ष्मीयुक्त हो दूसरे कामदेव की भाँति स्त्री का वल्लभ होता हैं। राम के प्रसिद्ध अयोध्या तीर्थ में जाकर मनुष्य केवल स्नान करने से सभी पापों से छुटकारा पाता है। तदनन्तर सोमतीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नानमात्र करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। हे राजेन्द्र! उस सोमग्रह में मनुष्यों का सभी पाप नष्ट हो जाता है ।९१-९५। हे राजन्! यह सोमतीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है, उसके प्रभाव एवं फल अमित हैं। हे नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थ में चान्द्रायण व्रत का

---

[1] क ख. घ. नक्तं भो°। [2] ग. ङ. त्रयोदशी। [3] ङ. °न्नो वरस्त्रीणां प्रि°।

स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः । अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं रामस्य विश्रुतम् ॥९३
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥९४
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमग्रहे तु राजेन्द्र[1] पापक्षयकरं नृणाम् ॥९५
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम् । यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥९६
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति । अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवाऽपि ह्यनाशके ॥९७
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नासौ मर्त्येऽभिजायते । [2]शुभतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥९८
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोलोके[3] तु महीयते । ततो गच्छेच्च राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्[4]
[5]योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् । असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ॥१००
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः पीतो भवेदिहा । अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१०१
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम् । हरिणी व्याधसंत्रस्ता पतिता यत्र सा मृगी ॥१०२
जले प्रक्षिप्तगात्रा तु अन्तरिक्षं गता च सा । व्याधो विस्मितचित्तस्तु परं विस्मयमागतः[6] ॥१०३
तेन तापेश्वरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥१०४
अमोहकमिति ख्यातं पितृंश्चैवात्र तर्पयेत् । पौर्णमास्याममायां तु श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥१०५

पालन करते हैं वे सभी पापों से उन्मुक्त एवं विशुद्धात्मा हो सोमलोक को जाते हैं। अग्नि प्रवेश कर, जल में डूबकर, अथवा अनसन कर जो मनुष्य इस तीर्थ में प्राणत्याग करते हैं वे पुनः मृत्युलोक में जन्म नहीं धारण करते । तदनन्तर शुभ तीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य गोलोक में पूजित होता है ।९६-९८½। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति उत्तम विष्णु तीर्थ की यात्रा करे, वह स्थान योधनीपुर नाम से विख्यात है, तथा भगवान् विष्णु का उत्तम निवास स्थान है, भगवान् वासुदेव ने उसी स्थान पर करोड़ों असुरों से युद्ध किया था, तभी से वह पवित्र तीर्थ प्रचलित हुआ है । वहाँ की यात्रा से विष्णु प्रसन्न होते हैं, एक दिन तथा रात्रि का उपवार करने से वह तीर्थ ब्रह्महत्या से छुड़ा देता है ।९९-१०१। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति उत्तम तापसेश्वर की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पर कि एक व्याध से भयभीत होकर मृगी गिर पड़ी थी तथा जल में शरीर को गिराकर स्वर्ग को चली गयी थी । ऐसा देख वह व्याध अति विस्मित हुआ था। वहीं तापेश्वर नामक वह तीर्थ है, जैसा कि न तो कोई तीर्थ था न होगा ।१०२-१०३½। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति उत्तम ब्रह्मेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वह अमोहक नामक तीर्थ से विख्यात है, वहाँ जाकर पितरों का ही तर्पण करे तथा पूर्णिमा और अमावस्या तिथि को विधिपूर्वक श्राद्ध करे, हे राजन् ! वहाँ

---

१ ग. °न्द्रा पितृणां दत्तमक्षयम् । त्रै° । २ ग. शुम्भतीर्थे । ङ. शंभुतीर्थे । ४ क. ख. °केषु म° । ५ ङ. °म् । बोध° । ८ ग. योधानां पु° । ६ ङ. °तः । तापसेशं परं ती° ।

तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृपिण्डं तु दापयेत् । गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिता ॥१०६
तस्यां तु दापयेत्पिण्डं वैशाख्यां तु विशेषतः । तृप्यन्ति पितरस्तत्र यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥१०७
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गणपत्यन्तिकं व्रजेत् ॥१०८
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र [1]लिङ्गं यत्र जनार्दनः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते ॥१०९
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । कामदेवः स्वयं तत्र तपोऽतप्यत वै महत् ॥११०
दिव्यं वर्षसहस्रं तु शंकरं पर्युपासत । समाधिभङ्गदग्धस्तु शंकरेण महात्मना ॥१११
श्वेतपर्वा यमश्चैव हुताशः शुक्रपर्वणि । एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः ॥११२
दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः । उमया सहितो रुद्रस्तुष्टस्तेषां वरप्रदः ॥११३
मोक्षयित्वा तु तान्सर्वान्नर्मदातटमास्थितः । ततस्तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागताः[2] ॥११४
*ऊचुश्च परया भक्त्या देवदेवं वृषध्वजम् । त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं भवतु चोत्तमम् ॥
अर्धयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं दिक्षु समन्ततः ॥११५

स्नान कर पितरों को पिण्ड दान करे। वहाँ हाथी के आकार की एक शिला जल के मध्यभाग में प्रतिष्ठित है, विशेषकर वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को वहाँ पिण्डों का दान करे। ऐसा करने से उसके पितर तब तक तृप्त रहते हैं जब तक इस पृथ्वी का अस्तित्व रहता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति उत्तम सिद्धेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य गणपति के समीप प्राप्त होता है ।१०४-१०८। हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त जहाँ पर जनार्दन का लिंग है; वहाँ की यात्रा करे। हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है ।१०९। नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर परम रमणीय एक तीर्थ है, वहाँ पर स्वयम् कामदेव ने सहस्र दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या की थी और वहीं पर भगवान् शंकर के समाधि भंग के कारण उत्पन्न हुए क्रोध से वह दग्ध भी हुआ था। उस कुसुमेश्वर तीर्थ में अवस्थित होकर श्वेतवर्मा, यम, हुताश तथा शुक्रपर्वा एक अवसर पर दग्ध हो गये थे ।११०-११२। एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो जाने पर उन लोगों पर भगवान् शंकर सन्तुष्ट हुए थे और सन्तुष्ट होकर पार्वती समेत वरदान देने को इच्छुक हुए थे। शंकर सभी को मोक्ष प्रदान कर नर्मदा के तट पर अवस्थित हुए और वे लोग तीर्थ के प्रभाव से पुनः देवत्व को प्राप्त हुए तथा अति भक्तिपूर्वक देवदेव वृषभध्वज से बोले—'हे महाराज ! यह स्थान आप की कृपा से चारो ओर आधे योजन के परिमाण में उत्तम तीर्थ हो जाय ।११३-११५। उस

---

* एतदर्धं ङ. पुस्तक एव वर्तते ।

---

[1] क. ख. ग. लिङ्गो । घ. लिङ्गे । [2] ग. °गतः । त्व° ।

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा चोपवासपरायणः । कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ॥११६
वैश्वानरो[1] यमश्चैव कामदेवस्तस्था मरुत् । तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥११७
अङ्कोलस्य समीपे तु नातिदूरे तु तस्य वै । स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम् ॥११८
अग्निप्रवेशऽथ जले अथवा तु ह्यनाशके । अनिर्वर्तिका गतिस्तस्य मृतस्यामुत्र[2] जायते ॥११९
त्र्यम्बकेण तु तोयेन यश्चरुं श्रपयेन्नरः । अङ्कोलमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि ॥१२०
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ । उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतस्नानं करोति यः ॥१२१
पुरुषो वाऽथ स्त्री वाऽपि वसेदायतने शुचिः । सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रातः पूजां प्रकल्पयेत् ॥१२२
स यां गतिमवाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः । यदाऽवतीर्णः कालेन रूपवान्सुभगो भवेत् ॥१२३
मर्त्ये[3] भवति राजा च त्वासमुद्रान्तगोचरे । क्षेत्रपालं न पश्येत्तु दण्डपाणिं महाबलम् ॥१२४

पवित्र तीर्थ में स्नान कर तथा उपवास कर मनुष्य कामदेव का स्वरूप धारण कर रुद्रलोक में पूजित होते हैं। राजेन्द्र ! उस तीर्थ में वैश्वानर, यम, कामदेव तथा मरुत्—इन सबों ने तपस्या कर परम सिद्ध प्राप्ति की थी। अंकोल के समीप तथा उस तीर्थ के थोड़ी दूर पर स्नान, दान भोजन तथा पिण्ड दान करना चाहिये। अग्नि में प्रवेश कर जल में डूबकर तथा अनशन कर प्राण त्यागने वाले प्राणी की इस क्षेत्र में सर्वत्र बे-रोकटोक गति होती है।११६-११९। जो मनुष्य त्र्यम्बक तीर्थ के जल के द्वारा चरु को पकाता है तथा अंकोल की जड़ में विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसके पितर जब तक सूर्य तथा चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है, तब तक तृप्त रहते हैं। जो व्यक्ति सूर्य के उत्तरायण होने पर घृत द्वारा स्नान करता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, यदि शुचि मन हो आयतन में निवास करता है तथा प्रातः काल सिद्धेश्वर देव की पूजा करता है तो वह जिस उत्तम गति को प्राप्त करता है वैसी उत्तम गति को कोई सभी महायज्ञों द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकता।१२०-१२३। कालयोग से जब कभी वह पुनर्जन्म ग्रहण करता है तो सुन्दर होता है, मर्त्यलोक में आकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का राजा होता है। जो मनुष्य क्षेत्रपाल महाबलवान् दण्डपाणि का दर्शन नहीं करता, कर्ण कुण्डल को नहीं देखता, उसकी सारी यात्रा नष्ट हो जाती है। इस प्रकार उस तीर्थ की अति उत्तम महिमा के

---

[1] ङ. च. °नरयमाभ्यां तु कामदेवेन चापरे। त°। [2] ङ. °स्यात्रापि जा°। [3] घ. मर्त्यों।

वृथा तस्य भवेद्यात्रा ह्यदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम् । एवं तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः ।।
मुञ्चन्ति कुसुमैर्वृष्टिं तेन तत्कुसुमेश्वरम्। ।।१२५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्य एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९१।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ।।१०४१७।।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

भार्गवेशं ततो गच्छेद्भग्नो यत्र जनार्दनः । +असुरैस्तु महायुद्धे महाबलपराक्रमैः ।।१
हुंकारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२
शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन । हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।।३
तरुणादित्यसंकाशे तप्तकाञ्चनसप्रभे । वज्रस्फटिकसोपाने [1]चित्रपट्टशिलातले ।।४

प्रभाव से वहाँ सभी देवगण उपस्थित होते हैं तथा पुष्पों की वृष्टि करते हैं—इसी कारण उसका कुसुमेश्वर नाम है ।१२३-१२५।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९१।।

अध्याय १९१

मार्कण्डय ने कहा—तदनन्तर भार्गवेश तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ महाबलवान् असुरों से युद्ध करते हुए भगवान् जनार्दन भग्न हुए थे । हे राजेन्द्र ! वहाँ देव के हुँकार से दानवगण नष्ट हो गये थे । उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाता है ।१-२। हे पाण्डुनन्दन ! अब तुम शुक्ल तीर्थ की उत्पत्ति सुनो । एक बार अनेक प्रकार की धातुओं से रंग बिरंगे हिमवान् पर्वत के मनोहर शिखर पर, मध्यकालीन सूर्य की भाँति देदीप्यमान, तपाये हुए सुवर्ण के समान दिखाई पड़नेवाले स्फटिक तथा वज्र

एतदर्धं नास्ति ङ. च. पुस्तकयोः ।

---

[1] ग. ङ. °त्रवेदिशि° ।

जाम्बूनदमये दिव्ये [१]नानापुष्पोपशोभिते । तत्राऽऽसीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम् ॥५
[२]लोकानुग्रहकर्तारं[३] गणवृन्दैः समावृतम् । स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः ॥
उमया सहितं देवं मार्कण्डिः[४] पर्यपृच्छत ॥६
देवदेव महादेव ब्रह्मविष्णिवन्द्रसंस्तुत । संसारभयभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे ॥७
भगवन्भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम् । तीर्थानां परमं तीर्थं तद्वदस्व महेश्वर ॥८

ईश्वर उवाच

शृणु विप्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । स्नानाय गच्छ सुभग ऋषिसंघैः समावृतः ॥९
मन्वत्रिकश्यपाश्चैव याज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः * । यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥१०
नारदो गौतमश्चैव[५] सेवन्ते धर्मकाङ्क्षिणः । गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गयाम् ॥११
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे । दिवा वा यदि वा रात्रौ [६]शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥१२
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव स्नानाद्दानात्तपोजपात्[७] । होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥१३

की सीढ़ियोंवाले विचित्र रंग के दिव्य सुवर्ण मय शिला पट्ट पर, जो विविध प्रकार के पुष्पों से सुशोभित था, विराजमान अव्यय सर्वज्ञ पार्वती समेत लोकानुग्रह कर्त्ता भगवान् महादेव से मार्कण्डेय मुनि ने पूछा । उस समय वे भगवान् गणों से परिवेष्टित थे तथा समीप में स्कन्द, नन्दीश्वर, महाकाल, वीरभद्र प्रभृति प्रमुख प्रथम गण खड़े थे ।३-६। देवाधिदेव ! महादेव ! ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र द्वारा वन्दनीय ! मैं संसार के भय से भयभीत हूँ, अतः सुख प्राप्ति के उपाय मुझे बताइये । हे भगवन् ! भूत और भविष्य के भी स्वामी महेश्वर ! सभी तीर्थों में जो उत्तम स्थान हो तथा सभी पापों को नष्ट करनेवाला हो उसे मुझे बतलाइये ।७-८।

ईश्वर ने कहा—सभी शास्त्रों में विशारद ! महाबुद्धिमान् ! सुभग ! ऋषि समूहों के साथ स्नान के लिए प्रस्थान करो । मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, भृगु, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन बृहस्पति, नारद तथा गौतम—ये सभी ऋषिगण धर्म की अभिलाषा करनेवाले हैं । कनखल में गंगा अति पुण्यदायिनी हैं । प्रयाग, पुष्कर, तथा गया तीर्थ भी अति पवित्र हैं । राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने पर कुरुक्षेत्र का विशेष महत्त्व है, क्या रात क्या दिन—सभी समय में शुक्लतीर्थ महाफलदायी है ।९-१३। यह

---

*अत्र पुंस्त्वमार्षम् ।

---

[१] ङ. नारत्नोप° [२] ग. ङ. °नुग्रा हकं शान्तं ग° । [३] ख. घ. °हदं शान्तं ग° । [४] ग. ङ. °कण्डः परिपृच्छति । देवदे° । घ. °कण्डे परिपृच्छति । देवदे° । [५] ग. ङ. °व सर्वे ते ध° । [६] ग. घ. शुक्रती° । [७] ग. °पोव्रतात् । हो° । ङ. पोर्चनात् । हो° ।

शुक्लतीर्थं महापुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम् । चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः ॥१४
एतत्क्षेत्रं सुविपुलं योजनं वृत्तिसंस्थितम् । शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्[1] ॥१५
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति । +जगतीदर्शनाच्चैव भ्रूणहत्या व्यपोहति ॥१६
अहं तत्र ऋषिश्रेष्ठ तिष्ठामि[2] ह्युमया सह । वैशाखे चैत्रमासे तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥१७
कैलाशाच्चापि निष्क्रम्य तत्र संनिहिते ह्यहम् । दैत्यदानवगन्धर्वाः [3]सिद्धविद्याधरस्तथा ॥१८
गणाश्चाप्सरसो नागाः सर्वे देवाः समागताः । गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सार्वकामिकैः ॥१९
शुक्लतीर्थं तु राजेन्द्र ह्यागता धर्मकाङ्क्षिणः । रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा ॥२०
आजन्मजनितं पापं [4]शुक्लं तीर्थं व्यपोहति । स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्ड[5] ऋषिसत्तम ॥२१
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पपानि मानवः ॥२२
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति । तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा[6] पुनः[7] ॥२३

महापवित्र शुक्लतीर्थ नर्मदा नदी पर है, वहीं पर चाणक्य नामक राजर्षि को सिद्धि प्राप्त हुई थी । यह क्षेत्र एक योजन के परिमाण में गोलाकार अवस्थित है, यह शुक्लतीर्थ महापुण्यदायी तथा सभी पापों को नष्ट करनेवाला है । वृक्ष के अग्रभाग पर अवस्थित होकर देखने पर यह ब्रह्महत्या को दूर कर देता है । पृथ्वीतल से देखने पर भ्रूणहत्या का पाप छूट जाता है ।१४-१६। ऋषिश्रेष्ठ ! मैं उस पवित्र तीर्थ में पार्वती के साथ निवास करता हूँ, वैशाख तथा चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मैं कैलाश से भी आकर वहाँ निवास करता हूँ । दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, मेरे प्रमथ गण, अप्सराएँ, नाग तथा सभी देवगण आकाशमण्डल में सर्वत्र चलनेवाले विमानों पर बैठकर उस तीर्थ में सदा अवस्थित रहते हैं । हे राजेन्द्र ! यह शुक्लतीर्थ धर्म के इच्छुकों के आजन्म किये गये पापों को, जिस प्रकार धोबी के धोने से मलिन वस्त्र श्वेत हो जाता है उसी प्रकार नष्ट कर देता है ।१७-२०। हे ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय ! वहाँ का स्नान तथा दान अति पुण्यदायी है । इस शुक्लतीर्थ से बढ़कर न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा । मनुष्य अपने पूर्व जन्मों में किये गये पापों को वहाँ के केवल एक दिन रात के उपवास से नष्ट कर देता है । इस पवित्र तीर्थ में तपस्या, ब्रह्मचर्य-पालन, यज्ञाराधन, दान अथवा देवार्चन से जो पुष्टि होती है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं

+ इत उत्तरमय श्लोको ङ. पुस्तके—जलस्य स्पर्शनाच्चैव ब्रह्महत्यां व्यपोहति । जलस्य दर्शनादेव भ्रूणहत्यां व्यपोहति, इति ॥

---

१ ग. °म् । पांशुमात्रेण । २ ग. °मि प्रमथैः स° । ३ ग. ङ. °स्रे तु मुने मासि कृ° । ४ ग. शुक्लतीर्थे व्य° । ५ क. ख. °कंण्डे ऋ° । ६ ग. वा नृप । या पुष्टिर्जायते शुक्ले न सा । ७ ङ. °नः । वेददानेन या तुष्टि° ।

देवार्चनेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि। कार्तिकस्य तु मासस्य [1]कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥२४
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् । एकविंशकुलोपेतो न[2] च्यवेदैश्वरात्पदात् ॥२५
शुक्लतीर्थं महापुण्यमृषिसिद्धनिषेवितम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥२६
×स्नात्वा वै शुक्लतीर्थे तु ह्यर्चयेद्वृषभध्वजम् । कपालपूरणं कृत्वा तुष्यत्यत्र महेश्वरः ॥२७
अर्धनारीश्वरं देवं [3]पटे भक्त्या लिखापयेत् । शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च सद्विजैः ॥२८
जागरं कारयेत्तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः । प्रभाते शुक्वतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम् ॥२९
आचार्यान्भोजयेत्पश्चाच्छिवव्रतपराञ्शुचीन् । दक्षिणां च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥३०
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत् । एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३१
दिव्ययानं समारूढो गीयमानोऽप्सरोगणैः । शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥३२
शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम् । घृतेन स्नापयेद्देवं कुमारं चापि पूजयेत् ॥३३
एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु । मोदते शर्वलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३४

होती है। कार्तिक महीने के कृष्णपक्ष की चतुर्ददशी तिथि को उपवास कर परमेश्वर शंकर को घृत द्वारा स्नान कराये, ऐसा करनेवाला इक्कीस पीढ़ियों समेत कभी महादेव जी के स्थान से च्युत नहीं होता। यह शुक्लतीर्थ ऋषियों तथा सिद्धों द्वारा सुसेवित महापुण्यमय एवं पवित्र तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य फिर जन्म नहीं ग्रहण करता ।२१-२६। उस शुक्ल तीर्थ में स्नान कर वृषभध्वज की पूजा करे तथा कपाल को पूर्ण करे, इससे महेश्वर सन्तुष्ट होते हैं। भक्तिपूर्वक अर्धनारीश्वर महादेव की वस्त्र या लेख्य पत्र पर प्रतिमा बनवाये, ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों एवं शंख, तुरुही आदि वाद्यों के साथ नृत्य गीत आदि कराते हुए रात भर जागरण करे। प्रातःकाल शुक्लतीर्थ में स्नानकर महादेव की पूजा करे, पश्चात् शिव की भक्ति करनेवाले पवित्रआचरण आचार्यों को भोजन कराये, कृपणता छोड़कर यथाशक्ति दक्षिणा दे, पश्चात् प्रदक्षिणा कर धीरे से देव के समीप जाय। इस प्रकार विधानपूर्वक जो इस व्रत का पालन करता है उसके पुण्य का फल सुनो ।२७-३१। वह पुरुष दिव्य रथ पर समासीन हो, गाती हुई अप्सराओं के साथ शिव के समान अतुलित बलयुक्त हो महा प्रलय पर्यन्त स्थित रहता है। इस शुक्ल तीर्थ में जो स्त्री सुवर्ण का दान करती है, घृत से देव को स्नान कराती है तथा स्वामिकार्त्तिकेय का पूजा करती है, उसके पुण्य का फल सुनो, वह स्त्री जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहते हैं तब तक शिव के लोक में आनन्द का अनुभव करती है ।३२-३४। पूर्णिमा, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव के अवसर पर उपवास कर इन्द्रियों को स्ववश में रख

× इत आरभ्य सद्विजैरित्यन्तग्रन्थो नास्ति ग. ङ. पुस्तकयोः ।

---

[1] ङ. शुक्लपक्षे । [2] ग. न त्यजेदैश्वरं पदम् । शु° । [3] च. पटस्थं यो लि° ।

पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा । स्नात्वा तु सोपवासः सन्विजितात्मा समाहितः ॥३५
दानं दद्याद्यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशंकरौ । एवं तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥३६
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा । उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३७
यावत्तद्रोमसंख्या च तत्प्रसूतिकुलेषु च । तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०४५५॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्त्वनरकं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचवेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र नरकं च न पश्यति ॥१
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन । तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यस्यास्थीनि विनिक्षिपेत् ॥२
विलयं यान्ति [1]पापानि रूपवाञ्जायते नरः । गोतीर्थं तु ततो गत्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥३

समाहित चित्त हो जो स्नान करके यथाशक्ति दान देता है उसके ऊपर भगवान् शंकर तथा विष्णु प्रसन्न रहते हैं । इस तीर्थ के प्रभाव से उसके सभी दान अक्षय परिणाम देनेवाले हो जाते हैं । इस तीर्थ में जो अनाथ, दुर्गतिग्रस्त, अथवा सनाथ ही, ब्राह्मण का विवाह करवा देता है उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे सुनो। उसके जितने रोयें हैं, उसके वंश में उत्पन्न होनेवालों में जितने रोयें हैं, उतने सहस्र वर्षों तक वह मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है ।३५-३८।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १९३

मार्कण्डेय ने कहा—तदनन्तर अनरक तीर्थ की यात्राकर वहाँ स्नान करे । वहाँ के स्नान करने मात्र से मनुष्य नरक का दर्शन नहीं करता । हे पाण्डुनन्दन ! उस अनरक तीर्थ के माहात्म्य को तुम सुनो। हे राजेन्द्र ! उस पवित्र तीर्थ में जिसकी हड्डियाँ फेंकी जाती हैं, वह मनुष्य पुनर्जन्म में अतिरूपवान् होता है तथा उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर गोतीर्थ की यात्रा कर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो

---

[1] क. ख. ङ. सर्वाणि ।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥४
ज्येष्ठमासे तु संप्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः । तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति ॥५
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम् । सघृतं श्रीफलं जग्ध्वा दत्त्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ॥६
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति । शिवतुल्यबलो भूत्वा नैवासौ जायते पुनः ॥७
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः[1] । पूजयेत्तु शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम् ॥८
अङ्गारकनवम्यां तु अमायां च विशेषतः । स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् ॥९
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद्भक्तितो द्विजान् । पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारितः ॥१०
शैवं पदमवाप्नोति यत्र चाभिमतं भवेत् । अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव सः ॥११
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः । राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाञ्जायते कुले ॥१२
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऋषितीर्थमनुत्तमम् । तृणबिन्दुर्नाम ऋषिः शापदग्धो व्यवस्थितः ॥१३
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शापमुक्तोऽभवद्द्विजः । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गङ्गेश्वरमनुत्तमम् ॥१४
श्रावणे मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी । स्नातमात्रो नरस्तत्र[2] रुद्रलोके महीयते ॥१५
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात् । गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ॥१६

जाता है ।१-३। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे । हे राजन् ! उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । ज्येष्ठ के महीने में—विशेषतः चतुर्दशी तिथि को —उस तीर्थ में उपवास रख जो मनुष्य कपिला गाय का दान देता है, घृत से दीपक जला घृत द्वारा शिव का स्नान करा, घृत समेत बेल का भोजन कर अन्त में प्रदक्षिणा कर, घण्टा एवं सभी आभूषणों में आभूषित कपिला का दान दे भक्तिपूर्वक शिव की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराता है, विशेषकर अंगारक की नवमी तथा अमावस्या को स्नान कराता है वह भावी जन्म में सुन्दर आकृतिवाला होता है ।४-९। घृत द्वारा लिंग का स्नान करा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा कर मनुष्य सैकड़ों की भीड़ के साथ पुष्पक बिमान द्वारा शिव का स्थान प्राप्त करता है जहाँ जाकर उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और अक्षयकाल पर्यन्त जिस प्रकार शिव जी विहार करते हैं उसी प्रकार वह भी विहार करता है । फिर जब कर्मों के संयोग से मृत्युलोक में आता है परमोच्चकुल में अति स्वरूपवान् तथा धर्मिष्ठ राजा होता है ।१०-१२। हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त अति उत्तम ऋषितीर्थ की यात्रा करे, जहाँ तृणविन्दु नामक ऋषि शाप के कारण दग्ध हुए थे, किन्तु उस तीर्थ के प्रभाव से वे वहाँ शापमुक्त हुए थे । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम गंगेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे । श्रावण के महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है, वहाँ पर पितरों का तर्पण कर मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त होता है ।१३-१५½। गंगेश्वर तीर्थ के समीप में उत्तम गंगाव-

---

२ च. °तः स्नापयित्वा शि° । ३ ग. °त्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः । आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥१७
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा व्रजेद्वै यत्र शंकरः । सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१८
पितृणां तर्पणं कृत्वा ह्यश्वमेधफलं लभेत् । प्रयागे यत्फलं दृष्टं शंकरेण महात्मना ॥१९
तदेव निखिलं दृष्टं गङ्गावदनसंगमे । तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः ॥२०
दशाश्वमेधजननं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा ॥२१
अमायां च नरः स्नात्वा व्रजते यत्र शंकरः । सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ॥२२
पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत् । दशाश्वमेधात्पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः ॥२३
दिव्यं वर्षसहस्रं तु ईश्वरं पर्युपासते* । वल्मीकवेष्टितश्चासौ पक्षिणां च निकेतनः ॥२४
आश्चर्यं सुमहज्जातमुमायाः शंकरस्य च । गौरी पप्रच्छ देवेशं कोऽयमेवं तु संस्थितः ॥
देवो वा दानवो वाऽथ कथयस्व महेश्वर ॥२५

महेश्वर उवाच

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः । मां ध्यायते समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये[1] ॥२६

वदन नामक तीर्थ है, वहाँ किसी विशेष कामना से अथवा निष्काम भावना से मनुष्य स्नान कर अपने जन्म भर के पापों से छुटकारा पाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य वहाँ जाता है जहाँ शंकर का निवास है । सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये । वहाँ पितरों का तर्पण करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । महात्मा शंकर ने प्रयाग में स्नानादि का जो फल देखा है वही सब गंगावदन के संगम तीर्थ में भी देखा है ।१६-१९½। उस तीर्थ के पश्चिम ओर, अधिक दूर पर नहीं, दशाश्वमेधजनन नामक तीनों लोकों में विख्यात तीर्थ है, भाद्रपद महीने की अमावस्या तिथि को एक रात्रि का उपवास कर मनुष्य वहाँ जाता है जहाँ का शंकर निवास है । सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये। पितरों का तर्पण कर वहाँ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । दशाश्वमेध तीर्थ की पश्चिम दिशा में ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगुजी ने सहस्र दिव्य वर्षों तक शिव जी की आराधना की थी, उस समय उनका शरीर बिलों से जर्जरित तथा पक्षियों का घोसला-सा बन रहा था । उन्हें ऐसा देख पार्वती तथा शंकर जी परम विस्मित हुए थे। पार्वती ने देवदेव से पूछा था—'हे महेश्वर ! इस प्रकार स्थित यह कौन है ? कोई देवता हैं या दानव हैं ? ।२०-२५।

महेश्वर ने कहा—'हे प्रिये ! यह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगु नामक मुनि हैं, समाधिलीन हो ये मेरा

---

* अत्र लुगभाव आर्षः ।

[1] ङ. प्रियम् ।

ततः प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत । [१]धूमवत्तच्छिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसे ॥
दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥२७

महेश्वर उवाच

न जानासि महादेवि ह्ययं क्रोधेन वेष्टितः । दर्शयामि यथातथ्यं [२]प्रत्ययं ते करोम्यहम् ॥२८
ततः स्मृतोऽथ देवेन धर्मरूपो वृषस्तदा । स्मरणात्तस्य देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः ॥
वदंस्तु मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो ॥२९

भगवानुवाच

वल्मीकं त्वं खनस्वैनं विप्रं भूमौ निपातय । [३]योगस्थस्तु ततो ध्यायन्भृगुस्तेन निपातितः ॥३०
तत्क्षणात्क्रोधसंतप्तो हस्तमुत्क्षिप्य[४] सोऽशपत् । एवं संभाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि[५] भो वृष ॥
अद्याहं[६] संप्रकोपेण प्रलयं त्वां नये वृष ॥३१
[७]धर्षितस्तु तदा विप्रश्चान्तरिक्षं गतो वृषम् । आकाशे प्रेक्षते विप्र एतदद्भुतमुत्तमम् ॥३२

ध्यान कर रहे हैं' । शिव जी की बात सुन देवी ने हंसते हुए महादेव से कहा–'तपस्या करते-करते इनकी शिखा धुएँ के समान हो गई है किन्तु तब भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो रहे हो, अतः इससे निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि तुम कितनी कठिनाई से अनुकूल बनाये जा सकते हो ! २६-२७।

महेश्वर ने कहा—'हे महादेवि ! तुम यह नहीं जानती, ये मुनि क्रोध से भरे हुए हैं। देखो, इनके क्रोध को दिखलाकर तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ' । ऐसा कह महादेव ने धर्मरूप वृष का स्मरण किया स्मरण करते ही वृषभ शीघ्र उपस्थित हुआ और मनुष्य वाणी में बोलते हुए कहा—'हे प्रभो ! मेरे लिए क्या आज्ञा कर रहे हो'? ।२८-२९।

भगवान् ने कहा—'इस बिल को तुम खन डालो और इस ब्राह्मण को नीचे पृथ्वीतल पर गिरा दो' । शिव के ऐसे आदेश पर योगमुद्रा में लीन भृगु को उस वृषभ ने नीचे ढकेल कर गिरा दिया, जिससे उसी क्षण अति क्रुद्ध एवं सन्तप्त हो हाथ को उठा उन्होंने वृषभ को 'अरे वृषभ ! कहाँ जा रहे हो' । ऐसा कहते हुए यह शाप दे दिया कि 'आज मैं अति क्रोध से तुम्हारा नाश किये देता हूँ' । मुनिवर भृगु जी इस प्रकार अपमानित हुए और वृषभ ऊपर आकाश में चला गया। उसे आकाश में जाते देख ब्राह्मण ने सोचा कि यह क्या अद्भुत बात ? उसी अवसर पर ऋषि के आगे हँसते हुए भगवान् रुद्र

---

१ ध. ङ. च. °र्तिशिखा । २ ङ. च. प्रत्यक्षं । ३ ङ. °गस्थितं ततो दृष्ट्वा ध्यायंस्ते° । ४ ङ. °प्य चाक्षिप° । ५ ग. ङ. च °सि रे वृ° । ६ ङ. °हं त्वां प्रकोपेन नयामि प्रलयं वं° । ७ ङ. च. धर्षयित्वा ततो विप्रमन्तरिक्षगतो वृषः । आ° ।

[1]तत्र [2]प्रहसितो° रुद्र ऋषिरग्रे व्यवस्थितः । तृतीयलोचनं दृष्ट्वा वैलक्ष्यात्पतितो भुवि ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम् ॥३३
प्रणिपत्य भूतनाथंः भवोद्भवं[3] त्वामहं दिव्यरूपम्[4]
[5]भवातीतो भुवनपते प्रभो तु विज्ञापये किंचित् ॥३४
त्वद्गुणनिकरान्वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम ॥
वासुकिरपि हि कदाचिद्वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥३५
भक्त्या तथाऽपि शंकर भुवनपते त्वत्स्तुतौ मुखरः ।
वदतः क्षमस्व भगवन्प्रसीद मे तव चरणपतितस्य ॥३६
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्त्योर्विनाशने देव ।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते भुवनेश्वर नैव दैवतं किंचित् ॥३७
यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च[6] धारणा योगः ॥
त्वद्भक्तेः[7] सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्रांशम्[8] ॥३८
उच्छिष्टरसरसायनखड्गाञ्जनपादुकाविवरसिद्धिर्वा ।
[9]चिह्नं भवव्रतानां दृश्यति चेह जन्मनि प्रकटम् ॥३९

उपस्थित हुए । शिव के तीसरे नेत्र को देख मुनि विह्वल हो पृथ्वी पर गिर पड़े और दण्ड की भाँति पृथ्वी पर पड़े-पड़े परमेश्वर की स्तुति करने लगे ।३०-३३। 'हे भुवनों के स्वामी ! प्रभो ! तुम संसार के अतीत पुरुष हो, सभी भूतों के स्वामी भवोद्भव, दिव्यस्वरूप तुमसे मैं कुछ विज्ञापित (निवेदित) कर रहा हूँ । भुवनपते तुम्हारे गुणों के समूहों का कौन मनुष्य वर्णन कर सकता है, सर्पराज वासुकि की भाँति कोई यदि किसी तरह सहस्रमुख भी हो जाय तब भी तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता । हे शंकर ! यह जानते हुए भी मैं भक्ति के कारण तुम्हारी स्तुति करने को उद्यत हुआ हूँ । हे भगवन् ! मैं आप के चरणों में पड़ा हूँ, मेरी यह, ढिठाई क्षमा कीजिए ।३४-३६। हे देव ! तुम सत्त्व, रज एवं तम—तीनों गुणों से युक्त सृष्टि की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाश करनेवाले हो । हे भुवनेश्वर ! भुवनपते ! तुम्हे छोड़कर जगत् में अन्य कोई देवता ऐसा नहीं है । यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा अथवा योग— ये सभी आप की भक्ति के सहस्रवें अंश की भी बराबरी नहीं कर सकते ? उच्छिष्टरस, रसायन, खड्ग, अंजन, पादुका, विवर-सिद्धि आदि चिह्न इस जन्म में शिव के व्रत करनेवालों के प्रत्यक्ष देखे जाते हैं ।३७-३९। देव ! यद्यपि तुम्हारा भक्त तुम्हें दुष्टता के

---

[1] ङ. च. ततः प्र° । [2] क. ख. ग. घ. °सिते रु° । [3] ङ. च. °वं दिव्यमयं नित्यम् । भीतोऽहं भुवनपते प्रभो प्रभो त्वा वि° । [4] ग. °प । भ° । [5] घ. भवसितो । [6] ग. घ. ङ. च. °दानै. वेदाभ्यासोऽवधा° । [7] ग. घ. °द्भक्तः स° । [8] ग. घ. °स्रांशैः । उत्तिष्ठ रस° । [9] ङ. च. चिह्नानि तव नतानां दृश्यन्ते जन्मिनः प्र° ।

शाठ्येन नमति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव ।
भक्तिर्भवभेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ ॥४०
परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसंतप्तम् ।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥४१
मिथ्याभिमानदग्धं [१]क्षणभङ्गुरदेहविलसितं क्रूरम् ।
कुपथाभिमुखं पतितं[२] त्वं मा पापात्परित्राहि ॥४२
दीने द्विजगणसार्थे बन्धुजनेनैव दूषिता ह्याशा ।
तृष्णा तथाऽपि शंकर किं मूढं मां विडम्बयति ॥४३
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं[३] प्रदत्स्व यावदासिनीं नित्यम् ।
छिन्धि मदमोहपाशानुत्तारय[४] मां महादेव ॥ ॥४४
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम् ।
यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येद्भृगोर्यथा च शिवः ॥४५

भाव से अभिभूत होकर नमस्कार करता है, पर तुम उसकी भी अभिलाषाओं तो पूरा करते ही हो। हे नाथ! इस सांसारिक दुःखों एवं द्वन्द्वों को दूर करनेवाली एवं मोक्ष प्राप्ति की साधन रूप भक्ति को तुमने बना दिया है। दूसरे की स्त्री तथा दूसरे के धन के लोलुप, एवं दूसरे से अपमान जनित सन्ताप से सन्तप्त, परमुखापेक्षी मेरे जैसे की हे परमेश्वर! तू रक्षा कर।४०-४१। मिथ्या अभिमान में जले हुए क्षण भर में नष्ट होनेवाले शरीर से शोभित, क्रूर कर्म में निअत रहनेवाले, कुमार्ग की ओर अभिमुख तथा गिरे हुए मुझको तुम पाप कर्म से बचाओ। हे शंकर! मुझ जैसे ब्राह्मणों के साथी दीन को, भी जिसकी सभी आशाएँ बन्धुवर्गों ने ही दूषित कर दी हैं, तृष्णा इतना क्यों परेशान कर रही है? तुम इस तृष्णा को शीघ्र ही हर लो और नित्य निवास करनेवाली (चिरस्थायिनी) लक्ष्मी (शान्ति) मुझे दो।४२-४३½। मद एवं मोह के पाशों को मेरे समीप से काटकर अलग कर दो, हे महादेव! मेरा निस्तार करो'। इस करुणाभ्युदय नामक सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले दिव्य स्तोत्र का पाठ जो भक्तियुक्त होकर करता है, उसके ऊपर शिव जी उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे भृगु के ऊपर प्रसन्न हुए थे।४४-४५।

---

[१] क. ख. °रविभवविलसन्तम्। क्रूरं कुपथ्याभि। [२] क, ख. ग, °तं मां पाहि देवेश। दी°।
[३] ङ. °क्ष्मीं मे देहि हृदयवासि°। [४] ग. सुधियाम्।

ईश्वर उवाच

अहं तुष्टोऽस्मि ते वत्स प्रार्थयस्वेप्सितं वरम् । उमया सहितो देवो वरं तस्य ह्यदापयत् ॥४६

भृगुरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम । रुद्रवेदी भवेदेवमेतत्संपादयस्व[1] मे ॥४७

ईश्वर उवाच

एवं भवतु विपेन्द्र[2] क्रोधस्त्वा[3] न भविष्यति । न पितापुत्रयोश्चैव[4] त्वैकमत्यं भविष्यति ॥४८
तदाप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे[5] देवाः सकिंनराः । उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः ॥४९
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य[6] सद्यः पापात्प्रमुच्यते । अवशाः स्ववशा वाऽपि म्रियन्ते यत्र जन्तवः ॥५०
+गुह्यातिगुह्या[7] सुगतिस्तेषां निःसंशयं भवेत् । एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५१
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः । उपानहौ च च्छत्रं च देयमन्नं च काञ्चनम् ॥५२

ईश्वर ने कहा—'वत्स ! मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ, मनोवाञ्छित वरदान माँगो' । ऐसा कह पार्वती समेत भगवान् शंकर ने भृगु को वरदान देने का निश्चय किया ।४६।

भृगु ने कहा—हे देवेश ! यदि आप सचमुच मुझपर सन्तुष्ट हैं और वास्तव में वरदान देना चाहते हैं तो हे देव ! मैं रुद्र का भली भाँति जाननेवाला हो जाऊँ तथा यह तीर्थ स्थान मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाय ।४७।

ईश्वर ने कहा—'विप्रेन्द्र ! ऐसा ही होगा अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा ।तुम्हारे पिता और पुत्र में कभी कलह नही होगा, अब ऐक्य स्थापित होगा' । तभी से ब्रह्मा आदि सभी देवगण किन्नरों के साथ इस भृगु के तीर्थ स्थान की, जहाँ साक्षात् शिव जी सन्तुष्ट हुए थे, उपासना करते हैं । उस तीर्थ के दर्शन मात्र करने से वे शीघ्र ही अपने पाप कर्मों से छुटकारा पा जाते हैं । अपने अधीन रहनेवाले या पराधीन रहनेवाले—कोइ भी जन्तु यदि वहाँ मृत्युलाभ करते हैं तो गुह्य से अति गुह्य उनकी गति होती है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । यह विपुल क्षेत्र सभी पापकर्मों का विनाश करनेवाला है ।४८-५१। उस भृगुतीर्थ में

---

* इत उत्तरं सार्धश्लोको न विद्यते ग. पुस्तके ।

---

[1] ग. ङ. °देषा एत° । [2] ङ. °न्द्र अक्रुद्धस्त्व भ° । [3] क. ग. °धस्तानं भ° । [4] ग. ङ. च. °व एकवाक्यं भ° । [5] ङ. च. सदेवासुरकिं° । [6] ङ. देवस्य । [7] ङ. च. °ह्यास्सुग° ।

भोजनं च यथाशक्त्या ह्यक्षयं[1] च तथा भवेत् । सूर्योपरागे यो [2]दद्याद्दानं चैव यथेच्छया ॥५३
दीयमानं तु तद्दानमक्षयं तस्य तद्भवेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु यत्फलं त्वमरकण्टके ॥५४
तदेव निखिलं पुण्यं भृगुतीर्थे न संशयः । क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानतपः क्रियाः ॥५५
न क्षरेत्तु तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर । यस्य वै तपसोग्रेण तुष्टेनैव तु शंभुना ॥५६
सांनिध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे नराधिप । प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु [3]यत्र तुष्टो महेश्वरः ॥५७
एवं तु वदतो देवीं[4] भृगुतीर्थमनुत्तमम् । न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः ॥५८
नर्मदायां स्थितं दिव्यं [5]भृगुतीर्थं नराधिप । भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित् ॥५९
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम् ॥६०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥६१
धौतपापं ततो गच्छेत्क्षेत्रं[6] यत्र वृषेण तु । नर्मदायां कृतं राजन्सर्वपातकनाशनम् ॥६२
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां [7]विमुञ्चति । तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः ॥६३

स्नान करनेवाले प्राणी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, जो वहाँ मरते हैं वे पुनः जन्म नहीं धारण करते । उस तीर्थ में जाकर जूते, छाता, अन्न, सुवर्ण तथा भोजन का यथाशक्ति दान करना चाहिये, वहाँ देने से वे सभी अक्षयफल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं । सूर्यग्रहण के अवसर पर जो प्राणी अपनी इच्छा से दान करता है, उसे दान अक्षय फल प्रदान करनेवाला हो जाता है । चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो फल अमरकण्टक तीर्थ में प्राप्त होते हैं, वे ही सब भृगुतीर्थ में भी होने हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।५२-५४½। दान, कर्म, यज्ञ तथा तपस्या—सभी नष्ट होनेवाली हैं, किन्तु हे युधिष्ठर ! उन भृगु के तीर्थ में की गई तपस्या कभी नष्ट होनेवाली नहीं है, जिनकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर शंकर जी ने वरदान दिया था ।५५-५६। हे राजन् ! वह भृगु का परम पवित्र तीर्थ, जहाँ पर भगवान् महेश्वर सन्तुष्ट हुए थे, तीनों लोकों में विख्यात है । वहाँ महादेव जी का सन्निधान बतलाया जाता है ।महादेव जी ने इस प्रकार की बातें पार्वती जी से कही थी कि इस अति उत्तम भृगुतीर्थ को जो मनुष्य नहीं जानते वे विष्णु की माया से विमोहित हैं, मूढ हैं ।५७-"८। हे राजन् ! यह दिव्य भृगु तीर्थ नर्मदा नदी पर अवस्थित है । इस भृगुतीर्थ के माहात्म्य को जो मनुष्य सुनता है, वह सभी पापकर्मों से छुटकारा पाता है तथा शिवलोक को जाता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति उत्तम गौतमेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन् ! वहाँ स्नान कर उपवास में परायण रह मनुष्य सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।५९-६१। हे राजन् ! तदनन्तर धौतपाप नामक क्षेत्र की यात्रा करनी चाहिये, जिसका निर्माण नर्मदा में शिव के नान्दी ने किया था, वह तीर्थ सभी पाप कर्मों से मुक्ति दिलानेवाला है । उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से छूट जाता है। हे राजन् ! उस तीर्थ में

---

[1] ङ. °यं तस्य तद्भवे° । [2] ग. °द्यादन्नं चै° । [3] ग. यस्य । ङ. यथा । [4] ग. घ. ङ. °वीं वृषोत्सर्गम् । [5] ग. घ. ङ. वृषतीर्थं । [6] घ. °च्छेद्धातं य° । [7] ङ. व्यपोहति ।

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च [1]शिवतुल्यबलो भवेत् । वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः ॥६४
कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराड्भवेत् । ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम् ॥६५
प्रयागे यत्फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम् । तत्फलं लभते राजन्स्नातमात्रो हि मानवः ॥६६
मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे[2] चतुर्दशी । उपोष्य रजनीमेकां तस्मिन्स्नानं समाचरेत् ॥
यमदूतैर्न बाध्येत [3]रुद्रलोकं स गच्छति ॥६७
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः । [4]हिरण्यद्वीपविख्यातं[5] सर्वपापप्रणाशनम् ॥६८
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धनवान्रूपवान्भवेत् । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं कनखलं महत् ॥६९
गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति ॥७०
क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति । तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ॥७१
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम् । हंसास्तत्र विनिर्मुक्ता गता ऊर्ध्वं न संशयः ॥७२
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः । वाराहं रूपमास्थाय अर्चितः परमेश्वरः[6] ॥७३

जो मनुष्य प्राणत्याग करता है वह चतुर्भुज एवं त्रिनेत्र होकर शिव के समान पराक्रमशाली होता है इस प्रकार शिव के तुल्य पराक्रमशाली हो वह दस सहस्र कल्पों तक स्वर्ग में निवास करता है । इस दीर्घ कालीन अवधि को समाप्त करने के बाद वह पृथ्वी मण्डल का एकच्छत्र सम्राट् होता है ।६२-६४½। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति श्रेष्ठ ऐरण्डी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । मार्कण्डेय जी ने प्रयागतीर्थ के माहात्म्य में जितने पुण्य का वर्णन किया है, हे राजन् ! वे सब पुण्य स्नान करने मात्र से इस तीर्थ में मनुष्य को मिलते हैं । भाद्रपद महीने में शुक्ल चतुर्दशी तिथि को एक रात का उपवास रख उस तीर्थ में स्नान करे, ऐसा करनेवाले को यमदूत नहीं बांधते और वह रुद्र लोक को प्राप्त करता है ।६५-६७। हे राजेन्द्र ! सभी पापों को नष्ट करनेवाले हिरण्यद्वीप नाम से विख्यात उस तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जहाँ भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी । हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान करनेवाला प्राणी धन तथा रूप से युक्त होता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति महान् कनखल नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । हे नराधिप ! उस पवित्र तीर्थ में गरुड़ ने तपस्या की थी, वह तीनों लोको में सुप्रसिद्ध तीर्थ है, वहीं योगिनियों का निवास स्थल है, जो योगियों के साथ क्रीडा करती हैं तथा शिव के साथ नृत्य करती हैं। हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ।६८-७१। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति उत्तम हंस तीर्थ की यात्रा करे वहीं पर हंसगण मुक्त होकर स्वर्ग को गये थे, इसमें सन्देह नहीं । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर वाराह तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जहाँ पर परमेश्वर जनार्दन को सिद्धि मिली थी और वे वाराह रूप में

---

[1] ङ. °तुल्यो भवेन्नरः व° ।
[2] ङ. च. °पक्षस्य चाष्टमी । उ° ।
[3] ग. घ. ङ. इन्द्रलोकं ।
[4] क. ख. °ण्यदीपेति वि° ।
[5] ग. द्वीपं वि° ।
[6] ग. ङ. °रः । वारा° ।

वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां तु विशेषतः । विष्णुलोकमवाप्नोति [१]नरकं न च पश्यति ॥७४
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् । पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत् ॥७५
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते । दक्षिणेन तु द्वारेण कन्यातीर्थं तु विश्रुतम्[२] ॥७६
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत् । प्राणिपत्य तु चेशानं[३] बलिस्तेन प्रसीदति ॥७७
हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे च दृश्यते । शक्रध्वजे समावृत्ते गुप्ते नागरिकेतने ॥७८
नर्मदासलिलौघेन [४]तरुन्संप्लावयिष्यति[५] । अस्मिन्स्थाने निवासः स्याद्विष्णुः शंकरमब्रवीत् ॥७९
द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद्बहु सुवर्णकम् । तत गच्छेत्तु राजेन्द्र कन्यातीर्थे सुसंगमे ॥८०
स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाप्नुयात् । [६]देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥८१
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते । ततो गच्छेच्च राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम् ॥८२
यत्तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् । अपरपक्षे [७]त्वमायां तु स्नानं तत्र समाचरेत् ॥८३
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता । भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता ॥८४

पूजित हुए थे।विशेषकर द्वादशी तिथि को वाराह तीर्थ में स्नानकर मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है तथा नरक का कभी दर्शन नहीं करता। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति उत्तम चन्द्र तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। विशेषकर पूर्णिमा तिथि को वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य चन्द्र-लोक में पूजित होता है।७२-७५½। नर्मदा के दक्षिणी द्वार पर कन्या नामक विख्यात तीर्थ है, शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को वहाँ स्नानकर ईशान शिव को प्रणाम करे, ऐसा करने से बलि प्रसन्न होता है। उस स्थान से आकाश मण्डल में दिव्य हरिश्चन्द्रपुर उस समय दिखाई पड़ता है, जिस समय आकाश इन्द्रधनुष से आच्छन्न रहता है और सभी नागरिकों ?......के शरीर गुप्त ?...... हो जाते हैं। नर्मदा की जलराशि वृक्षों को डुबा देगी और इसी स्थान पर मेरा निवास होगा—ऐसा विष्णु भगवान् ने शंकर से कहा था।७६-७९। इस द्वीपेश्वर नामक तीर्थ में स्नानकर मनुष्य पर्याप्त सुवर्ण प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर कन्या तीर्थ के सुन्दर संगम की यात्रा करे, वहाँ के केवल स्नान करने से मनुष्य पार्वती का उत्तम लोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी तीर्थों में श्रेष्ठ देव तीर्थ की यात्रा करनी करनी चाहिये। हे राजेन्द्र ! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति पवित्र शिखि तीर्थ की यत्रा करे, वहाँ पर जो दान दिया जाता है व सब कोटि गुना फल देनेवाला होता है, अमावास्या तिथि के तीसरे पहर में वहाँ स्नानकर, यदि एक ब्राह्मण को भोजन कराये तो उससे कोटि ब्राह्मणों के भोजन कराने का पुण्य प्राप्त होता है।८०-८३½। हे राजेन्द्र ! उस भृगु तीर्थ में एक कोटि तीर्थों की अवस्थिति है जो कोई मनुष्य निष्काम भावना से अथवा किसी विशेष कामना से युक्त हो वहाँ स्नान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल

---

[१] ग. °कं चैव गच्छति। [२] क. ग. तीरेणः। [३] ग. °नं हरिस्ते°। ङ. च. बली राजा प्र°।
[४] ङ. च. तत्सर्वं प्ला°। [५] ग. संमार्जयिष्यति। [६] ग. देवीती°। [७] ङ. परपक्षे।

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नानं समाचरेत् । अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते ॥८५
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो भृगुस्तु मुनिपुंगवः । अवतारः कृतस्तत्र शंकरेण महात्मना ॥८६

इति श्री मात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०५४१॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र[1] ह्यङ्कुशेश्वरमुत्तमम् । दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो [2]राजन्स्वर्गलोके महीयते ॥२
[3]अश्वतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाञ्जायते नरः ॥३

प्राप्त करता है तथा देवताओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है । उस पवित्र तीर्थ में मुनिपुङ्गव भृगु को परम सिद्धि प्राप्त हुई थी, महात्मा शंकर वहीं अवतार धारण करते हैं ।८५-८६।

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा-माहात्म्य नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति पवित्र अंकुशेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्थित देव का दर्शन मात्र करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो माता है । राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ को जाय, राजन् ! वहाँ स्नान मरने से मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है । तदनन्तर अश्व तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ पर स्नान करे, ऐसा करनेवाला मनुष्य सुन्दर, दर्शनीय तथा सभी धन-धान्यों से युक्त होता है ।१-३। तत्पश्चा् प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित पैतामह नामक तीर्थ की

---

[1] ग. °न्द्र संकुलेश्व° । ङ. च. न्द्र अङ्केश्व° । [2] च. ङ. रुद्रलोके । [3] ग. च. अश्वितीर्थं । ङ. अग्नितीर्थं ।

पैतामहं[1] ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डं तु दापयेत् ॥४
तिलदर्भविमिश्रं तु ह्युदकं तत्र दापयेत् । तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् । विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥६
मनोहरं ततो गच्छेत्तीर्थं परमशोभनम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृलोके महीयते ॥७
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ॥८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कुब्जतीर्थमनुत्तमम् । विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम्[2] ॥९
यान्यान्कामयते कामान्पशुपुत्रधनानि च । प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र त्रिदशज्योतिविश्रुतम् । यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ॥११
भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः । प्रीतस्तासां [3]महादेवो * दण्डरूपधरो हरः ॥१२
विकृताननबीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः । तत्र कन्या महाराज वरयन्परमेश्वरः ॥१३
कन्यामृषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् । तीर्थं तत्र महाराज ऋषिकन्येति विश्रुतम् १४॥

यात्रा करे, वहाँ जाकर मनुष्य स्नानकर भक्तिपूर्वक पितरों को पिण्डदान करे। वहाँ पितरों के उद्देश से तिल तथा कुश से विमिश्रित जलाञ्जलि दे । उस तीर्थ के प्रभाव से वहाँ के सभी कार्य अक्षय पुण्यदायी होते हैं। जो मनुष्य सावित्री तीर्थ में पहुँच कर स्नान करता है, वह अपने समस्त पापों को नष्टकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।४-६। तदनन्तर परम रमणीक मनोहर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य पितरों के लोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति पवित्र मनोहर तीर्थ की यात्रा करे, राजन् उसमें स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है ।७-८। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति पवित्र कुब्जतीर्थ की यात्रा करे, जो तीनों लोकों में सभी पापों को विनष्ट करनेवाला विख्यात है, हे नराधिप ! जिन-जिन कामनाओं की अभिलाषा, पशु पुत्र एवं धन प्राप्त करने की आकांक्षाएँ मनुष्य को उस पवित्र तीर्थ में होती हैं, वे सभी उस तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त हो जाती हैं ।९-१०। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर त्रिदशज्योति नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर ऋषि की कन्याओं ने अति उत्तम व्रतों को निभाते हुए परम तपश्चर्या की थी, उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि सबों के पति अव्यय भगवान् शंकर ही हों। उन सब की तपस्या से सुप्रसन्न हो दण्डधारण कर विकृत मुख महादेव जी उस तीर्थ को पहुँचे थे और उन कन्याओं का वरण किया था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कन्याओं का वरण करनेवाले ऋषियों से 'कन्यादान करो', ऐसा स्वतः अनुरोध किया था। महाराज ! वह पवित्र तीर्थ ऋषिकन्या के नाम से विख्यात है ।११-१४। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नानकर प्राणी सभी पापों से मुक्त हो जाता है

---

* अत्र प्रशंसायां रूपप् ।

---

[1] क. ख. पितामहं । [2] ङ. °म् । यो यान्प्रार्थयते । [3] ङ. च °वो डिण्डीरूप° ।

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो गच्छेच्च राजेन्द्र स्वर्णबिन्दु त्विति स्मृतम् ॥१५
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं न च पश्यति । *अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१६
क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति । भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो[1] जनः ॥१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं[2] तु शांभवम् । अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥१९
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः । यत्र यत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥२०
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम् । अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१
दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णं तु दापयेत् । विमानैः सूर्यसंकाशैर्व्रजते यत्र शंकरः ॥२२
वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् । वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति[3] ॥२३
धेनुमेकां तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥२४
यथाशक्त्या च राजेन्द्र [4]ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२५

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त स्वर्णविन्दु नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, राजन्! उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य कभी दुर्गति नहीं देखता । तत्पश्चात् अप्सरेश नामक तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी अप्सराओं के साथ नागलोक में विहार करता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति पवित्र नरक नामक तीर्थ को जाय और स्नानकर महादेव कीं पूजा करे, ऐसा करने से वह नरक का दर्शन नहीं करता । तदुपराम्त उपवास करते हुए मनुष्य भारभूति नामक तीर्थ की यात्रा करे, इस पवित्र तीर्थ में, जो शंकर का पवित्र तीर्थ है, पहुँच कर जो विरूपाक्ष की पूजा कर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ।१५-१९। इस पवित्र भारभूति तीर्थ में स्नानकर जहाँ कहीं भी प्राण त्याग कर देनेवाले को गणों की अध्यक्षता प्राप्त होतीं है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । कार्तिक के महीने में महेश्वर की अर्चना करनेवाले को अश्वमेध से दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं । उस पवित्र तीर्थ में घृतपूर्ण सो दीपों का दान करे, ऐसा करनेवाले सूर्य के समान तेजस्वी विमानों पर अधिरूढ हो शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं ।२०-२२। इस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य शंख, कुन्द के पुष्प अथवा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के वृषभ का दान करता है, वह वृष युक्त यान पर सवार होकर रुद्रलोक को जाता है । हे नराधिप ! इस पवित्र तीर्थ में जो मनुष्य एक धेनु का दान करता है, तथा दूध में बनाये गये मधुसंयुक्त चावल तथा अन्यान्य विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को खिलाता है, वह सब इस तीर्थ के प्रभाव से कोटिगुना अधिक फल देनेवाला हो जाता है ।२३-२५। पुण्यसलिला नर्मदा का जल पानकर

---

* अत्र संधिरार्षः ।

---

१ ङ. °परायणः । ए° । २ ङ. °रं न संभवेत् । अं° । ३ घ. °ति । तरुमेकं तु । च. °ति ।चरुमेकं तु ।
४ ग. °ह्मणं मोजयेन्नरः । त° ।

नर्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् । दुर्गतिं च न पश्यन्ति तस्य तीर्थप्रभावतः ॥२६
*एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्विमुञ्चति । सर्वपापविनिर्मुक्तो व्रजेद्वै यत्र शंकरः ॥
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२७
हंसयुक्तेन यानेन[1] ब्रह्मलोकं स गच्छति । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥२८
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत्स्वर्गे महीयते । अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२९
गर्भवासे तु राजेन्द्र न पुनर्जायते पुमान् । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥३०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्धासनं लभेत्[2] । स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥३१
तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः[3] । [4]ऐरण्डीनर्मदयोश्च संगमं लोकविश्रुतम् ॥३२
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः+ ॥३३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया । ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमम् ॥३४

वृषभध्वज शंकर की पूजा कर मनुष्य उस तीर्थं के प्रभाव से किसी भी दुर्गति को नही देखता । इस पवित्र तीर्थं में आकर जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं वे सभी पापकर्मों से मुक्त होकर शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं । हे नराधिप ! उस पवित्र तीर्थ में जो प्राणी जल में प्रवेश करता है वह हंसयुक्त यान द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है ओर तब तक स्वर्ग में पूजित होता है जब तक चन्द्रमा, सूर्य, हिमवान् पर्वत तथा समुद्र विद्यमान हैं एवं गंगा आदि नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं ।२६-२८$\frac{१}{२}$। हे नराधिप ! उस पवित्र तीर्थं में जो प्राणी अनशन करता है, राजेन्द्र फिर वह कभी गर्भ में निवास नहीं करता । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति उत्तम आषाढ़ी तीर्थं की यात्रा करनी चाहिये । हे राजन् ! उस आषाढ़ी तीर्थ में स्नानकर मनुष्य इन्द्र का आधा आसन ग्रहण करता है । तदुपरान्त स्त्रियों के परम पवित्र सभी पापों को दूर करनेवाले तीर्थं की यात्रा करनी चाहिये । वहाँ पर स्नान करने से निश्चय ही गणों के स्वामित्व की प्राप्ति होती है ।२९-३१$\frac{१}{२}$। एरण्डी तथा नर्मदा नदी का संगम तीर्थं तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, वह अति पुण्यदायी तथा सभी पापों का नाश करनेवाला है । हे राजेन्द्र ! वहाँ जाकर नित्य कर्मों को सम्पन्न कर उपवास करता हुआ प्राणी ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् पुण्यसलिला नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल की यात्रा करे जो जामदग्न्य तीर्थ के नाम से सुप्रसिद्ध है, वहीं पर भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी, वहीं पर इन्द्र

---

* इत आरभ्य नराधिप । इत्यन्तग्रन्थः क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति । +इतः परं सार्धश्लोको न विद्यते ग. ङ. पुस्तकयोः ।

---

[1] क. ख. °न रुद्रलो° । [2] ङ. °त् । श्रियस्ती° । [3] ङ. °तिः । एवं श्रीनर्मदायां तु सं° ।
[4] ग. °र्मदायाश्च ।

जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः । यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत् ॥३५
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमे । त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३६
पश्चिमस्योदधेः संधौ स्वर्गद्वारविघट्टनम्[1] । तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥३७
आराधयन्ति देवेशं त्रिसंध्यं विमलेश्वरम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ॥३८
विमलेशात्परं[2] तीर्थं न भूतं न भविष्यति । तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ॥३९
सप्तजन्मकृतं हित्वा यान्ति शिवालयम् । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥४०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः । उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ॥४१
एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया । सर्वतीर्थाभिषेकं तु यः पश्येत्सागरेश्वरम् ॥४२
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्ते संस्थितः शिवः । तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥४३
सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति । नर्मदासंगमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ॥४४
अत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दश स्मृताः । तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्र [3]ऋषिकोटिनिषेवितम्[4] ॥४५

ने अनेक महान् यज्ञों का अनुष्ठान कर देवताओं के स्वामित्व की प्राप्ति की थी । हे राजेन्द्र ! उस नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल पर स्नानकर प्राणी अश्वमेध के तिगुने पुण्य को प्राप्त करता है ।३२-३६। पश्चिम के समुद्र की संधि भूमि पर स्वर्गद्वार विघटन नामक तीर्थ है। हे राजन् ! वहाँ पर गन्धर्वों समेत सभी देवगण, ऋषिवृन्द, सिद्ध तथा चारण तीनों सन्ध्याओं में देवदेव विमलेश्वर महादेव की आराधना करते हैं । वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी रुद्रलोक में पूजित होता है ।३७-३८। उस विमलेश्वर देव से बढ़कर प्रभावशाली कोई तीर्थ न तो था और न होगा, वहाँ पर उपवास रखकर जो प्राणी विमलेश्वर का दर्शन करते हैं वे सात जन्म में किये गये पापों से मुक्त होकर शिव के लोक को प्राप्त करते हैं । हे राजेन्द्र तदुपरान्त अति उत्तम कौशकी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । हे राजन् ! वहाँ पर स्नानकर एक रात का उपवास रख जो प्राणी मन तथा आहारेच्छा को वश में रख निवास करता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या से छुटकारा पाता है । जो मनुष्य सागरेश्वर तीर्थ का दर्शन मात्र कर लेता है वह सभी तीर्थों के स्नान का पुण्य प्राप्त करता है ।३९-४२। उस पवित्र तीर्थ के एक योजन विस्तार तक भवरों में शिव जी का निवास रहता है, यही कारण है कि उसके देखने से निस्सन्देह सभी तीर्थों के दर्शन का प्राप्त होता है । ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो शिव के लोक को प्राप्त करता है । हे राजन् ! नर्मदा के पवित्र संगम से लेकर अमरकण्टक पर्वत तक कुल दस करोड़ तीर्थ कहे गये हैं ।४३-४४½। एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ के अन्तर में करोड़ों विद्वान् ऋषिगण ध्यान में निमग्न रहकर अग्निहोत्र आदि करते हुए निवास करते हैं । हे राजेन्द्र ! उन परम विद्वान् ऋषिगणों से

---

७ ग. °रमपावृतम् । त° । ८ क. ख. °लेशप° । घ. लेशं पर° । ९ ग. ङ. च. तिष्ठेदाव° । १० ङ. °द्विमिरन्वित° ।

×साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः । सेविताऽनेन राजेन्द्र त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥४६
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽपि भावतः । तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चति पाण्डव ॥४७
नर्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः । प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः ॥४८
बन्ध्या चैव लभेत्पुत्रान्दुर्भगा सुभगा भवेत् । कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत्तु यत्फलम् ॥
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥४९
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो[1] विजयी भवेत् । वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ॥५०
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । नरकं च न पश्येत्तु वियोगं[2] च न गच्छति ॥५१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्यं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१०५९२॥

सेवित ये दस करोड़ तीर्थ अभीप्सित कार्यों की पूर्ति करनेवाले हैं। जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस तीर्थों के माहात्म्य का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, हे पाण्डव! उसको समस्त तीर्थवृन्द स्वयमेव स्नान करवाते हैं तथा पुण्यसलिला नर्मदा सर्वदा उस पर प्रसन्न रहती है—इसमें सन्देह नहीं। उसके ऊपर शिव जी तथा महामुनिमार्कण्डेय भी सन्तुष्ट रहते हैं।४५-४८। यदि वन्ध्या स्त्री इसका पाठ या श्रवण करती है तो वह पुत्र प्राप्त करती है, कुरूप स्त्री सुन्दरी हो जाती है, कन्या को पति की प्राप्ति होती है और भी जो कोई जिस फल की इच्छा रखते हैं इससे वह सब प्राप्त करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह का अवसर नहीं है। ब्राह्मण वेद ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय विजयी होता है वैश्य व्यापार में लाभ पाता है, शूद्र को सङ्गति प्राप्त होती है, मूर्ख विद्यावान् होता है। जो कोई मनुष्य इस माहात्म्य के तीनों सन्ध्या के अवसरों पर पाठ करता है वह कभी नरक का दर्शन नहीं करता तथा अपने प्रिय जनों से कभी वियुक्त नहीं होता ॥४९-५१॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९४॥

× एतश्लोकस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—साग्निहोत्राश्च विद्वांसः सर्वे ध्यानपरायणाः ॥ सेवन्ते नर्मदां राजन्नीप्सितार्थप्रदायिनीम् ॥

---

[1] ग. °यो जयति क्षितिम् । वै° । ङ. °योऽपि जन्येमहीम् । वै° । [2] ग. ङ. °योनिं च ।

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओंकारस्याभिवर्णनम् । ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे ॥१

मनुरुवाच

ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा । प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद्वद ॥२
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायंभुवेऽन्तरे । तेषां वैवस्वते प्राप्ते संभवं मम कीर्तय ॥३
दाक्षायणीनां च तथा प्रजाः कर्तय मे प्रभो । ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम् ॥४

मत्स्य उवाच

[1]मन्वन्तरेऽस्मिन्संप्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा । चरित्रं कथ्यते राजन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा । ऋषयश्च समुद्भूता[2] हुते शुक्रे महात्मना[3] ॥६

अध्याय १९५

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार ओंकार का वर्णन सुन मनु ने उस समुद्र में मत्स्य रूप से अवस्थित देवदेव भगवान् विष्णु से पूछा—।१।

मनु ने कहा—हे प्रभो ! मुझसे ऋषियों का नाम, गोत्र, वंश अवतार तथा प्रवरों की समानता तथा विषमता— विस्तारपूर्वक बतलाइये । स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव के शाप से जब ऋषिगण शापित हुए थे, तब उनकी वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इसे मुझे बताइये । दक्ष प्रजापति के सन्तानों से उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का वर्णन मुझसे कीजिये तथा उसी प्रसंग में भृगु के वंश का विस्तार किस प्रकार हुआ--इसका वर्णन कीजिए ।२-४।

मत्स्य ने कहा—राजन् ! इस मन्वन्तर में तथा इसके पूर्ववर्ती वैवस्वत मन्वन्तर में घटित हुए परमेष्ठी ब्रह्मा के चरित्र का वर्णन मैं कर रहा हूँ । महादेव के शाप से स्वयमेव अपने-अपने शरीरों को त्याग कर ऋषिगण पुनः महात्मा ब्रह्मा के अग्नि में हवन किये गये शुक्र से उत्पन्न हुए हैं ।५-६। राजन् ! प्राचीन काल

---

[1] ग. °प्ते राजा वैपस्वतः प्रभुः । अश्वमेधे तु वितते ब्रह्म° । ङ च °प्ते सप्तवैस्वते पुरा । अश्वमेधे तु वितते ब्रह्म° । [2] क. ख. °ताच्युते । ग. °ताहुतेऽप्यग्नौ यथेप्सया । दे° । [3] क. ख. °त्मनः । दे° । ङ. यथेच्छया । च. यादृच्छया ।

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च । स्कन्नं शुक्रं महाराज ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥७
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् । ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥८
अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च । मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः ॥९
[1]केशैस्तु कपिशो[2] जातः पुलस्त्यश्च महातपाः । केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः ॥१०
[3]वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः । भृगुः पुलोम्नस्तु सुतां दिव्यां भार्यामविन्दत ॥११
तस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादश याज्ञिकाः । भुवनो[4] भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ॥१२
क्रतुर्वसुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह । प्रभवश्चाव्ययश्चैव [5]दक्षोऽथ द्वदशस्तथा ॥१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः । पौलोम्यां जनयन्विप्रा देवानां तु कनीयसः ॥१४
च्यवनं तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च । आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ॥१५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् । तत्र गोत्रकरान्वक्ष्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ॥१६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च । और्वश्च जमदग्निश्च[6] वात्स्यो दण्डिर्नडायनः ॥१७
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः । शौनकायनजीवन्तिरावेदः[7] कार्षणिस्तथा ॥१८

में एकबार देवताओं की माताओं तथा देवांगनाओं को देखकर परमेष्ठी ब्रह्मा का वीर्य क्षरण हुआ था, उसे ब्रह्मा ने अग्नि में हवन कर दिया था, जिससे सर्वप्रथम महा तेजस्वी तपोनिधि भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। अंगारों में अंगिरा ऋषि हुए थे, अग्नि की लपटों से अत्रि तथा किरणों से महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए थे।७-९। केशों से कशिप वर्ण के महातनस्वी पुलस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। लटकते हुए लम्बे केशों से महातपस्वी पुलह ऋषि पैदा हुए थे अग्नि के बसु (सार भाग) से तपोनिधि वसिष्ठ जी उत्पन्न हुए थे। महर्षि भृगु ने पुलोमा ऋषि की सुन्दरी कन्या को स्त्री रूप में ग्रहण किया था। उसमें भृगु के बारह यज्ञ करनेवाले देव स्वरूप पुत्र उत्पन्न हूए थे। वे थे भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु; मूर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा दक्ष। ये बारहों पुत्र भृगु के नाम से पुकारे जाते हैं।१०-१३। तदनन्तर भृगु ने पौलोमीं में देवताओं से कुछ अवच श्रेणी से ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। उनके नाम महाभाग्यशाली च्यवन तथा आप्नुवान है। आप्नुवान के पुत्र और्व, तथा और्व के पुत्र जमदग्नि हुए। इन भृगु के समस्त पुत्रों से उत्पन्न होनेवाले महाभाग्यशाली ऋषियों के गोत्रकर्ता और्व ही कहे जाते हैं। अति तेजस्वी भृगु के गोत्रकर्ता उन ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ।१४-१६। भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद, कार्षणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक, ।१७-१८। विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागिन, मृग, मार्गेय, मार्कंडेय, जविन, नीतिन, मण्ड,

---

[1] ङ. केशेषु° क°। [2] ग. घ. च. °विशैर्जातः। [3] ङ °सुसंध्या° समु°। [4] ग. °नो भाव°।
[5] ग. दत्तोऽथ। [6] ग. °श्च वत्स्यो दर्भिर्नवप्रभः। वैराय°। [7] क. °न्तिकाम्बोजाः पार्वणि°।

वैहोनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च । वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्च सः ॥१९
विष्णुः पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः[१] । मृगमार्गेयमार्कण्डजविनो नीतिनस्तथा[२] ॥२०
मण्डमाण्डव्यमाण्डूकफेनपाः स्तनितस्तथा । स्थलपिण्डः शिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैव च ॥२१
जालधिः सौधिकः क्षुभ्यः कुत्सोऽन्यो मौद्‌गलायनः[३] । माङ्क्वायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः ॥
सांकृत्यश्चातकिः [४]सार्पिर्यज्ञपिण्डायनस्तथा । गार्ग्यायणो गायनश्च ऋषिर्गार्ह्यायणस्तथा ॥२३
[५]गोष्ठायनो बाह्यायनो वैशम्पायन एव च । [६]वैकर्णिनिः शार्ङ्गरवो याज्ञेयिर्भ्राष्ट्रकायणिः[७] ॥२४
[८]लालाटिर्नाकुलिश्चैव [९]लौक्षिण्योपरिमण्डलौ । [१०]आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथाऽन्यः पैङ्गलायनिः ॥
सात्यायनिर्मालयनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः । सौहः सोक्तिः [११]सकौवाक्षिः कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥
नैकजिह्वो[१२] जिह्वकश्च[१३] व्याधाज्यो लौहवैरिणः । शारद्वतिकनेतिष्यौ लोलाक्षिश्चलकुण्डलः ॥२७
वांगायनिश्चानुमतिः[१४] पूर्णिमागतिकोऽसकृत् । सामान्येन यथा तेषां पञ्चैते प्रवरा मताः ॥२८
भृगुश्च चयवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च । और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मताः ॥२९
अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु[१५] त्वन्यान्भृगूद्वहान् । जमदग्निर्बिदश्चैव पौलस्त्यो बैजभृत्तथा ॥३०
ऋषिश्चोभयजातश्च कायनिः शाकटायनः[१६] । और्वेया मारुताश्चैव सर्वेषां प्रवराः शुभाः ॥३१

माण्डव्य, माडूण्क, फेनप, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालषि, सौधकि, क्षुभ्य, कुत्स, मौद्गलायन, माङ्क्वायन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव, ।१९-२२। सांकृत्य, चातकि, सार्पि, यज्ञपिण्डायन, गार्ग्यायण, गायन, गार्ह्यायण, गोष्ठायन, विह्यायन, वैशम्पायन, वैकर्णिान, शाङ्गरव, याज्ञेयि, भार्ष्ट्रकायणि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, सात्यायनि, माल्यायनि, कौटलि, कौचहस्तिक, सौह, सोक्ति, सकौवाक्षि, कौसि, चान्द्रमसि, ।२३-२६। नैकजिह्व, जिह्वक, व्याधाज्य, लोहवैरिण, शारद्वतिक, नेतिष्य, लोलाक्षि, चलकुण्डल, वांगायनि, आनुमति, पूर्णिमागतिक तथा असकृत् । साधारणतः इन ऋषियों के ये पांच प्रवर कहे जाते हैं—। भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व तथा जमदग्नि ।२७-२८। अब इसके बाद अन्यान्य भृगु वंश में उत्पन्न होनेवालों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जमदग्नि, बिद, पौलस्त्य, बैजभृत, उभयजात कायनि, शाकटायन, और्वेय तथा मारुत । इनके तीन निम्नलिखित शुभ प्रवर कहे जाते हैं, भृगु, च्यवन तथा आप्नुव न ।

---

१ ख. नः । भृतभार्गे° । २ क. °था । मुण्ड° । ३ घ. नः । कर्माय° । ४ च. °षिर्याज्ञो यद्रामिलायनः । गा° । ५ घ. °नो महाभागो वै° । ६ ङ. च. °कर्णेयः स्वर्गर° । ७ घ. °णिः । ललाटि° । ८ ङ. °टिलीम्बुकिश्चै° । ९ ग. लौगाक्षिः परिमण्डलः । आ° । १० ङ. च. जलाभित् । ११ ग. °कौगाक्षिः । १२ च. °ह्लो नदाकिश्च । १३ क. ख. जिह्मक° । १४ ङ. °तिः पौर्णि° । १५. ग. ङ. णुष्वान्या° । १६ ग. ङ. च. °नः । आर्षेया ।

भृगुश्च च्यवनश्चैव[1] आप्नुवानस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३२
भृगुदासो मार्गपथो ग्राम्यायणिकटायनी । आपस्तम्बिस्तथा[2] बिल्विर्नैकशिः कपिरेव च ॥३३
आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च । आश्वायनिस्तथा रूपिः पञ्चाऽऽर्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तश्चैव च । आर्ष्टिषेणस्तथा रूपिः प्रवराः पञ्च कीर्तिताः ॥३५
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । [3]यस्को वा वीतिहव्यो[4] वा मथितस्तु तथा दमः ॥३६
जैवन्त्यायनिर्मौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा । भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः ॥३७
बालपिः श्रमदागेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च । गार्गीयस्त्वथ जाबालिस्तथा पौष्णयायनो ह्यषिः[5] ॥३८
रामोदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः । भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥३९
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । शालायनिः शाकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा ॥४०
द्रौणायनो [6]रौक्मायणिरापिशिश्चापिकायनिः । हंसजिह्वस्तथैतेषामार्षेयाः[7] प्रवरा मताः ॥ ॥४१
भृगुश्चैवाथ वद्ध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४२
एकायनो[8] यज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च । [9]प्रत्यहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः ॥४३
तथा गृत्समदो राजन्सनकश्च महानृषिः । प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥४४

इन ऋषियों के वंशों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है ।२९-३२। भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्यायणि, कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आर्ष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायनि, आश्वायनि तथा रूपि । इनके प्रवर निम्न पाँच ऋषियों के कहे गये हैं—भृगु च्यवन, आप्नुवान, आष्टिषेण तथा रूपि । इन पाँचो प्रवर वालों में परस्पर विवाह निषिद्ध है । यस्क, वीतिहव्य, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदागेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौश्णायन तथा रामोद । इन वंशवालों के ये निम्न ऋषि प्रवर कहे गये हैं—भृगु, वीतिहव्य, रैवस तथा वैवस ।३३-३९। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते । शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्मायणि, आपिशि, आपिकायनि तथा हंसजिह्व । इनके निम्न ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं— भृगु, वद्ध्र्यश्व तथा दिवोदास । इनमें परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध हैं । हे राजन् ! एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यह, सौरि, चौक्षि कार्दमायनि गृत्समद तथा महान् ऋषिसनक—इन वंशवालों के प्रवर निम्न दो ऋषियों के हैं । भृगु तथा गृत्समद—इन दोनों ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है । हे राजन् ! यही भृगुवंश में उत्पन्न

---

[1] ङ. °व एकायनिर्जटायनिः । प° । [2] ग. ङ. च. °थाभल्लिर्नै° । [3] ग. यस्कावरोवी° । [4] ग. °व्योमाधवः सुदमोद° । घ. °व्योमाधवस्तुमोद । [5] क. ख. °षिः । ग्रामद° । [6] क. ख. °यणापिशलीवापि । [7] ग. घ. °र्षेयः प्रवरो मतः । भृ° । [8] ग. शाकायनो । [9] ग. घ. प्रत्यूहश्च ।

भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावितौ प्रकीर्तितौ । परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥४५

एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृपगोत्रकाराः ।
एषां तु [1]नाम्नां परिकीर्तनेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः ॥४६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भृगुवंशप्रवरकीर्तनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०६३८॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

मरीचितनया राजन्सुरूपा नाम विश्रुता । भार्या चाङ्गिरसो [2]देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥१
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदः प्राणस्तथैव च । हविष्मांश्च[3] गविष्ठश्च ऋतः सत्यश्च ते दश ॥२
एते चाऽऽङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिनः । सुरूपा जनयामास ऋषीन्सर्वेश्वरानिमान् ॥३
बृहस्पतिं गौतमं च संवर्तमृषिमुत्तमम् । उतथ्यं वामदेवं च [4]अजस्यमृषिजं तथा ॥४

महानुभाव ऋषियों के गोत्रकारों का वर्णन है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका । इनके नामों के कीर्तन से प्राणी अपने किये हुए समग्र पापों से छूट जाता है ।४०-४६।

श्री मात्स्य महापुराण में भृगुवंश प्रवर कीर्त्तन नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! मरीचि ऋषि की सुरूपा नामक कन्या अंगिरा ऋषि की स्त्री थी, जिसके दस पुत्र देवता माने गये हैं । आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान् गविष्ठ, ऋत तथा सत्य । ये दस अंगिरा के पुत्र सोमरस पान करनेवाले देवता कहे गये हैं । इन सर्वेश्वर ऋषियों को सुरूपा ने उत्पन्न किया था ।१-३। बृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज-ये सभी ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं, इनके गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकारों को मैं बतला रहा हूँ,

---

[1] क. ख. ताम्रा परिकीर्तितेन । [2] ङ. च. देवी तस्याः । [3] ङ. च °श्च वसिष्ठ° । [4] ङ. अयस्यमृषि° ।

इत्येते ऋषयः सर्वे गोत्रकाराः प्रकीर्तिताः । तेषां गोत्रसमुत्पन्नान्गोत्रकारान्निबोध मे ॥५
उतथ्यो गौतमश्चैव[१] तौलेयोऽभिजितस्तथा । सार्धनेमिः सलौगाक्षिः क्षीरः कौष्टिकिरेव च ॥६
[२]राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिः सामलोमकिः । [३]पौषाजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा ॥७
कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ[४] । वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ॥८
सोमोऽत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवास्तथा । रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाडुरेव च ॥९
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च [५]पारिकारारिरेव च[६] । आर्षेयाः[७] प्रवराश्चैव तेषां च प्रवराञ्छृणु ॥१०
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥११
आत्रेयायणिसौवेष्टयावग्निवेश्यः शिलास्थलिः । बलिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा ॥१२
सौटिश्च तृणकर्णिश्च प्रावहिश्चाऽऽश्वलायनिः । वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च ॥१३
[८]कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः । [९]कौचकिर्धमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च ॥१४
[१०]सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा । देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकर्णिः सरिद्भुविः ॥१५
प्रावेतिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः । मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः[११] फलाहारस्तथैव च ॥१६
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च । नायकिर्जैत्यद्रोणिश्च जैह्लायनिरेव च ॥१७
आपस्तम्बिर्मौञ्जवृष्टिर्मार्ष्टिपिङ्गलिरेव च । पैलश्चैव महातेजाः शालङ्कायनिरेव च ॥१८

सुनिये, उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भागवत, चैरीडव, कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषी, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कासोरु, कोशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षण, विश्वकर, अरि तथा पारिकारारि—ये सभी ऋषि कहे जाते हैं, इनके प्रवरों को सुनो।४-१०। वे थे अंगिरा, सुवचोतथ्य तथा महान् ऋषि उशज। इन ऋषियों के वंशवाले परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं करते। आत्रेयायणि, सौवेष्ठ्य, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, चैकेपी, वाराहि, वाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आश्वालायनि, वाराहि, वर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उडुपति, कौचकि, धर्मित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारि, देवस्थानि, हारिकर्णि, सरिद्भुवि, प्रातेपि, साद्यसुग्रीव, गोमेदगन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गांगोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रोणि,

---

१ ङ. च. व° शैले° । २ ग. रागक° । ३ क. ख. पौषजि° । ग. पौष्यजि° । ४ ग. ङ. °णौ । रोहिणायनिर्वैशालिः क्रो° । ५ ङ. पारःकारीररे° । ६ क. ख. च । त्र्यार्षे° । ७ ङ. °र्षेयत्र° । ८ ङ. च. काचाविश्च । ९ ग. °किर्भूनित° । १० ग. °मस्तविर्ब्रह्मस्तविर्भालुठिवालुठिस्त° । ११ ङ. मलहरः ।

[१]द्व्याख्येयो मारुतश्चैषां [२]सर्वेषां प्रवरो नृप । अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ॥१९
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः । परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥२०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणः । भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः ॥२१
क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः । लावकृद्गालविद्गाथी मार्कटिः पौलिकायनिः ॥२२
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा । [३]बलाकिः साहरिश्चैव पञ्चाऽऽर्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः । भरद्वाजस्तथा गर्ग सैत्यश्च भगवानृषिः ॥२४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः ॥२५
भूयसिर्जलसंधिश्च विन्दुर्मादिः कुसीदकिः । ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा ॥२६
शालिश्च कलशीकण्ठ ऋषिः कारीरयस्तथा । काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च ॥२७
भरद्वाजिः सौबुधिश्च लध्वी देवमतिस्तथा[४] । त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां प्रवरो भूमिपोत्तम ॥२८
अङ्गिरा[५] दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥२९
*संकृतिश्च त्रिमार्ष्टिश्च मनुः संबधिरेव वा । तण्डिश्चेनातकिश्चैव तैलका दक्ष एव च[६] ॥३०

जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्जवृष्टि; मार्ष्टिपिङ्गलि, महातेजस्वी पैल, शाङ्गलायनि द्व्याख्येय तथा मारुत । हे नृप ! इन ऋषियों के प्रवर प्रथम अंगिरा दूसरे वृहस्पति तथा तीसरे भारद्वाज ऋषि हैं-- यही तीन इनके प्रवर कहे हैं, इन गोत्रवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होते ।११-२०। काण्ड्वायन, कोपचम, वात्स्यरायण, भ्राम्ट्रकृत्, राष्ट्रपिण्डी, लैन्डाणि, सायकायनि, कोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत, मधुरावह, गालविद्, गाथी, मार्कटि पौलकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्यं, श्यामायनि, वलाकि तथा साहरि—इनके निम्न पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं । महातेजश्वी अगिरा, देवाचार्य वृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग तथा परमतेजस्वी सैत्य ऋषि ।२१-२४। इन ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता । कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसंधि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशि, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, कारीरय, काट्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लध्वी तथा देवमति ।२५-२७½। हे राजाओं में श्रेष्ठ ! इन ऋषियों के तीन प्रवर बतलाये गये हैं, अंगिरा दमवाह्य तथा उरुक्षय—इनके गोत्रवावों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता । संकृति, त्रिमार्ष्टि, मनु, संबधि, तण्डि, एनातकि, तैलक, दक्ष, नारायणि, आर्षिणि, लौक्षि, गार्ग्य,

---

* न विद्यतेऽयं श्लोकः क. ख पुस्तकयोः ।

---

१ ग. घ. आर्षेयो ।   २ क. ख. त्र्यार्षेयः ।   ३ क. ख. बालाकि° ।   ४ ग. घ. °था । आर्षे° ।
५ ङ. च. °राचश्चमदाह्य° ।   ६ क. ख. च. । परस्परायण्यपर्णी लौ° । ङ. च । वारायणि वार्ष्यणिश्च लौ° ।

नारायणिश्चार्षिणिश्च [१]लौक्षिगार्ग्यहरिस्तथा[२] । गालवश्च[३] अनेहश्च[४] सर्वेषां प्रवरो[५] मतः ॥३१
अङ्गिराः[६] संस्कृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३२
कात्यायनो हरितकः कौत्सः पिङ्गस्तथैव च । हण्डिदासो वात्स्यायनिर्माद्रिर्मौलिः कुबेरणिः ॥३३
भीमवेगः शाश्वदर्भिः सर्वे त्रिप्रवराः स्मृताः । अङ्गिरा बृहदश्वश्च[७] जीवनाश्वस्तथैव च ॥३४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिप्रवरा मताः ॥३५
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥३६
कुत्सगोत्रोद्भवाश्चैव तथा त्रिप्रवरा मताः । अङ्गिराश्च सदस्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च ॥
कुत्साः कुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः ॥३७
रथीतराणां [८]प्रवरास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः । अङ्गिराश्च[९] विरूपश्च तथैव च रथीतरः ॥
रथीतरा ह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ॥३८
विष्णुसिद्धिः शिवमतिर्जतृणः [१०]कतृणस्तथा । पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः ॥३९
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप । अङ्गिराश्च विरुपश्च वृषपर्वस्तथैव च ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४०
सात्यगुप्तिर्महातेजा हिरण्यस्तम्बिमुद्गलौ[११] । त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ॥४१

हरि, गालव तथा अनेह । इन सब के प्रवर अंगिरा, संकृति तथा गौरवीति माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता ।२८-३२। कात्यायन, हरितक कौत्स, पिङ्ग, हण्डिदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुबेरणि भीमवेग, तथा शाश्वदर्भि, इन सभी के तीन प्रवर कहे जाते हैं, अंगिरा, बृहदश्व तथा जीवनाश्व, इन ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह नहीं होता । बृहदुक्त तथा वामदेव ये भी तीन प्रवर वाले हैं, इनके प्रवर अंगिरा, बृहदुक्त तथा वामदेव हैं, इनमें परस्पर विवाह नहीं होता । कुत्सगोत्र में उत्पन्न होनेवालों के तीन प्रवर हैं, अंगिरा, सदस्यु तथा पुरुकुत्स, प्राचीन लोग बतलाते आये हैं कि कुत्सगोत्रवालों से कुत्सगोत्रवालों का विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता । रथीतर के वंश में उत्पन्न होनेवालों के भी तीन प्रवर हैं, अंगिरा, विरूपाक्ष तथा रथीतर, ये लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते ।३३-३८। विष्णुसिद्धि, शिवमति जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्रव तथा वैरपरायण । हे राजन्! ये सभी तीन ऋषियों के प्रवरवाले माने गये हैं, अंगिरा, विरूप तथा वृषपर्व । इन ऋषियों के वंश में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता ।३९-४०। महातेजस्वी सात्यगुप्ति, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल ये सभी इन तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं । अंगिरा, मत्स्यदग्ध

---

[१] ग. °गार्गिहरस्त° । [२] ग. °था । लागलिश्च त्र्यर्षहिश्त्र स° । [३] क. ख. लविश्चैव त्र्यार्षेयः स° घ. °लविश्चैव आर्षेश्च स° । [४] च. °नेहिश्च° । [५] ग. घ. °रोत्तमः । अ° । [६] ग. ङ. °राः सांकृ° । [७] ग. °श्च युव° । [८] ङ. °रा आर्षे° । [९] ङ. °श्च रथीतारो वितप° । [१०] ङ. च. कर्मिण° । [११] घ. °लौ । आर्षेयोऽभिमं° ।

अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४२
हंसजिह्वो[1] देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः। अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ता विमौद्गलाः ॥४३
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः ॥४४
ततः [2]प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः ॥४५
[3]कटुर्मर्कटपश्चैव तथा नाडायनो ह्यृषिः। [4]श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेयाः प्रवराः शुभाः ॥४६
अङ्गिराश्चाजमीढश्च [5]कटचश्चैव महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४७
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः। त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥४८
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कपिभूश्च महानृषिः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४९
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान्मानवस्तथा[6]। ऋषिर्मैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥५०
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः। ऋषिर्मित्रवरश्चैव [7]ऋषिवान्मानवस्तथा ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥५१
भारद्वाजो हुतः शौङ्गः शैशिरेयस्तथैव च। इत्येते कथिताः सर्वे ह्यामुष्यायणगोत्रजाः ॥५२
पञ्चाऽऽर्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः। अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥५३

तथा महातपस्वी मुद्गल। इन ऋषियों के गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले परस्पर विवाह नहीं कर सकते। हंसजिह्व देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यस्त तथा विमौद्गल। ये सभी तीन प्रवर वाले कहे गये हैं, अंगिरा, ताण्डि तथा महातपस्वी मौद्गल्य इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होता।४१-४४½। अपाण्डु, गुरु, शाकटायन—प्रागाथमा नारी ? मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कट, नाडायन, तथा श्यामायन—ये सभी तीन ऋषियों के प्रवरवाले हैं। अंगिरा, अजमीढ तथा महातपस्वी कट्च—इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। तित्तिरि, कपिभू, महाऋषि गार्ग्य—इन सब के अंगिरा, त्तित्तिरि तथा कपिभू नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है।४५-४९। ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवृन्द, मानव तथा मैत्रवर—इनके अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, ऋषि मित्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पाँच प्रवर हैं इनमें विवाह कर्म निषिद्ध है। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग तथा शैशिरेय—ये सभी द्वयामुष्यायण गोत्र में उत्पन्न कहे जाते हैं। इन सब के अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य तथा शैशिर नामक पाँच ऋषि प्रवर

---

१ ग. ङ. °जिह्वा देवजिह्वाग्निजिह्वा बिडालजाः। अ°। २ ग. घ. °गावसो नारी मार्कटो मरनाशनः। कराटमर्क°। ३ ङ. च. कङ्कटः कटकश्चै°। ४ ग. °माजनिस्तथैवेषामार्षेयः प्रवरो मतः। अ°। ५ ङ च. कण्ठश्चै°। ६ ग. °षिर्वामो नरस्त°। ७ ग. ऋषिश्चात्मन°।

मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥५४
एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥५५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽङ्गिरोवंशकीर्तनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०६९३॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

*मत्स्य उवाच

अत्रिवंशसमुत्पन्नान्गोत्रकारान्निबोध मे । कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये ॥१
[1]उद्दालकिः [2]शौणकर्णिरथौ[3] शौक्तवश्च ये । गौरग्रीवा गौरजितस्तथा चैत्रायणाश्च ये ॥२
अर्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः । [4]कर्णजिह्वो[5] हरप्रीतिर्लैद्राणिः शाकलायनिः ॥३

माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है । इन अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले महानुभाव ऋषियों के गोत्र-प्रवर्तकों का वर्णन मैं तुमसे कर चुका, जिनके नाम का उच्चारण करने से पुरुष अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पाता है ।५०-५५।

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में आङ्गिरसवंशकीर्तन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न हुए गोत्रकर्त्ता ऋषियों का वर्णन मुझसे सुनो । शारायण, उद्दालकि, शौणकर्णिरथ, शौक्तव, गौरग्रीवा, गौरजित, चैत्रायण, अर्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तकिबिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैद्राणि, शाकलायनि, तैल, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति,

---

*न विद्यतेऽयमध्यायो ङ. पुस्तके ।

---

[1] ग. °किः सौनकर्णिस्तथा सौत्रावनश्च । [2] च. कर्णरथ्येशाक्रवतश्च । [3] घ. °रथोशौक्रवतश्च । [4] ङ. करिज° । [5] ग. °ह्वोरस-द्वीचिर्नैद्रालिः शाकलायनः । तै° ।

तैलपश्च [1]सवैलेयो [2]अत्रिर्गोणीपतिस्तथा । जलदो भगपादश्च सौपुष्पश्च महातपाः ॥४
छन्दोगेयस्तथैतेषां[3] त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः । श्यावाश्वश्च तथाऽत्रिश्च[4] आर्चनानश एव च ॥५
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णनाभिः शिलार्दनिः ॥६
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः । भलन्दनस्तथैतेषां[5] त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः ॥७
अत्रिर्गविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे । कालेयाश्च सबालेया वामरथ्यास्तथैव च ॥९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः । अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैव महानृषिः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१०
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवोक्ता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥११

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेप्रवरानुकीर्तनेऽत्रिवंशानुकीर्तनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१०७०४॥

जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्पि तथा छन्दोगेय ये कमर्दमायन शाखा से उत्पन्न हुए ऋषि हैं, इनके प्रवर श्यावाश्व, अत्रि तथा अर्चनानश—ये तीन ऋषि कहे गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है । दाक्षि, बलि, पर्णवि, उर्णनाभि, शिलार्दनि, बीजवापी, शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन, इन ऋषियों के अत्रि गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है ।१-८। इसके पश्चात् अत्रिवंशोद्भव ऋषियों की कन्याओं से उत्पन्न होनेवाले ऋषियों का विवरण मुझसे सुनो; कालेय, बालेय, वामरथ्य, धात्रेय, तथा मैत्रेय इनके अत्रि, वामरथ्य तथा पौत्रि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माना गया है । हे राजन्! इन अत्रि वंश में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार महानुभाव ऋषियों का नाम मैं तुम्हें सुना चुका, जिनके पवित्र नाम संकीर्तनमात्र से मनुष्य अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है ।९-११।

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में अत्रिवंशवर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ
अध्याय समाप्त ॥१९७॥

---

[1] ग. सचैले° । [2] ग. °गोंणायनिस्त° । [3] घ. च. तेषामार्षेयः प्रवरो मतः । श्या° । [4] च. °श्च त्रिवराताम ए° । [5] ग. घ. °तेषामार्षेयः प्रवरो मतः । अ° ।

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अत्रेरेवापरं वंशं तव वक्ष्यामि पार्थिव । अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवो नृप ॥१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् । तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ॥२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा [1]वैकृतिगालवः । वतण्डश्च शलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ॥३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः । बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्या अथ संश्रुताः ॥४
[2]उलूपा औपहावाश्च पयोदजनपादपाः । खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ॥५
त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्तिताः । विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ॥६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । देवश्रवाः सुजातेयाः सौमुकाः कारुकायणाः ॥७
तथा [4]वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप[5] । त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः[6] शुभः ॥८
देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥९

अध्याय १९८

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! अब इसके उपरान्त उन्हीं अत्रि ऋषि के अन्य वंशधरों का वर्णन मैं तुम्हें सुना रहा हुँ। उन महर्षि अत्रि के पुत्र श्रीमान् सोम हुए जिनके वंश में उत्पन्न होनेवाले विश्वामित्र जी हुए, जिन्होंने अपने तप के माहात्म्य से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की थी, उन्हीं के वंश का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ।१-२। विश्वामित्र, देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जावाल, वभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलमय, साधित तथा वास्तुकौशिक । इन सब ऋषियों के वंश में उत्पन्न होनेवालों के विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्दाल ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है ।३-६½। हे नराधिप ! देवश्रुव, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वैदेहरात तथा कुशिक इन सभी ऋषियों के वंशों में देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र—ये तीन प्रवर माने जाते हैं । इन ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वालों में परस्पर विवाह नहीं होता ।७-९। हे राजन् ! धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पाणिनि—इन वंशों में सब के विश्वामित्र,

---

१ ङ. वैकलिनायनः । श्व° । २ ङ. च. उल्लपा । ३ ग. °तेयास्तौसुकाः कामुकायनाः । त° । ४ ग. देवराजे. तु कु° । ङ. देहजाता । च. देहनाता । ५ ग. ङ °प । आर्षेयाभिमतास्ते° । ६ ग. ङ. °वराः शुभाः । दे° ।

[*धनंजयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव । पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ॥१०
विश्वामित्रस्तथाऽऽद्यश्च माधुच्छन्दस एव च । त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिताः ॥११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः] ॥१२
कामलायनिजश्चैव [1]अश्मरथ्यस्तथैव च । वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ॥१३
विश्वामित्रश्चाश्मरथो वञ्चुलिश्च महातपाः । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१४
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा । विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौ प्रवरौ स्मृतौ ॥१५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् । लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः । अष्टका लौहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम् ॥१७
उदरेणुः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा । *आर्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः स्मृतः ॥१८
ऋणवान्गतिनश्चैव विश्वामित्रस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१९
उदुम्बरः सैषिरिटिर्ऋषिस्त्राक्षायणिस्तथा । [2]शाठ्यायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी[3] ॥
मौञ्जायनिश्च भगवांत्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥२०
[4]खिलिखिलिस्तथा विद्यो विश्वामित्रस्तथैव च । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥२१

धनंजय तथा माधुच्छन्दस ये तीन प्रवर माने गये हैं । विश्वामित्र, मधुच्छन्द तथा अघमर्षण इन तीन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होते ।१०-१२। कामलायनिज, अश्मरथ्य तथा वञ्जुलि इनके वंशधर ऋषियों के विश्वामित्र, अश्मरथ तथा महातपस्वी वञ्जुलि— ये तीन प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निसिद्ध माने गये हैं। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक तथा पूरण—इनके विश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। लोहित और अष्टक वंशधरों के तीन ऋषियों के प्रवर माने गये हैं, विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक । इनमें अष्टक वंशवालों का लोहित वंशवालों के साथ परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है ।१३-१६। उदरेणु, कुथक, ओदावहि—इन सब के ऋणवान्, गतिन तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने गये हैं जिनमें परस्पर विवाह नहीं होता । उदुम्बर, सैषिरिटि, त्राक्षायणि, शाठ्यायनि, करीराशी, शांकलायनि, लावकि तथा मौञ्जायनि—इन ऋषियों के वंशधरों खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है।

---

*धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति । * न विद्यतेऽयं श्लोको ग. पुस्तके ।

* इत आरभ्य स्त्राक्षायणिस्तथेत्यन्तग्रन्थः क. ख. घ. पुस्तकेषु नास्ति ।

---

[1] ग. ङ °रथ्यास्त' । [2] ग. ङ. कात्यायनिः । [3] ङ. च. °की । कौञ्जा° । [4] ङ. खिलिः क्षितिमुखाविद्धो वि° ।

एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र महानुभावाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥२२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने विश्वामित्रवंशानुवर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०७२६॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले । गोत्रकारानृषीन्वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु ॥१
आश्रायणिर्ऋषिगणो मेषकीरिटकायनाः । उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणाः ॥२
शालाहलेयाः कौरिष्टाः कन्यकाश्चाऽऽसुरायणाः । मन्दाकिन्यां वै मृगयाः[1] श्रोतना भौतपायनाः ॥३
देवयाना गोमयाना ह्यधश्छायाभयाश्च ये । कात्यायनाः[2] शक्रयणा बर्हियोगगदायनाः ॥४
भवनन्दिर्महाचक्रिर्दाक्षपायण एव च । योधयानाः कार्तिवयो हस्तिदानास्तथैव च ॥५

हे नरेन्द्र ! इन कुशिक नाम से प्रसिद्ध महानुभाव ऋषिगणों के नामों को मैं तुमसे बता चुका। जिनके पवित्र नाम के कीर्तन से मनुष्य अपने समग्र पापकर्मों को छोड़ देता है।१७-२२।

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनमप्रसंग में विश्वामित्रवंशानुवर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९८॥

अध्याय १९९

मत्स्य भगवान् ने कहा— हे राजन् ! महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, अब उन्हीं कश्यप के कुल में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। आश्रायणि ऋषिगण, मेषकीरिटकायन, उदग्रज, माठर, भोज, विनयलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में उत्पन्न मृगय, श्रोतन, भौतपायन, देवयान, गोमयान, अधश्छाय, अभय, कात्यायन, शक्रयण, बर्हियोग, गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्षपायण, योधयान, कार्तिवय, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, अश्वलायनिन्, प्रागायण,

---

[1] ङ. °याः श्रुतयो भीमपा. । [2] क. ख. °नाः शाक्राय° ।

वात्स्यायना निकृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा । प्रागायणाः पैलमौलिराश्ववातायनस्तथा ॥६
कौबेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणाश्च ये । मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रवः ॥७
प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च । श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्बलायनाः ॥८
काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिकाः । [१]वैकर्णेयाः काश्यपेयाः सासिसाहारितायनाः ॥९
मातङ्गिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः । वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रुवश्च महातपाः ॥१०
[२]परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । अतः परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान् ॥११
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो [३]राजवर्तपः । शैशिरोदवहिश्चैव [४]सैरन्ध्री रौपसेवकिः[५] ॥१२
यामुनिः काद्रुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्तथैव च । [६]दिवावष्टाश्च इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ॥१३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः । वत्सरः कश्यपश्चैव वसिष्ठश्च महातपाः ॥१४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलंधरः ॥१५
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः । हिरण्यबाहुकैरातावुभौ कश्यपगोभिलौ ॥१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः । निदाघमसृणौ भत्स्यौ महान्तः केरलाश्च ये १७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा [७]वै देवजातयः । पैप्पलादिः सप्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१८

पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, बभ्रव, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आग्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्बलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासिस, हारितायन, मातंगिन् तथा भृगु— इन वंशों में उत्पन्न होनेवाले ऋषगिण तीन ऋषियों के प्रवरवाले माने गये हैं । उन तीनों के नाम ये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निध्रुव । इन ऋषियों के बंशधरों में परस्पर विवाह निषिद्ध है ।१-१०½। इसके उपरान्त द्व्यामुष्यायण के गोत्र में उत्पन्न होनेबाले ऋषियों के नामों को बतला रहा हूँ । अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राजवर्तप, शैशिर, उदवहि, सैरन्ध्री, रौपसेबकि, यामुनि, काद्रुर्पिगाक्षि, जातम्बि तथा दिवावष्ट इनको भक्तिपूर्वक कश्यप के गोत्र में उत्पन्न जानना चाहिये । इन सभी ऋषियों के वंशधरों के निम्नलिखित तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी वसिष्ठ । इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है ।११-१४½। संयाति, दोनों नभ नामक ऋषि, पिप्पल्य, जलंधर, भूजातपूर, पूर्य, कर्दम गर्दभीमुख, हिरण्यबाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, महान् केरल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि । इन सभी ऋषियों के तीन आर्ष प्रवर कहे गये हैं असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप—इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता । हे

---

[१] ग. °कर्णिकाः का° । [२] ग. °वाह्यौ गोत्री द्वौ परिकीर्तितौ । अ° । [३] ङ. °वल्लभः । शै° ।
[४] ग. °रन्ध्रिःशेष से° । [५] ग °किः । सामुकिः कार्द्रपि° । [६] ग. °वसाश्च इ° । ङ. °वसिष्ठास्त्वित्ये° ।
[७] ग. षै वेदसातनः । पै° ।

त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।१९
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम् ।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमुत्तरं तु ।।२०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने कश्यपवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१०७४६।।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

*मत्स्य उवाच

वसिष्ठवंशजान्विप्रान्निबोध वदतो मम । एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ।।१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः । व्याघ्रपादा [१]औपगवा वैक्लवाः शाद्वलायनाः ।।२
कपिष्ठला[२] औपलोमा अलब्धाश्च[३] शठाः कठाः । गौपायना बोधपाश्च दाकव्या ह्यथवाह्यकाः ।।३

मनुसिंह राजन् ! दाक्षायणी के संयोग से ऋषियों में प्रमुख कश्यप द्वारा इस समग्र जगत् की उत्पत्ति हुई है, अतः उनके वंश का यह विवरण अति पुण्यदायक है । अब इसके अनन्तर मैं किस पवित्र कथा को तुमसे कहूँ ? ।१५-२०।

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में कश्यपवंशवर्णन नामक एक सौ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ।।१९९।।

अध्याय २००

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! इसके बाद अब तुम वसिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न हुए ऋषियों के नाम मुझसे सुनो । वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होनेवाले ऋषियों का प्रवर एक मात्र वसिष्ठ ही है। इन वसिष्ठ के वंशजों का विवाह वसिष्ठ गोत्रजों में निषिद्ध है । व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गोपायन, बोधप, दाकव्य, बाह्यक, बालिशय, पालिशय,

---

* अयमध्यायो नास्ति च पुस्तके ।

---

[१] ग. घ. आपगवा । [२] ग. °ला अपष्ठोमा । [३] ग. °श्च षटाकुराः । गोपा° ।

बालिशयाः पालिशयास्ततो[१] वाग्ग्रन्थयश्च ये । आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथा[२] ब्राह्मपुरेयकाः ॥४
लोमायनाः स्वस्तिकराः [३]शाण्डिलिर्गौडिनिस्तथा । वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ॥५
चौलिर्बौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस[४] एव च[५] । पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षयः ॥६
वसिष्ठ एषां प्रवरो ह्यवैवाह्याः परस्परम् । शैलालयो[६] महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ॥७
कपिञ्जला वालखिल्या भागवित्तायनाश्च[७] ये । [८]कौलायनः कालशिखः कोरकृष्णाः सुरायणाः ॥८
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्च ये । शाकायना उहाकाश्च अथ माषशरावयाः[९] ॥९
दाकायना बालवयो वाकयो गोरथास्तथा । लम्बायनाः श्यामवयो ये च क्रोडोदरायणाः ॥१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषयः औपमन्यव एव च । सांख्यायनाश्च ऋषयस्तथा वै वेदशेरकाः ॥११
[१०]पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः । मातेया ब्रह्ममलिनः [११]पन्नागारिस्तथैव च ॥१२
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा[१२] । भगीवसुर्वसिष्ठश्च[१३] इन्द्रप्रमदिरेव च ॥१३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः[१४] । औपस्थलास्वस्थलयो बालो हालो हलाश्च ये ॥१४
माध्यंदिनो माक्षतयः पैप्पलादिर्विचक्षुषः । त्रैशृङ्गायणसैबल्काः[१५] कुण्डिनश्च नरोत्तम[१६] ॥१५

वाग्ग्रन्थि, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्मपुरेयक' लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौडव तथा याज्ञवल्क्य— ये सभी महर्षि एक ऋषि प्रवरवाले हैं, इन सबों के प्रवर एक मात्र वसिष्ठ जी हैं। इनके वंशधर परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित करते।१-६½। शैलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधिय, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण, प्रलंबायन, औपमन्यव, सांख्यायन, वेदशेरक, पौलंकायन, उद्गाह, बलेक्षु, मातेय, ब्रह्ममलिन, तथा पन्नगारि—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे जाते हैं। भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमदि। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है।७-१३½। हे नरोत्तम! औपस्थल, अस्वस्थलय, बाल, हाल, हल, माध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्लादि, विचक्षुष, त्रैश्रृंगायण, सैबल्क तथा कुण्डिन—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे गये हैं, वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन। दानकाय, महावीर्य, नागेय,

---

१ ग. °तो बाहुरय° । २ ङ. °था ब्रह्मकृतेजनाः । लो° । ३ ग. °लि जौडिलिस्त° । ४ ङ. °वण ए° । ५ ङ. च । खाण्डवो यज्ञदत्तश्च एकार्षेयो महानृषिः । व° । ६ ग. रौरालयो । ङ. शैवलेयो । ७ ङ. °वित्रासना° । ८ ङ. कौमानरायणा लोके कौर° । ९ क. ख. °वयः । दा° । १० ङ. पादपायन उद्घाटस्तर्पयश्चदलेषवः । ११ क. ख. पर्णागा° । १२ ग. °था । भार्तिर्वसु° । १३ ङ एच चन्द्रसंमतिरे° । १४ ग. °ताः । जपस्वस्थाश्च मुनयो धवा लोहलयश्च । १५ ङ. °विवर्धकाः । त्रैशृङ्गाः सर्वसौलाबाः कु° । १६ ग. ङ. °म । आर्षेयो मरुतश्चैषां सर्वेषां प्रवरः शुभः । व° ।

त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः । वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ॥१६
दानकाया महावीर्या नागेयाः परमास्तथा । आलम्बा वायनश्चापि ये चक्रोडादयो नराः ॥१७
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । [1]शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च[2] ॥१८
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा । जातूकर्ण्यो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१९
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं [3]द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥२०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने वसिष्ठगोत्रानुवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०७६६॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः [4]पूर्वपुरोहितः । [5]बभूवुः पार्थिवश्रेष्ठ [6]यज्ञास्तस्य समन्ततः ॥१

परम आलम्ब, बायन, तथा चक्रोडादि—इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है ।१४-१७½। शिवकर्ण, वय तथा पादप-इन सभी के तीन प्रवर कहे गये हैं। जातूकर्ण्य, वशिष्ठ तथा अत्रि । इनमें परस्पर बिवाह नहीं होते । हे राजन् ! महर्षि वसिष्ठ के गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले श्रेष्ठ ऋषियों के नामों को मैं आप से बता चुका जिनके परम पवित्र नामों के संकीर्त्तन मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है।१८-२०।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रवरानुकीर्तन नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त ॥२००॥

अध्याय २०१

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ ! प्राचीनकाल में वसिष्ठमुनि राजा निमि के

---

[1] ङ. शवकर्णो । [2] ङ. च । आर्षेयः प्रवरश्चै° । [3] ग. द्विजाग्रयाः । [4] ग. ङ. पूर्वं पु° । [5] ग. घ. ङ. बभूव । [6] ङ. यज्ञैस्तस्य तु संस्कृतैः । श्रान्ता° ।

श्रान्तात्मा पार्थिवश्रेष्ठ विशश्राम तदा गुरुः । तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ॥२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय मा चिरम् । तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम् ॥३
कंचित्कालं प्रतीक्षस्व[1] तव यज्ञैः [2]सुसत्तमैः । श्रान्तोऽस्मि राजन्विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप ॥४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तमः । पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत्[3] ॥५
न च मे सौहृदं ब्रह्मन्कृतान्तेन बलीयसा । धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ॥६
धर्मपथ्योदनो[4] जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते । श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम् ॥७
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न वा कृतम् । क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥८
[5]वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति[6] । न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥९
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् । प्राणवायोश्चलत्वं च त्वया विदितमेव च ॥१०
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन्क्षणमात्रं तदद्भुतम् । शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ॥११

पुरोहित थे, राजा निमि यज्ञों का बहुत अनुष्ठान किया करते थे । एक बार मुनि यज्ञ कराते-कराते थक कर विश्राम कर रहे थे कि उनके पास राजाओं में श्रेष्ठ निमि ने पहुँचकर निवेदन किया— 'हे भगवन् ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः शीघ्र ही उसे पूरा कराइये' । राजा की यह बातें सुन महातेजस्वी वसिष्ठ जी ने राजा से कहा— हे राजन् ! कुछ समय तक अभी प्रतीक्षा कीजिए, आपके निरन्तर चलनेवाले बड़े-बड़े यज्ञों से मैं बहुत परेशान हो गया हूं' कुछ दिन तक सुस्ताकर फिर तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा ।१-४। वसिष्ठ की ऐसी बातें सुन राजा ने कहा कि—'हे मुनि जी ! पारलौकिक कार्य में भला कौन ऐसा मनुष्य है जो प्रतीक्षा कर सकता है, ब्रह्मन् ! महापराक्रमी काल से मेरी कोई मित्रता नहीं है कि मेरे लिए वह रुका रहेगा, धर्म के कार्य में मनुष्य को शीघ्रता करनी चाहिये, क्योंकि यह जीवन अति चंचल है धर्म रूप ओदन का पथ्य करनेवाला मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होकर भी सुख प्राप्त करता है ।५-६½। मनुष्य को सर्वदा कल का काम आज और तीसरे पहर किया जानेवाला काम सवेरे के पहर में करना चाहिये, क्योंकि मृत्यु किसी की इसलिए प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपने अभीष्ट कार्यों को समाप्त कर लिया है या नहीं । खेत, दूकान, और घर में आसक्त रहनेवाले अथवा कहीं अन्यत्र मन को लगानेवाले प्राणी को मृत्यु इस प्रकार पकड़ कर ले भागती है जैसे विगवा की स्त्री भेड़ को पकड़ कर भागती है । इस संसार में काल का न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु ।७-९। आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर वह बलात् मनुष्य को हर लेती है, प्राणवायु की चंचलता तो तुम जानते ही हो । हे ब्रह्मन् ! इस जगत् में, ऐसी स्थिति में जितना कुछ जीवन है वही आश्चर्यमय है, इस नश्वर शरीर को विद्याध्ययन तथा धन के अर्जन में कभी विनाशशील नहीं मानना

---

[1] ग. °स्व जपयज्ञैर्भृशं नृप । श्रा° । [2] ङ सुसंस्कृतैः । श्रा° । [3] ङ. °त् । नीयते हि जगद्ब्रह्म° ।
[4] क. ख. पथ्यौद° । [5] ख. वृकश्चो° । [6] क ख °ति । नैकान्तेन । प्रि° ।

अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि संकटे । सोऽहं संभृतसंभारो भवन्मूलमुपागतः ॥१२
न चेद्याजयसे मां त्वमन्यं यास्यामि याजकम् । एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ॥१३
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि । श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ॥१४
धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि । निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे ॥१५
विघ्नं करोषि[1] नान्येन याजनं च तथेच्छसि । शापं ददामि[2] तस्मात्त्वं विदेहोऽथ भविष्यसि ॥१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ । देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः ॥१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । अद्यप्रभृति ते स्थानं [3]निमे जीव ददाम्यहम् ॥१८
नेत्रपक्ष्मसु [4]सर्वेषां मनुष्याणां भविष्यसि । त्वत्संबन्धात्तथा तेषां निमेषः संभविष्यति ॥१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः । एवमुक्तो मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः ॥२०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात्स्वयंभुवः। वसिष्ठजीवं भगवान्ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२१
मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ त्वं भविष्यसि । वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति ॥२२

चाहिये किन्तु धर्म कार्य में तो इसे नश्वर ही मानना चाहिये। इस संकट पूर्ण परिस्थिति में मेरे ऊपर अभी ऋण शेष है, इसी विचार से मैं आपकी सेवा में आया हुआ हूँ, यदि आप इस समय मेरा यज्ञ नहीं करा रहे हैं तो मैं दूसरे ऋषि के पास जा रहा हूँ'। उस समय राजा निमि ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से इस प्रकार की बातें कहीं।१०-१३। तब वसिष्ठ जी ने राजा निमि को शाप दे दिया कि 'तू विदेह (शरीर-रहित) हो जा इसलिये कि मुझे छोड़कर धर्म की मर्यादा जानते हुए तथा राजा होकर भी अन्य पुरोहित के पास यज्ञ कराने के लिए जाना चाहते हो।' वसिष्ठ के उक्त शाप को सुनकर राजा निमि ने कहा कि—'हे मुने ! आपने धर्म कार्य करते हुए मुझको विघ्न पहुँचाया है, और दूसरे से भी मुझे यज्ञ कराने की अनुमति नहीं दे रहे हो, अतः तुम्हें भी मैं शाप दे रहा हूँ कि तुम भी विदेह हो जाओ।१४-१६। इस प्रकार की बातें कहने के उपरान्त वे राजा तथा ब्रह्मर्षि— दोनों विदेह हो गये और शरीर से हीन होकर उनके जीव ब्रह्मा के पास जा पहुँचे । उन दोनों को आया देख ब्रह्मा ने निमि से कहा कि — हे 'निमि के जीव ! आज से तुम्हें मैं अलग स्थान दे रहा हूँ । तू सभी मनुष्यों के नेत्रों की पलकों पर रहा करो, तुम्हारे संयोग से उनकी पलकें भंजने लगेंगी ।१७-१९। और वे सब आज से नेत्रों के पंखों को चलाते रहा करेंगे।' ऐसा कहने पर सभी मनुष्यों के नेत्रों के पलकों पर स्वयम्भू ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से निमि के जीव ने अपना स्थान बनाकर प्रस्थान किया, तब वसिष्ठ के जीव से भगवान् ब्रह्मा ने कहा। हे वसिष्ठ ! तुम मित्रावरुण के पुत्र

---

१ ङ. °षि तन्मे त्वं या° । २ क ख. °दासि यस्मा° । ३ क. ख. निमि जी° । ४ क. ख. °षां त्वं वसिष्यसि पार्थिव । त्वं ।

जन्मद्वयमतीतं च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि । एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ॥२३
वदर्याश्रममासाद्य [1]तपस्तेपतुरव्ययम् । तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ ॥२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते । उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ॥२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथं गता । तां दृष्ट्वेंदुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम् ॥२६
उभौ चुक्षुभतुर्देवौ तद्रूपपरिमोहितौ । तपस्यतोस्तयोर्वीर्यमस्खलच्च मृगासने ॥२७
स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा [2]शापभीता वराप्सरा । चकार कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे ॥२८
तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाऽप्रतिमौ भुवि । वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च [3]मित्रावरुणयोः सुतौ ॥२९
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भगिनीं नारदस्य तु । अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत् ॥३०
शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे । यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत ॥३१
प्रकाशो जनितो येन लोके भारतचन्द्रमाः । येनाज्ञानतमोन्धस्य लोकस्योन्मीलनं कृतम् ॥
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम् ॥३२

होगे, वहाँ भी तुम्हारा नाम वशिष्ठ रहेगा, बीते हुए दो जन्मों का वृतान्त तुम्हें स्मरण रहेगा ।' ठीक इसी अवसर पर मित्र और वरुण—ये दोनों देवता बदरी आश्रम के समीप घोर तपश्चर्या में निरत थे। २०-२३½। इस प्रकार उग्र तपस्या में उन दोनों के लीन रहने पर कभी वसन्त का समय आया, सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्पों से लद गयीं, सुखकारी वायु बहने लगी, और वहाँ उर्वशी नामक परम सुन्दरी अप्सरा फूलों को चुनती हुई पहुँच गयी, उस समय वह अति सूक्ष्म लाल रंग का सुन्दर वस्त्र पहिने हुए थी, धीरे-धीरे वह फूल चुनते हुए उन दोनों तपस्वियों के सामने आ गई। चन्द्रमुखी, नील कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली सुन्दर भौहोंवाली उर्वशी को देखकर दोनों तपस्वी उसके अनुपम रूप—सौन्दर्य से विमोहित होकर परम क्षुब्ध हो गये । और मृगचर्म के आसन पर तपस्या में निरत उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया ।२४-२६। शाप के भय से डरी हुई उर्वशी ने उन महानुभाव ऋषियों के मृगासन पर स्खलित हुए वीर्य को देख जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को उठा कर रख लिया । उसी घट से अनुपम तेजस्वी वसिष्ठ तथा अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए, जो मित्र और वरुण के पुत्र कहे जाते हैं । वसिष्ठ ने नारद ऋषि की बहिन परम सुन्दरी अरुन्धती के साथ विवाह किया, जिसके संयोग से उन्हें शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शक्ति के पराशर नामक पुत्र हुए । उन पराशर ऋषि के वंश का वर्णन अब मुझसे सुनो ।२७-३०। उन्हीं पराशर ऋषि के स्वयं विष्णु भगवान् द्वैपायन (व्यास) रूप धारण कर पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस लोक में महाभारत रूपी चन्द्रमा का शुभ्र निर्मल प्रकाश उत्पन्न किया । जिस प्रकाश ने अज्ञानांधकार में निमग्न लोक की आँखो को खोल दिया । उन्हीं पराशर ऋषि के पवित्र वंश का वर्णन सुनो ।३१-३२। काण्डशय, वाहनप, जैह्याप, भीमतापन

---

[1] ग. घ. ङ. °व्ययौ । त° । [2] क. ख. °भीतौ परस्परम् । चक्रतुः क° । [3] क, ख, °णयोर्द्वयोः ।

[१]काण्डशयो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः। गोपालिरेषां पञ्चम[२] एते गौराः पराशराः ॥३३
प्रपोहया वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः। हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः ॥३४
कार्ष्णायनाः [३]कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः। पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः ॥३५
श्राविष्ठायनबालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये। इषीकहस्तश्चैते वै पञ्च श्वेताः पराशराः ॥३६
वाटिको बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः। क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ॥३७
खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः[४]। तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८
पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः। पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः॥
परस्परमवैवाह्या सर्व एते पराशराः ॥३९

उक्तास्तवैते नृप वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।
येषां तु नाम्नां परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥४०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने पराशरवंशवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्कः ॥१०८०६॥

ये चार तथा पाँचवे गोपालि ये पाँच गौर पराशर कहे जाते हैं। प्रपोहय, बाह्यमय, ख्यातेय, कौतुजातय ये चार तथा पाँचवे हर्यश्वि—इन पाँचो को नील पराशर जानना चाहिये। कार्ष्णायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपातय—ये चार तथा पाँचवें पुष्कर इनको कृष्ण पराशर जानना चाहिये। श्राविष्ठायन, बालेय, स्वायष्ट उपय—ये चार तथा पाँचवें इषीकह—इनको श्वेत पराशर जानना चाहिये। वाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन— ये चार तथा पाँचवें क्षैमि— ये पाँच श्याम पराशर हैं। खल्यायन, वार्ष्णायन, तैलेय, यूथप—ये चार तथा पाँचवें तन्ति—ये पाँच धूम्र पराशर कहे गये हैं। इन सभी पराशरों के तीन ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं, पराशर, शक्ति तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे राजन्! तुमको मैं सूर्य के समान प्रभावशाली गोत्रकर्त्ता पराशर वंशवाले इन ऋषियों के नामों को बता चुका, जिनके पवित्र नामों के संकीर्तन से मनुष्य समग्र पापों से मुक्त हो जाता है।३३-४०।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में पराशरवंश वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ॥२०१॥

---

[१] घ. काण्डूषयो वाहयौजाः समयासमतापनाः। गो°। [२] ग. °ञ्चतमः कृष्णाज्ञेयाः पराशराः। प्र°। घ. ञ्चमः कृष्णाज्ञेयाः पराशराः प्रारोरया। [३] ग. °पिश्रवाः कार्कैयाः स्यातपायनाः। श्रा°। [४] ग. °पाः। जार्तिरे°।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान्द्विजान् । [1]अगस्त्यश्च करम्भश्च [2]कौशल्याः शकटास्तथा ॥१
सुमेधसो मयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः । पौलस्त्या पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा ॥२
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः । अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः ॥३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । *पौर्णमासाः पारणाश्च त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः । परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणैः ॥५
एवमुक्त ऋषीणां तु वंश उत्तमपौरुषः । अतः परं प्रवक्ष्यामि किं भवानद्य कथ्यताम् ॥६

मनुरुवाच

पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव महात्मनः । अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम् ॥७

मत्स्य उवाच

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे । इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ॥८

अध्याय २०२

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! इसके उपरान्त मैं अगस्त्य के वंश में उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मणों का वर्णन कर रहा हूँ । अगस्त्य, करम्भ, कौशल्य, शकट, सुमेधस, मयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा क्रतु के वंश में उत्पन्न होनेवाले—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर ऋषि कहे गये हैं, अगस्त्य, महेन्द्र तथा मयोभुव । इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है । पौर्णमास तथा पारण इन दोनों ऋषियों के तीन प्रवर हैं, अगस्त्य, पौर्णमास तथा महातपस्वी पारण । जिनमें परस्पर पौर्णमास लोग पौर्णमासवालों से विवाह के अयोग्य हैं । इस प्रकार प्रशंसनीय पराक्रमशाली ऋषियों के उत्तम वंश का वर्णन मैं कर चुका, अब इसके बाद आप बतलाइये कि मैं क्या कहूँ ? ।१-६।

मनु ने कहा—पुलह, पुलस्त्य तथा महात्मा क्रतु के वंशधरों का सम्बन्ध अगस्त्य ऋषि के वंश से किस प्रकार हुआ, इसे बतलाइये ।७।

मत्स्य भगवान् ने कहा—वैवस्वत मन्वन्तर में यह बात प्रसिद्ध थी कि महर्षि क्रतु को कोई सन्तति

---

* एतदर्धं न विद्यते ग. पुस्तके ।

---

[1] क. °गतस्त्यः करम्भयः कौ° । [2] ख. ग. °शल्यः करटस्त° ।

अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञमागस्त्याः क्रतवस्ततः । पुलहस्य तथा पुत्रस्त्रायश्च पृथिवीपते ॥९
तेषां तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि । पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमनाः स्वकाम् ॥१०
अगस्त्यजं दृढास्यं तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः । पौलहाश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ॥११
+पुलस्त्यान्वयसंभूतान्दृष्ट्वा[1] रक्षः समुद्भवान् । अगस्त्यस्य सुतं धीमान्पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ॥१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः । सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ॥१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां हानुभावा नृप वंशकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ ॥१४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१०८२०॥

नहीं थी, अतएव उन्होंने अगस्त्य के धर्मिष्ठ पुत्र इध्मवाह को पुत्र रूप में स्वीकार किया था, इसीलिये अगस्त्य के वंशज भी क्रतु के वंशज कहलाये । हे पृथ्वीपते ! महर्षि पुलह के तीन पुत्र थे जिनका वर्णन मैं आगे विस्तारपूर्वक करूँगा, किन्तु उन तीनों पुत्रों के होने पर भी महर्षि पुलह सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने भी अगस्त्य के पुत्र ऋषि दृढ़ास्य को पुत्र रूप में स्वीकार किया था हे राजन् ! इसीलिए पुलह के वंशज अगस्त्य के वंशज कहलाये । महर्षि पुलस्त्य ने अपने वंशधरों को राक्षस कर्म में निरत होता देख अगस्त्य के पुत्र को पुत्र रूप में वरण किया । इसीलिए हे राजन् ! पुलस्त्य के वंशज भी अगस्त्य के वंशज कहलाये । ये सभी सगोत्र होने के कारण आपस में विवाह के अयोग्य हैं हे राजन् ! इस प्रकार मैं इन महानुभाव गोत्रकर्त्ता ऋषियों के प्रवरों का वर्णन तुमसे कर चुका जिनके नामों के कीर्त्तन से मनुष्य अपने किये गये समस्त पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है ।८-१

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्तन प्रसंग में अगस्त्यवंशवर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त ॥२००॥

+इत आरभ्य परस्परमनन्वया इत्यन्तग्रन्थो ग. घ. ङ. पुस्तकेषु न विद्यते ।

---

[1] ङ. °ष्ट्वा राक्षसपुंगवा° ।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव । दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम् ॥१
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप । अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
अष्टौ च वसवः पुत्राः [1]सोमपाश्च विभोस्तथा । धरो ध्रुवश्च [2]सोमश्च आपश्चैवानलानिलौ ॥३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः । धरस्य पुत्रो द्रविणः कालः पुत्रो ध्रुवस्य तु ॥४
कालस्यावयवानां तु शरीराणि [3]नराधिप । [4]मूर्तिमन्ति च कालाद्धि [5]संप्रसूतान्यशेषतः ॥५
सोमस्य भगवान्वर्चाः[6] श्रीमांश्चाऽऽपस्य कीर्त्यते । अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्य तु ॥६
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः । विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स[7] वर्धकिः ॥७
समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव । लम्बापुत्रः स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्च भानवः ॥८
ग्रहर्क्षाणां च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् । मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः ।.९

अध्याय २०३

मत्स्य भगवान् ने कहा— हे राजन् ! अब मैं दक्ष की कन्याओं में धर्मराज के संयोग से उत्पन्न होनेवाले इस वैवस्वत मन्वन्तर के उत्तम देववंशों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। हे नराधिप ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में धर्मराज के संयोग से अरुन्धती के पर्वतादि तथा महादुर्ग के समान विशाल शरीरवाले सोमपायी आठ वसु गण उत्पन्न हुए थे । धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष तथा प्रभास ये उन आठ वसुओं के नाम कहे गये हैं।१-३½। धर के पुत्र का नाम द्रविण तथा ध्रुवपुत्र का नाम काल हुआ, हे नराधिप ! उसी काल से मूर्तिमान् काल के समस्त अवयवों (वर्ष मास आदि) की उत्पत्ति हुई । सोम के प्रभावशाली वर्चा नामक पुत्र हुए, आप के पुत्र का श्रीमान् नाम कहा जाता है। अनल के पुत्र का नाम अनेकजन्मजनन है, अनिल का पुत्र पुरोजव तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल हुआ। प्रभास का पुत्र देवताओं का बढ़ई विश्वकर्मा हुआ ।नागवीथी आदि नव सन्तानें इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली थीं। लम्बा के पुत्र का नाम घोष था तथा भानु के पुत्र भानुगण (बारह आदित्य) हुए ।४-८। सभी ग्रह तथा नक्षत्र एवं अन्य अमित प्रभावशाली ज्योतिः पुञ्ज मरुत्वान् गणों की उत्पत्ति मरुत्वती से कही जाती है । संकल्पा के संकल्प,

---

[1] ङ. °पा वसवस्त° । ग. °पाश्चाश्विनौ तथा । [2] घ. °प । मुहूर्तवज्रः का° । [3] ग. मुहूर्तवर्जं का° ।
[4] घ. °सूतो विशो° । [5] ग. ङ. °र्चाः श्रमस्त्वाप° । [6] ग. घ. स वार्ध° ।

संकल्पायाश्च संकल्पस्तथा पुत्रः प्रकीर्तितः । मुहूर्ताश्च मुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः ॥१०
[1]मनोर्मनुश्च प्राणश्च [2]नरोषा नोच वीर्यवान्[3] । चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥११
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः । विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वे देवाः प्रकीर्तिताः । १२
क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो मुनिस्तथा । कुरजो मनुजो वीजो रोचमानश्च ते दश ॥१३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ।
व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन्विना वर्षशतैरनेकैः ॥१४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धर्मवंशवर्णने धर्मप्रवरानुकीर्तनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०८३४॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

एतद्वंशभवा विप्राः श्राद्धे भोज्याः प्रयत्नतः । पितृणां वल्लभं यस्मादेषु श्राद्धं नरेश्वर ॥१
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृभिर्याः प्रकीर्तिताः । गाथाः पार्थिवशार्दूल [4]कामवद्भिः पुरे स्वके ॥२

मुहूर्ता के मुहूर्त्त एवं साध्या के साध्यगण पुत्र कहे जाते हैं मनु से, मनु, (मंत्र) प्राण, नरोष, नोच, वीर्यवान् चित्तहार्य, अयन हंस, नारायण, विभु और प्रभु— ये बारह साध्य कहे जाते हैं। विश्वा के पुत्र विश्वेदेव के नाम से प्रख्यात हुए। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, मुनि, कुरज, मनुज, वीज तथा रोचमान —ये दस उनके नाम हैं। राजकुल में श्रेष्ठ ! यह धर्मराज के वंश का वर्णन संक्षेप में मैं तुम्हें सुना चुका । राजन् ! इनका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक सैकड़ों वर्षों के बिना व्यास भी नहीं कर सकते अर्थात् व्यास भी अनेक सौ वर्षों में विस्तारपूर्वक इनका वर्णन कर सकते हैं।९-१४।

श्री मात्स्य महापुराण के धर्मवंशवर्णन-प्रसंग में धर्मप्रवरानुकीर्त्तन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ॥ ०३॥

अध्याय २०४

मत्स्य ने कहा— नरेश्वर ! इन उपर्युक्त ऋषिवंश में उत्पन्न ब्राह्मणों से श्राद्धकर्म में प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये क्योंकि इन्हें भोजन कराने से पितरों को प्रसन्नता होती है । हे राजसिंह ! इसके उपरान्त मैं अपने पुर में अवस्थित श्राद्ध के अभिलाषी पितरों से कही हुई पवित्र

---

[1] ग. °नोर्मानिश्च । [2] ग. °रो जातश्च वी° । [3] ग. °न् । वीतहर्यो । [4] क. ख. ग. °मयद्भिः ।

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम् । नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः ॥३
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यः श्राद्धं नित्यमाचरेत् । पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेन वा पुनः ॥४
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वर्षासु च मघासु च ॥५
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं खड्गमांसेन यः सकृत् । श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन कालशाकेन वा पुनः ॥६
कालशाकं महाशाकं मधु मुन्यन्नमेव च । विषाणवर्जा ये खड्गा आसूर्यं [1]तदशीमहि ॥७
गयायां दर्शने राहोः खड्गमांसेन [2]योगिनाम् । भोजयेत्कः कुलेस्माऽस्माकं छायायां कुंजरस्य च ॥८
आकल्पकालिकी तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति । दाता सर्वेषु लोकेषु कामचारो भविष्यति ॥९
आभूतसंप्लवं कालं नात्र कार्या विचारणा । यदेतत्पञ्चकं तस्मादेकेनापि[3] वयं सदा ॥१०
तृप्तिं प्राप्स्याम चानन्तां किं पुनः सर्वसंपदा । अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं दद्यात्कृष्णाजिनं च यः ॥११
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं कश्चित्पुरुषसत्तमः । प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद्ब्राह्मणपुंगवे ॥१२

कथा को तुमसे कह रहा हूँ ।१-२। पितर लोग कहते हैं कि "क्या हमारे वंश में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा जो हम लोगों को जलांजलि — विशेषतया अगाध एवं शीतल जलवाली नदी की जलांजलि—देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा जो नित्य श्राद्धकर्म—दुग्ध, मूल, फल, अन्य खाद्य सामग्री, अथवा तिलमिश्रित जल से ही-करेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यशील पैदा होगा जो वर्षाऋतु के मघानक्षत्र की त्रयोदशी तिथि को मधु एवं घृत से मिश्रित दुग्ध में पका हुआ खाद्य पदार्थ हमें देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यवान् उत्पन्न होगा जो एक बार तलवार से काटे गये मांस से अथवा कालशाक ही से प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करेगा ? ।३-६। कालशाक, महाशाक, मधु एवं अन्य मुनिजनोचित अन्न तथा सींग से रहित तलवार द्वारा काटा गया मांस—इन सब पदार्थों का हम लोग जब तक सूर्य उदित रहते हैं, तब तक भोजन करते हैं। गयातीर्थ में राहु के दिखाई पड़ने के अवसर (सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के अवसर) पर एवं गजच्छाया योग में गैंड़े के मांस से योगियों को हमारे कुल में कौन खिलायेगा ? इन पदार्थों द्वारा हम लोगों की कल्पपर्यन्त की तृप्ति होगी और देनेवाला सभी लोकों में महाप्रलय पर्यन्त अपनी इच्छा के अनकूल विचरण करनेवाला होगा, इसमें सन्देह नहीं ।७-९½। इन पाँच प्रकार के विधानों में एक विधान के करने से भी हम लोग सर्वदा अनन्त तृप्ति का लाभ करते हैं तो फिर सभी के करने की तो बात ही क्या है ?" पितर आगे कहते हैं कि "क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो कृष्ण मृगचर्म का दान देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली नररत्न उत्पन्न होगा, जो

---

[1] ग. घ. ङ. °दशामहे । ग° । [2] ङ. योगवित् । [3] क. ग. °पि च यः स° ।

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं वृषभं यः समुत्सृजेत् । सर्ववर्णविशेषेण शुक्लं नीलं वृषं तथा ॥१३
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यः कुर्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः । सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥१४
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं कश्चित्पुरुषसत्तमः । कूपारामतडागानां वापीनां यश्च कारकः ॥१५
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम् । प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम् ॥१६
अपि नः स कुले भूयात्कश्चिद्विद्वान्विचक्षणः । धर्मशास्त्राणि यो दद्याद्विधिना विदुषामपि ॥१७
एतावदुक्तं तव भूमिपाल श्राद्धस्य कल्पं मुनिसंप्रदिष्टम् ।
पापापहं पुण्यविवर्धनं च लोकेषु मुख्यत्वकरं तथैव ॥१८
*इत्येतां पितृगाथां तु श्राद्धकाले तु यः पितृन् । श्रावयेत्तस्य पितरो लभन्ते दत्तमक्षयम् ॥१९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृगाथाकीर्तनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०८५३॥

ब्यायी हुई गाय को श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिए दान देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई होगा जो वृषभ—विशेषकर सभी वर्णों में श्वेत तथा नील वर्ण—का उत्सर्ग (छोड़ना) करेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई सत्पुरुष उत्पन्न होगा जो श्रद्धापूर्वक सुवर्ण, पृथ्वी तथा गौ का दान करेगा ? ।१०-१४। क्या हमारे कुल में ऐसा कोई नररत्न उत्पन्न होगा, जो कूप, बगीचा, सरोवर एवं बावलियों का निर्माण करायेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो सभी भावों से मधु दैत्य के उन्मूलन करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु की शरण में जायेगा ! क्या हमारे कुल में ऐसा कोई विद्वान्, विचारक पुरुष उत्पन्न होगा, जो विधिपूर्वक विद्वानों को भी धर्मशास्त्रों की व्यवस्था दे सकेगा ?" हे पृथ्वीपति ! मुनि द्वारा कही गयी श्राद्ध कर्म की इतनी विधि, जो पापों का नाश तथा पुण्य की वृद्धि करनेवाली एवं लोकों में प्रमुखता प्रदान करनेवाली है, मैं तुम्हें बता चुका । इस पवित्र पितरों की गाथा को श्राद्धकाल में पितरों को सुनाता है, उसके पितर दिये गये पदार्थों को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं ।१५-१९।

श्री मात्स्य महापुराण में पितृगाथानुकीर्त्तन नामक दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥२०४॥

---

* एष श्लोको नास्ति क. ख. ङ. पुस्तकेषु ।

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुंगवे । विधिना केन धर्मज्ञ दानं दद्याच्च किं फलम् ॥१

मत्स्य उवाच

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् । कांस्योपदोहनां राजन्सवत्सां द्विजपुंगवे ॥२
प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत् । यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥३
तावद्वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना । प्रसूयमानां यो दद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम् ॥४
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥५
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप । तावत्संख्यं युगगणं देवलोके महीयते ॥६
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । [१]उद्धरिष्यत्यसंदेहं नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥७

अध्याय २०५

मनु ने कहा—धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले ! श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्यायी हुई गाय के दान देने की चर्चा जो आपने की है, उसका विधान क्या है ? अर्थात् किस विधि से उसका दान किया जाता है ? तथा उसका फल क्या है ? ।१।

मत्स्य ने कहा—राजन् ! उत्तम कुलोत्पन्न ब्राह्मण को सुवर्ण जटित सींगोंवाली, चाँदी से मढ़े हुए खुरोंवाली, मोंतियों से सुशोभित पूछवाली सवत्सा गौ को काँसे के बने हुए दोहनपात्र से युक्त कर दान देना चाहिये । इस विधि से ब्यायी हुई गाय को दान कर लोग महत्पुण्य प्राप्त करते हैं । जब तक बछड़ा योनि के अन्दर रहता है, जब तक गाय गर्भ का प्रजनन नहीं कर देती तब तक उसे पर्वत एवं जंगल समेत पृथ्वी जाननी चाहिये । जो कोई ब्यायी हुई गाय को द्रव्य समेत दान देता है, वह मानों सभी समुद्र, गुफा, पर्वत एवं जंगलों समेत चतुर्दिशा युक्त पृथ्वी का दान कर चुका, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।२-५। हे नराधिप ! उस बछड़े के तथा गौ के शरीर में जितने रोयें रहते हैं उतने ही युगों पर्यन्त दाता देवलोक में पूजित होता है। प्रचुर दक्षिणा को देनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह को इस संसार सागर से उबार लेता है । वह भूरि दक्षिणा प्रदान करनेवाला मनुष्य गोलोक में, जहाँ घृत तथा क्षीर से

---

[१] क. ख. घ. °देहान्तर° । ङ. °देहो न° ।

घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः । यत्र [1]तत्र गतिस्तस्य द्रुमाश्चेप्सितकामदाः ।।
गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ।।८
स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः [2]प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यरूपाः ।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या भजन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः ।।९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धेनुदानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२०५।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।१०८६२।।

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालौ ममानघ । ब्राह्मणं च तथाऽऽचक्ष्व तत्र मे संशयो महान् ।।१

युक्त नदियाँ बहा करती हैं, दही एवं पायस (दुग्ध मिश्रित खाद्य) के कीचड़ रहते हैं, मनोवाञ्छित को प्रदान करनेवाले वृक्ष रहते हैं—सुविधापूर्वक विहार करता है। हे राजन्! उसके लिए ब्रह्मलोक भी सुलभ है। उस दान देनेवाले पुरुष की वहाँ पर चन्द्रमा के समान मनोहारी मुखवाली, तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्णवाली, दीर्घ नितम्बिनी, पतली कमरवाली, कमल के समान नेत्रोंवाली सुन्दरियाँ निरन्तर सेवा करती हैं।६-९।

श्री मात्स्य महापुराण में धेनु-दान माहात्म्य नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।२०५।।

अध्याय २०६

मनु ने कहा—निष्पाप! कृष्ण मृगचर्म के प्रदान करने की विधि, समय, तथा कैसे ब्राह्मण को दान देना चाहिये इसका विधान मुझसे बतलाइये, क्योंकि इस विषय में मुझे अभी बड़ा सन्देह है।१।

---

[1] ग. यत्र। [2] ग. ल्यवर्णाः। म°।

मत्स्य उवाच

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणे शशिशूर्ययोः । पौर्णमासी तु या माघी[1] ह्याषाढी कार्तिकी तथा ॥२
[2]उत्तरायणे च द्वादश्यां तस्यां दत्तं महाफलम् । आहिताग्निर्द्विजो यस्तु तद्देयं तस्य पार्थिव ॥३
यथा तेन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु । गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप ॥४
आदावेव समास्तीर्य शोभनं वस्त्रमाविकम् । ततः सशृङ्गं [3]सखुरमास्तरेत्कृष्णमार्गकम् ॥५
कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं तद्रौप्यदन्तं तथैव च । लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च ॥६
[4]तिलैः सुपूरितं कृत्वा वाससाऽऽच्छादयेद्बुधः[5] । सुवर्णनाभं तत्कुर्यादलं कुर्याद्विशेषतः ॥७
रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् । कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद्यथाक्रमम् ॥८
मृन्मयेषु च पात्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम् । घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद्यथाविधि ॥९
[6]चम्पकस्य तथा शाखामव्रणं कुम्भमेव च । बाह्योपस्थानकं कृत्वा [7]शुभचितो निवेशयेत् ॥१०
[8]सूक्ष्मवस्त्रं शुभं पीतं मार्जनार्थं प्रयोजयेत् । [9]तथा [10]धातुमयं पात्रं पादयोस्तस्य दापयेत् ॥११

मत्स्य ने कहा—राजन् ! वैशाख मास की पूर्णिमा, चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के अवसर, माघ मास की पूर्णिमा, आषाढ़ तथा कार्तिक की पूर्णिमा, सूर्य के उत्तरायण में आने पर द्वादशी तिथि—इन तिथियों में कृष्ण मृगचर्म दान का महाफल कहा गया है । जो ब्राह्मण नित्य अग्न्याधान करनेवाला हो उसे ही इसका दान करना चाहिये । जिस प्रकार जिस विधान से दान देना चाहिये, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ।२-३½। हे नराधिप ! पवित्र देश में गोबर के लिपी हुई पृथ्वी पर सर्वप्रथम भेड़ के वस्त्र (अर्थात् कम्बल) को बिछा दे, फिर खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृग के चर्म को बिछा दे । उस मृगचर्म की सींगों को स्वर्ण से, दाँतों को चाँदी से, पूंछ को मोतियों से अलंकृत कर तिल से छुपा दे । बुद्धिमान् पुरुष तिलों से उस मृगचर्म को पूरित कर वस्त्र से ढंक दे, उसकी नाभि को सुवर्णमय बनाकर अपनी शक्ति के अनकूल रत्नों तथा सुगन्धियों से विशेषतया अलंकृत कर दे । फिर क्रमानुसार चार काँसे से बने हुए पात्रों को दे ।४-८। फिर पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः चार मिट्टी के पात्रों में घृत, दुग्ध, दही तथा मधु रखकर विधिवत दान करे तदुपरान्त चम्पक की एक शाखा तथा तथा विना फूटा हुआ एक घट बाहर में पूर्व की ओर मंगल भावना से युक्त होकर स्थापित करे । फिर स्नान के लिए एक सूक्ष्म (महीन) पीला वस्त्र दे तथा एक लोहे का बना हुआ पात्र

---

[1] क. ख माघे । [2] क. °यणद्वादशी वा त° । [3] ग. °रेन्मृगसारजम् ।क° । [4] क. ख. °लैश्च शिखितं । [5] क येच्छुचिः । सु° । [6] च. पादपस्य । [7] घ. °भविप्रो नि° । [8] ग. वर्णवृत्तं । च नव्यवस्त्र । [9] च. °था मृन्मयपात्राणि पा° । [10] क. ख. °मयीः पात्रीः पा° ।

यानि कानि च पापानि मया लोभात्कृतानि वै । लोहपात्रादिदानेन प्रणश्यन्तु ममाऽऽशु वै ॥१२
तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत् । यानि कानि च पापानि कर्मोत्थानि कृतानि च ॥१३
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा । मधुपूर्णं तु तत्कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत् ॥१४
परापवादपैशून्याद्वृथा मांसस्य भक्षणात् । तत्रोत्थितं च मे पापं[१] ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु ॥१५
[२]कन्यानृताद्गवां चैव परदाराभिमर्षणात्[३] । रौप्यपात्रप्रदानाद्धि क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे ॥१६
ऊर्ध्वपादे[४] त्विमे कार्यं ताम्रस्य रजतस्य च । [५]जन्मान्तरसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना ॥१७
सुवर्णपात्रदानात्तु नाशयाऽऽशु जनार्दन । हेममुक्ता विद्रुमं च दाडिमं बीजपूरकम्[६] ॥१८
प्रशस्तपात्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च । एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च ॥१९
[७]तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः । स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्या चाप्यलं कृतः ॥२०
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते । तत एवं समीपे तु मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥२१

उसके दोनों चरणों के पास रखे और यह कहे कि 'जिन किन्हीं भी पापों को मैंने लोभ में पकड़कर किया है, वे लौहमय पात्रादि के दान करने से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ ।९-१२। फिर काँसे के पात्र को तिलों से भरकर बायें पैर के पास रखे और यह कहे कि 'कर्म के प्रसंग में मैंने जिन किन्हीं पापों को किया है वे सर्वदा मेरे इस काँसे के बने हुए पात्रों के दान से नष्ट हो जायँ'। फिर ताम्र के पात्र में मधु भर कर दाहिने पैर के पास रखे और कहे कि 'दूसरे की निन्दा या चुगली करके अथवा बिना किसी विधि के मांस का भक्षण कर के मैंने जो पाप किया है, वह सब मेरे इस ताम्र पात्र के दान करने से नष्ट हो जायँ ।१३-१५। कन्या अथवा गौ के लिये मिथ्या कहने में तथा परकीया स्त्री के साथ स्पर्शादि करने में जो मैंने पाप किये हों वे इस चाँदी के पात्र-दान से शीघ्र ही नष्ट हो जायं' । चाँदी तथा ताँबे के बने हुए इन दोनों पात्रों को ऊपर के पैर के पास रखना चाहिये । जनार्दन ! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि द्वारा सहस्रों जन्मों में जो पाप कर्म किये हैं, उन सब को इस सुवर्ण पात्र के दान से शीघ्र ही नष्ट कर दीजिये ।' यह मंत्र सुवर्ण पात्र को दान करते समय कहे । सुवर्ण, मोती, मूँगा, अनार, बिजौरा नींबू—इन सब को उस मृगचर्म के प्रशस्त कान पर तथा खुर पर सिंगारा (एक जलीय फल) का दान करे । इस प्रकार के विधान में सभी प्रकार के पाक तथा फलों को भी रखे ।१६-१९। इन दानों को लेनेवाला ब्राह्मण विद्वान् तथा नित्य अग्न्याधान करने वाला हो, स्नान किये हुये हो दो सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हो तथा अपनी शक्ति के अनुरूप अलंकारों के द्वारा विभूषित किया गया हो । हे राजन् ! उस मृगचर्म का दान पुच्छ देश में प्रशस्त है । तत्पश्चात् उसके समीप स्थित हो निम्न प्रकार से मंत्रोच्चारण करे ।२०-२१। 'कृष्णाजिन......' इत्यादि वेद मंत्र का उच्चारण कर कृष्ण चर्म, सुवर्ण, मधु, घृत

---

१ ग °पं तिलपा° । २ ङ. च. नृतं गवां । ३ ङ. च. °त् । आतपत्रप्रदानेन क्षि° । ४ ङ. पादौ त्विमौ कुर्यात्ताम्र° । ५ क. ख जन्मजन्म स° । ६ ङ. च °म् । अश्वत्थपत्रं श्र° । ७ ग. °हृद्धि° ।

[*कृष्णाजिनेति कृष्णान्हिरण्यं मधुसर्पिषी । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥२२
यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं शृङ्गसंयुतम् । तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्ववस्त्रैरलंकृतम् ॥२३
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु विशिखायां विशेषतः । ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ॥२४
सप्तद्वीपान्विता दत्ता पृथिवी नात्र संशयः । कृष्णकृष्णाङ्गलो देवः कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते ॥२५
सुवर्णदानात्त्वद्दानाद्धुतपापस्य प्रीयताम् । त्रयस्त्रिंशत्सुराणां त्वमाधारत्वे व्यवस्थितः ॥२६
कृष्णोऽसि मूर्तिमान्साक्षात्कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते । सुवर्णनाभिकं दद्यात्प्रीयतां वृषभध्वजः ॥२७
कृष्णः कृष्णगलो देवः कृष्णाजिनधरस्तथा । तद्दानाद्धूतपापस्य प्रीयतां वृषभध्वजः ॥२८
अनेन विधिना दत्त्वा यथावत्कृष्णमार्गकम् । न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजंश्चितियूपसमो हि सः ॥२९
तं दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत् । स्वगृहात्प्रेष्य तं विप्रं [1]मङ्गलस्नानमाचरेत् ॥३०
पूर्णकुम्भेन राजेन्द्र शाखया चम्पकस्य तु । कृत्वाऽऽचार्यश्च कलशं मन्त्रेणानेन मूर्धनि ॥३१
आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा ऋचा संस्नाप्य षोडश । अहते वाससी वीत आचान्तः शुचितामियात् ॥३२

को जो ब्राह्मण को दान करता है वह सभी दुष्कर्मों से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृगचर्म को तिलों से आच्छादित कर तथा सभी प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत कर वैशाख महीने की पूर्णमासी तिथि को—विशेषकर विशाखा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा को—दान करता है वह मानो सभी पर्वतों व जंगलों समेत सातों द्वीपों संयुक्त समस्त पृथ्वी का दान करता है। 'हे कृष्णाजिन् ! देव! कृष्णस्वरूप ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस सुवर्ण के दान से तथा तुम्हारे दान से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायँ, तुम प्रसन्न हो जाओ ।२२-२५½। तुम तैंतीस देवताओं के आधार रूप में व्यवस्थित हो, तुम साक्षात् मूर्तिमान् कृष्ण हो। हे कृष्णाजिन् ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस सुवर्णयुक्त नाभि के समेत मैं तुझे दान कर रहा हूँ, इससे वृषभध्वज शंकर मुझ पर प्रसन्न हों। कृष्ण, कृष्ण गलेवाले, (नीलकण्ठ) कृष्ण चर्म धारण करनेवाले वृषभध्वज शंकर ! इस कृष्णाजिन के दान देने से मुझ नष्ट पापवाले के ऊपर प्रसन्न हों' इस उपर्युक्त विधि से कृष्ण मृगचर्म का का दान देकर हे राजन् ! उस प्रतिगृहीत ब्राह्मण का स्पर्श चिता के खूंटों के समान नहीं करना चाहिये, श्राद्धकाल एवं दान काल में उस ब्राह्मण को दूर ही रक्खे ।२६-२९½। उस ब्राह्मण को अपने घर से बिदाकर फिर मंगलस्नान करे। हे राजेन्द्र ! उस चम्पक की शाखा तथा पूर्ण कुम्भ द्वारा स्नान कर आचार्य बना कर उक्त विधि से पूजन करे। फिर 'अप्यायस्व ......' तथा 'समुद्र ज्येष्ठा......' आदि सोलह ऋचाओं से शिर पर अभिषेचन कर उपरान्त दो बिना फटे हुए वस्त्र पहिनकर आचमन करे तब दाता पवित्र

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके वर्तते ।

---

[1] ग. घ. मण्डले स्ना° । ङ. च. मण्डपे स्ना° ।

तद्वासः कुम्भहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे । [*]ततो मण्डलमाविशेत्कृत्वा देवान्प्रदक्षिणम् ॥३३
पीते वृत्ते सपत्नीकं मार्जयेद्याज्यकं द्विजः । मार्जयेन्मुक्तिकामं तु ब्राह्मणेन घटेन वै ॥३४
श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव । राज्यकामं तथा मूर्ध्नि ऐन्द्रेण कलशेन तु ॥३५
द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा । मृत्युंजयविधानाय याम्येन कलशेन तु ॥३६
ततस्तु तिलकं कार्यं ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् । दत्त्वा तत्कर्मसिद्ध्यर्थं ग्राह्याऽऽशीस्तु विशेषतः ॥३७
कृतेनानेन या तुष्टिर्न स शक्त्या सुरैरपि । वक्तुं हि नृपतिश्रेष्ठ तथाऽप्युद्देशतः शृणु ॥३८
समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् । सर्वाल्लँोकांश्च जयति कामचारी विहङ्गवत् ॥३९
आभूतसंप्लवं तावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम् । न पिता पुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह ॥
धनदेशपरित्यागं न चैवेहाऽऽप्नुयात्क्वचित् ॥४०

होता है । उस वस्त्र को कलश समेत ले जाकर चौराहे पर छोड़ आवे, तब देवताओं की प्रदक्षिणा कर मण्डल में प्रवेश करे ।३०-३३। ब्राह्मण को चाहिये कि वह पीत वस्त्र धारण किये हुए यज्ञ करनेवाले को, यदि वह मुक्ति की कामना करनेवाला हो तो ब्रह्मा के कलश से उसका मार्जन करे । हे राजन् ! यदि यज्ञकर्ता लक्ष्मी का का अभिलाषी है तो वैष्णव कलश द्वारा उसका मार्जन करे, राज्य की कामना करनेवाला है तो उसके शिर पर इन्द्र के कलश द्वारा मार्जन करे, द्रव्य और प्रताप की इच्छा करनेवाला है तो उसका मार्जन अग्नि देवता के घट के जल द्वारा करे । मृत्यु के जीतने के लिए यम के कलश से मार्जन करे ।३४-३६। मार्जन के उपरान्त यजमान तिलक लगाये फिर ब्राह्मणों को दक्षिणा दे, दक्षिणा दान के उपरान्त इस समस्त मृगचर्म दान के विधान की सिद्धि के लिए विशेष आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये । हे नृपतिश्रेष्ठ ! इस प्रकार बताये गये विधान से करने पर जो सिद्धि प्राप्त होती है उसके वर्णन की सामर्थ्य यद्यपि देवताओं को भी नहीं है तथापि मैं संक्षेपतः आप से बतला रहा हूँ, सुनिये ।३७-३८। इस कृष्ण मृगचर्म के दान करने से दाता निश्चय ही समग्र पृथ्वी के दान करने का फल प्राप्त करता है, सभी लोकों को जीतता है, पक्षी के समान सर्वत्र इच्छानुकूल विचरण करता है तथा निश्चय ही महाप्रलय काल पर्यन्त स्वर्गलोक में स्थित रहता है, कभी पिता तथा पुत्र के मरण का दुःखदायी अवसर नहीं देखता, न कभी स्त्री से वियुक्त होता है और न मर्त्यलोक में जन्म लेने पर कभी धन तथा देश के वियोग का दुःखदायी अवसर ही झेलता है । इस प्रकार जो मनुष्य समाहितचित्त हो कुलीन

---

[*] इतःपरं विशेषत इत्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके वर्तते ।

कृष्णेप्सितं कृष्णमृगस्य चर्म दत्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा ।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं तत्[१] ॥४१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाजिनप्रदानं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०६०४॥

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम् । वृषोत्सर्गविधिं चैव तथा पुण्यफलं महत् ॥१

मत्स्य उवाच

धेनुमादौ परीक्षेत सुशीलां च गुणान्विताम् । अव्यङ्गामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम् ॥२
स्निग्धवर्णां स्निग्धखुरां स्निधशृङ्गीं तथैव च । मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम् ॥३

ब्राह्मण को श्रीकृष्ण जी की प्रिय वस्तु इस कृष्ण मृग के चर्म का दान करता है वह कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं हो सकता वरन् अपने मनोनुकूल सभी फलों को प्राप्त करता है ॥३९-४१॥

श्री मात्स्य महापुराण में कृष्ण मृगचर्म प्रदान नामक दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

अध्याय २०७

मनु ने कहा—भयवन् ! अब मैं वृषोत्सर्ग की विधि तथा वृषभ के लक्षणों को और वृषोत्सर्ग के करने से जिस महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है उसे सुनना चाहता हूँ ।१।

मत्स्य ने कहा—राजन् ! सर्वप्रथम धेनु की परीक्षा करनी चाहिये । सुशीला, गुणवती, सभी अंगों से युक्त, सरल स्वभाववाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीते हों, रोग रहित, मनोहर रंगोंवाली, चिकने खुरवाली, चिकनी सींगों वाली, मनोहारिणी, सुदृश्य, न अधिक छोटी, न अधिक ऊँची, अचंचल, भँवरीवाली, विशेषतः दाहिनी ओर की भँवरीवाली, बायीं ओर बाईं भँवरी से युक्त, विस्तृत जंघोंवाली, मुलायम,

आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्तां दक्षिणतस्तथा । वामावर्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजघनां [1]तथा ॥४
मृदुसंहृतताम्रोष्ठीं रक्तग्रीवासुशोभिताम्[2] । अश्यामदीर्घा स्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या[3] ॥५
विस्रावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः । वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसंनिभैः ॥६
रक्तस्निधैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः । सप्तचतुर्दशदन्ता तथा वा श्यामतालुका ॥७
षडुन्नता सुपार्श्वोरुः पृथुपञ्चसमायता । अष्टायतशिरोग्रीवा या राजन्सा सुलक्षणा ॥८

मनुरुवाच

षडुन्नताः के भगवन्के च पञ्च समायताः । आयताश्च तथैवाष्टौ धेनूनां के शुभावहाः ॥६

मत्स्य उवाच

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप । षडुन्नतानि धेनूनां पूजयन्ति विचक्षणाः ॥१०
कर्णौ नेत्रे ललाटं च पञ्च भास्करनन्दन । समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्ना च सक्थिनी ॥११
चत्वारश्च स्तना राजञ्ज्ञेया ह्यष्टौ मनीषिभिः । शिरो ग्रीवायताश्चैते भूमिपाल दश स्मृताः ॥१२
तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम् । उन्नतस्कन्धककुदमृजुलाङ्गूलकम्बलम् ॥१३

संहृत तथा लाल होंठोंवाली, लाल कंधे से सुशोभित, काली नहीं प्रत्युत लम्बी स्फुटित लाल जिह्वा एवं अश्रुरहित निर्मल नेत्रोंवाली, दृढ़ तथा घने खुरोंवाली, वैदूर्य, मधु अथवा जल के बुद-बुद के समान रंगोंवाली हो, लाल तथा चिकने नेत्र और लाल कनीनिका से युक्त सात अथवा चौदह दाँत तथा श्यामवर्ण की तालु से युक्त हो। छः स्थानों पर उच्च, पाँच स्थानों पर समान तथा विस्तृत तथा आठ स्थानों पर आयत तथा बगल और उरु देश में सुन्दर हो। शिर और कंधे के समान जिस गाय के हों वह ऐसे कार्यों में शुभ लक्षणों से युक्त मानी गयी है ॥२-८॥

मनु ने कहा—भगवन्! आप ने जो यह बतलाया कि उस गाय को छः स्थानों को उन्नत, पाँच स्थानों को सम तथा आयत तथा आठ स्थानों को आयत होना चाहिये सो वे कौन से शुभ लक्षण हैं? ।६।

मत्स्य ने कहा—हे वसुधाधिप! उर, पीठ, शिर, दोनों कोख तथा कमर, धेनु के इन पांच उन्नत स्थानों की विचक्षण लोग पूजा करते हैं। हे सूर्यपुत्र! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट—ये पाँच स्थान सम तथा आयत प्रशंसित हैं। पूछ, गले के पास झूलनेवाला चमड़ा तथा दोनों सक्थियाँ और चारो स्तन-ये आठ तथा शिर और कंधा-ये दो, कुल मिलाकर दस स्थान विस्तृत श्रेष्ठ माने गये हैं।१०-१२। ऐसे सर्वलक्षण सम्पन्न धेनु के बछड़े को, जो सभी शुभ लक्षणों संयुक्त हो, जिसका कंधा तथा ककुद् (डिल) ऊँचा

---

[1] ग. महत् । [2] ग. शुभाम्। [3] ग. °म्। आस्यप्रदीर्घस्फु° । क या। अस्नानाविल° ।

महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम् । प्रवालगर्भशृङ्गाग्रं सुदीर्घपृथुवालधिम् ॥१४
नवाष्टादशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः । मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः[1] ॥१५
वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते । श्वेतो रक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च[2] ॥१६
*मद्रिणस्ताम्रपृष्ठश्च शबलः पञ्चवलकैः । पृथुकर्णो महास्कन्धः श्लक्ष्णरोमा च यो भवेत् ॥
रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तशृङ्गतलो भवेत् ॥१७
श्वेतोदरः कृष्णपार्श्वो ब्राह्मणस्य तु शस्यते । स्निग्धो रक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते ॥१८
काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः । यस्य प्रागायते शृङ्गे[3] भूमुखाभिमुखे सदा ॥१९
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वः सर्वार्थसाधकः । मार्जारपादः कपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः ॥२०
श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः । करटः पिङ्गलश्चैव स्वेतपादस्तथैव च ॥२१
सर्वपादसितो यश्च द्विपादश्वेत एव च । कपिञ्जलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसंनिभः ॥२२

हो, पूछ ओर गले के नीचे का कम्बल (लटकता हुआ चमड़ा) कोमल हो, कटि तट तथा स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्य मणि के समान नेत्रोंवाला हो, सींगों के अग्रभाग पर प्रवाल (मूंगे) के भीतर की भाँति हो, पूँछ लम्बी तदा मोटी हो, अग्र भाग पर नव या अठ्ठारह नोकीले सुन्दर दाँत हों, मल्लिका के पुष्पों की भाँति आँख हो, ऐसा वृषोत्सर्ग करने से गृह में धन-धान्य एवं सम्पत्ति की वृद्धि होती है।१३-१५। ब्राह्मण के लिए ताम्र के समान लाल अथवा कपिल वर्ण के वृषभ की प्रशंसा की जाती है सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल वर्ण का, पीठ पर लाल रंग का, अनेक रंगों का, पाँच प्रकार के बालों वाला, विशाल कान वाला, विशाल स्कन्ध काला, चिकने रोमों वाला, लाल आँखों वाला, कपिल, लाल सींग व नीचे भाग में लाल रंगवाला, सफेद पेट वाला—ऐसा वृषभ ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ कहा गया है । लाल रंग के चिकने रोम वाला वृषभ क्षत्रिय जाति के लिए प्रशंसित है।१६-१८। वैश्य के लिए सुवर्ण के समान वर्णवाला वृषभ प्रशंसित है । शूद्रों के लिए काले बैल का विधान है । जिस वृषभ के सींग आगे की ओर विस्तृत तथा भौंह और मुख की ओर झुकी हुई हों, वह सभी वर्णों के लिए सर्वार्थं का सिद्ध करने वाला होता है। बिल्ली के समान पैरोंवाला कपिल तथा कपिल व पीले रंग का मिश्रित वर्णवाला वृषभ धन्य होता है । श्वेत रंग का बिल्ली के समान पैरोंवाला, मणि के समान आँखोंवाला वृषभ धन्य है। जो वृषभ श्वेत व पीले रंग का तथा पैरों में श्वेत रंग का हो वह भी धन्य होता है।१९-२१। जो वृषभ सभी पैरों में श्वेतवर्ण का अथवा दो पैरों में श्वेतवर्ण का, रंग में कपिंजल अथवा तीतर के ढंग का होता है वह भी धन्य होता है।२२। जिस वृषभ का मुख कान तक श्वेत दिखाई पड़ता है तथा जो विशेषतः लालवर्ण

---

*एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—मणिभद्रस्तनपृष्ठः सलवः पञ्चकालक इति ।

---

[1] ङ. °न्यकृत् । व° । [2] क. ख. च । शृङ्गिण° । ग. च । भद्रि° । [3] ग. °ङ्गे तुत्तराभि° ।

आकर्णमूलं श्वेतं तु मुखं यस्य प्रकाशते। नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः ॥२३
श्वेतं तु जठरं यस्य भवेत्पृष्ठं च गोपतेः। वृषभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्धनः ॥२४
मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुंगवः। कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः ॥२५
अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः। एते धन्यास्तथाऽधन्यान्कीर्तयिष्यामि ते नृप ॥२६
[1]कृष्णताल्वोष्ठवदना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये। अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च [2]व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये ॥२७
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसंनिभाः। [3]कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जाः केकराक्षास्तथैव च ॥२८
विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा। नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथा गृहे ॥२९
भोक्तव्यानां च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणम्। स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च[4] तथा मेघौघनिस्वनाः॥३०
महाप्रमाणाश्च तथा मत्तमातङ्गगामिनः। महोरस्का महोच्छ्राया महाबलपराक्रमाः॥
शिरः कर्णौ ललाटं च वालधिश्चरणास्तथा ॥३१
नेत्रे पार्श्वे च कृष्णानि शस्यन्ते [5]चन्द्रभासिनाम्[6]। श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः ॥३२

का होता है वह नन्दीमुख वृषभ कहलाता है। जिस वृषभ का पेट तथा पीठ श्वेतवर्ण का होता है वह समुद्राक्ष नामक वृषभ सर्वदा परिवार को समृद्धि देनेवाला होता है। मल्लिका के फूलों के समान चितकबरे रंगवाला बैल धन्य है। कमल के मंडल के समान विचित्र रंग वाला बैल भी भाग्यदायी होता है। असली के फूल के समान नीले रंगवाला बैल तो अति शुभदायी कहा गया है। हे राजन्! उत्तम वृषभों के इन लक्षणों को मैंने आप से बतलाया, अब अशुभ लक्षण सम्पन्न वृषभों का वर्णन कर रहा हूँ।२३-२६। काली तालु, ओंठ और मुखवाले, रूखे सींगों व खुरोंवाले, जिनके रंग प्रकट न होते हों (धूमिल या मटमैला), छोटा, बाघ तथा सिंह के समान भयानक और खूँखार, कौवे और गृध्र के समान मनहूस रंगवाले, मूषक के समान असुन्दर एवं अल्पकाय, मंद प्रकृतिवाले (कायर), काने, लंगड़े, नीची ऊँची आँखोंवाले, छोटे-बड़े या तीन या एक पैरों में श्वेत रंगवाले, बड़े चंचल नेत्रों वाले—ऐसे वृषभों का उत्सर्ग न तो करना चाहिये और न गृहस्थी के कार्यों के लिए अपने घर पालना ही चाहिये। फिर से उत्सर्ग करने योग्य तथा पालने योग्य वृषभों का लक्षण तुमसे बतला रहा हूँ।२७-२९½। जिनके सींग स्वस्तिक के आकार के हों, जिनके स्वर बादलों की गर्जना के समान गम्भीर हों, जो बहुत लम्बे हों, मतवाले हाथी के समान चलनेवाले हों, विशाल छातीवाले हों, ऊंचे हों, अति बलवान् तथा पराक्रमी हों, शिर, दोनों कान, ललाट, पूँछ, चारो पैर, दोनों नेत्र तथा दोनों बगलें काले वर्ण की हों— ये लक्षण चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के वृषभों के हों तो वे प्रशंसनीय हैं। ये उपर्युक्त लक्षण या चिह्न यदि श्वेत हों तो काले वृषभों के लिए प्रशंसनीय हैं।३०-३२। जो वृषभ पृथ्वी को अपनी सींगों से खनता हो, उसकी विशाल पूछ पृथ्वी तक लम्बी हो और

---

१ ग. घ. °ष्ठदशना। २ ग. ङ. °घ्रभस्मनि°। ३ ग. कुब्जा। ४ ङ. च. °द्वर्णाश्च। ५ ङ. न्द्रसपभम्। श्वे°। ६ घ °सिच। श्वे°।

भूमौ कर्षति लाङ्गुलं प्रलम्बस्थूलवालधिः । पुरस्तादुद्यतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते ॥३३
शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते । अनड्वाहस्तु ते [1]धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः ॥३४
प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिर्वतिताः । समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते[2] यूथवर्धनाः ॥३५
रक्तशृङ्गाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद्यदि । शफैः प्रवालसदृशैर्नास्ति धन्यतरस्ततः ॥३६
एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः । धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्धनाः ॥३७
चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः । लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत् ॥३८
वृष एव स मोक्तव्यो न[3] संधार्यो गृहे भवेत् । तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी ॥३९
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । गौरीं चाप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥४०

मोटी हो, जो आगे की ओर उन्नत हो और रंग में नीले वर्ण का हो वह वृषभ प्रशंसनीय माना गया है ।३३। जिस वृषभ के शरीर में शक्ति, ध्वजा अथवा पताकाओं की रेखा सी बनी हो वे अनड्वाह (अंडू) वृषभ विचित्र सिद्धियों के प्रदान करनेवाले कहे जाते हैं । जो वृषभ प्रदक्षिणा करके (घूम कर के) लौटते हों, या स्वयं बिना कहे ही लौट पड़ते हों, जिनके शिर व कंधे समुन्नत हों वे धन्य तथा अपने समूह की वृद्धि करनेवाले हैं । सींगों के अग्रभाग पर लाल चिह्नवाला बैल यदि श्वेत वर्ण का हो और उसके खुर प्रवाल के समान लाल वर्ण के हों तो उससे बढ़कर अति भाग्यशाली कोई वृषभ नहीं होते ।३४-३६। ऐसे वृषभों को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़कर पालना चहिये अथवा उत्सर्ग करना चाहिये । दोनों दशाओं में ये धनधान्य को बढ़ाते हैं । जिस वृषभ के चारो चरण, मुख, तथा पूछ श्वेत वर्ण के हों तथा शेष शरीर का रंग लाक्षा के रस के समान हो उसे नील वृषभ कहते हैं ।३७-३८। ऐसे वृषभ यदि मिलें तो उनका उत्सर्ग करना चाहिये, घर पर पालना नहीं चाहिये, क्योंकि ऐसे भाग्यशाली वृषभ के उत्सर्ग के लिए पितरों की एक ऐसी सनातन गाथा प्रचलित है कि 'बहुतेरे पुत्रों की कामना करनी चाहिये; क्योंकि यदि उनमें से एक भी गया की यात्रा करेगा, या गौरी (आठ वर्ष की) कन्या का दान करेगा या नीले वृषभ का उत्सर्ग करेगा, तो हम धन्य होंगे' । हे राजन् ! ऐसे सर्वलक्षण सम्पन्न वृषभ का—चाहे यह घर पर उत्पन्न हुआ हो या क्रय किया

---

[1] ग. ङ. धन्यावित्तसि° । [2] ङ. °स्ते ह्यर्थवर्ध° । [3] ग ङ. न स धा° ।

एवं वृषं लक्षणसंप्रयुक्तं गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन् ।
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा [1]मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये ॥४१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृषभलक्षणं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१०९४५॥

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः । पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्संबद्धां कथामपि ॥१

मनुरुवाच[2]

[3]पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कया मृत्युः पराजितः । नामसंकीर्तनं कस्याः कीर्तनीयं सदा नरैः ॥
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ॥२

गया हो—उत्सर्ग करके महात्मा पुरुष कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं होता तथा मृत्यु को प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करता है, इस लिए मैंने इसको आपसे बतलाया है ।३९-४१।

श्री मात्स्य महापुराण में वृषभलक्षण नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

सूत ने कहा—तदनन्तर अमित पराक्रमशाली राजा मनु ने देवाधिदेव मत्स्य भगवान् से पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथा को पूछा ॥१॥

मनु ने कहा—पतिव्रता स्त्रियों में कौन श्रेष्ठ है ? किस स्त्री ने मृत्यु को पराजित किया था ? किस भाग्यशालिनी का नामोच्चारण सर्वदा मनुष्यों को करना चाहिये ? सभी पापों को नष्ट करनेवाली इस कथा को मुझे सुनाइये ॥२॥

---

[1] ग. मोक्षे गतिं चाहम° । ङ. मोक्षे विधिं वाऽस्यतवामि । [2] ङ. °च । पातिव्रत्येन देवेश क° । [3] ग. °ता कका सेव्या क° ।

मत्स्य उवाच

वैलोम्यं धर्मराजोऽपि नाऽऽचरत्यथ योषिताम् । पतिव्रतानां धर्मज्ञ[७] पूज्यास्तस्यापि ताः सदा ॥ ॥३
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । यथा विमोक्षितो भर्ता मृत्युपाशगतः स्त्रिया ॥४
मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा । अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम् ॥५
[९]आराधयति सावित्रीं लक्षितोऽसौ द्विजोत्तमैः । [१०]सिद्धार्थकैर्हूयमानां सावित्रीं प्रत्यहं द्विजैः[११] ॥६
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यां [१२]तु मासाद्दशदिने गते । काले तु दर्शयामास[१३] स्वां तनुं मनुजेश्वरम् ॥७

सावित्र्युवाच

राजन्भक्तोऽसि मे नित्यं[१४] दास्यामि त्वां सुतां सदा। तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥
एतावदुक्त्वा सा[१५] राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव । जगामादर्शनं देवी खे[१६] तथा नृप चञ्चला ॥९
मालती नाम तस्याऽऽसीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता । सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः ॥१०

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे धर्म के महत्त्व को जाननेवाले ! धर्मराज भी स्त्रियों के प्रतिकूल कोई व्यवहार नहीं कर सकते, पतिव्रता स्त्रियाँ उनसे भी सर्वदा सम्माननीय कही गई हैं। इस विषय में तुम्हें मैं पापों को नष्ट करनेवाली एक कथा को सुना रहा हूँ कि किस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री ने मृत्यु के पाश में गये हुये अपने प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की थी ।३-४। प्राचीनकाल में मद्रदेश में शाकल अश्वपति नामक एक राजा था, जिसके कोई पुत्र नहीं था, अतः पुत्र की कामना से उत्त ब्राह्मणों के कहने पर उसने सभी प्रकार की कामनाओं कों पूर्ण करनेवाली सावित्री देवी की आराधन की और प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणों द्वारा सावित्री देवी की प्रसन्नता के लिए सफेद सरसों का हवन करवाया। इस प्रकार दस महीने बीत जाने पर चतुर्थी तिथि को सावित्री देवी ने अपनी मूर्ति राजा को दिखलाया अर्थात दर्शन दिया।५-७।

सावित्री ने कहा—राजन् ! मैं जानती हूँ कि तू नित्य मेरी भक्ति में लगा रहता है अतः मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ. तुझे सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या होने का वरदान मैं दे रही हूँ ।८। राजन्! इतना कहकर प्रणत हुए राजा के सम्मुख सावित्री देवी आकाश में बिजली की भाँति न जाने कहाँ अन्तर्हित हो गईं। राजा की पतिव्रता पत्नी का नाम मालती था, अवसर आने पर रानी ने रूप एवं सौन्दर्य में सावित्री ही की भाँति एक सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। राजा ने कन्या की उत्पत्ति के बाद ब्राह्मणों से कहा कि यह मेरी कन्या हवन से प्रसन्न सावित्री

---

१ ङ. °मंज्ञः पूज्यः सत्यं पतिः स° । च. °मंज्ञः पूज्यः पतिः स° । २ ङ. °शासितः । ३ ङ. च. °यतसा° । ४ ङ. च. °द्धा वै हूयमाना सा सावित्री प्र° । ५ ङ, °जैः । जपैस्तोत्रैश्च° । ६ क. ख. तु दशमासगते दिने । का° । ७ ङ. °स सोवाच म° । ८ ग. °त्यं प्राप्स्यसे तनयां द्विज । स वै धर्मप्रसादेनपुत्रीं प्राप्स्यति शो° । ङ. °त्यं प्राप्स्यसे तनयां द्विजाः । तां । ९ ङ. सा देवी तं नृपं ब्रह्मणः प्रिया । ज° । १० क. खे तु सौदामिनी यथा । मालव्या ना° ।

[1]सावित्र्या हुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा । सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान् ॥११
*नामाकुर्वन्द्विजश्रेष्ठाः सावित्रीति नृपोत्तम । कालेन यौवनं प्राप्ता ददौ सत्यवते पिता ॥
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम् ॥१२
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः । सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः ॥१३
तथाऽपि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे । सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे ॥१४
नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन[2] चेतसा । शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने ॥१५
राजाद्भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः । न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ॥१६
चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः । श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुताऽपि सा ॥१७
चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने[3] । दारुपुष्पफलाहारी सत्यवांस्तु ययौ वनम् ॥१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा । सावित्र्यपि जगामाऽऽर्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ॥१९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् । वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशांस्तथा ॥२०

देवी की दी हुई है और स्वरूप में भी उन्हीं के समान है, अतः इसका भी नाम सावित्री होगा ।९-११। राजन् ! राजा के इस प्रस्ताव पर ब्राह्मणों ने भी उस पुत्री का नाम 'सावित्री' ही रखा । समय आने पर सावित्री युवती हुई, पिता ने उसका सत्यान् के लिए वाग्दान कर दिया । तदनन्तर एक बार कभी नारद ने आकर अमित तेजस्वी राजा से कहा कि 'यह तुम्हारा जामाता सत्यवान् तो एक ही वर्ष में क्षीणायु होने के कारण मर जायगा ।' नारद की ऐसी अमंगल वाणी सुनकर भी राजा ने यह सोचकर कि 'कन्यादान एक ही बार होता है' अपनी कन्या सावित्री को द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को ही ब्याहा । सावित्री भी अपने भवन में पतिदेव को प्राप्त कर नारद की उस अशुभ वाणी से काँपते हुए हृदय द्वारा काल यापन करने लगी । वन में अपने सास-ससुर तथा पतिदेव की वह बड़ी शुश्रूषा करती थी ।१२-१५। किन्तु उसका ससुर राजा अपने राज्य से च्युत होने एवं अंधा होने के कारण तथोक्त सर्वगुणसम्पन्न एवं सेवापरायण राजपुत्री को पुत्रवधूरूप में प्राप्त कर के भी सन्तुष्ट नहीं होता था । 'आज के चौथे दिन ही सत्यवान् मर जायगा' ऐसा ब्राह्मणों के कहने एवं ससुर की भी आज्ञा प्राप्त कर राजपुत्री धर्मपरायणा सावित्री ने तीन रात के व्रत का अनुष्ठान किया । उस चौथे दिन जब सत्यवान् ने लकड़ी, एवं आहार की टोह में जंगल को प्रस्थान किया तब सास-ससुर की आज्ञा लेकर डरी हुई सावित्री भी अपने पति के पीछे उस घोर जंगल को गई ।१६-१९। प्रार्थना के भंग होने पर राजपुत्री को बहुत कष्ट होगा— ऐसा विचार कर ससुर ने भी उसे साथ जाने की आज्ञा दे दी थी । नारद के वचन का ध्यान कर चित्त में अति कष्ट होते हुए भी उसने अपने महान् भय को पतिदेव से व्यक्त

---

* एतदर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः ।

---

[1] ङ. च. °त्र्या प्रीतया । [2] ङ. °मानापतिव्रता । शु° । [3] ग. घ. °ने । चारुपुष्पफलाहारः स° ।

आश्वासयामास स राजपुत्रीं क्लान्तां वने पद्मविशालनेत्राम् ।
संदर्शनेनाथ द्रुमद्विजानां तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ॥२१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सावित्रीवनप्रवेशो नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१०९६६॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सत्यवानुवाच

वनेऽस्मिञ्शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम् । नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्ते रतिवर्धनम् ॥१
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् । वसन्तो हसतीवायं मामेवाऽऽयतलोचने ॥२
दक्षिणे दक्षिणेनेतां पश्य रम्यां वनस्थलीम् । पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः ॥३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः । करोति [1]वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ॥४

नहीं किया । किन्तु मन बहलाव के लिए वन में छोटे-बड़े वृक्षों के बारे में झूठ-मूठ पूछताछ करती रही । उस भीषण वन में विशाल वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओं को दिखला-दिखला कर थकी हुई, पद्म के समान विस्तृत लोचनोंवाली सावित्री को मनुष्यों में वीर एवं श्रेष्ठ सत्यवान् ने सान्त्वना देकर आश्वस्त रखा ॥२०-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्री उपाख्यान के प्रसंग में सावित्री वनप्रवेश नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०९

सत्यवान् ने कहा—विशाल नेत्रोंवाली ! इस हरित भूमि से शोभित वन में वसन्त में रति की वृद्धि करनेवाले, नेत्र तथा नासिका को सुख प्रदान करनेवाले, मनोहर आम के वृक्ष को देखो । इस लालिमामय फूले हुए अशोक को इस वन में देखकर मालूम होता है कि यह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है । दाहिनी ओर दक्षिण दिशा में जलते हुए अंगारों के समान शोभायमान फूले हुए किंशुक वृक्षों से युक्त इस मनोहारिणी वनस्थली की ओर देखो ।१-३। सुगन्धित पुष्पों की सुरभि से समन्वित वनपंक्तियों से हम लोगों की ओर निकलकर आती हुई वायु, मालूम पड़ रहा है, हमारे परिश्रम के क्लेश को हरने के

---

[1] ग. क्षिण्या दाव° ।

पश्चिमेन विशालाक्षि कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । काञ्चनेन विभात्येषा वनराजी मनोरमा ॥५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली । रम्या सा चारुसर्वाङ्गि कुसुमोत्करभूषणा ॥६
मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनि । चापाकृष्टिं करोतीव कामः [1]पान्थजिघांसया ॥७
फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता । विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ॥८
कोकिलश्चाम्रशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः । गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ॥९
पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनुसरन्वने । [2]कुसुमं कुसुमं याति कूजन्कामी शिलीमुखः ॥१०
मञ्जरीं सहकारस्य [3]कान्ता चञ्चवग्रखण्डिताम् । स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ॥११
काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना । काकीं संभावयत्येष [4]पक्षाच्छादितपुत्रकाम् ॥१२
भूभागं निम्नमासाद्य दयितासहितो युवा । नाऽऽहारमपि चाऽऽदत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥१३
कलविङ्कस्तु [5]रमयन्प्रियोत्सङ्गं समास्थितः । मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि उत्कण्ठयति कामिनः ॥१४

लिए स्वागत करने आ रही है। हे विशाल नेत्रोंवाली ! इधर पश्चिम दिशा में फूले हुए कनेर के पुष्पों से युक्त स्वर्णिम शोभावाली वनपंक्ति विराजमान हो रही है, देखो ! वृक्षों पर से गिरी हुई लताओं के जालों से वनस्थली के मार्ग रुँध गये हैं। सर्वाङ्गसुन्दरी ! देखो पुष्पों के समूहों से वहाँ की पृथ्वी कितनी मनोहारिणी लग रही है।४-६। वरवर्णिनी ! मधु से उन्मत्त हुए भ्रमर समूहों की गुञ्जार से मालूम पड़ता है कि कामदेव हम जैसे पथिकों को मारने के लिये अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर टंकोर कर रहा है। नाना प्रकार के फूलों के सुस्वादु से सुप्रसन्न मुखवाले पुरुष कोकिल के सुरम्य स्वर से निनादित एवं सतिलका (मनोहर तिलक वृक्षों से विभूषित) यह वन स्थली तुम्हारी ही भाँति शोभायमान हो रही है। आम की ऊँची डाली पर बैठी हुई कोकिला मंजरी (बौर) की धूल से पीत वर्ण होने के कारण केवल अपने सुरीले शब्दों से ही अपना पता दे रही है, जैसे चेष्टा दिखाकर कुलीन पुरुष अपनी सूचना देते हैं। काम में अनुरक्त मधुप पुष्पों की धूलि से धूसरित अपनी प्रियतमा का अनुसरण करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर उड़-उड़ कर जा रहे हैं।७-१०। देखो ! पुरुष कोकिल इस अनेक प्रकार के पुष्पों से सुसमृद्ध इस वन में अपनी प्रियतमा की चोंच के अग्र भाग से उच्छिष्ट आम की मञ्जरी का ही स्वाद ले रहा है। कौआ, पंखों से बच्चे को छिपाकर बैठी हुई अपनी प्रसूता प्रिया को वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर अपनी चोंच से प्रसन्न कर रहा है। नीचे के भूभाग पर अपनी प्रिया के साथ बैठा हुआ यह कपिंजल (तीतर) कामासक्त होने के कारण आहार को भी नहीं ग्रहण कर रहा है।११-१३। हे विशालाक्षि ! यह कलविंक (चटक) पक्षी अपनी प्रिया के अंकों में स्थित हो बारम्बार रमण करता हुआ कामियों को उत्कण्ठित कर रहा है। अपनी प्रिया

---

१ क. ख. ग. पार्श्वे जि° । २ ङ. च. °सुमाकु° । ३ क. ख. °न्तावच्चाग्रपीडिता° । ४ क. ख °पुत्रिका° । ५ ग. प्रियां विटपमा° ।

*वृक्षशाखां समारूढः शुक्रोऽयं सह भार्यया । करेण लम्बयञ्छाखां करोति [1]सफलामिव ॥१५
+वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः । शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ॥१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकंदरसंस्थितम् । ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहा भिन्नेव लक्ष्यते ॥१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः । प्रीतिमायाति च तया लिह्यमानः स्वकान्तया ॥१८
उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम् । [2]जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ॥१९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम् । नखैर्दन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा ॥२०
शशकः शशकी चोभे संसुप्ते पीडिते इमे । संलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते ॥२१
स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः । संभावयति तन्वङ्गि मृणालकवलैः प्रियाम् ॥२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी । करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगाम् ॥२३
दृढाङ्गसंधिर्महिषः कर्दमाक्ततनुर्वने । अनुव्रजति धावन्तीं [3]प्रियामुद्धतमुत्सुकः ॥२४

के साथ वृक्ष की डाली पर बैठा हुआ यह शुक अपने हाथों से टहनी को नीचे करता हुआ उसे सफल-सा कर रहा है । इस वन में मांस का आहार कर तृप्त हो यह युवा सिंह निद्रा में लीन हो शयन कर रहा है और उसकी प्रियतमा उसके पैरों के मध्य भाग में शयन कर रही है । पर्वत की कन्दरा में बैठे हुए बाघ के दम्पति को देखो, जिनके नेत्र की कान्ति से होनेवाले प्रकाश में वह गुफा अन्य गुफाओं से भिन्न-सी दिखाई पड़ रही है ।१४-१७। देखो, यह गैंडा अपनी प्रिया को जीभ के अग्रभाग से चाट रहा है और प्रिया के चाटने पर स्वयं आनन्द का अनुभव कर रहा है । देखो, वह वानरी अपने अंक में शिर कर के सोते हुए प्रियतम के अंग से ढील को निकाल-निकाल कर आनन्दित कर रही है । देखो, वह बिलाव पृथ्वीतल पर लेटी हुई पेट को दिखाती अपनी प्रिया बिल्ली को अपने नखों और दाँतों से मालूम पड़ रहा है कि काट रहा है, परन्तु वास्तव में वह पीड़ा नहीं दे रहा है ।१८-२०। देखो, पीड़ित होकर ये खरगोश और खरगोशिनी अपने पैरों को पेट में छिपाकर कैसे सो रहे हैं, पर इनके दोनों कान किस प्रकार ऊपर उठकर इनकी सूचना दे रहे हैं। हे सुन्दरि ! कमलों से सुसमृद्ध सरोवर में यह कामार्त्त हाथी स्नान करके कमलों के डण्ठलों से अपनी प्रिया को सन्तुष्ट कर रहा है । पीछे चलनेवाले अपने बच्चों के साथ यह शूकरी अपने प्रियतम के सूड़ों द्वारा खनकर बाहर किये गये मोथों को पति के पीछे-पीछे चलती हुई खाती जा रही है ।२१-२३। देखो, इस वन में दृढ़ अंगोंवाला कामार्त्त यह महिष अंगों में कीचड़ों से लतपथ हुआ अपनी भागती हुई प्रिया के पीछे-

---

* एतच्छ्लोकस्थानेऽयं पाठो ङ. च. पुस्तकयोः—क्षुद्रशाखां समारूढः शुकोऽयं सह कान्तया । हरणे लम्बमानोऽसौ करोति सफलां गिरम्, इति । +अत्र श्लोकेऽयं पाठो ङ. पुस्तके-वनेभपिशितास्वादतृप्तो निभृतसम्मदः । कान्तः सिंहयुवा कान्तां गतभीर्भावयत्ययम्, इति ।

---

[1] ख. ग. घ °फलं शिरः । व° । [2] ङ. जम्बूद्धरणलुब्धाऽपि भावय° । [3] ग. घ. प्रियां बद्धचतुष्ककः । ङ. प्रियां तद्वच्चतुष्ककः ।

पश्य चार्वङ्गि [1]सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः । सभार्यं[2] मां हि पश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम् ॥२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् । स्नेहार्द्रभावात्कर्षन्ती भर्तारं शृङ्गकोटिना[3] ॥२६
द्रागिमां चमरीं पश्य सितवालामगच्छतीम् × । अन्वास्ते चमरः कामी मां च पश्यति गर्वितः ॥२७
आतपे गवयं पश्य [4]प्रहृष्टं भार्यया सह । रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकं ककुदि वारयन् ॥२८
पश्याजं भार्यया सार्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम् । विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ॥२९
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम्[5] । [6]सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन् ॥३०
सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः । करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरि ॥३१
मया फलोच्चयः सुभ्रु त्वया पुष्पोच्चयः कृतः । इन्धनं न कृतं सुभ्रु तत्करिष्यामि सांप्रतम् ॥३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता । क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि ॥३३

सावित्र्युवाच

एवमेतत्करिष्यामि मम [7]दृष्टिपथस्त्वया । दूरं कान्त न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने ॥३४

पीछे दौड़ रहा है। सुन्दरि ! इस अपनी प्रिया के सहित मृग को देखो, जो कौतूहल युक्त मुझको अपने मनोहर कटाक्षों से ताक रहा है। देखो वह रोही मृगी अति स्नेहयुक्त हो अपनी सींगों के अग्रभाग से प्रियतम को ढकेलती हुई अपने पिछले पैरों से मुख को खुजला रही है। अरे शीघ्र उस श्वेत बालों वाली चमरी गाय को तो देखो, जो खड़ी हुई है और जिसके पीछे कामार्त्त चमर गर्वित नेत्रों से मुझको ताक रहा है।२४-२७। उस धूप में खड़े हुए नीलगाय को देखो जो अपनी प्रिया के साथ आनन्दयुक्त हो डिल पर बैठे हुए कौवे को निवारित करता हुआ जुगाली कर रहा है। लम्बे बेर वृक्ष की शाखा पर फलों को खाने की इच्छा से अगले दोनों पैरों को उठाकर खड़े हुए अपनी प्रिया के साथ उस बकरे को तनिक देखो। सरोवर में विहार करते हुए उस हंसिनी समेत हंस को देखो, जो सुप्रकाशित चन्द्रमा के बिम्ब की शोभा धारण कर रहा है। हे सुन्दरि ! देखो वह चक्रवाक अपनी प्रिया के साथ इस कमलों से सुशोभित तथा समृद्ध सरोवर में अपनी प्रिया को फूली हुई पद्मिनी के समान कर रहा है।२८-३१। ऐसा कह कर सत्यवान् ने फिर कहा—'हे सुभ्रु। मैं फलों को एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पों को एकत्र कर चुकी; अभी इन्धन का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब उसे एकत्र करना चाहिये। सुन्दरि ! तुम तब तक इस सरोवर के तट पर वृक्ष की छाया में बैठकर क्षण मात्र प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो, जब तक मैं इन्धन भी एकत्र किये लेता हूँ।३२-३३।

सावित्री ने कहा—कान्त ! यदि तुम कह रहे हो तो मैं वैसा ही करूँगी। परन्तु तुम मेरी आंखों के सामने से दूर मत जाओ, क्योंकि इस विकराल तथा घने बन में मैं अकेले डरती हूँ।३४।

× छन्दोनुरोधान्नुमभावः।

---

[1] ग. °ङ्गं त्वत्कटाक्षनिभवने। स°। [2] ग. घ. ङ. °र्यं मम प°। [3] ग. °ना। दाडिमे च°। [4] क. ख. घ. प्रकृष्टं। [5] ग. °म्। सशुकस्ये°। [6] ङ. सुशुक्लस्ये°। [7] ग. °पथात्त्वया। दूरं नाथ न गन्तव्यं वि°।

मत्स्य उवाच

ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं[1] मेने च सा तं मृतमेव राजन् ॥३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने वनदर्शनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०९॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११००१॥

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना । स [2]वेदनार्तः संगम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ॥१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना । तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किंचन ॥२
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् । राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिव ॥३

मत्स्य ने कहा—राजन् सावित्री के ऐसा कहने पर सत्यवान् राजपुत्री के सम्मुख ही उस सरोवर से थोड़ी ही दूर पर काष्ठ एकत्र करने लगा, परन्तु राजपुत्री उतनी दूर जाने पर भी उसे मरा हुआ-सा मानने लगी ।३५।

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्री उपाख्यान में वनदर्शन नामक दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त ॥२०९॥

अध्याय २१०

मत्स्य ने कहा—राजन् ! काष्ठ काटते हुए उस सत्यवान् के शिर में पीड़ा होने लगी, जिससे विह्वल होकर वह अपनी प्रिया के समीप आकर कहने लगा—'इस परिश्रम के करने से मेरे शिर में बहुत पीड़ा हो रही है, मालूम पड़ रहा है कि मैं अंधकार में घुसा जा रहा हूँ, दर्द के मारे कुछ भी मुझे सूझ नहीं रहा है । अब मैं अंक में शिर रख कर तुम्हारे सोना चाहता हूँ ।' राजपुत्री से इस प्रकार बातें कर सत्यवान् उसके अंक में शिर रख कर सो गया ।१-३। इस प्रकार उसके अंक में शिर रख कर

---

[1] ग. °दानीमनेहसा संभृत° । [2] ग. °दनां तु स° ।

तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाऽऽविललोचनः । पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ॥४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् । नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम् ॥५
विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम् । किरीटेनार्कवर्णेन [1]कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६
हारभारार्पितोरस्कं[2] तथाऽङ्गदविभूषितम्[3] । [4]तथाऽनुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ॥७
स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा । अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशं गतम् ॥८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा । सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम् ॥९
अनुवव्राज गच्छन्तं धर्मराजमतन्द्रिता । कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ॥१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥११
सर्वे तस्याऽऽदृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥१२
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् । तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥१३

जब सत्यवान् निद्रा में निमग्न हो गया तब महाभाग्यशालिनी पतिव्रता राजपुत्री सावित्री ने वहाँ पर आये हुये धर्मराज को देखा, जो नीले कमल के समान श्यामल वर्ण के थे तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे उस समय बिजली की लता से सुशोभित बादल के समान शोभायमान हो रहे थे, उनके शिर पर सूर्य के समान देदीप्यमान मुकुट सुशोभित था तथा दोनों कानों में कुण्डल विराज रहे थे, विशाल वक्षस्थल पर हार सुशोभित था, हाथों में अंगद थे, उनके पीछे-पीछे महाकाल और मृत्यु भी थे।४-७। उस स्थान पर पहुँच कर धर्मराज ने सोये हुए सत्यवान् के शरीर में अँगूठे जितने लम्बे पुरुष को अपने पाश में बाँधकर वश में किया और दक्षिण दिशा की ओर मुखकर शीघ्र ही प्रस्थान किया। तब सुन्दरी सावित्री भी पति के शरीर को निर्जीव देख, जाते हुए धर्मराज के पीछे-पीछे बिना आलस के चली और काँपते हृदय से अंजलि बाँधकर धर्मराज से बोली—'माता की भक्ति से इस लोक में, पिता की भक्ति से मध्यम लोक में तथा गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है।८-१०। जिस प्राणी ने इन तीनों धर्मों का पालन किया है उसका इन तीनों लोकों में आदर होता है। तथा जिसने इन तीनों का अनादर किया है उसकी सारी सत्क्रिया निष्फल ही समझनी चाहिये। जब तक ये तीन जगत् में जीवित रहते हैं तब तक किसी अन्य प्रकार के धर्म को करने की आवश्यकता नहीं है। उनके प्रिय एवं सुख के लिये मनुष्य को उनकी शुश्रुषा में सर्वदा निरत रहना चाहिये। उन्हें किसी प्रकार का भी क्लेश न हो—इस प्रकार विचार कर जब कभी किसी की दासता भी करे तो मनसा, वाचा, कर्मणा जो कुछ मिले वह सब भी

---

[1] क. ख. घ. °ण्डलैश्च विं° । [2] ङ. °स्कं विचित्राङ्ग° । [3] च. °म् । महता परिवारेण का° ।
[4] ङ. °था कालेन महता सुप्तो दृष्टः स मृ ।

तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदा चरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते[1] ।।१४

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्तयाऽऽशु धर्मो[2] न [3]तेभ्योऽपि हि उच्यते च ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ।।१५
[4]गुरुपूजारतिर्भर्ता त्वं च साध्वी पतिव्रता । विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ग्लानिर्भवति तेऽधुना ।।१६

सावित्र्युवाच

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम् । अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ।।१७
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः । अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।।१८
नीयते यत्र भर्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति । मयाऽपि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम ।।१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा । त्वां देव न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम् ।।२०

उन्हें ही निवेदित कर दे । माता, पिता और गुरु—इन तीनों के प्रति मनुष्य को सर्वदा इसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये । १-१४।

यम ने कहा—तुम हमसे जिस कामना को पूर्ण कराना चाहती हो उसे छोड़ दो । सचमुच संसार में माता पिता तथा गुरु से बढ़ कर कोई धर्म नहीं । किन्तु इस कार्य में तुम्हारे पीछे-पीछे आने से हमारे काम में विघ्न पड़ रहा है और तुम भी बेकार में परेशान हो रही हो, इसलिए अब मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ । हे धर्म के तत्त्व को जानने वाली ! तुम्हारा पति सचमुच गुरु जनों की पूजा में प्रेम करने वाला था और तुम भी पतिव्रता और साध्वी हो, किन्तु अब यहाँ हमारे पीछे पीछे आने से तुम्हारी परेशानी बढ़ रही है, अतः मैं चाहता हूँ कि तुम लौट जाओ ।१५-१६।

सावित्री ने कहा—स्त्रियों का पति ही देवता है, पति ही उसको एक मात्र शरण देनेवाला है । प्राणपति प्रियतम के साथ ही साध्वी स्त्रियों को भी अनुगमन करना चाहिये । कन्या को उसका पिता सीमित तथा अल्प सम्पत्ति देता है, भाई तथा पुत्र भी अल्प सम्पत्ति देता है, सर्वदा अमित के देने वाले अपने प्राणनाथ की कौन पतिव्रता पूजा न करेगी । जहाँ पर मेरे प्राणेश्वर ले जाये जा रहे हैं, अथवा स्वयमेव जा रहे हैं, हे सुरोत्तम ! अपनी शक्ति भर मुझे भी वहाँ जाना चाहिये । हे देव ! अपने प्राणपति को ले जाते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे यदि मैं नहीं चल पाऊँगी तो मैं भी अपने प्राणों को छोड़ दूँगी । जो मनस्विनी स्त्री

---

[1] ङ. च. °मश्नुते । [2] घ. धर्मे न तेऽन्योऽपि । [3] ङ. ते कोऽपि । [4] क. ख. °भक्ता त्वं ।

मनस्विनो तु या[1] काचिद्वैधव्याक्षरदूषिता । मुहूर्तमपि जीवेत[2] मण्डनार्हा ह्यमण्डिता ।।२१

यम उवाच

पतिव्रते महाभागे परितुष्टोऽस्मि ते शुभे । विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय मा चिरम् ।।२२

सावित्र्युवाच

विनष्टचक्षुषो राज्यं चक्षुषा सह कारय । च्युतराज्यस्य धर्मज्ञ श्वशुरस्य महात्मनः ।।२३

दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ।।२४

इति श्रीमास्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने प्रथमवरलाभो नाम वशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः ।।२१०।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ।।११०२५।।

वैधव्य के अक्षरों से दूषित करके पुकारी जाने लगती है वह सभी आभूषणों के योग्य होकर भी असुन्दरी तथा भाग्यहीन है ।१७-२१।

यम ने कहा—हे महाभाग्यशलिनि ! पतिव्रते ! कल्याणि ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़ कर जिस किसी वरदान की तुझे अभिलाषा हो उसे शीघ्र ही मांग लो ।२२।

सावित्री ने कहा—हे धर्मराज ! नष्ट हो गया है राज्य जिनका—ऐसे महनीय आत्मा मेरे श्वशुर को, जिन्हें आँख भी नहीं हैं, आँख तथा राज्य— दोनों से संयुक्त कर दीजिये ।२३।

यमराज ने कहा—हे कल्याणि ! तुम बहुत दूर चली आई हो, अतः लौट जाओ । तुम्हारी यह अभिलाषा सत्य होगी । इस प्रकार मेरे पीछे आने से मेरे कार्य में विघ्न पड़ रहा है और तुम्हें भी परेशानी उठानी पड़ रही है, इस लिए मैं अब तुमसे यह कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ ।२४।

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्री उपाख्यान में प्रथम वरलाभ नामक दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ।।२१०।।

---

१ ङ. च. या वाचा वैध° । २ ङ. च. °वेयं म° ।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे । सतां तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम ॥१
साधूनां वाऽप्यसाधूनां सन्त एव सदा गतिः । नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ॥२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् । [1]अकारणजगद्वैरिखलेभ्यो जायते यथा ॥३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा । तथाऽसन्तोऽपि संत्यज्य परपीडासु तत्पराः ॥४
त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद्यस्य कारणात् । परोपघातशक्तास्तं परलोकं तथाऽसतः ॥५
निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः । असतामुपघाताय राजानं[2] ज्ञातवान्स्वयम् ॥६
नरान्परीक्षयेद्राजा साधून्संमानयेत्सदा । निग्रहं चासतां कुर्यात्स लोके [3]लोकजित्तमः ॥७
निग्रहेणासतां राजा सतां च परिपालनात् । एतावदेव कर्तव्यं राजा स्वर्गमभीप्सुना ॥८

अध्याय २११

सावित्री ने कहा—सुरोत्तम ! सत्पुरुषों के समागम में कैसा परिश्रम और कैसी परेशानी ? इसलिए आप जैसे महानुभावों के समीप में मुझे भी ग्लानि नहीं अनुभव हो रही है। साधु प्रकृति के प्राणी हों, अथवा असाधु प्रकृति के हों—सभी के निर्वाह कर्त्ता सत्पुरुष ही होते हैं, असज्जन पुरुष न तो सज्जनों के काम आ सकते हैं, न सत्पुरुषों का उनसे कोई कार्य सध सकता है और न वे स्वयं अपना ही कल्याण साधन कर सकते हैं।१-२। विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्र–इन सबों से भी संसार को उतना भय नहीं होता जितना भय निष्कारण क्रोध करनेवाले दुष्टों से होता है । सत्पुरुष अपने प्राणों की बाजी लगाकर परोपकार करते हैं, किन्तु असज्जन पुरुष अपने प्राणों को देकर भी दूसरे की हानि करते हैं। जिस परलोक की प्राप्ति के लिए सत्पुरुष लोग अपने प्राणों को भी तुच्छ तृण की भाँति होम देते हैं, उस परलोक की पराये की हानि में निरत रहनेवाले असज्जन कुछ भी परवाह नहीं करते।३-५। जगत् की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा ने प्रत्येक स्थानों या नर समूहों में असत्पुरुषों के निग्रहार्थ या मारणार्थ राजा को बनाया है। राजा सर्वदा सच्चे तथा टुच्चे पुरुषों की परीक्षा करे। सज्जन हो तो उनका आदर करे, दुष्ट हों तो उन्हें दण्ड दे, जो ऐसा करता है वह सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं । सत्पुरुषों को सम्मान देने तथा दुष्टों के निग्रह करने के कारण ही राजा राजा है, स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक राजा को इन दोनों बातों पर ध्यान रखना चाहिये।६-८। हे जगत् के

---

१ क. ख. °राष्ट्रस्य । २ °रणं ज° । ३ ङ. च. °नं क्रुत° । ४ ग. °कवि° ।

राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते । असतां निग्रहादेव सतां च परिपालनात् ॥९
राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् । तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ॥१०
जगत्तु धार्यते सद्भिः सतामग्र्यस्तथा भवान् । तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमो देव न विद्यते ॥११

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसंगतैः । विना सत्यवतः प्राणाद्वरं वरय मा चिरम् ॥१२

सावित्र्युवाच

सहोदराणां भ्रातॄणां कामयामि शतं विभो[1] । अनपत्यः पिता प्रीतं पुत्रलाभात्प्रयातु मे ॥१३
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते । और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ॥१४
नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः । पतिव्रताऽसि तेन त्वं मुहूर्तं मम यास्यसि ॥१५
गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे तथा सत्यवता महत् । पुण्यं समर्जितं येन नयाम्येनमहं स्वयम् ॥१६
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता । मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ॥१७

स्वामी ! राजा लोगों के लिए सत्पुरुषों के परिपालन तथा दुष्टों के नियमन से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है । उन राजाओं से भी जो दुष्ट शासित नहीं किये जा सकते ऐसे असज्जनों को भी आप शासित करनेवाले हैं, इसी कारण आप सभी देवताओं से अधिक महत्त्व एवं विशेषतापूर्ण मुझे मालूम पड़ते हैं । यह समस्त जगत् सत्पुरुषों द्वारा धारण किया गया है, उन सत्पुरुषों के आप अगुवा हैं, हे देव ! यही कारण है कि आपके पीछे चलते हुए मुझे कुछ भी क्लेश नहीं हो रहा है ।९-११।

यमराज ने कहा—हे विशाल नेत्रों वाली ! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातों को सुनकर मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें जिस किसी भी पदार्थ को प्रात करने की अभिलाषा हो, उसके लिए शीघ्र मुझसे वरदान मांग लो, देर न करो ।१२।

सावित्री ने कहा—'हे प्रभो ! मैं अपने सौ सहोदर भाई होने की अभिलाषिणीं हूँ, विना किसी पुत्र के दुखी मेरे पिता इस शत-पुत्र-लाभ से प्रसन्न हों ।' सावित्री की ऐसी प्रार्थना सुनकर यमराज ने कहा—'हे अनिन्दिते ! अब तुम वहाँ चली जाओ जहाँ से आई हो, और अपने पति के और्ध्वदेहिक (शवसंस्कार आदि) क्रियाओं को जाकर सम्पन्न करो । अब यह दूसरे लोक में आ गया है, अतः तुम इसके पीछे नहीं चल सकती, चूंकि पतिव्रता हो, अतः एक मूहूर्त तक चल मेरे साथ चल सकती हो ।१३-१५। हे कल्याणि ! सत्यवान् ने गुरुजनों की शुश्रूषा करके महान् पुण्य अर्जित किया था अतः मैं स्वयं इसे ले जा रहा हूँ । हे सुन्दरि ! विद्वान् पुरुष को इतना तो अवश्य ही करना चाहिये कि वह अपनी माता, पिता अथवा गुरु की सेवा में सदा तत्पर रहे ।१६-१७। वन में निवास कर सत्यवान् ने इन तीनों की बड़ी शुश्रूषा की है । हे

---

[1] ङ °भो । पितुश्चापत्रतादोषः पु° ।

तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने । [1]पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयाऽनेन चिरं शुभे ॥१८
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे । पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ॥१९
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः[2] । न चैतेऽप्यवमन्तव्या [3]ब्राह्मणेन विशेषतः ॥२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः[4] ॥२१
जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा । तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२४
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः । त एव च त्रयो वेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः । गुरुराहवनीयश्च साऽग्निस्त्रेता गरीयसी ॥२६
त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रींल्लोकाञ्जयते गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२७

कल्याणि ! इसके साथ-साथ निवास करके तुमने भी स्वर्ग को जीत लिया है । हे शुभे ! लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य, अग्नि और गुरु की शुश्रूषा कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, विशेषतया ब्राह्मण को अपने आचार्य, पिता, माता, तथा बड़े भाई का तो कभी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता पृथ्वी की मूर्ति है तथा भाई स्वयं अपनी प्रतिमूर्ति है ।१८-२१। मनुष्यों को उत्पन्न करते समय माता और पिता अपार कष्ट सहन करते हैं, उस महान् कष्ट से पुत्र का सैकड़ों वर्षों में भी निस्तार नहीं हो सकता । अतः मनुष्य को माता, पिता तथा आचार्य का सर्वदा प्रिय कार्य करना चाहिये, उन्हीं तीनों के सन्तुष्ट होने पर सभी तपस्या को सफल और सम्पन्न समझना चाहिये । इन तीनों की शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गई है, उन लोगों की आज्ञा के विना मनुष्य को किसी भी अन्य प्रकार के धर्म का पालन नहीं करना चाहिये । मनुष्य के लिए वे तीनों ही लोक हैं, तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं तथा तीनों अग्नियाँ हैं ।२२-२५। पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि तथा गुरु आहवनीयाग्नि है, ये तीनों अग्नियों की उपासना मनुष्य के लिए गौरव की वस्तु है । जो गृहस्थाश्रमी इन तीनों गुरुजनों की सेवा में कभी असावधानी नहीं करता वह तीनों लोकों को जीतता है तथा अपने दीप्यमान शरीर से स्वर्ग में देवताओं के समान कालयापन करते हुए आनन्द का अनुभव करता है । हे कल्याणि ! अब तुम अपने शेष मनोरथ को त्याग दो और लौट जाओ, जिन प्रार्थनाओं को तुमने किया है वे सभी सफल होंगी । इस प्रकार हमारे पीछे आने

---

[1] ङ. °तं निर्जितः स्वर्गस्तदाऽने° । [2] क. ख. घ. °जः । नार्तेनाप्य° । [3] क. ख. घ. °ह्मणा न ।
[4] ङ. °नः । यं माता पि° ।

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने द्वितीयवरलाभो नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

आदितः श्लोकानां शमष्टचङ्काः ॥११०५३॥

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा । त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम् ॥१
धर्मार्जनं तथा कार्यं पुरुषेण विजानता । तल्लाभः [1]सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ॥२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो[2] जन्मनःफलम् । धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो ॥३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा । धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्रक्वचनगामिनम् ॥४

से कार्य में विघ्न पड़ता है और तुम भी परेशान हो रही हो, अतः मैं अब तुमसे यही कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ' ।२६-२८।

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्रीउपाख्यान में द्वितीय वरलाभ नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२११॥

अध्याय २१२

सावित्री ने कहा—देवश्रेष्ठ ! धर्म के कार्यों में कैसी ग्लानि अथवा कैसा क्लेश ? तुम्हारे चरण कमलों की सेवा तो परम धर्म का मूल है। हे देव ! ज्ञानी पुरुष को सर्वदा धर्म-कार्यों में लगे रहना चाहिये; क्योंकि उसका लाभ सभी लाभों से विशेष महत्त्वपूर्ण है ।१-२। हे प्रभो ! संसार में जन्म लेने का फल धर्म, अर्थ एवं काम—इन तीनों की प्राप्ति करना है, जो पुरुष धर्म से हीन है उसको अर्थ एवं काम की प्राप्ति वन्ध्या के पुत्र के समान कभी नहीं हो सकती। धर्म से अर्थ एवं काम दोनों की प्राप्ति होती है, तथा धर्म से ही इस लोक और परलोक—दोनों की प्राप्ति होती है । एक धर्म हो ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के पीछे-पीछे

---

[1] ङ. °भ्यो नित्यमेव । [2] घ. ङ. त्रिवर्गे ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति । एको हि जायते जन्तुरेक एव विपद्यते ॥५
धर्मस्तमनु यात्येको[1] न सुहृन्न च बान्धवाः[२] । क्रिया सौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते ॥६
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम् । वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः ॥७
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक । मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि [३]सुसुखानि च ॥८
प्रयान्ति धर्मेण [४]नरास्तथैव नरगण्डिकाः । नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च ॥९
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठं तथा नरैः । विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसः शुभाः ॥१०
तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवतां फलम् । राज्यं नृपतिपूजा [५]च कामसिद्धिस्तथेप्सिता ॥१०
संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते[६] । रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च ॥१२
चामराणि सुराध्यक्ष भवन्ति शुभकर्मणाम् । पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ॥१३
धार्यतां याति च्छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा । जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधानिः स्वनैः ॥१४
वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः । वरान्नपानं गीतं [७]च भृत्यमाल्यानुलपेनम् ॥१५

चाहे वह जहाँ कहीं भी जाय—चलता है । संसार की अन्य सभी वस्तुएं शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती हैं । मनुष्य इस नश्वर संसार में अकेला ही पैदा होता है ओंर अकेला ही मरता है ।३-५। एक धर्म ही उसके साथ-साथ चलता है, मित्र एवं परिवार के लोग भी उसका अनुसरण नहीं करते । कार्यों में सफलता सौभाग्य एवं सौन्दर्य सब कुछ धर्म से ही प्राप्त होते हैं । पुरुषान्तक ! ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, वसुगण, अश्विनीकुमार एवं कुबेर प्रभृति देवताओं के लोक, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं, मनुष्य उन सब को धर्म द्वारा ही प्राप्त करता है । मनोहर द्वीपों एवं सुखदायी वर्षों (देशों) को मनुष्य धर्म द्वारा ही प्राप्त करते है, नन्दनादि देवताओं के मुख्य उद्यानों को भी वह धर्म से ही प्राप्त करते हैं । मनुष्यों को धर्म द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है । वहाँ पर उसे विचित्र ढंग के विमान तथा कल्याणदायिनी अप्सराओं की प्राप्ति होती है ।६-१०। पुण्यशाली मनुष्यों के शरीर सदा तेजोमय रहते हैं, उन्हें राज्य की प्राप्ति होती है, राजा लोंग उनकी पूजा करते हैं, उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं तथा सर्वदा उनका अभ्युदय होता है । पुण्य का फल सर्वदा ही ऐसा देखा जाता है । हे सुराध्यक्ष ! उन भाग्यशाली पुण्यवान् पुरुषों को स्वर्ग में सुवर्ण तथा वैदूर्य के बने हुए डण्डेवाले सूर्य की प्रखर किरणों के समान तेजोमय चँवर डुलाये जाते हैं तथा पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान शुभ्र एवं रत्नजटित वस्त्र से सुशोभित छत्र को वहाँ मनुष्य निज मांगलिक कर्मों द्वारा प्राप्त करता है ।११-१३½। विजय की सूचना देनेवाले शंखों के स्वरों तथा मागध और वन्दियों की मांगलिक ध्वनियों के साथ अभिनन्दित होते हुए सुन्दर सिंहासन पर समासीन होने का सत्परिणाम पुण्य कर्मों का ही है । लाभकारी अन्न, जल, गीत, आज्ञाकारी अनुचर, मालाएँ

---

[१] ग. ङ. च. °को नयत्ये° । [२] ग. °वाः । रूपसौ° । [३] ङ. सुमहान्ति च । च. सु बहूनि च ।
[४] ग. °थैवामरगण्डिकः । न° । ङ. थैवामरचन्दनाः । न° । [५] ङ. कार्यंति° । [६] ङ. °ते । वस्त्राणि रुक्मं
थैडूर्यचन्द्रांशु° । [७] ग. घ. ङ. च । नृत्य° ।

रत्नवस्त्राणि [1]मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मण: । रूपौदार्यगुणोपेता: स्त्रियश्चातिमनोहराः ॥१६
वासाः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति [2]शुभकर्मिणाम्[3] । सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः ॥१७
वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा । *हैमकक्षैश्च मातङ्गैश्चलत्पर्वतसंनिभैः ॥१८
खेलद्भिः पादविन्यासैर्यान्ति पुण्येन कर्मणा । सर्वकामप्रदे देवसर्वाघदुरितापहे ॥१९
वहन्ति भक्ति पुरुषाः सदा पुण्येन कर्मणा । तस्य द्वाराणि यजनं तपो दानं दमः क्षमा ॥२०
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यं [4]तीर्थानुसरणं शुभम् । स्वाध्यायसेवा साधूनां सहवासः सुरार्चनम् ॥२१
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् । इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥२२
तस्माद्धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता । न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥२३
बाल एव चरेद्धर्ममनित्यं देव जीवितम् । को हि जानाति कस्याद्य [5]मृत्युरेवाऽऽपतिष्यति ॥२४
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् । अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ॥२५

चन्दन, रत्न, सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्र—ये सभी पुण्य कर्मों के फल हैं । सुन्दरी एवं दयावती अति मनोहर स्त्रियाँ तथा उच्च महलों की छतों पर सुखपूर्ण निवास—ये भी शुभ कर्म करनेवालो को प्राप्त होते हैं । उस भाग्यशाली मनुष्य को शुभ कर्म के प्रभाव से सुवर्ण के बने हुए घूंघरों से सुशोभित, चंवर तथा माला से सुशोभित तुरंग वहन करते हैं ।१४-१७½। चलते हुए पर्वतों के समान, सुवर्ण निर्मित अम्बारी से सुशोभित मत्त गयन्दों अचञ्चल पादविन्यास पर वह भाग्यशाली अपने पुण्य कर्म के प्रभाव से वहन किये जाते हैं । हे देव ! सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, सभी पापों एवं दुश्चरितों को दूर करनेवाले स्वर्ग में वह पुरुष उपर्युक्त सुख-साधनों से सम्पन्न होकर विराजमान होते हैं । मानव अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से ही भक्ति को प्राप्त करते हैं । उस भक्ति के द्वार यज्ञ, तपस्या, दान, इन्द्रियनिग्रह, क्षमाशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, मांगलिक तीर्थों की यात्रा, स्वाध्याय, सेवा, सत्पुरुषों की संगति, देवार्चन, गुरुजनों की शूश्रूषा, ब्राह्मणों की पूजा, इन्द्रियों को स्ववश रखना, ब्रह्मचर्य तथा निरहंकारिता—ये सब हैं ।१८-२२। इस कारण से उस भक्ति के महत्त्व को जाननेवाले मानव को सर्वदा धर्माचरण करना चाहिये । मृत्यु किसी की यह प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने जीवन में अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है या नहीं । हे देव ! इसलिए मनुष्य को शैशव से ही धर्माचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिये क्योंकि यह जीवन नश्वर है । कौन जानता है कि आज ही किसी की मौत आ धमकेगी । हे सुरोत्तम ! आँख से देखते हुए भी लोगों के सम्मुख उसकी मृत्यु खरी रहती है किन्तु तिस पर भी वह अमरों (मृत्यु रहित देवता) की भाँति आचरण करता है—यह महान् आश्चर्य है ।२३-२५।

---

* एतच्श्लोकद्वयं न क. ख पुस्तकयोः ।

---

[1] घ. ङ. दिव्यानि । [2] ग. कर्मणाम् । [3] क. ख. °र्मिणः । सु° । [4] क. ख. घ. °नुमर° ।
[5] ङ. च. मृत्युः श्येनः प° ।

युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा । मृत्योरुत्सङ्गमारुढः स्थविरः किमपेक्षते ॥२६
तत्रापि विन्दतस्त्राणं [1]मृत्युना तस्य का गतिः । न भयं [2]मरणादेव प्राणिनामभयं क्वचित् ॥
तत्रापि निर्भयाः सन्त सदा सुकृतकारिणः ॥२७

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसंगतैः । विना सत्यवतः प्राणान्वरं वरय मा चिरम् ॥२८

सावित्र्युवाच

वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् । अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ॥२९

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे भविष्यतीदं सफलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने तृतीयवरलाभो नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥११०८३॥

युवक की अपेक्षा बालक और वृद्ध की अपेक्षा युवक अपने को मृत्यु से दूर मानता है किन्तु मृत्यु के अंक में बैठा हुआ वृद्ध किसकी अपेक्षा करते हुए गहरी नींव देने की बातें सोचा करता है। इतने पर भी मृत्यु से रक्षा के उपायों को सोचते एवं प्राप्त करते हुए उसकी कौन-सी गति होती है। प्राणधारियों को इस जगत् में केवल मृत्यु से ही भय नहीं है, बल्कि यह कहना चाहिये कि उसे अभय कहाँ है ? इतना सब कुछ होने पर भी सुकृती जन सर्वदा निर्भय होकर संसार में जीवित रहते हैं ।२६-२७।

यमराज ने कहा— हे विशालनेत्रोंवाली ! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातों से मैं विशेष सन्तुष्ट हूं, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें अन्य जिस किसी पदार्थ की कामना हो उसे अविलम्ब माँग सकती हो ।२८।

सावित्री ने कहा—हे देव ! मैं तुमसे अपनी कोख से उत्पन्न होनेवाले सौ पुत्रों का वरदान माँग रही हूँ, क्योंकि बिना संतति के यह प्रसिद्ध है कि किसी को सद्गति नहीं प्राप्त होती ।२९।

यमराज ने कहा— हे कल्याणि ! अब तुम शेष जिस मनोरथ की मुझसे कामना करती हो उसे छोड़कर लौट जाओ, तुम्हारी यह याचना भी सफल होगी । इस प्रकार तुम्हारे अनुगमन से मेरे कार्यों मे विघ्न होगा और तुम्हें भी बेकार की परेशानी उठानी पड़ेगी, इसलिए मैं कह रहा हूं कि तुम लौट जाओ ।३०।

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्रीउपाख्यान में तृतीय वरलाभ नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१२॥

---

[1] ङ. च. °त्युभीत° । [2] क. ख. °रणं चैव ।

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

धर्माधर्मविधानज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक । त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनो यमः ॥१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः । तस्माद्वै प्रोच्यसे देव यम इत्येव नामतः ॥२
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो । तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ॥३
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः । त्वत्सकाशं मृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे ॥४
[1]कालं कलार्धं कलयन्सर्वेषां त्वं हि तिष्ठति । तस्मात्कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो [2]महान् । तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ॥६
विवस्वतस्त्वं तनयः [3]प्रथमः परिकीर्तितः । तस्माद्वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे ॥७
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभं जनम् । तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणहरेति वै ॥८

अध्याय २१३

सावित्री ने कहा—हे धर्म अधर्म दोनों के विधानों के जाननेवाले! सभी धर्मों के प्रवर्त्तक! तुम्हीं जगत् के स्वामी तथा समस्त प्रजात्मकसृष्टि के नियमन करनेवाले हो! हे देव! तुम सभी प्राणियों का उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार नियमन (दण्ड आदि की व्यवस्था) करते हो, इसलिए लोग तुम्हें 'यमराज' कहते हैं। हे प्रभो! धर्मपूर्वक इन सभी चराचर जगत् को तुम प्रसन्न करते हो, इसलिए सत्पुरुष तुम्हें 'धर्मराज' भी कहते हैं ।१-३। लोग सत् तथा असत् कर्मों को आगे कर तुम्हारे समीप मृत्यु प्राप्त करने पर जाते हैं, इसलिए मृत्यु भी तुम्हारा नाम कहा जाता है ।४। संसार के सभी जीवों के काल एवं कला आदि काल के परिमाणों के अर्धभाग तक की स्मृति तथा गणना करते हो इसलिए तत्त्वदर्शी लोग तुम्हें 'काल' नाम से भी पुकारते हैं। हे महाद्युति! संसार के सभी चराचर जीवों के तुम संहार करनेवाले हो, इसीलिए सभी देवगण तुम्हें 'अन्तक' भी कहा करते हैं। विवस्वान् भगवान् सूर्य के तुम प्रथम पुत्र हो अतः सभी लोकों में लोग तुम्हें वैवस्वत नाम से भी पुकारते हैं। आयु एवं कर्म—इन दोनों के क्षीण हो जाने पर तुम लोगों को जबरदस्ती अपने पास घसीट लेते हो, इसी कारण लोक में सर्वप्राणहर नाम से भी लोग तुम्हें पुकारते हैं ।५-८। हे देवेश! तुम्हारी ही कृपा से इस जगत् में ऋक्, साम एवं यजुः—इन

---

[1] ङ. °लं कालेन कल° । च. °लं सर्वार्थकल° ।
[2] ग. भवान् ।
[3] क. ख. प्रथमं ।

तव प्रसादाद्देवेश त्रयीधर्मो न नश्यति। तव प्रसादाद्देवेश धर्मे तिष्ठन्ति जन्तवः॥
तव प्रसादाद्देवेश संकरो न प्रजायते ॥६
सतां सदा गतिर्देव त्वमेव परिकीर्तितः। जगतोऽस्य जगन्नाथ मर्यादापरिपालकः ॥१०
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ दुःखितां शरणागताम्। पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ॥११

यम उवाच

स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञे मया तुष्टेन सत्यवान्। तव भर्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले ॥१२
राज्यं कृत्वा त्वया सार्धं [1]वत्सराशीतिपञ्चकम्। नाकपृष्ठमथाऽऽरुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते ॥१३
त्वयि पुत्रशतं चापि सत्यवाञ्जनयिष्यति। ते चापि सर्वे राजानः क्षत्त्रियास्त्रिदशोपमाः ॥१४
मुख्यास्त्वन्नाम [2]पुत्रास्ते भविष्यन्ति हि शाश्वताः। पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥१५
मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः। भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्त्रियास्त्रिदशोपमाः ॥१६

तीनों वेदों द्वारा प्रतिपादित धर्म का विनाश नहीं होता और हे देवेश! तुम्हारी ही महिमा से सभी प्राणी अपने-अपने धर्मों में निरत रहा करते हैं। और भी, हे देवेश! तुम्हारी ही सत्कृपा से वर्णसंकर संतति की उत्पत्ति नहीं होती। हे देव! सत्पुरुषों के तुम सर्वदा एक मात्र शरण देनेवाले कहे गये हो। हे जगन्नाथ! इस जगत् की मर्यादा के तुम एक मात्र परिपालन करनेवाले हो।। हे सभी देवताओं में श्रेष्ठ! अपनी शरण में आई हुई मुझ भाग्य रहित की तुम रक्षा करो। इस राजपुत्र (सत्यवान्) के माता और पिता बहुत दुःखी हैं।६-११।

यमराज ने कहा—हे धर्म के महत्त्वों को जाननेवाली! तुम्हारी इस स्तुति से तथा तुम्हारी इस अगाध भक्ति से मैं परम सन्तुष्ट होकर तुम्हारे पति सत्यवान् को छोड़ देता हूँ। अब तू सफल मनोरथ हो गई, हे अबले! अब तो तू जा। तुम्हारे साथ यह सत्यवान् चार[1] सौ वर्षों तक राज्य सुख का अनुभव कर अन्तकाल में स्वर्गलोक की प्राप्ति कर देवताओं के साथ विहार करेगा। तुम्हारे संयोग से सत्यवान् को सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, वे सब के सब देवताओं के समान तेजस्वी तथा उच्च क्षत्रिय स्वभाव सम्पन्न राजा होंगे और चिरकाल तक जीवित रहते हुए तुम्हारे ही नामों से प्रसिद्ध होंगे।१२-१४½। तुम्हारे पिता को भी तुम्हारी माता के संयोग से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और वे भी मालती[2] में उत्पन्न होने के कारण मालव नाम से विख्यात होंगे और चिरकाल तक जीवित रहते हुए पुत्र-पौत्रादि से सुखी होंगे और देवताओं के समान ऐश्वर्य

---

१ क. ख. वर्षाण्यशी°। २ क. ख. °त्राख्या भ°।

---

१ आनन्दाश्रम की प्रति में 'वत्सराशीतिपञ्चकम्' पाठ है, अन्य पुस्तकों में 'वर्षाणां शतपंचकम् पाठ है। २ पहिले सावित्री की माता का नाम मालती आया हैं। अनुवादक

स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे कल्यमुत्थाय यस्तु माम् । कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति ॥१७

मत्स्य उवाच

*एतावदुक्त्वा भगवान्यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।
अ दर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्धं सह मृत्युना च ॥१८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सत्यवज्जीवितलाभो नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९०१॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

सावित्री तु ततः साध्वी जगाम वरवर्णिनी । पथा[1] यथागतेनैव यत्राऽऽसीत्सत्यवान्मृतः ॥१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः । कृत्वा [2]विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ॥२

सम्पन्न होकर क्षत्रियोचित गुणों का पालन करेंगे । हे धर्मज्ञे! जो कोई पुरुष प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्र द्वारा मेरा कीर्तन करेगा वह भी दीर्घायु की प्राप्ति करेगा ।१५-१७।

मत्स्य भगवान् ने कहा—इतनी बातें सावित्री से कर महात्मा यमराज उस राजपुत्र सत्यवान् को वहीं छोड़कर काल तथा मृत्यु के समेत अदृश्य हो गये ।१८।

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्रीउपाख्यान में सत्यवान जीवन लाभ नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार यमराज के अदृश्य हो जाने के बाद सुन्दरी पतिव्रता सावित्री वहाँ से उस स्थान पर वापिस लौट आई जहाँ पर सत्यवान् की मृत्यु हुई थी । और अपने अंक में पति के शिर को स्थापित कर पूर्ववत् वहाँ बैठ गई । उस समय भगवान् भास्कर अस्ताचल पर प्रस्थित हो चुके थे ।

---

*एतच्छ्लोकस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके-स धर्मराजो भगवान्विमुच्य तं राजसूनुं च तदा महात्मा । अदर्शनं तत्र जगाम काले कालेन सार्धं सह मृत्युना चेति ।

---

[1] ङ. °था गतेनैव । [2] च विशत तन्व° ।

सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः । उन्मीलयत[1] नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ॥३
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् । क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥४
न जानामि वरारोहे कश्चासौ पुरुषः शुभे । वनेऽस्मिंश्चारुसर्वाङ्गि सुप्तस्य च दिनं[2] गतम् ॥५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता[3] भवती मया । अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु गमने त्वरिता भव ॥६

सावित्र्युवाच

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते [4]रुचितं प्रभो । आश्रमं तु प्रयास्यावः श्वशुरौ हीनचक्षुषौ ॥७
यथावृत्तं च तत्रैव[5] तव वक्ष्याम्यथाऽऽश्रमे । एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ॥८
आससादाऽऽश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा । एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥९
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव । प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषां चैवाथ कर्शिताम् ॥१०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः । ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह काननात् ॥११

धर्मराज के पास से धीरे-धीरे छूटकर सत्यवान् भी अपनी आँखें मींजते हुए धीरे-धीरे पलकों को खोलकर ताकने लगे और उनके हृदय स्थल पर पुनः प्रस्फुरण होने लगा ।१-३। इस प्रकार पुनः चेतनायुक्त होकर सत्यवान् ने प्रियतमा सावित्री से कहा—'वह पुरुष कहाँ गया जो मुझे खींचे लिए जा रहा था । हे सुन्दरि ! कल्याणि ! मैं उसे बिल्कुल नहीं पहचानता था कि वह कौन था ? हे सभी अंगों से सुन्दरि ! इस निर्जन वन में सोते हुए मैंने पूरा दिन बिता दिया और उपवास से थकी हुई तुम को विशेष कष्ट दिया । मुझ दुर्हृदय ने माता और पिता को भी कष्ट दिया । हे सुन्दर भौहोंवाली ! मैं अब उन्हें पुनः देखना चाहता हूँ, चलो, जल्दी करो ।४-६।

सावित्री ने कहा—'हे प्रभो ! यदि तुम्हें चलने की इच्छा है तो सूर्य के अस्त हो जाने पर मैं उस आश्रम को चलंगी जहाँ पर नेत्रविहीन हमारी सास और ससुर बैठे हुए हमारी प्रतीक्षा करते होंगे । और वहीं आश्रम में चलकर जो घटना घटित हुई है उसे भी सुनाऊँगी' । इस प्रकार कों बातें कर सावित्री ने पति के साथ वहाँ से आश्रम की ओर प्रस्थान किया ।७-८। अनन्तर पतियुक्त राजपुत्री वहाँ पहुँची जहाँ श्वशुर का आश्रम था । इतने ही अवसर में राजा द्युमत्सेन अपनी स्त्री के साथ नेत्र ज्योति प्राप्तकर अति प्रसन्न हो रहे थे । हे भार्गव ! इस प्रकार वहाँ पर उन्होंने आये हुए अपने प्रिय पुत्र और दुर्बलांगी पुत्रवधू को देखा । अति हर्ष में सने हुए तपस्वियों द्वारा सान्त्वना दिये जाते हुए राजा ने जंगल से पुत्रवधू के साथ आये हुए अपने प्रियपुत्र को देखा ।९-११। उस समय सुन्दरी राजपुत्री सावित्री ने सत्यवान् के साथ पत्नी समेत क्षत्रपति

---

[1] ग. च. °यति ने° । [2] ग. ङ. च. कर्षिता । [3] च. चिरं । [4] घ. रुचिरं । [5] ङ. °व प्रवक्ष्यामि तवाऽऽश्र० ।

सावित्री तु वरारोरा सह सत्यवता तदा । ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्त्रपुंगवम् ॥१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान्राजनन्दनः । अभिवाद्य ततः सर्वान्वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥१३
उवास तत्र तां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित् । सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ॥१४
व्रतं समापयामास तस्यामेव तदा निशि । [1]ततस्तूर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥१५
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे । विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम् ॥१६
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम् । अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन्पुरे नृपः ॥१७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेन चतुरङ्गिणा । लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान्महात्मनः ॥१८
भ्रातॄणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना । एवं पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा ॥१९
उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च । [2]मोचयामास भर्तारं मृत्युपाशवशं गतम् ॥२०
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः । तासां राजन्प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ॥२१
तासां तु वाक्यं भवतीह[3] मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।
तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान्समग्रानभिकामयानैः ॥२२

राजा द्युमत्सेन को प्रणाम किया । सभी धर्मों के महत्त्वों को जाननेवाले राजा ने दौड़कर अपने प्रियपुत्र सत्यवान् को गले लगाया और तदनन्तर उस वन प्रान्त में निवास करनेवाले समस्त तपस्वियों को अभिवादन कर उन सबों के साथ उस रात वहीं पर निवास भी किया ।१२-१३। रात में अनिन्दित चरित्र एवं सौन्दर्य शालिनी सावित्री ने उस घटना को, जैसे-जैसे घटित हुई थी, सुनाया और उसी रात में अपने व्रत को समाप्त भी किया । तदनन्तर उसी रात को जब तीसरा पहर बीत चुका था राजा की सारी प्रजा तुरुही आदि बाजनों को बजाते हुए पुनः राज्य करने के लिए निमंत्रण देने को आई, और यह सूचना दी कि राज्य में आपका शासन अब पूर्ववत् हो गया है । नेत्रहीन आपके राज्य को जिस राजा ने लड़कर जीत लिया था, उसे उसी आप के पुर में मंत्रियों ने मिलकर मार डाला ।१४-१७। ऐसे सुखदायक समाचार को सुनकर राजा ने चतुरंगिणी सेना को साथ ले महात्मा धर्मराज के माहात्म्य से पुनः अपने समस्त राज्य को प्राप्त किया । सुन्दरी सावित्री ने भी अपने सौ भाइयों को प्राप्त किया ।१८½। इस प्रकार राजा द्युमत्सेन की पुत्री पतिव्रता सावित्री ने अपने पिता तथा पति—दोनों के वंशवालों का उद्धार किया और मृत्यु के पाश में बँधे हुए अपने पति के प्राणों को बचाया । इसलिए हे राजन्! मनुष्यों को साध्वी पतिव्रता स्त्रियों की देवताओं के समान सर्वदा पूजा करनी चाहिये, उन्हीं की कृपा से यह त्रैलोक्य ठहरा हुआ है । उन पतिव्रता स्त्रियों के वाक्य इस चराचर जगत् में कभी भी मिथ्या नहीं होते । इसलिए जगत् में सभी मनोरथों की कामना करनेवालों को

---

१. ङ. च. °तस्तु रात्रियामान्ते शाल्वेभ्यस्त° । २ क. ख. ग. मोक्षया° । ३ घ. ङ. °ह सद्यः फलन्ति कामाः सकला अभीष्टाः स° ।

*यश्चेदं शृणुयान्नित्यं सावित्र्याख्यानमुत्तमम् । स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ॥२३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११२४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किं नु कृत्यतमं भवेत् । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्ति यतो भवान् ॥१

मत्स्य उवाच

अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना । सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् । पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ॥३
तस्मात्सहायान्वरयेत्कुलीनान्नृपतिः स्वयम् । शूरान्कुलीनजातीयान्बलयुक्ताञ्छ्रियाऽन्वितान्[1] ॥४

सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये । जो मनुष्य इस पवित्र सावित्री के आख्यान को नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनों की सफलता प्राप्तकर सुख का अनुभव प्राप्त करता है और कभी भी दुःख नहीं झेलता ।१९-२३।

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्री उपाख्यान नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

मनु ने कहा—हे भगवन् ! अभिषेक होने के बाद राजा को उस समय क्या करना चाहिये ? उन सब कार्यों को हमें बतलाइये, क्योंकि आप इस विषय को भली भाँति जानने वाले हैं ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राज्य की चिन्ता करनेवाले राजा को चाहिये कि वह अभिषेचन काल के जल से शिर पर भीगते ही सहायकों (मंत्रियों) की नियुक्ति करे, क्योंकि राज्य तो उन्हीं पर प्रतिष्ठित रहता है ।२। इस संसार में जो सब से छोटा कार्य है वह भी एक निस्सहाय व्यक्ति से दुष्करणीय है तो फिर राज्य जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण विषय के लिए क्या कहा जा सकता है ? इसलिए राजा को चाहिये कि वह स्वयमेव उत्तम कुलोत्पन्न, शूर, उच्च जातिवाले, बलवान् श्रीमान् सहायकों की

---

* एतत्पद्यं घ. पुस्तके वर्तते ।

---

[1] ङ. घ. °क्तान्क्रिया° ।

[1]रूपसत्त्वगुणोपेतान्सज्जनान्क्षमयाऽन्वितान् । क्लेशक्षमान्महोत्साहान्धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान् ॥५
[2]हितोपदेशकालज्ञान्स्वामिभक्तान्यशोर्थिनः । एवंविधान्सहायांश्च शुभकर्मसु योजयेत् ॥६
गुणहीनानपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् । कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ॥७
कुलीनः शीलसंपन्नो[3] धनुर्वेदविशारदः । [4]हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः [5]श्लक्ष्णभाषिता ॥८
निमित्ते शकुनज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सते । कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेसहस्त्वृजुः ॥९
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित् । राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्त्रियोऽथवा ॥१०
प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः । चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते ॥११
यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः । शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ॥१२
विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः । [6]वक्ता नयस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ॥१३
[7]प्रांशवोऽशयनाः शूरा दृढभक्ता निराकुलाः । राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः ॥१४

नियुक्ति करे ।३-४। रूपवान्, बलवान्, गुणवान्, सज्जन, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, महोत्साही, धर्मज्ञ, प्रिय बोलनेवाले, कल्याण का उपदेश करनेवाले, स्वामिभक्त तथा यश के अभिलाषी—सहायकों को मांगलिक कर्मों से नियुक्त करना चाहिए । राजा को चाहिए कि जो कुछ गुणहीन भी सहायक हों, किन्तु अन्य गुण उनमें पाये जाते हैं, उन्हें भी उनके योग्य कार्यों में स्वयं नियुक्त करे ।५-७। उत्तम कुलोत्पन्न, शीलवान्, धनुर्वेद में प्रवीण, हाथी और अश्व की शिक्षा में कुशल, मृदुभाषी, शकुन और अन्यान्य शुभाशुभ कारणों का जाननेवाला, ओषधियों को जाननेवाला, कृतज्ञ, शूर, कर्मों में प्रवीण, कष्टसहिष्णु, सरल, सेना की व्यूह रचना आदि के तत्त्वों को जाननेवाला, निस्तत्त्व एवं सार वस्तुओं एवं विषयों को समझनेवाला, ब्राह्मण हो अथवा क्षत्त्रिय हो—ऐसे पुरुष को राजा को सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये । आकृति में लम्बे, रूपवान्, सभी कार्यों में दक्ष, प्रियवक्ता, अचंचल, सभी के चित्त को मोह लेनेवाले को प्रतीहारी बनाना चाहिये ।८-११। जैसा संदेश हो वैसा ही कहनेवाला एवं देशी भाषाओं में जो पटु हो उसे दूत बनाना चाहिये । वह दूत सामर्थ्यशाली, क्लेशसहिष्णु, बोलने में प्रवीण, देश एवं काल के विभाग को जाननेवाला देशकालज्ञ भी हो । जो मौका आने पर स्वयं भी नीति की बातें कर सके वह राजा का दूत हो सकता है ।१२-१३ आयार में लम्बे, कम सोनेवाले, शूरवीर, राजा में दृढ़ भक्ति रखनेवाले, कभी व्याकुल न होनेवाले, कष्टसहिष्णु, हित में निरत रहनेवाले—ऐसे पुरुषों को अंगरक्षा के कार्य में राजा को नियुक्त करना चाहिये जो दूसरों से किसी प्रकार भी फोड़े न जा सकें, क्रूर स्वभाव के न हों, राजा में अगाध भक्ति रखनेवाले

---

[1] ग. तान्समेतान्क्षम° । ङ. च. °तान्संयुक्तान्क्षम° । [2] ग. ङ. च. °कान्राज्ञः स्वा । [3] घ. °पन्नश्चतुर्वेदपरायणः । [4] ङ. च. °क्षादिकुशलो नित्यं च श्ल° । [5] घ भाषणः । नि° । [6] ङ. °क्ता हितश्च यः । [7] क. ख. ग. °वो व्यायताः शू° ।

अनाहार्योऽनृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे । ताम्बूलधारी भवति नारी वाऽप्यथ तद्गुणा ॥१५
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः । सांधिविग्रहिकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः ॥१६
कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता । आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ॥१७
सुरूपस्तरुणः प्रांशुर्दृढभक्तिः कुलोचितः । शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ॥१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः । धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः । हयायुर्वेदतत्त्वज्ञो भुवो [1]भागविचक्षणः ॥२०
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियंवदः । शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तितः ॥२१
अनाहार्यः शुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदां वरः । सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते ॥२२
सूदशास्त्रविधानज्ञाः पराभेद्याः कुलोद्गताः । सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः ॥२३
समःशत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः । विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो[2] भवेत् ॥२४

हों—ऐसे पुरुष ताम्बूलवाहक के पद पर नियुक्त किये जा सकते हैं, अथवा इतने गुणों से विशिष्ट स्त्री भी हो तो वह भी रखी जा सकती है।१४-१५। नीतिशास्त्र में कहे गये छः[1] गुणों की विधियों के तत्त्वों को जाननेवाला, देशी भाषाओं के विशारद, नीतिज्ञों को संधि एवं विग्रह का अधिकार देना चाहिये। नौकरों के किये गये और न किये गये कामों का लेखा रखनेवाला, आय और व्यय को जाननेवाला, लोगों की वास्तविक स्थित का जाननेवाला, देशों की उपज का उचित ज्ञान रखनेवाला, देशरक्षक बनाने योग्य होता है। सुन्दर आकृतिवाला, युवक, लम्बे कद का, राज्य में अबाध भक्ति रखनेवाला, कुलीन, शूरवीर तथा कष्टसहिष्णु को खड्गधारी बनाना चाहिये।१६-१८। शूरवीर, बलवान्, हाथी और घोड़ों की विशेषताओं को जाननेवाला सभी प्रकार क्लेशों को सहन करने में समर्थ तथा पवित्र व्यक्ति को राजा का धनुर्धारी बनाना चाहिये। शुभाशुभ सूचक शकुनों को जाननेवाले, अश्वशिक्षा में विशारद, अश्वों के आयुर्विज्ञान के वेत्ता, पृथ्वी के समस्त भागों की विशेषताओं को जाननेवाले, रथियों के बल एवं निर्बलता को जाननेवाले, स्थिरदृष्टि, प्रियवचन बोलनेवाले, शूरवीर तथा विद्वान् पुरुष को योग्य सारथी कहा गया है।१९-२१। किसी प्रकार भी दूसरों के कहने में न आनेवाले, पवित्र, प्रवीण, औषधियों के गुणों और दोषों को जाननेवालों में श्रेष्ठ, भोजन शास्त्र की विशेषताओं के वेत्ता को भोजनाध्यक्ष बनाना चाहिये। भोजन सम्बन्धी विधानों के जाननेवाले, दूसरों से न फूटनेवाले, वंश परम्परा से चले आनेवाले पुरुषों को रसोई घर में भोजन बनाने का काम सौंपना चाहिये, उनके नख तथा केश साफ तथा कटे हुए होने चाहिये। शत्रु और मित्र में समता का व्यवहार करनेवाले, सभी शास्त्रों के विशारद, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ एवं कुलीन व्यक्ति को धर्माध्यक्ष का पद सौंपना चाहिये।२२-२४। ऊपर कही हुई

---

[1] ग. ङ. °विशेषवित्। बला°। [2] ग. ङ. च. °रणी भ°।

---

[1]. छः गुण ये हैं, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय।

कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः । सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२५
लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै । शीर्षोपेतान्सुसंपूर्णान्समश्रेणिगतान्समान् ॥२६
अक्षरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः[1] । उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२७
बह्वर्थवक्ता[2] चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम । *वाक्याभिप्रायतत्त्वज्ञो देशकालविभागवित् ॥२८
अनाहार्ये भवेत्सक्तो लेखकः स्यान्नृपोत्तम । पुरुषान्तरतत्त्वज्ञः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः ॥२९
[3]धर्माधिकारिणः कार्या जना दानकरा नराः । एवंविधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जनाः ॥३०
लोहवस्त्राजिनादीनां रत्नानां च विधानवित् । विज्ञाता फल्गुसाराणामनाहार्यः शुचिः सदा ॥३१
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्तितः ॥३२
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः । व्ययद्वारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता ॥३३
परम्परागतो[4] यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते । अनाहार्यः स वैद्यः स्याद्धर्मात्मा च कुलोद्गतः ॥३४

विशेषताओं से विशिष्ट श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सभासद नियुक्त करना चाहिये । जो सभी देशों के अक्षरों के अच्छे जानकार हों तथा सभी शास्त्रों में पटु हों, उन्हें सभी विभागों में लेखक का काम सौंपना चाहिये । ऊपर की शिरोरेखा से युक्त, मभी प्रका से पूर्ण, समानान्तर तथा सीधी रेखा में लिखे गये, आकृति में बराबर अक्षरों को जो लिखता है वही अच्छा लेखक कहा जाता है ।२५-२६½। हे राजन् ! अच्छे लेखक को उपाय सम्बन्धी वाक्यों में प्रवीण, सभी शास्त्रों में विशारद, अधिक प्रयोजन को थोड़े शब्दों में कहने की क्षमता रखनेवाला, होना चाहिये । हे नृपोत्तम ! उसी प्रकार अच्छे लेखक को वाक्यों के वास्तविक अभिप्राय का जाननेवाला, देश और काल के विभाग का अच्छा ज्ञाता तथा किसी दूसरे से भेद की बातों को न बतानेवाला होना चाहिये । हे राजन् ! मनुष्यों के हृदय की बातों तथा भावों को परखनेवाले, दीर्घकाय, निर्लोभी तथा दानशील व्यक्तियों को धर्माधिकारी का पद देना चाहिये । एवं राजा को उसी प्रकार के योग्य मनुष्यों को द्वारपाल का पद भी सौंपना चाहिये ।२७-३०। लोह, वस्त्र, मृगचर्मादि तथा रत्नों की परख करनेवाला, मूल्यवान् तथा व्यर्थ दोनों प्रकार की वस्तुओं का जानकार, दूसरों से न फूटनेवाला, सर्वंदा पवित्र रहनेवाला, निपुण, धैर्यशाली तथा ववेकी व्यक्ति को धनाध्यक्ष बनाना चाहिये । आय के सभी विभागों में धनाध्यक्ष के समान पुरुषों को नियुक्त करना चाहिये । उसी प्रकार व्यय के सभी स्थानों पर भी राजाओं को उपर्युक्त गुणोंवाले व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये ।३१-३३। वंशपरम्परा से होनेवाले आठों अंगों की चिकित्सा में सुविज्ञ हो, दूसरों से फूट न सके, धर्मात्मा तथा सत्कुलोत्पन्न हो—ऐसे व्यक्ति को वैद्य बनाना चाहिये । हे राजन् ! उस वैद्य

---

* न विद्यतेऽयं श्लोकः क. ख. पुस्तकयोः ।

---

[1] घ. °तः । वाक्योपवाक्यकुशलो देशभाषावि° । [2] ग. °क्ता वाक्येन । [3] ग. °धिकरणे कार्या ज्ञानाह्वान° । [4] घ. °तो यश्च द्रव्याणां च चिकित्सकः । अ° ।

प्राणाचार्यः स विज्ञेयो वचनं तस्य भूभुजा[1] । राजन्राज्ञा सदा कार्यं यथा कार्यं पृथग्जनैः ॥३५
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारदः । क्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते ॥३६
एतैरेव गुणैर्युक्तः[2] स्थविरश्च विशेषतः । गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते ॥३७
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः । अश्वाध्यक्षो महीभर्तुः[3] स्वासनश्च प्रशस्यते ॥३८
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा[4] प्राज्ञः कुलोद्गतः । दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु ॥३९
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः । दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थापितः परिकीर्तितः ॥४०
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते[5] विमुक्ते मुक्तधारिते । अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते ॥४१
वृद्धः कुलोद्गतः [6]सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः । राज्ञामन्तः पुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते[7] ॥४२
एवं सप्ताधिकारेषु[8] पुरुषाः सप्त ते पुरे । परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु
स्थापनाजातितत्त्वज्ञाः सततं प्रतिजागृताः ॥४३

को प्राणाचार्य जानना चाहिये और सर्वसाधारण की भाँति राजा को उसके वचनों का सर्वदा पालन करना चाहिये । जंगली जातिवालों के रीति-रस्मों का अच्छा ज्ञाता, हस्ती की शिक्षा का विशेषज्ञ एवं दुःख सहन करने में समर्थ व्यक्ति राजा का प्रशंसनीय गजाध्यक्ष होता है । ३४-३६। इन्हीं उपर्युक्त गुणों से युक्त—विशेषकर अवस्था में वृद्ध—व्यक्ति को राजाओं के सभी कार्यों में गजारोही (पीलवान) बनाना अच्छा कहा गया है । अश्वों को शिक्षा देने में प्रवीण, अश्वों को चिकित्सा में विशारद एवं स्थिर आसन से बैठनेवाले व्यक्ति को राजाओं का श्रेष्ठ अश्वाध्यक्ष कहा गया है । शत्रुओं से न फूटनेवाला, शूरवीर, बुद्धिमान्, सत्कुलीन एवं सभी कार्यों में उत्सुक व्यक्ति को राजा को दुर्गाध्यक्ष (गढ़पति) बनाना चाहिये ।३७-३९। वास्तुविद्या में प्रवीण, परिश्रमी, हस्तलाघव दिखानेवाला, दीर्घदर्शी तथा शूर व्यक्ति को स्थपति (कारीगर) के पद पर नियुक्त करना चाहिये । यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, विमुक्त, मुक्तधारित इत्यादि अस्त्रों के परिचालन की विशेषताओं में सुनिपुण एवं अव्यग्र व्यक्ति को अस्त्राचार्य के पद पर रखना चाहिये ।४०-४१। वृद्ध, सत्कुलोत्पन्न, मधुरभाषी, पिता तथा पितामह से उसीकार्य पर नियुक्त होनेवाले पवित्र तथा विनीत व्यक्ति को राजाओं के अन्तःपुर के अध्यक्ष पद पर नियुक्त करना चाहिये । राजाओं के इन सात अधिकार के पदों पर भलीभाँति परखकर सभी कार्यों में परीक्षाकर के तथोक्त गुणोंवाले सातों व्यक्तियों को अधिकारी बनाना

---

१ ग. °जा । समादाय स° । २ क. ख. °क्तः स्वासनश्च । ३ घ °र्तुः स्थविरश्च । ४ च. वाग्मी । ५ ङ. च. °क्ते सर्वतः परिवारितः । ६ ङ. च. शुक्लः । ७ ग. °ते । पञ्चाशदधिका राजन्पुरुषाः सप्त ते पराः । अन्तः पुरचराकार्या रा° । ८ ङ. च सर्वाधिकाराः स्युः पुरुषः सप्त ते पराः । अन्तः पुरुचराका° ।

राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः । कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो[1] नृपकुलोद्वह ।।४४
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः । [2]उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ।।४५
नरकर्मविपर्यासाद्राजा[3] नाशमवाप्नुयात् । नियोगं पौरुषं भक्तिं श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ।।४६
ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता । पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ।।४७
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक्पृथक् । मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ।।४८
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् । निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्य एकेन सूरिणा ।।४९
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् । एकस्यैव महीभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः ।।५०
ब्राह्मणान्पर्युपासीत[4] त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् । नासच्छास्त्रवतो मूढांस्ते हि लोकस्य कण्टकाः ।।५१
वृद्धान्हि नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन् । तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ।।
समग्रां वशगां कुर्यात्पृथिवीं नात्र संशयः ।।५२

चाहिये। राजाओं के सभी कार्यों में नियुक्त किये गये व्यक्तियों को सतत उद्योगशील, जागरूक तथा सभी कार्यों में पटु होना चाहिये ।४२-४३। हे राजन्! राजाओं के अस्त्रागार में नियुक्त व्यक्ति को भी दक्ष तथा उद्यमशील होना चाहिये। राजाओं के कार्यों की गणना नहीं की जा सकती, इसलिए उसे चाहिये कि उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्यों को भलीभाँति समझबूझ कर तदनुकूल उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुषों पर सौंपना चाहिये। इसी सौंपे गये कार्यों के उलट फेर हो जाने से—अर्थात् अधम व्यक्ति को उत्तम कार्य तथा उत्तम व्यक्ति को अधर्मकार्य सौंप देने से—राजा विनाश को प्राप्त होता है ।४४-४५½। राजा को चाहिये कि अपने पुरुषों के निश्चय (लगन), पौरुष, भक्ति, शास्त्रज्ञान, शूरता, कुल तथा नीति को भलीभाँति जान बूझ कर उनका वेतन निश्चित करे। कोई दूसरा व्यक्ति न जानने पावे—इस अभिप्राय से राजा को अपने मतलब की बात में अनेक मंत्रियों से अलग-अलग सम्मति लेनी चाहिये, एक मंत्री से भी दूसरे मन्त्री की दी गई सम्मति को नही बतलाना चाहिये ।४६-४८। राजा को सर्वदा किसी भी व्यक्ति का विश्वास नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् राजा को चाहिये की सम्मति लेने पर वह सर्वदा अकेले ही निश्चय करे कि उसे क्या करना चाहिये? अथवा दूसरे लोगों की बुद्धि के सहारे से भी निश्चय की प्राप्ति हो जाती है। उस अकेले किये गये निश्चय में भी राजा को चाहिये कि फिर से विचार कर ले राजा को तीनों वेदों के पारगामी ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये। जो शास्त्रों के जाननेवाले नहीं हैं, उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे कण्टक रूप से लोक की हानि पहुँचानेवाले हैं ।४९-५१। पवित्र आचरणवाले, वेदवेत्ता, वृद्ध ब्राह्मणों की राजाओं को नित्य सेवा करनी चाहिये, उन्हीं ब्राह्मणों से विनयावनत होकर राजा को नित्यशः विनय की शिक्षा भी लेनी चाहिये। ऐसा करने से वह समग्र वसुन्धरा को अपने वश में कर सकता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।५२। अविनय के कारण बहुतेरे राजा लोग अपने परिजन एवं अनुचरों के

---

[1] ङ. च. राज्ञां भृगुकु°। [2] ङ. च. °मध्यानां पुरुषाणां नि°। [3] ङ. च. °जा व्यसनमाप्नु°। [4] ग. °त धर्मकर्मसु°। ङ. च. °त धर्मकर्मसु निश्चलान्। ना°।

बहवोऽविनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः[1] । वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥५३
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् । आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः ॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् । जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥५५
यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः । धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥५६
सांवत्सरिकमाप्तैश्च[2] राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् । स्यात्स्वाध्यायपरो लोके वर्तेत पितृबन्धुवत् ॥५७
आवृत्तानां गुरुकुलाद्द्विजानां पूजको[3] भवेत् । नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते[4] ॥५८
तं च स्तेना न वाऽमित्रा हरन्ति न[5] विनश्यति । तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ॥
शमोत्तमाधमै राजा[6] ह्याहूय पालयेत्प्रजाः । न निवर्तेत सङ्ग्रामात्क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ॥६०
सङ्ग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् । शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां निःश्रेयसं परम् ॥६१

साथ नष्ट हो गये और अनेक भागकर वन में निवास करनेवाले राजाओं ने विनय से पुनः अपने राज्यश्री को प्राप्त किया । राजाओं को तीनों विद्याओं के सुविज्ञों द्वारा तीनों विद्या—दण्डनीति, शाश्वती, आन्वीक्षिकी तथा आत्मविद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तथा सर्वसाधारण से लौकिक वार्ताओं की सूचना प्राप्त करनी चाहिये । उसे सर्वदा रात और दिन में अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रखना चाहिये । जितेन्द्रिय राजा ही अपनी प्रजाओं को वश में रख सकता है ।५३-५५। राजा को अनेक प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये और धर्मार्थ ब्राह्मणों को विविध योग्य सामग्रियाँ तथा सम्पत्ति का दान देना चाहिये । बुद्धिमान् कर्मचारियों द्वारा राजा को चाहिये कि अपने राष्ट्र से वार्षिक कर वसूल करे । उसे सर्वदा स्वाध्याय में लीन रहना चाहिये तथा लोगों के साथ पिता और भाई का सा व्यवहार रखना चाहिये । राजा को गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर लौटे हुए ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये । राजाओं की यह अक्षय ब्रह्मविधि कही गई है ।५६-५८। उसके ऐसा करने से चौर तथा शत्रुगण उसकी कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते न किसी अन्य कारण से ही उसका विनाश हो सकता है । इसलिए राजा को इस अक्षय ब्रह्मविधि का पालन तो अवश्यमेव करना चाहिये । राजा को चाहिये कि वह अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम अनुचरों द्वारा प्रजा का, जब जैसी आवश्यकता पड़े पालन करे और अपने क्षात्रधर्म का स्मरण कर संग्राम से भी कभी विचलित न हो ।५९-६०। संग्रामभूमि से विचलित न होना, प्रजाओं का विधिवत् परिपालन एवं ब्राह्मणों की शुश्रूषा—ये तीन धर्म राजाओं के लिए परम कल्याणकारी हैं । दुरवस्था में पड़े हुए असहाय, वृद्ध, एवं

---

[1] च. °दाः । धनानि चैव । [2] बच स्वराष्ट्रादाहरेद्ब° । [3] ङ. पूरको । [4] क. ख. °ते । ततस्ते° । [5] ङ. न च पश्य° । [6] ग. °जा व्याहृतः पा° ।

कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च [1]योषिताम् । योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत् ॥६२
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः । स्वधर्मप्रच्युतान्राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा ॥६३
आश्रमेषु तथा [2]कार्यमन्नं तैलं च भाजनम् । स्वयमेवाऽऽनयेद्राजा सत्कृतान्नावमानयेत् ॥६४
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च । निवेदयेत्प्रयत्नेन [3]देववच्चिरमर्चयेत् ॥६५
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः । वक्रां ज्ञात्वा न सेवेत प्रतिबाधेत चाऽऽगताम् ॥६६
नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु । गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥६७
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं [4]मूलान्यपि निकृन्तति ॥६८
विश्वासयेच्चाप्यपरं तत्त्वभूतेन हेतुना । बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥६९
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत् । दृढप्राहरी च भवेत्तथा[5] शूकरवन्नृपः ॥७०
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत् । तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः ॥७१

विधवा स्त्रियों—के योगक्षेम एवं जीविका का प्रबन्ध राजा को करना चाहिये । विशेष रूप से वर्णाश्रम की व्यवस्था का ध्यान रखना चाहिये । राजा को चाहिये कि अपने धर्म से भ्रष्ट हुए लोगों को अपने-अपने धर्मों में पुनः स्थापित करे, इसी प्रकार चारों आश्रमों पर भी उसे देख-रेख रखनी चाहिये । अतिथि के लिए अन्न, तैल तथा पात्रों की व्यवस्था उसे स्वयमेव करनी चाहिये । सम्माननीय व्यक्तियों का अपमान नहीं करना चाहिये ।६१-६४। तपस्वी के लिए राजा को चाहिये कि अपने सभी कर्मों को, राज्य को तथा अपने आप को समर्पित कर के और प्रयत्नपूर्वक उसकी देवता के समान चिरकाल तक पूजा करे ।६५। मनुष्यों से दो प्रकार की-सरल और कुटिल—बुद्धियों का पाठ सीखना चाहिये, तिनमें से कुटिल बुद्धि को जान तो ले पर उसका प्रयोग न करे, केवल दूसरे द्वारा प्रयुक्त की गई कुटिलता को व्याहत करने के लिए उसका प्रयोग करे । राजा के छिद्र को दूसरा कोई न जान सके; किन्तु वह दूसरे के छिद्रों तक पहुँच सके । वह कछुए के अंगों की भाँति अपने छिद्रों को अपने ही विवर में समेट कर रखे ।६६-६७। कभी अविश्वसनीय व्यक्ति का विश्वास न करे, विश्वसनीय भी हो तो उसका अति विश्वास न करे, क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ जो भय है वह मूलसमेत नाश का कारण होता है । यथार्थ कारण को प्रकाशित करते हुए दूसरों को अपनी वात पर विश्वास दिलाना चाहिये, । वकुले की भाँति उसे सर्वदा की चिन्ता में लीन रहना चाहिये, सिंह की भाँति पराक्रम दिखलाना चाहिये । राजा गीदड़ की भाँति अवसर पाते ही पलायन करे तथा खरगोश की भाँति कूद-कूदाकर चले तथा सुग्गे की तरह दृढ़ प्रहार करनेवाला बने । राजा मोर की भाँति विचित्र आकारवाला हो, कुत्ते की भाँति दृढ़ भक्ति करे तथा कोकिल की भाँति मृदुभाषी हो ।६८-७१।

---

[1] क. ख. पालनम् । [2] ग. कार्यं चैलभाजनभोज° । ङ. च. कार्यं तैलभाजनभोज° । [3] ग ङ. च. °वच्चैनम° । [4] क. ख. ग. °लादपि । [5] ख. घ. °था सूक° ।

काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत् । नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं व्रजेत्
वस्त्रं पुष्पमलंकारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम् ।।७२
न गाहेज्जनसंबाधं न चाज्ञातजलाशयम्[1] । अपरीक्षितपूर्वं च पुरुषैराप्तकारिभिः ।।७३
नाऽऽरोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा । नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ।।७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राताऽश्रान्तो[2] भवेन्नृपः । सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः ।।७५
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता । यथार्हं चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत् ।।७६
धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रामकर्मसु । निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ।।७७
स्त्रीषु [3]षण्डं नियुञ्जीत [4]तीक्ष्णं दारुणकर्मसु । धर्मे चार्थे च कामे च नये च रविनन्दन ।।७८
राजा[5] यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम्[6] । [7]समतीतोपदान्भृत्यान्कुर्याच्छस्तवनेचरान्[8] ।।७९
[9]तत्पादान्वेषिणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् । एवमादीनि[10] कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव ।।८०

राजा को चाहिये कि वह सर्वदा कौए की भाँति सशंकित रहे, दूसरे लोग जिस स्थान को न जान सकें ऐसे स्थान पर निवास करे, बिना एक बार परीक्षा किये हुए भोजन तथा स्थान को ग्रहण न करे। हे मनुजश्रेष्ठ ! इसी प्रकार उसे वस्त्र, पुष्प, अलंकार एवं अन्यान्य दैनिक आवश्यक सामग्रियों को एक बार परीक्षा कर लेने के बाद काम में लाना चाहिये। बहुत सी भीड़ जहाँ पर इकट्ठी हो वहाँ पर स्नान न करे, न उस जलाशय में स्नान करे, जो पहले से विश्वस्त पुरुषों द्वारा परीक्षित न हो अथवा अज्ञात हो। दुष्ट हाथी अविनीत तथा अशिक्षित अश्व पर आरोहण न करे, न बिना जानी हुई स्त्री से समागम करे। वह देवोत्सव के अवसर पर देवालयों में निवास भी न करे।७२-७४। हे धर्मज्ञ ! राजा को सर्वदा राज्यलक्ष्मी (राज्य चिह्न) से सुसम्पन्न, दीनरक्षक तथा उद्यमी होना चाहिये। पृथ्वी को जीतने की इच्छा रखनेवाले राजा को सर्वदा सरल स्वभाववाले अनुचरों का पालन, पोषण तथा सम्मान करना चाहिये और उन्हें ही सहायक रखना चाहिये। धार्मिक कार्यों में धार्मिक, संग्राम में शूरवीर, आय के विभागों में उसके विशेषज्ञ तथा सच्चरित्र एवं पवित्र आचरण वाले सहायकों को सर्वत्र नियुक्त करना चाहिये। वह नपुंसकों को स्त्रियों के साथ तथा निर्दयों को क्रूर कार्यों में रखे।७५-७७½। हे रविनन्दन ! धर्म, अर्थ, काम तथा नीति के कार्यों में गुप्त पारिश्रमिक आदि देकर अनुचरों की परीक्षा ले फिर परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले को प्रशंसनीय वनचर संन्यासी आदि के वेश में नियुक्त कर यथार्थ बातों का पता लगाता रहे और उनके कार्यों की देखरेख रखनेवालों को उनका अध्यक्ष बनाये। राजन् ! इस प्रकार राजा को राज्य के कार्यों का संचालन करना चाहिये। राजा लोगों को सर्वदा तीखे स्वभाव तथा उग्र कर्मों वाला नहीं होना चाहिये, हे राजन् ! जिन कर्मों को राजा पापाचरण

---

१ ग. ङ. च. °म् । नाप° । २ क. ख. °तायत्तो भ° । ३ ङ. च. षण्डान्नियु° । ४ ङ. च. तीक्ष्णान्दारु° । ५ ङ. यथा । ६ ग. °रीक्षितान् । स° । ७ ग. समानीतोपधान्भृ° । ८ ग. ङ. च °र्याद्धस्तिव° । ९ ङ. तस्मादन्वेषणायत्तानध्यक्षांस्तत्रका° । १० ग °नि कृत्यानि यानि राज्ञां नृपोत्तमः । स° ।

सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः । कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप ॥८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्ति [1]तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः । नेष्यते पृथिवीशानां तीक्ष्णोपकरणक्रिया ॥८२
यस्मिन्कर्माणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् । तस्मिन्कर्मणि तं राजा परीक्ष्य [2]विनियोजयत् ॥
पितृपैतामहान्भृत्यान्सर्वकर्मसु योजयेत् ॥८३
विना दायादकृत्येषु[3] तत्र ते हि समागताः । राजा दायादकृत्येषु परीक्ष्य तु कृतान्नरान् ॥
नियुञ्जीत महाभाग[4] तस्य ते हितकारिणः ॥८४
परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनसंग्रहकाम्यया । [5]दुष्टान्वाऽप्यथवाऽदुष्टानाश्रयीत प्रयत्नतः ॥८५
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्र भूमिपः । वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया ॥८६
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद्भृशम् । ममायं देशसंप्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ॥८७
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप । न च वाऽसंविभक्तांस्तान्भृत्यान्कुर्यात्कथंचन ॥८८
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति[6] चैकतः । भृत्या मनुजशार्दूल रुषिताश्च तथैकतः ॥८९

द्वारा सिद्ध कर सकता है किन्तु सत्पुरुष लोग जिसे नहीं करते, उसे राजा को भी छोड़ देना चाहिये ।७८-८१½। राजाओं को तीखे व्यवहार एवं उग्र कर्मों को तो नहीं ही करना चाहिये क्योंकि उनसे प्रजावर्ग में असन्तोष फैलता है । जिस कार्य के करने में जो व्यक्ति विशेषता रखता है उस कार्य में राजा को चाहिये कि परीक्षा लेकर उसी को नियुक्त करे । प्रायः सभी कार्यों में उन्हीं लोगों को नियुक्त चाहिये जिनके पिता तथा पितामह उस काम को करते आये हैं पर अपने जातीय कार्यों में उन्हें नहीं रखना चाहिये क्योंकि उसमें तो परिवार के लोग ही रहते आये हैं ।८२-८३½।महाभाग ! राजा को पारिवारिक कार्यो में अपने बन्धुजनों को ही नियुक्त करना चाहिये क्योंकि वे भी उसके कल्याण करनेवाले होते हैं । अनुचरों को एकत्र करने की भावना से राजा को चाहिये कि जो अनुचर दूसरे राजा की ओर से उसके यहाँ आये हुए हैं—चाहे वे दुष्ट हों अथवा सज्जन हों—उनको प्रयत्नपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दे ।८४-८५। किन्तु उनमें से दुष्टों को परखकर उनका विश्वास न करे, पर अनुचर संग्रह की कामना से जीविका का प्रबन्ध तो उनका भी करना चाहिये । राजा को चाहिये कि दूसरे देश से अपने यहाँ आये हुए व्यक्ति की विशेष आवभगत करे और यह समझकर उसे अतिशय सम्मान दे कि यह मेरे देश में आया हुआ व्यक्ति है ।८६-८७। नराधिप ! राजा को अपने कार्यों के लिए स्वयं उद्योगी होना चाहिये, उसके लिए अनुचरों के समूह की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये । और अपने यहाँ उन अनुचरों को, जो पहिले अपने पद से पृथक् कर दिये गये हैं, कभी न नियुक्त करे । नरशार्दूल ! शत्रुगण, अग्नि, विष, सर्प तथा नंगी तलवार—ये तो एक तरफ हैं तथा क्रुद्ध अनुचर एक तरफ हैं । राजा को चाहिये कि अपने गुप्तचरों द्वारा नित्य अनुचरों के चरित्र की देखरेख करता रहे और उनमें गुणवानों

---

[1] ङ. °स्मान्नाश्रयते नृपः । [2] ख. °निवेशयेत् । पि° । [3] क. ख. °षु परीक्षां स्वकृतान्तरान् । [4] ङ. °भागांस्तस्य । [5] ग. ङ. °ष्टान्नाश्र° । [6] क. ख. °ति चिन्तयेत् । भृ° ।

तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यशः । गुणिनां पूजनं कुर्यान्निर्गुणानां च शासनम् ॥
कथिताः सततं राजन्राजानश्चारचक्षुषः ॥९०
[1]स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान्विचक्षणान् । अनाहार्यान्क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथा [2]चरान् ॥९१
जनस्याविदितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परस्परम् । वणिजो मन्त्रकुशलान्सांवत्सरचिकित्सकान् ॥
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान्राजा वियोजयेत् ॥९२
नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्चारस्यापि सुभाषितम् । द्वयोः संबन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्तदा ॥९३
परस्परस्याविदितौ यदि स्यातां च तावुभौ । तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत् ॥९४
राज्यस्य मूलमेतावद्या राज्ञश्चारदर्शिता । चाराणामपि[3] यत्नेन राज्ञा कार्यं परीक्षणम ॥९५
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् । सर्वं राज्ञां चरायत्तं तेषु यत्नपरो भवेत् ॥९६
कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते । विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ॥९७
*अनुरागकरं लोके कर्म कार्यं महीक्षिता । विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः[4] ॥९८

की पूजा तथा निर्गुणों को अनुशासित करता रहे । राजन् ! इसी कारण राजा लोग सर्वदा चारचक्षु (गुप्तचर ही जिनकी आखें हैं) कहे जाते हैं ।८८-९०। अपना देश हो या किसी दूसरे राजा का देश हो-सभी स्थानों में ज्ञानी, विवेकशील, निर्लोभी एवं दूसरे से अपने अभिप्राय को न प्रकट करनेवाले तथा कष्टसहिष्णु चरों को नियुक्त करना चाहिये । साधारण जनता जिन्हें न पहचानती हो, देखने में जो सरल दिखाई पड़ते हों, आपस में जो एक दूसरे से परिचित हों (न परिचित हों[1]) तथा वणिक, मन्त्री, ज्योतिषी, वैद्य, तथा संन्यासी के वेश में भ्रमण करनेवाले हों, ऐसे गुप्तचरों को राजा को नियुक्त करना चाहिये । राजा एक चर की बात पर, यदि वह अच्छी लगनेवाली भी हो, तब भी विश्वास न करे । उस समय उसे दो चरों की बातें तथा उनके आपसी सम्बन्ध को जानकर ही विश्वास करना चाहिये, यदि वे दोनों आपस में अपरिचित हों तब बिश्वास करना चाहिये । इसीलिये राजा को अति गुप्त रहनेवाले चरों को नियुक्त करना चाहिये ।९१-९४। उन गुप्तचरों के कार्यों पर भी राजा को देखरेख रखनीं चाहिये । राज्य में अनुचरों का अनुराग एवं वैर तथा उनके गुण और अवगुण—इन सब की देखरेख का कार्यभार राजाओं के गुप्तचरों पर ही है, अतः गुप्तचरों पर राजा का विशेष ध्यान रखना चाहिये । राजा को यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिये कि मेरे किस काम से लोग मुझमें अनुरक्त होंगे और किस काम से विरक्त हो जायँगे, ऐसा समझकर उसे विशेषकर उन कामों से बचना चाहिये जो लोगों में विरक्त के कारण हों । हे सूर्यकुलश्रेष्ठ ! राजाओं की समृद्धि

---

* नैतदर्धं विद्यते । क. ख. पुस्तकयोः ।

[1] दोनों पाठ पाये जाते हैं । अनुवादक ।

---

[1] ङ. स्वदेशपरदेशज्ञान्शान° । [2] ग. नरान् । [3] ग. °पि चारित्र्यं ज्ञातव्यं च प्रयत्नतः । रा° ।
[4] क. ख. °तः तथा चरा° ।

जनानुरागप्रभवा हि [1]लक्ष्मी राज्ञां [2]यतो भास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥९६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राज्ञां सहायसंपत्तिर्नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११२२३॥

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

यथाऽनुवर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविभिः । तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम ॥
+ज्ञात्वा सर्वात्मना कार्यं स्वशक्त्या रविनन्दन । ×राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः ॥१
आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं[3] तथा वचः ॥२

उनकी प्रजाओं के अनुराग पर निर्भर मानी गई है, इस कारण से अच्छे राजाओं को पृथ्वी पर राज्य करते हुए सभी लोगों में अपने प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहिये ।९५-९६।

श्री मात्स्य महापुराण में राजा की सहायक सम्पत्ति नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

अध्याय २१६

मत्स्य ने कहा—मनुजी ! अब मैं उस बात को तुझसे बतला रहा हूँ कि राजा के अनुचरों को उसके साथ किस प्रकार के वर्ताव रखना चाहिये । सुनो ।१। हे रविनन्दन ! इन बातों को भलीभांति समझकर अनुचरों को चाहिये कि वे भरसक उनका पालन करें । राजा जो बात कह रहा हो उसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये, बीच में उसे टोंककर अथवा उसकी बातों पर आपेक्ष करते हुए नहीं

+ एतदर्धं नास्ति क. ख. पुस्तकयोः । × एतदर्धं क. ख. पुस्तकयोरेव वर्तते ।

---

१ घ. ङ. लक्ष्मीः संजायते भा° । २ क. ख. मता । ३ ग. °व्यं कदाचन । अ° ।

अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि । रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं[1] तद्धितं भवेत् ॥३
परार्थमस्य वक्तव्यं [2]स्वस्थे चेतसि पार्थिव । स्वार्थः सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथंचन ॥४
कार्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः । न च हिंस्यं धनं किंचिन्नियुक्तेन च कर्मणि ॥५
नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत् । राज्ञश्च न तथा कार्यं[3] वेषभाषितचेष्टितम् ॥६
राजलीला न कर्तव्या [4]तद्विद्विष्टं च वर्जयेत् । राज्ञः समोऽधिको वा न कार्यो वेषो विजानता ॥७
द्यूतादिषु [5]तथैवान्यत्कौशलं तु प्रदर्शयेत् । प्रदर्श्य कौशलं चास्य राजानं तु विशेषयेत् ॥८
[6]अन्तःपुरजनाध्यक्षैर्वैरिदूतैर्निराकृतैः । संसर्गं न व्रजेद्राजन्विना पार्थिवशासनात् ॥९
निःस्नेहतां चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत् । यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत् ॥१०
नृपेण श्रावितं यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम् । न तत्संश्रावयेल्लोके यथा राज्ञोऽप्रियो[7] भवेत् ॥११
आज्ञाप्यमाने वाऽन्यस्मिन्समुत्थाय त्वरान्वितः । किमहं करवाणीति वाच्यो राजा विजानता ॥१२

बोलना चाहिये, राजसभा से अथवा जहाँ पर अन्य लोग जुटें रहते हैं, राजा के अनुकूल और प्रिय लगने वाली बातें करनी चाहिये, कल्याणकारी भी बात हो, यदि वह सुनने में अप्रिय मालूम हो तो उसे राजा जब एकान्त में रहे, तब कहे ।२-३। राजन् ! दूसरे के मतलब की बातें जिस समय राजा का चित्त स्वस्थ और प्रसन्न हो, उस समय कहें, अपने मतलब की बातें अपने मित्रों से कहलाये, स्वयमेव कभी न कहे । सभी कार्यों के करते समय यह ध्यान रखे कि उसमें किसी प्रकार की क्षति न हो और किसी कार्य में नियुक्ति होने पर धन का अपव्यय न करे । राजा के सम्मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, सर्वदा कार्य करते समय राजा की प्रसन्नता की चिंता करनी चाहिये, कभी भूलकर भी राजा से वेश-भूषा, बातचीत एवं आकार प्रकार की नकल नहीं करनी चाहिये । कभी राजा के क्रिया कलापों का अनुकरण भी नहीं करना चाहिये, अर्थात् सभी कार्यों में उसके अप्रिय विषयों को वर्जित करना चाहिये । ज्ञानवान् पुरुष को राजा के समान अथवा उससे बढ़कर अपनी वेश-भूषा नहीं बनानी चाहिये ।४-७। द्यूतक्रीडा आदि में राजा की अपेक्षा अपने हस्तकौशल आदि का प्रदर्शन करे और उसी प्रसंग में अपनी-अपनी विशेषता प्रकट करे । हे राजन् ! बिना राजा की अनुमति से अन्तःपुर के अध्यक्षों, शत्रुओं के दूतों तथा निकाले हुए अनुचरों के साथ न जाय । अपने प्रति राजा को स्नेहहीनता तथा अपमान के भाव — इन दोनों को प्रयत्नपूर्वक लोगों से छिपावे और राजा की गोपनीय बातें सर्व साधारण के सम्मुख न प्रकाशित करे ।८-१०। हे नृपोत्तम ! जो बात — चाहे वह सर्वसाधारण से कहने योग्य हो अथवा अयोग्य हो — राजा ही से कहनी हो उसे कभी भूलकर भी अन्य लोगों से न बतलावे, ऐसा करने से राजा अप्रसन्न होता है । बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि जिस समय राजा दूसरे व्यक्ति से किसी काम के लिए कह रहा हो, उस समय जल्दी से स्वयमेव उठकर राजा के कहे कि

---

[1] क. ख. °यं यद्धि° । [2] क. ख. समे । [3] ङ. च. °र्यं गतिभा° । [4] ग. ङ. तद्वेषं च विव° ।
[5] ग. °शल्यं तु । [6] ग. °रिभूतैः समागतैः । [7] ग. घ. ङ. राज्ञः प्रिय° ।

कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत् । सततं क्रियमाणेऽस्मिँल्लाघवं तु व्रजेद्ध्रुवम् ॥१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि न चात्यर्थं पुनः पुनः । न हास्यशीलस्तु भवेन्न चापि भृकुटीमुखः ॥१४
नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा । आत्मसंभावितश्चैव न भवेत्तु कथंचन ॥१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु संकीर्तयेत्क्वचित् । वस्त्रमस्त्रमलंकारं राजा दत्तं तु धारयेत् ॥१६
औदार्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता[1] । नचैवात्यशनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत् ॥१७
नानिर्दिष्टे तथा द्वारे प्रविशेत्तु कथंचन । न च पश्येत्तु राजानामयोग्यासु च भूमिषु ॥१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा । पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनं तु विगर्हितम् ॥१९
जृम्भां निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम् । भृकुटिं वान्तमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत् ॥२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः । स्वगुणाख्यापने युक्त्या परमेव प्रयोजयेत् ॥२१
हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः । अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः ॥२२

"मेरे लिए क्या आज्ञा है, मैं क्या करूँ ?" पर ऐसी बात कार्य की अवस्था देखकर ही करनी चाहिये, बराबर ऐसा कहते रहने से निश्चय ही राजा की दृष्टि में वह हेय हो जाता है। जो बातें राजा को प्रिय लगती हों, उन्हें उसके सामने बारम्बार नहीं कहते रहना चाहिये, न तो उसके सामने अधिक हँसना ही चाहिये और न कभी भृकुटी हीताननी चाहिये ।११-१४। न बहुत बोलते रहना चाहिये न अति गम्भीरता दिखाते हुए मौन ही रहना चाहिये, लापरवाही भी नहीं दिखानी चाहिये और न कभी आत्मसम्मानी होने का भाव ही प्रदर्शित करना चाहिये । राजा के दुष्कर्मों की चर्चा भूलकर भी नहीं करनी चाहिये ।१५½। राजा जिन वस्त्रों, अलंकारों को समर्पित करे उन्हें बरागर धारण किये रहे, कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिये कि उन वस्त्रादि सामग्रियों को कभी भी उदारतावश किसी दूसरे को न दे डाले। राजा के सम्मुख कभी यदि भोजन करने का अवसर लगे तो अधिक नहीं करना चाहिये न तो उसके सम्मुख कभी दिन में शयन ही करना चाहिये ।१६-१७। कभी उस द्वार से राजभवन में प्रवेश नहीं करना चाहिये, जिससे प्रवेश करने का निर्देश नहीं किया गया है और न कभी अयोग्य स्थान पर स्थित राजा से साक्षात्कार ही करना चाहिये। राजा की दाहिनी बगल अथवा बाईं बगल—जहाँ उपयुक्त हो—बैठना चाहिये, उसके सम्मुख या पीछे की ओर बैठना निषिद्ध माना गया है। जंगाई लेना, थूकना, खखारना, खाँसना, क्रोधितहोना, आसन पर तकिया लगाकर बैठना, ऊठँगकर रहना, भृकुटी चढ़ाना, कै करना या उद्गार निकालना—इन सब कार्यों कों राजा के समीप वर्जित रखना चाहिये ।१८-२०। बुद्धिमान् पुरुष भूलकर भी राजा के सम्मुख अपने गुणों की प्रशंसा न करे, उसे यदि यह करना ही है तो युक्तिबल से दूसरों के द्वारा राजा के कानों में अपने गुणों की चर्चा डाले। सर्वदा हृदय को निर्मल रखनेवाले, परम भक्तिमान् निरालस अनुचरों द्वारा

---

[1] क. °ता । ख. तच्चैवात्मासनं ।

शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा । चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ॥२३
[1]श्रुतेन [2]विद्याशीलैश्च संयोज्याऽऽत्मानमात्मना । राजसेवां ततः कुर्याद्भूतये भूतिवर्धनीम् ॥२४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः । सचिवैश्चास्य विश्वासो न तु कार्यः कथंचन ॥२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात्कामं ब्रूयात्तथा यदि । हितं तथ्यं च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम् ॥२६
चित्तं चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना । भर्तुराराधनं कुर्याच्चित्तज्ञो मानवः सुखम् ॥२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता । त्यजेद्विरक्तं[3] नृपतिं [4]रक्ताद्वृत्तिं तु कारयेत् ॥२८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा । आशावर्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥२९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्कलः । वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ॥३०
*[5]प्रदेशवाक्यमुदितो न[6] च संभावयेत्तथा । आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ॥३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च । लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसंकीर्तनेऽपि च ॥३२

राजा को अपना काम चलाना चाहिये । राजाओं के अनुचरों को सर्वदा दुष्टता, लोभ, छल, नास्तिकता, क्षुद्रता तथा चंचलता आदि दुर्गुणों से दूर रहना चाहिये । उनके अनुचरों को सर्वदा विद्या एवं सुजनता द्वारा आत्मसंयमपूर्वक मंगल कामना से राजा की कल्याण करनेवाली सेवा करनी चाहिये ।२१-२४। राजा के पुत्र, उसके प्रिय परिजन तथा मंत्रिवर्ग को मिलने पर नमस्कार करना चाहिये किन्तु उसके मंत्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये । विना पूछे किसी भी बात को राजा से न कहे यदि कहे तो ऐसी बात हो जो राजा के हित करने वाले मनुष्यों से निश्चित कर ली गयी हो और वास्तव में सत्य तथा हित करनेवाली भी हो । राजा के अनुचरों को नित्य ही उसकी वास्तविक मनोदशा का पता लगा लेना चाहिये । मनोभावों को परखनेवाला अनुचर अपने स्वामी की सुखपुर्वक सेवा कर सकता है । अपने कल्याण की कामना करनेवाले अनुचर को अपने ऊपर राजा के अनुराग एवं क्रोध—दोनों का पता लगाते रहना चाहिये । और इस प्रकार जानकर विरक्त राजा की सेवा नहीं करनी चाहिये तथा अनुरक्त की सेवा में तत्पर रहना चाहिये ।२५-२८। क्योंकि विरक्त जो राजा है वह अपना नाश कर विपक्षियों को उन्नत बनाता है, अपने को आशा देकर भी परिणाम का विनाश करता है । विना क्रोधका अवसर आने पर भी वह क्रुद्ध की भाँति दिखाई पड़ता है तथा प्रसन्न होकर भी कुछ फल नहीं देता । जब कभी बातें करता है तो मद भरी हुई । इस प्रकार जीविका का उच्छेद भी कर देता । प्रदेश की बातों से प्रसन्न होकर भी वह पूर्ववत् सम्मान नहीं देता और सभी सेवाओं को करते समय उपेक्षा का भाव दिखाता है । कोई बात छिड़ने पर बीच में आक्षेप करता है तथा मध्य में ही भंग कर देता है, गुणों का कीर्तन करने पर भी विमुख होकर देखता है ।२९-३२। काम के

---

* इत आरभ्य करोति चेदयन्तग्रन्थो ग. ङ. पुस्तकतोर्नास्ति ।

---

[1] क. ख. श्रुतिविद्यसुशी॰ । [2] ङ. च. द्याशिल्पैश्च । [3] क. °रक्तो नृपती रक्तो वृ° । [4] ग. रक्ते व° । [5] घ. प्रवेश° । [6] क. ख. न सम्भावयतेऽन्यथा । आ° ।

दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि । विरक्तलक्षणं चैतच्छृणु रक्तस्य लक्षणम् ॥३३
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चाऽऽदरात् । कुशलादिपरिप्रश्नं [1]संप्रयच्छति चाऽऽसनम् ॥३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते । जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ॥३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते । उपायनं च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ॥३६
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा । इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ॥
आपत्सु न त्यजेत्पूर्वं विरक्तमपि सेवितम् ॥३७

मित्रं न चाऽऽपत्सु तथा च [2]भृत्यं त्यजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मेऽनुजीविवर्तनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ॥११३६१॥

करते समय अपनी आँखे दूसरी ओर किये रहता है—उपर्युक्त लक्षण विरक्त राजा के हैं । अब अनुरक्त राजा के लक्षण सुनो । अनुरक्त राजा भृत्य को देखकर प्रसन्न होता है, कही जानेवाली बात को आदरपूर्वक ग्रहण करता है और कुशल वार्ता पूछकर आसन देता है । एकान्त में अथवा निर्जन (अन्तःपुर) प्रदेश में भी उसे देखकर कभी सशंकित नहीं होता और वहाँ भी उसकी बातें सुनकर प्रसन्नमुख होता है ।३३-३५। उसकी अप्रिय बातों का भी अभिनन्दन करता है, और थोड़ी सी भी भेंट आदरपूर्वक स्वीकार करता है, दूसरी कथा के प्रसंग पर भी उसका स्मरण करता है और सर्वदा उसे देखकर प्रसन्नमुख रहता है । हे सूर्य कुलोत्पन्न ! ये उपर्युक्त लक्षण अनुरक्त राजा के हैं, ऐसे राजा की सेवा करनी चाहिये । किन्तु विरक्त भी राजा आपत्तिकाल में पड़ गया हो तो सेवक को चाहिये कि पूर्वकाल की सेवा करने के नाते उस आपत्ति में उसका साथ न छोड़े । जो मनुष्य अपने अति निर्गुण भी मित्र, भृत्य तथा स्वामी को विशेषकर आपत्ति के अवसर पर नहीं छोड़ते वे देवताओं के समूहों द्वारा सेवित देवराज इन्द्र के धाम को जाते हैं ।३६-३८।

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रसंग में भृत्य व्यवहार नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१६॥

---

[1] ग. प्रदापयति । [2] क. ख. भृत्या भज° ।

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् । रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत् ॥१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथा परैः । किंचिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरं तथा ॥२
अदेवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् । करैरपीडितं चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥३
अगम्यं [1]परचक्राणां तद्वासगृहमापदि । समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥४
सरीसृपविहीनं च व्याघ्रतस्करवर्जितम् । एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात्षण्णामेकतमं बुधः । धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव । सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥७

अध्याय २१७

मत्स्य ने कहा—अपने अंगरक्षकों तथा सहायकों समेत राजा अपने राज्य के मध्य में, उस प्रदेश में निवास करे, जहाँ प्रचुर मात्रा में घास तथा इन्धन विद्यमान हो, रमणीय हो, जहाँ पर सामन्तगण विनम्र भाव से एकत्र रहते हों, वैश्य तथा शूद्र जन भी हों तथा जिस स्थान को शत्रुगण छीन न सकें। वहाँ कुछ ब्राह्मणगण निवास करते हों, कार्य करनेवाले लोग भी अधिक संख्या में मिलें ।१-२। [1]अदेवमातृक हो, जहाँ के निवासी अति अनुरक्त हों, कर के भार से जहाँ लोग पीड़ित न हों, पुष्पों तथा फलों की उत्पत्ति जहाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हो। शत्रुओं की सेना जहाँ पहुँच न सके—ऐसे स्थान पर राजा को आपत्तिकाल में निवास करना चाहिये। दुःख तथा सुख में समान रूप से सहायता पहुँचानेवाले प्रिय अनुचर गण जहाँ पर सर्वदा राजा की सेवा के लिए समुपस्थित रहते हों ।३-४। साँप आदि जन्तु, बाघ, सिंह आदि हिंसक पशु तथा चोर जहाँ न हों, ऐसे स्थान में राजा जिस प्रकार प्राप्त कर सके, आवासस्थान निश्चित करे। ऐसे उपर्युक्त साधनों से युक्त उत्तम स्थान को चुनकर बुद्धिमान् राजा नीचे लिखे गये छः दुर्गों में से किसी एक की रचना करे। धनुर्दुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग तथा गिरि दुर्ग, । हे राजन् ! ये छः दुर्ग बताये गये हैं किन्तु इन छहों दुर्गों में गिरिदुर्ग सबसे अच्छा माना गया है ।५-७। वह गिरिदुर्ग परिखा, खाईं तथा ऊँची अट्टालिकाओं से युक्त रहे।

---

[1] वृष्टि के जल से उत्पन्न होनेवाले अन्नों द्वारा जिस देश के लोगों का जीवन निर्वाह होता हो उसे देवमातृक कहते हैं. उससे भिन्न प्रकार।

---

[1] ङ, च. °क्राणामाराध्यं सहसा प°।

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् । शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ॥८
गोपुरं सकपाटं च तत्र स्यात्सुमनोहरम् । सपताकं गजारूढो येन राजा विशेत्पुरम् ॥९
चतस्रश्च तथा तत्र [1]कार्यास्त्वायतवीथयः[2] । एकस्मिस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद्दृढम् ॥१०
वीथ्यग्रे च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते । धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ॥११
चतुर्थे त्वथ वीथ्यग्रे गोपुरं च विधीयते । आयतं चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम्[3] ॥१२
[4]मुक्तिहीनं त्रिकोणं च यवमध्यं तथैव च । अर्धचन्द्रप्रकारं च वज्राकारं च कारयेत् ॥१३
अर्धचन्द्रं प्रशंसन्ति नदीतीरेषु [5]तद्वसन् । अन्यत्र[6] तन्न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ॥१४
राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः । तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ॥१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाऽप्युदङ्मुखी । आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ॥१६
महानसं च धर्मज्ञ कर्मशालास्तथा पराः । गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ॥१७
मन्त्रिवेदविदां चैव चिकित्साकर्तुरेव च । तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥१८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च । [7]उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते[8] ॥१९

उसके चारो ओर सैकड़ों तोपें रखी गयी हों । उस दुर्ग में एक कपाट के समेत अति मनोहर प्रवेश द्वार हो जिसमें से हाथी पर वैठा हुआ राजा अपनी पताका के समेत दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हो सके ।८-९। उस पुर में खूब चौड़ी चार बीथियाँ बनवाये, जिनमें से एक बीथी के अग्रभाग में किसी देवता क सुदृढ़ मन्दिर हो, दूसरी वीथी के अग्रभाग में राजा का निवासस्थान हो, तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्माधिकारी का अवासस्थान हो, चौथी वीथी के अग्रभाग में दुर्ग का मुख्य प्रवेशद्वार हो । उस दुर्ग को चौकोना आयताकार अथवा वृत्ताकार बनवाना चाहिये ।१०-१२। अथवा मुक्तिहीन (?) त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकार तथा वज्राकार बनवाये । अर्धचन्द्राकार दुर्ग की नदी के मिनारे बनवाने में ही प्रशंसा की गयी है, दूसरे स्थानों पर विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक उसे बनवाना चाहिये । राजभवन के दक्षिण भाग में राजा कोशगृह का निर्माण कराये और उसके दाहिने भाग में गजशाला निर्मित कराये । गजों की शाला पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होनी चाहिये । राजभवन के अग्निकोण में आयुधागार बनवाना चाहिये ।१३-१६। हे धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले ! उसी कोने पर रसोईं घर तथा अन्य कर्मशालाओं की भी रचना करानी चाहिये । राजभवन की बाईं ओर पुरोहित का भवन बनवाना चाहिये । उसी स्थल पर मंत्रियों, वेदज्ञों तथा वैद्यों का भी निवासस्थान हो । और वहीं कोषागार की भी रचना हो । उसी स्थान के समीप गौओं तथा अश्वों के निवास की भी व्यवस्था हो !

---

[1] च. °र्यास्तत्रोपवी° । [2] ग. °रत्यपणवी° । [3] ग. °येद्गृहम् । [4] ङ च शुक्तिहीनं । [5] ख. ङ. °द्वशात् । अ । [6] क. ख °त्यतत्र न क° । [7] ग. °मुवी श्रे° । [8] घ. ङ च °ते । प्राङ्मुखा वाऽपि धर्मज्ञ प° ।

दक्षिणाभिमुखा वाऽथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः । तुरगास्ते तथा [1]धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः ॥२०
कुक्कुटान्वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः । धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च ॥२१
अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा । गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः ॥२२
अस्तं गते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे । तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन् ॥२३
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः । योधानां शिल्पिनां चैव सर्वेषामविशेषतः ॥२४
दद्यादावसथान्दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान् । गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैव च ॥२५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः । कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ॥२६
न बहूनामतो दुर्गे विना कार्यं तथा भवेत् । [2]दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ॥२७
सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते । दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ॥२८
संचयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते । धनुषां क्षेपणीयानां तोमराणां च पार्थिव ॥२९
शराणामथ खड्गानां कवचानां तथैव च । लगुडानां गुडानां च हुडानां परिघैः सह ॥३०

अश्वों की पंक्ति उत्तराभिमुख करनी चाहिये, अथवा दक्षिणाभिमुख भी हो सकती है, किन्तु अन्य दिशाओं में तो वर्जित ही रहे । अश्वों का जहाँ निवास हो वहाँ रात भर तक दीपक का प्रकाश रहे ।१७-२०। मुर्गे बन्दर अथवा विशेषकर मर्कटों को घुड़साल में अवश्य बाँधना चाहिये तथा बछड़े सहित गौ भी बाँधी जाय । अश्वों का कल्याण चाहनेवालों को चाहिये कि अश्वों की शाला में प्रयत्नपूर्वक बकरियों को भी रखें । गौ, हाथी, अश्वादि की शालाओं में के उनके गोबर, लीद आदि के निकालने की भी व्यवस्था देवाधिदेव भगवान् भास्कर के अस्त हो जाने पर न की जाय ।२१-२२½। उन-उन स्थानो में उन-उन पशुओं के सारथियों को भी राजा स्थान देकर क्रमशः टिकाने की व्यवस्था करा दे तथा योद्धा, शिल्पी और समय-समय पर उपयुक्त सम्मति देनेवालों को तो सभी लोगों से बढ़कर सुविधा देकर राजा को टिकाना चाहिये । उसी प्रकार कल्याण करनेवाले गौ, अश्व तथा हाथी के रोगों तथा ओषधियों के विशेषज्ञ वैद्यों को राजा अधिक संख्या में अपने दुर्ग में आश्रय दे । क्योंकि दुर्ग में रोगों की प्रबलता रहती है । स्तुति पाठ करनेवाले चारणों तथा ब्राह्मणों की भी दुर्ग में रहने की व्यवस्था हो ।२३-२६। इनके अतिरिक्त विना कार्य के किसी भी व्यक्ति को दुर्ग में रहने का स्थान नहीं देना चाहिये । उस दुर्ग में विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र सर्वदा प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत रखने चाहिये । सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह की दुर्ग में विशेष प्रशंसा की गयी है । हे राजन् ! धनुष, बाण, क्षेपणीय, तोमर, तलवार, लाठी, गुड[1], हुड[2], परिघ, पत्थर, मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास (भाला), शूल, शक्ति,

---

१ हाथी को फँसाने का एक फन्दा । २ चोरों को रोकने के लिए पृथ्वी में गाड़ा जानेवाला लोहे का बना हुआ एक प्रकार का खूँटा ।

---

१ ङ. च. कार्याः । २ ङ. त. °र्गे परव ।

अश्मनां च प्रभूतानां मुद्गराणां तथैव च । त्रिशूलानां पट्टिशानां [1]कुठाराणां च पार्थिव ॥३१
प्रासानां च सशूलानां शक्तीनां च नरोत्तम । परश्वधानां चक्राणां वर्मणां चर्मभिः सह ॥३२
कुद्दालरज्जुवेत्राणां पीठकानां[2] तथैव च । तुषाणां चैव दात्राणामङ्गाराणां च संचयः ॥३३
सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते । वादित्राणां च सर्वेषामोषधीनां तथैव च ॥३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च संचयः । गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानां तथैव च ॥३५
वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह । गोचर्मपटहानां च धान्यानां सर्वतस्तथा ॥३६
[3]तथैवाभ्रपटानां[4] च यवगोधूमयोरपि । रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः ॥३७
कलायमुद्गमाषाणां चणकानां तिलैः सह । तथा च सर्वसस्यानां पांसुगोमययोरपि ॥३८
शणसर्जरसं भूर्जं जतु लाक्षा च टङ्कणम् । राजा संचिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किंचन ॥३९
कुम्भाश्चाऽऽशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा । मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ॥४०
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक् । कर्तव्यानि महाभाग यत्नेन पृथिवीक्षिता ॥४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः । सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ॥४२

परश्वध, चक्र आदि शस्त्रास्त्र एवं कवच, चर्म (ढाल), कुदाल, रस्सी, बेंत, पीठक, देष (भूसा), दात्र, अंगार (कोयला) इन सबों का भी संचय रहना चाहिये । इस दुर्ग में सभी प्रकार में शिल्पियों के पात्रों का भी संचय रहना चाहिये, उसी प्रकार सभी प्रकार के बाजनों तथा औषधियों का भी संचय करना आवश्यक है ।२७-३४। प्रचुर मात्रा में घास तथा ईंधन का भी संचय रहना चाहिये । गुड़ सभी प्रकार के तेल तथा गोरस का भी संचय हो । वसा, मज्जा, हड्डियाँ तथा स्नायु भाग के भी संचय रहें । गोचर्म, नगाड़े तथा सभी प्रकार के अन्नों का भी वहाँ संचय रखना चाहिये । उसी प्रकार तम्बुओं का भी संग्रह रखना चाहिये । जव और गेहूँ, रत्न, सभी प्रकार के वस्त्र तथा सभी प्रकार के लौह का संचय करना चाहिये ।३५-३७। कलाथ, मूंग, उड़द चना, तिल तथा अन्यान्य प्रकार के अन्न, धूल, गोबर' सन, भोजपत्र, जस्ता, लाह, टांकी (पत्थर तोड़ने की टांकी) आदि का भी राजा अपने दुर्ग में संचय करे तथा अन्यान्य उपयोगी सामग्रियों को भी प्रचुरमात्रा में रखे । सर्पों के विषों से भरे हुए घड़े तथा वाघ और सिंह आदि हिंसक जन्तु भी दुर्ग में रखने चाहिये। सभी प्रकार के मृग तथा पक्षी भी रखे जाने चाहिये, पर यह ध्यान रहे कि उनमें एक दूसरे की किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकें ।३८-४०। अतः विरोधियों को एक दूसरे से पृथक तथा गोपलीय रखे । महाराज ! राजा को यत्नपूर्वक इसकी व्यवस्था करनी चाहिये ।४१। प्रजा जन की कल्याण भावना से राजा को अपने दुर्ग में उपयक्त तथा अन्यान्य उपयोगी वस्तुओं का संग्रह गुप्त रूप में अवश्य करना चाहिये ।४२। जीवक, ऋषिभक,

---

१ ग. घ. ङ. °यन्त्राः । २ घ. कणपानां । ३ ग. °थैव पटहानां । ४ घ. ङः °पट्टिकानां ।

जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूषकान् । शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ॥४३
माषपर्णी च [1]मेदे द्वे शारिवे द्वे बलात्रयम् । [2]वीरा श्वसन्ती वृष्या च बृहती कण्टकारिका ॥४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भरेणका । मधुपर्णी विदार्ये द्वे [3]महाक्षीरा महातपाः ॥४५
[4]धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं विषः । पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गुखर्जूरयष्टिकाः ॥४६
शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यश्छत्रातिच्छत्रवीरणाः । इक्षुरिक्षुविकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ॥४७
सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम् । मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ॥४८
शतावरीमधूके च पिप्पलं[5] तालमेव च । आत्मगुप्ता कट्फलाख्या दार्विका [6]राजशीर्षकी[7] ॥४९
राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा । कालशाकं पद्मबीजं गोवल्ली मधुवल्लिका[8] ॥५०
शीतपाकी कुलिङ्गाक्षी [9]काकजिह्वोरुपुष्पिका[10] । पर्वतत्रपुसौ चोभौ[11] गुञ्जातकपुनर्नवे ॥५१
कसेरुका तु काश्मीरी बिल्वशालूककेसरम्[12] । शूकधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ॥५२
क्षीरं क्षौद्रं तथा तक्रं[13] तैलं मज्जा वसाघृतम्[14] । नीपश्चारिष्टकक्षोडवाताम्रसोमबाणकम् ॥५३
एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरो गणः । राजा संचिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥५४

काकोली, इमली, अड़ूसा, शालपर्णी, भृङ्गपर्णी, माषपर्णी, दोनों प्रकार के शारिवा, तीनों बलाएँ (एक ओषधि) श्वसन्ती, वृष्या, वृहती, कण्टकारिका, शृंगी, शृंगाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, कुश, रेणुका, मधुपर्णी, दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी, कटुक, रेड़, विष, शतपर्णी, मृद्वीका, फल्गु, खजूर, यष्टिका, शुक्र, अतिशुक्र, काश्मरी, क्षत्र, अति क्षत्र, वीरण, ईख और ईख से होनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ, फाणितादि, सिंही, सहदेवी, विश्वेदेव, अश्वरोधक, महुआ, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, मधूक, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्त, कटफल, दार्विका, राजशीर्षकी, श्वेत सरसों, धनिया ऋष्यप्रोक्त, उत्कटा, कालशाक, पङ्कबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुलिंगाक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पिका, दोनों पर्वत और त्रपुष, गुंजातक, पुनर्नवा, कसेरुका, काश्मीरी, विल्व, शालूक, केसर सभी प्रकार की भूसियाँ, शमी तथा अन्न इन सब को दुर्ग में एकत्र करे ।४३-५२। दुग्ध, शहद, मट्ठा, तैल, घी, नीप (कदम्ब) अरिष्टिक, अक्षोट, वाताम्र, सोम और बाणक ये मधुर पदार्थों के समूह हैं— इन सब को राजा को चाहिये कि अपने दुर्ग में अवश्य संचित करे ।५३-५४। अनार, आम्रातक, तितिड़ी

---

[1] ङ. च. मेदा च महामेदाफलत्र° । [2] क. ख. वारा । [3] ग. °हाद्राक्षा म° । घ. ङ. °हाक्षुद्रा म° । [4] ग. °न्त्रला सहदेव्या ह्वा । ङ. च. °न्वनास° । [5] ग. ङ. च. प्रियालं । [6] ङ. °जसारका । रा° । [7] ग. °र्शाषिका । [8] ग. °धुयष्टिका । [9] ग. ङ °रुपत्रिका । उर्वारुत्र° । [10] च. °का । कशेरुत्र° । [11] ङ. °भौ मुञ्जातकपुनर्भवौ । कालेरकं तु काश्मीरा विश्वासेनुकके° । [12] क. ख. °म् । तुषधा° । [13] ग. घ. ङ. शुक्रं । [14] घ. °म् । निष्कोचाभिष्णुकं क्षोडा वाता मांसोरुशाण° ।

दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिडीकाम्लवेतसम् । भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्दकरूषकम् ॥५५
[१]बीजपूरककण्डूरे मालती राजबन्धुकम् । [२]कोलकद्वयपर्णानि [३]द्वयोराम्रातयोरपि ॥५६
पारावतं नागरकं प्राचीनारुकमेव च । कपित्थामलकं[४] चुक्रफलं दन्तशठस्य च ॥५७
जाम्बवं नवनीतं च सौवीरकरुषोदके । सुरासवं च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमाम्लगणं द्विज । एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात्पुरे ॥५९
सैन्धवोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम्[५] । कुप्यसौवर्चलाबिल्वं[६] बालकेयं यवाह्वकम् ॥६०
और्वं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गणः । एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात्पुरे ॥६१
पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् । [७]कुबेरकं च मरिकं[८] शिग्रुभल्लातसर्षपाः[९] ॥६२
कुष्ठाजमोदा किणिही हिङ्गुमूलकधान्यकम् । कारवी कुञ्चिका [१०]याज्या सुमुखा कलमालिका ॥६३
फणिज्झकोऽथ लशुनं भूस्तृणं सुरसं तथा । कायस्था च वयःस्था च हरितालं मनःशिला ॥६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमं तथा । जया[११] एरण्डकाण्डीरं शल्लकी हञ्जिका तथा ॥६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायो हरितकानि च । *संगतानि च मूलानि यटिश्चातिविषाणि च ॥
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका[१२] ॥६६

(इमली) अम्लवेतस, सुन्दर बैर, लकुच, करमर्द, करूषक, बिजौरा, कण्डूर, मालती, राजबन्धूक, कोलकद्वय के पत्ते, भाम्म्रातद्वय के पत्ते, पारावत, नागरक, प्राचीन अरुक, कैथा, इमली, चुक्रफल, दन्तशठ, जामुन, नवनीत, सैवीरक, रुषोदक, सुरा, आसव अन्य प्रकार सभी के मद्य, माँड, मट्ठा दही, एवं सभी प्रकार के जितने भी ऐसे शुक्ल (सफेद) पदार्थ प्राप्त हो सकें वे सब अम्ल वस्तुएँ हैं, इन सब को तथा अन्यान्य अम्ल वस्तुओं को भी राजा अपने पुर में संचित करे।५५-५९। सैन्धव, उद्‌भिद्, पाठेय पाक्य, सामुद्र, लोमक, कूप्य, सौवर्चल, विल्व, वालकेय, यव, और्व, क्षार, कालभस्म,—ये लवण के सभी भेदोपभेद हैं, इन सब को तथा अन्यान्य लवण जो उपलब्ध हो सकें, दुर्ग में संचित करे।६०-६१। पीपर, पीपर का मूल (पिपरामूल) चव्य, चीता, सोंठ, कुवेटक, मिरच, सहजना, भिलावा, सिरसम, कूट, अजमोदा, ओंगा, हींग, मूली, धनियाँ, सौंफ, अजवाइन, मँजीठ, जवीर, लहसुन, माला के आकारवाला जलीयतृण, हरड़, हरताल, मैनसिल, गिलोय, रुदंती, रोहिष, तृण, केशर. अरणी, रेड़ी, सेल्लकी, भारंगी, सम्पूर्ण हर्रेफिल, छोटी इलायची, तेजपात इत्यादि वस्तुएँ कटु

---

* एतदर्धं न विद्यते क. ख. घ. पुस्तकेषु ।

---

१ ग. °ककाण्डीरमा° । ङ. कजम्बीरमा° । २ ग. कोटक° । ३ घ. °राम्लकयां° । ४ घ. कं बुक्काफ° । ५ ङ. °यद्राक्षा सा° । ६ क. ख. °र्चलबिडंबा° । ७ ग. घ. कुठेरकं । ८ ग. च. मरिचं । ९ घ. °पाः । कृष्णाज° । ङ. पाः । शुष्ठ्याज° । १० ङ. °याश्वासु° । ११ ङ. जपा । १२ ङ. च. °ङ्गु यावकम् । ए° ।

एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः । राजा संचिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ॥६७
मुस्तं चन्दनह्रीबेरकृतमालकदारवः[1] । हरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम्[2] ॥६८
दूर्वा पटोलकटुका दन्तीत्वक्पत्रकं त्वचा । +किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥६९
तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः । काकोदुम्बरिका दिव्यास्तथा चैव सुरोद्भवा ॥७०
षड्ग्रन्था[3] रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका । रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतङ्गी परिपेलवम् ॥७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली । तुषपर्णी[4] व्याघ्रनखं मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ॥७२
×रम्भा [5]चैवाङ्कुरास्फोता तालास्फोता हरेणुका । वेत्राग्रवेतसस्तुम्बी विषाणी [6]लोध्रपुष्पिणी ॥७३
[7]मालतीकरकृष्णाख्या वृश्चिका जीविता तथा । पर्णिका च गुडूची च स गणस्तिक्तसंज्ञकः ॥७४
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात्पुरे । अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम् ॥७५
प्रियङ्गुधातकीपुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः । अनन्ता स्त्री [8]तुवरिका श्योणाकं कट्फलं तथा ॥७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं [9]पाटलापत्रलोमकम् । [10]समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥७७
विद्रुमं समधूच्छिष्टं कुम्भिका कुमुदोत्पलम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुकाः शिंशपा शमी[11] ॥७८

औषधियों के समूह में मानी गई हैं, इन्हें राजा प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में रखे ।६२-६७। नागरमोथा, चन्दन, ह्लीबेर, कृतहारक, दारुहल्दी, हल्दी, नलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्बा, परवल, तेजपात, बच, चिरायता, भूतुम्बी, पिषा, अतीस, तालीसपत्र, तगर, सातला, खैर, काली गूलर, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्थी, रोहणी, जटामासी, पर्पंठ, दन्ती, रसांजन, भँगरा, पतंग, परिपेलव, दुःस्पर्शा, अगुरुद्वय, कामा, श्यामाकु, गंधनाकुली, रूपपर्णी, व्याघ्रनख, मंजीठ, चतुरंगुला केला, अंकुरास्फोता, तालास्फोता, रेणुकबीज, बेत का अग्रभाग, बेत, तुबीं, कँकरासींगी, लोध्रपुष्पा, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका जीवितपर्णिका तथा गुडुच—ये तिक्त ओषधियों के समूह हैं। इन सब को राजा अपने दुर्ग में संचित रखे ।६८-७४½। हर्रे, बहेड़ा, आँवला, माल काँगुन, धायके फूल, मोचरस, अर्जून, असन, अनन्ता, कामिनी, तुवरिका, श्योपाक, कायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटल वृक्ष, लोहवाम, मंजीठ, निशोथ, समंगा, त्रिवृत्ता, मूल, कपास, गेरु, अंजन, विद्रुम, शहद, जलकुम्भी कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पलाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलु,

---

+एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—कैतकानि च युग्मानि यष्टराणि विषाणि च, इति । ×एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके –रास्ना चैवाङ्कुशा भेत्तारस्येताहररेणुकेति ।

---

१ ङ. °कसारणम् । ह° । २ ग. °कबन्धुक° । ३ ग. षड्गन्धां । ४ क. ख. रूषपर्णी । ५ ग. चैव कुसुम्भासा तारास्याजाह° । ६ ङ. च. लोहमञ्जरी । ७ ङ. °रतिक्ताख्या । ८ ङ. पुनर्नाना । ९ ग. लोष्टकं । १० ग. काक्षतम् । वि° । ११ ग. ङ. °भी । पिप्पली पी° ।

प्रियालपीलुकासारीशिरीषाः पद्मकं तथा। बिल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षश्च श्यामाकं च बको घनम् ॥७९
राजादनं करीरं च धान्यकं प्रियकस्तथा। कङ्कोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम् ॥८०
एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानि च। एवमादीनि चान्यानि कषायाख्यो गणो मतः ॥८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ राजा संचिनुयात्पुरे। *कीटाश्च[1] मारणे योग्या व्यङ्गतायां[2] तथैव च ॥८२
[3]तातधूमाम्बुमार्गाणां दूषणानि तथैव च। धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव ॥८३
विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा। [4]विचित्राश्चागदा[5] धार्या विषस्य शमनास्तथा ॥८४
रक्षोभूतपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः। कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः ॥८५
भीतान्प्रमत्तान्कुपितांस्तथैव च विमानितान्। कुभृत्यान्पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे ॥८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्यौषधिसंप्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्चाऽऽवृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपतिः सदैव ॥८७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राज्ञामोषध्यादिसंचयकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१७॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥११४४८॥

कासारि, शिरीष, (सिरसा) पद्म (पद्माख), बेल, अरणी, प्लक्ष, श्मामाक, बक, घन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदंब दोनों प्रकार के खैर—इन वृक्षों के पत्ते, सार भाग (सत्त्व), मूल तथा पुष्प काषाय माने गये हैं, हे राजाओं में श्रेष्ठ ! राजा को इन काषाय औषधियों को तथा अन्यान्य काषाय औषधियों को भी प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में संचित करना चाहिये ।७५-८१½। मारने और घायल करनेवाले कीट पतंग आदि जो शत्रु पक्ष को हानि पहुँचा सकें, वायु, धूम जल तथा मार्ग में विविध प्रकार की अवरोध पहुँचानेवाली औषधियाँ, जिन्हें आगे बतलाऊँगा, राजा को अपने दुर्ग में संचित रखनी चाहिये। राजा को प्रयत्नपूर्वक सभी विषों का संचय भी दुर्ग में करना चाहिये ।८२-८३½। विष के प्रभाव को शान्त करनेवाले रोगनाशक, राक्षस, भूत तथा पिशाचों के प्रभाव को नष्ट करनेवाले, पापनाशक तथा पुष्टिकारक पदार्थ भी उसे रखने चाहिये। उसी प्रकार चौसठों कला के विशेषज्ञ पुरुषों को भी प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में वह रखे। अपने उस दुर्ग में राजा को चाहिये कि दुष्ट प्रकृतिवाले डरकर भगे हुए, उन्मत्त, क्रुद्ध, अपमानित तथा पापी अनुचरों को भूलकर भी आश्रय न दे। सभी प्रकार के यन्त्र, अस्त्र तथा अट्टालिकाओं से सुसंयुक्त, विविध प्रकार के अन्न तथा द्रव्यादि से सुसम्पन्न एवं वाणिज्य व्यवसाय में सुनिपुण व्यक्तियों के साथ अपने अति गुप्त दुर्ग में राजा सर्वदा निवास करे ।८४-८७।

श्रीमात्स्यमहापुराण के राजा के दुर्ग में औषधि आदि का संचयवर्णन नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।२१७।

---

*अत्रार्धेऽयं पाठो ग. पुस्तके—काष्ठांश्च मरणे योग्यानङ्गजानि तथैव चेति। * अत्रार्धस्थानेऽयं पाठो ङ. च. पुस्तकयोः कल्पाश्च मारणे योग्या वृषभाणां तथैव चेति।

१ घ. कल्काश्च। २ घ. वृषभाणां। ३ ग. °माश्वमा°। ४ घ. चित्राः श्वापदा। ५ क. ख. °श्वाङ्गदा।

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा । अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृतां वर ॥१

मत्स्य उवाच

[1]बिल्वाटकी यवक्षारं पाटला बाह्लिकोषणा[2] । श्रीपर्णी[3] शल्लकीयुक्तो निक्वाथः प्रोक्षणं परम् ॥२
सविषं प्रोक्षितं तेन[4] सद्यो भवति निर्विषम् । यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥३
कवचाभरणं छत्रं वालव्यजनवेश्मनाम् । शेलुः [5]पाटल्यतिविषा शिग्रु मूर्वा पुनर्नवा ॥४
[6]समङ्गा वृषमूलं[7] च कपित्थवृषशोणितम्[8] । महादन्तशठं तद्वत्प्रोक्षणं विषनाशनम् ॥५
लाक्षाप्रियङ्गुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका । यष्ट्याह्वा मधुरा[9] चैव बभ्रुपित्तेन कल्पिताः ॥६
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले । ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ॥७
संसृष्टं सविषं तेन सद्यो भवति निर्विषम् । मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः ॥८

अध्याय २१८

मनु ने कहा—हे धर्मिष्ठों में श्रेष्ठ ! राक्षसों के प्रभाव को नष्ट करनेवाली विषों को शान्त करनेवाली रोगनाशक जिन ओषधियों को राजा को अपने दुर्ग में रखवाना चाहिये, अब उन्हें हमसे बतलाइये ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, बाह्लिक, ऊषणा, श्रीपर्णी, और सल्लकी—इन समस्त ओषधियों का काढ़ा बनाकर सिंचित करने से विषाक्त जव, सैन्धव, पानीय, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, (जल) कवच, आभरण, छत्र और चामर व्यञ्जनादि द्रव्य शीघ्र ही विषरहित हो जाते हैं । शेल, पाटला, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा समंगा वृषमूल, कपित्थ, वृषशोषित, तथा महादन्त शठ— इन सभी द्रव्यों के भी काढ़ा बनाकर सेचन करने से विषनाश होता है ।२-५। लाह, प्रियंगु, मंजीठ, समान भाग में इलायची, रेणुका,, जेठीमधु, मधुरा—इन सब ओषधियों को नकुल के पित्त के साथ भावना देकर गाय की सींग में भरकर खनकर पृथ्वी के भीतर रख दे और सात रात्रि रहने के बाद उसे सुवर्ण तथा मणि के साथ हाथ में धारण करे, फिर तो उसे हाथ में धारण कर विष छूने से तुरन्त ही विष निविष हो जायगा । जटामाँसी, शमी के पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों कपित्थ, कुष्ट, मंजीठ—इन सब द्रव्यों को

---

[1] ङ. च. विल्वाद्रकी । [2] क ख. °षणाः । श्री° । [3] ग. श्रीपर्णा । [4] ग. गात्रं । [5] क. ख. °टलाति° । [6] ग. समंगात्रमूलत्वक्कपि° । [7] घ. च. °वृक्षमूलं त्वक्कपित्थं विष° । [8] ग. °म् । शाक्रद° । घ. °म् । सहदेवाहरिद्रे द्वे प्रत्यक्षं वि° । [9] ग. ङ. मधुना ।

कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठाः पित्तेन[1] श्लक्ष्णकल्पिताः । शुनो गोः कपिलायाश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरो गदः ॥९
विषजित्परमं कार्यं मणिरत्नं च पूर्ववत् । मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्ध्वा विषापहा ॥१०
हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुका मधु । अक्षत्वक्सुरसं लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि ॥११
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतैः प्रलेपिताः । श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्यो भवति निर्विषः ॥१२
त्र्यूषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् । सूक्ष्मैला [2]त्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी ॥१३
मधुकं वेतसं क्षौद्रं[3] विषाणे च निधापयेत् । तस्मादुष्णाम्बुना[4] मात्रं[5] प्रागुक्तं योजयेत्ततः[6] ॥१४
*विषभुक्तं जरं याति निर्विषं पित्तदोषकृत् । शुक्लं सर्जरसोपेतं सर्षपा एलवालुकैः ॥१५
[7]सुवेगा तस्करसुरौ कुसुमैरर्जुनस्य तु । धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥१६
न तत्र कीटा[8] न विषं दर्दुरा न सरीसृपाः । न कृत्या कर्मणां चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥१७
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः । मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः ॥१८

कुत्ते अथवा कपिला गौ के पित्त के साथ भावना दे, यह सौम्याक्षिप्त नामक महौषधि सभी प्रकार विषों को शान्ति करनेवाली है। इसके अतिरिक्त मणि तथा रत्नों के साथ मूषिका अथवा लाह को हाथ में रखने से विष का नाश होता है।९-१०। रेणुका, जटामांसी, हरिद्रा, मधूक, मधु, अक्षत्वक्, सुरसा लक्षा और कुत्ते का पित्त इन सब को पूर्व कथित विधि से पृथ्वी में गाड़ दे और इससे तमाम बाजनों का तथा पताकाओं का लेपन कर दे, ऐसा करने से बाजनों के शब्दों को सुनकर तथा पताका को देखकर शीघ्र ही विष का शमन हो जायगा ।११-१२। तीनों कटु (आँवला, हर्रा, बहेरा,) पाँचों नमक, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी इलायची त्रिवृतापात्र, विड़ङ्ग, इन्द्रवारुणी, मधूक, वेतस, तथा मधु—इन सब को सींग में रखकर स्थापित कर उक्त जल में पकावे, इससे खाया हुआ विष शान्त हो जाता है। श्वेत धूप, सरसों एलबालुका, सुवेगा, तस्कर, सुर और अर्जुन के पुष्प—इन सभी पदार्थों से निवास करनेवाले घर में धूप देने से चर-अचर जितने भी विष होते हैं, शान्त हो जाते हैं। इस धूप के प्रयोग से उस स्थान पर कीट विष, मेढ़क, रेंगनेवाले सर्पादि जीव तथा कृत्या—ये सब नहीं रह जाते ।१३-१७। चन्दन, दुग्ध, पलाश वृक्ष की छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसा, नाकुली, तण्डुलीयक एवं काकमाची का काढ़ा बनाने से सभी प्रकार के विष-दोषों में कल्याण होता है। गोरोचनापत्र, नेपाली केसर और तिलक—इन सभी द्रव्यों के धारण करने से विषदोष नष्ट हो जाता

---

* एतदर्धं न विद्यते क. ख. पुस्तकयोः ।

---

१ ङ. °न सूक्ष्मचूर्णिताः । २ ग. °श्रे तिण्डिकानिद्रवा° । ३ ङ. °द्रं गोविषाणे नि° । ४ ङ. °दुष्टाम्बुना चात्र प्राग्भक्ष्यं ओ° । च. °दुष्टावनामन्त्रं प्रागृ° । ५ ग. मात्राप्राग्भक्ष्ये यो° । ६ च. °तः । जदुसर्जरसोशीरसर्षपापत्रवा° । ७ ग. सुवेला । ङ. सुतैला । च. सुबिल्वा । ८ च. कीटाः सविषा नोन्दुरा ।

क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुतो हितः । [1]रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान्वहन् ॥१९
विषैर्न बाध्यतेऽस्माच्च[2] नरनारीनृपप्रियः । चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ॥२०
[3]दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं [4]सर्वविषार्दितम् । शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पं त्वङ्मूलमेव च ॥२१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः । एकवीर महौषध्यः शृणु[5] चातः परं नृप ॥२२
वन्ध्या कर्कोटकी राजन्विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा । शतमूली [6]सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥२३
सोमा पिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या । स्थले कमलिनी या च [7]विशाली शङ्खमूलिका ॥२४
चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका । रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या ॥२५
कोशातकी नक्तमालं प्रियालं च सुलोचनी । वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥२६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका । जतुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः । जीवानन्दा वसुच्छिद्रा[8] नतनागरकण्टका[9] ॥२८
नालं च जाली जाती च तथा च वटपत्रिका । कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हंसपादिका ॥२९
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके । सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा ॥३०
[11]रुजापहा वृद्धिकरी तथा चैव तु शल्यदा । पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी ॥३१

है और इस लिए रहने से स्त्री पुरुष राजा के प्रिय होते हैं । हल्दी, मजीठ, किणिही, पिप्पली और नींबू के चूर्ण का लेप करने से सभी प्रकार के विषों से पीड़ित शरीर स्वस्थ हो जाता है ।१८-२०½। शिरीष वृक्ष का फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़—ये सभी गाय के मूत्र के साथ घिस कर लगाने से सर्व-विष-सम्बन्धी रोगों का नाश होता है । हे एकमात्र वीर राजन् ! इसके उपरान्त अति उपयोगी सर्वश्रेष्ठ ओषधियों को बतला रहा हूँ जिन्हें राजा को अपने दुर्ग में सदा संचित रखना चाहिये, सुनो ।२१-२२। हे राजन् ! वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुकान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा, बला, मोचा पटोलिका, सोमा, पिण्डा, निशा दग्ध रुहा, स्थलपद्म, विशाली, शंखमूलिका, चाण्डाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजपर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, वर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, बारुणी, बसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, चतुकाली, महाश्वेता, यष्ठिमधु. वज्रक, पारिभद्र, सिन्दुवारक, जीवानन्दक, वसुच्छिद्र नागर, कण्टकारि, नाल, जाली, जाती, वटपत्र, सुवर्ण, महानीला, कुन्दुरू, हंसपादी, मण्डूकपर्णी, वाराही दोनों प्रकार के ताण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा,

---

[1] ङ. °कापहा । वि° । [2] घ. च. °ते साधु न° । [3] च. दष्टं । [4] ग सर्पवि° । [5] च शृङ्गवेरं तथैव न । व° । [6] घ. ङ. शतानन्दा । [7] ग. चिञ्चिणी । च. पिडली । [8] च. गोचण्०ाली च वञ्चका । [9] ग ङ. वसुमती । [10] ग. ङ. °का । तालना जालपाला च त° । [11] ङ. राजमाना ।

तथाऽऽमलकवन्दाकं श्यामचित्रफला च या । [1]काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ॥३२
केशिनी वृश्चिकाली च महानागा शतावरी[2] । गरुडी च तथा वेगा जले कुमुदिनी तथा ॥३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या । उन्मादिनी सोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव ॥३४
*[3]विशिखाऽमरकन्या च कीटपक्षं विशेषतः । जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥३५
रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्या वैतालनाशनाः । विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ॥३६
सर्पतित्तिरगोमायुबभ्रुमण्डुकजाश्च ये । सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः ॥
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ॥३७
इत्येवमेतैः [4]सकलैरुपेतैर्द्रव्यैः परार्घ्यैः परिरक्षितः स्यात् ॥
राजा वसेत्तत्र [5]गृहे सुशुभ्रे गुणान्विते लक्षणसंप्रयुक्ते ॥३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगदाध्यायो नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११४८६॥

पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाल, यामलक, वृन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, महानागा, शतावर, गरुडी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी एवं हे राजन् ! सभी प्रकार के रत्न—विशेषकर मरकतादि बहुमूल्यरत्न, अनेक प्रकार की कीटज मणियाँ, जीवों से उत्पन्न होनेवाली मणियाँ— सभी को प्रयत्नपूर्वक दुर्ग संचित रखे ।२३-३५। इस प्रकार राक्षस, विष, कृत्या, वैताल आदि की नाशक—विशेषकर गौ, गर्दभ ऊँट साँप, तीतर, शृगाल, अज, मेढक, सिंह, बाघ, रीछ, बिलाव, द्वीपि, वानर, कपिंजल, हस्ती, अश्व, महिष, और हरिण—इत्यादि जीवों से सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगी वस्तुओं का भी राजा संचय रखे। इस प्रकार दुर्ग को उपर्युक्त सभी प्रकार के पदार्थों के प्रचुर परिणाम के संचय से संयुक्त रहना चाहिये । एवं उसमें बने हुए अति निर्मल उपर्युक्त सभी लक्षणों से सम्पन्न भवन में राजा निवास करे ।३६-३८।

श्री मात्स्य महापुराण के विषनाश के उपाय नामक दो सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१८॥

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—वेषामरकतान्यत्र कोटीयक्षां विशेषतः इति ।

---

१ ङ. कङ्कोली । १ ग. ग. ङ. °री । तथा गरुडवेगा च ज° । ३ क. ख. विशेषान्मरकतादीनि की° । ४ क. ख. °पेतं द्रव्यैश्च सर्वैः स्वपुरं सुरक्षितम् । रा° । ५ क. ख. गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसंप्रयुक्तम् । इ° ।

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् । कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि मे ॥१

मत्स्य उवाच

[६]शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम् । क्षुद्योगः[७] कथितो राजन्मासार्धस्य पुरातनैः ॥२
कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम् । दूर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः ॥३
नरं शस्त्रहतं [८]प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् । कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ॥४
गृहे त्रिरपसव्यं तु क्रियते यत्र पार्थिव । नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥५
[९]कार्पासास्थिन भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् । सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे ॥६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका । तयाऽनुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ॥७
दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः । विषाच्च रक्ष्यो नृपतिस्तत्र युक्तिं निबोध मे ॥८

अध्याय २१९

मनु ने कहा—भगवन् ! राजा की रक्षा के लिए अन्यान्य जिन रहस्यपूर्ण साधनों को दुर्ग में संगृहीत अथवा प्रस्तुत करना चाहिये, उन सभी को भी मुझे बतलाइये ।१।

मत्स्य ने कहा—राजन् ! शिरीष, गूलर और बिजौरा—इन तीनों को घृत में परिप्लुत कर के पन्द्रह दिनों बाद सेवन करे, प्राचीन लोग इसे क्षुद्योग नाम से पुकारते हैं। कसेरु के मूल भाग तथा फल को, ईख के मूल भाग, विष, दूब, दूध, घी, तथा माँड़ के साथ सिद्ध कर एक मास बाद सेवन करे, इसके सेवन करने से हथियारों से घायल जो मनुष्य होगा वह मर नहीं सकता । उस स्थल पर विचित्र वर्णवाले बाँस के टुकड़ों से अग्नि उत्पन्न करे ।२-४। हे राजन् । उस अग्नि को अपसव्य होकर तीन बार प्रदक्षिणा करे, ऐसा करने से वहाँ कोई अन्य अग्नि नहीं जल सकती—इस बात में अविश्वास करने की आवश्यकता नहीं है । कपास के साथ भुजंग की हड्डी के जलाने से घर में से सर्पों का निष्कासन होता है । घर में इस वस्तु की धूप सर्प निष्कासन के लिए विशेष प्रसिद्ध है ।५-६। समुद्र से उत्पन्न सामुद्र, सैन्धव तथा यवा—ये तीन प्रकार के लवण, विद्युत् की ज्वाला से जली हुई मिट्टी—इन सभी वस्तुओं से जिस भवन की लिपाई हुई रहती है, हे राजन् ! उस भवन को अग्नि नहीं जला सकती । दुर्ग में दिन के समय, विशेषकर जब वायु का प्रकोप

---

१ ङ. °रश्वत्थबी । २ ग. घ. उद्योगः । ङ. दुर्गेण । ३ ग. घ. प्राप्य । ४ क. ख. °सास्थना भु° ।

क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः । अन्नं वै प्राक्परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ॥९
[1]वस्त्रं पुष्पमलंकारं भोजनाच्छादनं तथा । नापरीक्षितपूर्वं तु स्पृशेदपि महीपतिः ॥१०
स्याच्चासौ वक्त्रसंतप्तः सोद्वेगं च निरीक्षते । [2]विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परोक्षते[3] ॥११
स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा । प्रच्छादयति चाऽऽत्मानं लज्जते त्वरते तथा ॥१२
भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप । कण्डूयति च मूर्धानं [4]परिलोड्याऽऽननं तथा ॥१३
क्रियासु त्वरितो राजन्विपरीतास्वपि ध्रुवम् । एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ॥१४
[5]समीपेविक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयाऽन्वितः । इन्द्रायुधसवर्णं तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ॥१५
[6]एकावर्तं तु दुर्गन्धि भृशं चटचटायते । तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६
सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव माक्षिकाः । निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ॥१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम । विकृतिं च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप ॥१८

हो, अग्नि की रखवाली करनी चाहिये । विष से राजा की रक्षा करनी चाहिये, उस विषय में मैं युक्ति बतला रहा हूँ, सुनो । राजा को चाहिये कि दुर्ग में क्रीड़ा के लिए कुछ पशु तथा पक्षियों को भी रखे। सर्वप्रथम उसे अग्नि द्वारा अथवा अन्य किन्हीं उपायों से अपने अन्न की परीक्षा कर लेनी चाहिये।७-९। वस्त्र, पुष्प, आभरण, भोजन, आच्छादन अदि अपने नित्य व्यवहार की वस्तुओं को राजा विना पूर्व परीक्षा के कभी स्पर्श न करे।१०। विष का देनेवाला मनुष्य देते समय मलिनमुख, उदास, उद्वेगवान्, चंचल दृष्टि, खम्भे और भीत की छाया में अपने को छिपाने की कोशिश करनेवाला, विष-दान के समय लज्जा तथा शीघ्रता करने लगता है । हे राजन् ! वह पृथ्वी में चिह्न बनाने लगता है, गर्दन हिलाने लगता है, शिर खुजलाने लगता है, मुँह छिपाने या धोने की कोशिशें करता है।११-१३। हे राजन् ! निश्चय ही वह विषदाता पातकी मनुष्य ऐसे विपरीत कार्यों में भी शीघ्रता करने की कोशिश करता है । अतः राजा को ऐसे लक्षणों को देखकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये और उसके द्वारा दिये गये अन्न को सर्वप्रथम समीपस्थ अग्नि में डाल देना चाहिये । अग्नि में विषैला अन्न पड़ते ही उसका इन्द्रधनुष के समान अनेक वर्ण मिश्रित रंग हो जाता है । तुरन्त ही सूख जाता है, स्फोट होने लगता है, एक गोलाई में होकर उसमें से चट-चट की आवाज आने लगती है, उसमें से निकलते हुए धुएँ के सूँघनेवाले जीव के शिर में रोग उत्पन्न हो जाता है। हे राजन् ! विषयुक्त अन्न के ऊपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, यदि बैठती हैं तो विष संयुक्त होने के कारण तुरन्त ही मर जाती है।१४-१७। हे पार्थिवसत्तम ! विषयुक्त अन्न को देखते ही चकोर अपनी आँखे फेर लेता है, कोकिल का स्वर

---

[1] ग. °स्त्रं छत्रम्° । ङ. °स्त्रं पत्रम° । [2] ग. °दोषो वि° । ङ °दोषनिषेधार्थं यत्र यत्र । [3] ग. परीक्ष्यते । ङ. निरीक्ष्यते । [4] ग. °रिलेन्याऽऽन° । ङ. रिलेह्याधरं त° । [5] घ. समिद्धे विक्षि° । [6] ग. घ. °वर्तोऽथ दुर्गन्धिर्भृशं ।

गतिः स्खलति हंसस्य [१]भृङ्गराजश्च कूजति । क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ॥१९
विक्रोशति शुको राजन्सारिका वमते ततः । चामीकरोऽन्यतो याति मृत्युं कारण्डवस्तथा ॥२०
मेहते वानरो राजन्ग्लायते जीवजीवकः । हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ॥२१
हर्षमायाति च शिखी विषसंदर्शनान्नृप । अन्नं च सविषं [२]राजंश्चिरेण च विपद्यते ॥२२
[३]तदा भवति निःश्राव्यं [४]पक्षपर्युषितोपमम् । व्यापन्नरसगन्धं च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ॥२३
व्यञ्जनानां तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः । ससैन्धवानां द्रव्याणां जायते [५]फेनमालिता[६] ॥२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यान्नीला च पयसस्तथा । कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम ॥२५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च । मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ॥२६
घृतस्योदकसंकाशा कपोताभा च[७] मस्तुनः । हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथाऽरुणा ॥२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते । प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ॥२८
मृदुता कठिनानां स्यान्मृदूनां च विपर्ययः । सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता[८] ॥२९

विकृत हो जाता है, हंस की गति लड़खड़ाने लगती है , भौंरे जोर से भूंजने लगते हैं, क्रौंच (कुरर) मदमत्त हो जाता है, मुर्गे रोने लगते हैं। हे राजन् ! उस विषयुक्त अन्न को देखते ही शुक चें-चें करने लगता है, सारिका वमन करने लगती है, चामीकर भाग खड़ा होता है, कारण्डव मर जाता है । हे राजन् ! वानर मूत्र त्याग करता हैं, जीवजीवक ग्लानियुक्त हो जाता है, नेवले के रोयें खड़े हो जाते हैं, पृषत् मृग रोने लगता है, हे राजन् ! विष को देखते ही मयूर हर्षित हो जाता है, क्योंकि वह नित्य विष का भोजन करनेवाला है ।१८-२१½। हे राजन् ! विषयुक्त अन्न चिरकाल बाद नष्ट होता है और तब भी ऐसा मालूम पड़ता है मानों पन्द्रह दिन का पुराना बना हुआ है । उस समय उसमें रस तथा गन्ध बिल्कुल नहीं रहती, देखने में ऊपर से चन्द्रिकाओ से युक्त रहता है । विष के मिलने से बना हुआ व्यंजन सूख जाता है, द्रव वस्तुओं में बुल्ले उत्पन्न होते हैं, लवण सहित पदार्थों में फेन उठने लगते हैं, अन्नों से बना हुआ भोजन ताम्रवर्ण का, दूध नीले रंग का, मदिरा तथा जल कोकिल के समान काला, अम्ल अन्न काला, कोदो कपिल, मधु श्यामल, तक्र नीले और पीले वर्ण का हो जाता है ।२२-२६। घृत का वर्ण जल की भाँति, छाछ का कबूतर की भाँति, माक्षिक मधु का हरा और तैल का लाल रंग हो जाता है । विष के संसर्ग से न पके हुए फल शीघ्र ही पक जाते हैं और पका हुआ फल विकृत हो जाता है । पुष्प मलिन हो जाते हैं, कठोर वस्तु कोमल तथा कोमल वस्तु कठोर हो जाती है, विष के संयोग से सूक्ष्म वस्त्रादि वस्तुओं का रूप और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और उनमें एक दूसरी ही रंगत पैदा हो जाती है ।२७-२९। वस्त्रों में विशेषकर काले

---

[१] ङ. °ङ्गश्च परिकू° । [२] ग. घ. राजन्नचिरे° । ङ. च. राजन्नचिरेण विपच्यते । [३] ङ. च. °दा तरति । [४] ग. पङ्कप । ङ. च. पक्वं प° । [५] ङ. °नशालि° । च. °नलालि° । [६] ग. घ. ङ. °ता । रसस्य राजिस्ताम्रा । [७] ख. च सत्तनुः । ह° । [८] घ. °तिरागता ।

श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च । लोहानां च मणीनां च मलपङ्कोपदिग्धता ॥३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानां च नृपोत्तम । विगन्धता च विज्ञेया वर्णानां म्लानता तथा ॥
पीतावभासता ज्ञेया तथा राजञ्जलस्य तु ॥३१
[1]दन्ता ओष्ठौ त्वचः श्यामास्तनुसत्त्वास्तथैव च । एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम ॥३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेन्मणिमन्त्रौषधागदैः । उक्तैः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥३३
प्रजातरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र ॥३४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राजरक्षा नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥११५२०॥

धब्बे मण्डलाकार पड़ जाते हैं । लोहे और मणि पर विष का प्रभाव पड़ने से ऐसा अनुभव होता है मानों वे मल अथवा कीचड़ में लपेट दिये गये हों । हे नृपोत्तम ! शरीर में लेपन किये जानेवाले द्रव्यों एवं उपयोग में आनेवाले पुष्पों में दुर्गन्धि आने लगती है और उनका वास्तविक रंग विकृत होने लगता है, हे राजन् ! उसी प्रकार जल में भी पीलेपन का आभास होने लगता है।३०-३१। हे नृपोत्तम ! विष के सेवन से दाँत, ओठ, चमड़ा श्यामल वर्ण के हो जाते हैं और शरीर में क्षीणता का अनुभव होने लगता है—इस प्रकार के उपर्युक्त तथा अन्यान्य चिह्नों से भी विष के लक्षण जानने चाहिये । इसलिए हे राजन् ! राजा को सर्वदा मणि, मंत्र एवं उपर्युक्त ओषधियों से सम्पन्न तथा असावधानी को छोड़कर रहना चाहिये । इस पृथ्वी तल पर प्रजारूपी वृक्ष की जड़ राजा है, उसी की रक्षा से समस्त राष्ट्र की वृद्धि होती है । हे सूर्यवंश के चन्द्रमा ! इसलिए सभी को राजा की उन्नति प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये ।३२-३४।

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में राजरक्षा नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१९॥

---

[1] क. ख. दन्तकाष्ठत्व° ।

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

[1]राजन्पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता । [2]आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ॥१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत् । रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामं कारयेत्सदा ॥२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं[3] [4]नाऽऽप्तैर्मिथ्याप्रियं वदेत् । शरीरक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥३
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः । तथा च विनयेदेनं यथा यौवनगोचरे[5] ॥४
इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात्सुदुर्गमात् । गुणाधानमशक्यं तु यस्य कर्तुं स्वभावतः ॥५
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्[6] । अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते ॥६
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् । आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि ॥७
मृगयापानमक्षांश्च वर्जयेत्पृथिवीपतिः । एतांस्तु सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः ॥८

अध्याय २२०

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये । उसकी शिक्षा के लिए नित्य पहरेदारों की देखरेख में एक आचार्य की नियुक्ति करनी चाहिये ।१। उसे धर्म, काम, एवं अर्थशास्त्र तथा धनुर्वेद की शिक्षा दे और सर्वदा रथ और हाथी पर सवार होने की कुशलता सिखलाते हुए व्यायाम कराता रहे । उसे शिल्प की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करे । ऐसा प्रभाव उस पर पड़े कि गुरुजनों के सम्मुख असत्य प्रिय बातें न करे ।२½। तात्पर्य यह कि उसे इस प्रकार की शिक्षा दे कि युवावस्था में वह अति दुर्गम सत्पुरुषों के मार्ग से गिरकर इन्द्रियलोलुप न हो जाय । जिस राजकुमार में स्वभाव की विषमता के कारण उपदेशादि द्वारा गुणों का प्रवेश कराना दुष्कर समझ पड़े उसे बन्धन में डाल दे, पर वहाँ भी उसके सुख की व्यवस्था रखे, क्योंकि अविनीत राजकुमारों से ही कुल छिन्न-भिन्न हो जाता है । राजा को सभी अधिकारों पर शिक्षित एवं विनयी व्यक्तियों की नियुक्ति करनी चाहिये ।३-६½। प्रथमतः किसी व्यक्ति को छोटे पद पर नियुक्त करे, धीरे-धीरे उसे उन्नति के पद पर पहुँचावे । राजा शिकार, मदपान तथा द्यूतक्रीडा—इन सभी को वर्जित रखे, क्योंकि पूर्वकाल में इनके सेवन से बहुतेरे राजागण विनाश को पहुँच गये हैं । हे नृपशार्दूल ! उनकी संख्या भी नहीं कही जा सकती । व्यर्थ की सैर, दिन में

---

१ ग. घ. ङ. च. °जपु° । २ घ. च. चार्यश्चास्य कर्तव्यं नित्ययुक्तैश्च रक्षणम् । घ° । ३ ङ. °येदेवं नास्य मि° । ४ क. ख. नाप्तो मिथ्या । ५ घ. ङ. च. गोमुखे । इ° । ६ घ. खावहम् । अ° ।

बहवो नृपशार्दूल तेषां संख्या न विद्यते[१]। *वृथाटनं दिवास्वप्नं विशेषेण विवर्जयेत् ॥९
वाक्पारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च। [२]परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ॥१०
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत्। अर्थानां दूषणं चैकं तथाऽर्थेषु च दूषणम् ॥११
[३]प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया। अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥१२
अदेशकाले[४] यद्दानमपात्रे दानमेव च। अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥१३
कामः क्रोधो मदो मानो लोभो हर्षस्तथैव च। +एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ॥१४
एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः। कृत्वा भृत्यजयं राजा पौराञ्जानपदाञ्जयेत् ॥१५
कृत्वा च विजयं तेषां शत्रून्बाह्यांस्ततो जयेत्। बाह्याश्च विविधा[५] ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ॥१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत्। पितृपैतामहं मित्रममित्रं च तथा रिपोः ॥१७

शयन—इनको तो विशेषकर राजा वर्जित करे। राजा को कभी भी कठोर वाणी नहीं बोलनी चाहिए। उसी प्रकार उसे कभी किसी को कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये। राजा को परोक्ष में किसी की निन्दा भूलकर भी नहीं करनी चाहिये ।७-१०। राजा को दो प्रकार के अर्थ दोषों से बचना चाहिये, वे हैं अर्थ दोष एवं अर्थ-सम्बन्धी दोष। उनमें से अर्थ के दोष ये कहे गये है, किले की दीवालों का विध्वंस, राजदुर्ग का असत्कार (विरूप करना) एवं स्फुट विषयों में द्रव्य का दुरुपयोग। राजा को इस अर्थ के दोष से बचना चाहिये। उसी प्रकार बिना देश और काल का विचार किये जो दान दिया जाता है, अयोग्य व्यक्ति को जो दान दिया जाता है एवं असत्कर्मों में जो राजा की प्रवृत्ति होती है, वह अर्थ सम्बन्धी दोष कहा गया है। राजा को इस अर्थ-सम्बन्धी दोष से भी बचना चाहिये ।११-१३। राजा को सर्वदा काम, क्रोध, मद, मन, लोभ तथा हर्ष—इन सबों से प्रयत्नपूर्वक बचना चाहिये। इनको अपने वश में रखकर राजा को अनुचरों को भी स्ववश करना चाहिये, इस प्रकार अनुचरों को स्ववशकर पुरवासियों तथा जनपद में निवास करनेवालों पर राजा अपना अधिकार जमाये। उनको विजित करने के बाद राजा बाहरी शत्रुओं को अपने अधिकार में करे ।१४-१५½। वे बाहरी शत्रु कई प्रकार के जानने चाहिये, जैसे समान पदवाले, भीतर से द्वेष रखनेवाले तथा किन्हीं कारणों से बाहर से बने हुए। उनमें से क्रमशः एक-एक को महत्त्वपूर्ण समझकर यत्न करना चाहिये। अर्थात् सबसे प्रथम समान शक्तिवालों से तदनन्तर भीतरसे द्वेष रखनेवालों से पश्चात् बने हुए से। हे महाभाग ! राजाओं के तीन प्रकार के मित्र होते हैं। सर्व प्रथम वे हैं, जो पिता, पितामह आदि के काल से मित्र रूप में व्यवहार करते चले आये हैं, दूसरे वे हैं, जो शत्रु के शत्रु हैं, तथा तीसरे वे हैं, जो किन्हीं कारणों से पीछे मित्र

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—दिवास्वप्नं विषादं च दुर्गादीनामसत्क्रिया। इति। + एतस्मिन्नर्धेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—जेतव्यमरिषडवर्गं सुतरां पृथिवीक्षितेति।

---

[१] ख. च. °ते। दिवास्वापं क्षितीशस्तु वि°। [२] ग. °रोपद्रवता नित्यं व°। [३] ग. आकराणां। घ. अकरणात्। [४] घ. ङ. च. °ले भृत्यानाम°। [५] घ. ङ. त्रिविधा।

कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते । तथाऽपि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चाऽऽदृतः ॥१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च । कोशो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१९
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तितः । तन्मूलत्वात्तथाऽङ्गानां स तु रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥२०
षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः । अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्य द्रोहमाचरतेऽल्पधीः[1] ॥२१
वधस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता । न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते ॥२२
न भाव्यं दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः । काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत् । भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत् ॥२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशं गतम् । व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत् ॥२५
लोकसंग्रणार्थाय कृतकव्यसनी भवेत् । शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः[2] ॥२६
जना विरागमायान्ति सदा दुःसेव्यभासतः । स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सर्वस्यैव महीपतिः ॥२७
वध्येष्वपि महाभाग भ्रूकुटिं न समाचरेत् । भाव्यं धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थूललक्ष्येण भूभुजा ॥२८

कोटि में आ गये हैं—इन तीनों मित्रों में प्रथम मित्र उत्तम है तथा उसको सबसे बढ़कर आदर भी देना चाहिये । हे धर्म के महत्त्व को समझनेवाले ! स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोश तथा मित्र—ये सात अंग राज्य के कहे गये हैं ।१८-१९। पर इस सात अङ्ग के रहते हुए भी स्वामी ही राज्य का मूल कहा गया है. इसलिये सर्वदा उसी की रक्षा करना अन्य अंगों का भी कर्त्तव्य है और राजा को भी अपने छः अंगों की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । इन अंगों में से यदि कोई मूर्ख किसी दूसरे अंग का द्रोह करता है तो राजा को उसको शीघ्र ही मार डालना चाहिये । राजा को कोमल वृत्तिवाला नहीं होना चाहिये, कोमल वृत्ति हो जाने से उसकी हार हो जाती है और न अत्यन्त कठोर स्वभाववाला ही होना चाहिये क्योंकि वैसा होने से भी लोग दुःखी होते हैं । जो राजा समय को ध्यान में रखकर मृदु तथा कठोर होता है, वह अपने दोनों लोकों की अपेक्षा करता है और वास्तव में उसे दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है ।२०-२३$\frac{१}{२}$। राजा को अपने अनुचरों के साथ परिहास वर्जित रखना चाहिये, क्योंकि उस समय आनन्द में निमग्न राजा की अनुचर-गण अवमानना कर बैठते हैं । राजा को सभी प्रकार के व्यसनों से बचना चाहिये, किन्तु लोगों को वश में रखने के लिए कुछ कपट व्यसन तो करना ही चाहिये । गर्वीले स्वभाववाले तथा नित्य ही उद्धत स्वभाव रखनेवाले राजा से लोग कठिनता से अनुकूल होने के कारण विरक्त हो जाते हैं । अतः राजा को चाहिये कि वह सभी से मन्द मुसकानपूर्वक बातें करे ।२४-२७। हे महाराज ! यहाँ तक कि प्राणदण्ड के अपराधी को भी वह कभी भृकुटि न दिखावे । हे धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ ! राजा को सर्वदा स्थूल (महान्) लक्ष्य की ओर

---

[1] ख. °धीः। बन्धस्त° ।
[2] ङ. च. °मुत्सिक्त° ।

स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी । अदीर्घसूत्रश्च भवेत्सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥२९

दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत् । रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥३०

अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते । राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ॥३१

तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः[१] सर्वापदो ध्रुवम् । [२]कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः ॥३२

नाऽऽरब्धानि महाभाग तस्य स्याद्वसुधा वशे । मन्त्रमूलं सदा राज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः ॥३३

कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा[३] । मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः [४]संपत्तीनां सुखावहः ॥३४

मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः । आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च[५] ॥३५

नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः । न यस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुंधरा ॥३६

भवतीह महीभर्तुः सदा पार्थिवनन्दन । नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥३७

नाऽऽरोहेद्विषमां [६]नावमपरीक्षितनाविकाम् । ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः ॥३८

तानानयेद्वशे सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः । यथा न स्यात्कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया ॥३९

दृष्टि रखनी चाहिये, महान् लक्ष्य को सम्मुख रखनेवाले के अधीन समस्त पृथ्वी हो जाती है । सभी कार्यों में उसे अविलंबी होना चाहिये ।२८-२९। विलम्ब करनेवाले राजा के कार्य नष्ट हो जाते हैं । केवल अनुराग, दर्प, आत्मसम्मान, द्रोह, पापकर्म तथा अपने को प्रिय न लगनेवाले कार्य में—राजा की दीर्घसूत्रता प्रशंसित मानी गई है । हे नृपोत्तम ! राजा को सर्वदा गुप्त स्थल में सम्मति रखनी चाहिये अर्थात् अपनी सम्मति वह कभी किसी से न बतलावे, जो राजा अपनी सम्मति को गोपनीय नहीं रखता उसके ऊपर निश्चय ही सभी आपत्तियाँ आकर गिरती हैं । जिस राजा के केवल किये कार्यों को दूसरे लोग जानते हैं तथा भविष्य में होनेवाले कार्य को कोई नहीं जानते, उस राजा के वश में समस्त वसुन्धरा हो सकती है । मंत्र ही सर्वदा राज्य का मूल है, अतः उसे सुरक्षित रखना चाहिये ।३०-३३। राजाओं को मंत्रणा देने में सुनिपुण मंत्रियों द्वारा दिये गये मंत्र को सर्वदा, फूट जाने के भय से, गोपनीय रखना चाहिये, वह सभी सम्पत्तियों तथा सुखों को देने वाला होता है । मंत्र ही के छल से पूर्वकाल में बहुतेरे राजा विनष्ट हो गये । आकृति, इशारे, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र, मुख के विकार से अन्तः स्थित मनोभावों का पता लगता है, जिस राजा के मन का पता इन उपर्युक्त उपायों द्वारा कुशल लोग भी न लगा सकें उसके वश में सर्वदा वसुन्धरा बनी रहती है ।३४-३६। राजा कभी एक जन के साथ मंत्र न करे और न अनेक लोगों को ही साथ ले । राजा ऐसी नाव पर, जिसकी नाविक ने कभी परीक्षा नहीं ले ली है, कभी सवार न हो । राजा को, उन्हें जो उसके विरुद्ध आचरण करनेवाले हों, साम दानादि चारों प्रकार के उपायों से वश में करना चाहिये । जिस प्रकार के उपायों से

---

[१] ग. ङ. च. ज्ञेयाः । [२] ग. घ. °तार्थान्येव का° । [३] ङ. च. °भेदे भयं तथा । म° । [४] ग. घ. ङ. संयतानां । [५] घ. ङ. भाषणेन । [६] घ. च. °नायका° ।

तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता । मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्शयत्यनवेक्षया ॥४०
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः[1] । भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ॥४१
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं [2]कर्मसहं[3] भवेत् । यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं[4] स परिरक्षति[5] ॥४२
संजातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् । राष्ट्राद्धिरण्यं धान्यं च महीं राजा सुरक्षिताम् ॥४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता । नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ॥४४
गोपितानि सदा कुर्यात्संयतानीन्द्रियाणि च । अजस्रमुपयोक्तव्यं फलं तेभ्यस्तथैव च ॥४५
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे । तयोर्दैवमचिन्त्यं च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतश्चापि परा च कीर्तिः ॥४७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मानुकीर्तने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११५६७॥

असावधानता वश प्रजावर्ग की दुर्बलता न बढ़े, उन्हीं उपायों से अपने राष्ट्र की रक्षा में उसे तत्पर होना चाहिये । जो राजा अज्ञानता वश असावधानी करके अपने राष्ट्र को दुर्बल करता है, वह शीघ्र ही राज्य से च्युत हो जाता है तथा परिवार के सहित जीवन से भी हाथ धोता है ।३७-४०½। हे महाभाग ! जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान होने पर कार्य करने में समर्थ होता हैं उसी प्रकार उसी भावना से पालन पोषण कर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्य में कार्यक्षम होता है । जो राजा अपने राष्ट्र के ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखता है वस्तुतः वही राज्य की रक्षा करता है और इसी से महान् फल की प्राप्ति करता है । राजा राष्ट्र से सुवर्ण, अन्न, एवं सुरक्षित पृथ्वी को प्राप्ति करता है । रक्षा में अति प्रयत्नपूर्वक तत्पर रहनेवाला नृपति नित्य प्रति स्वकीय एवं परकीय—दोनों ओर की होनेवाली बाधाओं से माता और पिता के समान अपने राष्ट्र की रक्षा करे ।४१-४४। राजा को अपनी इन्द्रियों को संयत तथा गुप्त रखना चाहिये और सर्वदा उनका उपयोग संयत और गोपनीय करे । जीवन के सभी कार्य दैव और पुरुष इन दोनों के अधिकार में रहते हैं उन दोनों में दैव के ऊपर तो पुरुष का कोई वश नहीं है, इसलिए उसकी चिन्ता छोड़कर पौरुष में अपना कर्तव्य निभाना चाहिये । इस प्रकार ऊपर कहे हुए ढंग से पृथ्वी का पालन करनेवाले राजा के ऊपर लोगों का परम अनुराग हो जाता है एवं लोगों के अनुराग होने ही से राजा को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा लक्ष्मीवान् राजा को ही परम यश की प्राप्ति होती है ।४५-४७।

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म कीर्त्तन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२०।।

---

१ ङ. च. °वः । तत्संभृतो जा° । २ ग. °र्मक्षमं भ° । ३ ङ. समाचरेत् । यो । च. समावहेत् । यो । ४ ग. घ. स्वं । ५ ङ. °ति । सदा समुपजीवन्ति वि° ।

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तदब्रवीहि मे । अत्र मे संशयो देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥१

मत्स्य उवाच

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् । तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥२
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते । मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम । पौरुषेण विना तेषां[1] केषां चिद्दृश्यते फलम् ॥४
कर्मणा प्राप्यते लोके[2] राजसस्य[3] तथा फलम् । कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥५
पौरुषेणाऽऽप्यते[4] [5]राजन्प्रार्थितव्यं फलं नरैः । दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः ॥६
[6]तस्मात्त्रिकालं संयुक्तं दैवं तु सफलं भवेत् । पौरुषं दैवसंपत्त्या काले फलति पार्थिव ॥७

अध्याय २२१

मनु ने कहा—हे देव ! दैव (भाग्य) और पुरुषार्थ—इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप इस मेरे सन्देह को सम्पूर्णतः दूर करें ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! देहान्तर में अपने द्वारा किया गया पुरुषार्थ (कर्म) ही दैव कहा जाता है, इसीलिए मनीषी लोग पौरुष को ही श्रेष्ठ मानते हैं। हे मनुजोत्तम ! मंगल आचरण करनेवाले नित्य प्रति अभ्युदय शील पुरुषों के प्रतिकूल दैव भी पुरुषार्थ से प्रभाव रहित हो जाता है। पूर्वजन्म में जिन्होंने सात्त्विक कर्म किये हैं, उन्हीं किन्हीं को इस जन्म में पुरुषार्थ के बिना भी अच्छे फल की प्राप्ति होती देखी जाती है। लोक में राजसिक कर्म करनेवाले मनुष्य को कर्म करने से ही फल की प्राप्ति होती है, और तामस कार्यों के करने से बहुत कष्ट के उपरान्त फल की प्राप्ति जाननी चाहिये ।२-५। राजन् ! मनुष्यों को पुरुषार्थ द्वारा ही अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति होती है, जो लोग पुरुषार्थ से हीन हैं वे ही एक मात्र दैव को सब कुछ जानते हैं। अतः सर्वदा तीनों काल में पुरुषार्थ से युक्त दैव ही सफल होता है। राजन् ! भाग्य से युक्त, मनुष्य का पुरुषार्थ समय आने पर फल देता है ।६-७। पुरुषोत्तम ! दैव, पुरुषार्थ एवं काल—ये तीनों

---

[1] ङ. च. °षां कदाचिद्दृ° । [2] ङ. °के फलं राजसकर्मणः । कृ° । [3] घ. च. °जसैस्त त° । [4] ङ. °प्यतो। रा° । [5]. घ. ङ.°जन्मर्गित° । [6] ङ. °स्मा तच्च कर्मणा युक्तो देवं

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम । त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात्फलावहम् ॥८
कृषिवृष्टिसमायोगाद्दृश्यन्ते फलसिद्धयः । तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवकाले कथंचन ॥९
तस्मात्सदैव कर्तव्यं [1]सधर्मं पौरुषं नरैः । विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥१०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न च दैवपरायणाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन[2] पौरुषे यत्नमाचरेत् ॥११
त्यक्त्वाऽलसान्दैवपरान्मनुष्यात्थानयुक्तान्पुरुषान्हि लक्ष्मीः ।
अन्विन्य यत्नाद्वृणुयान्नृपेन्द्र तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दैवपुरुषकारवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११५७९॥

संयुक्त होकर मनुष्य को फल देते हैं। लोक में वृष्टि के संयोग होने पर ही कृषि में फल प्राप्ति देखी जाती है किन्तु वह भी समय आने पर ही फलवती होती है, विना समय के नहीं। इसलिए मनुष्य को सर्वदा धर्म सहित पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ में लगे हुए किसी मनुष्य को यदि इस लोक में विपत्तियों के पड़ जाने से फल प्राप्ति नहीं होती तो निश्चय है कि परलोक में उसे फल प्राप्ति होगी। आलसी पुरुष कभी भी अपने मनोरथ को सफल नहीं कर सकते और न भाग्य पर भरोसा रख कर बैठनेवाले ही सफल हो सकते हैं। इसलिए मनुष्य को सभी प्रयत्नों से पुरुषार्थ में सर्वदा जुटे रहना चाहिये। राजेन्द्र! भाग्य पर भरोसा रखकर बैठनेवाले आलसी पुरुषों को छोड़कर लक्ष्मी सर्वदा अभ्युदय में तत्पर पुरुषार्थी पुरुषों को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ ढूँढ़कर वरण करती हैं, इसलिए सर्वदा मनुष्य को अभ्युदय, शील एवं पुरुषार्थी होना चाहिये। ८-१२।

श्री मात्स्य महापुराण में भाग्य तथा पुरुषार्थ वर्णन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

---

[1] ङ. सदैवं । [2] क. ख. °न आचरेद्धर्ममुत्तमम् । त्य° ।

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

उपायांस्त्व समाचक्ष्व सामपूर्वान्महाद्युते । लक्षणं च तथा तेषां प्रयोगं च सुरोत्तम ॥१

मत्स्य उवाच

साम भेदस्तथा दानं दण्डश्च मनुजेश्वर । उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालं च पार्थिव ॥२
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु । द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च ॥३
अत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते । *तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ॥४
महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्ना नितेन्द्रियाः । सामसाध्या न चातथ्यं तेषु साम प्रयोजयेत् ॥५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादिवर्णनम् । तथा तदुपचाराणां कृतानां चैव वर्णनम् ॥६
अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् । एवं[1] साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥७

अध्याय २२२

मनु ने कहा—महाकान्तिमान् ! सुरोत्तम ! अब तुम मुझे सामादि उपायों को तथा उनके लक्षण और उनके प्रयोगों की विधि बतलाओ ! ।१।

मत्स्य ने कहा—पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल ये सात प्रयोग बतलाये गये हैं, उनकी विधि तथा प्रयोग मैं बतला रहा हूँ, सुनो। साम दो प्रकार का कहा गया है, एक तथ्य और दूसरा अतथ्य। उनमें अतथ्य साम का प्रयोग तो साधुपुरुषों की नाराजगी का कारण बन जाता है। नरोत्तम ! अतएव सत्पुरुष को तथ्य साम उपाय ही साध्य जानना चाहिये। अतिउच्च कुल में उत्पन्न होनेवाले, सरल प्रकृति, नित्य धर्म में अभिरुचि रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष साम उपाय से ही साध्य होते हैं, अतः उनके लिए अतथ्य साम नीति का आश्रय नहीं लेना चाहिये।२-५। तथ्य साम का प्रयोग कुल के वर्णन उपकारों की चर्चा, सत्कर्मों की प्रशंसा तथा उसकी सेवा एवं कार्यों का विषद वर्णन करके करे और इस प्रकार युक्तिपूर्वक अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हुए धर्म में तत्पर रहनेवालों को अपने वश में

---

*एतदर्धस्थाने इमौ पाठौ ग. ङ. पुस्तकयोः- तच्च साधु प्रियं चैव सामसाध्या नरा मताः। तथा साधुकृतं तेन सामसाध्यो नरो मत इति।

---

[1] ग, घ, ङ. °वं सान्त्वेन क° ।

साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः । तथाऽप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥८
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम् । असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ॥९
ये शुद्धवंशा ऋजवः प्रणीता[1] धर्मे स्थिताः सत्यपरा विनीताः ।
ते सामसाध्याः पुरुषाः प्रदिष्टा मानोन्नता ये सततं च राजन् ॥१०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे सामबोधो नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११५८९॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

परस्परं तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः । तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ॥१
ये तु येनैव दोषेण [2]परस्मान्नापि बिभ्यति । ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशं ततः ॥२
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम् । एवं हि भेदयेद्भिन्नान्यथावद्वशमानयेत् ॥३

करना चाहिये । यद्यपि राक्षस भी साम नीति के द्वारा वश में किये गये हैं—ऐसी बातें प्रायः सुनी गई हैं, किन्तु इतने पर भी असत्पुरुषों के लिए इसका प्रयोग उपकारक नहीं होता है । वे असज्जन पुरुष साम की बातें करनेवालों को अतिशय डरा हुआ समझते हैं अतः उनके लिए इसका उपाय नहीं करना चाहिये । जो शुद्ध वंश में उत्पन्न, शरल प्रकृतिवाले, धर्मिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, विनयी एवं सम्मानी व्यक्ति हैं वे ही सर्वदा साम उपाय से साध्य हो सकते हैं ।८-१०।

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में सामबोध नामक दो सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२२।।

अध्याय २२३

मत्स्य ने कहा—जो परस्पर बैर रखनेवाले, दुष्ट, क्रोधी, भय से डरे हुए तथा अपमानित व्यक्ति हैं वे भेद उपाय से साध्य होते हैं, उन्हें वश में करने के लिए भेदोपाय का अवलम्ब लेना चाहिये । जो लोग जिस दोष के कारण दूसरे से अप्रसन्न रहते हैं, उन्हें उसी दोष को दिखाकर आपस में भिन्न करना चाहिये । भेद्य व्यक्ति को उसके निजी दोषों को दिखाकर अच्छी आशा तथा दूसरे से भय होने की आशंका दिखलावे, इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न कर उन्हें अपने वश में लावे ।१-३। जो आपस में एकता के

---

[1] ग. °णीताः सत्ये स्थिता धर्मप° । [2] क. °स्माद्वाऽपराध्यति ।

संहता हि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः । भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदः ॥४
स्वमुखेनाऽऽश्रयेद्भेदं भेदं परमुखेन च । परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ॥५
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य[1] कुशलैर्ये हि भेदिताः । भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव [2]राज्ञाऽर्थवादिभिः ॥६
अन्तःकोपो बहिः कोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् । अन्तःकोपो महांस्तत्रनाशकः पृथिवीक्षिताम ॥७
[3]सामन्तकोपो बाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः । महिषीयुवराजाभ्यां तथा सेनापतेर्नृप ॥८
अमात्यमन्त्रिणां चैव राजपुत्रे तथैव च । अन्तःकोपो विनिर्दिष्टो दारुणः पृथिवीक्षिताम् ॥९
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिवः । शुद्धान्तस्तु महाभाग शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥१०
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति । सोऽन्त.कोपः प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्ये महीभृता ॥११
परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा । ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥१२
रक्ष्यश्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथाऽऽमनः । ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः ॥१३

सूत्र में बँधे हुए शत्रु हैं वे भेद उपाय के बिना इन्द्र से भी असाध्य होते हैं। इसीलिए नीतिज्ञ लोग ऐसे स्थलों पर भेद उपाय की ही प्रशंसा करते हैं । इस भेद उपाय का कार्य अपने मुख से अथवा दूसरे के मुख से भेद्य व्यक्ति से कहे या कहलावे, परन्तु अपने विषय में दूसरे की भेदनीति की वार्ता सुनकर भली भाँति परीक्षा कर ले तब सत्य मानकर विश्वास करे । शीघ्रतापूर्वक अपने कार्य के उद्देश्य से सुनिपुण नीतिज्ञों द्वारा जो भेदित किये जाते हैं वे ही सच्चे अर्थ में भेदित कहे जाते हैं । अर्थचिन्ता में परायण राजा को इसी उपाय से शत्रुओं को भेदित करना चाहिये दूसरे उपाय से नहीं ।४-६। आन्तरिक कोप (घरेलू वैमनस्य) और बाहरी कोप— ये दो कोप राजाओं के सम्मुख जब उपस्थित हों, तो उनमें आन्तरिक कोप को अधिक महान् एवं प्रभावशाली जानना चाहिये । उससे राजाओं का विनाश हो जाता है । सामन्त तथा नृपति गणों का क्रोध बाहरी क्रोध कहा गया है तथा रानी, युवराज, सेनापति, मंत्रीगण तथा राजकुमारों के क्रोध को आन्तरिक कोप कहते हैं । जिसका प्रभाव राज के लिये अत्यन्त भयानक बताया गया है । हे महाभाग्यशाली ! अत्यन्त भीषण भी बाहरी कोर राजा के ऊपर पड़ गया हो, किन्तु यदि उसका आन्तरिक भाग वैमनस्य रहित है अर्थात् उपर्युक्त सभी उसका सहयोग कर रहे हैं तो वह शीघ्र ही विजय लाभ करता है ।७·१०। और इन्द्र के समान भी पराक्रमी तथा साधन सम्पन्न हो किन्तु यदि भीतरी कलह है तो वह शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है । इसलिए राजा को आन्तरिक कोप के शमन के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये । शत्रु को विजित करनेवाले राजा को चाहिये कि दूसरे लोगों से क्रोध पैदा कराकर उसकी जाति में प्रबल भेद उत्पन्न कर दे और प्रयत्नपूर्वक अपनी जाति में भेद न होने दे ।११-१२। यद्यपि जाति के लोग राजा की उन्नति देखकर सर्वदा परिताप की अग्नि से जलते रहते हैं तथापि राजा को गम्भीर भाव से उनकी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये ।

---

१ घ. °मुद्यम्य कु° । २ ग. घ. च. राज्ञार्थ° । ३ ख. साम्रा न को° । घ. सामान्यको° ।

तथाऽपि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा । ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयंकरः ॥१४
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं विश्वसन्ति च । ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्तेन पार्थिवैः ॥१५
भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ ।
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भिः ॥१६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे भेदप्रशंसा नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२२३।।
आदितः श्लोकानां समष्टयंकाः ॥११६०५॥

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम् । सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥१
न सोऽस्ति राजन्दानेन वशगो यो न जायते । दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम् ॥२
दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम । प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥३

दान तथा सम्मान देकर सर्वदा उन्हें अपने में सम्मिलित किये रहना चाहिये, क्योंकि जाति में भेदनीति बड़ी भयङ्कर होती है। जातिवालों पर प्रायः लोग अनुग्रह का भाव नहीं रखते और न उनका विश्वास ही करते हैं इसलिए राजाओं को चाहिये कि जाति में फूट डालकर शत्रु को उनसे अलग कर दें। इस प्रकार भेद नीति द्वारा भिन्न किये हुए अधिक शत्रुओं को भी राजा अपनी थोड़ी सेना से संग्राम में विनष्ट कर सकता है, अतएव नीति निपुण लोगों को एकता के सूत्र में बंधे हुए अनेक शत्रुओं के लिए भेदनीति का प्रयोग करना चाहिये।१३-१६।

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में भेदप्रशंसा नामक दो सो तेईसवां अध्याय समाप्त ॥२२३॥

अध्याय २२४

मत्स्य भगवान् ने कहा—सभी प्रकार के उपायों में दान सर्वश्रेष्ठ उपाय माना गया है, दान यदि भली भांति समझ बूझकर दिया गया है तो वह इह एवं पर दोनों लोकों में बिजय देनेवाला होता है। हे राजन्! इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई नहीं है जो दान द्वारा वश में न किया जा सके, यहाँ तक कि दान के द्वारा देवता लोग भी मनुष्यों के वश में होते आये हैं। हे नृपोत्तम! दान ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी प्रजाओं का पालन पोषण करता है, दान देनेवाला प्राणी इस पृथ्वी मात्र में सब का प्रिय हो

दानवानचिरेणैव तथा राजा पराञ्जयेत् । दानवानेव शक्नोति संहतान्भेदितुं परान् ॥४
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमा । न गृह्णन्ति तथाऽप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ॥५
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे । उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ॥६
दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् । दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ॥७
न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विपुधाधिवासः ॥८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मदानप्रशंसा नाम चतुर्विशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११६१३॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

न शक्या ये [1]वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु । दण्डेन तान्वशी कुर्याद्दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ॥१

जाता है । दानशील राजा दान द्वारा शीघ्र ही शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है, और दानशील ही एकता के सूत्र में बँधे हुए शत्रुओं को परस्पर भेदित करने में समर्थ हो सकता है ।१-४। यद्यपि इस दान को निर्लोभी तथा सागर के समान गम्भीर प्रकृतिवाले मनुष्य अंगीकार नहीं करते; पर वे भी इसके प्रयोग से अपने पक्ष के बन जाते हैं । आवश्यकता के अतरिक्त दूसरे स्थानों पर भी किया गया दान दूसरे लोगों को भी अपने वश में कर देता है, इसीलिए लोग सभी उपायों में दान की अति प्रशंसा किया करते हैं । पुरुषों के लिए दान कल्याण देनेवाला है तथा सभी प्रकार के उपायों से अतिश्रेष्ठ है । लोक में दानशील व्यक्ति की सर्वदा पुत्र की भाँति प्रतिष्ठा होती है । दान में तत्पर रहनेवाले दानवीर पुरुष न केवल भूलोक को ही अपने वश में करते हैं प्रत्युत उस देवराज इन्द्र के लोक को भी जीत लेते हैं, जो सचमुच अति दुर्जेय तथा देवताओं का निवास है ।५-८।

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में दान प्रशंसा नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२५

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! उपर्युक्त तीनों उपायों द्वारा जो शत्रु वश में नहीं किये जा सकते

---

[1] ङ. च. वशी ।

सम्यक्प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता । धर्मशास्त्रानुसारेण[1] सुसहायेन धीमता ॥२
तस्य साम्यक्प्रणयनं [2]यथा कार्यं महीक्षिता । वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान् ॥३
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान् । समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥४
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान् । नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति ॥५
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् । इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकं च प्रपद्यते ॥६
तस्माद्राज्ञा [3]विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः । दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ॥७
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति [4]निर्भयः । प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवा[5] यतः । मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन्यदि दण्डं न पातयेत्[6] ॥९
देवदैत्योरगगणाः[7] सर्वे भूतपतत्त्रिणः । उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ॥१०
एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च । [8]सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति ॥११

उन्हें दण्ड नीति से वश में करना चाहिये । दण्ड तो सभी मनुष्यों को वश में करनेवाला कहा गया है । किन्तु उस दण्ड नीति का प्रयोग भली-भाँति धर्मशास्त्रानुकूल मंत्री की सहायता से बुद्धिमान् राजा को करना चाहिये । राजा को उस दण्डनीति का प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये उसे सुनो । उसे अपने देश में अथवा शत्रु के देश में वानप्रस्थाश्रमी, धर्मशील, संसार की माया से विरक्त रहनेवाले, किसी से कुछ भी न लेनेवाले, धर्मशास्त्र प्रवीण पुरुषो को भली-भाँति देखकर दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिये । इस दण्ड की व्यवस्था यद्यपि सब के लिए है किन्तु राजा को अपने धर्म एवं आश्रम में रहनेवाले वर्णाश्रम की मर्यादा को माननेवाले, पूज्य, गुरु, उच्चाशैय को दण्ड नहीं देना चाहिये ।१-५। अदण्डनीय पुरुषो को दण्ड देकर तथा दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देकर राजा इस लोक में तो राज्य से भ्रष्ट हो ही जाता है उसका परलोक भी नष्ट हो जाता हैं। इसलिए धर्मशास्त्र से अनुमोदित पथ पर चलते हुए विनयशील-राजा लोगों के ऊपर अनुग्रह की भावना से दण्ड नीति का प्रयोग करे ।६-७। जिस राज्य में सत्प्रकृतिवाले राजा की देखरेख में श्यामवर्ण एवं लालनेत्रवाला दण्ड प्रचारित है उस राज्य में प्रजाएँ कभी नहीं बिगड़तीं । यदि राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न रखी जाय तो बालक, वृद्ध, आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री एवं विधवा इन सबों को मछली की भाँति आपस में ही सब खा जायँ । अर्थात् जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को हड़प जाती हैं, उसी प्रकार दण्ड व्यवस्था के न रहने से बलवान्, लोग इन उपर्युक्त असहायों को चूस डालें । यदि राजा दण्ड की व्यवस्था न बाँधे तो सभी देवता, दैत्य, सर्पगव एवं भूत प्रेत तथा पक्षी आदि अपनी-अपनी मर्यादा गवाँ बैठेंगे ।८-१०। राजा दण्ड ब्राह्मण के अभिशाप, सभी प्रकार की मार पीट एवं सभी प्रकार के पराक्रमपूर्वक क्रोध से किये गये कार्य कलापों में व्यवस्थित रहता है । दण्ड देनेवाला

---

[1] क. ख. °ण ससहा° । [2] घ. ङ. च. तथा । [3] ग. निधानेन । [4] क. पापहा । [5] ग. °विक्लवा नराः । मा° । घ. ङ. विक्लवा । [6] ग. ङ. पालये° । [7] ङ. °णाः सिद्धम्° । [8]. ङ. सर्वातिक्र° ।

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः । न [1]ब्राह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि[2] ॥१२
यजन्ते मानवाः केचित्प्रशान्ताः सर्वकर्मसु । रुद्रमग्नि च शक्रं च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥१३
विष्णुं देवगणांश्चान्यान्दण्डिनः पूजयन्ति च । दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः । राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते ॥१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि । एवं सांसिद्धिके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६
अन्धे तमसि [3]मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत् । [4]यस्माद्दण्डो दमयति[5] [6]दुर्मदान्दण्डयत्यपि ॥
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥१७

दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागो धृतः शुलधरस्य यज्ञे ।
[7]दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं[8] वरं शिशूनां च भयाद्बलस्थम् ॥१८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रशंसा नामपञ्चाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११६३१॥

व्यक्ति देवताओं से भी पूज्य हो जाता है और दण्ड न देनेवाले की पूजा कहीं नहीं होती । लोक में भी देखिये, साधारण जनता, जगत् की सृष्टि करनेवाले पितामह ब्रह्मा, जगत् के पालक पूषा तथा अर्यमा की पूजा इसलिए नहीं करते कि वे सभी कार्यों में शान्त रहते हैं । दण्ड देनेवाले रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु एवं अन्यान्य देवगणों की सभी लोग पूजा करते हैं ।११-१३। दण्ड ही सभी प्रजाओं का पालन करता है तथा वही एकमात्र सब की रक्षा भी करता है, दण्ड ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी के सो जाने पर भी सर्वदा जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान् लोग दण्ड को धर्म जानते हैं । राजदण्ड के भय से ही पापी लोग पापकर्म नहीं करते । इसी प्रकार कुछ पापी यमराज के दण्ड के भय से और कुछ एक दूसरे-प्रबल शत्रु के भय से पापाचरण में प्रवृत्त नहीं होते, इस प्रकार इस स्वाभाविक जगत् में सभी लोग दण्ड की व्यवस्था के अन्दर बँधे हुए है ।१४-१६। यदि राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता है तो वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ता है । दण्ड ही एक ऐसा उपाय है जो अभिमान से उन्मत्त लोगों को वश में करके उन्हें उसका फल भी चखाता है, इसीलिए वश में करने तथा दण्ड देने के कारण दण्ड की महिमा को बुद्धिमान् लोग जानते हैं । दण्ड ही के भय से डरे हूए देवताओं ने दक्ष के यज्ञ में शिव जी का भाग रखा था और दण्ड ही के भय से स्वामी कार्त्तिकेय को शैशवावस्था में ही सारी देवसेना का सेनापतित्व सौंपा गया था ।१७-१८।

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में दण्ड प्रसंसा नामक दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२५॥

---

१ ङ. ब्राह्मणं । २ ग. पि° । पूज्यन्ते मानवैः कैश्चित्प्र° । ३ ङ. च. °जेत यदि । ४ च. °द्दण्डयं दण्डय° । ५ क. °ति अदण्ड्याण्द° । ख. °ति अदण्ड्यान्दमय° । ६ च. न्दमय° । ७ च. चक्रुः । ८ ङ. °त्वं बलं शिशो तच्च भ° ।

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयंभुवा । देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥१
[*तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् । [1]ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः ॥२
यदाऽस्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति । नयनानन्दकारित्वात्तदा[2] भवति चन्द्रमाः ॥३
+यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते काले प्रयच्छति । तथा राज्ञा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥४
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते । तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥५
परिपूर्णं यथा चन्दं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः । तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चन्द्रप्रतिमो नृपः ॥६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्मात्पापकर्मसु । दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाऽऽग्नेयव्रते स्थितः ॥७
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते स्त्रयम् । तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्] ॥८

अध्याय २२६

मत्स्य भगवान् ने कहा—ब्रह्मा ने दण्ड की व्यवस्था के लिए तथा सभी प्राणधारियों की रक्षा के लिए ही सभी देवताओं के अंशों को लेकर राजा कीं रचना की है । तेज से देदीप्यमान होने के कारण लोग जो इसे देख नहीं सकते इसी कारण से लोकों में राजा सूर्य के समान तेजस्वी स्वामी कहा जाता हैं । इसके देखने से लोग प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं, अतः नेत्रों को आनन्द देने के कारण वह उस समय चन्द्रमा हो जाता है । जिस प्रकार समय आने पर यमराज मनुष्यों को कल्याण तथा दण्ड देता है उसी प्रकार राजा की भी समय-समय पर प्रजा के साथ दोनों नीतियों का आश्रय लेना चाहिये—राजा का यह स्वभाव यमव्रत है । जिस प्रकार वरुण पाश से बँधे हुए दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार पापाचरण करने से प्रजा को भी राजा पाशबद्ध करता है , यह उसका वारुणव्रत है ।१-५। जिस प्रकार मनुष्य पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर अति प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार जिसको देखकर प्रजा प्रसन्न होती है, वह चन्द्रमा के समान राजा ही है । पापाचरण, दुष्टप्रकृतिवाले सामन्तों तथा हिंसकों के लिए नित्य प्रतापशाली एवं तेजस्वी रूप में दण्डादि का व्यवहार करना राजा का अग्निव्रत कहा गया है । जिस प्रकार सभी प्रकार जीवों को पृथ्वी अपने ऊपर धारण करती है उसी प्रकार राजा भी सभी पापियों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर वहन करता है यही उसका पार्थिवव्रत है । राजा को इस प्रकार इन्द्र, सूर्य, वायु, यमराज, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वी के तेज

---

*धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते । + इत आरभ्यअध्यायान्तग्रन्थो ङ. च. पुस्तकयोर्नास्ति ।

---

[1] घ. च. तदा । [2] क. ख. राज्यं ।

इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च । चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोव्रतं नृपश्चरेत् ॥९
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽप्यभिवर्षति । तथाऽभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं[1] काममिन्द्रव्रतं स्मृतम् ॥१०
अष्टौ मासान्यथाऽऽदित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥११
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥१२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राज्ञो लोकपालसाम्यनिर्देशो
नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११६४३॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

[2]निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा । वस्त्रादिकसमस्तस्य तदा धर्मो न हीयते ॥१

एवं धर्म का आचरण करना चाहिये । जिस प्रकार अषाढ़ आदि चार महीनों में इन्द्र वृष्टि करता है उसी प्रकार राजा को भी अपने राष्ट्र में स्वेच्छापूर्वक दानवृष्टि करनी चाहिये—यही उसका इन्द्रव्रत कहा गया है। जिस प्रकार आठ महीने तक सूर्य अपनी किरणों से जलाशयों के जलों का पान करता है उसी प्रकार राजा भी राज्य से कर ग्रहण करे—यह उसका सर्वदा चलनेवाला सूर्यव्रत है। जिस प्रकार वायु सभी चराचर जीवों में सर्वदा विचरण किया करता है उसी प्रकार राजा को भी सभी प्राणियों तक गुप्तचरों द्वारा प्रविष्ट होना चाहिये—यही उसका वायुव्रत है ।७-१२।

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में प्रजापालन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२६॥

अध्याय २२७

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! वस्त्रादि की धरोहर को हड़प कर जानेवाले व्यक्ति को उसके मूल्य जितना दण्ड देना चाहिये, ऐसा करने से राजा का धर्म नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति बिना धरोहर रखे

---

[1] क. ख. राज्यं। [2] क. ख. क्षेप्यस्व।

यो निक्षेपं नार्पयति [1]यश्चानिक्षिप्य याचते । तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा द्विगुणं धनम् ॥२
उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः । ससहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः ॥३
यो याचितं समादाय न तद्द्याद्यथाक्रमम् । स निगृह्य बलाद्दाप्यो [2]दण्डयो वा पूर्वसाहसम् ॥४
अज्ञानाद्यादि वा कुर्यात्परद्रव्यस्य विक्रयम् । निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु [3]चोरवद्वधमर्हति ॥५
मूल्यमादाय यो विद्यां शिल्पं वा न प्रयच्छति । दण्ड्यः स मूल्यं सकलं धर्मज्ञेन महीक्षिता ॥६
द्विजभोज्ये तु संप्राप्ते प्रतिवेश्मसभोजयन् । हिरण्यमाषकं दण्ड्यः पापे नास्ति व्यतिक्रमः ॥७
आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानश्च स्वे गृहे । निष्कारणं न गच्छेद्यः स दाप्योऽष्टशतं दमम् ॥
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः ॥८
भृत्यश्चाऽऽज्ञां न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् । स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥९
संगृहीतं न दद्याद्यः काले वेतनमेव च । अकाले तु त्यजेद्भृत्यं दण्ड्यः स्याच्छतमेव च ॥१०
यो [4]ग्रामदेशसस्यानां कृत्वा सत्येन संविदम् । विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥११

ही यह दावा करता है कि मैने अवश्य रखा था और जो रखी हुई धरोहर को हड़प जाता है, वे दोनों ही चोर के समान दण्ड पाने के पात्र हैं अथवा उनको मूल्य से द्विगुणित दण्ड दिया जाय। जो कोई मनुष्य अनेक साथियों के साथ किसी दूसरे के धन को अपहृत करता है उसे सहायकों के साथ वध का दण्ड देना चाहिये अथवा अपनी इच्छानुसार किसी अन्य कठोर दण्ड का भाजन बनाना चाहिये। जो कोई व्यक्ति दूसरे से ली गयी वस्तु को समय पर वापस नही लौटाता है, राजा को चाहिये कि उसे पकड़ कर उसका निग्रह करे अथवा बलपूर्वक खूब दण्ड दे।१-४। जो व्यक्ति विना जाने हुए किसी दूसरे कि वस्तु को बेंच देता है, वह तो निर्दोष है; किन्तु जो जानते हुए भी कि यह दूसरे की वस्तु है बेंचता है चोर के समान दण्डनीय है। जो व्यक्ति मूल्य लेने के बाद विद्या अथवा शिल्प को दान नही देता, धर्म की मर्यादा को जाननेवाले राजा को उसे उस सम्पूर्ण मून्य का दण्ड देना उचित है। जो व्यक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते समय अपने पड़ोसियों को भोजन नहीं कराता उसे पुण्य न होकर पाप ही होता है। राजा को उसे एक माष सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। उसे दण्ड देने से राजा को कोई अपराध नहीं लगता।५-७। निमन्त्रण दिये जाने पर जो ब्राह्मण अपने घर रहकर भी विना किसी कारण के भोजन करने नहीं जाता उसे एक सौ आठ दम का दण्ड देना चाहिये। जो किसी वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करके भी दान नहीं करता उसे एक सुवर्ण मुद्रा का दण्ड देना चाहिये।८। जो नौकर होकर भी स्वामी की आज्ञा को अभिमान के कारण नहीं पूर्ण करता उसे राजा आठ कुण्डल का दण्ड दे और वेतन भी न दे। जो स्वामी अपने नौकर के संचित वेतन को समय पर नहीं दे देता और कुसमय में उसे नौकरी से निकाल देता है उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये।९-१०। जो व्यक्ति सत्यतापूर्वक किये गये ग्राम देश और अन्न के बटवारे को लोभ के कारण फिर झूट कहकर असत्य मानता

---

[1] क. ख. °निक्षेप्य। [2] ङ. च. °डयो द्विगुणसा°। [3] ङ. °वदण्डम्°। [4] घ. ङ. च. °शसंधानां।

क्रीत्वा विक्रीय वा [1]किंचिद्यस्येहानुशयी भवेत् । सोऽन्तर्दशाहात्तत्साम्यं दद्याच्चैवाऽऽददीत वा ॥१२
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नैव दापयेत्[2] । [3]आददन्न ददच्चैव राजा दण्डयः शतानि षट् ॥१३
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥१४
[4]अकन्यैवेति यः कन्यां [5]ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः । स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥१५
यस्त्वन्यां दर्शयित्वाऽन्यां [6]वोढुः कन्यां प्रयच्छति । उत्तमं तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम् ॥१६
[7]वरो[8] दोषाननाख्याय यः कन्यां वरयेदिह । दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्डयः शतद्वयम् ॥१७
प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां संप्रयच्छति । दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः ॥१८
सत्यंकारेण वा वाचा युक्तं[9] पण्यमसंशयम् । लुब्धो ह्यन्यत्र विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति ॥१९
दुहितुः शुल्कविक्रेता सत्यंकारात्तु संत्यजेत् । द्विगुणं दण्डयेदेनमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥२०
मूल्यैकदेशं दत्त्वा तु यदि क्रेता धनं त्यजेत् । स दण्डयो मध्यमं दण्डं तस्य पण्यस्य मोक्षणम् ॥२१

है उसे राजा को चाहिये कि अपने देश से निकाल दे। किसी वस्तु को खरीदने या बेंचने के बाद यदि कुछ मूल्य शेष रह जाता है तो उसे दस दिन के भीतर दे देना या ले लेना चाहिये। यदि दस दिन बीत जाने के बाद कोई शेष मूल्य को दे देने या दिला देने की व्यवस्था नहीं करता तो राजा उन दोनों को छः सौ मुद्रओं का दण्ड दे।११-१३। जो व्यक्ति अपनी दोष से युक्त कन्या को विना दोष को सूचित किये किसी को दान करता है, उसे राजा स्वयं छानबे पणों का दण्ड दे। जो मनुष्य विना दोष के ही किसी दूसरे की कन्या को दोषमुक्त बतलाता है, वह यदि उस कन्या के दोषों को दिखाने में असमर्थ रह जाता है तो राजा उसे सौ मुद्रा का दण्ड दे। जो व्यक्ति एक कन्या को दिखलाकर विवाह समय में किसी दूसरी कन्या को दान देता है राजा को उसे कोई कठोर दण्ड देना चाहिये। जो वर अपने दोषों को गुप्त रखकर किसी का पाणिग्रहण करता है, वह कन्या देने के बाद भी न दी हुई के समान है, राजा उस अपराधी व्यक्ति के ऊपर दो सौ मुद्राओं का दण्ड लगावे।१४-१५। जो व्यक्ति एक कन्या को किसी दूसरे को दान कर के फिर किसी दूसरे को दान करता है, उसे भी राजा को चाहिये कि किसी कठोर दण्ड का पात्र बनावे। जो व्यक्ति अपने मुँह से यह कह कर कि 'निश्चय ही इतने मूल्य पर अमुक वस्तु आप को दे दूंगा' पर फिर भी अधिक लोभ के कारण अधिक मूल्य पर किसी दूसरे के हाथ वेच देता है उसे छः सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति मूल्य लेकर कन्या का विक्रय करता है अथवा सत्य वचन से टलता है, उसे लिये हुए मूल्य से द्विगुणित द्रव्य का दण्ड देना चाहिये, यह धर्म की व्यवस्था है।१६-२०। मूल्य का कुछ भाग देने के पश्चात् यदि लेने वाला व्यक्ति उसे लेना नहीं चाहता तो उसे मध्यम दण्ड देना चाहिये और उस दिये बयाने को नहीं

---

१ क. ख. घ. शयो भ° । २ ङ· °त् । अददाद्विवदंश्चैव । ३ क. ख. °दद्विदद° । ४ च. अनवेक्ष्येति । घ. अनदोषवतीं क° । ५ घ. ङ. याद्द्वेषे° । ६ घ. ङ. वोढ़ं । ७ घ. ङ. वरे दोषमना° । ८ च. °रोऽप्ययेवं समाच्छात्त यः । ९ ङ. दत्त्वा ।

दुह्याद्धेनुं च यः पालो गृहीत्वा[1] भक्तवेतनम् । स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं चाप्यरक्षिता ॥२२
दण्डं दत्त्वा तु विरमेत्स्वामितः[2] कृतलक्षणः। बद्धः कार्ष्णायसैः पाशैस्तस्य कर्मकरो भवेत् ॥२३
धनुःशतपरीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः । द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नगरस्य तु कल्पयेत् ॥२४
वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् । छिद्रं वा[3] वारयेत्सर्वं श्वशूकरमुखानुगम्[4] ॥२५
यत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि । न तत्र कारयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणे ॥२६
अनिर्दशाहां गां सूतां वृषं देवपशुं तथा । छिद्रं वा[5] वारयेत्सर्वं[6] न दण्ड्यमनुरब्रवीत् ॥२७
अतोऽन्यथा विनष्टस्य दशांशं दण्डमर्हति* । पाल्यस्य पालकस्वामी विनाशे क्षत्त्रियस्य तु ॥२८
भक्षयित्वोपविष्टस्तु द्विगुणं दण्डमर्हसि । विशं दण्ड्याद्दशगुणं विनाशे क्षत्त्रियस्य तु ॥२९

लौटाना चाहिये। जो गोपाल (चरवाहा) उपयुक्त वेतन लेकर गौओं को दुह लेता है अथवा उनकी ठीक से रक्षा नहीं करता है तो राजा को उसे सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। दण्ड देने के बाद राजा विरत हो जाय। तदनन्तर राजा द्वारा चिह्नित किया गया अपराधी काले लोहे के बने हुये पाशों से आवद्ध होकर राजा के कथनानुसार कारागार में किसी कार्य में नियुक्त किया जाय।२१-२३। ग्राम के बाहर चारों ओर से सौ धनुष के विस्तार में उनका निवास कराये और नगर के लिये उससे दुगने या तिगुने में कारागार का निर्माण करे। उसके चारों ओर इतना ऊँचा घेरा रहे जिसके भीतर की वस्तु को ऊँट भी न देख सके। तथा उन सभी प्रकार के छिद्रों को भी, जिनमें कुत्ते तथा शूकर हिलकर भीतर जा सकें बन्द करा देना चाहिये। विना घेरे के खेत में अन्न को यदि पशुगण हानि पहुंचाते हैं तो राजा को पशु के चरवाहे को दण्ड नहीं देना चाहिये।२४-२६। उस गाय द्वारा, जिसे व्याये हुए अभी दस दिन नहीं बीता है, तथा उस वृष द्वारा, जो देवता के उद्देश्य से छोड़ा गया है यदि घेरा रहने पर भी खेत के अन्न की हानि होती है तो उसके लिए पशुपालक दण्डनीय है—ऐसा मनु ने कहा है। इन उपर्युक्त कारणों के विना यदि अन्य प्रकार से पशुओं से खेतों के अन्नादि को हानि पहुँचाती है तो खेत के स्वामी की क्षतिपूर्ति के लिये पशुपालक तथा पशुस्वामी के ऊपर दस गुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई पशु उस खेत में खाकर हानि पहुँचाने के बाद भी वहीं बैठा हुआ मिलता है तो उसके स्वामी के ऊपर उक्त दण्ड से दुगुना दण्ड लगाना चाहिये।२७-२८½। यदि खेत का स्वामी क्षत्रिय है, और वैश्य का पशु हानि पहुँचाता है तो उसे हानि का दस गुना अधिक दण्ड देना चाहिये। यदि

---

*इतः परं सार्धश्लोको न विद्यते ग. घ. पुस्तकयोः।

---

[1] ग. °त्वा तक्रवे°।
[2] ग. ङ. °मिभिः कृ°। च. °मिना कृतरक्ष°।
[3] ग. घ. ङ. वा धार°।
[4] ङ. °खागतम्। य°।
[5] ग. घ. ङ. वा धारये°।
[6] घ. °र्वं निर्दण्ड्यान्मनु°।

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं [1]वाऽपि समाहरन् । शतानि पञ्च दण्डः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥३०
सीमाबन्धनकाले तु सीमन्तं यो हि कारयेत् । तेषां संज्ञां ददानस्तु जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥३१
अथैनामपि यो दद्यात्संविदं वाऽधिगच्छति । उत्तमं सहसं दण्डच इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥३२
वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः । अकार्यकारिणः सर्वान्प्रायश्चित्तानि कारयेत् ॥३३
असत्येन प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन् ॥३४
एकैकं स चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये । फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ॥३५
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् । अस्थिमतां च सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥
पूर्णे वाऽनस्यवस्थातुं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥३६
किंचिद्देयं च विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे । अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामैर्विशुध्यति ॥३७
अन्नादिजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः । फलपुष्पोद्गतानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥३८
कृष्टानामोशधीनां च जातानां च स्वयं वने । वृथा[2] छेदेन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती ॥३९

किसी के घर, तालाब, बगीचे अथवा खेत को कोई दूसरा छीन लेता है तो इसे पाँच सौ दम का तथा यदि बिना जाने इनकी हानि पहुँचाता है तो दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये ।२९-३०। किसी खेत आदि की सीमा बाँधने के समय यदि कोई व्यक्ति सीमा का उल्लंघन करता है अथवा सीमा के उल्लंघन करने की सम्मति देता हैं तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये । शपथ करके जो व्यक्ति सीमा के उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति की बातों का समर्थन करता है, उसे उत्तमसाहस का दण्ड देना चाहिये—ऐसा स्वायम्भुव मनु ने कहा ।३१-३२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों वर्णवाले विना किसी विशेषता के समाज में अपनी स्थिति के क्रम से यदि निषिद्ध कार्य करते हैं, तो उसका प्रायश्चित करें । यदि असत्याचरण द्वारा कोई स्त्री किसी की हत्या करती है तो उसे शूद्र की हत्या में जो प्रायश्चित्त किया जाता है, करना चाहिये । सर्पादि की हत्या कर धन द्वारा दान आदि के करने में असमर्थ द्विजों को पापशान्ति के लिए एक-एक कृच्छ्रव्रत का आचरण करना चाहिये । फल देनेवाले वृक्षों को काटने के जो अपराधी हैं उन्हें सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये ।३३-३५। फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुये वृक्षों के काटने पर भी सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये । हड्डी वाले जीवों का एक सहस्र की संख्या में अथवा एक गाड़ी में भर जाने भर की हत्या करनेवाले को शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिये ।३६। हड्डीवाले जानवरों की हिंसा करके ब्राह्मण को कुछ दान देना चाहिये, और जो विना हड्डी के हैं, उनकी हिंसा करने पर प्राणायाम से शुद्धि हो जाती है । अन्नादि में उत्पन्न होनेवाले, रसादि में उत्पन्न होनेवाले तथा फल और पुष्पों के जन्तुओं की हिंसा करने पर घृत का भोजन कर लेना चाहिये । कृषि कर्म से उत्पन्न हुई तथा वन में स्वतः जमी हुई ओषधियों को विना आवश्यकता के काटने पर एक दिन का दुग्धव्रत रखना चाहिये ।३७-३९। हिंसा से उत्पन्न

---

[1] ङ. वापीमपाहरेत् । श° । [2] घ. °थारम्भे न गच्छेद्दिन° । ङ. °थारम्भान्न गच्छेद्दिन° ।

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् । [1]स्तेयदोषापहर्तृणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम् ॥४०
धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः । सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति ॥४१
मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु । कूपवापीजलानां तु शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥४२
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं [2]तन्निर्यात्य विशुद्धये ॥४३
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य तु । पुष्पमूलफलानां तु पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥४४
तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चैलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥४५
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं[3] कणान्नभुक् ॥४६
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥४७
एतैर्व्रतैर्व्यपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥४८
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु[4] च ॥४९

पातक को इन उपर्युक्त व्रतों से दूर करना चाहिये । अब चौर कर्म से उत्पन्न हुए पाप को शान्त करने के लिये उत्तम व्रत का विधान सुनिये । धान्य, अन्न एवं धन का इच्छापूर्वक अपहरण यदि ब्राह्मण अपनी जाति वालों के घर से करता है तो वह अर्धकृच्छ्रव्रत से शुद्ध होता है । मनुष्यों तथा स्त्रियों का हरण करने तथा खेत, घर, कूप और बावली के जल का हरण करने से चान्द्रायण व्रत करने पर शुद्धि मानी गई है ।४०-४२। दूसरे के घर से थोड़ी मूल्यवाली सम्पत्ति का अपहरण करके कृच्छ्र सान्तपन व्रत से शुद्धि मिलती है । भोजन की वस्तुओं के अपहरण करने पर तथा वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल एवं फलादि की चोरी करने पर पंचगव्य से शुद्धि होती है । तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा तथा मांस की चोरी करने पर तीन रात तक भोजन नहीं करना चाहिये । मणि, मोती, प्रवाल ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थर की चोरी करने पर अन्न के कणों का भोजन करना चाहिये ।४३-४६। सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरोंवाले जन्तु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, ओषधि तथा रस्सी की चोरी करने पर तीन दिनों तक केवल दुग्ध का आहार करना चाहिये । इन उपर्युक्त व्रतों के करने से चोरी के पाप से द्विज जातिवालों का छुटकारा हो जाता है ।४७½। अगम्य स्त्रियों के साथ समागम करनेवालों को निम्नलिखित व्रतों का आचरण करना चाहिये । अपनी जाति में उत्पन्न हुई पराई स्त्री के साथ समागम क के गुरुतल्प व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् इसमें गुरु की स्त्री के साथ समागम करने का प्रायश्चित्त विहित है, उसी का अनुष्ठान करना चाहिये । मित्र तथा पुत्र की स्त्री के साथ, कुमारी एवं नीच जाति की स्त्री के साथ, फुफेरी तथा

---

[1] क. ख. °यकर्त्रंप° । [2] ङ. °र्यात्याऽऽत्मशु° । [3] ग. घ. °हं फलान्न° । [4] ङ. °जादिषु । पं° ।

पैतृष्वस्रीयभगिनीं [1]स्वस्रीयां मातुरेव च[2] । [3]भ्रातुर्दुहितरं चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥५०
एताः स्त्रियस्तु भार्यार्थे नोपगच्छेत्तु बुद्धिमान् । *ज्ञातीनां च स्त्रियो यास्तु पतितानुगताश्च याः ॥५१
अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥५२
मैथुनं च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विजः । गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥५३
[4]चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥
विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥५५
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता । कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तत्तस्याः पावनं स्मृतम् ॥५६
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । +[5]तद्भैक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिवर्षैर्व्यपोहति ॥५७

ममेरी बहिन के साथ, भाई की स्त्री के साथ समागम करके चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये ।४८-५०। बुद्धिमान् पुरुष को अपनी जाति की किन्हीं स्त्रियों के साथ तथा उन स्त्रियों के साथ जो समाज से बहिष्कृत पतितों के साथ हैं, समागम नहीं करना चाहिये । जो पुरुष मनुष्य से भिन्नयोनि, ऋतुमती स्त्री तथा विना योनिद्वार के कहीं अन्यत्र, अथवा जल में वीर्यक्षरण करता है उसे कृच्छ्र सान्तपन नामक व्रत का आचरण करना चाहिये ।५१-५२। द्विजाति पुरुष को स्त्री पुरुष के मैथुन को देखकर तथा बैलगाड़ी पर, जल में, तथा दिन में मैथुन कर के वस्त्र समेत स्नान करना चाहिये । ब्राह्मण यदि अज्ञान से चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियों के साथ सम्भोग करके, उनके यहां भोजन कर उनके दिये हुये दानादि को ग्रहण करता है वह पतित हो जाता है और जानबूझकर करता है तो वह उन्हीं जातिवालों की समता में हो जाता है ।५३-५४। ब्राह्मण द्वारा दूषित स्त्री को उसका पति एक निर्जन घर में बांध दे और दूसरे की स्त्रियो में कामाभिलाषा रखनेवाले पुरुषों को भी यही व्रत कराये । यदि ऐसा करने के बाद भी वह स्त्री पुनः किसी परकीय पुरुष के साथ दूषित होती है तो उसके लिए कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कहा गया है । जो द्विज एक रात को शूद्र की स्त्री के साथ समागम करता है वह केवल एक प्रकार का भोजन एक वर्ष भर कर के जप करते हुए तीन वर्षों में शुद्ध होता है ।५५-५६। चारों जातियों के पापाचरण करनेवालों के लिए यह निस्तार की बातें मैंने कही हैं । अब पतितों के संसर्ग से होनेवाले

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठः ख. पुस्तके—ज्ञातीश्च मातुलेयास्ते पतिता उपयन्ति य इति । * एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—जातियोनिषु ये यान्ति पतितास्ते पतन्त्यघ इति । + एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—भिक्षाशी ऋग्जपी नित्यं त्रिभिर्मासैर्विमुच्यत इति ।

---

१ ङ. च स्वसारं । २ क. ख. च । मातुश्च भ्रातुरार्यायां ग° । ३ ङ. °तुराप्तस्य तां गत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । ए° । ४ ग. ण्डालीं च स्त्रियं ग° । ५ ग. ख. घ. तदेकभु° ।

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः । पतितैः संप्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम् ॥५८
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् । [1]याजनाध्यापनाद्यौनात्तुल्ययानाशनासनात्[2] ॥५९
यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः । स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥६०
पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञातिभिर्गुरुसंनिधौ[3] ॥६१
दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्सदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥६२
निवर्तयेरंस्तस्मात्तु संभाषणसहासनम्[4] । दायादस्य प्रमाणं च यात्रामेवं च लौकिकीम् ॥६३
*ज्येष्ठभावान्निवर्तेत ज्येष्ठावाप्तं[5] च यत्पुनः । ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥६४
स्थापितां चापि मर्यादां ये भिन्द्युः पापकर्मिणः । सर्वे [6]पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा प्रथमसाहसम् ॥६५
शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्यस्तु द्विशतं राजञ्छूद्रस्तु वधमर्हति ॥६६

पाप की निष्कृति का उपाय सुनिये । पतितों के घर यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन सम्बन्ध, भोजन, एक वाहन पर गमन तथा समान आसन पर बैठना—इन सब कामों में संसर्ग रखने से द्विजाति एक वर्ष में पतित हो जाता है । जो मनुष्य इन सब कर्मों में पतितों का साथ देता है वह उसी कर्म में पतितों के लिए कहे गये प्रायश्चित्त का अनुष्ठान उस संसर्गजन्य दोष से अपनी शुद्धि के लिए करे तब शुद्ध होता है; किन्तु तब तक उसे प्रेत की भाँति रहना चाहिये । और उसके सपिण्ड में उत्पन्न होनेवालों को चाहिये कि उसकी उदक क्रिया करे ।५७-६०½। किसी निन्दित दिन को सायंकाल के समय गुरु के समीप, जातिवालों के साथ उक्त विधान होना चाहिये । दासी उक्त व्यक्ति को प्रेत की भाँति समझकर जलपूर्ण घट को ईशान कोण में रखे । और वह परिवार वर्ग वालों के साथ एक रात-दिन का उपवास करे और अशौचवत् व्यवहार रखे । परिवार वर्ग को उस व्यक्ति के साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये तथा साथ बैठना भी नहीं चाहिये । इस पाप कर्मों की जाति को भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये—यही लौकिक मर्यादा है ।६१-६३। जिस प्रकार ज्येष्ठ भाई के नहीं रहने पर उसके हिस्से की प्राप्ति छोटे भाई को होती है उसी प्रकार अधिक गुणवान् होने पर भी छोटे भाई को उसका फल भोगना पड़ता है । जो पापाचरण करनेवाले प्राणी स्थापित की गई मर्यादा को उल्लंघित करते हैं, उन सब को राजा पृथक्-पृथक् जाति क्रमानुसार उत्तमसाहस का दण्ड दे ।६४-६५। यदि क्षत्रिय होकर ब्राह्मण को गाली बकता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये, यदि वैश्य है तो

---

* एतच्छ्लोकेऽयं पाठश्च पुस्तके—ज्येष्ठकार्यान्निवर्तेत ज्येष्ठलभ्यं च यत्पुनः । ज्येष्ठं संप्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽपि वेति ।

---

[1] घ. °नाद्यजनादानादालापादश° । [2] क. ख. °नादनुया° । [3] ग °धौ । दद्याद्घट° । [4] ग. °हाशन° । [5] ङ. °वाप्यं च निवृ॑तः । ज्येष्ठं समाप्नु° । [6] क. ख. °थग्दण्डनीया रा° ।

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने। वैश्यस्याप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥६७
क्षत्त्रियस्याऽऽप्नुयाद्वैश्यः साहसं पुनरेव च। शूद्रः क्षत्त्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥६८
पञ्चाशत्क्षत्त्रियो दण्ड्यस्तथा वैश्याभिशंसने। शूद्रे चैवार्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते ॥६९
वैश्यस्याऽऽक्रोशने दण्डः शूद्रश्चोत्तमसाहसम्। शूद्राक्रोशे तथा वैश्यः शतार्धं दण्डमर्हति ॥७०
सवर्णाक्रोशने दण्ड्यस्तथा द्वादशकं स्मृतम्। [1]वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥७१
एकजातिर्द्विजातिं तु वाचा दारुणया क्षिपन्[2]। जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः[3] प्रथमो हि सः ॥७२
नामजातिगृहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः। निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलनास्य दशाङ्गुलः ॥७३
धर्मोपदेशं शूद्रस्तु (स्य) द्विजानामभिकुर्वतः। तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥७४
श्रुतिं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च। वितथं च ब्रुवन्दण्ड्यो राज्ञा द्विगुणसाहसम् ॥७५
यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद्वर्णान्तरं नरः। उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन्यथाक्रमम् ॥७६

उसे दो सौ का और शूद्र है तो उसे मृत्यु का दण्ड देना चाहिये। यदि ब्राह्मण है और क्षत्रिय को कटु बातें कहता है तो उसे पचास दम दण्ड दे और वैश्य को कटूक्ति सुना रहा है तो पच्चीस दम तथा शूद्र को तो बारह दम का दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य होकर क्षत्रिय को गाली बक रहा है तो उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये और शूद्र होकर क्षत्रिय को गाली-गलौज बक रहा है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये।६६-६८। क्षत्रिय यदि वैश्य को बुरा भला बक रहा है तो उसे पचास और शूद्र को बुरा भला कह रहा है तो पचीस दम का दण्ड देना चाहिये, किन्तु ऐसा करने से उसका धर्म क्षीण नहीं होता। शूद्र यदि वैश्य को गाली बके तो उसे उत्तमसाहस का दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्र को बुरा भला सुना रहा है तो पचास दम का दण्ड देना चाहिये। यदि कोई अपने वर्णवाले को गाली गलौज बकता है तो उसे बारह दम का दण्ड देना चाहिये। और यदि ऐसी बातें कहता है, जो नहीं कहने योग्य हैं तो फिर वह दण्ड द्विगुणित हो जाता है।६९-७१। यदि द्विजाति से भिन्न जातिवाला किसी द्विजाति को कठोर वाणी से बुरा-भला सुनाता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये। नाम, जाति तथा घरेलू बातों की चर्चा करते हुए जो गाली-गलौज करता है उसके मुँह में जलती हुई लोहे की बारह अंगुल लम्बी शलाका डाल देनी चाहिये। यदि शूद्र होकर द्विजाति के धर्म की कुचर्चा करता है तो उसके कान में तथा मुख में राजा को खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये।७२-७४। वेद, देश, जाति एवं शारीरिक कार्यों के सम्बन्ध में ग्लानि करनेवाले को राजा द्विगुण साहसदण्ड दे। जो व्यक्ति स्वयं पापाचारी होते हुए दूसरी जाति वालों को बुरा-भला कहता है उसे राजा उसकी जाति के अनुरूप उत्तमसाहस दण्ड का पात्र बनावे। जो राजा के बनाये हुए नियम की अवज्ञा करते हैं अथवा राजा के प्रति विरोधमूलक बातें करते हैं उन सब को द्विगुणसाहस दण्ड देना

---

[1] ग. च. °देषु व°। [2] ग. क्षिपेत्। [3] ग. घ. च. °धन्यप्रभवो हि।

राज्ञो निवेशनियं वितथं यान्ति वै मिथः । सर्वे द्विगुणदण्डयास्ते विप्रलम्भान्नृपस्य तु ॥७७
प्रीत्या मयाऽस्याभिहितं प्रमादेनाथवा वदेत् । भूयो न चैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्धभाग्भवेत् ॥७८
काणं वाऽप्यथवा खञ्जमन्धं चापि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणं धनम् ॥७९
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् । आक्रोशयञ्छतं दण्डयः पन्थानं[1] चार्दयन्गुरोः ॥८०
गुरुवर्ज्यं तु मानार्हं यो हि मार्गं न यच्छति । स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये ॥८१
एकजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात् । तदेव च्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥८२
अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ च्छेदयेन्नृपः । अवमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो[2] गुदम् ॥८३
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः । [3]कटयां कृताङ्को [4]निर्वास्यः स्फिचं वाऽप्यस्य कर्तयेत् ॥८४
केशेषु गृह्णतो हस्तं छेदयेदविचारयन् । पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥८५
त्वग्भेदकः शतं दण्डयो लोहितस्य च दर्शकः । मांसभेत्ता च षण्निष्कान्निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥८६

चाहिये। जो व्यक्ति अपने अपराध को "मैंने भ्रमवश ऐसा किया है, अथवा मुझसे इस कार्य में प्रमाद हुआ अब भविष्य में ऐसा फिर न कहूँगा" ऐसा कहकर स्वीकार प्रतिज्ञा करता है तो वह आधे दण्ड का पात्र है।७५-७८। काना हो लँगड़ा हो अथवा अन्धा हो, यदि उन्हें अपमानित करने की टोन में कोई सचमुच उक्त विशेषणों से पुकारता है तो उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वशुर तथा गुरु—इन सब को बुरा भला कहनेवाले तथा इन गुरुजनों के मार्ग को रोकनेवाले को सौ कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। गुरु के अतरिक्त अन्य मान्य व्यक्तियों को, जो आगे से मार्ग नहीं देता है, उसे उसकी पाप शान्ति के लिए राजा एक कृष्णल का दण्ड दे।७९-८१। द्विजाति से अन्य जातिवाले व्यक्ति यदि किसी द्विज जाति वाले का किसी अंग से अपकार करता है तो राजा उसका शीघ्र ही वह अंग काट ले, इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सामने गर्वपूर्वक थूकने वाले, पेशाब करने वाले तथा अपानशब्द करनेवाले व्यक्ति को राजा क्रमशः दोनों होंठ, लिंग और गुदा द्वार काट ले। यदि कोई नीच जाति वाला व्यक्ति किसी उच्च व महान् व्यक्ति के आसन पर बैठने की इच्छा प्रकट करता है तो राजा उसकी कमर में एक चिह्न बनाकर अपने राज्य से निर्वासित कर दे अथवा उसके चूतड़ को काट ले।८२-८४। और इसी प्रकार यदि कोई निम्न जाति वाला किसी उच्च जाति के व्यक्ति के केशों को पकड़ता है तो उसके हाथों को विना विचार किये ही काट ले। इसी प्रकार का दण्ड दोनों पैरों, नासिका, कंठ तथा अण्डकोश के पकड़ने पर भी देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी के चमड़े को भेद देता है और उससे रक्त निकलता दिखाई पड़ता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेने पर छह निष्कों का दण्ड तथा हड्डी तोड़ने पर देश निकाला का दण्ड देना चाहिये।८५-८६। जो व्यक्ति किसी के अंगों को तोड़ फोड़ देता है राजा को चाहिये कि उसके उन अंगों को

---

[1] च °नं न त्यजेद्गुरोः । [2] ङ. च. °मघः श° । [3] घ ङ च. कर्णे । [4] घ. ङ. च. °र्वास्य एकं चैवा° ।

अङ्गभङ्गकरस्याङ्गं तदेवापहरेन्नृपः । दण्डपारुष्यकृद्दण्ड्यः समुत्थानव्ययं तथा ॥८७
अर्धपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्ट्रघातकः । पशुक्षुद्रमृगाणां च [१]हिंसायां द्विगुणो दमः ॥८८
पञ्चाशच्च भवेद्दण्ड्यस्तथैव मृगपक्षिषु । कृमिकीटेषु दण्ड्यः स्याद्रजतस्य च माषकम् ॥८९
तस्यानुरूपं मूल्यं च प्रदद्यात्स्वामिने तथा । स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां दण्डमेव तु ॥९०
वृक्षं तु सफलं छित्त्वा सुवर्णं दण्डमर्हति । द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथि सीम्नि जलाशये ॥९१
छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम् । गुल्मवल्लीलतानां च सुवर्णस्य च माषकम् ॥९२
वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्ड्यः कार्षापणं भवेत् । त्रिभागं कृष्णला [२]दण्ड्याः प्राणिनस्ताडने तथा ॥९३
देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु । [३]तत्स्वामिनस्तथा दण्ड्या दण्डमुक्तस्तु पार्थिव ॥९४
यत्रातिवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु । तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो नाऽऽप्तश्चेत्प्राजको भवेत् ॥९५
प्राजकश्च भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति । नास्ति दण्डश्च तस्यापि तथा वै[४] हेतुकल्पकः ॥९६

काट ले जिसके द्वारा उसने हानि पहुँचाई है तथा उतने द्रव्य का भी उस पर दण्ड करे, जितना उस आहत व्यक्ति के उठने बैठने के व्यय के लिये पर्याप्त हो। गाय, हाथी, अश्व एवं ऊँट की हत्या करने वाले का आधा हाथ तथा आधा पैर काट लेना चाहिये । राजा पशु तथा छोटे जानवरों की हत्या के अपराधी को उनके मूल्य का द्विगुणित दम का दण्ड करे ।८७-८८। मृग तथा पक्षियों की हत्या करने पर पचास दम का दण्ड करना चाहिये। कृमि तथा कीटों के मारने पर एक मासा चाँदी का दण्ड लगाना चाहिये और उसके अनकूल उसके स्वामी को मूल्य भी दिलाना चाहिये । अब मैं शेष उन अपराधों के दण्डों की व्यवस्था बतला रहा हूँ, जो अपने स्वामी की वस्तुओं की हानि पहुँचाकर किये जाते हैं। फलयुक्त वृक्ष को काटने पर अपराधी को सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये, यदि वह वृक्ष किसी खेत आदि की सीमा पर अवस्थित है अथवा जलाशय के समीप है तो उससे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये ।८९-९१। फल रहित वृक्ष को भी काटने पर मध्यमसाहस का दण्ड देना चाहिये, गुल्मों, लताओं तथा बल्लियों को काटने पर एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये । बिना किसी आवश्यकता के एक तृण को भी नष्ट करनेवाला व्यक्ति एक कार्षापण का दण्डभागी होता है। और किसी प्राणी को बिना किसी कारण के दण्ड पहुँचाने वाले को तिहाई भाग कृष्णल का दण्ड देना चाहिये । वृक्षादि के काटे जाने पर राजा देश तथा काल के अनुसार उचित मूल्य का दण्ड करे और उसे स्वयं ले ले किन्तु अपराधी उस वृक्षादि के स्वामी को भी उसका उचित मूल्य चुका दे ।९२-९४। यदि किसी चालक की गलती से रथ कहीं पर गिर पड़ता है और उससे कोई हानि हो जाती है तो ऐसे अवसर पर यदि वह चालक सुनिपुण नहीं है, नौसिखिया है, तो उसके स्वामी को दण्ड देना चाहिये और यदि चालक निपुण है तो उसी के ऊपर दण्ड लगाना चाहिये किन्तु उसे भी दण्ड नहीं देना चाहिये यदि वह घटना किसी विशेष परिस्थिति में वहाँ घटित हुई हो। जो किसी के द्रव्य को जान कर अथवा बिना जाने हुए अपहरण करता है वह राजा के सम्मुख दण्ड स्वीकार

---

[१] घ. ङ. च. हिंस्राणां । [२] ङ. च. दण्डः । [३] घ ङ. च. °मिने तथा दद्याद्दण्डमुक्तं च पार्थिवः । य° ।
[४] घ. च. वै हितजल्पतः । द्र° ।

द्रव्याणि यो हरेद्यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्यात्ततो दमम् ॥९७
यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च तां प्रपाम् । स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च संप्रतिपादयेत् ॥९८
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः । शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ॥९९
तथा भक्ष्यान्नपानानां न तथाऽप्यधिके वधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥१००
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः । महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥१०१
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति । दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य रसस्य च ॥१०२
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च । मृण्मयानां च सर्वेषां मृदो भस्मन एव च ॥१०३
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् । गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च ॥१०४
अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्धपादकः । सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥१०५
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च । मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसंभवम् ॥१०६
अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च । पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥१०७
पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च । अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात्पञ्चमाषकम्
परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥१०८

करके इसके स्वामी को सन्तुष्ट करे ।९५-९७। जो व्यक्ति किसी कुएँ पर से रस्सी अथवा घड़ा उठा ले जाता है अथवा उस कुएँ की कोई हानि करता है, उसके ऊपर एक मासा सुवर्ण का दण्ड करना चाहिये । और उसकी क्षति पूर्ति करानी चाहिये । दस घड़े से अधिक अन्न चुरानेवाले को वध का दण्ड देना चाहिये और यदि दस घड़े से कम अन्न चुराता है तो जितना अन्न उसने चुराया है उसके ग्यारह गुने अधिक मूल्य का दण्ड उस पर लगाना चाहिये । उसी प्रकार दस घड़े से अधिक खाद्य सामग्री, अन्न एवं पानादि की वस्तुओं के चुराने पर भी उसी प्रकार का दण्ड देना चाहिये किन्तु इससे अधिक के चुराने पर भी उसे वध का दण्ड नहीं देना चाहिये ।९८-९९$\frac{१}{२}$। सुवर्ण, चाँदी आदि के आभूषण तथा उत्तम वस्त्रादि, कुलीन पुरुष—विशेषतया कुलीन स्त्रियाँ तथा बड़े-बड़े पशुओं, हथियारों, ओषधियो तथा रत्नादि की चोरी करनेवाले को वध का दण्ड देना चाहिये । दही, दूध, तक्र, पानी, रस, बाँस, बैदल (?) पात्र, लवण, मिट्टी के पात्रादि, मिट्टी, राख आदि की चोरी करनेवाले को राजा देश व समय के अनुसार दण्ड की व्यवस्था करे ।१००-१०३$\frac{१}{२}$। ब्राह्मण के घर से गाय, भैंस अथवा घोड़े की चोरी करनेवाले को राजा शीघ्र ही आधे पैर का बना दे । सूत, कपास (रूई), आसव, गोबर, गुड़, मछली, पक्षी, तैल, घी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, चावल एवं उनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा पके हुए सभी प्रकार के अन्नों की चोरी करनेवाले को उस वस्तु के द्विगुणित मूल्य का दण्ड देना चाहिये ।१०४-१०७। पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली तथा अधिक अन्न की चोरी करनेवाले को पाँच मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये । प्रचुर मात्रा में अन्न, शाक मूल एवं फल की चोरी करनेवाले को —यदि वह सन्तान हीन है तो सी मुद्रा का दण्ड यदि सन्तानवाला है तो दो सी दम का दण्ड देना चाहिये । जिन जिन अंगों

निरन्वये शतं दण्डचः सान्वये द्विशतं दमः । येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते ॥१०९
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः । द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥११०
त्रपुसोर्वारुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च । तथा च सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव ॥१११
शाके शाकप्रमाणेन गृह्यमाणे न दुष्यति । वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ॥११२
तृणं गोभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् । आदेववाटिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च ॥११३
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति । शृङ्गिणं नखिनं राजन्दंष्ट्रिणं च वधोद्यतम् ॥११४
यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर । गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥११५
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥११६
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा [1]मन्युस्तं मन्युमृच्छति । [2]गृहक्षेत्राभिहर्तारस्तथाऽगम्याभिगामिनः ॥११७
अग्निदो गरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः । अभिचारं तु कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम् ॥११८

की सहायता से चोरी करता है अथवा चोरी करने की चेष्टा करता है, राजा उसका वह-वह अंग दण्डार्थ काट ले ।१०८-१०९½। यदि कोई अकिंचन ब्राह्मण पथिक मार्ग में चलते हुए दो ईख तोड़ लेता है अथवा दो मूल (कन्द, मूली आदि) उखाड़ लेता है अथवा दो खीरे या तरबूज तोड़ लेता है, अथवा दो अन्य फलों को तोड़ लेता है, या दो मुठ्ठी अन्न ले लेता है, साग ले लेता है तो वह चोरी के दोष से नहीं दूषित होता। जो व्यक्ति भोजन के लिए जंगल में उगे हुए वनस्पतियों के फल अथवा मूल को अथवा जलाने भर की लकड़ी को अथवा गौ को खिलाने के लिये घास को विना स्वामी की आज्ञा के भी ले लेता है तो उसे मनु चोरी नहीं कहते। विना देवता की वाटिका में उत्पन्न हुए पुष्प को तथा किसी दूसरे के खेत में उत्पन्न हुए पुष्प को यदि कोई देवता के लिए तोड़ता है तो उसे दण्ड नहीं देना चाहिये ।११०-११३। हे राजन् ! अपने को मारने के लिए उद्यत सींगवाले, नखवाले तथा दाढ़वाले पशुओं को जो व्यक्ति मारता है उसे कोई पाप नहीं लगता । गुरु हो, बालक हो, वृद्ध हो, ब्राह्मण हो अथवा बहुत विद्वान् क्यों न हो, यदि वह आततायी है तो अपने समीप आते ही विना विचार किये उसे मार डालना चाहिये, क्योंकि आततायी के मारनेवाले को किसी प्रकार का पाप नहीं लगता ।११४-११६। कोई व्यक्ति चाहे वह प्रकाश में कोई पाप करता है अथवा छिपकर करता है उस दोष का भागी तो होता ही है। दूसरों के घर तथा स्त्री का अपहरण करनेवाले, अगमनीय स्त्रियों के साथ समागम करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारने को उद्यत, अत्याचार परायण, राजा के विरोध में विद्रोह करनेवाले—इन सब को धर्मज्ञ लोग आततायी कहते हैं ।११७-११८½। भिक्षुक, स्त्री तथा चारणादि—यदि ये निषेध

---

[1] घ. ङ. च. °न्युस्तमनुपृच्छ° । [2] घ. ङ. च. °था पत्न्यभि° ।

एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः। *भिक्षुकोऽप्यथवा नारी योऽपि वा स्यात्कुशीलवः ॥११९
प्रविशेत्प्रतिषिद्धस्तु प्राप्नुयाद्द्विगुणं दमः। परस्त्रीणां तु संभाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपि वा ॥१२०
नदीनां चैव संभेदे स [1]संग्रहणमाप्नुयात्। न [2]संभाषेत्परस्त्रीभिः [3]प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥१२१
प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमर्हति। नैष चारणदारेषु विधिरात्मोपजीविषु ॥१२२
सज्जयन्ति मनुष्यैस्ता [4]निगूढं वा चरन्त्युत। किंचिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषेणापचारयन् ॥१२३
प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रव्रजितासु च। योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ॥१२४
सकामां दूषयाणस्तु प्राप्नुयाद्द्विशतं दमम्। यश्च [5]संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत् ॥१२५
पारदारिकवद्दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः। बलात्संदूषयेद्यस्तु परभार्यां नरः क्वचित् ॥१२६
वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत्स्त्रियाः। रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते ॥१२७

करने पर भी घर में घुस जाते हैं तो उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। तीर्थ में, जंगल में अथवा घर पर दूसरे की स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने से तथा नदी की धारा को भिन्न कर देने से संग्रहण नामक दण्ड देना चाहिये। दूसरी स्त्री के साथ तो साधारण रीति से भी वार्तालाप नहीं करना चाहिये यदि रोके जाने पर भी दूसरी स्त्री के साथ कोई सम्भाषण करता है तो उसे एक सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये।११९-१२१½। किन्तु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुर में प्रवेश कर नृत्य-गीतादि द्वारा अपनी जीविका चलानेवाले को नहीं देना चाहिये। ऐसे लोग यदि अन्तःपुर के लोगों के साथ सम्भाषण करते हैं, अथवा वहां घूमते-फिरते हैं, तो कुछ नाम मात्र का दण्ड देना चाहिये। घर से निकली हुई सभी दूतियों तथा दासियों के साथ भी यही व्यवहार करना चाहिये। जो व्यक्ति किसी कुमारी के साथ बलात्कार करता है उसे शीघ्र ही वध का दण्ड देना चाहिये।१२२-१२४। यदि कोई किसी कामुकी कुमारी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। यदि उस जगह का, जहां पर वह व्यभिचार संभव हुआ, रखवाली करनेवाला कोई पुरुष है तो उसे भी यही दण्ड देना चाहिये जो ऐसे व्यभिचारों को सम्भव बनाने में अवकाश देता है उसे दूसरे की स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले का दण्ड देना चाहिये। जो कोई किसी दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है, उसका वध दण्ड करना चाहिये और इस अवसर पर स्त्री का कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये।१२५-१२६½। जो कन्या तीसरी बार रजस्वला होकर पिता के घर पर ही अपने लिए पति का वरण कर लेती है वह राजा से दण्डनीय नहीं है। अपने घर पर दी गयी कन्या को यदि कोई पुरुष दूसरे देश में भगा

---

*इत आरभ्य दम इत्यन्तग्रन्थः क. पुस्तक एव वर्तते।

---

[1] च. संग्राहमवाप्नु। [2] ग. घ. ङ. च. °षेत्सहस्त्री°। [3] च. °द्धः पुमान्किल। यस्तु संभाषते स्त्रीभिः सु°। [4] घ. ङ. °ढं विचरन्त्यतः। किं°। [5] क. घ. च. संचारक°।

अदण्ड्या सा भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् । स्वदेशे कन्यकां दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत् ॥१२८
परदेशे भवेद्वध्यः स्त्रीचोरः स यतो भवेत् । अद्रव्यां मृतपत्नीं तु [1]संगृह्णन्नापराध्नुते ॥१२९
सद्रव्यां [2]तां संग्रहीता दण्डं तु क्षिप्रमर्हति । उत्कृष्टं[3] या भजेत्कन्या देया तस्यैव स भवेत्[4] ॥१३०
यच्चान्यं सेवमानां च संयतां वासयेद्गृहे । उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ॥
जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च ॥१३१
भर्तारं लङ्घयेद्या स्त्री[5] ज्ञातिभिर्बलदर्पिता । तां[6] च निष्कासयेद्राजा [7]संस्थाने बहुसंस्थिते ॥१३२
हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् । वासयेत्स्वैरिणीं नित्यं [8]सवर्णेनाभिदूषिताम् ॥१३३
ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् । वासश्च मलिनं नित्यं शिखां संप्राप्नुयाद्दश ॥१३४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्षत्रविट्शूद्रयोषितः । व्रजन्दाप्यो भवेद्राज्ञा दण्डमुत्तमसाहसम् ॥१३५
वैश्यागमे च विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे । मध्यमं प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमाद्भवेत् ॥१३६

ले जाता है तो वह स्त्रीचोर है और उसे भी वध का दण्ड मिलना चाहिये । बिना अलंकारादि के यदि किसी की विधवा स्त्री को कोई ग्रहण करता है तो वह कोई अपराध नहीं करता किन्तु यदि उस पति के द्रव्यादि के साथ ग्रहण करता है तो शीघ्र ही दण्ड का भागी है ।१२७-१२९½। जो कन्या अपनी जाति तथा योग्यता से उत्कृष्ट व्यक्ति को प्रेम करती है तो पिता को चाहिये कि अपनी उस कन्या को उसे ही दे दे । यदि कन्या किसी अल्प योग्यतावाले को प्रेम करती है तो उसे विशेष बन्धनों में डालकर अपने घर में रखे । यदि नीची जातिवाला कोई पुरुष उत्तम जाति की कन्या के साथ प्रेम करता है तो उसे दण्ड देना चाहिये, इसी प्रकार यदि उत्तम जाति की स्त्री किसी नीच जाति के पुरुष के साथ प्रेम करती है तो वह भी दण्डनीय है । यदि कोई स्त्री अपनी जाति वालों (पिता के पक्षवालों) के बल के अभिमान में आकर अपने पति को छोड़ देती है तो राजा को चाहिये कि उसे घर से निकाल कर सुविधा प्रद स्थान में रख दे ।१३०-१३२। समान जाति के पुरुष द्वारा दूषित स्त्री को राजा सभी अधिकारों से वंचित कर दे, वेश आदि छीन कर मलिन बना दे और उस स्वेच्छाचारिणी के केवल भोजन मात्र का प्रबन्ध कर दे । उत्तम कुल एवं जाति में उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई है तो उसका मुण्डन करा दे, नित्य मैला वस्त्र पहनने को दे और शिर में दस शिखाएँ रख दे ।१३३-१३४। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रम से क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की स्त्री के साथ दुराचरण करते हैं तो राजा उन्हें उत्तमसाहस नामक दण्ड दे । ब्राह्मण वैश्य स्त्री के साथ और क्षत्रिय अन्त्यज स्त्री के साथ यदि पापाचरण करते हैं तो मध्यसाहस दण्ड देना चाहिये और वैश्य यदि शूद्रा स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीति के अनुसार उत्तमसाहस दण्ड मिलना चाहिये ।१३५-१३६। यदि शूद्र अपनी

---

[1] क ख. ग. घ. °राध्यति । स° । [2] ग. घ. ङ. तां गृहाणस्तु दण्डमर्हति सत्तम । उ° । [3] ङ. °त्कृष्टां यो भजेत्कन्यां दे° । [4] घ. °त् । जघन्य से° । [5] घ. ङ. स्त्री स्वज्ञातिबल° । [6] घ. ङ. तां श्वभिः खादये° । [7] ग. संस्थिते सर्वसंसदि । हृ° । [8] ङ. सर्ववर्णेन दू° ।

शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्डचो महीक्षिता । वैश्यस्तु द्विगुणं राजन्क्षत्त्रियस्त्रिगुणं तथा ॥१३७
ब्राह्मणश्च भवेद्दण्डचस्तथा राजंश्चतुर्गुणम् । +अगुप्तासु भवेद्दण्डः सुगुप्तास्वधिको भवेत् ॥१३८
माता पितृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृव्यजा । पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी तथा ॥
भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद्दण्डस्तु द्विगुणो भवेत् ॥१३९
*भागिनेयी तथा चैव राजपत्नी तथैव च । तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च ॥१४०
इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः । शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा ततस्तु वधमर्हति ॥१४१
चण्डालीं च श्वपाकीं च गच्छन्वधमवाप्नुयात् ॥१४२
तिर्यग्योनिं च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते । वपनं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्याश्च यवसोदकम् ॥१४३
सुवर्णं च भवेद्दण्डचो गां व्रजन्मनुजोत्तम । वेश्यागामी द्विजो दण्डचो वेश्याशुल्कसमं पणम् ॥१४४
गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति । वेतनं द्विगुणं दद्याद्दण्डं च द्विगुणं तथा ॥१४५
अन्यमुद्दिश्य यो वेश्यां नयेदन्यस्य[1] कारणात् । तस्य दण्डो भवेद्राजन्सुवर्णस्य च माषकम् ॥१४६

जाति की स्त्री के साथ समागम करता है तो उसे राजा सौ मुद्राओं का दण्ड दे, इसी प्रकार वैश्य को समान वर्णवाली स्त्री के साथ पापाचरण करने पर दो सौ, क्षत्रिय को तीन सौ तथा ब्राह्मण को चार सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये । आश्रयहीन स्त्री के साथ पापाचरण करने पर ये उपर्युक्त दण्ड बताये गये हैं । जो सभी प्रकार के साधनों से सुरक्षित परकीय स्त्रियों के साथ दुराचार करते हैं, उनको तो इससे अधिक दण्ड मिलना चाहिये ।१३७-१३८। माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाची की सखी, शिष्य की स्त्री, उसकी सखी, तथा भाई की स्त्री—इन सब के साथ समागम करने पर पूर्व कथित दण्ड से द्विगुणित दण्ड देना चाहिये ।१३९। भानजे की स्त्री, राजा की पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्ण की स्त्री—ये सभी अगम्य मानी गई हैं । इन सबों के साथ समागम करनेवाले व्यक्ति के लिंग को कटवाकर तदनन्तर मृत्यु का दण्ड देना चाहिये । इसी प्रकार चाण्डाल की स्त्री तथा कुत्ते खानेवालों की स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले को भी वध का दण्ड देना चाहिये ।१४०-१४२। गौ को छोड़कर अन्य तिर्यक योनियों में सम्भोग करनेवाले व्यक्ति को मुण्डन का दण्ड देकर उसके लिये घास तथा जल देने का दण्ड देना चाहिये । हे मनुजेश्वर ! गौ के साथ सम्भोग करने वाले व्यक्ति को सुवर्ण का दण्ड लगाना चाहिये । वेश्या के साथ खुले रूप में समागम करनेवाले ब्राह्मण को वेश्या को दिये हुए शुल्क जितना आर्थिक दण्ड देना चाहिए । वेश्या यदि वेतन स्वीकार करने के उपरान्त अधिक शुल्क मिलने के लोभ से अन्यत्र चली जाती है तो उसे द्विगुणित दण्ड देने के उपरान्त लिये हुए शुल्क का द्विगुणित आर्थिक दण्ड भी दिया जाय । हे राजन् ! दूसरे के बहाने से यदि कोई वेश्या को किसी दूसरे के पास लिवा जाता है तो उसे एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये ।१४३-१४६। वेश्या को लाने के बाद

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—गुप्ताश्चेत्तद्भवेद्दण्ड अगुप्तास्वधिकं भवेदिति ।

* इत आरभ्य वधमर्हति इत्यन्तग्रन्थः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

---

[1] ङ. °न्यत्र का° ।

+नीत्वा भोगान्न यो दद्याद्दाप्यो द्विगुणवेतनम् । राज्ञश्च द्विगुणं दण्डं तथा धर्मो न हीयते ॥१४७
बहूनां[1] व्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणं दमम् । दद्युः [2]पृथक्पृथक्सर्वे दण्डं च द्विगुणं परम् ॥१४८
न माता न पिता न स्त्री न [3]ऋत्विग्याज्यमानवाः । अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्ड्याः शतानि
षट् ॥१४९

पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथंचन । गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥१५०
अधीयानोऽप्यनध्याये दण्ड्यः कार्षापणत्रयम् । अध्यापकश्च द्विगुणं तथाऽऽचारस्य लङ्घने ॥१५१
अनुक्तस्य भवेद्दण्डः सुवर्णस्य च कृष्णलम् । भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ॥१५२
कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा । पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथंचन ॥१५३
अतोऽन्यथा प्रहरतः [4]प्राप्नुयाच्चोरकिल्बिषम् । दूतीं समाह्वयंश्चैव यो निषिद्धं समाचरेत्[5] ॥१५४
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा स दण्ड्यः पार्थिवेच्छया । वासांसि फलकैः श्लक्ष्णैर्निर्णिज्याद्रजकः शनैः ॥

जो उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये और राजा को उसे द्विगुणित शुल्क दिलाना चाहिये, ऐसा करने से उसका धर्म नहीं हीन होता। यदि बहुत व्यक्ति केवल एक वेश्या के साथ समागम करने को उपस्थित हों तो राजा उन सबों को द्विगुणित दण्ड दे, और वे सब पृथक्-पृथक् द्विगुणित द्रव्य दण्ड रूप में उस वेश्या को अधिक दें।१४७-१४८। माता, पिता, स्त्री, पुरोहित, और यजमान—ये सब पतित होने पर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमें से किसी को छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्डभागी होता है।१४९। पतित होने पर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं, किन्तु माता नहीं छोड़ी जा सकती। गर्भ काल में धारण एवं पोषण करने के कारण माता का गौरव गुरुजनों से भी अधिक है। अनध्याय के दिन भी अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण को तीन कार्षापण का दण्ड देना चाहिए और पढ़ानेवाले अध्यापक को द्विगुणित दण्ड मिलना चाहिए, इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारों के उल्लङ्घन करने पर भी दण्ड देना चाहिए।१५०-१५१। जिन-जिन अपराधों में केवल दण्ड की चर्चा की गई है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है वहाँ-वहाँ सुवर्ण का एक कृष्णल दण्ड रूप में समझना चाहिए। स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई भी यदि अपराध करता है तो रस्सी से बाँधकर बाँस की छड़ी से भी दण्ड देना चाहिए; किन्तु शरीर के पिछले भाग पर; शिर आदि अंगों पर नहीं। इन कहे गए स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर ताडना करनेवाले को चोरी करने जैसा पाप लगता है। जो दूती को बुलाकर प्रकाश रूप में अथवा गोपनीय रूप में निषिद्धाचरण करता है उसके लिए राजा अपनी इच्छा के अनुरूप दण्ड व्यवस्था करे।१५२-१५४½। धोबी को चाहिए कि वह कोमल काठ के पीठकों पर वस्त्र को धीरे-धीरे साफ करे,

---

+ एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—नीत्वा भुक्त्वाऽन्यस्य दद्याद्दाप्यो द्विगुणवेतनम् ।

---

[1] ङ. °नां भुञ्जतां° । [2] घ. °थग्भागं द° । [3] ग. घ. ङ. च. °ज्यसूनवः । अ° । [4] क. ग. प्राप्तं स्याच्चो° । ङ. प्राप्तेः स्याद्घोर° । [5] क. ख. °त् । आच्छन्नं ।

अतोऽन्यथा हि कुर्वंस्तु दण्ड्यः स्याद्रुक्ममाषकम् । रक्षास्वधिकृतानां[1] च प्रदेयं यैर्विलुप्यते ।।१५६
कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात्करमन्यथा । तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ।।१५७
ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः[2] कार्याणि कार्यिणाम् । निर्घृणाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मापराधिनः ।।१५८
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निः स्वान्कारयेन्नृपः । कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।।१५९
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च [3]वध्यात्तत्सेविनस्तथा । अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा ।।
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् । ब्रह्मघ्नश्च सुपारश्च तस्करो गुरुतल्पगः ।।१६१
एतान्सर्वान्पृथग्धिस्यान्महापातकिनो[4] नरान् । महापातकिनो वध्या ब्राह्मणं तु विवासयेत् ।।१६२
कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु [5]चिह्नाकृतिं ततः । गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।।१६३
[6]स्तेने तु श्वपदं तद्वद्ब्रह्महण्यशिराः पुमान् । असंभाष्या ह्यसंभोज्या असंवाह्या विशेषतः ।।१६४
त्यक्तव्याश्च तथा राजञ्ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः । महापातकिनो वित्तमादाय नृपतिः स्वयम् ।।१६५

यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्ण का दण्ड देना चाहिए । राजा की ओर से रक्षा आदि स्थानों पर वियुक्त किए गए लोग यदि देय भाग को हड़प लेते हैं, राजधानी में जमा नहीं करते अथवा किसानों से कर लेकर उसे दूसरे कार्यों में लगा देते हैं, राजा उनका सर्वस्व छीन लेने के बाद निर्वासन का दण्ड दे। जो लोग अपने पद पर नियुक्त होकर अन्य कार्यार्थियों के कार्यों की हानि करते हैं, वे निर्दय क्रूरात्मा सभी उस कर्म के अपराधी हैं।१५५-१५८। जो लोग धन की गर्मी से बौखलाये हुए हों अनुचित कार्य में संलग्न हों, राजा को चाहिए कि उन सभी को निर्धन बना दे। यदि राजा के सेवक गण कूटनीति से शासन करनेवाले, प्रजा वर्ग को राजा के विरुद्ध भड़काने वाले; स्त्री, बालक तथा ब्राह्मणादि के संहारक हैं तो राजा उन सभी को वध का दण्ड दे। अमात्य हो, (प्रधान मंत्री हो) अथवा प्रधान न्यायकर्त्ता ही क्यों न हो, यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो राजा उसके सर्वस्व को छीनकर उसे अपने राज्य से बाहर कर दे।१५९-१६०½। ब्रह्महत्या करनेवाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर तथा गुरु की स्त्री के साथ सम्भोग करनेवाले—इन सब महापातकी पुरुषों को राजा पृथक्-पृथक् दण्ड दे। महापाप करनेवाले लोगों को इस प्रकार राजा दण्डित करे। किन्तु यदि ब्राह्मण ऐसा घोर पाप करता है तो उसे निर्वासित करे, अपने देश से उसके शरीर में चिह्न करके निकाले। उक्त चिह्न का विवरण सुनो। यदि ब्राह्मण गुरुपत्नी के साथ समागम करता है तो उसके शरीर में भग का आकार बनाए, मदिरापायी है तो सुराध्वज का चिह्न। उसी प्रकार चोरी के अपराध में कुत्ते के पैरों का तथा ब्रह्मघाती के शरीर में विना शिर के पुरुष का चिह्न बनाना चाहिए।१६१-१६३½। ऐसे घोर पापियों के साथ विशेष कर सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि सम्बन्धों को उनकी जातिवाले, सम्बन्धी तथा परिवार के लोग भी न करें। महापापी पुरुषों की सम्पत्ति को राजा अपने अधीन कर ले, और उसमें से दण्ड भाग को जल में वरुण के उद्देश्य

---

[1] क. ख. °कृतैश्चैव प्र । [2] ङ. घ्नन्ति । [3] क. ख. °ध्याद्विट्सेवि° । [4] ङ. °थक्कुर्यान्म° ।
[5] घ. चिह्नक्रमं त° । [6] घ. स्तेयकर्तुः पदं छिन्द्या ब्रह्महन्तुः शिरः पु° ।

अप्सु प्रवेशयेद्दण्डं वरुणायोपपादयेत् । सहोढं न विना चोरं घातयेद्धार्मिको नृपः ॥१६६
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् । ग्रामेष्वपि च[1] ये केचिच्चोराणां [2]भक्ष्यदायकाः ॥१६७
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् । राष्ट्रेषु राज्ञाऽधिकृताः सामन्ताश्चैव दूषकाः ॥१६८
अभ्याघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रं शास्यास्तु चोरवत् । ग्रामघाते मठाभङ्गे पथि मोषाभिमर्दने ॥१६९
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः । राज्ञः कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु [3]संस्थितान् ॥१७०
[4]अरीणामुपकर्तृंश्च घातयेद्विविधैर्वधैः । संधिं [5]कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥१७१
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् । तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु ॥१७२
यस्तु पूर्वं[6] निविष्टं स्यात्तडागस्योदकं हरेत् । [7]आगमं चाप्यपां [8]भिन्द्यात्स दाप्यः [9]पूर्वसाहसम् ॥१७३
कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान् । पापान्पापसमाचारान्घातयेच्छीघ्रमेव च ॥१७४
समुत्सृजेद्राजमार्गे [10]यस्त्वमेध्यमनापदि[11] । स हि कार्षापणं दण्डयस्तत्त्वमेध्यं[12] च शोधयेत्[13] ॥

से छोड़ दे। सपत्नीक चोर को राजा को मृत्यु दण्ड नहीं देना चाहिये, किन्तु चुराई हुई वस्तु के साथ ही यदि सपत्नीक भी चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा बिना किसी विचार के वध का दण्ड दे। ग्रामों में भी यदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो चोरों की भोजनादि में सहायता करते हैं, अथवा उन्हें भोजनादि बनाने के पात्र तथा रहने का निवास देते हैं तो उन सभी को राजा वध का दण्ड दे।१६४-१६७½। राष्ट्र में यदि राजा के अधिकारी तथा अधीन रहने वाले सामन्तगण युद्धादि के अवसर पर तटस्थ रहते हैं तो वे भी चोरों के समान दण्ड के भागी हैं। ग्राम में किसी विनाश के उपस्थित होने पर अथवा किसी घर आदि के गिरने के अवसर पर या मार्ग में किसी रमणी के ऊपर अत्याचार होने के अवसर पर जो राजा का अधिकारी या सामन्त अपनी शक्ति के अनुसार नहीं दौड़ पड़ता उसे सभी पविार तथा साधनों के साथ निर्वासित कर देना चाहिये। राजा के कोश को अपहृत करनेवाले, शत्रु पक्ष की ओर मिले रहनेवाले या उनकी किसी प्रकार की सहायता करनेवाले तथा शत्रु पक्ष का उपकार करने वाले लोगों को राजा विविध प्रकार का मृत्यु दण्ड दे।१६८-१७०। जो चोरगण रात में किसी के घर में सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजा उनके हाथों को कटवाने के बाद तीक्ष्ण-शूल के अग्रभाग पर रखवा दे। तलाब का बाँध तोड़ने वालों को राजा जल में डुबोकर मृत्युदण्ड दे। जो व्यक्ति तालाब में भरे हुए जल की चोरी करता है, अथवा उसमें जल के आने के मार्ग को रोक देता है उसे पूर्ववत् साहसदण्ड देना चाहिये। कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारों के तोड़नेवाले पापाचारी एवं जिनके विषय में पाप की कथाएँ प्रसिद्ध हो चली हों—ऐसे लोगों को राजा शीघ्र ही मृत्यु का दण्ड दे।१७१-१७४। बिना किसी आपत्ति के अवसर आने पर भी जो

---

[1] ग. च चोराणां भक्ष्यभोज्यादिदा°। [2] घ. भक्तदा°। [3] घ. सर्वदा। [4] ग. ङ. °पजप्तृश्च। [5] ङ. छित्त्वा। [6] घ. पूर्वनिबद्धं तु तडा°। [7] घ. स्रवणं। [8] घ. भेत्ता। [9] क. ख. वंशासनम्। को°। [10] घ. °मेध्यं नराधमः। स। [11] ग. °नातुरः। स°। [12] ङ. °स्तममे°। [13] क. ख. °त्। अजङ्ग-मोऽथ°।

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च । परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः ॥१७६
प्रथमं साहसं दण्ड्यो यश्च मिथ्या चिकित्सते । पुरुषे मध्यमं दण्डमुत्तमं च तथोत्तमे[1] ॥१७७
[2]छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकाः । प्रतिकुर्युस्ततः [3]सर्वे पञ्च दण्ड्याः शतानि च ॥१७८
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपि भेदेन दण्ड्यः प्रथमसाहसम् ॥१७९
समं च विषमं चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा । समाप्नुयात्स वै पूर्वं दमं मध्यममेव च ॥१८०
बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् । कर्षन्तो यत्र दृश्यन्ते विकृताः पापकारिणः ॥१८१
प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च भेदकम् । द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥१८२
मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः । अबीजविक्रयी[4] यश्च बीजोत्कर्षक[5] एव च ॥१८३
मर्यादाभेदकश्चापि [6]विकृतं वधमाप्नुयात् । सर्वसंकरपापिष्ठं हेमकारं नराधिप ॥१८४
अन्याये वर्तमानं च च्छेदयेल्लवशः क्षुरैः । द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ॥१८५

व्यक्ति सड़क पर मल आदि अपवित्र वस्तुओं को फेंककर उसे गन्दा करता है उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये और उसी से सड़क को स्वच्छ भी कराना चाहिए । जो चलने फिरने में असमर्थ हो वह, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक–यदि ये ऐसा अपराध करते हैं तो राजा इन्हें केवल कह दे, चेतावनी भर दे । किन्तु इनसे सफाई नहीं करानी चाहिये, ऐसी मर्यादा चली आती है ।१७५-१७६। जो वैद्य लोग झूठी दवाएं करते हैं अर्थात् वैद्य न होकर भी दवाएँ देते हैं उन्हें प्रथमसाहस दण्ड, जिनकी दवाएं निन्दित हैं, उन्हें मध्यम साहसदण्ड तथा जिनकी दवाएँ अत्यन्त अवगुणकारी हैं उन्हें उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये । राजा का छाता, ध्वजा, छड़ी एवं देवता की प्रतिमा—इनके तोड़नेवाले को पाँच सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये और उन्हीं से इन सब का प्रतिशोध भी कराना चाहिए । अदूषित वस्तुओं को दूषित अथवा भेदन करनेवाले को तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओं के तोड़नेवाले को राजा प्रथमसाहस दण्ड दे ।१७७-१७९। किसी वस्तु के मूल्य में यदि कोई कमी या वृद्धि करता है तो उसे क्रमशः पूर्व और मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये । राजा को अपराधियों के सभी प्रकार के दण्डों की व्यवस्था आम सड़क पर करनी चाहिये जिससे उस दण्ड को भुगतनेवाले पापात्मा को सभी लोग देख सकें । दुर्ग की चहारदीवारी को तोड़नेवाले, खाईं को भंग करनेवाले तथा द्वारों को तोड़नेवाले अपराधी को राजा तुरन्त अपने पुर से बाहर निकाल दे । वशीकरण, अभिचार आदि के करनेवाले को राजा दो सौ दम का दण्ड दे । खराब बीज बेचनेवाले, बोए हुए खेत को फिर से जोत कर हानि पहुँचानेवाले तथा खेतों की निर्धारित सीमा को तोड़नेवाले को राजा बुरी मृत्यु की सजा दे ।१८०-१८३½। हे नराधिप ! अच्छी धातु में किसी नकली धातु को मिलानेवाले पापात्मा सोनार को, जो अन्याय में प्रवृत्त हो गया है, छुरे से खण्ड खण्ड काट डालना चाहिये । बनिये के समीप से वस्तु लेकर जो दाम नहीं चुकाता है, या जो अच्छी वस्तु को बुरी

---

[1] ङ. °मे । संक्रमध्व° । घ. °मे । संक्रमाग्रामय° । [2] ग. क्रमस्य । [3] ग. घ. ङ. सर्वं । [4] ग. °क्रयाच्चैव बी° । [5] ग. घ. ङ. °जोत्कृष्टस्तथैव । [6] ख. °तं बन्धमा° ।

द्रव्याणां दूषको यस्तु प्रतिच्छन्नस्य विक्रयी । मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम् ॥१८६
राजा पृथक्पृथक्कुर्याद्दण्डं चोत्तमसाहसम् । शास्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः ॥१८७
देवतानां सतीनां[1] च उत्तमं दण्डमर्हति । एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणो दमः ॥१८८
कलहो यद्गतो दाप्यो दण्डश्च द्विगुणस्ततः । मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद्विप्रवासयेत् ॥१८९
लशुनं च पलाण्डुं [2]शूकरं ग्रामकुक्कुटम् । तथा पञ्चनखं[3] सर्वं भक्ष्यादन्यत्तु भक्षयेत् ॥१९०
विवासयेत्क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात्स्वकात् । अभक्ष्यभक्षणे दण्डचः शूद्रो भवति कृष्णलम् ॥१९१
ब्रह्मणक्षत्त्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम् । यः साहसं कारयति स दण्डचो द्विगुणं दमम् ॥१९२
यस्त्वेवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् । संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः ॥१९३
पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तयोः[4] कार्यो महीक्षिता । अस्पृश्यं[5] च स्पृशन्नार्यो ह्ययोग्यो योग्यकर्मकृत् ॥
पुंस्त्वहर्ता पशूनां च [6]दासीगर्भविनाशकृत् । शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः ॥१९५

बतलाता है, या जो बनिया किसी वस्तु को बाजार में छिपाकर बेचता है उन सब को मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये इसी प्रकार कूटनीति रखनेवाले को उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये । इन सभी अपराधियों को राजा अलग-अलग से उत्तमसाहस दण्ड दे ।१८४-१८६½। शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता, तथा सती की निन्दा करनेवाले पुरुष को राजा उत्तमसाहस दण्ड दे । यदि बहुतेरे व्यक्ति किसी एक व्यक्ति के प्रति कठोर दण्ड अपराध करते हैं तो उन सब को द्विगुणित दण्ड देना चाहिये । जिस व्यक्ति के ऊपर अपराध का आरोप है उसे भी द्विगुणित दण्ड देना चाहिये । जो ब्राह्मण अपने आचार विचार से अधम हो गया हैं उसे राजा अपने देश से निर्वासित कर दे ।१८७-१८९। लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे तथा पांच नखवाले (जिनके भक्ष्य का कहीं-कहीं विधान माना गया है) तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थ को खानेवाले ब्राह्मण को अपने राष्ट्र से निर्वासित कर दे । जिन पदार्थों के भक्ष्य होने का विधान नहीं है, उन्हें खाने से शूद्र को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये । तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः चौगुना, तिगुना तथा दुगुना दण्ड देना चाहिये । जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में अधिक उत्साहित करता है उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिए ।१९०-१९२। जो मनुष्य 'मैं देता हूँ' ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में दूसरे को प्रवृत्त करता है उसे भी चौगुना दण्ड मिलना चाहिए । संदेश को न देनेवाले, समुद्र में बने हुए अड्डे को नष्ट करनेवाले व्यक्तियों को राजा पचास मुद्रा का दण्ड दे । जो व्यक्ति पवित्र होकर अस्पृश्य का स्पर्श करता है, अक्षम होकर भी दुःसाध्य कार्य में हाथ लगाता है, बैलों के पुंस्त्व का अपहरण (बधिया) करता है, दासी के गर्भ को गिरवाता है, शूद्र एवं संन्यासियों के घर दैवकार्य (यज्ञादि) और पितृकार्य

---

[1] ग. घ. यत्तीनां । [2]. घ. गृञ्जनं । [3] ग. °नखात्सर्वभक्ष्यादन्यत्र भक्षिणम् । वि° । [4] क. ख. °स्तत्र का° । [5] ग. °स्पृश्यां च स्पृशन्नरभियोग्ये यो° । [6] घ. र्भधरस्तथा । शू° । ङ. °र्भकरस्तथा शू° ।

अन्नजन्बाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे । एते कार्षापणशतं सर्वे दण्ड्या महीक्षिता ॥१९७
दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्दण्ड्यस्तु कृष्णलम् । पितापुत्रविरोधे च साक्षिणां द्विशतो दमः[१] ॥
स्यान्नरश्च तथाऽर्यः स्यात्तस्याऽप्यष्टशतो दमः ॥१९८
*तुलाशासनमानानां [२]कूटकृन्नानकस्य च । एभिश्च व्यवहर्ता च स दण्ड्यो दममुत्तमम् ॥१९९
विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् । [३]विकर्णनासिकां व्योष्ठीं[४] कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्[५] ॥
ग्रामस्य[६] दाहका ये च ये च क्षेत्रस्य वेश्मनः । राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्ते कटाग्निना ॥२०१
ऊनं वाऽप्यधिकं चापि लिखेद्यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥२०२
[७]अभक्ष्येण द्विजं दूष्य[८] दण्डय उत्तमसाहसम् । क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्धकम् ॥२०३
[९]मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरुं[१०] ताडयतस्तथा । [११]राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ॥२०४

(श्रद्धादि) में भोजन करता है, निमंत्रण स्वीकार करने के बाद भी नहीं जाता—उन सब को राजा सौ कार्षापण का दण्ड दे ।१९३-१९७। अपने घर में पीडादायक वस्तु को रखनेवाले को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये। पिता और पुत्र के पारस्परिक विरोध में साक्षी देनेवाले के ऊपर दो सौ का दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उस पर एक सौ आठ दम का दण्ड लगाना चाहिये ।१९८। तराजू की डांड़ी पर तौलते समय कूट व्यापार करनेवाले को तथा बराबर इस प्रकार से व्यापार करनेवाले को राजा उत्तमसाहस दण्ड दे । विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चों की हत्या करनेवाली स्त्री को राजा कान ओंठ और नाक काटकर पशुओं द्वारा मरवा डाले। जो गाँव को जलानेवाले, खेत तथा घर को नष्ट करनेवाले तथा राजपत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाले अपराधी हैं, उन्हें भक-भक जलती हुई अग्नि में जलाकर भस्म कर देना चाहिये। जो राजा का अधिकारी राजाज्ञा को घटा बढ़ाकर दूसरे की स्त्री के साथ अपराध करनेवाले तथा चोरी करनेवाले अपराधियों को छोड़ देते हैं उन्हें भी भी उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये ।१९९-२०२। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मण को दूषित करता है उसे उत्तमसाहस का दण्ड देना चाहिये । इसी प्रकार क्षत्रिय को विधर्म करनेवाले को मध्यम, वैश्य को प्रथम तथा शूद्र को अर्धसाहस दण्ड देना चाहिये । मृतक के शरीर पर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादि को चुराकर बेचनेवाले, गुरु को पीटनेवाले, राजा के आसन पर बैठनेवाले को उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो घ. च. पुस्तकयोः—तुलानां कूटकृत्स्तेनः पिशुनश्च विशेषत इति ।

[१] ग. घ. मः । सान्तरश्च तयोर्यः । [२] क. कृन्मान° । ग. °कृत्कन° । [३] ङ विकृत्तकर्णनासोष्ठीं । [४] घ. °ष्ठीं गोभिः सह विवासये° । [५] ग. ङ. च प्रवासयेत् । [६] ख. घ. खलस्य । [७] ग. अभीक्ष्णेन । [८] ग. °ष्यन्दण्डच । [९] ख. °तुर्गां तु ता । [१०] ग. °रुं लंघयितुस्त । [११] ग. राज्ञश्चैवास° ।

यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः । तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ॥२०५
आह्वानकारी मध्यः स्यादनाह्वाने[1] तथाऽऽह्वयन्[2] । दाण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते ॥
[3]हीनः पुरुषकारेण तं दण्डयाद्दाण्डिको धनम् । [4]प्रेष्यापराधात्प्रेष्यस्तु[5] स दण्डयश्चार्धमेव च ॥२०७
दण्डार्थं नियमार्थं च नीयमानेषु बन्धनम् । यदि कश्चित्पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत् ॥२०८
अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम् । कारयेद्यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति ॥२०९
बन्धनं [6]चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः । [7]वध्यं विमोचयेद्यस्तु दण्डयो[8] द्विगुणदण्डभाक् ॥२१०
[9]दुर्दृष्टव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणो दमः । राज्ञा त्रिंशद्गुणो दण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत् ॥२११
अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद्विपुले चाल्पमेव च । ऊनाधिकं तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात्स्वकाद्गृहात् ॥२१२
यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य रक्षणे । अधर्मो नृपतेर्दृष्ट[10] एतयोरुभयोरपि ॥२१३
ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्ववस्थितम्[11] । प्रवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्समग्रधनसंयुतम् ॥२१४

जो व्यक्ति न्याय द्वारा या युद्ध में पराजित होने पर भी अपने को हारा हुआ नहीं समझता है उसे आते ही राजा को चाहिये कि पुनः जीतकर द्विगुणित दण्ड दे ।२०३-२०५। जो व्यक्ति अपराध होने पर सूचना द्वारा बुलाने से नहीं आता है और जो बिना बुलाए ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है, तथा जो अपराधी दण्ड देने वाले के हाथ से छुड़ाकर भाग जाता है—ऐसे अपुरुषार्थी लोगों को दण्ड देनेवाला न्यायकर्त्ता आर्थिक दण्ड दे । जो व्यक्ति दूत होने पर अपना कर्त्तव्य उचित रीति से नहीं निभाता उसे उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड देना चाहिये । दण्ड के लिए अथवा नियमन के लिए पकड़कर ले जाते हुए यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठ गुना दण्ड देना चाहिये ।२०६-२०८। जो व्यक्ति सामान्य वादविवाद में किसी के नख को काट लेता है या बाल काट लेता है उसके ऊपर मध्यम दण्ड लगाना चाहिये जो व्यक्ति बल द्वारा अवध्य अपराधी के बन्धनों को छोड़ देता है अथवा मृत्यु दण्ड के अपराधी को छोड़ देता है उसके ऊपर द्विगुणित दण्ड लगाना चाहिये । जो राजा के सभासद उपस्थित विषयों में पूर्ण मनोयोग नहीं देते उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये । राजा ऐसे अपराधियों को तीस गुना अधिक दण्ड दे और जल में फेंकवा दे ।२०९-२११। थोड़े से ही अपराध में अधिक दण्ड देनेवाले तथा भीषण अपराध में अल्प दण्ड देनेवाले न्यायकर्त्ता (जज) को जितना कम या अधिक दण्ड हो अपने घर से पूर्ण करना या अपराधी को लौटाना चाहिये । अवध्य अपराधी के वध करने में जितना पाप लगता है उतना ही पाप वध्य को छोड़ देने में भी लगता है, राजा को इन दोनों दशाओं में समान पापभागी होना पड़ता है ।२१२-२१३। किसी भी अपराध में अपराधी पाये गये ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड तो नहीं देना चाहिए; उसे अपने राष्ट्र से सम्पत्ति के साथ निर्वासित कर देना चहिए । कभी भूलकर

---

[1] ग. °नाहूतं त° । [2] क. ख. ङ. °न् । दण्डि° । [3] ग. घ. भीतः । [4] ग. प्रेष्योपचारप्रेष्य° । [5] घ. °ष्यस्य स दण्डश्चा° । [6] ग. घ. चाथ बध्ये वा ब° । [7] ग. मध्ये । [8] क. ख. दण्डाद्द्विगुणभाग्भवेत् । दु° । [9] घ. दुर्दिष्ट° । [10] क. ख. ग. घ. °ष्टस्तथा वध्यस्य मोक्षणे व्रा° । [11] ग. घ. °म् ।
सद्यो विवासयेद्रा° ।

न जातु ब्राह्मणं वध्यात्पातकं त्वधिकं भवेत् । यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां विवर्जयेत् ॥२१५
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥२१६
ज्ञात्वाऽपराधं पुरुषस्य राजा कालं तथा चानुमतं द्विजानाम् ।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत्तु[1] यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात् ॥२१७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२७॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११८६०॥

अथाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते । तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव ॥१

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिविधामद्भुतादिषु । विशेषेण तु भौमेषु शान्तिः कार्या तथा भवेत् ॥२

भी ब्राह्मण का वध तो नहीं ही करना चाहिए, इससे अधिक पाप लगता है। इसलिए राजा को इस ब्रह्महत्या से तो बचना ही चाहिये। अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देकर तथा जो दण्ड के पात्र है उन्हें दण्ड न देकर राजा महान् अयश प्राप्त करता है और अन्त में नरकगामी होता है। इसलिए राजा मनुष्य के अपराध को भलीभाँति जानकर उपयुक्त समय में ब्राह्मणादि की अनुमति प्राप्त कर, जो जिस प्रकार का अपराध करता है, उसको उसी प्रकार का सचमुच दण्ड दे ॥२१४-२१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म कीर्त्तन प्रसंग में दण्डनीति नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२७॥

अध्याय २२८

मनु ने कहा - हे केशव ! दिव्य, आन्तरिक्ष (आकाशीय) एवं भौम (पृथ्वी सम्बन्धी) महोत्पातों के उपस्थित होने पर जो शान्ति कही (की) जाती है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥

मत्स्य ने कहा—इसके उपरान्त अब मैं तुम्हारे पूछने पर उन अद्भुत उत्पातों के विषय में बतला

---

[1] ङ. च. °त्तु पापस्य यद्यच्छमनं च. कु° ।

अभयाचान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव । विजिगीषुः परं राजन्भूतिकामस्तु यो भवेत् ॥३
विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा परैः । तथाऽभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने ॥४
भये महति संप्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते । राजयक्ष्माभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ ॥५
सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ । भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्ते चान्नक्षये तथा ॥६
अतिवृष्टयामनावृष्टयां शलभानां भयेषु च । [1]प्रमत्तेषु च चौरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते ॥७
पशूनां मारणे[2] प्राप्ते नराणामपि दारुणे । भूतेषु दृश्यमानेषु[3] रौद्री शान्तिस्तथेष्यते ॥९
भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च । स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते ॥१०
त्र्यहातिरिक्ते पवने[4] भक्ष्ये सर्वविगर्हिते । वैकृते वातते व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते ॥११
अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे । जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते ॥१२

रहा हूँ । विशेषतया पृथ्वी सम्बन्धी महोत्पातों के अवसर पर शान्ति करनी चाहिये । हे राजन् ! आन्तरिक्ष उत्पातों के लिए अभया तथा दिव्य पातों के लिए सौम्या शान्ति कही गई है ।२½। हे राजन् ! शत्रु को जीतने की इच्छा रखनेवाला, स्वकीय ऐश्वर्य की अभिलाषा करनेवाला, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने का इच्छुक, शत्रुओं द्वारा घिरा हुआ, शत्रु पक्ष से मारण, मोहनादि अभिचारों की शंका से सुशंकित, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने को उद्यत राजा, तात्पर्य यह कि सभी प्रकार के भीषण भय का अवसर उपस्थित हो जाने पर, अभया शान्ति करे ।३-४½। राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर, किसी घाव से क्षीण होकर एवं यक्ष की कामना से सौम्या शान्ति की प्रशंसा की गई है । भूकम्प आ जाने पर, भीषण दुर्भिक्ष आ जाने पर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कुअवसर पर, टिड्डियों से भय होने पर, पागल एवं चोर से भय उपस्थित होने पर वैष्णवी शान्ति करनी चाहिये । शत्रुओं तथा मनुष्यों के भीषण संहार का अवसर आ जाने पर तथा भूत पिशाचादि के दिखलाने पर रौद्री शान्ति करनी चाहिए ।५-८। वेदों के विनाश का अवसर उपस्थित होने पर, लोगों के नास्तिक होजाने की सम्भावना पर एवं अपूज्य लोगों की पूजा होने के अवसर पर ब्राह्मी शान्ति कही गई है । अभिषेक होनेवाला हो, शत्रु की सेना से राष्ट्र को हानि पहुँचने की सम्भावना हो, अपने राष्ट्र में विभिन्नता की सम्भावना हो, शत्रु का संहार कराना हो तो ऐसे अवसर पर रौद्री शान्ति की प्रशंसा की गई है ।९-१०। तीन दिनों से अधिक दिन तक प्रबल अन्धड़ चल रही हो, सभी भक्ष्य वस्तुएँ विकृत होकर अभक्ष्य हो रही हों, अथवा देश भर में वातज व्याधि उपस्थित हो गई हो तो ऐसे अवसर पर वायु की शान्ति होनी चाहिये । सूखा पड़ जाने का भय हो अथवा घोर वृष्टि से अधिक हानि हो रही हो, अथवा जलाशयों में कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसर पर वरुण की शान्ति करानी चाहिये । अभिशाप के भय के उपस्थित होने पर भार्गव की शान्ति होनी चाहिये ।११-१२½। हे महाभुज ! स्त्री के बच्चे होने के समय यदि कोई बाधा खड़ी हो

---

[1] ग. घ. प्रवृत्तेषु ।
[2] ग. मारके ।
[3] ङ. श्यते सर्वा यमशा° ।
[4] ग. °ने रक्ते सर्वदिगुत्थिते । वै° । घ. °ने रूक्षे सर्वदिगुत्थिते । वै° ।

अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च । जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज ॥१३
उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन । बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप ॥१४
कुर्याच्छान्तिमथाऽऽग्नेयीं संप्राप्ते वह्निवैकृते । आज्ञाभङ्गे तु संजाते तथा [१]भृत्यादिसंक्षये ॥१५
अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते । अश्वानां कामयानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते ॥१६
गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते । गजानां कामयानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत् ॥१७
पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैर्ऋती स्मृता । अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्ने च तथा स्थिते ॥१८
याम्यां तु कारयेच्छान्तिं प्राप्ते तु [२]मारके तथा । धननाशे समुत्पन्ने कौबेरी शान्तिरिष्यते ॥१९
वृक्षाणां च तथाऽर्थानां वैकृते समुपस्थिते । भूतिकामस्तथा शान्तिं [३]पार्थिवीं प्रतियोजयेत् ॥२०
प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम । हस्ते स्वातौ च चित्रायामादित्ये चाऽऽश्विने तथा ॥२१
अर्यम्णि [४]सौम्यजातेषु वायव्यां त्वद्भुतेषु च । द्वितीये दिनयामे तु रात्रौ च रविनन्दन ॥२२
पुष्याग्नेयविशाखासु[५] [६]पित्र्यासु भरणीषु च । [७]उत्पातेषु तथा भाग[८] आग्नेयीं तेषु कारयेत् ॥२३

गई हो तो उस समय प्रजापति की शान्ति करानी चाहिये । हे पार्थिवनन्दन ! घरेलू वस्तुओं में अथवा शाक भाजी आदि में बेकार हो जाने के अवसर पर त्वाष्ट्री शान्ति (विश्वकर्मा की शान्ति) करानी चाहिये । हे नृप ! बालकों की बाधा दूर करने के लिये कौमारी शान्ति होनी चाहिये ।१३-१४। अग्नि में विकार उपस्थित होने पर अर्थात् आग लग जाने पर, आज्ञा भंग होने पर, सेवकादि के विनाश उपस्थित होने पर अग्नि की शान्ति होनी चाहिये । अश्वों की शान्ति कामना से अथवा उनके सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने के लिये अथवा अधिक संख्या में अश्व प्राप्ति की अभिलाषा से गंधर्वों की शान्ति करनी चाहिये ।१५-१६। हाथी की बाधा उपस्थित होने पर, उनकी कल्याण प्राप्ति की भावना से एवं गजों की प्राप्ति की अभिलाषा से आँगिरस की शान्ति करनी चाहिये । पिशाचादि का भय उपस्थित होने पर, अकाल मृत्यु के भय से तथा दुःस्वप्न देखने पर नैऋंति की शान्ति करानी चाहिये । मृत्यु का भय उपस्थित होने पर यमराज की शान्ति तथा धननाश का अवसर उपस्थित होने पर कुवेर की शान्ति करानी चाहिये । वृक्षों का तथा द्रव्यादि का विनाश उपस्थित होने पर तथा समृद्धि की अभिलाषा से पृथ्वी की शान्ति करानी चाहिये ।१७-२०। मनुजोत्तम ! दिन के पहले पहर में अथवा रात्रि के समय हस्त, स्वाती, चित्रा अथवा अश्विनी नक्षत्र के सूर्य के जाने पर वायव्यकोण में यदि अद्‌भुत उपद्रव दिखाई पड़ता है तों आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये । हे रविनन्दन ! दिन के दूसरे पहर में अथवा रात्रि के दूसरे पहर में सूर्य के पुष्य, भरणी और विशाखा नक्षत्र में जाने पर आग्नेय कोण अथवा दक्षिण दिशा में यदि कोई उत्पात दिखाई पड़ता है तो आग्नेयो शान्ति करानी

---

१ घ. त्याभिसं° । २ क. ख. नरक । ध. ङ. मरके । ३ ङ. °वीं संप्रयो° । ४ ग घ. °म्णि सोमजा° । ५ क. ख. °ग्नेये वि° । ६ ग. चित्रासु । ङ. °त्र्याजभ° । ७ ग. त्पाता ये त° । ८ क. ख. भाग्ये ।

तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन । रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते[1] ॥२४
ज्येष्ठायां च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित् । ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्या शान्तीरविकुलोद्वह ॥२५
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ वा रविनन्दन । सार्पे पौष्णे तथाऽऽर्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे ॥२६
[2]मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा । वारुणी तेषु कर्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता[3] ॥२७
[*मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित् । तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषु च नान्यथा ॥
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते ॥२८

बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्राजन् नृणां संनहनैर्युतानाम् ।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम् ॥२९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२८॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११८८९॥

चाहिये ।२१-२३। हे रविनन्दन ! दिन के तीसरे पहर में अथवा रात्रि में रोहिणी, अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में सूर्य के जाने पर यदि ईशान कोण में, पूर्व दिशा में अथवा अग्नि कोण में कोई अद्भुव उत्पात दिखाई पड़ता है तो इन्द्र की शान्ति करानी चाहिए । हे रविनन्दन ! दिन अथवा रात्रि के चौथे पहर में आश्लेषा, पुष्य, आर्द्रा अथवा मूलनक्षत्र में सूर्य के जाने पर, पश्चिम दिशा में अद्भुत उत्पात दिखाई पड़ने पर राजा को वरुण की महाशान्ति करानी चाहिये ।२४-२७। यदि मध्याह्न के समय कहीं पर अद्भुत उत्पात होंते हैं तो उस समय दोनों प्रकार की शान्ति करानी चाहिए । इन उपर्युक्त कारणों के उपस्थित होने पर ही शान्ति करानी चाहिए, अन्यथा नहीं । विना किसी कारण के की गई शान्ति बेकार हो जाती है । राजन् ! जिस प्रकार कवच से सुरक्षित शरीर वाले मनुष्यों को बाणों का प्रहार कोई हानि नहीं पहुंचाता, उसी प्रकार धर्मपरायण एवं शान्ति कराने वाले मनुष्यों को दैव के प्रहार भी कोई हानि नहीं पहुंचा सकते ॥२८-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुतशान्ति नामक दो सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥२२८॥

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति ।

---

[1] क. ख, श्वदेव° । [2] घ. मूल्ये । [3] घ. ङ. °ता । भिन्नम° ।

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

अद्भुतानां फलं देव शमनं च तथा वद । +त्वं हि वेत्सि विशालाक्ष ज्ञेयं सर्वमशेषतः ॥१

मत्स्य उवाच

अत्र ते [1]वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः । अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥२

+सरस्वत्याः[2] सुखासीनं गर्गं स्रोतसि पार्थिव । पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिर्मुनिजनप्रियम् ॥३

अत्रिरुवाच

नश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे । नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वं वदस्व माम् ॥४

गर्ग उवाच

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवताः । ततोऽपरागाद्देवानामुपसर्गः प्रवर्तते ॥५

अध्याय २२९

मनु ने कहा—देव ! इन अद्भुत उत्पातों के घटित होने का परिणाम क्या होता है ? और उनकी शान्ति का उपाय भी मुझे बतलाइये । हे विशालनेत्रोंवाले ! तुम इन सभी बातों के परम जानकार हो ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु ! इस विषय में मैं तुम्हें यह बात बतला रहा हूँ जिसे महातपस्वी एवं सभी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ वृद्ध गर्ग ऋषि ने अत्रि से कहा था । हे राजन् ! सरस्वती के तट पर एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए सभी मुनियों के प्रिय गर्ग ऋषि से महातेजस्वी अत्रि ने पूछा ।२-३।

अत्रि ने कहा—महर्षे ! विनाशोन्मुख मनुष्यों की, राजाओं की, तथा नगरों की, विनाश के पूर्व क्या दशा होती है, उसे अविकल रूप में मुझे बताइये ।४।

गर्ग ने कहा—अत्रे ! मनुष्यों के अत्याचारों से देवतागण बहुत दुःखी हो जाते है और उन्हीं की अप्रसन्नता से विनाशसूचक महाउत्पात प्रारम्भ होता है । वह विनाशसूचक उत्पात दिव्य आन्तरिक्ष एवं पार्थिव—इन तीन भेदों से तीन प्रकार का होता है। ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकारों के दिखाई पड़ने पर दिव्य

+एतस्मिन्नर्धेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—यथा वेत्स्याम्यहं सम्यक्प्रब्रूहि वदतां वरेति । *न विद्यतेऽयं श्लोको ङ. पुस्तके ।

---

[1] घ. ङ. च. वर्तयि° । [2] क. °स्वत्यां सु° । घ. °स्वत्यामुपासी° ।

दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं संप्रकीर्तितम् । ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ॥६
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेषस्तथैव च । गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या ॥७
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत् । चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः ॥८
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् । भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते ॥९
अभ्रजं[1] मध्यफलदं[2] मध्यकालफलप्रदम् । अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत् ॥१०
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत् । अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते ॥११
त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्भयकारकम् । राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे[3] पुरोहिते ॥१२
पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने । ऋतुस्वभावाद्राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः ॥१३
शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः शृणु । वज्राशनिमहीकम्पसंध्यानिर्घातनिःस्वनाः ॥१४
[4]परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः । [5]द्रुमोद्भेदकरस्नेहो बहुशः [6]सफलोद्गमः ॥१५

उत्पात जानना चाहिये । आन्तरिक्ष उत्पात को मैं बतला रहा हूँ, सुनो । उल्कापात, दिशाओं का दाह, मण्डलों का उदय, आकाश में बन्धर्व नगर दिखाई पड़े, खण्ड वृष्टि, अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि होंने लगे—इन्हें तथा इसी प्रकार के अन्यान्य उपद्रवों को आन्तरिक्ष उत्पात समझना चाहिये ।५-७½। स्थावर एवं जंगम पदार्थों में विकारों का उत्पन्न होना तथा भूकम्पादि का होना, ये भौम उत्पात हैं । जलाशयों में विकारों के उत्पन्न होने को भी भौम उत्पात मानते हैं । यह भौम उत्पात थोड़े फलों को देता है, और बहुत देर में शान्त होता है । आन्तरिक्ष उत्पात मध्यमफल देनेवाला होता है और मध्यमकाल में अर्थात् न बहुत शीघ्र न बहुत देर में परिणामदायी होता है । इस महोत्पात के उदय होने पर यदि कल्याणदायी वृष्टि हो जाती है, तो वह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताह के अन्दर उस महोत्पात का फल भी नष्ट हो जायेगा ।८-१०½। किन्तु इस महान् उत्पात का अवसान विना शान्ति कराये कभी नहीं होता । इसे तीन वर्षों के भीतर महान् भयदायक मानना चाहिये । राजा के शरीर में, अन्य लोगों के शरीर में, पुर, द्वार तथा पुरोहित के शरीर में राजपुत्रों में तथा कोषाध्यक्ष के शरीर में उस उत्पात का दुर्विपाक होता है । राजेन्द्र ! ऋतुओं के स्वभाव के कारण कुछ अद्भुत उत्पात मंगल की सूचना देनेवाले होते है, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो ।११-१३½। वज्र एवं बिजली का गिरना, पृथ्वी का कम्पन, सन्ध्या के समय वज्र का शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमा में मण्डलों का होना, धूलि और धुएँ का उद्भव, उदय एवं अस्त के समय सूर्य की अति लालिमा, वृक्षों के टूट जाने पर उनसे रस का गिरना, फलवाले वृक्षों की अधिकता, गौ, पक्षियों और मधु की वृद्धि—ये सब उत्पात यदि चैत्र और वैशाख मास में होते हैं, तो मांगलिक हैं ।१४-१५½। कलुषित नक्षत्रों एवं ग्रहों के पतन, सूर्य एवं चन्द्र

---

[1] घ. जं चाप्यफलदमल्पकालफ° । [2] ङ. °दं शान्त्या चैवोपशाम्यति । अ° । [3] घ. ङ. च. पुरे द्वारे । [4] घ. ङ. °मनोद° । [5] ङ. च. द्रुमेभ्यो भवति स्ने° । [6] क. °फलद्रुमः ।

गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधुमाधवे । ऋक्षोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्[1] ॥१६
कृष्णश्वेतं तथा पीतं धूसरध्वान्तलोहितम् । रक्तपुष्पारुणं सांध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ॥१७
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् । शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम् ॥१८
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं ह्रसनं दारणं क्षितेः । [2]नद्युदपानसरसां विधूनतरणप्लवाः ॥१९
शृङ्गिणां च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते । शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ॥२०
[3]रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी । दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ॥२१
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः[4] । दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ॥२२
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी । गीतावादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु ॥२३
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः । हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम् ॥२४
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् । चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु[5] गोजाश्वमृगपक्षिषु ॥
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥२५

के मण्डलों के कपिल वर्ण का होना, सायंकालीन नभ के काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल, लाल वर्ण, एवं लाल पुष्प के समान विशेष अरुण का होना अथवा ऐसा दिखाई पड़ना मानो विक्षुब्ध समुद्र हो, तथा नदियों के जलों का एकाएक सूखना, ये सब उत्पात यदि ग्रीष्म ऋतु में होते हैं तो इन्हें शुभ कहना चाहिये।१६-१७½। इन्द्र धनुष का मण्डलाकार उदय, विद्युत् एवं उल्का के पतन, पृथ्वी में आकस्मात् कम्पन, इधर उधर उलटना, विकृति आना, ह्रास होना, नदियों एवं तालाबों में जल की न्यूनता, नाव, जहाज एवं पुल का कांपना, सींगवाले जानवरों तथा शूकरों की वृद्धि—ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में मंगलकारी हैं।१८-१९½। शीतल वायु, ओले का पड़ना, पशु एवं पक्षियों का चिग्घाड़ना एवं बोलना, राक्षस, भूत, और पिशाचों का दिखाई पड़ना तथा देववाणी, धूम से अन्धकारित आकाश, वन और पर्वत सहित दिशाएँ, तीव्र सूर्योदय और सूर्यास्त ये हेमन्त ऋतु में शुभ हैं।२०-२१½। दिव्य स्त्री, गन्धर्व और विमानों का अद्भुत दर्शन, ग्रह, नक्षत्र, तारों का दर्शन, अशरीरी वाणी वनों में और पर्वतों की चोटियों पर गाने और बाजों के शब्दों का सुनाई पड़ना अन्नों की वृद्धि, रस की विशेष उत्पत्ति—ये सब उत्पात शरत्काल में मांगलिक हैं।२२-२३½। हिमवात, झंझा वायु का बहना, विरूप एवं अद्भुत उत्पातों का दर्शन, आकाश का काले कज्जल के समान दिखाई पड़ना, ताराओं एवं उल्काओं का गिरना, पिंजड़े के समान आकाश का दिखाई पड़ना, स्त्रियों से विचित्र सन्तानों की उत्पत्ति, इसी प्रकार गाय, बकरी, घोड़ी, मृगी एवं पक्षियों से भी विचित्र प्रकार के बच्चों का पैदा होना, पत्तों, अंकुरों एवं

---

१ घ. ङ. °म् । अनग्निज्वलनस्फोटधू° । २ क. ख. घ. नद्योद° । ३ घ. °क्षोयक्षपि° । ङ. च. °क्षोयक्षादिसत्त्वानां । ४ ङ. °ताः । देवगन्धर्वरूपं च वि° । ५ च. °षुगजा° ।

ऋतुस्वभावेन विनाऽद्भुतस्म जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव ।
यथागमं शान्तिरनन्तरं तु कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन ॥२६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिकोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९१५॥

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

*गर्ग उवाच

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च । वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम् ॥१
आरटन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च । उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च ॥२
भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान् । अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च ॥३

लताओं में अनेक प्रकार के विकारों का हो जाना, ये सब उत्पात शिशिर ऋतु में शुभदायी माने गए हैं । इनके अतिरिक्त ऋतु के स्वभाव के विना यदि अद्भुत उत्पात देखे जाँय या सुने जाँय तो पृथ्वीपति को चाहिए कि शास्त्रानुकूल, जैसा कि उनका विधान कहा गया है, तुरन्त शान्ति करा दे ।२४-२६।

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत उत्पातों की शान्ति नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२९॥

अध्याय २३०

गर्ग ने कहा—अत्रे ! जब देवताओं की मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपने लगती हैं, जलने लगती हैं, अग्नि, धूआँ, तेल, रक्त, चर्बी आदि उगलने लगती हैं, जोर-जोर से चिल्लाने लगती हैं, रोने लगती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसने लगती हैं, उठने लगती हैं, बैठने लगती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुंह बजाने लगती हैं खाने लगती हैं, अथवा भय प्रदर्शन करने लगती हैं, कोष हथियार, ध्वजा आदि को इधर-उधर करने लगती हैं, नीचे मुँह किये स्थित हो जाती हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने लगती हैं, जैसा की ऊपर भी कहा जा चुका है, अग्नि, धूम, रक्त, चर्बी तथा तेल को उगलने लगती

---

* एषोऽध्यायो न विद्यते ङ. च. पुस्तकयोः ।

वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम् । एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः ॥
लिङ्गायतनविप्रेषु[1] तत्र वासं[2] न रोचयेत् ॥४
राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति । देवयात्रासु चोत्पातान्दृष्ट्वा देशभयं वदेत् ॥५
पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासं न रोचयेत् । पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥६
ज्ञेयं सेनापतीनां तु यत्स्यात्स्कन्दविशाखजम् । लोकानां विष्णुवस्विन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम्] ॥७
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः । देवप्रेष्यान्नृपप्रेष्या देवस्त्रीभिर्नृपस्त्रियः ॥८
वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा । देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥९
देवतार्चां तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्य भूषयेत् । पूजयेच्च महाभाग गन्धमाल्यान्नसंपदा ॥१०
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् । तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ॥
पुरोधा जुहुयाद्वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥११

हैं—इस प्रकार के तथा अन्यान्य आकस्मिक उत्पात यदि शिवलिंग, देवमन्दिर तथा ब्राह्मणों के पुर में दिखाई पड़ते हैं तो ऐसे स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए ।१-४। ऐसे उत्पातों के होने पर राजा पर या तो कोई बड़ी विपत्ति आती है अथवा उस देश का विनाश होता है । देवता के दर्शन के लिए जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखाई पड़े तो उस देश को भय बतलाना चाहिए । ऐसे अवसर पर उस देश में अपने पिता पितामहादि द्वारा बनाए गये भवनों में भी निवास नहीं करना चाहिये । पशुओं के ऊपर जो उपद्रव या भय होते हैं वे रुद्र से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, राजाओं के उपद्रव लोकपालों के कोप से होते हैं, इसी प्रकार सेनापतियों की आपत्तियाँ स्वामिकार्त्तिकेय के कोप से तथा साधारण प्रजा के ऊपर जो उत्पात होता है वह विष्णु, वसु, इन्द्र, एवं विश्वकर्मा से सम्बन्ध रखनेवाले हैं ।५-७। गणों के नायकों पर जो उत्पात होते हैं उनका कारण विनायक का कोप है, देवताओं के दूतों की अप्रसन्नता से राजदूतों पर तथा देवांगनाओं के कारण राजपत्नियों पर उत्पात घटित होते हैं । ग्रहों के ऊपर जो उपद्रव दिखाई पड़ते हैं वे भगवान् वासुदेव से सम्बन्ध रखते हैं । देवताओं में उपर्युक्त विकारों के उत्पन्न होने पर वेदों के ज्ञाता पुरोहित देवमूर्ति के पास जाकर उसे स्नान कराए और वस्त्रादि से अलंकृत करे ।८-९½। हे महाभाग ! इस प्रकार वह वेदज्ञ ब्राह्मण उक्त मूर्ति की सुगंधि, पुष्पमाला एवं अन्यान्य पूजन की सामग्रियों से पूजा करे, तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे । हे राजन् ! फिर वह ब्राह्मण सावधानतापूर्वक उक्त प्रतिमा को उसके मंत्रों से स्थालीपाक द्वारा सात दिनों तक अग्नि में आहुति प्रदान करे । हे नरेन्द्र ! उक्त सातों दिनों तक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियों से तथा उत्तम

---

[1] घ. °न चित्रेषु । [2] घ. वासो न रोचते । रा° ।

विप्राश्च पूज्या [1]मधुरान्नपानैः सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र ।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षितिगोप्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥१२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेद्भुऽतशान्तवर्चाधिकारो नाम त्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९२७॥

अथैकत्रिंशदकधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे[2] यस्य निरिन्धनः । न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीडयते नृपैः ॥१
प्रज्वलेदप्सु[3] [4]मासं वा [5]तदर्धं वाऽपि किंचन । प्रकारं तोरणं द्वारं नृपवेश्म सुरालयम् ॥२
एतानि यत्र दीप्यन्ते[6] तत्र राज्ञो भयं भवेत् । विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदाऽपि नृपतेर्भयम् ॥३
अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांशुरजांसि च । धूमश्चानग्निजो यत्र यत्र [7]विद्यान्महाभयम् ॥४

दक्षिणा देकर ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिए और आठवें दिन पृथ्वी सुवर्ण तथा गौ के दान ब्राह्मणों को देने चाहिए, तब यह पाप शान्त होता है ॥१०-१२॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति के प्रसंग में पूजाधिकार नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

अध्याय २३१

गर्ग ने कहा—जिस देश में विना अग्नि का ईंधन जल उठता है, या विना ईंधन के ही अग्नि जलती रहती है अथवा ईंधन लगाने पर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती वह देश राजाओं से पीडित होता है । जल में मांस जलने लगता है, अथवा कोई भाग जल जाता है, किले के चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन एवं देवालय अकस्मात् जल उठते हैं वहाँ पर राजा को भय होता है । यदि ये उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरने से जल जाती हैं तब भी राजा को भय होता है ।१-३। विना रात्रि के ही आकाश तथा भूमण्डल में जब अंधकार छा उठता है, विना धूलि उड़े ही आकाश धूसरित हो जाता है, विना अग्नि के

---

[1] ग. °धुनाऽन्नं° । [2] ङ. °ष्ट्रे भृशमनिष्टदः । न° । च. °ष्ट्रे भृशमनिष्टकृत् । न । [3] ङ. °लेदाशु मार्गे वा तथार्धे वासिकेन च । प्रासादतो° । [4] क. ख. मांसं । [5] क. ख. तथाऽर्द्रं वा° । [6] ग. दह्यन्ते ! [7] क. ख विन्द्यान्म° ।

[1]तडित्त्वनभ्रे गगने भयं स्याद्दृक्षवर्जिते । दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥५
ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने । पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु ॥६
आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च । निर्गमत्सु च कोशाच्च सङ्ग्रामस्तुमुलो भवेत् ॥७
विनाऽग्नि विस्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रचित्[2] । स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूंषि विकृतानि च ॥८
विकारश्चाऽऽयुधानां स्यात्तत्र सङ्ग्राममादिशेत् । त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः ॥९
समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च । होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥१०
दद्यात्सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च ।
एवं कृते पापमुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र[3] ॥११

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावग्निवैकृत्यं नामैकत्रिंशदधिद्विशततमोऽध्यायः ॥२३१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९३८॥

धूएं दिखाई पड़ने लगते हैं, उस स्थान पर भी महाभय को उपस्थित जानना चाहिए। विना बादलों के ही आकाश में विजली का प्रकाश हो, रात कों आकाश में विना बादलों के भी ताराओं का अभाव हो, दिन में गगनमण्डल तारायुक्त हो, इस प्रकार के उत्पातों से भी भय की आशंका होती है। ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकार का हो जाना, ताराओं में विषमता का दिखाई पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रों का अपने ही प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना, कोश से रत्नादि का निकलना तुमुल संग्राम का सूचक है।४-७। विना अग्नि की चिनगारियाँ कहीं यदि दिखाई पड़ने लगे, विना खींचे स्वाभाविक ढंग से धनुष की डोरियाँ यदि चढ़ जायँ, या विकृत हो जायँ, शस्त्रास्त्रों में विकार हो जाय, तो वहाँ भी संग्राम की आशंका होती है। ऐसे उत्पात जहाँ दिखाई पड़ते हों वहाँ का पुरोहित तीन रात्रि का उपवास कर सन्तुष्ट चित्त से दूधवाले वृक्षों की लकड़ियों से, सरसों तथा घी से अग्नि के मंत्रों का उच्चारण करते हुये हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करवाये और दक्षिणा रूप में उन्हें सुवर्ण, गौएं तथा पृथ्वी आदि का दान दे। हे द्विजेन्द्र ! ऐसा करने से वह अग्नि विकार सम्बन्धी पाप नष्ट हो जायेगा।८-११।

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति के प्रसंग में अग्निविकार नामक
दो सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

---

[1] ग. °डिद्धमन्ते गगने भयं स्यान्मेधव° । [2] ङ. च. °त् । अनारोप्याभिपू° । [3] ङ. च. नृपेन्द्र ।

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः । रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसान्बहून् ॥१
अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्त्यथ द्रुमाः । फलं [1]पुष्पं तथाऽकाले[2] दर्शयन्ति त्रिहायनाः ॥२
पूर्ववत्स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथाऽन्तरे । क्षीरं स्नेहं तथा रक्तं मधु तोयं स्रवन्ति च ॥३
शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः । उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः ॥४
तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्विपाकं फलमेव च । रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमम् ॥५
शाखाप्रपतनं कुर्यात्सङ्ग्रामे योधपातनम् । बालानां मरणं [3]कुर्युरकाले पुष्पिता द्रुमाः ॥६
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमथान्तरे । क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे [4]दुर्भिक्षलक्षणम् ॥७
वाहनापचयं मद्ये रक्ते सङ्ग्राममादिशेत् । मधुस्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्रावे न वर्षति ॥८

अध्याय २३२

गर्ग ने कहा—जिन ग्रामों में देवताओं द्वारा प्रेरित वृक्ष रोते हुए, हँसते हुए, प्रचुर परिमाण में रस बहाते हुए विना किसी रोग के तथा विना वायु के वेग के डालियाँ गिराते हैं अथवा विना समय के तथा तीन वर्ष के पुराने वृक्षों में फल और फूल दिखाई पड़ते हैं। और वृक्षों के बगीचों में कोई कोई पूर्ववत् ऋतु काल की भाँति अपने को फलों तथा पुष्पों से लदे हुए दिखाते हैं, दुग्ध, तैल, रक्त, मधु, तथा जल बहाते हैं, विना किसी रोग के ही शीघ्र सूख जाते हैं या सूखने पर पुनः अंकुरित होने लगते हैं, गिर कर भी उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े रहने पर भी अकस्मात् गिर पड़ते हैं तो उस स्थान पर इन उपद्रवों से जो परिणाम अथवा विनाश होता है, हे ब्रह्मन् ! उसे मैं तुम्हे बतला रहा हूँ, सुन १-४½। वृक्षों के रुदन करने पर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसने पर देश में संकट एवं सन्देह की बृद्धि होती है, शाखाओं के गिरने से संग्राम में योद्धाओं का विनाश होता है, विना समय के फूलने से बालकों की अधिक संख्या में मृत्यु होती है। वृक्ष समूहों में से किसी किसी के फलने फूलने पर अपने राष्ट्र में भिन्नता होती है। गाय के दूध गिरने से चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेल गिरने से महादुर्भिक्ष पड़ता है, मदिरा के गिरने से वाहनों का विनाश होता है, रक्त से संग्राम की सम्भावना बढ़ती है, मधु चूने से व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरने से बृष्टि नहीं होती।५-८। हे ब्रह्मन् ! विना किसी रोग के वृक्षों के सूख जाने को दुर्भिक्ष का लक्षण कहा जाता है, सूखे हुए

---

[1] क. ख. मूलं। [2] क. ख. घ. कालं। [3] क. ख. घ. कुर्याद्बालानां फलपुष्पता। स्व°। [4] ग. °क्षणं परम्। वा।

अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन्दुर्भिक्षलक्षणम् । शुष्केषु संप्ररोहस्तु वीर्यमन्नं च हीयते ॥९
उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत् । स्थानात्स्थानं तु गगने देशभङ्गस्तथा भवेत् ॥१०
[1]ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम् । एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते ॥११
पुष्पे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत् । अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ॥१२
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् । वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये ॥१३
शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्[2] । रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः ॥१४
मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन संपूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात् ।
गीतेन नृत्येन तथाऽर्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥१५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशमनं नाम द्वाविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

आदितः श्लोकानां समष्टच्यङ्काः ॥११९५३॥

वृक्ष में से हरियाली फूटने पर वीर्य (पराक्रम) एवं अन्न की हीनता बढ़ती है। गिरे हुए वृक्षों के उठने से भेदकारी भय देश में फैलता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से देशभंग होता है, वृक्षों के अकस्मात् जलने से तथा रुदन करने से सम्पत्ति का विनाश होता है, ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षों में होते हैं तो अवश्य ही राजा पर विपत्तियाँ आती हैं।९-११। वृक्षों के फलों तथा फूलों में विकार हो जाने से राजा की मृत्यु की सूचना मिलती है, इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षों में भी उपद्रव के लक्षणों के दिखाई पड़ने पर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्ष को ऊपर से ढँककर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्प एवं मालाओं से विभूषित करे और पाप की शान्ति के लिए वृक्ष के ऊपर छाता लगाये। तदनन्तर शिव की पूजा करे और पशु को 'रुद्रेभ्यः' इस संकल्प से निवेदित कर वृक्षों के नीचे हवन कर शिव का जप करे। मधु तथा वृक्ष से युक्त पायस से (दूध और चावल से पकायी गई खीर) ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर पृथ्वी का दान दे, और उस पाप की शान्ति के लिए गीत तथा नृत्य का आयोजन कराकर भगवान् शंकर की आराधना करे।१२-१५।

श्री मात्स्य महापुराण के अद्भुत शान्ति प्रकरण में वृक्षोपताप-प्रशमन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३२॥

---

[1] ङ. °त्स्वल्पेषु वृ° । [2] घ. ङ. °त् । मूलेभ्य इति षड्ढोमान्कृत्वा ।

अथ त्रियस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादि भयं मतम् । अनृतौ तु दिवाऽनन्ता वृष्टिर्ज्ञेया भयानका ॥१
अनभ्रे वैकृता चैव विज्ञेया राजमृत्यवे । शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम् ॥२
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत् । अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं तद्विनश्यति ॥३
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत् । फलं पुष्पं तथा धान्यं[1] परेणातिभयाय तु ॥४
पांशुजन्तूपलानां च वर्षतो रोगजं भयम् । *छिद्रे[2] वाऽन्नप्रवर्षेण सस्यानां भीतिवर्धनम् ॥५
विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते । दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशभयं भवेत् ॥६
निरभ्रे वाऽथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु । इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च ॥७

अध्याय १३३

गर्ग ने कहा—अतिवृष्टि का होना एवं अनावृष्टि का होना इन दोनों से दुर्भिक्षादि के पड़ने का भय माना जाता है। विना वर्षाऋतु के दिन में अनन्त वृष्टि का होना अति भयानक है। बिना बादलों के ही आकाश में उदासी एवं विकारों का दिखाई पड़ना राजमृत्यु का द्योतक है। शीतकाल में गर्मी एवं ग्रीष्म में शरदी इससे राजाओं पर शत्रुपक्ष से भय होता है, जिस स्थान पर आकाश से रक्त की वर्षा होती है वहाँ शस्त्रभय मानना चाहिये। अंगार एवं धूलि की वृष्टि नगर का विनाश करती है। मज्जा, हड्डी, तेल एवं मांस की वृष्टि से प्रजावर्ग में मृत्यु का भय उपस्थित होता है। आकाश से फल, पुष्प तथा अन्न की वृष्टि शत्रु से भय का द्योतन करती है। धूलि, जन्तु एवं ओला गिरने से रोग का भय होता है। अन्न की वृष्टि अन्न को ही भय पहुँचानेवाली है।१-५। आकाश मंडल में धूलि के न रहने पर भी यदि सूर्य के रहने पर परछाइँ नहीं दिखाई पड़ती अथवा विपरीत दिखाई पड़ती है तो सारे देश को भय समझना चाहिये। विना बादल के रात्रि में दक्षिण दिशा में अथवा उत्तर दिशा में यदि सफेद रंग का इन्द्रधनुष उदित दिखाई पड़ता है, अथवा उल्कापात होता है, दिशाओं का दाह होता है, सूर्य

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—चित्रं तत्र प्रवर्षतिः शस्यानामार्तिवर्धनम्। इति।

---

[1] घ. °न्यं हिरण्यान्यभयानि तु। [2] ग. छिद्रमत्रप्रवर्षे च स°। घ. छिद्रं समनुवर्षी च स°।

दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरं तथा । परचक्रभयं ब्रूयाद्देशोपद्रवमेव च ॥८
सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद्द्विजेन्द्र ।
धनानि गौः काञ्चनदक्षिणा च देया द्विजानामघनाशहेतोः ॥९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृष्टिवैकृतिप्रशमनं नाम त्रयस्त्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥११९६२॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

*गर्ग उवाच

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च । नद्यो ह्रदप्रस्रवाणि विरसाश्च भवन्ति च ॥१
विवर्णं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसंकुलम् । स्नेहं क्षीरं सुरां रक्तं वहन्ते वाऽऽकुलोदकाः ॥२
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत् । जलाशया नदन्ते वा प्रज्वलन्ति कथंचन ॥३

तथा चन्द्रमा में मण्डल दिखाई पड़ते हैं, गन्धर्वनगर दिखाई पड़ते हैं तो उस समय देश पर शत्रु पक्ष की सेना से भय मानना चाहिये एवं देश में विभिन्न उपद्रवों के संगठित होने की सम्भावना जाननी चाहिये। हे द्विजेन्द्र ! ऐसे अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, एवं वायु इनके उद्देश्य से यज्ञ करना चाहिए एवं इस महोत्पात के कारणरूप पाप के विनाश के लिए ब्राह्मणों को धन, गौएँ तथा सुवर्णादि की दक्षिणा देनी चाहिये।६-९।

श्री मात्स्यमहापुराण में अद्भुत शान्ति प्रसंग में वृष्टिविकारशमननामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३३॥

अध्याय २३४

गर्ग ने कहा—यदि नदियाँ, सरोवर या झरने नगर से दूर हट जाते हैं, या दूर होने पर भी समीप चले आते हैं, अथवा सूख जाते हैं, मलिन हो जाते हैं, कलुषित हो जाते हैं, जल जलने लगता है, उनके फेन के समान जंतुओं का आधिक्य हो जाता है, तेल दूध, मदिरा या रक्त उनमें बहते दिखाई पड़ने लगते हैं, जल बिक्षुब्ध हो उठता है, तो उस समय से छः महीने के भीतर ही उस देश पर शत्रुपक्ष की सेना से भय होने की सम्भावना होती है।१-२$\frac{१}{२}$। यदि किसी प्रकार वे जलाशय शब्द करने लगते हैं, या जलने लगते

---

* इत आरभ्याध्यायचतुष्टयं न विद्यते घ. पुस्तके ।

विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मञ्ज्वालाधूमरजांसि च । अखाते वा जलोत्पत्तिः[1] सुसत्त्वा वा जलाशयाः ॥४
संगीतशब्दाः श्रूयन्ते जनमारभयं भवेत् । दिव्यमम्भोभयं सर्पिर्मधुतैलावसेचनम् ॥५
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत् ॥६
मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थम् ।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाः सलिलाघशान्त्यै ॥७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ सलिलाशयवैकृत्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११६६६॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मसंप्रसवास्तथा ॥१

हैं, या हे ब्रह्मन् ! उनमें से आग की लपटें, धुआँ एवं धूलि निकलने लगती है, बिना खने ही भूमि पर जल निकलने लगता है, जलाशयों में बड़े-बड़े जलजीव हो जाते हैं, उनमें से संगीत की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं तो सर्व साधारण प्रजावर्ग के मरण का भय मानना चाहिये । ऐसे अवसर पर घी, मधु, तैल से उन जलाशयों का अभिषेचन कर वरुण के मंत्रों का जप करना चाहिये और उन्हीं मंत्रों का उच्चारण कर जल में हवन करना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजनार्थ मधु तथा घृत मिला कर श्रेष्ठ अन्न का दान देना चाहिये एवं जल के उस उत्पातसूचक महापाप की शान्ति के लिए सफेद वस्त्रों से युक्त गौएँ और जल रखने के घड़े दान देने चाहिये ॥३-७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति प्रकरण में जलाशय विकार शान्ति नामक
दो सौ चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥२३४॥

अध्याय २३५

गर्ग ने कहा—जब विना समय पूरा हुए ही स्त्रियों से सन्ततियां उत्पन्न होने लगती हैं, या समय पूरा हो जाने पर भी नहीं उत्पन्न होवीं, उनमें विकार उत्पन्न होने लगता है अथवा जुड़वें लड़के

---

[1] घ. °त्तिः ससत्त्वा । ङ. °त्तिः ससिन्धवो ज° ।

अमानुषा ह्यतुण्डाश्च संजातव्यसनास्तथा । हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥२
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्[1] ॥३
विवासयेत्तन्नृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः[2] ।
[3]किमिच्छकैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च लोके ततः शान्तिमुपैति पापम्[4] ॥४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ स्त्रीप्रसववैकृत्यं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९७३॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति च । चोद्यमानानि तत्र स्यान्महद्भयमुपस्थितम् ॥१
वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते चाप्यनाहताः । अचलाश्च चलन्त्येव न चलन्ति[5] चलानि च ॥२

पैदा होने लगते हैं, स्त्रियों से बच्चों को छोड़कर राक्षसादि पैदा होने लगते हैं, बिना कंधे के बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं, मरे हुए उत्पन्न होने लगते हैं अथवा किसी अंग से हीन या किसी से अधिक अंगवाले बच्चे अधिक संख्या में पैदा होने लगते है, पशु एवं सर्पादि में भी इसी प्रकार के बच्चे पैदा होने लगते हैं तब यह समझ लेना चाहिये कि उस देश का विनाश उपस्थित हो गया है। ऐसे उपद्रवों के घटित होने पर राजा अपने राष्ट्र से उन पैदा होनेवाली सन्तानों को निर्वासित कर दे और स्त्रियों की विशेष पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिवत् सन्तुष्ट करे तब लोक में पाप की शान्ति होती है ॥१-४॥

श्री मात्स्य महापुराण में भाग्य तथा पुरुषार्थ वर्णन नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

गर्ग ने कहा—जिस देश में रथादि घोड़ों के बिना जोते ही चलने लगते हैं अथवा घोड़ों के जोतने पर तथा उन्हें हाँकने पर भी नहीं चलते हैं, वहाँ पर भी यह जान लेना चाहिये कि कोई महान् भय उपस्थित हो गया है। विना बजाये ही जब बाजन बजने लगते हैं अथवा बजाने पर भी उनसे ध्वनियाँ

---

[1] घ. च. °त् । निर्वास° । [2] क. ख. °न्द्राः° । कस्येच्छ° । च °न्द्राः । एवं कृतैर्ब्रा° । [3] क. ख. ग. °र्पणं च लो° । [4] च. सत्यम् । [5] ङ. °न्ति च चालिताः । आ° ।

आकाशे तूर्यनादाश्च गीतगन्धर्वनिःस्वनाः । काष्ठदर्वीकुठारादिर्विकारं कुरुते यदि ॥३
गावो लाङ्गूलसंघैश्च स्त्रियः स्त्री च विघातयेत् । उपस्कारादिविकृतौ घोरं [1]शस्त्रभयं [2]भवेत् ॥४
वायोस्तु पूजां[3] द्विजसक्तुभिश्च कृत्वा[4] नियुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान् ।
दद्यात्प्रभूतं परमान्नमत्र[5] सदक्षिणं तेन शमोऽस्य भूयात् ॥५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुपस्करवैकृत्यं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥११९७८॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः । अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः ॥१
स्थलजाश्च जलं यान्ति घोरं वाशन्ति निर्भयाः । राजद्वारे पुरद्वारे शिवा चाप्यशिवप्रदा ॥२

नहीं निकलतीं, अचल वस्तुएँ चलने लगती हैं तथा जो चल वस्तुएँ हैं वे अचल हो जाती हैं, आकाश में तुरही की ध्वनि तथा गान-वाद्यादि का स्वर सुनाई पड़ने लगता है, काष्ठ, करछुल एवं फावड़े आदि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। गोएँ पूँछ से एक दूसरे को मारने लगती हैं, स्त्रियाँ एक दूसरे की हत्या करने लगती हैं एवं घरेलू वस्तुओं में भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय देश में शस्त्रास्त्रों से घोर भय जानना चाहिये। ऐसे उत्पातों के घटित होने पर सत्तू से वायु देव की पूजा करके उनके मंत्रों का जप करना चाहिये एवं तदनन्तर दक्षिणा समेत अन्न को प्रचुर परिमाण में दान देना चाहिये। इस प्रकार शान्ति करने पर इस उत्पात के कारण स्वरूप उस महापाप का विनाश होता है ॥१-१५॥

श्री मात्स्य महापुराण के अद्भुतशान्ति प्रकरण में उपस्कर शान्ति नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

गर्ग ने कहा—जब ग्रामों में जंगली पशु एवं पक्षी प्रवेश करने लगते हैं या ग्राम में रहनेवाले पशु पक्षी जंगलों में चले जाते हैं अथवा जल में रहनेवाले जीव भूमि पर डोलने लगते हैं, या भूमि के जीव जल में चले जाते हैं। राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर तथा गोपुर पर अमंगल की सूचना देनेवाली

---

[1] ग. शत्रुभ° । [2] ङ. च. स्मृतम् । [3] ङ. च. पूजाग्निहवं च कुर्याद्वायोस्तु मन्त्रैर्जपमेव नित्यम् । दत्वा प्रभू° । [4] ग. त्वा तदुक्तां° । [5] ङ. च. °न्नहव्यं स° ।

दिवा रात्रिचरा वाऽपि रात्रावपि दिवाचराः । ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं च शून्यतां तस्य निर्दिशेत् ॥३
दीप्ता वाशन्ति संध्यासु मण्डलनि च कुर्वते । वाशन्ति विस्वरं यत्र तदाऽप्येतत्फलं लभेत् ॥४
प्रदोषे कुक्कुटो वाशेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः । अर्कोदयेऽर्काभिमुखी शिवा रौति भयं वदेत् ॥५
गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्यादो मूर्ध्नि लीयते । [1]मधु वा मक्षिकाः कुर्युर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥६
प्राकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु । केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यादं प्रपतेद्यदि ॥७
जायन्ते वाऽथ वल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि । स देशो नाशमायाति राजा वा म्रियते तथा ॥८
मूषकाञ्छलभान्दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुद्भयं भवेत् । काष्ठोल्मुकास्थिशृङ्गाढ्याः श्वानो[2] मार्कटवेदनाः ॥९
दुर्भिक्षवेदना ज्ञेया काका धान्यमुखा यदि । जनानभिभवन्तीह निर्भया रणवेदिनः ॥१०
काको मैथुनसक्तश्च श्वेतस्तु यदि दृश्यते[3] । राजा वा म्रियते तत्र स च देशो विनश्यति ॥११
उलूको वाशते यत्र नृपद्वारे तथा गृहे । ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥१२

शृगालियाँ निर्भय होकर रोदन करती हैं । दिन में चलनेवाले प्राणी रात्रि में तथा रात्रि में चलनेवाले प्राणी दिन में इधर-उधर घूमने लगते हैं, ग्राम में रहनेवाले जीव ग्राम छोड़ देते हैं, तो उन ग्रामों के सूनेपन की सम्भावना समझनी चाहिये ।१-३। जब पशु आदि जीवगण ग्रामों में एकदम क्रोधोन्मत्त होकर मण्डल बनाकर रूखे स्वर में चिल्लाने लगते हैं तब भी यह भय समझना चाहिये । आधीरात के समय मुर्गे चिल्लाने लगे, हेमन्त ऋतु में कोकिल बोले, सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख होकर शृगालिनी चिल्लाने लगे तो भय का आगमन कहना चाहिये । घर में कबूतर घुस आये, मस्तक पर गीध बैठ जाए, घर के भीतर मधु की मक्खियाँ मधु संचित करने लगे तब यह जान लेना चाहिए कि उस घर के स्वामी की मृत्यु होनेवाली है ।४-६। रक्षा दीवाल, प्रवेशद्वार, राजभवन, तोरण, बाजार, गली, पताका, ध्वजा तथा अस्त्र-शस्त्रादि पर गृध्र पक्षी बैठ जाय, अथवा घर में बिल हो जाय, मधु छत्ते से गिरने लगे तब उस देश का विनाश होनेवाला है अथवा राजा की मृत्यु होनेवाली है । मूषक और पतिंगे यदि अधिक परिमाण में दिखाई पड़ते हैं तो क्षुधा का भय होनेवाला है अर्थात् दुर्भिक्ष पड़ने की सम्भावना है ।७-८½। लकड़ी के लुवाठे, हड्डियाँ सींगवाले जानवर, कुत्ते एवं बन्दरों की अधिकता होनेपर देश में व्याधियों के फैलने का भय रहता है । यदि कौआ चोंच से अन्न लेकर इधर-उधर निर्भय होकर घूमता है तो दुर्भिक्ष की सूचना जाननी चाहिये और उस समय रण छिड़ने की भी सम्भावना रहती है । यदि श्वेत कौआ मैथुन करते हुए दिखलाई पड़े तो समझना चाहिए कि उस देश का राजा मरेगा और वह देश विनष्ट होगा । जब राजा के द्वार पर अथवा घर में उल्लू बोलते हैं तो उस घर के स्वामी अर्थात् राजा की मृत्यु तथा उसकी सम्पत्ति का विनाश समझना चाहिए ।९-१२।

---

१ ग. मक्षिकाः पटलं कु° । २ ग. °नो मारकवेदकाः । दु° । ३ क. ख ग. दृश्यते ।

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम् । देवाः कपोता इति वा जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥१३
गावश्च देया विधिवद्द्विजेभ्यः सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः ।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत् ॥ ॥१४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ मृगपक्षिवैकृत्यं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥११९९२॥

अथाष्टात्रिंदशधिकद्विशततमोऽध्यायः

गर्ग उवाच

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम् । निर्निमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ॥१
रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः । आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये ॥२
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः । ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यः पूज्यते जनैः ॥३

इस प्रकार पशुओं एवं पक्षियों में उत्पात के लक्षणों को देखकर दक्षिणा समेत यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए । अथवा पाँच ब्राह्मणों को 'देवाः कपोता·····' इस मन्त्र का जप करना चाहिए । तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिपूर्वक सुवर्ण समेत गौओं का दान करना चाहिए । इस प्रकार के अनुष्ठान करने से पशुओं एवं पक्षियों द्वारा सूचित उत्पातों के कारणस्वरूप पाप की शान्ति होती है ।।१३-१४।।

श्रीमात्स्य महापुराण के अद्भुत प्रकरण में पशुपक्षिविकार शान्ति नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय
समाप्त ।।२३७।।

अध्याय २३८

गर्ग ने कहा—दृढ़ बने हुए राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेश द्वार, रक्षा दीवाल, एवं अन्यान्य भवन आदि यदि बिना किसी कारण के गिर पड़ते हैं तो राजा की मृत्यु की सूचना समझनी चाहिए । जिस देश में दिशाएँ धूलि से तथा धूएँ से भरी दिखाई पड़ती हैं, एवं सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराएँ धूमिल रंग की दिखाई पड़ती हैं तो ये भी भय वृद्धि की सूचना देती हैं जहाँ राक्षस दिखाई पड़ते हैं तथा ब्राह्मण विधर्मी हो जाते हैं, ऋतुओं का विपर्यय होता है, लोग अपूज्यों की पूजा करते हैं, नक्षत्र गण आकाश से नीचे गिरने लगते हैं, तो वहाँ ये महान् भय की सूचना देते हैं ।१-३। केतु का उदय, ग्रहण,

नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम् । केतूदयोपरागौ च [1]छिद्रं वा शशिसूर्ययोः ॥४
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् । स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान् ॥५
क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र जायते । हूयमानस्तु यत्राग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु ॥६
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा[2] यान्ति[3] चोत्तरतस्तथा । पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते ॥७
मङ्गल्याश्च(लाश्च) गिरो यत्र न श्रूयन्ते समन्ततः[4] । क्षवथुर्बाधते वाऽथ प्रसहन्ति [5]नदन्ति च ॥८
न च देवेषु वर्तन्ते यथावद्ब्राह्मणेषु च । मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च ॥९
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नराः । ब्राह्मणान्सुहृदो[6] मान्याञ्जनो[7] यत्रावगम्यते ॥१०
[8]शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते । राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति ॥११
राज्ञो विनाशे संप्राप्ते निमित्तानि निबोध मे । ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥१२
ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति । न च स्मरति कृत्येषु [9]याचितश्च प्रकुप्यति ॥१३
रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति[10] । अपूर्वं तू करं लोभात्तथा पातयते जने ॥१४

चन्द्रमा एवं सूर्य के बिम्ब में छिद्रों का दिखाई पड़ना, ग्रह एवं नक्षत्रों में बिकार, ये सब भी जहाँ घटित हों वहाँ भय की सम्भावना समझनी चाहिये । ४½ । स्त्रियाँ जहाँ आपस में झगड़ने लगे, बालक एक दूसरे को मारने लगे, उचित कार्यों का विनाश हो, यज्ञादि कार्यों में आहुति देने पर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका और गृध्रों का उत्तर दिशा में होकर जाना, भरे हुए घड़े में रखी हुई वस्तुओं का चूना, घी का अभाव हो जाना, चारों ओर से मांगलिक वाणियों के सुनने का अभाव एवं लोगों में कास रोग की पीड़ा, जनता में अकारण हँसी और गाने की विशेष अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणों की समुचित पूजा का अभाव, वाजनों में स्वरों की मंदता एवं कर्कशता, लोगों में गुरु एवं मित्रों से द्वेष तथा शत्रु की पूजा में विशेष अभिरुचि के भाव, ब्राह्मण, मित्र, एवं, माननीय लोगों के अपमान, शान्तिपाठ, मांगलिक यज्ञादि के अनुष्ठान्, हवनादि में नास्तिकता का प्रभाव---ये सब उत्पात जहाँ दिखाई पड़े वहाँ यह जान लेना चाहिये कि या तो राजा की मृत्यु होनेवाली है अथवा उस देश का विनाश होनेवाला है ।५-११। राजा के विनाश की सूचना के जो लक्षण हैं, उन्हें मुझसे सुनो । वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणों से द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणों से विरोध करता है, ब्राह्मणों की सम्पत्ति अपने अधीन कर लेता है, ब्राह्मणों के मारने का उपक्रम करता है, सत्कार्यों में उनका स्मरण नहीं करता, याचना करने पर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणों की निन्दा में विशेष रुचि रखता है, प्रशंसा का अभिनन्दन नहीं करता, लोभ के कारण लोगों पर नये-नये कर लगाता है—ऐसे उत्पात जब राजा में दिखाई पड़े तो यह समझ लेना चाहिये कि उसके विनाश की घड़ी आ गई है ।१२-१४। ऐसे अवसर पर

---

[1] ग. घ. ङ. च्छिद्रता श° । [2] ङ. च. व्यादाः प्रयान्ति चान्तरं तथा । [3] घ. °न्ति चान्तर° । [4] ङ. च. °तः । वेपथु° । [5] ख. ग. स्रवन्ति । [6] ग. च. °दोऽमांत्याञ्ज° । [7] ङ. °न्यान्यतो यत्राव-मानिता । शा° । [8] ब. °मण्डल° । [9] ङ. च. °तश्चाभ्यसूयते । र° । [10] च. नाधिगच्छति ।

[1]एतेष्वभ्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोत्तम । भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा ॥
सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानं च दीयताम् ॥१५
गावश्च देया द्विजपुंगवेभ्यो भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि ।
होमश्च कार्योऽमरपूजनं च एवं कृते पापमुपैति शान्तिम् ॥१६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुत्पातप्रशमनं नामाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२००८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः । कोटिहोमोऽपि वा देव सर्वपापप्रणाशनः ॥१
क्रियते विधिना येन यद् दृष्टं [2]शान्तिचिन्तकैः । तत्सर्वं विस्तराद्देव कथयस्व जनार्दन ॥२

हे द्विजोत्तम ! शची के समेत इन्द्र की पूजा करनी चाहिये एवं अन्यान्य देवताओं के उद्देश्य से भक्ष्य वलि देनी चाहिये । सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये । श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौएँ, सुवर्ण, पृथ्वी, वस्त्रादि का दान करना चाहिये, और देवताओं की पूजा कर हवन करना चाहिये । ऐसा करने से उपर्युक्त उत्पातों का मूल कारण पाप शान्त होता है ॥१५—१६॥

श्री मात्स्य महापुराण के अद्भुतशान्ति प्रकरण में उत्पातप्रशमननामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३८॥

अध्याय २३९

मनु ने पूछा—हे देव ! जनार्दन ! राजाओं को ग्रहयज्ञ किस प्रकार करना चाहिये ? एवं सभी पापों को नष्ट करनेवाले लक्ष होम तथा कोटिहोम के करने की क्या विधि है ? इस यज्ञ का अनुष्ठान जिस बिधि से किया जाता है तथा शान्ति की चिन्ता करनेवाले जिस विधि से इसे सम्पन्न होते देखते हैं—उन सब को विस्तारपूर्वक मुझे बताइये ॥१—२॥

---

[1] ग. °येद्विप्रं स° । ङ. च. येच्छुकं । [2] ङ. शास्त्रचि° ।

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप । राज्ञां धर्मप्रसक्तेन प्रजानां च हितेप्सुना ॥३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः । नदीनां संगमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ॥४
[1]सुषमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः । गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्धं भूमिं परीक्षयेत् ॥५
खनेत्कुण्डं च तत्रैव सुषमं[2] हस्तमात्रकम् । द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥६
युग्मास्तु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः । कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ॥७
वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च । [3]सिकतापरिवेषाश्च[4] ततोऽग्निं च समिन्धयेत् ॥८
गायत्र्या दशसाहस्रं [5]मानस्तोकेन [6]षड्गुणः । त्रिंशद्ग्रहाणां[7] मन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ॥९
कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च [8]कुसुमाद्यैस्तु षोडश । होतव्या दशसाहस्र[9] बादरैर्जातवेदसि ॥१०
श्रियो मन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दश[10] । शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ॥११
हुत्वा शतसहस्रं तु पुण्यस्नानं[11] समाचरेत् । कुम्भैः षोडशसंख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥१२

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारे पूछने पर अब मैं बतला रहा हूँ । धर्म परायण एवं प्रजा के कल्याण के लिये तत्पर राजाओं को यह ग्रहयज्ञ सर्वदा लक्ष होम के साथ करना चाहिये, इस ग्रहयज्ञ को नदियों के संगम पर तथा देवताओं के आगे, सुन्दर, चारों ओर समतल भूमि भाग में ज्योतिषियों से भलीभाँति सम्मति लेकर कराना चाहिये । सर्वप्रथम गुरु तथा पुरोहितों को साथ ले भूमि की परीक्षा करे । तदनन्तर वहाँ एक हाथ गहरा चारों ओर से समान सुन्दर कुण्ड खने, लक्षहोम के लिये इससे द्विगुणित तथा कोटि होम के लिये इससे चतुर्गुणित परिमाण में कुण्ड खने ।३-६। इस ग्रहयज्ञ के लिये दो पुरोहित बतलाये गये हे अथवा वेदपारगामी आठ पुरोहित रहें, जो सब के सब कन्द, मूल एवं फल के आहार करनेवाले तथा दही और दूध से निर्वाह करनेवाले हों । यजमान राजा यज्ञ वेदी पर विविध प्रकार के रत्न उन पुरोहितों द्वारा स्थान-स्थान पर स्थापित करवाये । तदनन्तर बालू द्वारा वेदी के चारों ओर मण्डल बनाकर अग्नि प्रज्वलित कराये ।७-८। फिर गायत्री मन्त्र द्वारा दस सहस्र, 'मानस्तोके·····' इस मन्त्र द्वारा छः सहस्र, नवग्रहों के मन्त्रों से तीस सहस्र, विष्णु देवता के मन्त्रों से चार सहस्र, कुष्माण्ड द्वारा पाँच सहस्र, पुष्प आदि द्वारा सोलह, तथा बेर के फलों द्वारा दस सहस्र आहुति अग्नि में देनी चाहिये । इसी प्रकार लक्ष्मी के मन्त्रों से चौदह सहस्र आहुतियाँ करनी चाहिये और शेष पाँच सहस्र आहुतियाँ इन्द्र देवता के मन्त्रों से देनी चाहिये । एक लाख आहुतियों की समाप्ति हो जाने के बाद सुवर्ण तथा मांगलिक द्रव्यों से युक्त सोलह कलशों द्वारा

---

१ ग. ङ. सुसमे । २ ङ. च. °मं तत्र मण्डपे । द्वि° । ३ ङ. च. सितवस्त्रैः परिवेष्टय त° ।
४ घ. °रिधेयाश्च । ५ ङ. के षडेव च त्रि° । ६ च. षण्मनुः । ७ क. ख. °हादिम° । ८ ग. घ. °मायास्तु ।
ङ. च. °मायां तु षा° । ९ ग. ङ. च. °स्रं तदा वै जात° । १० ग. °श । षोडशः पञ्चसाहस्रा हो° ।
११ ग. पुष्पस्नानं विधीयते । कु° । ङ. च. पुष्पस्नानं विनिर्दिशेत् । कु° ।

स्नापयेद्यजमानं तु ततः शान्तिर्भविष्यति । एवं कृते तु यत्किंचिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥१३
तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥१४
हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च । अनडुद्गोशतं[1] दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ॥१५
यथाविभवसारं तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् । मासे पूर्णे समाप्तस्तु[2] लक्षहोमो नराधिप ॥१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र विधानं परिकीर्तितम् । इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर । नर्मदादेविकायास्तु तटे होमो विधीयते ॥१८
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन षोडश । सर्वहोमे तु राजर्षे दद्याद्विप्रेऽथवा[3] धनम् ॥१९
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षां सांवत्सरीं स्थितः । चैत्रे मासे तु संप्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं[4] वत्सरं नृप । यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथाऽनघ ॥२१
यवादिव्रीहयो[5] माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः । पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारा तथोपरि ॥२२
मासेऽथ प्रथमे दद्यादृत्विग्भ्यः क्षीरभोजनम् । द्वितीये कृसरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम्[6] ॥२३

पुण्य स्नान करे ।९-१२। इस प्रकार पुरोहित जब यजमान को स्नान कराता है तब शान्ति की प्राप्ति होती है । ऐसा करके तथा अन्त में दक्षिणा प्रदान कर ग्रहों आदि के कारण जो पीड़ा होती है उन सब को राजा विनष्ट कर देता है । यही कारण है कि यज्ञ के सभी कार्यों में दक्षिणा का बहुत अधिक महत्त्व कहा गया है । उस समय राजा अपनी शक्ति के अनुकूल हाथी, रथ, घोड़े, भूमि, वस्त्र के जोड़े, सौ बैल तथा गौएँ आदि दक्षिणा के साथ पुरोहितों को दे, इसमें कृपणता न करे । हे नराधिप ! इस प्रकार की विधि से एक मास में लक्षहोम समाप्त होता है ।१३-१६। हे राजेन्द्र ! यह लक्षहोम का विधान मैं आपको बता चुका, अब कोटिहोम का विधान सुनो, मैं बतला रहा हूँ । हे नरेश्वर ! गंगा के तट पर यमुना तथा सरस्वती के तट पर नर्मदा और देविका के तट पर यह हवन किया जाता है । हे रविनन्दन ! इस कोटि होम में सोलह पुरोहित बनाने चाहिये । हे राजर्षे ! इस प्रकार सभी हवन कार्यों में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये । तदनन्तर राजा पुरोहित तथा आचार्य के साथ दीक्षा ग्रहण करे, यह विधि एक साल की है । नृप ! चैत्र के महीने में अथवा कार्तिक के महीने में इस यज्ञ को प्रारम्भ करना चाहिए और इसी प्रकार प्रतिवर्ष इसका अनुष्ठान करना चाहिए ।१७-२०½। हे अनघ ! अनुष्ठान के समय यजमान को दुग्ध का अथवा फल का आहार करना चाहिए । यव आदि अन्न, उड़द, तिल और सरसों, एवं पलाश की लकड़ी ये सब होम में प्रशंसित हैं । इसके ऊपर वसु की धारा छोड़नी चाहिऐ । पहिले महीने में पुरोहितों को दुग्ध का भोजन कराना चाहिए, दूसरे महीने में खिचड़ी, जो कि धर्म, काम एवं अर्थ सब की साधक है, देनी चाहिए । हे

---

१ च. °डुहां श° । २ ङ. °माप्ते तु लक्षहोमे न° । ३ ङ. वाऽवनीम् । ऋ° । ४ ग. °त्सरे वत्सरे नृ° । ५ ग. °वार्तास्तण्डुलाः शाल्यास्ति° । ६ ग. ङ. च. °द्यात्सर्वका° ।

तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन । चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन् ॥२४
पञ्चमे दधिभक्तं तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम् । पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥२५
षष्टयोदनं च नवमे दशमे यवषष्टिका । एकादशे समाषं तु भोजनं रविनन्दन ॥२६
द्वादशे त्वथ संप्राप्ते मासे रविकुलोद्वह । षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम् ॥२७
देया द्विजानां राजेन्द्र मासि मासि च दक्षिणाः । अहतवासः[1] संवीतो दिनार्धं होमयेच्छुचिः ॥२८
तस्मात्सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः । इन्द्राद्यादिसुराणां च प्रीणनं सार्वकामिकम् ॥२९
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र पशुघातसमन्वितम् । सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमं च कारयेत् ॥३०
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः[2] शते शते । सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥३१
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थे च [3]ऋत्विजैः । युक्तो वसम्मानवैश्च पुनः[4] प्राप्तार्चनान्द्विजान् ॥३२
प्रीणयित्वा सुरान्सर्वान्पितॄनेव ततः क्रमात् । कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानां च समर्पणम् ॥३३

रविनन्दन ! तीसरे महीने में घी से गेहूँ का चूर्ण बनाकर यवाग् बनवाए और पुरोहितों को दे चौथे महीने में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए उन्हें भोजनार्थ लड्डू देना चाहिये ।२१-२४। पांचवे महीने में दही और भात तथा छठवें महीने में सत्तू का भोजन देना चाहिए। सातवें महीने में पूप तथा आठवें में घी का पूआ देना चाहिए। नवें महीने में साठी का भात तथा दसवें में यव और साठी का भोजन दे। हे रविनन्दन ! ग्यारहवें महीने में पुरोहितों को उड़द युक्त भोजन देना चाहिए। इसी प्रकार हे सूर्य कुलोत्पन्न ! बारहवें महीने के आने पर उन्हें छहों रसों से युक्त सभी मनोरथों की पूर्ति करनेवाला सुन्दर भोजन देना चाहिए ।२५-२७। हे राजेन्द्र ! उन ब्राह्मणों को प्रतिमास दक्षिणा भी देनी चाहिए और मध्याह्न के समय पवित्र वस्त्र धारण कर हवन करना चाहिए। इस कार्य के लिए यजमान को सर्वदा पुरोहितों के साथ प्रातःकाल ही उठना चाहिए और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है। हे राजेन्द्र ! फिर देवताओं के उद्देश्य से पशु की बलि देकर सभी प्रकार के दान कर्मों को सम्पादित करे और फिर अग्निष्टोम का अनुष्ठान करे ।२८-३०। इस प्रकार विधिपूर्वक पूर्णाहुति करे। शत होम में दो सौ, सहस्र होम में उसका दुगुना, तथा लक्षहोम तक इसी प्रकार पूर्व की संख्या से दुगुना करते हुए पूर्णाहुति करनी चाहिए। तदनन्तर देवताओं के लिए पुरोहितों द्वारा पुरोडाश का दान कराना चाहिए और उन्हें उन्हीं आगत मनुष्यों में ही उपस्थित समझना चाहिए। फिर पूजित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके पितरों की तृप्ति के लिए शास्त्रोक्त विधि से पिण्डदान करना चहिए। इस होम के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए ।३१-३३। तदनन्तर राजा को चाहिए कि

---

१ क. °वासाः सं। २ ङ °हुतिशतेन वा। स°। ३ ङ. तत्त्ववित्। ४ ङ. पुनश्च प्रेषयेद्द्विजा°।

समाप्तौ तस्य होमस्य विप्राणामथ दक्षिणाम् । समां चैव तुलां कृत्वा बद्ध्वा शिक्यद्वयं पुनः ॥३४
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीं चैव द्वितीयकाम् । सुवर्णेन तथाऽऽत्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ॥३५
तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः । ददेच्छतसहस्रं तु रूप्यस्य[1] कनकस्य च ॥३६
सर्वस्वं वा ददत्तत्र राजसूयफलं लभेत् । एवं कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत् ॥३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः । तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत् ॥३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते । इयं शान्तिस्तवाऽऽख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत् ॥३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे । सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ॥४०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेग्रहयज्ञविधानं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३९॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२०४८॥

कृपणता को छोड़कर तराजू में दो पलड़े बाँध कर अपने आप को तथा अपनी पत्नी को तोले। उसे अपने को सुवर्ण से तथा पत्नी को चाँदी द्वारा तोलना चाहिए और तोलने के बाद ब्राह्मण को दान करना चाहिये। तदनन्तर चाँदी तथा सुवर्ण की बनी हुई एक लक्ष मुद्रा का दान करना चाहिए अथवा अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ की समाप्ति कर तब ब्राह्मणों को विसर्जित करे और कहे 'कमलनेत्र भगवान् विष्णु जो सभी यज्ञों के स्वामी हैं, प्रसन्न हों, उनके संतुष्ट होने पर समस्त जगत् सन्तुष्ट होता है।३४-३८। सभी प्रकार की आधिदैविक तथा मनुष्य द्वारा उपस्थित होनेवाली बाधाओं के आने पर इस शान्ति को करना चाहिए, जिसे मैं तुम्हें बता चुका, इस शान्ति के अनुष्ठान को करके मनुष्य सुकृती होता है और जन्म तथा मृत्यु के विषय में उसे फिर कोई सोच नहीं रहती और न उचित एवं अनुचित कार्यों के विचार में ही वह मोहित होता है। सभी तीर्थों के स्नान करने से तथा सभी यज्ञों के अनुष्ठान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, हे नृप ! उस पुण्य को इन तीनों यज्ञों को करनेवाला मनुष्य प्राप्त करता है।३९-४०।

श्री मात्स्य महापुराण में ग्रहयज्ञ विधान नामक दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।२३९॥

---

[1] ग. ङ. च. शुद्धस्य ।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

इदानीं सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम् ॥१

मत्स्य उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा । पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽरिस्तदा यात्रां प्रयोजयेत्[1] ॥२
योधान्मत्वा प्रभूतांश्च प्रभूतं च बलं मम । मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥३
अशुद्धपार्ष्णिर्नृपतिर्न तु यात्रां प्रयोजयेत् । पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यं मूले निक्षिप्य च व्रजेत् ॥४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः । चैत्र्यां[2] पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टिं च शारदीम् ॥
एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः[3] । शत्रोर्वा व्यसने यायात्काल एव सुदुर्लभः ॥६

अध्याय २४०

मनु ने कहा—हे सभी घर्मों के तत्त्वों को जाननेवाले ! सभी शास्त्रों में विशारद ! भगवन् ! अब मुझे राजाओं की यात्रा के सम्बन्ध में आवश्यक विधानों को बतलाइये ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—जब राजा अपने को किसी भयंकर युद्ध से घिरा हुआ समझे और वह जान ले कि पड़ोस की सीमा का शत्रु पराजित हो चुका है, उस समय अपनी विजय यात्रा करे ।२। और उस समय भी वह यात्रा करे जब यह समझ ले कि हमारे पास अधिक संख्या में योद्धा गण मौजूद है, हमारी सेना अति बलवान् तथा बहुसंख्यक है, और मैं अपने दुर्ग की रक्षा करने में समर्थ हूँ। जिस राजा की सीमा शत्रु के कारण शान्त नहीं है, अर्थात् पड़ोसी राजा बलवान् है तथा अपने राज्य पर दृष्टि लगाये हुए, उस समय वह यात्रा न करे। उस समय वह जितने सामन्त शत्रु गण हैं उनसे अधिक संख्या में सेना को राजधानी में नियुक्त करने के बाद विजय के लिए यात्रा करे ।३-४। राजा को चैत्र की अथवा मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तिथि को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये । चैत्र की पूर्णिमा को यात्रा करने वाला निदाघ का दर्शन करेबा तथा शरद् काल के शीत के भय से उन्मुक्त रहेगा क्योंकि निदाघ से शीत का विनाश हो चुका रहेगा । ठीक इसी के समान मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के अवसर पर यात्रा करने से राजा को सुविधा प्राप्त होती है । अथवा शत्रु के आपत्ति में फँसने पर राजा विजय यात्रा करे, यह समय तो यात्रा के लिये अति दुर्लभ है ।५-६। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के उत्पातों से अतिशय पीड़ित, हाथ पैर आदि

---

१ ख. °त् । दुष्टा योधा भृता भृत्याः सांप्रतं । घ. °त् । पुष्टा योधा भृता भृत्या संभूतं । २ ग. घ. ङ. च. °त्र्यां नश्यति नै° । ३ ग. घ. °धिप । श° ।

दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितं परम्[1] । षडक्षपीडासंतप्तं पीडितं च तथा ग्रहैः ॥७
*ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं यां च प्रपद्यते । भूकम्पोल्कादि संयाति यां च केतुः प्रसूयते ॥८
निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः[2] । स्वबलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम् ॥९
संभूतान्तरकोपं च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः । यूकामाक्षीकबहुलं[3] बहुपङ्कं तथाऽऽविलम् ॥१०
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथाऽमङ्गलवादिनम् । अपेतप्रकृतिं चैव[4] निःसारं च तथा जयेत् ॥११
विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम् । व्यसनासक्तनृपतिं बलं राजाऽभियोजयेत् ॥१२
सैनिकानां न शस्त्राणि स्फुरन्त्यङ्गानि यत्र च । दुःस्प्नानि च पश्यन्ति बलं तदभियोजयेत् ॥१३
उत्साहबलसंपन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा । तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ॥१४
शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने । निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ॥१५

छः प्रकार की इन्द्रियों के भंग होने के कारण अति संतप्त एवं ग्रहों द्वारा पीडित शत्रु पर राजा को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशा में आकाश मण्डल से जलती हुई उल्का गिरती है तथा भूकम्प एवं उल्का पतन आदि जिस दिशा में अधिक होते हैं, तथा जिस दिशा में पुच्छल तारा उदित होता है राजा को उसी दिशा में विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये ।७-८। जिस स्थान पर वज्रपात होता हो वहाँ भी राजा यात्रा करे। जो राजा अपनी सेना के विद्रोह के कारण विपन्न हो, जिस राजा का देश दुर्भिक्ष से पीड़ित हो जिस राजा के प्रजावर्ग में आन्तरिक विद्रोह की प्रबलता हो रही हो, ऐसे शत्रु राजा के देश पर राजा तुरन्त यात्रा कर दे। जिस देश में ढील, यूक, मधुमक्खी की अधिकता हो, अधिक कीचड़ हो, देश मलिन एवं अपवित्र हो, जहाँ का राजा नास्तिक हो, अपनी मर्यादाओं को भग्न करनेवाला हो, फूहड़ एवं अमांगलिक बातें कहनेवाला हो, दुश्चरित्र तथा पराक्रम हीन हो—ऐसे शत्रु को राजा शीघ्र ही स्ववश करे। जिस राजा के सेनानी उससे द्वेष रखते हों, सेनाओं में परस्पर विद्वेष फैला हो, ऐकमत्य न हो, राजा किसी आफत अथवा दुर्व्यसन में फँसा हो, जिसकी सेना बलवान् न हो, ऐसे शत्रु के ऊपर राजा उसी समय शीघ्र ही आक्रमण कर दे ।९-१२। जिस देश के राजा के सैनिकों के अस्त्र एवं अंग युद्धभूमि में आकर प्रस्फुरित न होते हों, तथा रात में बुरे स्वप्न देखते हों उनके ऊपर राजा अपनी सेना से धावा बोल दे। उत्साह एवं पराक्रम से संयुक्त अपने ऊपर अनुराग करनेवाली विशाल सेना से सुसज्जित होकर सन्तुष्ट चित्त हो राजा शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करे। अच्छे अंगों के स्फुरण हो रहे हों, दुःस्वप्नों के विनाशक शुभ मांगलिक लक्षण आगे दिखाई पड़ रहे हों, मांगलिक शकुन आगे पड़ रहे हों, ऐसे शुभ समय में राजा को शत्रु पर यात्रा करनी

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—प्रज्वलन्तीभिरुल्काभिर्यस्य देशः प्रपीड्येत ।

---

[1] ग. °म् । यदृक्षया वा सं० । ङ. च. °म् । यद्वृक्ष° । [2] क. ख. °पः । सब° । [3] ङ. च. °लं विनायकं तथा बल । [4] ङ. °व निराशं च तथा व्रजेत् । वि° ।

ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च । प्रश्नकाले शुभे जाते परान्यायान्नराधिपः ॥१६
एवं तु दैवसंपन्नस्तथा पौरुषसंयुतः । देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ॥१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे । उलूकस्य निशि ध्वाङ्क्षः स च तस्य दिवावशे ॥१८
एवं देशं च कालं च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् । पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ॥१९
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् । खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ॥२०
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ । सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः ॥२१
अभियोज्यो भवेत्तेन शत्रुर्विषममाश्रितः[1] । गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुं तथैव च ॥२२
किंचित्पङ्के तथा यायाद्बहुनागो नराधिपः । रथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं [2]समपथस्थितम्[3] ॥२३
तमाश्रयन्तो बहुलास्तांस्तु[4] राजा प्रपूजयेत् । खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः ॥२४
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा । हिमपातयुते देशे स्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत् ॥२५

चाहिये । जन्म आदि छहों नक्षत्र शुभ योग में हों, ग्रहों की स्थिति अनुकूल दशा में हो, प्रश्न करने पर शुभदायक उत्तर मिला हो, ऐसे अवसर पर राजा शत्रुओं पर आक्रमण करे ।१३-१६। इस प्रकार दैवबल तथा अपने पराक्रम से संयुक्त होकर राजा देश एवं समय के अनुरूप शत्रु पर अपनी यात्रा प्रारम्भ करे । स्थल भाग में मगर हाथी के वश में होता है किन्तु जल में जाकर हाथी भी मगर के वश में हो जाता है, इसी प्रकार रात्रि में काक उल्लू के आधीन हो जाता है किन्तु दिन में उलूक ही काक के वश में रहता है, इसी प्रकार राजा देश एवं समय दोनों की स्थिति में बलाबल का विचार कर शत्रु पर अपनी यात्रा प्रारम्भ करे । यदि वर्षा ऋतु में उसे आक्रमण करना है तो पैदल और हाथी इन दोनों की सेना में अधिकता होनी चाहिये ।१७-१९। हेमन्त और शिशिर ऋतु में अधिक रथ और घोड़े से युक्त सेना को विजयार्थ साथ ले जाना चाहिये । इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में राजा गधे और ऊँटों की संख्या में वृद्धि करके शत्रु पर आक्रमण करे । वसन्त और शरत् इन दोनों ऋतुओं में चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर आक्रमण करना चाहिये । जिस राजा की सेना में पैदल की अधिक संख्या हो वह दुर्गम प्रदेश में स्थित शत्रु पर आक्रमण करे । अधिक वृक्षों से युक्त देश में जाने के लिए अथवा ऐसे देश में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण करने के लिये अथवा कुछ कीचड़वाले देश में आक्रमण करने के लिये राजा अधिक संख्या में हाथियों को अपने साथ ले जाय ।२०-२२½। समतल भूमि में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण के लिये राजा रथ और घोड़ों को अधिक संख्या में साथ ले जाय । जो सैनिक युद्ध भूमि में राजा की सहायता अथवा अङ्गरक्षा के लिए नियुक्त हो, उन्हें राजा दान सम्मान आदि से खूब सम्मानित करे । वर्षा ऋतु में यदि अधिक संख्या में गधे और ऊँट की सेना रखनेवाला राजा शत्रु पक्ष से बाँध भी उठता है तब भी उसे युद्ध करते रहना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से विजय की सम्भावना रहती है । जिस देश में बरफ गिरता हो वहीं पर राजा ग्रीष्म ऋतु में आक्रमण करे ।२३-२५। काष्ठ

---

[1] ङ. °तः । ग्राम्यवृ° । च. °तः । सस्यवृ° । [2] ङ. °पथाश्रित° । [3] ग. °म्° । समा° ।
[4] ग. हुलांस्तदा राजाऽभि° ।

यवसेन्धनसंयुक्तः लालः पार्थिव हैमनः । शरद्वसन्तौ धर्मज्ञ कालौ साधारणौ स्मृतौ ॥२६

विज्ञाय राजा[1] द्विजदेशकालौ दैवं त्रिकालं च तथैव बुद्ध्वा ।
यायात्परं कालविदां मतेन संचिन्त्य सार्धं द्विजमन्त्रविद्भिः ॥२७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकालयोज्यचिन्ता नामचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्का ॥१२०७५॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च । सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ [2]त्वं हि[3] सर्वविदुच्यसे ॥१

मत्स्य उवाच

अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणं भवेत् । अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥२

तथा घास आदि साधनों से युक्त होकर हेमन्त काल में राजा को आक्रमण करना चाहिये । धर्म के मर्म को जानने वाले ! इसलिये शरत् और वसन्त ये दोनों समय आक्रमण के लिये साधारण रूप से उपयोगी होते हैं । राजा देश एवं काल अर्थात् भूत भविष्यत् तथा वर्तमान की परिस्थिति पर भली भाँति विचार विमर्श करने के बाद ज्योतिषियों की सम्मति से तथा मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणों के साथ शत्रु पर विजयार्थ प्रस्थान करे ।२६-२७।

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा निमित्त काल आदि चिन्ता नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

मनु ने कहा—सभी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! अब मुझे शुभ तथा अशुभसूचक शकुनों को बताइये । आप सब कुछ जाननेवाले कहे जाते हैं ।१।

मत्स्य ने कहा—मनुष्य के शरीर के दाहिने भाग का स्फुरण प्रशंसनीय तथा बाएं भाग, पीठ और हृदय का स्फुरण अशुभसूचक माना गया है ।२।

---

[1] क. ख. °जा हितदे° । [2] ङ. ष्ठ सर्वं वेत्सि यथातथम् । म° । [3] ग. हि धर्मंवि ।

मनुरुवाच

अङ्गानां स्पन्दनं चैव शुभाशुभविचेष्टितम् । तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यां तद्विदो भुवि ॥३

मत्स्य उवाच[1]

पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्ध्नि ललाटे रविनन्दन । स्थानं विवृद्धिमायाति [2]भ्रूनसोः प्रियसंगमः ॥४
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः । [3]उत्कण्ठोपगमो मध्ये दृष्टं राजन्विचक्षणैः ॥५
दृग्बन्धने संगरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् । [4]योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियश्रुतिः ॥६
नासिकायां [5]प्रीतिसौख्यं प्रजाप्तिरधरोष्ठजे । कण्ठे तु भोगलाभः स्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः ॥७
सुहृत्स्नेहश्च *बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः । पृष्ठे पराजयः सद्यो जयो वक्षःस्थले भवेत् ॥८
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने । स्थानभ्रंशो नाभिदेशे[6] अन्त्रे चैव धनागमः ॥९

मनु ने कहा—हे भगवन् ! सभी अंगों के स्फुरण, जो शुभाशुभ की सूचना देनेवाले कहे गये हैं, मुझे विस्तार से बतलाइये, जिससे मैं पृथ्वी तल पर उनका जाननेवाला बन जाऊँ ॥३॥

मत्स्य ने कहा—हे रविनन्दन ! मूर्धा के स्फुरण होने से पृथ्वी का लाभ होता है, ललाट के स्फुरण से स्थान की वृद्धि होती है, भौंह और नासिका के स्फुरण से प्रियजनों का समागम होता है, आँखों के स्फुरण से सेवक की प्राप्ति होती है, आँखों के समीप स्फुरण होने से धन की प्राप्ति होती है। है। आँख के मध्य भाग में स्फुरण होने से उत्कण्ठा बढ़ती है, हे राजन् ! विचक्षणों ने ऐसा देखा है।४-५। आँखों की पलकों के फड़कने से संग्राम में शीघ्र ही विजय होती है, अपांग के स्फुरण से स्त्री के साथ सम्भोग एवं कान के फड़कने से प्रियवार्ता सुनाई पड़ती है। नासिका के स्फुरण से प्रीति एवं सौख्य की प्राप्ति होती है, नीचे के होंठ के फड़कने से सन्तान-प्राप्ति होती है, कण्ठ के स्फुरण से भोग लाभ एवं दोनों कंधों के स्फुरण के भोग वृद्धि होती है।६-७। बाहुओं के स्फुरण से मित्र-स्नेह की प्राप्ति तथा हाथ के स्फुरण से धन की प्राप्ति होती है। पीठ के फड़कने से शीघ्र ही युद्ध में पराजय एवं छाती के फड़कने से शीघ्र ही विजय-प्राप्ति होती है। दोनों कुक्षियों के स्फुरण से प्रीति की वृद्धि कही गई है तथा स्तन के स्फुरण से स्त्री से सन्तानोत्पत्ति होती है। नाभि के स्फुरण से स्थान से च्युत होना पड़ता है तथा आँत के फड़कने से धन की प्राप्ति होती है।८-९। जानु के संधि भाग के स्फुरण से बलवान् शत्रुओं से भी संधि की बातचीत

---

* सप्तम्यर्थे पञ्चमी ज्ञेया ।

---

१ ङ. °च । पूबाला° । २ ङ. भ्रूभाग प्रि° । च. भ्रूदेशे प्रि° । ३ ङ. °त्कण्ठाप° । ४ ग. ङ. °षिल्लाभोऽपा° । ५ ग. ङ. च. °ख्यं प्रियाप्ति° । ६ ङ. °शे मेढ्रे च मिथुना° ।

जानुसंधौ परैः संधिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप[1] । देशैकदेशनाशोऽथ जङ्घाभ्यां रविनन्दन ॥१०
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप । सलाभं चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप ॥११
लाञ्छनं पिटकं चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा । विपर्ययेण विहितः सर्वः स्त्रीणां फलागमः ॥१२
+ अप्रशस्ते तदा वामे त्वप्रशस्तं विशेषतः । दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे[2] प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१३
[3]अतोऽन्यथा [4]सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात् ॥१४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकदेहस्पन्दन्नं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२०८९॥

चलने लगती है । हे रविनन्दन ! जाँघों के स्फुरण होने से अपने देश के किसी भाग का विनाश होता है । इसी प्रकार हे नृप ! दोनों पैरों के स्फुरण से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । हे राजन् ! पैरों के तलुओं के स्फुरण से लाभयुक्त यात्रा होती है । स्फुरण के समान ही चिह्न एवं पिटकों (वे लक्षण तथा मांस पिण्डादि जो जन्म के समय से ही बालकों के अंगों में उत्पन्न हो जाते हैं ।) के भी फलाफल कहे गये हैं ।१०-११½। ये ऊपर जो फल कहे गये हैं, वे पुरुषों के लिये हैं, स्त्रियों के लिये इनके विपरीत फल घटित होते हैं, अर्थात् पुरुषों के जिन अंगों के स्फुरण होने से शुभ फल मिलता है, स्त्रियों के उन्हीं अंगों के स्फुरण से अशुभ फल मिलता है । बाएँ अंगों के स्फुरण, जो कि अशुभफल की सूचना देनेवाले कहे गये हैं; यदि यात्राकाल में होते हैं तो उनसे विशेष अशुभ होने की सम्भावना होती है, इसी प्रकार शुभसूचक दाहिने अंग के स्फुरण यात्रा में विशेष शुभदायक होते हैं । ये शुभाशुभ के सूचक जो अंगों के स्फुरण कहे गये हैं उनका शुभ तथा अशुभ फल निश्चित ही घटित होता है, अनिष्ट सूचक अङ्गों में स्फुरण होने पर ब्राह्मणों को सुवर्ण दान देकर सन्तुष्ट करना चाहिये ।१२-१४।

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा प्रसंग में शरीर स्फुरण नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४१॥

+एतदर्धं न विद्यत आदर्शपुस्तकेषु ।

---

[1] क. ख. °प । दिशै° । [2] ङ. °ङ्गे शस्तं स्याद्वामपार्श्वतः । [3] ङ. °था सद्विजपूननं च फ° । च. °था सद्द्विजजल्प° । [4] घ. द्विरज° ।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

स्वप्नाख्यानं कथं देव गमने प्रत्युपस्थिते । दृश्यन्ते विविधाकाराः कथं तेषां फलं भवेत् ॥१

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने । नाभिं विनाऽन्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥२
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा । मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥३
उच्चात्प्रपतनं चैव दोलारोहणमेव च । अर्जनं [1]पङ्कलोहानां हयानामपि मारणम् ॥४
रक्तपुष्पद्रुमाणां च [2]मण्डलस्य तथैव च । वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया ॥५
भक्षणं [3]पक्षिमत्स्यानां तैलस्य कृसरस्य च । नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च ॥६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् । [4]स्रोतोवगाहगमनं[5] स्नानं गोमयवारिणा ॥७
पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ । मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ॥८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः । दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम् ॥९

अयाय २४२

मनु ने कहा—देव ! यात्रा समय एवं स्वप्न में विविध प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते हैं, उनका क्या फल घटित होता है, कृपया उन्हें कहिये ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनु ! मैं तुम्हें स्वप्नों के फलों को बतला रहा हूँ । नाभि के विना अन्य अंगों में तृण वृक्ष आदि का उगना, मूर्धा पर कांसे के चूर्णों का गिरना, मुण्डन, नंगा होना, मलिन वस्त्रों को पहनना, तेल लगाना, कीचड़ में गिरना, ऊँचे स्थान से गिरना, झूले पर चढ़ना, कीचड़ और लोहे को इकट्ठा करना, घोड़ों को मारना, लाल पुष्पवाले वृक्षों की श्रेणी, शूकर रीछ, गधे और ऊँटों पर चढ़ना, पक्षी और मछलियों का भोजन करना, तैलयुक्त भोजन करना, खिचड़ी खाना, नाचना, हँसना, विवाह होते देखना, गायन, वीणा को छोड़कर अन्य बाजनों का स्वागत करना, जल के स्रोते में स्नान करना, गोबर से युक्त जल में स्नान करना, इसी प्रकार कीचड़युक्त जल में तथा पृथ्वी के थोड़े जल में नहाना, माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्र की (धनुष) ध्वजा का गिरना, चन्द्रमा और सूर्य का पतन, दिव्य आन्तरिक्ष तथा भौम उत्पातों का दर्शन, देवता, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोधित

---

[1] ङ. च. पद्मलोहानां तप्तानामपि धार° । [2] ग. ङ. चण्डालस्य । [3] च. पक्वमांसानां । [4]. ङ. स्रोतसो रोधग° । [5] ग. °वरोधग° ।

देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च । आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम् ॥१०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया । दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा ॥११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च । गृहाणां चैव पातश्च गृहसंमार्जनं तथा ॥१२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि । परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ॥१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत्स्त्रीक्रीडनं तथा । स्नेहपानावगाहो च रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥१४
एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत्[1] । एषां संकथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनं तथा ॥१५
कल्कस्नानं तिलैर्होमो ब्राह्मणानां च पूजनम् । स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ॥१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् । स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ॥१७
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके । चतुर्थे मासमात्रेण[2] पश्यतो नात्र संशयः ॥१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत् । एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥१९
पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत् । तस्माच्छोभनके स्वप्ने पश्चात्स्वप्नो न शस्यते ॥२०

होना, कुमारी स्त्री का आलिंगन, पुरुषों का सम्भोग, अपने ही शरीर की हानि, विरेचन, वमन, दक्षिण दिशा की यात्रा, किसी व्याधि से पीड़ित होना, फलों की हानि, पुष्पों की हानि, घरों का गिरना, घरों की सफाई होना, लिपाई पुताई करते हुए घरों को देखना, शत्रु से पराजित होना या उसकी ओर से किसी प्रकार की उद्विग्नता होना, काषाय वस्त्रधारी होना, उसी प्रकार की स्त्री के साथ क्रीड़ा करना, तेल का पान करना या उसी में स्नान करना, लाल पुष्प एवं लाल चन्दन को धारण करना, ये उपर्युक्त तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे दुःस्वप्न कहे गये हैं । इन्हें देखने के बाद साथियों से कह देना तथा पुनः शयन करना शुभदायक कहा गया है ।२-१५। कल्क[1] द्वारा स्नान, तिल से हवन, ब्राह्मणों का पूजन, भगवान् वासुदेव की स्तुति अथवा उनकी पूजा, गजेन्द्रमोक्ष की कथा का श्रवण—ये सब उपाय दुःस्वप्न के नाशक बताये गये हैं । वे स्वप्न जो रात्रि के पहले पहर में दिखाई पड़ते हैं, एक वर्ष में फल देते हैं । दूसरे पहर में छः महीने में फल देते हैं, तीसरे में तीन महीने में तथा चतुर्थ पहर में देखने पर एक ही महीने में फल देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है । सूर्योदय के समय देखा गया स्वप्न दस दिन में फल देता है ।१६-१८½। यदि एक ही रात में शुभ तथा अशुभ दो प्रकार के स्वप्न दिखाई पड़ते हैं तो उनमें से पीछे का स्वप्न फलित होता है । इसलिये शुभ स्वप्न देखने पर मनुष्य को फिर से सोना नहीं चाहिये । पर्वत, राजमहल, हाथी, घोड़ा, वृषभ-इन पर आरोहण

---

१ ग. घ. ङ. °त् । तेषामक° । २ ग. °ण प्राप्यते । ना° ।

---

[1] यथाकथित पवित्र शास्त्रीय ओषधियों को भिगोकर फिर पीसकर शरीर में लगाने के बाद स्नान करने को कल्कस्नान कहते हैं ।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् । द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ॥२१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता । तथैव बहुशीर्षत्वं[1] फलितोद्भव एव च ॥२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता । चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ॥२३
शक्रध्वजालिङ्गनं च तदुच्छ्रायक्रिया तथा । भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां च वधक्रिया ॥२४
जयो विवादे द्यूते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज । भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ॥२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च । सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथ वा ॥२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा । मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ॥२७
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च । प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥२८
अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां [2]शृङ्गस्रुतेन वा । चन्द्राद्भ्रष्टेन वा राजञ्ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः ॥२९
राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसस्तथा । मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु ॥३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्[3] । तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम् ॥३१
हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे । [4]आरोहणमथाश्वानां रोदनं च तथा शुभम् ॥३२

करना शुभदायक है ।१९-२०½। हे द्विज ! उसी प्रकार गमनकाल में श्वेत पुष्पवाले वक्षों पर आराहेण करना शुभप्रद है। उसी प्रकार नाभि से वृक्ष एवं तृण की उत्पत्ति होना तथा अनेक बाहुओं का होना, अनेक शिरों का होना, फलवाले उद्भिज्जों का दर्शन, सुन्दर सफेद माला धारण करना, सफेद वस्त्र पहिनना, चन्द्रमा सूर्य एवं ताराओं को हाथों से पकड़ना या उन्हें स्वच्छ करना, इन्द्रधनुष का आलिगन करना, या उसे ऊपर उठाना, पृथ्वी एवं समुद्रों को निगलना, शत्रु का संहार करना, हे द्विज ! संग्राम, त्रिवाद एवं जूए में जीतना, कच्चे मांस का खाना, मछलियों का खाना, दूध की बनी हुई खीर को खाना, रक्त का दर्शन, अथवा रक्त से स्नान करना, मदिरा, रक्त तथा दुग्ध का पीना, अपनी आँतों से पृथ्वी को बाँधना, निर्मल आकाश को देखना, भैंस तथा गायों को मुँह द्वारा दुहना, उसी प्रकार सिंहनी, हथिनी तथा घोड़ियों को भी मुँह से दुहना, देवता गुरु तथा ब्राह्मणों की प्रसन्नता—ये सभी स्वप्न शुभदायक होते हैं ।२१-२८। जल द्वारा अभिषेचन होना, अथवा गाय की सींग से चूने वाले जल द्वारा अभिषेक होते अपने को देखना, अथवा चन्द्रमा के समीप से अपने को गिरते हुए देखना—हे राजन् ! यह सब राज्य देने वाले स्वप्न कहे गये हैं। अपना राज्याभिषेक होते देखना, शिरों को काटते देखना, मृत्यु अग्नि दाह, घर में आग लगना, राज्यचिह्नों की प्राप्ति, वीणा का स्वर सुनाई पड़ना, उसी प्रकार जल में तैरना

---

[1] घ. च. °त्वं पलि° । ङ. °त्वं पतितो° । [2] क. ख. शृङ्गाश्रिते° । [3] ङ. °म् । तीर्थोद° । [4] ङ. च. °हणं गजाश्वा° ।

वरस्त्रीणां तथा लाभस्तथाऽऽलिङ्गनमेव च। निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलोपनम् ॥३३
जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दंशनम् । दर्शनं देवतानां च विमलानां तथाऽम्भसाम् ॥३४
शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम् ।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ व्याधेर्विमोक्षं च तथाऽऽतुरोऽपि ॥३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते स्वप्नाध्यायो नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२१२४॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

गमनं प्रति[1] राज्ञां तु संमुखादर्शने च किम् । प्रशस्तांश्चैव संभाष्य[2] सर्वानेतांश्च कीर्तय ॥१

दुर्गम स्थानों को पार करना, घर में हथिनी घोड़ी तथा गायों का बिआना, घोड़ों पर सवार होना तथा रोना, ये सब स्वप्न भी शुभायक होते है ।२६-३३। सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति, उसका आलिगन, अपने को जंजीरों से बांधते हुए देखना, तथा मल का लेपन होते हुए देखना, जीवित राजाओं तथा मित्रों का दर्शन, देवताओं तथा निर्मल जल का दर्शन—ये सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्य को शुभ देनेवाले कहे गये हैं, इनके देखने से बिना परिश्रम के ही निश्चित अर्थ की प्राप्ति होती है । हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! इन स्वप्नों को देखनेवाला आतुर व्यक्ति भी सभी प्रकार की व्याधियों से मुक्त होता है ।३३-३५।

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा प्रसंग में स्वप्न विवेक नामक दो सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥२४२॥

अध्याय २४३

मनु ने कहा—राजा की विजय-यात्रा के अवसर पर किन-किन वस्तुओं का दर्शन शुभ माना गया है, उन सभी को मुझे बतलाइये ।१।

---

[1] ङ. °ति याने तु सन्मुखे दर्शने बहु प्र° । [2] ग. °भाष्यान्सर्वा° ।

मत्स्य उवाच

औषधानि त्वयुक्तानि धान्यं कृष्णं च यद्भवेत् । कार्पासश्च तृणं राजन्शुष्कं गोमयमेव च ॥२
इन्धनं च तथाऽङ्गारं गुडं[1] तैलं तथाऽशुभम् । अभ्यक्तं मलिनं मुण्डं तथा नग्नं च मानवम् ॥३
मुक्तकेशं रुजार्तं च काषायाम्बरधारिणम् । उन्मत्तकं तथा सत्त्वं दीनं चाथ नपुंसकम् ॥४
अयःपङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च । तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः । वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च ॥६
तुषभस्मकपालास्थि भिन्नभाण्डानि यानि च[2] । रिक्तानि चैव भाण्डानि मृतं[3] शार्ङ्गिकमेव च ॥७
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने । अशस्तो [4]वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ॥८
पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः । गच्छेति पश्चाद्धर्मज्ञ पुरस्तात्तु विगर्हितः ॥९
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य तु । अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि ॥१०
ध्वजादिषु तथा स्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम् । स्खलनं वाहनानां च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ॥११

मत्स्य ने कहा—हे राजन् ! अनुपयुक्त ओषधियाँ, काले अन्न, कपास, तृण, सूखा गोबर, इन्धन, अंगार, गुड़, तेल—ये सब अशुभ वस्तुएँ हैं । तेल लगाये हुए मनुष्य, मुण्डन कराये हुए मनुष्य, नंगे मनुष्य, बाल छोड़े हुए मनुष्य, रोगपीड़ित, काषाय वस्त्रधारी, पागल, दीन तथा नपुंसक व्यक्ति, लोहा, कीचड़, चमड़ा, केश का बन्धन, खली आदि वे वस्तुएँ जिनसे सारभाग खींच लिया गया है, चाण्डाल, कुत्ते खानेवाली जातियों के लोग, बन्धन में डालनेवाले राजा के कर्मचारी, फाँसी देनेवाले जल्लाद, पाप करनेवाले, गर्भिणी स्त्री, भूसी, राख, खपड़ोई, हड्डियाँ, टूटे हुए पात्र, छूँछे पात्र, मरे हुए सींगोंवाले जीव—ये सब राजा के यात्राकाल में यदि दिखाई पड़ें तो अमंगलकारी कहे गए हैं ।२-७½। बाजनों के वे शब्द, जो एक दम भयानक तथा बिना ताल आदि के रूखे ढंग से बज रहे हों, भी अशुभ सूचक कहे गये हैं। सामने से यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि 'आओ' तो शुभ है कि पीछे से यदि कोई बुलाता है तो वह अशुभ है। इसी तरह हे धर्मज्ञ! पीछे से यदि कोई कहे कि 'जाओ' तो वह शुभसूचक है किन्तु आगे से यदि कोई ऐसा कहे तो वह अशुभ है। 'कहाँ जा रहे हो, रुको, बैठो, मत जाओ, तुम्हारे वहाँ जाने से क्या लाभ? इसी प्रकार वे शब्द जो अनिष्ट के सूचक हों, यदि यात्राकाल में सुनाई पड़ते हैं तों सभी विपत्ति करनेवाले होते हैं ।८-१०। ध्वजा पताका आदि पर मांसभक्षी पक्षियों का बैठना भी निन्दित माना गया है, वाहनों पर से गिरना अथवा वस्त्र का अँटक जाना भी अमं-

---

[1] ङ. °डं सर्पिस्तथा । च. °डं सर्पस्तथा ।
[2] क. ख. च । रक्ता° ।
[3] ग. ङ. मृतं सारङ्गमे° ।
[4] क. ख. वाद्यश° ।

निर्गतस्य तु द्वारादौ [1]शिरसश्चाभिघातिता । छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनं च तथाऽशुभम् ॥१२
दृष्टे निमित्ते प्रथमममङ्गल्यविनाशनम् । केशवं पूजयेद्विद्वान्स्तवेन मधुसूदनम् ॥१३
द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् । अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथाऽनघ ॥१४
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च । जलजाः पक्षिणश्चैव मांसमत्स्याश्च पार्थिव ॥१५
गावस्तुरंगमा नागा [2]बद्ध एकः पशुस्त्वजः । त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ॥१६
गणिका च महाभाग दूर्वा चाऽऽर्द्रं च गोमयम् । रुक्मं रूप्यं तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥१७
औषधानि च धर्मज्ञ यवाः सिद्धार्थकास्तथा । नृवाह्यमानं यानं च भद्रपीठं तथैव च ॥१८
खड्गं छत्रं पताका च मृदश्चाऽऽयुधमेव च । राजलिङ्गानि सर्वाणि[3] शवं रुदितवर्जितम् ॥१९
घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च । स्वस्तिकं वर्धमानं च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ॥२०
वादित्राणां सुखः शब्दो गम्भीरः सुमनोहरः । गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः ॥२१
वायुः सशर्करो रुक्षः सर्वत्र[4] समुपस्थितः । प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद्द्विज ॥२२

गलसूचक माना गया है। द्वार आदि से निकलते समय यदि शिर में चोट लगती है अथवा छाता, ध्वजा एवं वस्त्रादि नीचे गिर पड़ते हैं तो वे भी अशुभकारक है।११-१२। प्रथम बार अमंगलसूचक शकुन के सामने घटित होने पर विद्वान् राजा को चाहिये कि अमंगल के विनाशार्थ केशव की पूजा करे तथा मधु दैत्य के शत्रु उन भगवान् विष्णु की प्रार्थना करे जो सभी अमंगलों के विनाशक हैं। किन्तु यदि दूसरी बार भी अशुभ-सूचक शकुन सम्मुख दिखाई पड़ता है तो अपने घर में प्रवेश करे और यात्रा स्थगित रखे। अब शुभ-सूचक शकुनों का वर्णन कर रहा हूँ जो मंगल कार्यों को करनेवाले कहे गये हैं।१३-१४। हे राजन्! सफेद फूल, भरे हुए कलश, जलजीव, पक्षी, मांस मछलियाँ, गौएँ, घोड़े, हाथी, बँधे हुए पशुओं में केवल बकरा, देवता, मित्र, ब्राह्मण, जलती हुई अग्नि, वेश्या, दूर्वा, गीला गोबर, सुवर्ण, चाँदी ताँबा, सभी प्रकार के रत्न, हे धर्मज्ञ! अच्छी ओषधियाँ, यव, पीली सरसों, मनुष्यों को ढोते जाता हुआ वाहन, सुन्दर सिंहासन, तलवार, छत्र, पताका, मिट्टी, हथियार, सभी प्रकार के राजचिह्न, रुदनवर्जित शव, घी, दहीं दूध, विविध प्रकार के फल, स्वस्तिक के चिह्न से युक्त झज्झर, नदी के भँवरे, कौस्तुभ मणि विविध प्रकार के बाजनों के सुखदायी शब्द जो गम्भीर और मनोहारी हों, गान्धार, षड्ज, ऋषभ के स्वर जो प्रशंसनीय हैं शुभदायक माने गये हैं।१५-२१। हे द्विज! बालू के कणों से युक्त यदि रुखी वायु सामने से बह रही हो अथवा अति प्रचण्ड वेग से बह रही हो तो वह भयकारी है।२२। इसी प्रकार अनुकूल दिशा में

---

[1] ग. °घातनम्। छ°। [2] क. ख. बुद्ध। [3] क. ख. °णि सर्वे रुदितवर्जिताः। घ°। [4] ग. °र्वविघ्नसमन्वितः। ङ. °र्वं विघ्नसमुच्छ्रितः।

अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः । रूक्षा रूक्षस्वरा भद्राः क्रव्यादाः परिगच्छताम् ॥२३
मेघाः शस्ता घनाः स्निग्धा गजबृंहितनिःस्वनाः । अनुलोमास्तडिच्छस्ताः[1] शक्रचापं तथैव च ॥२४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे । अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः ॥२५
आस्तिक्यं श्रद्दधानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम् । शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यच्च स्यान्मनसः प्रियम् ॥२६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् । एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥२७
यानोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः [2]शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणं च राजञ्ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि ॥२८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते मङ्गलाध्यायो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२१५२॥

बहनेवाली मृदु, शीतल, मंद एवं सुगन्धित वायु सुख देनेवाली होती है। एवं मांस खानेवाले रूखे स्वर में बोलनेवाले जीव भी जो देखने में भद्र मालूम पड़ें सुखदायी होते हैं। अति सघन जलयुक्त मेघों के दर्शन भी सुखदायी माने गये हैं, जो हाथियों के समान गम्भीर शब्द कर रहे हों। पीछे से चमकनेवाली बिजली का प्रकाश एवं इन्द्रधनुष भी यात्राकाल में प्रशंसनीय है।२३-२४। यात्रा में सूर्य एवं चन्द्रमा के मण्डल यदि दिखाई पड़ें तो अशुभ की सूचना समझनी चाहिये। अनुकूल दिशा में उदित हुए ग्रहों को शुभ-सूचक कहा गया है, विशेषकर बृहस्पति का उदय। हे धर्मज्ञ! इसी प्रकार यात्राकाल में आस्तिकता, श्रद्धा के भाव, पूज्यों के प्रति पूज्यभाव के प्रदर्शन, एवं वे मनोभाव, जिनमें अपनी विशेषरुचि हो, प्रशंसनीय माने गये हैं।२५-२६। सारांश यह कि यात्राकाल में मन का सन्तोष ही विजय का लक्षण है। तुलना में एक ओर सभी प्रकार के शुभ शकुन हैं और एक ओर अपने मन का सन्तोष। हे राजन्! वाहनों की उत्सुकता और मन में आनन्द का अतिरेक— ये भी शुभ का लाभ एवं विजय की वार्ता प्राप्त करानेवाले हैं। इन उपर्युक्त मांगलिक वस्तुओं का दर्शन अथवा इनके नामों का श्रवण, इन सब को नित्य विजय की सूचना देनेवाला जानना चाहिये।२७-२८।

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा-प्रसंग में मङ्गलाध्याय नामक दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

---

[1] क. ख. °च्छन्नाः श°। [2] ग. सुखस्य।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय

ऋषय ऊचुः

राजधर्मस्त्वया सूत कथितो विस्तरेण तु । [1]तथैवाद्भुतमङ्गल्यं स्वप्नदर्शनमेव च ॥१
विष्णोरिदानीं माहात्म्यं पुनर्वक्तुमिहार्हसि । कथं स वामनो भूत्वा बबन्ध बलिदानवम् ॥२
क्रमतः कीदृशं रूपमासील्लोकत्रये हरेः ॥

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः कुरुक्षेत्रे तपोधनः । शौनकस्तीर्थयात्रायां वामनायतने पुरा ॥३
यदा समयभेदित्वं द्रौपद्याः पार्थिवं प्रति । अर्जुनेन कृतं तत्र तीर्थयात्रां तदा ययौ ॥४
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे वामनायतने स्थितः । दृष्ट्वा स वामनं तत्र अर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥५

अर्जुन उवाच

किं निमित्तमयं देवो [2]वामनाकृतिरिज्यते[3] । वराहरूपी भगवान्कस्मात्पूज्योऽभवत्पुरा ॥
कस्माच्च वामनस्येदमिष्टं क्षेत्रमजायत ॥६

अध्याय २४४

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! तुम मुझे विस्तारपूर्वक राजधर्म का वर्णन सुना चुके, अद्भुत मंगल दायी शकुनों को तथा स्वप्नों के विषय में भी कुछ बातें बता चुके । अब पुनः भगवान् विष्णु के माहात्म्य को सुनाइये । किस भगवान् ने वामन का स्वरूप धारण कर दानवराज बलि को बाँधा था और किस प्रकार क्रमशः धीरे-धीरे भगवान् का वह शरीर बढ़कर तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था ? ।१-२।

सूत ने कहा—हे मुनिगण ! इसी वृतान्त को प्राचीनकाल में कुरुक्षेत्र के वामनायतन में अर्जुन ने उस समय तपस्वी शौनक जी से पूछा था जिस समय द्रौपदी के साथ सहवास नियम का उल्लंघन कर उन्होंने युधिष्ठिर के प्रति पापाचरण किया था और पाप की शान्ति के लिये तीर्थयात्रा की थी उस समय धर्मक्षेत्र के वामनायतन में अवस्थित अर्जुन ने वामन भगवान् को देखकर इस प्रकार पूछा था ।३-५।

अर्जुन ने कहा—हे ऋषि ! किस प्रयोजन से इन भगवान् की इस वामनाकृति मूर्ति में पूजा की जाती है और प्रचीन काल में वाराह रूपधारी भगवान की पूजा किस कारण से हुई थी और किस लिए यह क्षेत्र वामन भगवान् का प्रिय क्षेत्र हुआ है ? ।६।

---

[1] ङ. °तथाश्तिश्च स्व° । [2] ग. °मनो व्यतिरिच्यते । [3] ङ. °तिरुच्यते ।

शौनक उवाच

वामनस्य च वक्ष्यामि वराहस्य च धीमतः । त्यक्त्वाऽतिविस्तरं भूयो माहात्म्यं कुरुनन्दन ॥७
*पुरा [1]निर्वासिते शक्रे सुरेषु विजितेषु च । चिन्तयामास देवानां जननी पुनरुद्भवम् ॥८
अदितिर्देवमाता च परमं दुश्चरं तपः । तीव्रं चचार वर्षाणां सहस्रं पृथिवीपते ॥९
आराधनाय कृष्णस्य [2]वाग्यता वायुभोजना । दैत्यैर्निराकृतान्दृष्ट्वा तनयान्कुरुनन्दन ॥१०
वृथापुत्राऽहमस्मीति निर्वेदात्प्रणता हरिम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परमार्थावबोधिनी ॥
+देवदेवं हृषीकेशं नत्वा सर्वगतं हरिम् ॥११

अदितिरुवाच

नमः[3] सर्वार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने । नमः परमकल्याणकल्याणायाऽऽदिवेधसे ॥१२
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये । श्रियः कान्ताय दान्ताय [4]दान्तदृश्याय चक्रिणे ॥१३
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायाऽऽत्मयोनये× । नमः शङ्खासिहस्ताय नमः कनकरेतसे ॥१४

शौनक ने कहा—हे कुरुनन्दन ! भगवान् वामन एवं वाराह के माहात्म्य को संक्षेप में फिर तुमसे बतला रहा हूँ, सुनो। प्राचीन काल में दानवों द्वारा देवताओं के पराजित हो जाने पर तथा इन्द्र के अपने पद से निर्वासित कर दिये जाने पर देवताओं की माता अदिति ने अपने पुत्रों की पुनः उन्नति के विषय में चिन्ता की। और यही सोचकर उसने अतिघोर तपस्या की। हे राजन् ! एक सहस्र वर्षों तक उसने इसी के लिये घोर तपस्या की। इन्द्रियों को स्ववश कर वायु पान करती हुई आदिति ने दैत्यों द्वारा निष्कासित तथा अपमानित अपने पुत्रों को देखकर यह सोचा कि मुझ पुत्रवती का जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार की ग्लानि से युक्त होकर उसने भगवान् की वन्दना की। और परमार्थ की चिन्ता करती हुई प्रिय वाणियों से उनकी वन्दना की और देवाधिदेव सर्वान्तरयामी भगवान् हृषीकेश को नमस्कार कर इस प्रकार कहा।७-११।

अदिति ने कहा—सभी प्रकार की आपत्तियों के विनाश करनेवाले, कमलधारी परमकल्याण को भी कल्याणदायक हरि को हमारा नमस्कार है। आदिकर्त्ता, कमलनेत्र, पद्मनाभ, ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान, स्वयम्भू शंख, खड्ग को धारण करनेवाले हरि को हमारा नमस्कार है। श्री के स्वामी, परम उपकारक, चक्र धारण करनेवाले भगवान् को हम नमस्कार करती हैं। हे भगवन् ! तुम सुवर्णरेता हो, आत्म-

---

* इतः प्रभृति कुरुनन्दनेत्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते । +एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. पुस्तके—स्वामिनं देव-दैत्यानां गत्वा सर्वगतं हरिम् । इति । ×इत उत्तरमेतदर्धं ग. पुस्तके—नमः कान्तपदान्ताय परमार्थाय चक्रिणे । इति ।

---

[1] क. ख. निवारिते ।
[2] घ. ङ. च. वाता हारा त्वभो° ।
[3] क. ख. ङ. °मः स्मृतार्ति° ।
[4] क. परमार्थाय ।

तथाऽऽत्मज्ञानविज्ञानयोगिचिन्त्यात्मयोगिने । निर्गुणायाविशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥१५
जगत्प्रतिष्ठितं यत्र[1] जगता यो न दृश्यते । नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शङ्गिने ॥१६
यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः । [२]अपश्यद्भिर्जगत्यत्र[३] स देवो हृदि [४]संस्थितः ॥१७
तस्मिन्नेव विनश्येत यस्यैतदखिलं जगत् । तस्मै समस्तजगतामाधाराय नमो नमः ॥१८
आद्यः [५]प्रजापतिपतिर्यः प्रभूणां पतिः परः । पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥१९
यः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च इज्यते कर्मभिः स्वकैः । स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते ॥२०
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति । नमस्तस्मै विशुद्धाय पराय हरिवेधसे ॥२१
यं बुद्ध्वा सर्वभूतानि देवदेवेशमव्ययम् । न पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥२२
यो यज्ञे यज्ञपरमैरिज्यते [६]यज्ञसंज्ञितः । तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥२३
गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां [७]पतिः । यस्तस्मै वेदवेद्याय विष्णवे जिष्णवे नमः ॥२४

ज्ञानी हो, परम विज्ञानमय हो, योग द्वारा चिन्तन करने योग्य हो, आत्मयोगी हो, निर्गुण हो, अविशेष हो, हरि हो, ब्रह्मरूपी हो, तुन्हें हम नमस्कार करती हैं ।१२-१५। जिसमें समस्त जगत् स्थित है, जगत् जिसे नहीं देख सकता, जो अतिस्थूल तथा परम सूक्ष्म है, जो शंख धारण करनेवाला है—ऐसे तुम्हें हम नमस्कार करती हैं । जिस परब्रह्म को सभी मनुष्य समस्त चराचर संसार को देखते हुए भी नहीं देख पाते, हृदय में स्थित रहकर भी जो जगत् की दृष्टिपथ नहीं आता, जिसमें इस समस्त चराचर जगत् का अवसान होता है, जिसका यह समस्त जगत् है, उस समस्त जगत् के आधार रूप भगवान् तुमको हमारा नमस्कार है ।१६-१८। जो सभी प्रजापतियों में अग्रगण्य है, सभी प्रभुओं का भी प्रभु है, जगत् में सब से परे है, सभी देवताओं का स्वामी है, उस आदिकर्त्ता कृष्ण को हम नमस्कार करती हैं । जो प्रवृत्ति एवं निवृत्ति विषयों में मनुष्यों से अपने-अपने कर्मों द्वारा उपासित होता है, उस स्वर्ग अपवर्ग के प्रदाता गदाधर भगवान् को हमारा नमस्कार है । जो मनुष्यों द्वारा मन से भी चिन्तित होने पर शीघ्र ही पापों को दूर करनेवाला है, उस आदिकर्त्ता विशुद्ध परब्रह्म विष्णु को हमारा नमस्कार स्वीकार हो ।१९-२१। जिस देवाधिदेव अविनाशी परब्रह्म को जानकर प्राणी पुनः जन्म मरण के संकट को नहीं प्राप्त करता उसे हम नमस्कार करती हैं । जो परम यज्ञकर्त्ता ऋषियों द्वारा यज्ञ नामधारी होकर पूजित होता है, उस यज्ञपुरुष परमप्रभु विष्णु को हमारा नमस्कार है । सभी वेदों के जाननेवाले जिसे वेदों में विद्वानों का शिरोमणि मान कर यशोगान करते हैं, उस वेदों द्वारा जानने योग्य विजयशील विष्णु को हमारा नमस्कार है ।२२-२४। जिससे इस चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है तथा

---

१ ङ. च. °त्र यतो योगेन । २ च. °गद्यश्चेद्दृश्यते हृ° । ३ ङ. °त्र यतो देवो हृ° । ४ क. ख. °तः । यस्मिन्नत्र पयश्चैव नद्यश्चैवाखि° । ५ °तिर्यस्मात्पितॄणां परमः पतिः । सुराणां यः पतिस्त° । ६ ग. ङ. च. °संस्थितः । ७ ग. ङ. च. गतिः ।

यतो विश्वं समुत्पन्नं यस्मिंश्च लयमेष्यति । [1]विश्वागमप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने ॥२५
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं येन विश्वमिदं [2]ततम् । [3]मायाजालं समुत्तर्तुं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥२६
यस्तु तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः । विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम् ॥२७
यमाराध्य विशुद्धेन मनसा कर्मणा गिरा । तरन्त्यविद्यामखिलां तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥२८
विषादतोषरोषाद्यैर्योऽजस्रं[4] सुखदुःखजैः[5] । नृत्यत्यखिलभूतस्थस्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥२९
[*मूर्तं तमोऽसुरमयं [6]तद्वधाद्विनिहन्ति[7] यः ।रात्रिजं सूर्यरूपीव तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥३०
कपिलादिस्वरूपस्थो यश्चाज्ञानमयं तमः । हन्ति ज्ञानप्रदानेन तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्] ॥३१
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम् । पश्यतः कर्म सततमुपेन्द्रं तं नमाम्यहम् ॥३२
यस्मिन्सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम् । नानृतं तमजं विष्णुं नमामि [8]प्रभवाप्ययम् ॥३३
यच्च तत्सत्यमुक्तं मे भूयांश्चातो जनार्दनः । सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः ॥३४

जिसमें इस जगत् का अवसान होता है उस विश्वाधार वेदों की मर्यादा के रक्षक महात्मा विष्णु को हमारा नमस्कार है। ब्रह्मा से लेकर छोटे तृण तक को बनाकर जिसने इस चराचर निखिल जगत् का विस्तार किया है उस उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई) को इस मायाजाल से उबरने के लिए मैं नमस्कार करती हूँ। जो प्रभु जल स्वरूप हो कर सभी जगत् का भरण पोषण करता है, उस विश्व स्वरूप, विश्व के स्वामी आदि प्रजापति विष्णु को हमारा नमस्कार है।२५-२७। जिस भगवान् की मनुष्य विशुद्ध मन, वचन एवं कर्म से अराधना कर सभी अविद्याओं के समुद्र को पार करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जो सभी चराचर जीवों में विद्यमान होकर विषाद, सन्तोष, रोष, आदि भावों से सभी को नचाता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। मोह रात्रि में उत्पन्न असुर रूप मूर्तिमान् अंधकार का जो सूर्य रूप होकर विनाश करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है।२८-२९। कपिल आदि महर्षियों में अवस्थित होकर जो भगवान् अपने ज्ञान-दान द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जिस परब्रह्म के नेत्र स्वरूप चन्द्रमा तथा सूर्य संसार के शुभाशुभ कर्मों को बराबर देखते रहते हैं उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जिस सर्वेश्वर के लिए मैंने इन उपर्युक्त सभी विशेषणों को सत्य ही वर्णन किया है, मिथ्या नहीं, उस अजन्मा समस्त जगत् के कर्त्ता को हमारा नमस्कार है। हे देव जर्नादन ! यदि मैंने ये बातें तुम्हारे लिये सत्य रूप में कही हैं तो उस सत्य से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों ॥३०-३४॥

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

---

[1] ग. च. विश्वोद्भवप्र°। [2] ङ. कृतम्। [3] ङ. °यानालसमुत्पन्न यस्मिश्च लयमेष्यति। विश्वाज्ञाय प्रविष्टाय तमु°। [4] ङ. °द्यैरजेयं सु°। [5] ङ. °जैः। नित्यं निखिलभूतस्थं तमु°। [6] ङ. च. तद्विधा विनि°। [7] ख. °धान्विनि°। [8] क. ख. ग. °वाव्यय°।

शौनक उवाच

एवं स्तुतः स भगवान्वासुदेव उवाच ताम् । अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥३५

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान् । तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः ॥३६
शृणुष्व सुमहाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः । तमाशु व्रियतां कामं श्रेयस्ते संभविष्यति ॥
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति ॥३७

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं मद्भक्त्या भक्तवत्सल । त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः ॥३८
हृतं राज्यं [1]हृताश्चास्य यज्ञभागा महासुरैः । त्वयि प्रसन्ने वरदे तान्प्राप्नोतु सुतो मम ॥३९
हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव । [2]सापत्नाद्दायनिभ्रंशो[3] बाधां नः कुरुते हृदि ॥४०

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितः । स्वांशेन चैव ते गर्भे संभविष्यामि कश्यपात् ॥४१

शौनक ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् वासुदेव, जो सभी चराचर जीवों के दर्शन-पथ में नहीं आते उस समय दिखाई पड़े और उससे इस प्रकार बोले ।३५।

श्री भगवान् ने कहा—अदिति ! तुम जिन मनोरथों की मुझसे अभिलाषा करती हो, हे धर्मज्ञे ! उन सभी को तुम मेरी कृपा से प्राप्त करोगी, इसमें सन्देह नहीं । हे महाभाग्यशालिनी ! तुम्हारे हृदय में मुझसे जिस वरदान को माँगने की इच्छा है उसे तुम शीघ्र ही माँगकर अपनी इष्टसिद्धि करो । तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा । मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता ।३६-३७।

अदिति ने कहा—भक्तवत्सल देव ! यदि तुम मेरी भक्ति से प्रसन्न हो तो मेरा पुत्र इन्द्र फिर से तीनों लोकों का स्वामी बने । महान् राक्षसों द्वारा छीना गया उसका राज्य तथा उसके यज्ञभाग तुम्हारे जैसे वरदानी के प्रसन्न हो जाने पर मेरा पुत्र पुनः प्राप्त करे । हे केशव ! छीना हुआ मेरे पुत्र का राज्य मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है जितना सौतेले पुत्रों द्वारा मेरे पुत्रों का छीना गया अधिकार मेरे हृदय में चुभ रहा है ।३८-४०।

श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! मैं तुम्हारे मन की बातें पूरी करूँगा और कश्यप तुम्हारे गर्भ में

---

[1] ग. हृतं स्वाम्यं य° । ङ. च. हृतश्चास्य यज्ञभागो म° । [2] ग. °त्नाच्च । प्रतिध्वंसो बा° । [3] ङ. °विभ्रंशो ।

तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः । तानहं निहनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि ॥४२

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन । नाहं त्वामुदरे देव वोढुं शक्ष्यामि केशव ॥४३
*यस्मिन्प्रतिष्ठितं विश्वं यो विश्वं स्वयमीश्वरः । तमहं नोदरेण त्वां वोढुं शक्ष्याभि दुर्धरम् ॥४४

श्रीभगवानुवाच

सत्यमात्थ महाभागे मयि सर्वमिदं जगत् । प्रतिष्ठितं न मां शक्ता वोढुं सेन्द्रा दिवौकसः ॥४५
किंत्वहं सकलाँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् । जङ्गमान्स्थावरान्सर्वांस्त्वां च देवि सकश्यपान् ॥
धारयिष्यामि भद्रं ते तदलं संभ्रमेण ते ॥४६
न ते ग्लानिर्न ते खेदो गर्भस्थे भविता मयि । दाक्षायणि प्रसादं ते करोम्यन्यैः सुदुर्लभम् ॥४७
गर्भस्थे मयि पुत्राणां तव योऽरिर्भविष्यति । तेजसस्तस्य हानिं च करिष्ये मा व्यथां कृथाः ॥४८

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा ततः सद्यो यातोऽन्तर्धानमीश्वरः । साऽपि कालेन तं गर्भमवाप १कुरुसत्तम ॥४९

अपने अंश से ही उत्पन्न होऊँगा और तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर देवताओं के जितने भी शत्रुगण हैं उन सभी को विनष्ट करूँगा, हे नन्दिनि ! तुम सन्तोष धारण करो ।४१-४२।

अदिति ने कहा—देवाधिदेव ! समस्त जगत के कर्त्ता ! केशव ! मेरे ऊपर कृपा करो । मैं तुम्हें गर्भ में धारण करने में अपने को समर्थ नहीं पा रही हूँ, जिस तुम्हारे शरीर में यह समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, जो तुम स्वयं विश्वस्वरूप हो, उस अतिदुर्धर तुमको मैं अपने उदर में धारण करने में सर्वथा असमर्थ हूँ ।४३-४४।

श्री भगवान् ने कहा—हे महाभाग्यशालिनी ! तुम सच कह रही हो, सच बात है कि मुझमें समस्त चराचर जगत् की स्थिति है, मेरा भार वाहन करने में इन्द्र समेत सभी देवगण भी समर्थ नहीं हो सकते । किन्तु मैं तो सभी लोकों को, देवता, राक्षस एवं मनुष्यों को—सभी चर अचर जीव एवं कश्यप समेत तुमको—सबको वहन कर सकता हूँ, अतः तुम्हें विकल नहीं होना चाहिये । गर्भ में मेरे अवस्थित होने पर तुम्हें किसी प्रकार की ग्लानि या खेद नहीं होगा । हे दाक्षायणि ! तुम्हारे लिये मेरी वह प्रसन्नता सुलभ है जो दूसरों के लिए अति दुर्लभ है । मेरे गर्भकाल में तुम्हारे पुत्रों से जो शत्रुता करेगा, उसके भी तेजोबल को मैं विनष्ट कर दूँगा, तुम किसी प्रकार का दुःख मत करो ।४५-४८।

शौनक ने कहा—भगवान् ऐसा कहने के बाद तुरन्त वहीं पर अन्तर्हित हो गये । हे कुरुसत्तम !

---

* न विद्यतेऽयं श्लोको ङ. च. पुस्तकयोः ।

---

१ घ. ङ. पुरुषोत्तमम् । ग° ।

गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः । चकम्पिरे महाशैलाः क्षोभं जग्मुस्तथाऽब्धयः ॥५०
यतो यतोऽदितिर्याति ददाति ललितं पदम् । ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम वसुधाधिप ॥५१
दैत्यानामथ सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने । बभूव तेजसां हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावेऽदितिवरप्रदानं नाम
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२२०४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शौनक उवाच

निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः । प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥१

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्य निर्दग्धा इव वह्निना । किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥२

देवताओं की माता अदिति भी थोड़े दिनों बाद गर्भवती हुई। भगवान् कृष्ण (विष्णु) के गर्भस्थित होने पर सारी पृथ्वी चलायमान हो गई, बड़े-बड़े पर्वत कांपने लगे, सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। हे वसुधाधिप ! जिधर-जिधर से होकर अदिति जाती थीं तथा अपने मनोहर पैरों को पृथ्वी पर रखती थीं उधर-उधर भार के कारण पृथ्वी विनम्र हो जाती थी। मधुसूदन भगवान् विष्णु के गर्भस्थ होंने पर सभी दैत्यों के तेज बिल्कुल मन्द हो गये जैसा कि परमेष्ठी भगवान् ने स्वयं अदिति से कहा था।४९-५२।

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रादुर्भाव नामक दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४५

शौनक ने कहा—दैत्यों के निस्तेज हो जाने पर बलि ने उन्हें इस प्रकार तेजोहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा।१।

बलि ने कहा—हे तात ! ऐसी बात है कि सभी दैत्य गण अग्नि से जले हुए की भाँति निस्तेज से हो गये हैं, और क्या ऐसा कारण है कि वे इतने शीघ्र ही ब्रह्मदण्ड से मारे हुए की भाँति दिखाई पड़ने

अरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या वैरिनिर्मिता । नाशायैषा समुद्भूता यया निस्तेजसोऽसुराः ॥३

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिर्धीरः[1] पृष्टः पौत्रेण पार्थिव । चिरं ध्यात्वा जगादैनमसुरेन्द्रं बलिं तदा ॥४

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां [2]धृतिम् । सर्वे समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥५
सूर्योदये[3] यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः । देवानां च परा लक्ष्मीः कारणैरनुमीयते ॥६
महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर । न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं सुरार्दन ॥७

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः । अत्यन्तभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम् ॥८
स ध्यानयोगं कृत्वाऽथ प्रह्लादः[4] सुमनोहरम् । विचारयामास ततो[5] यतो देवो जनार्दनः ॥९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम् । अन्तःस्थान्बिभ्रतं सप्त लोकानादिप्रजापतिम् ॥१०

लगे हैं। यह दैत्यों के ऊपर कोई अरिष्ट तो नहीं आ गया है? अथवा वैरियों द्वारा कोई कृत्या तो इन पर विनाश के लिये नहीं छोड़ी गई है, जो आकर पड़ी है, जिससे सभी तेजोहीन हो गये हैं।२-३।

शौनक ने कहा—हे राजन्! तब इस प्रकार बलि के पूछने पर धैर्यवान् दैत्याधिपति प्रह्लाद ने बड़ी देर तक ध्यान कर के असुरनायक बलि से पूछा।४।

प्रह्लाद ने कहा—दानवपति बलि! इस समय सभी पर्वत हिलने लगे हैं, भूमि भी अपनी स्वाभाविक क्षमता छोड़ रही है, समस्त समुद्र विक्षुब्ध हो रहे हैं, दैत्य तथा दानव गण तेजोहीन हो गये हैं, ग्रहगण जिस प्रकार पहले सूर्य का अनुगमन करते थे उस प्रकार उदित होने पर भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। इन कारणों से अनुमान लगता है कि देवताओं की विशेष अभ्युन्नति प्राप्त होने वाली है। हे महाबाहुवाले! यह महान् कारण दिखाई पड़ रहा है। हे देवताओं के शत्रु! इसे तुम तुच्छ कारण मत समझो।५-७।

शौनक ने कहा—दानवराज बलि से इस प्रकार की बातें कर असुरों के बीच में महात्मा प्रह्लाद ने, जो भगवान् के परमभक्त थे, मन से हरि का चिन्तन किया और योगबल से ध्यान करके उन्होंने भगवान् जनार्दन का अन्वेषण किया कि वे इस समय कहाँ है? ध्यान करने पर प्रह्लाद ने अदिति के उदर में वामन रूप में विराजमान उन आदि प्रजापति भगवान् विष्णु को देखा, जिसके अन्दर सातों लोक विराजमान थे।८-९।
उस समय प्रह्लाद ने भगवान के अन्दर आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, उनचास मरुत् गण, साध्य

---

[1] ग. घ. ङ. °तिर्वीरः। [2] घ. स्थितिम्। [3] ख. घ. च. °दयो य°। [4] ङ. °दः स्वामनो हरिम्। वि°। [5] ङ. तो देवदेवं जनार्दनम्। स।

तदन्तःस्थान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा । साध्यान्विश्वांस्तथाऽऽदित्यान्गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥११
विरोचनं स्वतनयं बलिं चासुरनायकम् । जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथाऽसुरान् ॥१२
आत्मानुमुर्वी गगनं वायुमम्भो हुताशनम् । समुद्रान्वै द्रुमसरित्सरांसि च पशून्मृगान्[1] ॥१३
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान् । समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च ॥
ग्रहनक्षत्रनागांश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन् ॥१४
स पश्यन्विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात्पुनः । प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं तदा ॥१५

प्रह्लाद उवाच

वत्स ज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम् । तेजसो हानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः ॥१६
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिकृत् । अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥१७
[2]परावराणां[3] परमः परः परवतामपि । [4]प्रमाणं च प्रमाणानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः ॥१८
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणामनादिमध्यो भगवाननन्तः ।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेष कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥१९

देव गण, विश्वेदेव गण, आदित्य गण, गन्धर्व गण, उरगगण, राक्षस समूह, अपने पुत्र विरोचन, असुरस्वामी बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक बाण, तथा अन्यान्य असुरपति, स्वयं अपने आप, सारी पृथ्वी, विशाल आकाश, वायु, जल, अग्नि, सभी समुद्र गण, वृक्ष, नदियाँ, सरोवर, पशु, मृग गण, पक्षि गण, संसार के सभी मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले सभी जीव, सभी लोकों की सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्मा, शिवजी, सभी ग्रहों, नक्षत्रों नागों, एवं दक्ष आदि सभी प्रजापतियों को अति विस्मय से व्याकुल होकर देखा । और तब क्षण भर बाद पुनः स्वस्थ होकर अपने पुत्र विरोचन के पुत्र बलि से कहा ।१०-१५।

प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स ! मैं उस कारण को भली भाँति जान चुका जिस लिये आप लोगों के तेज की हानि हुई है, उसे विस्तारपूर्वक सुनो । देवाधिदेव ! सभी जगत् के उत्पन्न करनेवाले, सृष्टि के आदिकर्त्ता, बिश्व भर में जिनसे पूर्व कोई नहीं था, जो एक मात्र सब से प्रथम हैं, ऐसे पूज्य वरदायक भगवान् विष्णु पर से भी परम (परात्पर); प्रमाणों के भी प्रमाण, सातों लोकों के गुरु के भी गुरु हैं । प्रभु के भी प्रभु हैं, पर से भी परे हैं, अनादि हैं, अमध्य हैं, अनन्त हैं । वे भगवान् अपने अंश द्वारा इस त्रैलोक्य को सनाथ करने के लिये अदिति के गर्भ से उत्पन्न हो रहे हैं ।१६-१९। हे दैत्यपति ! जिनके स्वरूप को

---

[1] ग. °न् । देवान्म° । [2] क. ख. परंपरा° । [3] ग. घ. °रापरा° । [4] ग. घ. प्रभुः प्रमाणं मानानां ।

न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनिर्नेन्द्रो[1] न सूर्येन्दुमरीचिमुख्याः
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं स [2]वासुदेवः कलयाऽवतीर्णः ॥२०
योऽसौ कलांशेन नृसिंहरूपी जघान पूर्वं पितरं ममेशः ।
यः सर्वयोगीशमनोनिवासः स वासुदेवः कलयाऽवतीर्णः ॥२१
यमक्षरं वेदविदो विदित्वा विशन्ति यज्ज्ञानविधूतपापाः ।
यस्मिन्प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति तं वासुदेवं प्रणमामि [3]नित्यम् ॥२२
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम् ।
लयं च यस्मिन्प्रलये प्रयान्ति तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥२३
न यस्य रूपं न बलप्रभावौ न यस्य भावः परमस्य पुंसः ।
विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यजस्रम् ॥२४
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे [4]त्वगिष्टा स्पर्शे ग्रहीत्री रसना रसस्य ।
श्रोत्रं च शब्दग्रहणे नराणां घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तम् ॥२५
येनैकदंष्ट्राग्रसमुद्धृतेयं धराऽचलान्धारयतीह सर्वान् ।
यस्मिंश्च शेते सकलं जगच्च तमीशमाद्यं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥२६

भगवान् रुद्र, पद्मयोनि ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, मरीचि प्रभृति महर्षिगण भी नहीं जान पाते वे भगवान् वासुदेव अपनी कला से उत्पन्न हो रहे हैं। जिन भगवान् ने पूर्वकाल से अपनी एक कला द्वारा नृसिंह रूप में अवतीर्ण होकर मेरे पिता का वध किया था तथा जो सभी योगिराजों के मन में निवास करनेवाले हैं वे ही भगवान् वासुदेव अपनी कला से अवतीर्ण हो रहे हैं।२०-२१। वेदों के जाननेवाले विद्वान् लोग जिन अव्यय भगवान् को भली भाँति जानकर प्रवेश करते हैं तथा सभी पापों से निर्मुक्त होकर प्रवेश करके पुनः इस मृत्युलोक में जन्म नहीं धारण करते उन भगवान् वासुदेव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव से सभी जीव गण समुद्र से लहरों की भाँति निरन्तर उत्पन्न होते हैं और प्रलय काल में पुनः उसी में सन्निविष्ट हो जाते हैं, उन अचिन्त्य महिमाशाली को हमारा नमस्कार है।२२-२३। जिस परम पुरुष के स्वरूप को, बल को, प्रभाव को एवं भाव को शिव तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं समझ पाते उन भगवान् वासुदेव को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव ने मनुष्यों को स्वरूप देखने के लिये नेत्र, स्पर्श के लिये चमड़ा, रसास्वादन के लिये जिह्वा, शब्द सुनने के लिये कान तथा सुगन्ध ग्रहण करने के लिए नासिका दी है, उन्हें हमारा नमस्कार हे।१४-२५। जिसने अपने दाँत के अग्र भाग से इस अनन्त पृथ्वी मण्डल का उद्धार किया है, जो इन सभी पर्वतों को धारण करता है, जिसमें यह समस्त चराचर

---

[1] ग. °निनेन्दुर्मरीचिर्न मनुर्मनुष्याः। जा°। [2] ङ. °देवो भुवनेऽय°। [3] ग. घ. ङ. देवम्।
[4] घ. च. त्वगेषा स्प°।

न घ्राणचक्षुःश्रवणादिभिर्यः सर्वेश्वरो वेदितुमक्षयात्मा ।
शक्यस्तमीडचं मनसैव देवं ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम् ॥२७
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे हृतानि तेजांसि महासुराणाम् ।
नमामि तं देवमनन्तमीशमशेषसंसारतरोः कुठारम् ॥२८
देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोडशांशेन महासुरेन्द्र ।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्तेन बलाद्वपूंषि ॥२९

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम् । सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः ॥३०
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च । अयः शिराश्वाश्वशिरा भङ्गकारी महाहनुः ॥३१
प्रतापः प्रघसः शुम्भः कुकुरश्च सुदुर्जयः । एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा ॥३२
महाबला महावीर्या भूभारोद्धरणक्षमाः । एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्धेन [1]संमितः ॥३३

शौनक उवाच

पौत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुंगवः । धिग्धिगित्याह स बलिं [2]वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥३४

जगत् शयन करता है उस सर्वप्रथम भगवान् विष्णु को हमारा नमस्कार है। जो सर्वेश्वर अक्षयात्मा नासिका, नेत्र एवं कान आदि इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता, केवल मन द्वारा जिसे ग्रहण किया जा सकता है, उस पूज्य परमात्मा विष्णु के सम्मुख हम विनत हैं।२६-२७। अपने अंश मात्र से अवतीर्ण होकर जिसने गर्भस्थ होते हुए भी बड़े-बड़े दैत्यों के तेजों का हरण कर लिया, जो समस्त भव-भयरूप वृक्ष के लिए कुठार रूप है उस अनन्त परमात्मा को नमस्कार करता हूँ। हे महासुरेन्द्र! वह महान् आत्मा समस्त जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता भगवान् विष्णु अपने सोलह अंशों से देवताओं की माता अदिति के उदर में प्रविष्ट हुआ है, उसी ने अपने तेज से तुम लोगों के शरीर को निस्तेज कर दिया।२८-२९।

बलि ने कहा—हे तात! यह हरि नामक कौन-सा देवता है? जिससे हम लोगों को इतनी विपत्ति आ गई है। मेरे पास तो उस वासुदेव से भी अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। विप्रचित्ति, शिबि शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकारी, महाहनु, प्रताप, प्रघस, शुम्भ, अति कठिनाई से जीतने योग्य कुकुर,—ये महाबलवान् दैत्य हमारी सेना में हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों दैत्य तथा दानव भी हैं. जो महाबलवान्, महान् पराक्रमी तथा समस्त पृथ्वी के भार को उठाने में समर्थ हैं, इन सबों में एक एक के भी आधे पराक्रम से कृष्ण की समानता नहीं है।३०-३३।

शौनक ने कहा—दैत्यपुंगव प्रह्लाद अपने पौत्र की दर्पोक्ति सुनकर भगवान् की निन्दा करनेवाले उस बलि को 'धिक्कार है, धिक्कार है' ऐसा कहने लगा।३४।

---

१ ग. ङ. संमतः। २ ङ. °कुण्ठस्याप°।

प्रह्लाद उवाच

विनाशमुपयास्यन्ति [1]मन्ये दैतेयदानवाः । येषां त्वमीदृशो राजा [2]दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥३५
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम् । त्वामृते पापसंकल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥३६
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः । सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरानन्तभूमयः ॥३७
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीनदम् । समुद्रद्वीपलोकाश्च[3] न समं केशवस्य हि ॥३८
यस्यातिवन्द्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः । एकांशेन जगत्सर्वं कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥३९
ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम् । कुबुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम् ॥४०
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः । यस्य त्वमीदृशः [4]पुत्रो [5]देवदेवस्य निन्दकः ॥४१
[*तिष्ठत्वेषा हि संसारसंभूताघविनाशिनी । कृष्णे भक्तिरहं [6]तावदवेक्ष्यो भवता न किम् ॥४२
न मे प्रियतमः कृष्णादपि देहो महात्मनः । इति जानात्ययं लोको न भवान्दितिजाधम ॥४३

प्रह्लाद ने कहा—मुझे मालूम हो रहा है कि ये सभी दैत्य तथा दानव गण विनाश के मुख में जाने वाले हैं क्योंकि जिनको तुम जैसा अविवेकी एवं दुर्बुद्धि राजा मिला है। देवाधिदेव, महान् तेजस्वी एवं भाग्यशाली अजन्मा वासुदेव भगवान् को तुझ जैसे पापकर्मी को छोड़कर भला ऐसा कौन कह सकता है। तुमने इन जितने दैत्यों तथा दानवों के नाम ऊपर गिनाये हैं, वे सभी मिलकर, ब्रह्मा के समेत सभी देवगण, स्थावर जंगम सभी जगत्, तुम मैं, पर्वत; वृक्ष, नदियाँ और सभी नदी के समेत यह सारा संसार सभी समुद्र, द्वीप एवं सभी लोक—ये सब भगवान् केशव की समानता नहीं कर सकते।३५-३८। जिस जगत् व्यापी अति वन्दनीयों के भी वन्दनीय परमात्मा का यह समस्त चराचर जगत् केवल एक अंश है, उसके बारे में भला कौन ऐसा है जो तुम्हारी तरह बातें करेगा। तुम जैसे अविवेकी, विनाशोन्मुख, कुबुद्धि, अजितात्मा, बूढ़ों के शासन को न माननेवाले के सिवा ऐसी अविवेकपूर्ण बातें भला कौन कर सकता है? मुझ अभागे की स्थिति अब शोचनीय है जिसके घर में तुम्हारा नीच पिता उत्पन्न हुआ, जिसके तुझ जैसा देवाधिदेव विष्णु भगवान् का निन्दक पुत्र पैदा हुआ।३९-४१। संसार में एकत्र घोर पापों के समूहों को नष्ट करनेवाली भगवान् कृष्ण के चरणों में हमारी भक्ति अक्षुण्ण बनी रहे मैं भले ही तुमसे अपमानित क्यों न होऊँ! उस महान् आत्मा कृष्ण से बढ़कर मेरा इस संसार में कोई भी प्रिय विषय नहीं है, अपना शरीर भी मुझे उतना प्रिय नहीं है। हे मूर्ख

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

---

[1] ङ. मन्दा। [2] क. वाक्°। देव°। [3] ग. °श्च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गितम्। य°। घ. °श्च यच्चेदं यच्च नेङ्गतिम्। यस्या°। [4] ग. °त्रो दुरात्मा कृष्णनि। [5]. च. °देवापमानकः। [6] ग. ङ. °दपेक्ष्यो।

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम । निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन्गौरवं मम ॥४४
विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले । ममापि सर्वजगतां [1]गुरोर्नारायणो गुरुः ॥४५
निन्दां करोषि यस्तस्मिन्कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ । यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद्भ्रंशमेष्यसि ॥४६
*मम देवो जगन्नाथो बले तावज्जनार्दनः । भवत्वहमुपेक्ष्यस्ते प्रीतिमानस्तु मे गुरुः ॥४७
एतावन्मात्रमप्येवं निन्दितस्त्रिजगद्गुरुः । नावेक्षितं त्वया यस्मात्तस्माच्छापं ददामि ते ॥४८
यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं वचः । त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥४९
यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे । तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥५०

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम् । प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥५१

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि । बलावलेपमत्तेन मयैतद्वाक्यमीरितम् ॥५२

दैत्य ! इस बात को सारा संसार जानता है किन्तु तुम अकेले नहीं जानते । मेरे इतने प्राणों से भी प्रिय भगवान् कृष्ण को जानते हुए भी जो तुम निन्दा कर रहे हो सो मेरा सम्मान नहीं कर रहे हो ।४२-४४। हे बलि ! तुम्हारा पूज्य विरोचन है और मैं उसका भी पूज्य हूँ, और मेरे भी क्या समस्त संसार के पूज्य भगवान् विष्णु हैं । इस कारण जो तुम अपने पूज्य के पूज्य मेरे गुरु की निन्दा कर रहे हो सो अवश्य ही शीघ्र तुम इस ऐश्वर्य के पद से नीचे गिरोगे । बलि ! मेरे सर्वस्व, जगत् के स्वामी, भगवान् वासुदेव में हमारी प्रीति अक्षुण्ण बनी रहे, इसमें मैं तुम से अपमानित ही रहूँगा तो कोई हानि नहीं है तीनों लोकों के गुरु भगवान् की महिमा को जो तुमने नहीं जाना और इस प्रकार का उनका अपमान किया है इसलिये मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ ।४५-४८। तुम्हारी वाणी अच्युत की निन्दा करनेवाली है, अतः जिस प्रकार शिर काट लेने से मुझे दुःख होता उसी प्रकार तुम्हारी इस कठोर एवं गम्भीर वाणी से मुझे दुःख हुआ है, अतः तू अपने राज्य से भ्रष्ट हो जा और तुम्हारा पतन हो जाय । जिस प्रकार यह निश्चय है कि इस संसार सागर में भगवान् कृष्ण को छोड़कर कोई अन्य शरणदायक नहीं है उसी प्रकार शीघ्र तुमको मैं राज्य पद से च्युत हुआ देखूँ ।४९-५०।

शौनक ने कहा—दैत्यपति बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद की ऐसी शाप की अप्रिय बातें सुनकर बारम्बार प्रणाम करते हुए उन्हें प्रसन्न किया ॥५१॥

बलि ने कहा—हे तात ! मुझ अज्ञान से मोहित के ऊपर तुम कृपा करो, कोध मत करो।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो घ. ङ. पुस्तकयोः—मा देवा मा जगन्नाथो बले मा वा जनार्दन इति ।

[1] घ. गुरुर्ना° ।

मोहोपहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम । यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥५३
राज्यभ्रंशं वसुभ्रंशं संप्राप्स्यामीति न त्वहम् । विषण्णोऽस्मि यथा तात तवैवाविनये कृते ॥५४
त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नाति दुर्लभम् । संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधाः ॥५५
तत्प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप । त्वत्कोपदृष्ट्या ताताहं परितप्ये न शापतः ॥५६

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मोहो मे जनितस्तेन ते मया । शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम ॥५७
यदि मोहेन मे ज्ञानं नाऽऽक्षिप्तं स्यान्महासुर । तत्कथं सर्वगं जानन्हरिं किंचिच्छपाम्यहम् ॥५८
योऽयं शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव । भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मान्मा त्वं विषीद वै ॥५९
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ । भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥६०
शापं प्राप्याथ मां वीर संस्मरेथाः स्मृतस्त्वया । यथा तथा यतिष्येऽहं श्रेयसा [2]योज्यसे यथा ॥६१
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महामतिः । अजायत स गोविन्दो भगवान्वामनाकृतिः ॥६२

बल के गर्व से उन्मत्त होकर मैंने वैसी दर्पोक्ति तुम को सुनाई है। हे दैत्यश्रेष्ठ ! अज्ञान एवं मोह से मेरी सारी बुद्धि चौपट हो गई है, मैं बड़ा पापकर्मी हूँ। अतः मुझ जैसे दुराचारी को जो आप ने यह शाप दिया है सो अच्छा ही किया है। हे तात ! मैं राज्य से च्युत हो जाऊँगा, मेरी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो जायगी—इन बातों से मैं तनिक भी दुःखी नहीं हूँ किन्तु मुझे इस बात से अधिक दुःख है कि मैंने आप के साथ अविनयपूर्ण व्यवहार किया है। तीनों लोकों पर साम्राज्य हो जाना, एवं अति ऐश्वर्यवान् हो जाना—ये दोनों बातें इस पृथ्वी तल पर उतनी दुर्लभ नहीं हैं, जितनी आप जैसे परम भागवत गरुजनों की प्रीति दुर्लभ है। हे दैत्यों के पालक ! यह समझ कर कि मैं आपकी क्रोधपूर्ण दृष्टि से अति दुःखी हूँ शाप से नहीं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ, कोप न करें।५२-५६।

प्रह्लाद ने कहा—'हे वत्स ! अति कोप के कारण मैं मोहित हो गया, जिससे अभिभूत होकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया और अज्ञान ने मेरी विवेकशक्ति का बिल्कुल हरण कर लिया। हे महाअसुर ! यदि अज्ञान के कारण मेरी विवेकशक्ति नष्ट न हुई होती तो सर्वान्तिर्यामी भगवान् विष्णु को जानता हुआ भी मैं शाप देने को क्यों उद्यत होता।५७-५८। हे असुरपुंगव ! यह जो शाप मैंने तुम्हें दिया है, यह तो अवश्य ही घटित होगा अतः इसके लिये तुम विषाद मत करो। आज से तुम्हारी भक्ति देवेश अच्युत भगवान् में होगी और वही तुम्हारी रक्षा करनेवाला होगा। हे वीर ! इस शाप के घटित होने पर जब तुम मेरा स्मरण करोगे, तब मैं वैसा प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसी बातें कह कर महामतिमान् प्रह्लाद चुप हो गया। इसी अवसर पर अदिति के गर्भ से भगवान् गोविन्द वामन स्वरूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए।५९-६२।

---

[1] ङ. °वंराजावं दारकं च शपा° । [2] क. योज्यते ।

अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन्सर्वामरेश्वरे । देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा ॥६३
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः । धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥६४
नोद्वेगश्चाप्यभूत्तत्र[1] मनुजेन्द्रासुरेष्वपि । तदादि सर्वभूतानां भूम्यम्बरदिवौकसाम् ॥६५
तं जातमात्रं भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः । जातकर्मादिकं कृत्वा कृष्णं दृष्ट्वा च पार्थिव ।
तुष्टाव देवदेवेशमृषीणां चैव शृण्वताम् ॥६६

ब्रह्मोवाच

जयाऽऽद्येश [2]जयाजेय जय सर्वात्मकात्मक । जय जन्मजरापेत जयानन्त जयाच्युत ॥६७
जयाजित जयामेय जयाव्यक्तस्थिते जय । परमार्थार्थ सर्वज्ञ [3]ज्ञानज्ञेयाऽऽत्मनिःसृत ॥६८
जयाशेषजगत्साक्षिञ्जगत्कर्तर्जगद्गुरो । [4]जगतोऽस्यन्तकृद्देव स्थितिं पालयितुं जय ॥६९
जय शेष जयाशेष जयाखिलहृदि स्थित । जयादिमध्यान्त जय सर्वज्ञाननिधे जय ॥७०

उन सभी देवताओं के स्वामी जगन्नाथ विष्णु के अवतरित होने पर सभी देवगण दुःख से विमुक्त हो गए । विशेषकर देवमाता अदिति को बड़ी प्रसन्नता हुई, सुख-स्पर्शकारी वायु बहने लगी, आकाश धूलिरहित हो गया, सभी जीवों की धर्म में अभिरुचि हो गई, मनुष्यों और राक्षसों के मन में भी तनिक विह्वलता नहीं हुई, तात्पर्य यह कि पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग इन तीनों लोकों के जीवों में तनिक भी उद्वेग नहीं हुआ । हे राजन् ! भगवान् के उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्मा ने जातसंस्कार आदि कराकर उनका दर्शन किया और सभी ऋषियों के सुनते हुए देवाधिदेव भगवान् की स्तुति की ।६३-६६।

ब्रह्मा ने कहा—हे सब के आदि में होनेवाले ! परमात्मन् ! तुम्हारी जय हो । हे ! अजेय सब की आत्मा में विचरण करनेवाले ! जन्म एवं वृद्धता के कष्टों से विमुक्त भगवान् तुम्हारी जय हो । तुम अनन्त हो, कभी नाश को प्राप्त होनेवाले नहीं हो । हे अजित ! अमेय ! अव्यक्त स्थितिवाले ! परमात्मन् ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम परमार्थ के प्रयोजन के सर्वज्ञ हो, ज्ञान द्वारा जानने योग्य हो, स्वयं अपनी महिमा से प्रकट होनेवाले हो ।६७-६८। हे सम्पूर्ण जगत् के साक्षी ! जगत् के कर्त्ता, जगत् के गुरु ! इस जगत् के विनाशक देव ! तुम्हीं इसको बनानेवाले तथा पालनेवाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो । मोक्ष की इच्छा रखनेवालों को तुम्हारा पता नहीं लगता । तुम्हीं शेष हो, अशेष हो, अखिल प्राणियों के हृदय में स्थित हो, तुम जगत् के आदि हो, मध्य हो, अन्त हो ! सर्वज्ञाननिधे ! तुम्हारी जय हो, जय हो ।६९-७०। मोक्षार्थी जन तुम्हारा पता नहीं पाते, तुम स्वयं दृष्ट हो, ईश्वर हो, योगी जनों

---

[1] घ. भूद्देहे मनुजानां नरेश्वर । त° ।
[2] ङ. °याशेय ज° ।
[3] ङ. °त्मनिश्चय । ज° ।
[4] क. °ऽस्य जयान्ते च स्थि° ।

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य स्वयंदृष्ट जयेश्वर । योगिनां मुक्तिफलद दमादिगुणभूषण ॥७१
जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूलजगन्मय । जय स्थूलातिसूक्ष्म त्वं जयातीन्द्रिय सेन्द्रिय ॥७२
जय स्वमायायोगस्थ शेषभोगशयाक्षर । जयैकदंष्ट्राप्रान्ताग्रसमुद्धृतवसुंधर ॥७३
नृकेसरिञ्जयारातिवक्षःस्थलविदारण । सांप्रतं जय विश्वात्मञ्जय वामन केशव ॥७४
निजमायापटच्छन्न जगन्मूर्ते जनार्दन । जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो ॥७५
वर्धस्व [1]वर्धिताशेषविकारप्रकृते हरे । त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः ॥७६
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे । न ज्ञातुमीशा मुनयः शनकाद्या न योगिनः ॥७७
त्वन्मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते । कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः ॥७८
त्वमेवाऽऽराधितो येन प्रसादसुमुखप्रभो । स एव केवलो देव वेत्ति त्वां नेतरे जनाः ॥७९
नन्दीश्वरेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व वामन । प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन्पृथुलोचन ॥८०

को मुक्ति देनेवाले हो, दम आदि गुणों से विभूषित हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम जगत् में सब से स्थूल हो, सब से सूक्ष्म हो, दुर्ज्ञेय हो, जगन्मय हो, इन्द्रियवान् हो, अतीन्द्रिय हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम अपनी योगमाया में सर्वदा स्थित रहनेवाले हो, शेषनाग के फण पर शयन करनेवाले हो, अव्यय हो, एक दाँत के अग्रभाग से वसुन्धरा का उद्धार करनेवाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो ।७१-७३। तुम नृसिंह हो, हिरण्यकशिपु के बक्षःस्थल का विदारण करनेवाले हो। हे विश्वालय! इस समय भी तुम्हारी जय हो। हे वामन! तुम्हारी जय हो। हे केशव! तुम्हारी जय हो। तुम अपनी ही माया से बने हुए आवरण से छिपे रहते हो। हे जगन्मूर्ते, जनार्दन, अचिन्त्य, अनेक स्वरूप धारण करनेवाले, प्रभो। तुम्हारी जय हो, जय हो ।७४-७५। हे हरे! तुम सभी प्रकृति के विकारों से युक्त हो, तुम्हारी वृद्धि हो, तुझ जैसे परमात्मा में ही इस जगत् के धर्म की मर्यादा मर्यादित हुई है। हें हरे! न भगवान् शंकर, न ब्रह्मा जी, न इन्द्रादि देवगण, न सनकादि मुनिगण, न योगी जन—अर्थात् कोई भी तुम्हारी महिमा को यथार्थतया जानने में समर्थ नहीं है। हे जगत्पते! हे सर्वेश! जगत् में तुम्हारी माया रूपी वस्त्र से लिपटा हुआ कौन प्राणी बिना तुम्हारी कृपा के हुए तुमको जानने में समर्थ हो सकता है ।७६-७८। हे देव! प्रसन्नता से हर्षित मुखवाले! भगवन्! जिस व्यक्ति ने तुम्हारी भली भाँति सेवा कर ली है वही तुम्हें जानता है, अन्य लोग भला तुम्हें क्या जानेंगा! हे विश्वात्मन् दीर्घनेत्रों वाले! वामन भगवान्! नन्दीश्वरेश्वर ईशान! इस विश्व की उन्नति के लिए तुम्हारी जय हो ।७९-८०।

---

[1] ङ. °तानेकवि° ।

शौनक उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः । प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचाब्जसमुद्भवम् ॥८१
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च । मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्] ॥८२
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि प्रतिश्रुतम् । यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम् ॥८३
सोऽहं तथा करिष्यामि [1]यथेन्द्रो जगतः पतिः । भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥८४
ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान् । यज्ञोपवीतं भगवान्ददौ तस्मै बृहस्पतिः ॥८५
आषाढमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः । कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं वेदमथाङ्गिराः ॥८६
अक्षसूत्रं च पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी । उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः ॥
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः ॥८७
स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः । सर्वदेवमयो भूप बलेरध्वरमभ्यगात् ॥८८
यत्र यत्र पदं भूयो भूभागे वामनो ददौ । ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्रातिपीडिता ॥८९

शौनक ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर वामन स्वरूपधारी भगवान् हृषीकेश ने हँसकर कमलयोनि ब्रह्मा जी से भावों से युक्त यह गम्भीर वाणी कही—'हे ब्रह्मन्! प्राचीनकाल में इन्द्रादि देवताओं के साथ कश्यप ने तथा आपने मेरी स्तुति की थी उसी समय मैंने आप लोगों से यह प्रतिज्ञा की थी कि यह त्रिभुवन इन्द्र का होगा, फिर अदिति ने भी मेरी तपस्या की थी और उससे भी मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि शत्रुओं को विनष्ट करके मैं इन्द्र को यह त्रैलोक्य समर्पित करूँगा।८१-८३। सो मैं अपने उस वचन का पालन करने के लिये ऐसा उपाय करूँगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र जगत् के पुनः अधिपति बनेंगे, मैं यह आप लोगों से सत्य बात कह रहा हूँ।८४। भगवान् के ऐसा कहने के उपरान्त ब्रह्मा ने उन्हें कृष्ण मृग का चर्म दिया, भगवान् बृहस्पति ने उन्हें यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मा के पुत्र महर्षि मरीचि ने पलाश दण्ड, वसिष्ठ ने कमण्डलु, अंगिरा ने कुशासन तथा वेद, पुलह ने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्य ने श्वेत वस्त्र के जोड़े समर्पित किये। फिर प्रणव 'ओंकार' के स्वरों से विभूषित वेदों ने भगवान् की स्तुति की और उसी समय सांख्य-योग आदि छहों शास्त्रों ने भगवान् की स्तुति की।८५-८७। हे राजन्! इस प्रकार वामन स्वरूपधारी भगवान् ने जटा, दण्ड, छत्र, कमण्डलु से विभूषित एवं समस्त देवताओं के तेज से सम्पन्न हो बलि के यज्ञ भूमि की ओर प्रस्थान किया। उस समय जहाँ-जहाँ पृथ्वीतल पर वामन ने अपने चरणों को रखा वहाँ-वहाँ अति पीडित होने के कारण पृथ्वी में दरारें पड़ गईं। इस प्रकार धीरे-धीरे मृदु गति से

---

[1] क. ख. महेन्द्रो ।

स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन्सपर्वताम् । साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम् ॥९०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावे वामनोत्पत्तिर्नाम
पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२२९४॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शौनक उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा [1]संक्षोभितां बलिः । पप्रच्छोशनसं [2]शुद्धं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१
आचार्य क्षोभमायाता साब्धिभूभृद्वना मही । कस्माच्च नाऽऽसुरान्भागान्प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥२
इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः । उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा [3]महामतिः ॥३
अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः । वामनेनेह रूपेण जगदात्मा सनातनः ॥४

चलते हुए भगवान् वामन ने उस समय अपनी गति से सभी पर्वतों, समुद्रों तथा द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को चलायमान कर दिया ।८८-९०।

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रादुर्भाव प्रसंग में वामन जन्म नामक दो सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

शौनक ने कहा—भगवान् वामन के चलने पर पर्वतों एवं वनों समेत समस्त पृथ्वी को विक्षुब्ध होते देख बलि ने हाथ जोड़कर विशुद्धात्मा शुक्राचार्य से पूछा—'आचार्य ! किस कारण से समुद्रों, पर्वतों एवं वनों समेत यह पृथ्वी विक्षुब्ध हो रही है, और असुरों के यज्ञ भागों को अग्नि ग्रहण नहीं कर रही है ।१-२। बलि के ऐसा पूछने पर वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य ने बड़ी देर तक ध्यान करने के बाद दैत्याधिपति प्रह्लाद से कहा—'कश्यप के घर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता सनातन जगदात्मा विष्णु भगवान् वामन के रूप

---

१ ङ. च. संक्षुभितां । २ ख. ग. घ. शुक्रं । ३ घ. °हामुनिः अ° ।

स एष यज्ञमायाति तव दानवपुंगव । तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही ॥
कम्पन्ते गिरयश्चामी क्षुभितो मकरालयः ॥५
नैनं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम् । सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनरा[1] ॥६
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः । धारयत्यखिलान्देवो मन्वादींश्च [2]महासुर ॥७
इयमेव जगद्धेतोर्माया कृष्णस्य गह्वरी । धार्यधारकभावेन यया संपीडितं जगत् ॥८
तत्संनिधानादसुरा भागार्हा नासुरोत्तम । भुञ्जते नाऽऽसुरान्भागानमी तेनैव चाग्नयः ॥९

बलिरुवाच

धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् । यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः [3]कोऽन्योऽधिकः पुमान् ॥१०
यं योगिनः [4]सदा युक्ताः परमात्मानमव्ययम् । द्रष्टुमिच्छन्ति देवेशं स मेऽध्वरमुपैष्यति ॥११
होता भागप्रदोऽयं च यमुद्गाता च गायति । तमध्वरेश्वरं विष्णुं मत्तः कोऽन्य उपैष्यति ॥१२
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे मदध्वरमुपागते । यन्मया काव्य कर्तव्यं तन्ममाऽऽदेष्टुमर्हसि ॥१३

में अवतीर्ण हुए हैं, हे दानवपति ! वे भगवान् तुम्हारे यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आ रहे हैं उन्हीं के पैरों के भार के कारण पृथ्वी विक्षुब्ध होकर हिल रही है, पर्वत काँप रहे हैं, सभी समुद्र क्षुब्ध हो रहे हैं ।३-५। इन जीवों के स्वामी परमात्मा को देवता, असुर, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस और किन्नरों समेत यह पृथ्वी वहन करने में सम्प्रति समर्थ नहीं है ।६। हे महान् असुर ! इन्हीं परमात्मा ने इस पृथ्वी को धारण किया है, जल, अग्नि, पवन, और आकाश को भी ये ही धारण करनेवाले हैं, सभी मनु आदि युग पुरुषों के स्रष्टा ये ही हैं । जगत् के लिये भगवान् कृष्ण की वह घनीभूत माया यही है, जो धार्य-धारक भाव से सारे जगत् को पीड़ित करती रहती है । हे असुरोत्तम ! उन्हीं भगवान् के समीपस्थ होने के कारण अब असुरगण यज्ञ में भागों के अधिकारी नहीं हैं । यही कारण है कि ये अग्नि असुरों को दिये हुए भागों को अब नहीं ग्रहण कर रही है ।७-९।

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अब धन्य हूँ, पुण्यवान् होकर मुझसे बढ़कर अन्य कोई भी पुरुष अब नहीं रहा, जिसके यज्ञ में साक्षात् यज्ञपति भगवान् उपस्थित हो रहे हैं । जिन अच्युत देवाधिदेव परमात्मा को योगी जन योगदृष्टि द्वारा देखने की लालसा करते हैं वे ही भगवान् स्वयमेव हमारे यज्ञ में आ रहे हैं । जिन परमात्मा का भागप्रदान करनेवाला होता तथा उद्गाता गान करते हैं उन सभी यज्ञों के स्वामी विष्णु को मेरे सिवा अन्य कौन प्राप्त कर सकता है । अतएव हे आचार्यचरण ! उन सर्वेश्वरेश्वर भगवान् कृष्ण के मेरे यज्ञ में उपस्थित होने के बाद जो कर्त्तव्य हों उन्हें मुझे बताइये ।१०-१३।

---

[1] ग. ङ. °सपन्नपा । अ° । [2] ग. घ. महासुरान् । ङ. च. महासुरः । [3] ङ. कोऽप्यऽधिको भवेत् । घं । च. कोऽभ्यधि° । [4] ग. घ. ङ. सदोद्युक्ताः ।

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर । त्वया तु दानवा दैत्या मखभागभुजः कृताः ॥१४
अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम् । विसृष्टेरनु [1]चाग्नेन स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः ॥१५
[2]त्वत्कृते भविता नूनं देवो विष्णुः स्थितौ स्थितः । विदित्वैतन्महाभाग कुरु [3]यत्नमनागतम् ॥१६
त्वया हि दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि । प्रतिज्ञा[4] न हि वोढव्या वाच्यं साम वृथाफलम् ॥१७
नालं दातुमहं देव दैत्य वाच्यं त्वया वचः । कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥१८

बलिरुवाच

ब्रह्मन्कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः। नास्तीति किमु देवेन संसाराघौघहारिणा ॥१९
व्रतोपवासैर्विविधैः[5] प्रतिसंग्राह्यते हरिः । स चेद्वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम् ॥२०
यदर्थमुपहाराढ्यास्तपः शौचगुणान्वितैः । यज्ञाः क्रियन्ते देवेशः स मां देहीति वक्ष्यति ॥२१

शुक्र ने कहा—हे असुर ! वेदों के प्रमाणानुसार यज्ञों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी केवल देवगण कहे गये हैं किन्तु तू ने तो दैत्यों तथा दानवों को यज्ञ भाग का अधिकारी बनाया है। ये भगवान् सभी सांसारिक जीवों में स्थित रह कर उनकी स्थिति तथा पालन करते हैं। और प्रलयकाल में स्वयमेव उनको ग्रास बनाकर आत्मसात् कर लेते हैं। हे महाभाग ! वे भगवान् विष्णु जो सर्वदा अपनी मर्यादा पर रहनेवाले हैं तुम्हारे ही लिये वहाँ उपस्थित हो रहे हैं, अतः इस बात को भलीभाँति जान कर भविष्य में जो कुछ करना हो, उसकी चिन्ता कीजिये।१४-१६। हे दैत्यपति ! इसलिये मेरी यह सम्मति है कि थोड़ी-सी वस्तु के लिये भी इन्हें देने की प्रतिज्ञा न करना; प्रत्युत झूठी-मूठी खुशामदी की बातें बनाकर अपना काम चलाना और कहना कि—'हे देव ! मैं तुम्हें कुछ भी देने में समर्थ नहीं हूँ।' हे महान् असुर ! क्योंकि वे कृष्ण भगवान् देवताओं की भलाई और अभिवृद्धि के लिये ही इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं।१७-१८।

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अन्य साधारण याचकों के भी प्रार्थना करने पर मैंने उन्हें कभी नकारात्मक उत्तर नहीं दिया, वही मैं संसार के पापों को दूर करनेवाले परमात्मा की याचना को कैसे इनकार कर सकता हूँ। विविध प्रकार के उपवास आदि को कर के लोग जिस भगवान् गोविन्द की आराधना करते हैं वे आकर मुझसे जब याचना कर लेंगे तो फिर उससे बढ़कर संसार में अन्य मनःकामना क्या रह जायगी ? जिन भगवान् को प्राप्त करने के लिये विविध प्रकार के उपहारों द्वारा पवित्रता से यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है, वही भगवान् स्वयमेव आकर मुझसे 'दो' ऐसी याचना करेंगे।१९-२१। निश्चिय ही मेरा सब सुकृत

---

१ ग. घ. चान्ते च स्व°। २ घ. त्वयाऽनुरन्धी भविता नूनं वि°। ङ. च. त्वयाऽनुबन्धी भविता नूनं वि°। ३ ग. यत्नं मनोग°। ४ ग. °ज्ञानाधिसोढ° । ङ. च. °ज्ञानाधिवो°। ५ ग. घ. °विधैर्यः प्रतिग्रा°।

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं मम । यन्मया दत्तमीशेशः स्वयमादास्यते हरिः ॥२२
नास्ति नास्तीत्यहं वक्ष्ये [1]तमभ्यागतमीश्वरम्[2] । यदि वञ्चामि तं प्राप्तं वृथा तज्जन्मनः फलम् ॥
यज्ञेऽस्मिन्यदि[3] यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः । निजमूर्धानमप्यत्र तद्दास्याम्यविचारितम् ॥२४
नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम् । वक्ष्यामि कथमायाते तदनभ्यस्तमच्युते ॥२५
श्लाध्य एव हि वीराणां दानादापत्समागमः[4] । नाबाधकारि यद्दानं [5]तदमङ्गलवत्स्मृतम् ॥२६
मद्राज्ये नासुखी [6]कश्चिन्न दरिद्रो न चाऽऽतुरः । नाभूषितो न चोद्विग्नो न[7] स्रगादिविवर्जितः ॥२७
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धिश्च तृप्तः सर्वसुखान्वितः । जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी ॥२८
[8]एतद्विशिष्टपात्रोऽयं दानबीजफलं मम । विदितं भृगुशार्दूल मयैतत्त्वत्प्रसादतः ॥२९
एतद्विजानतो दानबीजं पतति चेद्गुरो । जनार्दनमहापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया ॥३०

फलीभूत हो गया, मेरी सुचरित्रता सफल हो गई, जो मेरे हाथों से दिये गये दान को स्वयम् भगवान् विष्णु ग्रहण करेंगे ।२२। यदि मैं उन भगवान् के स्वयम् उपस्थित हो जाने पर 'मेरे पास कुछ नहीं है, मैं आपको दान देने में असमर्थ हूँ' ऐसा कहकर धोखे में डालूँगा तो फिर मेरे जीवन का क्या फल होगा ? अतः यदि इस यज्ञ में यज्ञपति भगवान् जनार्दन आकर मुझसे याचना करेंगे तो मैं विना विचार किये ही अपने शिर को काटकर दे सकता हूँ ।२३-२४। अन्य साधारण याचकों की याचना करने पर मैंने कभी 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा तो भला अब भगवान् के उपस्थित होने पर अनभ्यस्त शब्द को क्यों कर कह सकूंगा ? दान देने से आने वाली विपत्तियाँ वीर पुरुषों के लिये शोभनीय हैं । जो दान दे देने के बाद किसी प्रकार की विपत्ति नहीं लाता वह मंगल न देने वाले के समान ही है अर्थात् उसके देने और न देने से कोई विशेष लाभ नहीं ।२५-२६। मेरे राज्य में कोई प्राणी सुखविहीन, दरिद्र, आतुर, अशोभन, उद्विग्न अथवा अलंकार तथा पुष्पमाला आदि से विवर्जित नहीं है प्रत्युत सभी लोग हृष्ट-पुष्ट सुगन्धित द्रव्यों से विभूषित सभी सुखों से समन्वित हैं । हे महाभाग्यशालिन् ! मैं अपने विषय में क्या कहूँ कि सदा सुखपूर्वक रहता हूँ । हे भृगुवंश में सिंह ! मेरे दान रूपी बीज का ही यह फल है, जो इस प्रकार विशिष्टदान का पात्र (दान देने योग्य व्यक्ति) मुझे प्राप्त हुआ. स्पष्ट है कि यह सब कुछ मैंने आपही की कृपा से प्राप्त किया है।२७-२८। अतः हे आचार्य ! यह सब जानते हुए यदि मेरा यह दान बीज जनार्दन रूप अति उपयुक्त पात्र में पड़ जाता है तो फिर मैंने जीवन में क्या नहीं प्राप्त कर लिया अर्थात् तब मेरे जीवन की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायँगी ।

---

१ ङ. °मभ्याग° । २ च. °म् । वञ्चयेद्यदि मां प्राप्तं तदा मे जन्म° । ३ क. ख. यदा । ४ ग. °मः । नो वाच्यका° । ५ ग. च. °दङ्गमलवत्कथम् । म° । घ. °दङ्गमल° । ६ ङ. °श्चिन्नातुरो नैव याचकः । ना° । ७ ग. न शमादि° । ८ च. °द्विसृष्टमात्रं यद्दानबीजं महाफलम् । वि° ।

मत्तो दानमवाप्येशो यदि पुष्णाति देवताः । उपभोगाद्दशगुणं दानं श्लाघ्यतमं[1] मम ॥३१
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाऽऽराधितो हरिः । तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत् ॥३२
अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधिनम् । मां [2]निहन्तुमनाश्चैव वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात् ॥३३
तन्मयं सर्वमेवेदं नाप्राप्यं यस्य विद्यते । स मां याचितुमभ्येति नानुग्रहमृते हरिः[3] ॥३४
यः सृजत्यात्मभूः सर्वं [4]चेतसैव च संहरेत् । स मां हन्तुं हृषीकेशः [5]कथं यत्नं करिष्यति ॥३५
एतद्विदित्वा[6] न गुरो दानविघ्नकरेण मे । त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥३६

शौनक उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य संप्राप्तः स जगत्पतिः । सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥३७
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटान्तः प्रविष्टमसुराः प्रभुम् । जग्मुः सभासदः क्षोभं तेजसः तस्य निष्प्रभाः ॥३८
जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे । बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः ॥३९

यदि मेरे दान द्वारा देवताओं का पालन होता है तो उनके उपयोग से मेरा दान दस गुना अधिक प्रशंसनीय होता है ।२९-३१। इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे यज्ञ से उपासित भगवान् मेरे ही कल्याण के लिये अपने साक्षात् दर्शन द्वारा उपकृत करने वाले मुझको मारने के लिये यहाँ आ रहे हैं । अथवा क्रुद्ध होकर देव भाग को अपहरण करने वाले मुझको मारने के लिये आ रहे हैं तो फिर अच्युत भगवान् के हाथों से होनेवाली वह मेरी मृत्यु भी प्रशंसनीय है ।३२-३३। यह समस्त जगत् उस परमात्मा से ही युक्त है, सभी वस्तुओं में उसी की सत्ता है, उसके लिए जगत् में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है । वे भगवान् सिवा अनुग्रह के किसी अन्य कारण वश मेरे पास याचनार्थ नहीं आ रहे हैं । जो स्वयम्भू परमात्मा इस निखिल जगत् की सृष्टि करते हैं, और केवल इच्छा से ही जो उस सब का विनाश कर देते हैं वह हृषीकेश भला मुझे मारने के लिये क्यों इतना यत्न करेंगे ? आचार्यचरण ! यह सब बातें भली भाँति सोच विचार कर मेरे यज्ञ में गोविन्द भगवान् जगन्नाथ के उपस्थित होने पर आप किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित करेंगे—यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है ।३४-३६।

शौनक ने कहा—बलि शुक्राचार्य से उपर्युक्त बातें कह ही रहे थे कि माया से वामन रूप धारण करनेवाले सर्वदेवमय भगवान् जगत्पति, जिन्हें कोई नहीं जान सकता, तब तक वहाँ पहुँच गये । यज्ञ मण्डप में उपस्थित उन प्रभु को देखकर सभी सभासद असुरगण उनके तेज से निष्प्रभ होकर अति क्षुभित हुये ।३७-३८। उस विशाल यज्ञ में आये हुये मुनिगण भगवान् का नाम जपने लगे, बलि ने तो अपना समस्त जीवन सफल मान लिया । सारी सभा क्षुब्ध हो गई, कोई किसी से कुछ भी नहीं बोल रहा था । सभी

---

[1] ग. ङ. °तरं °मम । [2] घ. ङ. °मतोऽपि स्याद्वधः । [3] ग. °रिः सृजत्यात्मेच्छया स° । [4] घ. °सैवोपहन्ति यः । स । [5] ग. °थं स्वयमुपेष्य । [6] ग. त्वा त्वं वै दानधर्मपरेण च । त्व° ।

ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किंचिदुक्तवान् । प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास चेतसा ॥४०
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान् । देवदेवपतिः [1]साक्षी विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥४१
तुष्टाव यज्ञवह्निं च यजमानमथर्त्विजः । यज्ञकर्माधिकारस्थान्सदस्यान्द्रव्यसंपदः ॥४२
ततः प्रसन्नमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात् । यज्ञवाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन् ॥४३
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा । पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः ॥४४

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातं [2]गजाश्वममितं तथा । स्त्रियो [3]वस्त्राण्यलंकारांस्तथा ग्रामांश्च [4]पुष्कलान् ॥४५
सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम् । तद्ददामि वृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः ॥४६

शौनक उवाच

इत्युक्तो दैत्यपतिना [5]प्रीतिगर्भान्वितं वचः । प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान्वामनाकृतिः ॥४७

वामन उवाच

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्पदत्रयम् । सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥४८

लोग हृदय में देवाधिदेव की प्रार्थना करने लगे । तत्पश्चात् विनीतभाव में उपस्थित बलि को तथा उन मुनिवरों को देखकर देवाधिदेव वामनरूपधारी भगवान् विष्णु ने यज्ञाग्नि की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तत्पश्चात् यजमान बलि, उसके पुरोहितों, यज्ञ कर्म में उपस्थित अधिकारी सदस्यों एवं द्रव्य सम्पत्तियों की प्रशंसा की ।३९-४२। वामन भगवान् को अति प्रसन्नमुख यज्ञमण्डप में उपस्थित देख चारों ओर से सदस्य गण 'साधु साधु' की ध्वनि उच्चारित करने लगे । अर्घ्य के लिए हाथों में जल पात्र लेकर पुलकायमान शरीर हो महाअसुर बलि ने गोविन्द से यह कहा ।४३-४४।

बलि ने कहा—सुवर्ण एवं रत्नों के समूह, असंख्य हाथी और घोड़े के समूह, स्त्रियाँ, विविध प्रकार के वस्त्र तथा अलंकार, असंख्य ग्राम, अथवा मेरा सर्वस्व, अथवा सारा भूमण्डल—जिस किसी वस्तु की आपको अभिलाषा हो, उसे कहो, जिसके लिये मेरे अति प्रिय वामन रूप में तुम मेरे यहाँ आये हुए हो ।४५-४६।

शौनक ने कहा—दैत्यपति बलि के इस प्रकार प्रेमभरी बातें कहने पर कुछ मुस्कराते हुए वामनरूपधारी भगवान् गम्भीर वाणी में बोले ।४७।

वामन ने कहा—राजन् ! अपनी अग्नि की रक्षा के लिए मुझे तीन पग पृथ्वी चाहिये, सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि किन्हीं अन्य याचकों को दीजिए ।४८।

---

[1] ङ च. साक्षाद्विष्णु° । [2] ग. °श्वरथसंहतिः । स्त्रि° । [3] च. °कारान्गाश्च प्रा° । [4] ग. °न् । राज्यं सकलमेवास्तु शुभं वा वो य° । [5] ग. °तिमानच्युतस्ततः । प्रा° ।

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पादैः पदवतां वर । शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥४९

वामन उवाच

*धर्मबुद्ध्या दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि तावता । अन्येषामर्थिनां वित्तमीहितं दास्यते भवान् ॥५०

+शौनक उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य [1]महात्मनः । ददौ तस्मै महाबाहुर्वामनाय पदत्रयम् ॥५१
पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः । सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥५२
चन्द्रसूर्यौ च नयने द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः । पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥५३
विश्वे देवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः । यक्षा नखेषु संभूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥५४
[2]दृष्टौ ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः । तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥५५
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः । अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः ॥५६

बलि ने कहा—हे पदधारियों में श्रेष्ठ ! आपका तीन पग पृथ्वी से भला क्या काम चलेगा ? सौ अथवा लाख पगों के लिए आपको याचना करनी चाहिये ।४९।

वामन ने कहा—दैत्यपति ! मैं धर्म वुद्धि से उन्हीं तीन पगों में ही कृतार्थ हो जाऊँगा, अपनी इच्छा के अनुकूल अन्य याचकों को आप धन दे दें ।५०।

शौनक ने कहा—महात्मा वामन की ऐसी बातें सुन महाबाहु बलि ने वामन को तीन पग भूमि देने की स्वीकृति दे दी । और उधर हाथ में जल के गिरते ही वामन भगवान् विराट् रूप में परिणत हो गये और अपने सर्वदेवमय स्वरूप को वत्काल उन्होंने प्रदर्शित किया ।५१-५२। चन्द्रमा तथा सूर्य उनके नेत्रों में थे, आकाश मूर्द्धा पर और पृथ्वी दोनों चरण पर थी, पैरों की उंगलियों में पिशाचगण, हाथों की उगलियों में गुह्यक थे । विश्वेदेव गण घुटने में, देवताओं में उत्तम देवता साध्यगण दोनों जंघों में, नखों में यक्ष गण तथा अप्सराएँ रेखाओं में अवस्थित थीं ।५३-५४। सभी नक्षत्र गण नेत्रों में, सूर्य की किरणें केशों में, ताराएँ रोमकूपों में तथा रोमावलियों में महर्षिगण थे । उनकी बाहुएँ ही दिशाओं के कोण थे तथा उन विराट के श्रोत्रों में दिशाएँ थीं । कानों में दोनों अश्विनीकुमार तथा नासिका में वायु का निवास था ।

---

*एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. पुस्तके—एतावतैव दैत्येन्द्र कृतकृत्योऽस्मि मार्गताम् । +एतन्न विद्यते क. व्यतिरिक्तपुस्तकेषु ।

---

[1] घ. °नः । वाचयामास तत्तस्मै वाम° । [2] ग. दृष्टिर्द्रव्याण्य° । घ° दृष्टिर्धिष्ण्यान्यशे° ।

प्रसादश्चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः । सत्यं तस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥५७
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा । स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्ट पूषा च वै भुवौ ॥५८
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः । हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः ॥५९
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु । सर्वसूक्तानि दशना ज्योतींषि विमलप्रभाः ॥६०
वक्षःस्थले महादेवो धैर्ये चास्य महार्णवाः । उदरे चास्य गन्धर्वाः संभूताश्च महाबलाः ॥६१
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः । सर्वज्योतींषि जानीहि तस्य तत्परमं महः ॥६२
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम् । स्तनौ कुक्षी च [1]वेदाश्च उदरं च महामखाः ॥६३
इष्टयः पशुबन्धाश्च [2]द्विजानां चेष्टितानि च । तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महाबलाः ॥६४
उपासर्पन्त दैत्येन्द्राः पतङ्गा इव पावकम् । प्रमथ्य सर्वानसुरान्पादहस्ततलैर्विभुः ॥६५
कृत्वा रूपं महाकायं जहाराऽऽशु स मेदिनीम् । तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥६६
नाभौ विक्रममाणस्य सक्थिदेशस्थितावुभौ । परं विक्रमतस्तस्य जानमूले प्रभाकरौ ॥६७
विष्णोरास्तां महीपाल देवपालनकर्मणि । जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुंगवान् ॥६८

प्रसन्नता में चन्द्रमा, मन में धर्म, वाणी में सत्य तथा जिह्वा में सरस्वती का निवास था। ग्रीवा में देवमाता अदिति तथा वलय में विद्याएँ थी, स्वर्गद्वार में मैत्री, त्वष्टा और पूषा दोनों भौंह थे ।५६-५८। उनके मुख में वैश्वानर अग्नि तथा अण्डकोश में प्रजापति, हृदय में परब्रह्म तथा पुंस्त्व में कश्यप मुनि थे। उनके पीठभाग में वसु देवगण, सब संधिभागों में मरुत् गण दांतों में सभी सूक्त, उनकी विमल कान्तियों, में सभी ज्योतिर्गण थे। वक्षस्थल में महादेव, धैर्य में सारे समुद्र, उदर में महाबलवान गन्धर्व अवस्थित हुए। लक्ष्मी, बुद्धि, धृति, कान्ति, एवं सभी विद्याएँ उनके कटि प्रदेश में थीं ।५८-६१½। अन्य जो ज्योतिष् चक्र थे उन्हें उनके तेज में स्थित जानिये। इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् का उस यज्ञ मण्डप में अनुपम तेज भासमान् हो रहा था। उस यज्ञ पुरुष के स्तनों तथा कुक्षियों में वेदों का निवास था, उदर में महायज्ञ, इष्टियाँ, पशुओं के वलिदान, ब्राह्मणों की चेष्टाएँ थीं ।६२-६३½। महाबलवान् दैत्यगण भगवान् के उस सर्वदेवमय शरीर को देखकर अग्नि में पतिंगों की भाँति ऊपर फट पड़े तब परमात्मा ने उन सभी असुरों को पैरों के तलुवे तथा हाथों की हथेलियों से मसल डाला और उससे भी अति विशालकाय हो सारी पृथ्वी को शीघ्र ही उनमें हरण कर लिया। भूलोक में बढ़ते हुए भगवान् के शरीर में चन्द्रमा और सूर्य स्तनों के मध्यभाग में आ गये, उससे भी अधिक विराट् रूप धारण करते समय वे दोनों नाभि प्रदेश में तथा उरुभाग में आ गये ।६४-६६½। उससे भी अधिक ऊपर बढ़ते हुए भगवान् के घुटने के मूल भाग में चन्द्रमा तथा सूर्य स्थित हुए। हे महीपाल ! देवताओं के पालनार्थ भगवान् ने इस प्रकार तीनों

---

[1] ग. घ. °श्च° ओष्ठी चास्य म° । [2] क. ख. °नां वीक्षिता° ।

पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः। सुतलं नाम पातालंधस्ताद्वसुधातलात् ॥६९
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना। अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ॥७०

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया। कल्पप्रमाणं तस्मात्ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ॥७१
वैवस्वते तथाऽतीते बले मन्वन्तरे ह्यथ। सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ॥७२
सांप्रतं देवराजाय त्रैलोक्यं सकलं मया। दत्तं चतुर्युगाणां च साधिका ह्येकसप्ततिः ॥७३
[1]नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः। तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ॥७४
सुतलं नाम पातालं त्वमासाद्य मनोरमम्। वसासुर ममाऽऽदेशं यथावत्परिपालयन् ॥७५
तत्र दिव्यवनोपेते प्रासादशतसंकुले। प्रोत्फुल्लपद्मसरसि स्रवच्छुद्धसरिद्वरे ॥७६
सुगन्धिधूपस्रग्वस्त्रवराभरणभूषितः। स्रक्चन्दनादिमुदितो गेयनृत्यमनोरमे ॥७७
पानान्नभोगान्विविधानुपभुङ्क्ष्व महासुर। ममाऽऽज्ञया कालमिमं तिष्ठ[2] स्त्रीशतसंवृतः ॥७८

लोकों को जीतकर तथा असुरपतियों को मार कर पुरन्दर को तीनों लोकों का राज्य सौंप दिया और वसुधातल से नीचे सुतल नामक पाताल लोक को विजयशील विष्णु ने बलि को दिया। तदनन्तर सर्वेश्वरेश्वर ने दैत्यपति से कहा।६९-७०।

श्री भगवान् ने कहा—बले! जो तुमने मुझे जल का दान दिया है और मैंने अपनी हथेली पर स्वीकार कर लिया है इस कारण एक कल्प तक तुम दीर्घजीवन प्राप्त करोगे और इस वैवस्वत मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर सावर्णिक मन्वन्तर में इन्द्र तुम होगे।७१-७२। इस समय तो मैंने सारे त्रैलोक्य को देवराज्य इन्द्र को दे दिया है, और चारों युगों की जब तक इकहत्तर आवृत्ति नहीं हो जाती तब तक उनके जितने भी शत्रु उत्पन्न होंगे उन सबको वश में करूँगा। बले! क्योंकि उसने पूर्व काल में घोर तपस्या करके मेरी उपासना की है। असुर! सुतल नामक मनोहर पाताल लोक को तुम प्राप्त कर मेरी आज्ञा का उचित ढङ्ग से पालन करते हुए निवास करो।७३-७५। उस दिव्य वनों से युक्त सैकड़ों राजभवनों से सुशोभित, खिले हुए फूलों से सुमनोहर सरोवरों वाले सुन्दर नदियों के प्रवाहों से रमणीय, सुन्दर गान एवं नृत्यों से मनोहर उस सुतल लोक में सुगन्धित पदार्थों, धूप, माला, आदि विविध सौख्य साधनों से सुसज्जित अनेक सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से विभूषित हो तथा पुष्प चन्दनादि से प्रसन्न मन हो तुम निवास करो और विविध प्रकार के अन्न पान की सामग्रियों का उपभोग करो। मेरी आज्ञा से उपर्युक्त अवधि तक तुम सौ स्त्रियों से युक्त होकर वहाँ निवास करो।७६-७८। इस प्रकार जब तक देवताओं तथा ब्राह्मणों से तुम विरोध नही

---

[1] ङ. निहन्त°। [2] क. ख. °ष्ठ त्वं सततं वृ°।

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं करिष्यसि । तावदेतान्महाभोगानवाप्स्यसि महासुर ॥७९
यदा च देवविप्राणां विरोधं त्वं करिष्यसि । बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वरुणास्त्वामसंशयम् ॥८०
एतद्विदित्वा भवता मयाऽऽज्ञप्तमशेषतः । न विरोधः सुरैः कार्यो विप्रैर्वा दैत्यसत्तम ॥८१

शौनक उवाच

इत्येवमुक्तो देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना । बलिः प्राह महाराज प्रणिपत्य मुदा युतः ॥८२

बलिरुवाच

तत्राऽऽसतो मे पाताले भगवन्भवदाज्ञया । किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम् ॥८३

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च । हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥८४
अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः । फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥८५

शौनक उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय त्रिदिवं तथा । व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥८६
प्रशशास यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः[1] । सिषेवे [2]च परान्कामान्बलिः पातालसंस्थितः ॥८७

करते हो, हे महाअसुर जब तक तुम इन सभी अमूल्य भोगों का उपभोग करते रहोगे । जब देवताओं तथा ब्राह्मणों से बिरोध करोगे तब निश्चय है कि वरुण के पाश तुम्हें बन्धन में डालेंगे । इस बात को भली भांति समझ बूझ कर आप मेरी समस्त आज्ञाओं का पालन करते रहेंगे । हे दैत्यपति ! कभी भूलकर भी देवताओं तथा ब्राह्मणों से आप विरोध नहीं करेंगे ।७९-८१।

शौनक ने कहा—विजयशील वामनस्वरूपधारी भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर अति प्रमुदित चित्त हो बलि ने प्रणाम करते हुए कहा ।८२।

बलि ने कहा—हे भगवन् ! आपके आदेश से पाताल लोक में निवास करते समय मुझे किन उपभोग्य वस्तुओं के ग्रहण करने का अधिकार होगा ।८३।

श्रीभगवान् ने कहा—बिना विधान के दिया हुआ दान, बिना श्रोत्रिय ब्राह्मण के कराया हुआ श्राद्ध, बिना श्रद्धा के की गई आहुति, ये सब वस्तुएँ जितनी भी होंगी सभी तुम्हें फल देंगी । बिना दक्षिणा के किया हुआ यज्ञ, बिना विधि के की गई सारी क्रियाएँ, व्रतों का परित्याग करके किया गया अध्ययन—इन सब का भी फल तुम्हें प्राप्त होगा ।८४-८५।

शौनक ने कहा—इस प्रकार बलि को वरदान तथा इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर भगवान् अपने उस त्रिलोकव्यापी विराट् शरीर से अदृष्ट हो गये । तीनों लोकों से पूजित इन्द्र अब पूर्ववत् अपना

---

[1] ग. च. °क्यमूर्जितः । [2] ङ. च. च वरा° ।

[*इहैव देवदेवेन बद्धोऽसौ दानवोत्तमः । देवानां कार्यकरणे भूयोऽपि जगति स्थितः ॥८८
संबन्धी ते महाभाग द्वारकायां व्यवस्थितः । दानवानां विनाशाय भारावतरणाय च ॥८९
यतो यदुकुले कृष्णो भवतः शत्रुनिग्रहे । सहायभूतः सारथ्यं करिष्यति बलानुजः ॥९०
एतत्सर्वं समाख्यातं वामनस्य च धीमतः । अवतारं महावीर श्रोतुमिच्छोस्तवार्जुन ॥९१

अर्जुन उवाच

श्रुतवानिह ते पृष्टं माहात्म्यं केशवस्य च । गङ्गाद्वारमितो यास्याम्यनुज्ञां देहि मे विभो ॥९२

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ययौ पार्थो नैमिषं शौनको गतः] । इत्येतद्देवदेवस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्
वामनस्य पठेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९३
बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः । बलेर्विष्णोश्च कथितं यः स्मरिष्यति मानवः ॥९४
नाऽऽधयो व्याधयस्तस्य न च मोहाकुलं मनः । भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन ॥९५

शासन-कार्य चलाने लगे । पाताल में अवस्थित दानवपति बलि अपने परम मनोरथों का सेवन करने लगे। हे महाभाग ! देवाधिदेव भगवान् से बाँधा गया दानवराज बलि यहाँ पर स्थित है। और देवताओं के कार्य के लिए भगवान् फिर इस पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हुए हैं, जो द्वारका में दानवों के विनाशार्थ एवं पृथ्वी के भार आहरणार्थ तुम्हारे सम्बन्धी (कृष्ण) के रूप के विराजमान हैं और शत्रु को वश में करने में लगे हुए आपकी सहायता के लिये यदुकुल में उत्पन्न हो वे भगवान् बलराम के अनुज के रूप में आपके सारथी होंगे। हे महावीर ! अर्जुन यह सब कथा महात्मा वामन के अवतार के विषय में तुम्हें सुना चुका ।८६-९१।

अर्जुन ने कहा—महाराज आपके मुख से भगवान् विष्णु के माहात्म्य को तो मैं पूछ कर सुन चुका, अब यहां से गंगाद्वार जाने की मेरी अभिलाषा है, अतः आज्ञा प्रदान कीजिये ।९२।

सूत ने कहा—ऋषिगण ! ऐसी बातें करने के उपरान्त महाबीर अर्जुन गंगाद्वार को प्रस्थित हुए और शौनक मुनि भी वहाँ जाने को प्रस्थित हुए। देवाधिदेव भगवान् वामन का वह माहात्म्य मैं आप लोगों को सुना चुका, जो इसको पढ़ता है, सभी पापों से छुटकारा पाता है। बलि और प्रह्लाद का सम्वाद, बलि और शुक्र की सम्मतियां, बलि और विष्णु का कथोपकथन, इन सब जो मनुष्य स्मरण करता है उस को किसी प्रकार

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टाप्तिं च वियोगवान् । अवाप्नोति महाभागो नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२३९०॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अर्जुनउवाच

प्रादुर्भावान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ॥१
जाने न तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् । न कर्म [1]गुणसंस्थानं न चाप्यन्तं मनीषिणः ॥२
किमात्मको वराहोऽसौ[2] किंमूर्तिः कास्य देवता । किंप्रमाणः किंप्रभावः किंवा तेन पुरा कृतम् ॥३
एतन्मे शंस तत्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् । यथाहं च समेतानां द्विजातीनां [3]विशेषतः ॥४

की आधि-व्याधि नहीं होती और न उसे कभी आकुलता का अनुभव ही होता है। राज्य से विहीन राजा अपना राज्य एवं वियोगी अपने इष्ट की प्राप्ति इस पुण्यप्रदायिनी कथा को सुन कर प्राप्त करता है।९२-९६।

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रार्दुभाव नामक दो सौ छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥२४६॥

अध्याय २४७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णु के अवतारों को कहनेवाले महानुभावों से पुराणों में हमने वाराह अवतार की कथा सुनी है, किन्तु उस अवतार के चरित्र को मैं नहीं जानता, न उसकी कोई विधि हमें मालूम है न विस्तार ही मालूम है। उसके कर्म, गुण, आदि, अन्त के विषय में भी हमें कुछ नहीं मालूम है। न यही मालूम है कि वे वाराह रूपधारी भगवान् किस प्रकार के हैं ? उनकी मूर्ति कैसी है ? उनके देवता कौन-से हैं ? उनका प्रमाण तथा प्रभाव कैसा है ? प्राचीन काल में उन्होंने अवतार धारण कर क्या कार्य किये हैं ? इसलिये वाराह अवतार के विषय में जो बातें पुराणों में सुनी जाती हों विशेषतः द्विज जातियों में इस कथा का जैसा प्रचार हो, हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये ।१-४।

---

१ क. संख्यानं । २ ग. च. °सौ का मू° । ३ च. महात्मनाम् ।

शौनक उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसंमितम् । महावराहचरितं कृष्णष्याद्भुतकर्मणः ॥५
यथा नारायणो राजन्वाराहं वपुरास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥६
छन्दोगीर्भिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतः[1] । मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ॥७
इदं पुराणं परमं पण्यं वेदैश्च संमितम् । नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ॥८
पुराणं वेदमखिलं सांख्यं योगं च वेद यः । कात्स्न्र्येन विधिना [2]प्रोक्तं सोऽस्यार्थं वेदयिष्यति ॥९
विश्वे देवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ । प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥१०
मनः संकल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा । वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥११
दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छाश्च ये भुवि ॥
चतुष्पदानि [3]सर्वाणि तिर्यग्योनिशतानि च । जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चाप्यज्जीवसंज्ञितम् ॥१३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते । निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥१४

शौनक ने कहा—अर्जुन ! अद्भुत कर्मा भगवान् कृष्ण के ब्रह्मसम्मित महावाराह चरित को, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, मैं आपको सुना रहा हूँ । हे राजन् ! जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने बाराह रूप धारण किया, समुद्र-स्थित पृथ्वी का उन शत्रुमर्दन ने जिस प्रकार अपने एक दाढ़ से उद्धार किया, सुकोमल एवं ललित वेद की उक्तियों से छन्दों में जिस प्रकार उनका अभिनन्दन किया गया—वह सब मैं अब आप से बतला रहा हूँ प्रसन्नचित्त हो सुनो । किन्तु इस परम पुरातन, परम पुनीत, वेदों तथा शास्त्रों से सम्मित अनेक श्रुतियों से अनुमोदित महावाराह चरित को नास्तिक व्यक्तियों के सम्मुख नहीं कहना चाहिये । जो सभी पुराणों, वेदों, सांख्य योगादि शास्त्रों को विधिपूर्वक जानता है वही इसके तात्पर्य को जान सकेगा, समझ सकेगा, उसी से इसकी कथा भी कहनी चाहिये ।५-९। विश्वेदेवगण, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार, प्रजापतिगण, सातों महर्षि, ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से होनेवाले सनकादि ब्रह्मर्षि, जो ऋषियों के पूर्वज नाम से विख्यात हैं, वसुगण, मरुत्गण, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध प्रकार के जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र म्लेच्छ आदि जितनी जातियाँ पृथ्वी पर हैं, सभी चतुष्पद (चौपाये), सैकड़ों तिर्यक् योनि में जन्म लेने वाले, (पक्षी आदि) जंगम जीवगण स्थावर जीवगण—इन सभी को एक सहस्र युगों के व्यतीत हो जाने पर, जब कि ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है और सभी जीवों का विनाश होने लगता है एवं सृष्टि में सभी प्रकार के उपद्रव होने प्रारम्भ हो जाते हैं, तब हिरण्यरेता भगवान् जो वृषाकपि नाम से

---

१. ग. °तः । शुचिः प्रयतवाग्भूत्वा । ङ. °तः । शुचिः प्रसन्नवाग्भूत्वा । २ क. ख. °क्तं सोऽस्यार्थं वै वदिष्य° । ३ ग. ङ. सत्त्वानि ।

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः । शिखाभिर्विधमल्लोंकानशोषयत वह्निना ॥१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः । विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः ॥१६
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः । सर्वविद्या क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ॥१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् । सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः ॥१८
तस्मिन्नहनि [1]संप्राप्ते तं [2]हंसं महदक्षरम् । प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥१९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते । यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने[3] इह ॥२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते । यस्मिञ्जीवकृतं सर्वं निःशेषं [4]समतिष्ठत ॥२१
संहृत्य लोकानखिलान्सदेवासुरमानुषान् । कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्त एको जगद्गुरुः ॥२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः । अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदं जगत् ॥२३
नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते । त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥२४

विख्यात हैं, तीन शिखाओं (ज्वालाओं) से युक्त होकर अपनी उग्र ज्वालाओं से सभी लोकों का विनाश करते हुए दग्ध कर देते हैं।१०-१५। उस अवसर पर निकलते हुए तेज की राशियों से जलते हुए एवं तेजस्वी तथा ज्वालाकुल उनके मुखों की कान्ति से फीके रंग वाले तथा जले हुए अंगोंवाले होकर छहों अंगों तथा उपनिषदों के साथ वेद, इतिहास पुराणादि, सभी विद्याएँ, सभी धार्मिक क्रियाएँ तैंतीस करोड़ देवताओं के साथ ब्रह्मा को अगुवा बनाकर सभी के उत्पत्तिकर्त्ता भगवान् के मुख के भीतर प्रविष्ट हो गई।१६-१८। उस ब्रह्मा के एक दिन के व्यतीत होने के अवसर पर उन हंस, महान्, अच्युत, महात्मा हरि, नारायण, प्रभु में समस्त चराचर जगत् प्रविष्ट हो गया। जिस प्रकार सर्वदा सूर्य का उदय और अस्त निश्चित रूप से हुआ करता है उसी प्रकार पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले इस लोक में भी सब की उत्पत्ति और विनाश होते रहते हैं।१९-२०। सहस्र युग जिस समय समाप्त हो जाते हैं उस समय एक कल्प की समाप्ति हो जाती है, जिसमें सभी जीवों के कार्य भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय देवता, असुर, मानव आदि ये समेत, सभी लोकों का संहार कर अपने में समाविष्ट करके एक मात्र जगद्गुरु भगवान् विराजमान् होते हैं।२१-२२। प्रत्येक कल्पों की समाप्ति पर वे ही भगवान्, जो अव्यय तथा शाश्वत कहे जाते हैं, एकमात्र जिन्होंने इस विशाल जगत् का विस्तार किया है, सभी जीवों की पुनः सृष्टि करते हैं।२३। जब सभी लोकों में सूर्य किरणों के विनष्ट हो जाने तथा चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों के न रह जाने पर, जब कि धूम, अग्नि, पवन भी इस संसार में नहीं रह जाते, यज्ञों में वषट्कार की ध्वनि अस्त हो जाती है, पक्षीगणों का इधर-उधर फुदकना बन्द हो

---

[1] च °प्ते हंसं व्यापकमव्ययम् । प्र° । [2] ङ. हंसमजमव्ययम् । प्र° । [3] च. °नेष्विह । [4] ङ. प्रतितिष्ठति ।

अपक्षिगणसंपाते सर्वप्राणहरे पथि । अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसाऽऽवृते ॥२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् । प्रशान्ते सर्वसंपाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके । परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥२७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसंनिभः । शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ॥२८
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम् । वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विद्युदिव तोयदः ॥२९
पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा । पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोकशुभावहः । किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः ॥३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः । स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥३२
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् । नरान्देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥३३
ततः संचिन्तयन्कार्यं देवेषु समितिंजयः । संभवं सर्वलोकस्य विदधाति सतां गतिः ॥३४
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः । [1]नारायणः परं सत्यं नारायणः[2] परं पदम् ॥३५

जाता है, अर्थात् सभी प्रणियों का अस्तित्व ही लोप हो जाता है, सभी मार्ग शून्य में विलीन हो जाते हैं, भयानक भीषणता की मर्यादा अपनी सीमा के बाहर पहुँच जाती है, चारों ओर घोर निविड़ अन्धकार में जगत् आच्छन्न हो जाता है, तात्पर्य यह कि सभी लोक अदृश्य हो जाते हैं, सभी कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाता है, विशाल जगत् में कहीं कोई भी व्यापार नहीं चलता, परस्पर के वैरभाव सर्वदा के लिए शान्त हो जाते हैं, चारों ओर घोर निस्तब्धता छा जाती है, सभी लोक नारायण के स्वरूप में संहित होकर अपने स्वभाव में विलीन हो जाते हैं, उस समय हृषीकेश भगवान्, जो परमेष्ठी कहे जाते हैं, अपने शयन का समारम्भ करते हैं।२४-२७। उस समय पीताम्बरधारी लालनेत्र, घनश्याम कृष्ण भगवान् सहस्रों शिखाओं से युक्त जटा का भार शिर पर धारण किये, श्रीवत्स पद से चिह्नित लाल चन्दन से अनुलिप्त वक्षःस्थल से सुशोभित हो बिजली से युक्त बादल की भाँति शोभायमान होते हैं। उस समय उनके वक्षःस्थल में सहस्र कमलों से गुथी हुई मनोहारिणी माला शोभायमान होती है, उस समय उनकी स्त्री लक्ष्मी स्वयं उनके शरीर को घेरे हुए विराजमान रहती हैं।२८-३०। तदनुसार शान्तात्मा सभी लोकों के कल्याणकारी योगात्मा भगवान् निद्रा में निमग्न हुए और एक सहस्र युग व्यतीत होने पर देवताओं के स्वामी परमात्मा पुरुषोत्तम स्वयमेव जाग्रत होते हैं और फिर से वे लोकस्रष्टा लोक की सृष्टि का विचार करते हैं तथा अपने परमेष्ठी कर्म (विरचन शक्ति) द्वारा मनुष्यों और देवताओं की सृष्टि करते हैं।३१-३३। तदनन्तर सत्पुरुषों को सङ्गति प्रदान करनेवाले समितिंजय हरि सभी लोकों के उत्पन्न करने का विधान करते हैं। वे ही भगवान् इस समस्त सृष्टि के कर्त्ता हैं, विकर्त्ता अर्थात् बिगाड़ने वाले हैं, संहार करने वाले हैं, प्रजापति हैं, नारायण हैं,

---

[1] ग. घ. च. °यणपरं स°। [2] ग. घ. च. °यणपरं प°।

नारायणः[1] परो यज्ञो नारायणः[2] परा गतिः । स स्वयंभूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः ॥३६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः । यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ॥३७
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः । प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥३८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः । यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः ॥३९
* प्रादुर्भावे तु यद्रूपं [3]तदर्चन्ति दिवौकसः । +दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्षन्ति देवताः ॥४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते । [4]ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च । चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः[5] ॥४२
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः । तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ॥
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षं सहस्रकम् ॥४३

परम सत्य हैं। वे नारायण ही परम पद तथा सर्वश्रेष्ठ यज्ञ हैं। वे ही परम गति, स्वयम्भू, सभी भुवनों के स्वामी तथा बनानेवाले हैं।३४-३६। यज्ञ स्वरूप प्रजापति भगवान् ही जगत् के सर्वस्व हैं, देवतागण जिनको 'जानने योग्य' कहते रहते हैं वे भगवान् यही हैं। भगवान् की कृपा द्वारा जो जाना जा सकता है उसे देवगण भी नहीं जानते । सभी प्रजापति, देवतागण, एवं सभी ऋषिगण उन भगवान का अन्त नहीं पा सके—ऐसा वेदों में सुना जाता है। इन परमात्मा को परम स्वरूप है, उसे देवता लोग भी देखने में असमर्थ हैं।३७-३९। उन भगवान् के प्रादुर्भाव काल में जिस स्वरूप का दर्शन होता है, देवगण उसी स्वरूप की पूजा करते हैं। वे भगवान् स्वयं अपने जिस रूप को दिखा चुके हैं, देवगण उसी को देखते रहते हैं, और अपने जिस स्वरूप का दर्शन उन्होंने नहीं दिया है, उसे कौन ढूँढ़ सकता है ? वे परमात्मा ही सभी जीवों के स्वामी हैं, अग्नि और वायु को गति देने वाले हैं, तेज तपस्या एवं अमृत के निधान हैं, चारों आश्रमों तथा धर्मों के स्वामी हैं, सभी यज्ञों के फलों का भक्षण करनेवाले हैं।४०-४२। चारों समुद्रों तक उनकी मर्यादा स्थित है वे ही चारों युगों की निवृत्ति करनेवाले हैं। वे भगवान् इस समस्त जगत् का संहार कर तथा सब को अपने भीतर समेट कर अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार की समस्त घटनाओं के घटित होने पर सहस्र वर्षों तक उक्त स्वरूप में शयन करनेवाले योगिराट् भगवान् ने एक सहस्र वर्ष से सुरक्षित एक अण्ड को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन

---

* न विद्यतेऽयं श्लोको ग. पुस्तके । +इतः प्रभृति तयोर्गतिरित्यन्तग्रन्थश्च पुस्तके न विद्यते ।

---

[1] ख. घ. ङ. °यणपरो। [2] ग. घ. च. °यणपरा। [3] ग. तत्पश्यन्ति । च. तदिच्छन्ति । [4] क. ख. ग्राम्याणां । [5] च. °लातिगः । च° ।

सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं[1] किल तदाऽसृजज्जगदिदमात्मना[2] प्रभुः ।।४४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४७।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।१२४३४।।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शौनक उवाच

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् । प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ।।१
तत्तु वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः । लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं पुनः[3] ।।२
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै [4]लोकजन्मकृत् । चकार जगतश्चात्र त्रिभागं स विभागकृत्[5] ।।३

प्रजापति भगवान् ने अपनी आत्मा से, सुर, असुर, द्विज, सर्प, अप्सराओं के समूह, समस्त औषधि, पर्वत, यक्ष एवं गुह्यक से युक्त इस जगत् की उत्पत्ति की ।४३-४४।

श्री मत्स्य महापुराण में वराह प्रादुर्भाव नामक दो सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ।।२४७।।

अध्याय २४८

शौनक ने कहा—अर्जुन ! यह चराचर जगत् सर्वप्रथम हिरण्मय दिव्य अण्ड के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। यही अण्ड ही प्रजापति की मूर्ति है—ऐसा वेदों में सुना गया है ।१। एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर यह अण्ड परमात्मा की प्रेरणा से ऊर्ध्व मुख में विभिन्न हुआ और पुनः लोक सृष्टि के लिए विभु ने उसे अधोमुख से भी विभिन्न किया ।२। फिर लोकों की सृष्टि एवं जगत् के विभाग करने वाले उस परमात्मा विष्णु भगवान् ने उस अण्ड को आठ ओर से विभिन्न किया, और उससे समस्त जगत् का विभाग किया ।३। जो छिद्र सर्व प्रथम ऊपर की ओर हुआ था वह विवर (पोल के आकार में परिणत

---

१ क. ख. °लं तदा स वै सृ° । २ ङ. °त्मनः प्र° । ३ क. ख. नृप । घ. च. ततः । ४ ग. घ. °कयोनिकृ° । ५ ग. घ. °गवित् । य° । ङ. विवेकधृक् ।

यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम् । विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया । तत्र यत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥५
शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाऽभवत् ॥६
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः । पीडिता । गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ॥७
महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम् । हिरण्मयं समुत्सृज्य[1] तेजो वै जातरूपिणम्[2] ॥८
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा[3] । पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ॥९
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः । उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥१०

भगवानुवाच

मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी । रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला ॥११

पृथिव्युवाच

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद[4] ॥१२

होकर आकाश हुआ इसी प्रकार विश्वयोग परमात्मा ने नीचे की ओर होने वाले छिद्र को रसातल रूप में परिणत किया ।४। लोक सृष्टि की कामना से जिस अण्ड को भगवान् ने पूर्वकाल में उत्पन्न किया था, उससे जो जल नीचे चुआ था, उससे कांचन या सुमेरु गिरि हुआ और उस प्रकार के सहस्रों पर्वतों के विस्तृत हो जाने के कारण पृथ्वी विषमा अर्थात् ऊँची नीची हो गई ।५-६। उन पर्वतों के समूहों से, जो अनेक योजनों तक पृथ्वीतल पर फैले हुए थे, पीड़ित तथा उनके अपार भार से पृथ्वी व्यथित हो गई । हे महामते ! अति पराक्रमशाली नारायण से उत्पन्न हुए उस तेज को, जो सुवर्णमय था, पृथ्वी धारण करने में असमर्थ होकर नीचे की ओर खिसकने लगी । इस प्रकार उस भगवत्तेज से पीडित होकर नीचे को खिसकती हुई पृथ्वी को देखकर मधुसूदन भगवान् ने कल्याण की भावना से उसके उद्धार की इच्छा की ।७-१०।

श्री भगवान् ने कहा—मेरे तेज को प्राप्त कर यह तपस्विनी पृथ्वी बेचारी उसे धारण करने की असमर्थता से कीचड़ में फँसी हुई दुबली गौ की भाँति रसातल को चली जा रही है ।११।

पृथ्वी ने कहा—अमित पराक्रमशाली; त्रिविक्रम (वामन रूपधारी) ! सुरोत्तम महावराह स्वरूपधारी, लक्ष्मी, धनुष, चक्र, खड्ग एवं गदाधारण करनेवाले सभी देवताओं में श्रेष्ठ ! आपको मेरा नमस्कार है, भगवन् ! मुझ पर कृपा की दृष्टि कीजिये ।१२। परमात्मन् ! तुम्हारे ही शरीर से समस्त जगत्

---

[1] घ. ङ. °त्सृष्टं । ते । [2] घ. बलरूपिणम् ङ. जलरूपिणम् । [3] च. °स्तात्प्रविवेश । सा । पी° । [4] ग. °ग. °द । एतत्तव जगद्भूतं पुष्कराद्बीजम° ।

तव देहाजगज्जातं [1]पुष्करद्वीपमुत्थितम् । ब्रह्माणमिहलोकानां भूतानां शाश्वतं विदुः ॥१३
तव [2]प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरंदरः । तव [3]क्रोधाद्धि बलवाञ्जनार्दन जितो बलिः ॥१४
[*धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनो घनः ॥१५
वर्णाश्चाऽऽश्रमधर्माश्च सागरास्तरवोऽचलाः[4] । नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः ॥१६
विद्या वेद्यं च सत्त्वं च ह्रीः श्रीः कीर्तिधृ तिः क्षमा । पुराणं वेदवेदाङ्गं सांख्ययोगौ भवाभवौ ॥१७
जङ्गमं स्थावरं चैव भविष्यं च भवच्च यत् । सर्वं तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितं तव ॥१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः । सर्वलोकमनः कान्तः सर्वसत्त्वमनोहरः ॥१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः[5] । दिव्यलोकमहास्कन्धः[6] सत्यलोकप्रशाखवान् ॥२०
सागराकारनिर्यासो रसातलजलाश्रयः । नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ॥२१
शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयो द्रुमः । द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ॥२२
[7]वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः । सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ॥२३

की उत्पति हुई है, तुम्हारे ही शरीर से पुष्कर द्वीप की उत्पत्ति हुई है, तुम्हारे शरीर से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने इस लोक में एवं सभी प्राणियों में सनातन की प्रतिष्ठा प्राप्त की है ।१३। तुम्हारे अनुग्रह से देवराज इन्द्र स्वर्ग का उपभोग कर रहे हैं, हे जनार्दन ! तुम्हारे ही क्रोध से बलवान् बलि जीता गया है ।१४। तुम्हीं इस निखिल ब्रह्माण्ड के धाता हो, विधाता हो, एवं संहर्त्ता हो, तुम्हीं में समस्त जगत् स्थित है । मनु अधिपत्ति कृतान्त, अनल, पवन, मेघ, ब्राह्मणादि जातियाँ, ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्म, सारे समुद्र, वृक्षगण, पर्वतगण, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ, यज्ञों की क्रियाएँ, विद्या, जानने योग्य अन्य बातें, जीवगण, लज्जा, श्री, कीर्ति, धैर्य, क्षमा, पुराण, वेद, वेदांग, सांख्य योग, जन्म, मरण, जङ्गम, स्थावर भूत, भविष्यत् - ये तीनों लोकों में तुम्हारे ही प्रभाव से विद्यमान हैं ।१५-१८। तुम ही देवताओं को उत्तम फल देनेवाले हो, एवं स्वर्ग की रमणियों के हृदय कों जीतनेवाले हो, सभी लोकों के मन को प्रिय लगनेवाले हो, सभी जीवों के मन को हरण करनेवाले हो, तुम महान् हो, विशाल आकाशमय महावन हो, मधुर जल की वृष्टि करनेवाले बादलों से युक्त दिव्य लोक महान् स्कन्ध हैं, सत्यलोक शाखा है, सागरगण रस समूह हैं, रसातल थाल्हा है, ऐरावत वृक्ष है, निखिल जीव जन्तुगण पक्षी हैं, और तुम शील, सदाचार प्रभृति श्रेष्ठ गुणरूप गन्धयुक्त सर्वलोकमय महाद्रुम हो ।१९-२१½। तुम त्रैलोक्य रूप महान् उदधि हो, बारह आदित्यगण

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति ।

---

[1] घ. °ष्करादबीजमु° । ङ. च. °ष्करादबीज मुच्छ्रित° । [2] ग. घ. ङ. °दावयवैर्दिवं । [3] च. °धाद्विनिर्धूताः । सर्वे दैत्या जनार्दन । धा° । [4] क. ख. °वो जलम् । न° । [5] ग. ङ. च. °वः । दैत्यलो° । [6] ग. स्कन्धो मर्त्यलो° । [7] ग. वसवोऽष्टदलोपेतास्त्रै° ।

दैत्यलोकमहाग्राहो[1] +[2]रक्षोरगझषाकुलः। पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ॥२४
धीश्रीह्रीकान्तिभिर्नित्यं नदीभिरुपशोभितः। [3]कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥२५
त्वं [4]स्वयोगमहावीर्यो नारायण महार्णवः। कालो भूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ॥२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः। विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ॥२७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे। [5]मम भारावताराय देव त्वं हि युगे युगे ॥२८
त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः। द्वापरे रक्तसंकाशः कृष्णः कलियुगे भवान् ॥२९
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसंधिषु। वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥३०
भासि वासि प्रतपसि त्वं च पासि विचेष्टसे[6]। क्रुध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि ॥३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि। निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥३२

उसमें द्वीप हैं, ग्यारह रुद्रगण ग्राम एवं नगर हैं, आठों वसुगण पर्वत हैं, सिद्ध और साध्यगण उस महासमुद्र की तरंगें हैं, पक्षिराज गरुड़ के पंखों की वायु उसमें चला करती है। दैत्यों के समूह घड़ियाल हैं, राक्षस और सर्पगण मछलियाँ हैं। ब्रह्मा महान् धैर्य है, स्वर्ग की अप्सराएँ रत्न समूह हैं।२२-२४। बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा तथा कान्ति—ये नदियाँ उसमें जाकर गिरती हैं, काल और योग ये उसके महापर्व हैं, उत्तम यज्ञों के समूह उसमें गति हैं। हे नारायण! तुम अपने योगबल द्वारा महाबलवान् हो, विशाल समुद्र हो और तुम्हीं काल बनकर स्वच्छ जल के द्वारा पुनः सृष्टि को आह्लादित करनेवाले हो।२५-२६। तुम्हीं से तीनों लोकों की सृष्टि हुई है, और तुम्हीं से इसका संहार होता है, योगीजन तुम्हारी ही प्रेरणा से तुझमें प्रविष्ट होते हैं। प्रत्येक युगों में तुम प्रलयाग्नि का स्वरूप धारण करते हो और प्रति युगों में प्रलयकालीन मेघ भी तुम्हीं बनते हो, हे भगवन्! मेरे भारों को उतारने के लिए तुम्हीं प्रत्येक युगों में अवतीर्ण होते हो।२७-२८। तुम्हीं सतयुग में श्वेतवर्ण, त्रेता में चम्पा के पुष्प के समान पीतवर्ण, द्वापर में रक्त के समान, एवं कलियुग में श्यामवर्ण होते हो।२९। युग की संधियों के आने पर तुम्हीं एक वर्ण से दूसरे वर्ण के विकार में लिप्त होने की बातें कहा करते हो, हे वेदज्ञ! उस समय सभी धर्मों में भी तुम विकार उत्पन्न कर देते हो, तुम्हीं प्रकाश करते हो, विचरण करते हो, ताप उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो, यत्न करते हों, क्रोध करते हो, शान्ति उत्पन्न करते हो, जलाते हो, वृष्टि करते हो, तुम हँसते हो, त्याग करते हो, स्थिर होते हो, मारते हो, जागते हो, प्रलयकाल में काल होकर सभी जीवों को निःशेष करते हो, फिर शेष बचे हुए अपने को अकेला

+अत्र संधिरार्षः।

---

[1] च. °हो यक्षोरगगणाकु°। [2] ङ. °गसमाकु°। [3] ग. °प्रयोगग°। ङ. प्रयोगमतिवीर्यवा°। च. °प्रयोगपतिरेकराट्। अस्य यो°। [4] ग. स्वर्योग°। [5] क. ख. महाभा°। [6] ङ. से। क्षुरकान्तिमयोऽसि त्वं प्रदी°। च. °से। क्रोधशान्तिमयोऽसि त्वं प्रदी°।

शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः । युगान्ताग्न्यवलीढेषु सर्वभूतेषु किंचन ॥३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः । च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्संकीर्त्यसेऽच्युतः । ब्रह्माणमिन्द्रं च यमं रुद्रं वरुणसेव च ॥३५
निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे । [1]संतानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया ॥३६
परेण वपुषा देव तस्माच्चासि सनातनः । यस्माद् ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः ॥३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे । न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि ॥३८
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च[2] अक्षरश्च प्रकीर्तितः । विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३९
जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे । विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४०
*यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् । व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवः । नारा इत्युच्यते ह्यापो ह्यृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४२
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । युगे युगे प्रनष्टां गां विष्णो विन्दसि तत्त्वतः ॥४३

देख कर उत्पन्न करते हो, युगान्त की अग्नि में सभी भूतों के दग्ध हो जाने पर एक मात्र तुम्हीं शेष रहते हो अतः लोग तुम्हें शेष नाम से पुकारते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुणादि—देवताओं की उत्पत्ति होती है।३०-३४। उन्हें अपने पदों से च्युत होना पड़ता है; किन्तु तुम अपने पद से कभी च्युत नहीं होते हो अतः लोग तुम्हें अच्युत कहते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र, एवं वरुण को,—इन सब का निग्रह करके यतः तुम हरण करते हो अतः लोग तुम्हें हरि कहते हैं। अपने विशाल शरीर, यश, और श्री द्वारा सभी जीवों का सम्मान करते हो अतः तुम सनातन कहे जाते हो। ब्रह्मादि देवगण, अति तेजस्वी मुनिगण तुम्हारा अन्त नहीं पाते अतः अनन्त नाम से तुम प्रसिद्ध हो।३५-३७½। सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक कभी तुम नष्ट नहीं होते, अपने पद से विचलित नहीं होते, अतः अविचलित होने के कारण तुम 'अक्षर' नाम से प्रसिद्ध हो। सभी स्थावर 'जंगमात्मक जगत् को तुम अवरुद्ध रखते हो, अतः जगत् को अवरुद्ध करने के कारण तुम विष्णु कहे जाते हो।३८-३९। नित्य सचराचर त्रैलोक्य को नियमबद्ध करते हुए तुम बिराजमान हो, यक्षों एवं गन्धर्वों के नगर, महान् सर्पों के निवास स्थान, तात्पर्य यह कि समस्त चराचर त्रैलोक्य तुम्हारे ही आश्रय से परिव्याप्त है, अतः स्वयं विष्णु भगवान् तुम्हें विष्णु नाम से पुकारते हैं। तत्त्ववेत्ता ऋषिगण जल का 'नारा नाम कहते हैं और वही पूर्वकाल में तुम्हारा निवास स्थान था, अतः लोग तुम्हें नारायण (नारा-अयन) कहते हैं। हे विष्णो ! प्रत्येक युगों में नष्ट हुई पृथ्वी तत्त्वतः तुम्हीं से बचाई जाती है अतः ऋषिगण तुम्हें

---

* न विद्यतेऽयं श्लोको ङ. पुस्तके।

---

[1] क. ख. संमान°। [2] क. ख. ग. °च्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे। वि°।

गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे ऋषिभिस्तथा । हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥४४
ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यसे । वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ॥४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे । संकर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥४६
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः । प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ॥४७
प्रविद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे । निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ॥४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः । यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत् ॥४९
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च । यत्त्वया धार्यते किंचित्तेजसा च बलेन च ॥५०
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया । न हि तद्विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते ॥५१
त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे । महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥५२
तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम् । त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥५३
दानवैः पीड्यमानाऽहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः । त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि [1]सनातनम् ॥५४

गोविन्द नाम से पुकारते हैं ।४०।४३$\frac{१}{२}$। तत्त्वज्ञान के विशारद लोग इन्द्रियों को हृषीक कहते हैं, और तुम उन सभी इन्द्रियों के ईश हो अतः हृषीकेश नाम से प्रसिद्ध हो। युगान्त के समय ब्रह्मादि देवता तथा जीवगण तुम्हीं में निवास करते हैं, अथवा तुम्ही स्वयं सभी जीवों में निवास करते हो अतः लोग तुम्हें वसुदेव नाम से पुकारते हैं ।४४-४५$\frac{१}{२}$। प्रत्येक कल्पों में तुम फिर-फिर से सभी जीवों को आकर्षण कर अपने में धारण करते हो अतः तत्त्व ज्ञानी लोग तुम्हें संकर्षण नाम से पुकारते हैं। तुम्हारे ही द्वारा देवता, असुर एवं राक्षसगण अपने व्यूहों में अवस्थित रहते हैं, अथवा तुम सभी धर्मों के विशेष ज्ञाता हो अतः प्रद्युम्न नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है ।४६-४७$\frac{१}{२}$। सभी जीवों से तुम्हारी सत्ता का कोई निरोध (निवारण) करनेवाला नहीं है, अतः अनिरुद्धनाम से पूर्व काल से महर्षिगण पुकारते आये हैं। तुम इस विशाल जगत् को धारण करने वाले हो, तुम्हीं इसका संहार भी कहते हो, तुम्हीं सब जीवों को धारण करते हो, तुम्हीं सब का पालन करने वाले भी हो, अपने तेज तथा बल से जो कुछ तुम धारण करते हो, उसी को तुम्हारे पीछे मैं धारण करती हूँ, कोई ऐसी वस्तु मैं नहीं धारण करती जिसे आपने धारण न किया हो, कोई ऐसी वस्तु या जीव नहीं है, जिसे तुमने धारण न किया हो ।४८-५१। हे नारायण देव ! तुम्हीं प्रत्येक युगों में संसार की कल्याणभावना से मेरे ऊपर पड़ने वाले असहनीय महाभारों को उबारते हो। अतः तुम्हारे ही तेज से भयभीत होकर रसातल को जाती हुई मुझको तुम बचा लो, हे सुरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ मुझे बचा लो ।५२-५३। क्रूर दानवों से, तथा दुष्ट राक्षसों से अति पीड़ित होकर मैं तुम सनातन की शरण में आयी हुई हूँ, तुम नित्य कहे जाते हो

---

[1] ङ. सनातन ।

तावन्मेऽस्ति भयं देव यावन्न त्वां ककुद्मिनम् । शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥५५
उपमानं न ते शक्ताः कर्तुं सेन्द्रा दिवौकसः[1] । तत्त्वं त्वमेव तद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम् ॥५६

शौनक उवाच

ततः प्रीतः स भगवान्पृथिव्यं[2] शार्ङ्गचक्रधृक् । काममस्या[3] यथाकाममभिपूरितवान्हरिः ॥५७
अब्रवीच्च महादेवि माधवीयं स्तवोत्तमम् । धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः ॥५८
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते । [4]एतदाश्चर्यसर्वस्वं माधवीयं स्तवोत्तमम् ॥५९
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत् ॥६०
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज ममाग्रतः । एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम् ॥६१

शौनक उवाच

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् । किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम् ॥६२

हे देव ! मेरे लिये भय का कारण तभी तक रहता है, जब तक तुझ ककुद्भी (डिल वाले) की शरण को मन से भी चिन्तन नहीं करती, विना तुम्हारी शरण में आये मैं सैकड़ों संकटों में पड़ी रहती हूँ ।५४-५५। इन्द्रादि देवगण तुम्हारी समानता करने में असमर्थ हैं, इस तत्व के वेत्ता एक मात्र तुम्हीं हो, इसके बाद मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगी ।५६।

शौनक ने कहा—पृथ्वी के इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरान्त धनुष चक्रधारी भगवान् विष्णु अति प्रसन्न हुए और यथेष्ट रूप में उसके अभीष्टों को पूर्ण किया और बोले—हे महादेवि ! तुम्हारे इस माधवीय (परम मधुर) उत्तम स्तोत्र को जो मनुष्य धारण करेगा उसे कभी पराभव नहीं देखना पड़ेगा । और वह पाप रहित वैष्णव लोकों को प्राप्त करेगा । यह तुम्हारा किया हुआ परम माधुर्य्यमय स्तोत्र आश्चर्य जनक फल देने वाला है । इसको जाननेवाला पुरुष वेदों का पढ़ने वाला तथा मुनिजनों का स्नेहभाजन होता है । हे कल्याणि ! धरणि ! तुम तनिक भी मत डरो, मेरे सामने ही शान्ति धारण करो, अब देखो मैं तुम्हें तुम्हारे अभिलषित स्थान पर पहुँचा रहा हूँ ।५७-६१।

शौनक ने कहा—ऐसी बातें पृथ्वी से कह कर महात्मा भगवान् विष्णु ने 'मैं कौन सा रूप धारण कर इस पृथ्वी का उद्धार करूँ—ऐसा सोचते हुए मन में दिव्यस्वरूप का चिन्तन किया और जल

---

[1] ङ. °सः । त्वमेव सततं वेत्सि । [2] ङ. °थिव्याः शङ्खच° । [3] ङ. च. °मस्यै य° । [4] ग. °तदैश्वयं° ।

जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं[1] वपुरास्थितः ।] [2]अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म [3]संस्थितम् ॥६३
शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः । नीलजीमूतसंकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥६४
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् । विद्युदग्निप्रतीकाशामादित्यसमतेजसम् ॥
*पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम् ॥६५
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्[4] । रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः ॥६६
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् । वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥६७
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः । अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥६८
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् । सत्यधर्ममयः [5]श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः[6] ॥६९
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः[7] । [8]उद्गीथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः[9] ॥७०

क्रीड़ा की अभिलाषा से शूकर का शरीर धारण किया, जो सभी जीव समूहों से अपमानित नहीं हो सकता था, वाङ्मय ब्रह्म (वेद) उसमें अवस्थित था ।६२-६३। भगवान् का शूकर शरीर सौ योजनों में विस्तृत तथा इससे द्विगुणित परिमाण में ऊंचा था, काले बादल के समान उसकी कान्ति थी, मेघों की गड़गड़ाहट की भाँति उसका घुरघुराना था । पर्वत के समान भयानक एवं सुदृढ़ उसके अंग समूह थे, श्वेत वर्ण के दांत थे जिनके अग्रभाग अतितीक्ष्ण थे उस समय उन दांतों की शोभा विजली एवं अग्नि की भांति हो रही थी । सूर्य के समान अनुपम तेज शरीर से भासित हो रहा था, कंधा अति पुष्ट तथा चौड़ा था, बल से उन्मत्त सिंह की भाँति गति थी ।६४-६५। कटिदेश अति पुष्ट तथा ऊँचा था, देखने में वृषभ के लक्षणों से युक्त दिखाई पड़ता था । इस प्रकार विशाल एवं भयानक स्वरूप को धारण कर अजित भगवान् विष्णु ने पृथ्वी के उद्धार के लिए पाताल लोक में प्रवेश किया । उन ब्रह्म शीर्ष महातपस्वी भगवान् विष्णु के चारों वेद पैर थे, यज्ञों के स्तम्भ दाढ़ थे, यज्ञ दांत थे, यज्ञ का कुण्ड मुख था, अग्नि जीभ थी, कुश रोम थे, दिन और रात नेत्र थे, वेदों के छः अंग कर्ण के आभूषण थे, आज्य नासिका थी, सुवा मुख का थूथड़ था, सामवेद का उच्चस्वर ध्वनियाँ थीं, वे भगवान् सत्य तथा धर्म से युक्त थे, श्री सम्पन्न थे, कर्म एवं विक्रम उनका सत्कार कर रहे थे ।६६-६९। प्रायश्चित उनके विशाल एवं भयानक नख थे, पशुगण उनके जानु भाग थे, यज्ञ ही उनकी आकृति थी । उद्गीथ (सामवेद का एक भाग) द्वारा हवन उनका लिंग

---

*एतदर्धं नास्ति क. ख. पुस्तकयोः ।

---

[1] ग. च. °हं रूपमास्थि° । [2] घ. च. अदृश्यं । [3] ङ. संज्ञितम् । [4] ग. °णमूर्जित° । ङ. °णलक्षित° । [5] ङ. °मान्सत्यविक्रमसत्क्रियः । प्रा° । [6] क. ख. °सत्क्रमः । प्रा° । [7] ग. °तिः । अङ्गतानो होमलिङ्गो वी° । [8] क. ख. उद्गाथाहो° । [9] ङ. °लः । भावानामन्तरात्मा यो विकृतः सो° ।

वाय्वन्तरात्मा[1] यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः । वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ॥७१
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः । दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्[२] ॥७२
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः । नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः[३] ॥
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥७३
रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम् । प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ॥७४
ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः । मुमोच पूर्वं मनसा [४]धारितां च वसुन्धराम् ॥७५
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् । चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ॥७६
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ॥७७
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया । पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥७८

था, यज्ञ का महाफल बीज और औषधियाँ थीं वेदी अन्तरात्मा, अथवा वायु अन्तरात्मा अस्थियों के समूह सोमरस रक्त, वेद कंधे, तथा हवि ही सुगन्धि थी, वे भगवान् हव्य तथा कव्य के विभाग करनेवाले थे ।७०-७१। अनेक दीक्षाओं से दीक्षित परम कान्तिमान् वे भगवान् ही समस्त वंशों के आदि पुरुष थे। दक्षिणा उनका हृदय था, वे परम योगी थे, महान् यज्ञों से वे मुक्त थे, स्वयं महान् थे ।७२। उपाकर्म उनके होठों के फलक थे, प्रवर्ग्य सम्पूर्ण आभूषण समस्त वेद उनके गमन के मार्ग, गोपनीय उपनिषद उनके आसन थे। छाया ही उनकी पत्नी थी, मणि के शृङ्ग की भाँति के ऊँचे उठे हुए दिख रहे थे ।७३। रसातल में गई, पातालतल में मग्न उस पृथ्वी का उन भगवान् ने लोक की हितकामना से दाढ़ के अग्रभाग से उद्धार किया। और तत्पश्चात् पृथ्वी के धारण करनेवाले वाराह भगवान् ने अपने स्थान पर लाकर प्राचीनकाल में मन से धारण की हुई वसुन्धरा को छोड़ा और तब पृथ्वी देवी प्रभु से धारण किये के कारण परम शान्ति को प्राप्ति हुई। उस कल्याणकारी भगवान् को उसने नमस्कार किया ।७४-७६। प्राचीनकाल में इस प्रकार समुद्र के जल में निमग्न हुई पृथ्वी का जीवों के कल्याण करनेवाले भगवान् ने यज्ञवाराह रूप धारण कर उद्धार किया था। तत्पश्चात् पृथ्वी का उद्धार कर कमललोचन भगवान् विष्णु ने जगत् की स्थापना के लिए तथा पृथ्वी को विभक्त करने के लिए इच्छा की। अतुलित पराक्रमी, अचिन्त्य विक्रम शाली, सुरोत्तम, वृषाकपि

---

१ ग. वाद्यन्तरात्मा यन्तास्थिविकृतः सो° । घ. वाद्यन्तरात्मः यन्त्रास्थि विक्रीतः सो° । २ घ °न् । ततः कर्माष्ट्वरकः । ३ ग. °दावृतः । छा° । घ. °दाशनः । ४ ग. घ. धारयित्वा ।

रसां [1]गतामेवमचिन्त्यविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया + समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ॥७९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावो नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४८॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्का ॥१२५१३॥

अथैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत यथाक्रमम् । न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥१
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः । तपसा कर्मणा वाऽपि प्रसादात्कस्य तेजसा ॥२

सूत उवाच

यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् । तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ॥३

भगवान् ने महान् वाराह का रूप धारण कर रसातल को गई हुई पृथ्वी का इस प्रकार अपनी दाढ़ी के अग्र भाग द्वारा उद्धार किया था ।७७-७९।

श्री मात्स्य महापुराण में वाराह प्रादुर्भाव नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४८॥

अध्याय २४९

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! क्रमानुसार भगवान् नारायण के माहात्म्य को सुनते हुए भी हमें तृप्ति नहीं मिलती अतः पुनः यह कथा बतलाइये कि प्राचीनकाल में किस प्रकार के कर्म, तपस्या अथवा किस देवता की कृपा के प्रभाव से विचक्षण देवताओं को अमरत्व की प्राप्ति हुई थी ? ।१-२।

सूत ने कहा—उस अमरत्व प्राप्ति के कार्य में भगवान् विष्णु एवं त्रिशूलधारी शंकर जी सभी देवताओं की सहायता में तत्पर थे, तब उन्हें अमरता की प्राप्ति हुई थी । उनके इस कार्य में ये ही सहायक

+ अत्राडभाव आर्षः ।

---

[1] क. ख. °तामवनिम° ।

पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः । पुनः संजीवनीं विद्यां प्रायोज्य भृगुनन्दनः ॥४
जीवापयति दैत्येन्द्रान्यथा सुप्तोत्थितानिव । तस्य तुष्टेन देवेन शंकरेण महात्मना ॥५
[1]मृतसंजीवनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा । तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ॥६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा [2]मुमुदुः सर्वदानवाः । ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ॥७
या नास्ति सर्वलोकानां देवानां यक्षरक्षसाम् । [3]न नागानामृषीणां च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ॥८
तां लब्ध्वा शंकराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः । ततो देवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत् ॥९
तत्र देवैर्हतान्दैत्याञ्छुक्रो विद्याबलेन च । उत्थापयति दैत्येन्द्राँल्लीलयैव विचक्षणः ॥१०
एवंविधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः* । हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः । ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान्कमलोद्भवः ॥
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः ॥१२

ब्रह्मोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं [4]तत्तथैव निरूप्यताम् । [5]क्रियतां दानवैः सार्धं [6]सख्यमत्राभिधायताम् ॥१३

कहे जाते हैं ।३। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा मारे गये सैकड़ों राक्षसों को भृगुनन्दन शुक्राचार्य संजीवनी विद्या के प्रभाव से पुनः जीवित कर देते थे और वे इस प्रकार फिर उठकर लड़ने लगते थे मानो सोकर उठ पड़े हों। उन शुक्राचार्य को यह विद्या भगवान् शंकर ने अति सन्तुष्ट होकर बताई थी ।४-५। यह माहेश्वरी संजीवनी विद्या अति प्रभावकारी थी । महेश्वर के मुख से बताई गई उक्त संजीवनी विद्या को शुक्राचार्य में स्थित देख सभी दानवगण अति प्रमुदिति हुए । और उक्त विद्या के प्रभाव से ही शुक्राचार्य राक्षसों को अमरत्व की प्राप्ति करा देते थे ।६-७। यह संजीवनी विद्या किसी अन्य यक्ष, राक्षस, देवताओं अथवा नागनी, ऋषियों, मुनियों यहाँ तक कि ब्रह्मा और विष्णु को भी नहीं मालूम थी । ऐसी परम गोपनीय एवं उपयोगी विद्या को शंकर जी से प्राप्त कर शुक्राचार्य को परम प्रसन्नता थी । संयोगवश कभी एक बार देवताओं और राक्षसों में महान्-युद्ध छिड़ गया, उनमें देवताओं द्वारा मारे गये बड़े-बड़े दैत्यों को विचक्षण शुक्राचार्य अपनी विद्या के बल से लीलापूर्वक फिर जीवित कर उड़ा देते थे ।८-१०। ऐसा देखा इन्द्र तथा उदारचेता वृहस्पति ने सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में देवताओं को मारा गया देख अति विषादयुक्त हुए और सभी देवगण भी चिन्ता से विकल हो गये । इस प्रकार चिन्तित होने पर जगत्पति कमलोद्भव ब्रह्मा जी ने सुमेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर अवस्थित बड़े-बड़े देवताओं से ऐसा कहा ।११-१२।

ब्रह्मा ने कहा—देवगण ! मेरी बातें सुनिये और उनके अनुकूल उपायों का चिन्तन कीजिये ।

---

* अनयोरुत्तरक्रियायामन्वयो बोध्यः ।

---

१ ख. जीविनी । २ क. युयुधुः । ३ ग. न नराणामृ° । ४ ग. घ. °त्तदेव । ५ क. ख. क्षिपतां । ६ क. ख. ग. °मत्र प्रवर्तता° ।

क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः । सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम् ॥१४
मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम् । दानवेन्द्रो बलिः स्वामी स्तोककालं निवेश्यताम् ॥१५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः । प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलो मन्थकार्यं[1] प्रवर्त्यताम् ॥१६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम् । अलं विरोधेन वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना ॥१७
कियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्[2] । त्वया चोत्पादिते दैत्य अमृतेऽमृतमन्थने ॥१८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः । एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ॥१९
यथा वदत हे देवास्तथा कार्यं मयाऽधुना । शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम् ॥२०
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना । सुदूरादाश्रयं प्राप्तान्प्रणतानपि वैरिणः ॥२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति । पालयिष्यामि वः सर्वानधुना स्नेहमास्थितः ॥२२
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा । मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम् ॥२३

इस कार्य में आप लोग दानवों के साथ मित्रता का सम्बन्ध जोड़ लीजिये, और अमृत प्राप्ति का उद्योग करते जाइये, तया क्षीरसमुद्र का मन्थन करिये ।१३½। वरुण की सहायता प्राप्त कर भगवान् चक्रपाणि को उद्बोधित करते जाइये । इस मन्थन कार्य में मन्दराचल को मन्थन दण्ड बनाकर शेषनाग को उसका वेष्टन (बरेत) बनाइये, थोड़े समय के लिए इस मन्थन के कार्य में दानवेन्द्र वलि को अध्यक्ष रूप में शामिल कराइये तथा पाताल लोक में विराजमान अव्यय कूर्मरूप धारी भगवान् विष्णु की प्रार्थना कीजिये और मन्दराचल की भी प्रार्थना कीजिये । इस सब साधनों के प्राप्त हो जाने के बाद समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ कर दीजिये ।१४-१६½। ब्रह्मा की बातें सुन देवगण दानवों के निवास स्थान को गये और कहा कि—हे बले ! अब हमें आप से विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अब से हम सब लोग आपके सेवक हैं, कृपा करके अमृत प्राप्ति के लिए उद्योग कीजिये और इस कार्य में शेषनाग को हमें दीजिये । हे दैत्य ! तुम्हारी सहायता से समुद्र मन्थन करके उत्पन्न किये गये अमृत से हम सभी लोग अमर हो जायँगे । तुम्हारी कृपा से हम लोगों की यह अभिलाषा पूर्ण हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।१७-१८½। इस प्रकार देवताओं के विनीत स्वर में कहने पर वलि अति सन्तुष्ट हुआ और बोला—'देवगण ! बताइये, मैं आप लोगों की कौन-सी इस समय सहायता करूँ ? मैं तो अकेला ही क्षीर सागर का मन्थन करने में समर्थ हूँ । आप लोगों को अमरत्व की प्राप्ति कराने के उद्देश से मैं अकेला ही क्षीर-समुद्र से मथ कर दिव्य अमृत को निकाल सकता हूँ ।१९-२०½। दूर से आश्रय के लिये आये हुए विनत वैरियों को जो व्यक्ति सम्मानित नहीं करता, सन्तुष्ट नहीं करता, वह इस लोक तथा पर-लोक दोनों में नष्ट होता है । अब मैं अति स्नेहपूर्वक तुम सभी लोगों की रक्षा करूँगा ।२१-२२। ऐसा कह कर दैत्येन्द्र बलि देवताओं के साथ गया और मन्थन कार्य में सहायता के लिए मन्दराचल से प्रार्थना करते हुए बोला—'मन्दर ! इस अमृत-मन्थन के कार्य में, जो कि देवताओं तथा राक्षसों सभी के लिए

---

[1] ग. घ. ङ. च. कार्ये प्र° । [2] ग. त्रकः । त्व° ।

[1]मन्था भव त्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने । सुरासुराणां सर्वेषां[2] महत्कार्यमिदं [3]यतः ॥२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम । यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामि मथिष्ये वरुणालयम् ॥२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये[4] यः शक्तः स्याद्भ्रमणे मम । ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ ॥२६
विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ । ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ ॥२७

कूर्म उवाच

त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते । किमु मन्दरकात्क्षुद्राद्गुटिकासंनिभादिह ॥२८

शेष उवाच

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा । न मे ग्लानिर्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ॥२९
तत उत्पाट्य तं शैलं तत्क्षणात्क्षीरसागरे । चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधः स्थितस्तदा ॥३०
निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः । मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तदा ॥३१
नारायणनिवासं ते जग्मुर्बलिसमन्विताः । यत्राऽऽस्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ॥३२

विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, तुम मन्थन-दण्ड बनो ।' मन्दराचल ने कहा कि—'मुझे अंगीकार है, यदि हमारा आधार कोई मिले तब, जिस पर स्थित होकर मैं मन्थन कर सकूं । ऐसा होने पर मैं वरुणालय का मंथन करूंगा किन्तु इस कार्य में बरेत के कार्य के लिए भी, जो कि मेरे घुमाने की क्षमता रखता हो, निश्चित कर लीजिये ।२३-२५½। मन्दर के ऐसा कहने पर महाबलवान् कूर्म तथा शेषनाग पालाल लोक से ऊपर आये, जो कि भगवान् विष्णु के चतुर्थ अंश रूप में पृथ्वी के भार को थामने के लिए नियुक्त थे। उन शेष तथा कच्छप ने आकर भगवान् से गर्वीले स्वर में कहा ।२६-२७।

कूर्म ने कहा—इस समस्त त्रैलोक्य को धारण करने पर भी मुझे थकावट नहीं मालूम पड़ती तो भला इस उपकार के कार्य में छोटी गुड़िया के समान मन्दर को थामने में मुझे क्या कठिनाई पड़ेगी ? ।२८।

शेष ने कहा—इस निखिल ब्रह्माण्ड के वेष्ठन होने से तथा उसके मन्थन करने से जब हमारे शरीर में कोई थकावट नहीं मालूम पड़ती तो मन्दर के घुमाने से हमें कोई कष्ट नहीं होगा ।२९। ऐसा कह कर जब नाग ने लीलापूर्वक उसी क्षण मन्दराचल को उपार कर क्षीर सागर में फेंक दिया, तब कूर्म अध.भाग में आकर अवस्थित हुए । किन्तु समुद्र-मन्थन आरम्भ होने पर जब देवता और दानव मिलकर भी निराधार होने के कारण मन्दराचल क्षीर-सागर में घुमा नहीं सके तो बलि को साथ लेकर सभी भगवान् नारायण के निवास स्थान को वहाँ गये जहाँ पर देवाधिदेव जनार्दन स्वयं विराजमान हो रहे थे ।३०-३२।

---

१ ख. सखा । २ ङ. च. °र्वेषामिदं कार्यं महोद्यतम् । त° । ३ क. ख. जगत् । ४ घ. ङ. °र्ये च यः शक्तस्तु फणी मम ।

तत्रापश्यन्त तं देवं [1]सितपद्मप्रभं[2] शुभम् । योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ॥३३
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यङ्कसंस्थितम् । पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ॥३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानं गरुत्मता । स्तूयमानं समन्ताश्च सिद्धचारणकिंनरैः ॥३५
[3]आम्नायैर्मूर्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः । सव्यबाहूपधानं तं तुष्टुवुर्देवदानवाः ॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतोदिशम् ॥३६

देवदानवा ऊचुः

नमो लोकत्रयाध्यक्ष तेजसः जितभास्कर । नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभार्दन ॥३७
नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः । रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे ॥३८
नमः शूलायुधाधृष्य[4] नमो दानवघातिने । नमः[5] क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ॥३९
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकालमहानल[6] । नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भ महाबल[7] ॥४०
पद्मभूत महाभूत कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय । जनिता [8]सर्वलोकेश क्रियाकारणकारिणे[9] ॥४१

देवताओं तथा बलि प्रभृति असुरों ने वहाँ जाकर श्वेत कमल के समान कान्तिमान कल्याणदायी उन अच्युत भगवान् को पीताम्बर धारण किये हुये योगनिद्रा में निमग्न देखा । उस समय उनके अंगों में हार और केयूर विराजमान थे, सर्पों की शैय्या पर भगवान् शयन कर रहे थे और अपने चरण-कमल से लक्ष्मी के नाभिमण्डल का स्पर्श कर रहे थे ।३३-३४। उस समय गरुड़ अपने पंखे की वायु से भगवान् को हवा कर रहा था । चारों ओर से सिद्ध, चारण एवं किन्नर गण उनकी स्तुति में मग्न थे । सभी दिशाओं से मूर्तिमान आम्नाय (वेद) स्तुति कर रहे थे । बायाँ हाथ शिर से नीचे शोभायमान था, ऐसे उन ऐषशायी भगवान् की देवताओं तथा दानवों ने हाथ जोड़ विनत हो चारों दिशाओं से स्तुति करनी प्रारम्भ की ।३५-३६।

देवताओं तथा दैत्यों ने कहा—हेतीनों लोकों के स्वामी ! तेज से सूर्य को पराजित करने वाले । विजयशील विष्णो ! कैटभ के शत्रु ! तुम्हें हमारा नमस्कार हैं । सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा रूप तुम्हें हमारा नमस्कार है, जगत् के पालनकर्त्ता विष्णु रूप तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं, रुद्र रूपधारी जगत् के संहारकर्त्ता आप को हमारा नमस्कार है ।३७-३८। तुम अपने त्रिशूल से भी धर्षित नहीं हो सकते । हे दानवों के विघात करनेवाले ! तीन पग में तीनों लोकों के उल्लंघित करनेवाले ! अजन्मा ! तुम्हें हम लोग नमस्कार करते हैं । हे प्रचण्ड दैत्येन्द्र कुल के काल रूप महा अनल ! तुम्हारे नाभिरूप सरोवर से पद्म की उत्पत्ति हुई है, तुम महाबलवान् हो तुम्हें हमारा नमस्कार है ।३९-४०। तुम पद्म के उत्पत्तिकर्त्ता हो, महाभूत् जगत् के हरण करनेवाले, उत्पत्ति करनेवाले तथा प्रिय हो, सभी के जनक हो, सभी लोकों के स्वामी हो,

---

[1] च. °पद्मोपमं शु° । [2] ग. °द्मसमप्रभ° । [3] ग. घ. ङ. आयुधैर्मू° । [4] ग. °धादृश्य न° । [5] ङ. नमो मन्त्रत्र° । [6] ग घ. ङ. °हाबल । [7] क. ख. °हाचल । [8] ग. घ. ङ. °ताशेपलो° । [9] ङ. °दकका° ।

अमरारिविनाशाय महासमरशालिने[1] । लक्ष्मीमुखाब्जमधुप नमः[2] कीर्तिनिवासिने ॥४२
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् । मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः[3] ॥४३
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना । मथ्यताममृतं देव स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ॥४४
ततः श्रुत्वा स भगवान्स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा । विहाय योगनिद्रां तामुवाच मधुसूदनः ॥४५

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं विबुधाः सर्वे किमागमनकारणम् । यस्मात्कार्यादिह प्राप्तास्तद्ब्रूत विगतज्वराः ॥४६
नारायणेनैवमुक्ताः प्रोचुस्तत्र दिवौकसः । अमरत्वाय देवेश मथ्यमाने महोदधौ ॥४७
यथाऽमृतत्वं[4] देवेश तथा नः कुरु माधव । त्वया विना न तच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन ॥४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ततोऽग्रे भव नो विभो । इत्युक्तश्च ततो विष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥४९
जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः । वेष्टितो भोगिभोगेन[5] [6]धृतश्चामरदानवैः[7] ॥५०

कार्य और कारण—दोनों के निर्माण करनेवाले हो । अमरों के शत्रुओं का विनाश करनेवाले हो, महा समर करनेवाले हो, लक्ष्मी के मुख रूप कमल के मधुप हो, यश में निवास करनेवाले हो ! तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं ।४१-४२। हम लोगों की अमरत्व प्राप्ति के लिए तुम इस विशाल मन्दराचल को, जो अयुतायुत योजन विस्तृत है, धारण करो धारण करो ।४३। हे देव ! तुम्हारे भुजबल का अन्त नहीं है, अपने उन दोनों बाहुओं से उठा एक हाथ द्वारा इसे पकड़ कर स्वाहा स्वधा के अभिलाषी देवताओं के उपकारार्थ अमृत का मंथन करो ।' देवताओं तथा दैत्यों द्वारा स्तुतिपूर्वक कही गई इस बात को सुन कर मधुसूदन भगवान् ने अपनी योगनिद्रा को छोड़ कर उनसे कहा ।४४-४५।

श्री भगवान् ने कहा—देवगण ! आप लोगों का स्वागत कर रहा हूँ, आप लोगों के यहाँ आगमन का क्या कारण है ? जिस कार्य के लिए आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया है उसे चिन्तारहित होकर बतलाइए ।४६। नारायण के ऐसा कहने पर स्वर्गवासी देवताओं ने कहा—देवेश ! अमरत्व प्राप्ति के लिये हम लोग महोदधि का मन्थन कर रहे हैं, हे देवाधिदेव ! हमें जिस प्रकार अमरत्व की प्राप्ति हो सके वैसा उपाय आप करें । हे कैटभ के शत्रु ! माधव ! तुम्हारे विना हम लोगों से वह कार्य नहीं हो सकता ।४७-४८। हे नाथ ! उस अमृत-प्राप्ति के कार्य में तुम हमारे अगुवा बनो । देवताओं के ऐसा कहने पर शत्रुनाशक परम ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु देवताओं के साथ वहाँ चले, जहाँ पर मन्दराचल था, उस समय वह मन्दराचल शेषनाग की फणों से लिपटा हुआ था तथा देवता और दानवगण

---

१ ग. °रलोभिने । घ. °रलोलिने । २ ग. °मः कृत्तिनि° । ३ ग. घ. ङ. विस्तरः । अ° । ४ ग. घ. ङ. °मृतं स्याद्देवे° । ५ घ. °न बलेनाम° । ६ ङ. च. धृतेनाम° । ७ ग. °वैः । बिभीषिता° ।

विषभीतास्ततो देवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः । मुखतो दैत्यसंघास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ॥५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना । दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याऽऽकृष्टवांस्तथा ॥५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकंदरम् । नारायणः स भगवान्भुजयुग्मद्वयेन तु ॥५३
ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम् । दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ॥५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसराः । श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाऽम्बुशीकरान् ॥५५
ववर्षामृतकल्पांस्तान्ववौ वायुश्च शीतलः । भग्नप्रायेषु [1]देवेषु शान्तेषु कमलाशनः ॥५६
मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः । अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा[2] ॥५७
ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम् । भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे ॥५८
[3]निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः । श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलद्रुमाः ॥५९
ततः फलानां वीर्येण पुष्पौषधिरसेन च । क्षीरमम्बुधिजं सर्वं दधिरूपमजायत ॥६०
ततस्तु[4] सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः । तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत ॥६१

उसे थामै हुए थे । विष के भय से भीत होकर देवगण तो शेषनाग की पूँछ की ओर पकड़े हुए थे और मुख की ओर राहु को अगुआ बना कर दैत्यगण पकड़े हुये थे ।४९-५१। शेषनाग के सहस्र मुखवाले शिर को बाएँ हाथ से, तथा देह को दाहिने हाथ से पकड़ कर दैत्येन्द्र बलि खींच रहा था। सुन्दर कन्दराओं से सुशोभित अमृत के मन्थन दण्ड मन्दराचल को उन भगवान् विष्णु ने अपने दोनों हाथों से पकड़ा था ।५२-५३। इस प्रकार जय जय कार करते हुए सभी देवताओं तथा दैत्यों ने मिलकर देवताओं के सौ वर्षों तक क्षीर सागर का मन्थन किया किन्तु इसके उपरान्त वे सभी देवदानवगण बहुत थक गये । उन लोगों के थक जाने पर देवराज इन्द्र ने मेघ रूप धारण कर जल-कणों की वृष्टि की, जो अमृत के समान शीतल लगे ।५४-५५। शीतल वायु बहने लगी । किन्तु इतने पर भी जब देवगण बिल्कुल थक कर शान्त-से होने लगे तब ब्रह्मा जी ने बारम्बार यह कहना प्रारम्भ किया कि 'अरे समुद्र को मथो, मथो । उद्योगी पुरुषों को सर्वथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उन्हें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती ।' ब्रह्मा के इस प्रकार उत्साहित करने पर देवासुर गण पुनः दत्तचित्त हो समुद्र का मन्थन करने लगे ।५६-५७½। तदुपरान्त दस सहस्र योजन विस्तृत मन्दराचल द्वारा मन्थन किये जाने पर उनके शिखरों पर से हाथियों के समूह समुद्र में गिर पड़े, शूकर तथा शरभादि जीवगण गिर पड़े, लाखों कुत्ते तथा पुष्पों और फलों से लदे हुए वृक्ष गिर पड़े । तब उन फलों के सारभाग तथा पुष्पों और ओषधियों के रस से क्षीरसागर का जल दही के रूप परिणत हो गया ।५८-६०। और तदुपरान्त उन गिरे हुए सहस्रों जीवों के चूर्ण हो जाने पर उनके रक्त तथा चर्बी आदि के संयोग से वह जल मदिरा के समान हो गया ।६१।

---

[1] ग. दैत्येषु । घ. ङ. °षुश्रान्ते° । च. °षु अश्रान्तः क° । [2] ङ. °त्सताम् । ब्र° । [3] च निर्जग्मुर्ह° ।
[4] ग. ङ. °स्तु जलजी° ।

वारुणीगन्धमाघ्राय [1]मुमुदुर्देवदानवाः । तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ॥६२
ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नागेन्द्रं सर्वतोऽसुराः । मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ॥६३
अभवच्चाग्रतो विष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः । सवासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत । ६४
यथा[2] नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः । ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ॥६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् । ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥६६
पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ । द्विमूर्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ॥६७
एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः[3] । ममन्थुरम्बुधिं [4]दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ॥६८
बभूवात्र [5]महाघोषो महामेघरवोपमः । उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता [6]महाद्रिणा । विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७०
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः । पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम्[7] । न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥७२

उस वारुणी की गन्ध से देवता तथा दानव प्रमुदित हुए, और उसके आस्वादन से वे देवता दानवगण फिर बलवान् हो गये अर्थात् उनकी थकावट बीत गई। तब असुरों ने शेषनाग को चारों ओर से अति वेग से पुनः पकड़ा, जिससे मन्थनदण्ड मन्दराचल एक स्थान पर अचल हो गया।६२-६३। भगवान् विष्णु ने अग्रसर होकर अपनी भुजाओं के बन्धन से मन्दराचल को बाँध लिया, जिससे वासुकि के फणों से सन्निहित होने के कारण वे श्यामल वर्ण के शोभित होने लगे। उस समय उनकी शोभा नीले कमलों से युक्त अति विस्तृत ब्रह्मदण्ड की भाँति दिख रही थी। तदनन्तर समुद्र से सैकड़ों मेघों की ध्वनियां सुनाई पड़ने लगीं।६४-६५। शेषनाग के दूसरे भाग में सर्वप्रथम इन्द्र थे, तदनन्तर आदित्य गण थे, उसके बाद अति उत्साहयुक्त रुद्रगण, वसुगण तथा गुह्यकों के समूह थे।६६। दूसरी ओर सर्वप्रथम विप्रचित्ति, नमुचि, वृत्र, शम्बर, द्विमूर्धा, वज्रदंष्ट्र, राहु तथा बलि थे।६७। ये तथा अन्य बहुतेरे राक्षस एवं दानवगण शेष के मुख-भाग की ओर थे। इस प्रकार बल तथा तेज से विभूषित सभी देव दानवगण समुद्र का मन्थन करने लगे। देवताओं तथा दानवों द्वारा मन्थन करते समय समुद्र से महान् मेघगर्जन के समान भीषण स्वर निकलने लगा।६८-६९। उस विशाल मन्दराचल की चोट से सैकड़ों सहस्रों की संख्या में विविध प्रकार के जलचर विनष्ट हो गये। पर्वत ने वरुणलोक में निवास करनेवाले पातल लोक के विविध प्रकार के निवासियों को विनाश के पथ पर पहुँचा दिया। मन्थन करते समय उस मन्दराचल के ऊपर उगे हुए महान् वृक्षों के समूह परस्पर के संघर्षण से टूट-फूटकर ऊपर से पक्षियों के साथ ही समुद्र में गिरने लगे।७०-७२। उनके संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जिसकी चिनगारियों से

---

[1] ग. ङ. °मुहुर्द । [2] ग. घ. ङ. च. °था पद्मोत्प° । [3] ग. °गव्यवस्थिः । ङ. च. °गमवस्थि° । [4] ग. ङ. च दृष्टा बलवन्तो वि° । [5] ङ. च. °घोषः प्रलये च घनापे° । [6] ग. महाव्रणा° । ङ. महासटाः । [7] च. °म् । वियतस्तरसोपे° ।

तेषां संघर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन्मुहुः । विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् । विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च ॥७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः । वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि । महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥७६
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च । अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसंनिभाः ॥७७
अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः । रसान्तरैर्विमिश्रं च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ॥७८
ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् । श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतं च यत् ॥७९
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा । चिरायितमिदं चापि सागरस्य तु मन्थनम् ॥८०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानेव परायणम् ॥८१

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये[1] समास्थिताः । [2]क्षोभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥८२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थन एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४९॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२५९५॥

मन्दराचल विजली से युक्त काले बादल की भाँति आच्छन्न हो गया । अग्नि के भय से पानी से निकलकर भागते हुए सिंहों तथा हाथियों को उस अग्नि ने भस्मसात् कर दिया तथा विविध प्रकार के मरे हुए जीवों को भी उसने जलाकर राख कर दिया । जीवों को जलानेवाली उस अग्नि को देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने बादलों की वृष्टि द्वारा चारों ओर से शान्त कर दिया, जिसके कारण ऊपर विविध प्रकार के रस समुद्र के जल में आकर गिरने लगे ।७३-७५½। बड़े-बड़े वृक्षों के गोंद तथा औषधियों के रस जल की धारा के साथ समुद्र में आकर मिल गये। उन अमृत के समान गुणकारी रसों तथा समुद्र के दुग्धवत् जल से सुवर्ण की भाँति दमकते हुए देवगण अमरत्व को प्राप्त हुये ।७६-७७। वह समुद्र का जल दुग्ध रूप में परणित हो गया था, फिर से अनेक प्रकार के रसों के मिश्रण से वह दुग्ध से घृत के रूप में बदल गया । तब बैठे हुए ब्रह्मा से देवताओं ने कहा—'ब्रह्मन् ! हम लोग तो अब बहुत ही थक चुके हैं, किन्तु अमृत नहीं निकला ।७८-७९। हम समझते हैं कि भगवान् विष्णु को छोड़कर हम सभी देवगण तथा दैत्यगण अतिशय श्रान्त हो गये हैं, और समुद्र का मन्थन भी बहुत दिनों तक कर चुके ।' देवताओं तथा दैत्यों की ऐसी बात सुन ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु से कहा—भगवान् ! इन सबों को बल प्रदान कीजिये ऐसी दशा में आप ही इनकी शरण हैं ।८ -८१।

विष्णु ने कहा—इस मन्थन के कार्य में जितने लोग सम्मिलित हैं उन सब को मैं बल प्रदान कर रहा हूं, अब इस कार्य के लिए क्रम से सभी लोग मिलकर मन्दर को परिचालित करें ।८२।

श्रीमात्स्य महापुराण में अमृतमंथन नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥२४९॥

---

[1] ङ. च कर्मणाऽस्मिन्समा° । [2] क. ख क्षुभ्यतां ।

अथ पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधौ । तत्पयः सहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥१
ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् । प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी । सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसंभवः । मरीचिविकचः श्रीमान्नारायणउरोगतः[1] ॥४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकाञ्चितः[2] । अनन्तरमपश्यंस्ते[3] धूममम्बरसंनिभम् ॥५
आपूरितदिशाभागं दुःसहं सर्वदेहिनाम् । [4]तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छिताः परिलम्बिताः[5] ॥६
उपाविशन्नब्धितटे[6] शिरः संगृह्य पाणिना । ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥७
ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा । तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु[7] सुरासुराः ॥८
दग्धाश्चाप्यर्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकलादिशः । प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना ॥९

अध्याय २५०

सूत ने कहा—भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन वे बलवान् देव-दानवगण उस महासमुद्र में सम्मिलित होकर उसकी जलराशि को अत्यन्त क्षुभित करने लगे। तदनन्तर समुद्र से सौ सूर्य की भाँति तेजोमय, प्रशस्त कान्तिवाला, शीतरश्मि उज्ज्वल चन्द्रमा उद्भूत हुआ ।१-२। उसके बाद घृत समुद्र से पीले वर्ण के वस्त्रों से शोभित लक्ष्मी उत्पन्न हुईं, फिर सुरादेवी, तदनन्तर पीला घोड़ा, फिर अमृत से उत्पन्न होनेवाली दिव्य कौस्तुभ मणि, जो अपनी किरणों से सुशोभित होकर भगवान् नारायण के वक्षःस्थल में विराजमान है ।३-४। तदनन्तर विकसित पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित पारिजात की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त उन देवताओं तथा दैत्यों ने बादल की भाँति धूम को समुद्र से ऊपर उठते हुये देखा, जिससे सभी दिशाएँ व्याप्त हो गई थी। उस धूम को सभी प्रकार के देहधारी सहन करने में असमर्थ थे, उसे सूँघते ही देवगण मूर्च्छित होकर गिरने लगे । और कुछेक हाथ से शिर को पकड़ कर समुद्र के तट पर बैठ गये ।५-६½। तदनन्तर क्रम से वह दुःसह अग्नि सी वस्तु समुद्र से बाहर निकलती हुई दिखाई पड़ी। उसके चारों ओर विकराल ज्वालाओं का जाल फैला हुआ था, चारों ओर भीषण चिनगारियाँ छिटक रही थीं, उस भीषण अग्नि से प्रायः सभी देवता और दानवगण विक्षिप्त हो गये। कुछ बिल्कुल जले हुए तथा कुछ अधजले हुए सभी दिशाओं में भगने लगे ।७-८½। प्रधान देव तथा दैत्य गण भी उस अग्नि से भयभीत हो गये। कुछ देर पश्चात् उस भीषण

---

[1] घ. °रोनुगः । पा° । [2] ग. ङ. °कावृतः । [3] ग ङ. °पश्यन्तधू° । [4] ग. ङ. च. तदाघ्रा° ।
[5] ङ. °रिकम्पिताः । [6] ग. ङ. च. °विश्याम्बुधितटे स्वशिरो गृ° । [7] ग. °शस्ते सुरा° ।

अनन्तरं समुद्भूतास्तस्माड्डुण्डुभजातयः । कृष्णसर्पा महादंष्ट्रा रक्ताश्च पवनाशनाः ॥१०
श्वेतपीतास्तथा चान्ये तथा गोनसजातयः । मशका भ्रमरा दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा ॥११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेके चैव बभ्रमुः । प्राणिनो दंष्ट्रिणा रौद्रास्तथा हि विषजातयः ॥१२
[१]शार्ङ्गहालाहलामुस्तवत्सकंगूरुभस्मगाः[२] । नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ॥
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥१३
अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ॥१४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभं कुसुमैः कृतार्घं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ॥१५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहिभयाश्रयं तम् ।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं[३] भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ॥१६

अग्नि से डुण्डुभ जाति वाले सर्प उत्पन्न हुए । उसी प्रकार काले सर्प, जिनकी दाढ़ बड़ी भयानक होती है, लाल सर्प, वायु पीकर रहनेवाले सर्प, श्वेत वर्ण के पीले वर्ण के तथा अन्यान्य गोनस जाति वाले सर्प उस अग्नि से उत्पन्न हुए ।९-१०½। तदुपरान्त मशक, भ्रमर, डँसा, मक्खियाँ, पतिंगे, कर्णशल्य, गिरगिट आदि जीव इधर उधर घूमने लगे इनके अतिरिक्त अति भीषण दाढ़ोंवाले अनेक जीवगण तथा अनेक विषों के भेदोपभेद भी उससे उत्पन्न होकर इधर-उधर दिखाई पड़ने लगे । शाङ्र्ग, हलाहल, मुस्त, वत्स, कंगूर, भस्मग नीलपत्रादि सैकड़ों भेदोपभेदवाले विष उससे उत्पन्न हुए, जिनकी सुगन्धिमात्र से शीघ्र ही पर्वतों के शिखर भी जल उठते थे ।११-१३। तदनन्तर शरीरधारियों को अतिशय भय देनेवाली एक मूर्ति दिखाई पड़ी, जिसके शरीर की कान्ति नीलरस के समूह, भ्रमर अथवा कज्जल के पर्वत के समान थी, जोर जोर से विषम श्वासें ले रही थी, उसके अंग प्रत्यंग समस्त लोकों में फैल रहे थे, केशों के समूह जलती हुई अग्नि की भाँति दिखाई पड़ रहे थे ।१४। सुवर्ण एवं मोतियों के अलंकारों से उसके अंग विभूषित थे, किरीट धारण किये हुए थी, शरीर पर पीताम्बर था, देह की कान्ति नीलकमल के समान थी, विविध प्रकार के पुष्प शरीर पर शोभायमान हो रहे थे, गम्भीर गर्जते हुए बादल के समान शब्द कर रही थी ।१५। इस प्रकार समुद्र के मध्य में अवस्थित शरीरधारी विष को उन देवताओं तथा दैत्यों ने देखा ! उस भीषण नेत्रवाले भयदायी विष को देखकर सभी लोग अतिशय भयभीत हो गये ।१६। कितने तो देखते ही चल बसे, और कितने देखते ही बेहोश हो गये

---

१ घ. °मुस्ताधत्स° । २ ग. °कं गुमुवत्सकाः । नी° । घ. °कं गुरुतस्मकाः । नी° । ३ ग. ङ. °प्रवेगं भू° ।

केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्ववाप्ता विषमामवस्थाम् ॥१७
*श्वासेन तस्य निर्दग्धास्ततो विष्णिवन्द्रदानवाः । दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः ॥
ततस्तु संभ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम् ॥१८

श्रीभगवानुवाच

को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च । किं कृत्वा ते प्रियं [1]जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥१९
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसंनिभः । उवाच कालकूटस्तु भिन्नदुंदुभिनिस्वनः ॥२०

कालकूट उवाच

अहं हि कालकूटाख्यो [2]विष्णोऽम्बुधिसमुद्भवः । यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः ॥२१
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः । संभूतोऽहं तदा सर्वान्हन्तुं देवान्सदानवान् ॥२२
[3]सर्वानहं हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः[4] । मां वा ग्रसत वै [5]सर्वे यात व गिरिशान्तिकम् ॥२३

कुछ लोगों के मुख से फेन गिरने लगे और कुछ लोगों की अति चिन्तनीय दशा हो गई । उस विकराल विष की श्वास से विष्णु इन्द्रादि देवता भी कुछ जल गये और थोड़ी देर पहिले जो जीवगण दिव्य रूपवाले थे ये अब जले हुए अंगार (कोयले) के समान काले वर्ण के हो गये । तदनन्तर अति भयभीत होकर विष्णु भगवान् ने उस सुरात्मक (?) से देवताओं की हितकामना से पूछा ।१७-१८।

श्रीभगवान् ने कहा—'आप महाकाल की तरह मालूम पड़नेवाले कौन हैं ? क्या चाहते हैं ? और कहाँ से आ रहे हैं ? क्या करने से आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी ? इन सब बातों को मुझे बताइये ।' भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन प्रलयाग्नि के समान विकराल उस कालकूट ने दुन्दुभि के समान भीषण स्वर में कहा ।१९-२०।

कालकूट ने कहा—'विष्णो ! समुद्र से उत्पन्न होनेवाले मुझ को लोग कालकूट नाम से पुकारते हैं । जब परस्पर एक दूसरे के संहार के अभिलाषी देवता तथा दैत्यगण अति उग्र अमर्ष से इस अद्भुत क्षीरसागर का मन्थन करने लगे तब मैं उन सभी का संहार करने के लिये उत्पन्न हुआ हूँ । संसार में जितने भी शरीरधारी हैं उन सब को मैं एक क्षण में विनष्ट कर दूँगा । या तो ये लोग मुझे निगल जायँ अथवा शंकर की शरण में हो जायँ ।२१-२३। कालकूट की ऐसी बातें सुन भयभीत देवताओं तथा असुरों ने

---

* इत आरभ्य सुरात्मकमित्यन्तग्रन्थो घ. पुस्तके न विद्यते ।

---

[1] घ. °येत दे° । [2] क. ख. घ. विषोऽम्बु° । [3] क. ख. °र्वानिह हनि°। [4] क. ख. °नः । मा मां प्र° । [5] ग. °र्धे यूयं देवासुराः सुर । श्रु° । च. र्वे यूयं सवासवाः । श्रु° ।

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः । ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य गतास्ते शंकरान्तिकम् ।।२४
निवेदितास्ततो द्वाःस्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः । अनुज्ञाताः शिवेनाथ विविशुर्गिरिशान्तिकम् ।।२५
मन्दरस्य गुहां हैमीं मुक्तामणिविभूषिताम् । सुस्वच्छमणिसोपानां वैदूर्यस्तम्भमण्डिताम् ।।२६
तत्र देवासुरैः सर्वैर्जानुभिर्धरणिं गतैः । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ।।२७

देवदानवा ऊचुः

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष[1] नमस्ते[2] दिव्यचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ।।२८
नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे । नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ।।२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे । ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ।।३०
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे । सांख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शंभवाय ते ।।३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयंकर । रंहसे देवदेवाय नमस्ते[3] वसुरेतसे ।।३२
एकवीराय सर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने । उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ।।३३

ब्रह्मा तथा विष्णु को अगुआ बनाकर शंकर के समीप प्रस्थान किया । वहाँ पर नियुक्त गणेशों ने जाकर उन लोगों की बातें शिव से कही । तदुपरान्त आज्ञा प्राप्त कर वे लोग शिव के समीप गये । वहाँ मन्दराचल की सुवर्णमय गुफा में जो मुक्ता तथा मणियों से विभूषित थी, स्वच्छ मणिजटित सीढ़ियाँ लगी हुई थीं, वैदूर्य मणि के खम्भों से सुशोभित हो रही थीं, शिव जी विराजमान थे । वहाँ जाकर सभी देवता तथा असुरगण घुटनों के बल पृथ्वी पर लेट गये और ब्रह्मा को अग्रसर बनाकर निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करने लगे ।२४-२७।

देवताओं तथा दानवों ने कहा—हे विरूपाक्ष ! तुम्हें हम लोगों का नमस्कार है । तुम दिव्य आँखोंवाले हो, हाथ में पिनाक धारण करनेवाले हो, वज्र धारण करनेवाले हो, धनुष धारण करनेवाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है ।२८। तुम्हारे हाथ में त्रिशूल विराजमान है, तुम दण्ड धारण करनेवाले हो, जटा के रूप में त्रैलोक्य की चिन्ता धारण करने के कारण तुम धूर्जटि नाम से विख्यात हो, तुम्हीं ब्रह्मा विष्णु और रुद्र रूप हो, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है, तुम वेद रूप हो, ब्रह्म हो, देव रूप हो, सांख्य योग स्वरूप हो, जीवों का कल्याण करनेवाले हो ।२९-३१। हे महाकाल के क्षय करनेवाले ! तुम कामदेव के शरीर को भस्म करनेवाले हो, वेगवान हो, एक वीर हो, वसुरेता हो, पिङ्गल वर्णवाले हो, मुण्डमाला से विभूषित ! तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे उमापते ! दक्ष के यज्ञ एवं त्रिपुर के विध्वंसक तुम्हें हम सब नमस्कार कर रहे हैं ।३२-३३। तुम शुद्ध, बुद्ध एवं प्रबुद्ध हो, निर्वाण एवं मुक्ति के स्वरूप हो, तीनों लोकों की सृष्टि करने

---

[1] ङ. °क्ष सर्वतोऽनन्तच° । [2] ग. °स्तेऽनन्तच° । घ. °स्ते तिग्मच° । [3] क. ख. °स्ते च सुरोत्तम । ए° ।

शुद्धबोधप्रबुद्धाय[1] मुक्तकैवल्यरूपिणे । लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥३४
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च । अग्रचाय चैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५
रजसे चैवसत्वाय तमसे तिमिरात्मने । अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः । भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ॥३७
उमाप्रियाय सर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय[2] च । ऋतुमन्वन्तकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥३८
नानारूपाय मुण्डाय [3]वरूथपृथुदण्डिने[4] । नमः [5]कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥३९
धन्विने रथिने चैव [6]यतये ब्रह्मचारिणे । इत्येवमादिचरितैः स्तुत तुभ्यं नमो नमः ॥४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः । उवाच वाक्यं भीतानां[7] स्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥४१

श्रीशंकर उवाच

किमर्थमागता ब्रूत त्रासम्लानमुखाम्बुजाः । किं वाभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ॥
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥४२

वाले हो, वरुण, इन्द्र एवं अग्नि रूप हो, तुम्हें हम सब का नमस्कार है। तुम ऋक्, यजु, और सामवेद स्वरूप हो, पुरुष हो, पुरुष रूप हो, परमेश्वर-रूप हो, सर्वश्रेष्ठ हो, उग्र हो, ब्राह्मण रूप हो, वेद तुम्हारी आँखें हैं, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है।३४-३५। तुम सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण स्वरूप हो, अन्धकार भी तुम्हारा एक स्वरूप है, अनित्य एवं नित्य—उभय रूप हो, नित्य चरात्मा हो, तुम्हें हम लोग नमस्कार कर रहे हैं।३६। तुम व्यक्त हो, अव्यक्त हो, व्यक्ताव्यक्त—दोनों एक ही साथ हो, भक्तों की आपत्तियों को नष्ट करनेवाले हो, नारायण भगवान् विष्णु के प्रिय हो अथवा भगवान् विष्णु तुम्हारे प्रिय हैं, तुम्हें हमारा अनेकशः नमस्कार है।३६। उमाप्रिय, शर्व, नन्दीश्वर के मुख से सुशोभित, तुम ही ऋतु, मन्वन्तर, कल्प, पक्ष, मास, एवं दिन रूप में वर्तमान हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है! तुम विविध प्रकार के रूपों को धारण करनेवाले हो, मुण्डी हो, स्थूल दण्ड तथा वरुथ को धारण करनेवाले हो, तुम्हारे हाथों में कपाल रहता है, दिशाएँ ही तुम्हारा वस्त्र हैं, शिखण्ड रखनेवाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है।३८-३९। तुम धनुषधारी हो, रथी हो, यति हो, ब्रह्मचारी हो,—इस प्रकार के के उत्तम चरित्रोंवाले तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है।'।४०। देवताओं तथा राक्षसों द्वारा इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर सृष्टि के स्थाणु स्वरूप भगवान् शंकर परम सन्तुष्ट हुए एवं उन भयभीत लोगों से मुस्कराते हुए यह बात कहने लगे।४१।

शंकर ने कहा—'हे देव तथा दानव गण ! तुम लोगों के मुखकमल मुरझाये हुए हैं, तुम लोग किस लिये यहाँ आये हुए हो ? क्या चाहते हो ? जल्दी कहो, आज ही मैं उसे पूरित करूँगा।' देवाधिदेव शंकर के ऐसा कहने पर सभी देवता तथा राक्षस गण बोले।४२।

---

[1] ग. °यजय कैं° । [2] ग. °क्त्राह्वयाय । घ. ङ. क्त्राङ्किता° । [3] ग. घ. °थप्रियद° । [4] ङ. थुमुण्डि° । [5] क. ख. कमल° । [6] ग. ङ. चतिने । [7] ग. °ना स्थिराञ्चित° ।

सुरासुरा ऊचुः

अमृतार्थे महादेव मथ्यमाने महोदधौ । विषमद्भुतमुद्भूतं लोकसंक्षयकारकम् ॥४३
स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः । सर्वान्वो भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबन्त्वथ ॥४४
तमशक्ता वयं ग्रस्तुं सोऽस्माञ्छक्तो बलोत्कटः । एष निःश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः ॥४५
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेन यमश्च [1]विषमात्मवान् । मूर्छिताः पतिताश्चान्ये विप्रणाशं गताः परे ॥४६
अर्थोऽनर्थक्रियां याति दुर्भगाणां यथा विभो । दुर्बलानां च संकल्पो यथा भवति चाऽऽपदि ॥४७
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वाऽमृतकाङ्क्षया । अस्माद्भयान्मोचय त्वं गतिस्त्वं च परायणम् ॥४८
भक्तानुकम्पी[2] भावज्ञो भुवनादीश्वरो[3] विभुः । यज्ञाग्रभुक्सर्वहविः सोम्यः सोमः स्मरान्तकृत् ॥४९
त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत् । [4]रक्षास्मान्मक्षसंकल्पाद्विरूपाक्ष[5] विषज्वरात् ॥५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः ॥५१

देवताओं तथा राक्षसों ने कहा—'महादेव जी ! अमृत के प्रयोजन से महासमुद्र को मथते समय अति उग्र एवं अद्भुत विष उत्पन्न हुआ है, जो सभी लोकों का विनाश करनेवाला है । सभी देवताओं को भयभीत करनेवाले उस विष ने स्वयं कहा है कि तुम सभी को मैं खा जाऊँगा अन्यथा मुझे पी जाओ ।४३-४४। उस उत्कट एवं विकराल विष को पान करने में हम लोग सर्वथा असमर्थ हैं, वह भीषण विष हम सभी को मार सकता है । उस विकराल विष के निःश्वास मात्र से सौ चन्द्रमा के समान कान्तिमान भगवान् विष्णु कृष्णवर्ण के हो गये । यमराज की उसने विषम स्थिति कर दी । अन्य देवताओं में से कुछ तो मूर्च्छित हो गये और कुछ नष्ट हो गये ।४५-४६। हे भगवन् ! जिस प्रकार अभाग्यशाली पुरुषों के अर्थ भी अनर्थ के कारण बन जाते हैं तथा आपत्तिकाल में दुर्बलात्मा पुरुषों के संकल्प विपरीत फल देनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अमृत की अभिलाषा से मथे गये समुद्र से हम लोगों को इस बिकराल विष की प्राप्ति हुई है । इस भय से अब हम लोगों की रक्षा कीजिये, आप ही एक मात्र हम सबों के शरणदाता हैं, और हम सब आपकी ही शरण में आये हैं ।४७-४८। भक्तों पर अनुकम्पा करनेवाले, मन के भावों को जाननेवाले सभी भुवनों के आदि ईश्वर ! भगवन् । यज्ञों में सर्वप्रथम भाग ग्रहण करनेवाले आप ही है, निखिल हवनीय द्रव्य भी आप ही हैं, सौम्य हैं सोम है, कामदेव को विनष्ट करनेवाले हैं । देव ! एक मात्र तुम्ही हम सबों की शरण हो, देवताओं का कल्याण करनेवाले हो, इस महाकाल सदृश कालकूट के ज्वर से हे विरुपाक्ष हम सबों की रक्षा कीजिये ।' देवताओं तथा दैत्यों की इस आर्त्तवाणी को सुन भग के नेत्रों के हरण करनेवाले भगवान् शंकर ने कहा ।४९-५१।

---

[1] ङ च. विमनात्मकः । म° । [2] ग. °म्पी सर्वज्ञो भगवानीश्व° । [3] घ. °नाधीश्व° । [4] ग. °स्मान्रक्ष° । ङ. °स्माम्भुङक्ष्व सं० । [5] घ. °म्भव सं° ।

देवदेव उवाच

भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् । तथाऽन्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः ॥
[1]तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥५२
इत्युक्ता हृष्टरोमाणो बाष्पगद्गदकण्ठिनः । आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे ॥
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ॥५३
ततोऽव्रजद्द्रुतगतिन[2] ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः ।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विचलितशुभ्रचामरैः ॥
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ॥५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुः तं कालकूटं विषं यतः । ततो देवो महादेवो विलोक्य विषमं विषम् ॥५५
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना । पीयमाने विषे तस्मिस्ततो देवा महासुराः ॥५६
जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च[3] पुष्कलान् । चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ॥५७
स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा । [4]कण्ठदेशं ततः प्राप्ते विषे देवमथाब्रुवन् ॥५८

देवदेव ने कहा—देवासुर गण ! मैं उस कालकूट महाविष को खा जाऊंगा । इसके अतिरिक्त अन्य जो कष्ट साध्य कार्य हों उन्हें बताइये ।, उसे भी हम करने को तैयार हैं । अब आप लोग चिन्ता छोड़ कर स्थित होइये । भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर देवता तथा असुर सभी रोमांचित हो गये । उन सबों के कण्ठ गद्गद् हो गये । आनन्द के आंसू बह चले और उस समय वे अपने को सनाथ अनुभव करने लगे । इस प्रकार आश्वस्त चित्त से प्रसन्नमन वाले ब्रह्मादि सभी देवगण अति प्रसन्न हुए ।५२-५३। तदनन्तर जगत्पति शंकरजी पवन के समान द्रुत गति से ककुद्मधारी शीघ्रगामी नन्दिकेश्वर पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से चले । उस समय उनके आगे-आगे असुर तथा सुरों के अधिपति गण भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो, सुन्दर चमर डुलाते हुए चल रहे थे । मंगल के आधार उन देवताओं के आगे-आगे चलने से जितेन्द्रिय भगवान् अति शोभायुक्त हो रहे थे, उनके तृतीय नेत्र की अग्नि-ज्वाला से उनकी जटाएँ पिङ्गल वर्ण की हो रही थीं । तदनन्तर महादेवजी उस क्षीर सागर पर पहुँचे, जिससे उस कालकूट विष की उत्पत्ति हुई थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस विषम कालकूट विष को देखा और एक छायायुक्त स्थान में जाकर अपने बाएँ हाथ से उसको पी लिया ।५४-५५½। विष के पी लेने पर इन्द्र प्रभृति देव तथा हिरण्याक्ष प्रभृति असुर खुसी से नाचने गाने लगे और अनेक बार सिंहों की भांति दहाड़ने लगे, अति प्रसन्न चित्त हो देवेश की स्तुति करने लगे । भगवान् शंकर के गले में जब विष पहुँचा, तब ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा बलि

---

[1] ग. तत्सर्वं सा° । घ. ङ तथाऽपि । [2] ग. °तवलिनाकसंसदां ह° । [3] ङ. °नादान्सुपु° । [4] क. ख. °देशे त° ।

विरिञ्चप्रमुखा देवा[1] बलिप्रमुखतोऽसुराः । शोभते देव कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ॥५९
भृङ्गमालानिभं[2] कण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव । इत्युक्तः शंकरो देवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥६०
पीते विषे देवगणान्विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन्गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः[3] ॥६१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने कालकूटोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५०॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२६५६॥

अथैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

मथ्यमाने पुनस्तस्मिञ्जलधौ समदृश्यत । धन्वन्तरिः स भगवानायुर्वेदप्रजापतिः ॥१
मदिरा चाऽऽयतक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी । ततोऽमृतं च सुरभिः सर्वभूतभयापहा[4] ॥२

आदि प्रमुख असुरों ने उनसे कहा–'महाराज ! कुन्द के समान पीत वर्ण आपके शरीर के कण्ठ देश में भृंगावली की भाँति काले वर्ण का यह विष अति शोभा दे रहा है ।५६-५९। अतः उसे वहीं रहने दीजिये ।' देवताओं तथा असुरों के ऐसा कहने पर त्रिपुरशत्रु शिव जी ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । विष पान कर लेने के उपरान्त शंकर जी देवताओं को वहीं छोड़ पुनः अपने आश्रम मन्दराचल को चले गये और उनके चले जाने पर देवगण समुद्र को विविध प्रकार से पुनः मथने लगे ।६०-६१।

श्री मात्स्य महापुराण में अमृतमन्थन प्रसंग में कालकूटोत्पत्ति नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥२५०॥

अध्याय २५१

सूत ने कहा—पुनः समुद्र के मथे जाने पर उसमें से आयुर्वेद के प्रजापति (आदि सृष्टिकर्ता) परमैश्वर्यशाली धन्वन्तरि दिखाई पड़े । फिर लोगों के चित्त को घुमा देनेवाली विशाल नेत्रोंवाली मदिरा दिखाई पड़ी । तदनन्तर अमृत । फिर सभी जीवों के भय को दूर करनेवाली कामधेनु दिखाई पड़ी ।१-२। भगवान्

---

१ ङ. °वा नम्रमौलिमुखास्तथा। शो°। २ ग. °भं चात्र अग्रे मा त्वं विषं कुरु । इ°। ३ ग. °कारम्। इ°। ४ ग. ङ. च. °पहम्। ज°।

जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभं च महामणिम् । गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः ॥३
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् । छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ॥४
पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा । धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥५
श्वेतं कमण्डलं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति । एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ॥६
अमृतार्थे महानादो ममेदिमिति जल्पताम् । ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः ॥७
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा दानवानभिसंसृतः । ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ॥
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥८
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च । प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान्सहिता दैत्यदानवाः ॥९
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् । जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा । विष्णोः सकाशात्संप्राप्य सङ्ग्रामे तुमुले सति ॥११
ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् । राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा ॥१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा । आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् । चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥१४

विष्णु ने लक्ष्मी को तथा महामणि कौस्तुभ कोग्रहण किया । सहस्त्र नेत्रोंवाले इन्द्र ने गजराज को तथा उस उत्तम अश्व उच्चैःश्रवा को ग्रहण किया । सुर्य ने लोक में आरोग्य के प्रवर्त्तक धन्वन्तरि को ग्रहण किया । छत्र को वरुण ने तथा कुण्डलों को शचीपति इन्द्र ने ग्रहण किया ।३-४। पारिजात वृक्ष को मुदित होकर वायु ने ग्रहण किया । तत्पश्चात् शरीरधारी धन्वन्तरि उठकर खड़े हुए, उस समय वे एक श्वेतवर्ण का कमण्डलु धारण किये थे, जिसमें अमृत भरा था । इस अद्भुत कार्य करते हुए देखकर दानवों के दल में उस अमृत के लिए 'यह मेरा है, यह मेरा है', इस प्रकार का महान् कोलाहल मच गया । तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लिया और अति सुन्दरी स्त्री का रूप धारण कर दानवों के समीप उपस्थित हुए ।५-६½। उन मूढ़ों ने उस अमृत को मोहिनी के हाथों में सौप दिया । और उस सुन्दरी स्त्री के लिए सभी दानव तथा दैत्यगण अनुरक्त चित्त हो, विविध प्रकार के प्रमुख प्रमुख-शस्त्रास्त्रों को धारण कर एक साथ ही देवताओं से युद्धार्थ दौड़ पड़े । तब पराक्रमशाली विष्णु ने उस अमृत को नर के साथ उन दानवेन्द्रों से छीन लिया और लेकर अपने पास रख लिया । उधर सभी देवताओं ने उस तुमुल युद्ध के बीच ही विष्णु भगवान् से ले-लेकर उस अमृत का पान कर लिया ।८-११½। चिर अभिलषित उस अमृत को पीते समय देवताओं के मध्य में देवरूपधारी राहु नामक दानव भी अमृत का पान कर रहा था । उसके कण्ठदेश तक ही अमृत पहुँचा था कि इतने ही में देवताओं की कल्याण भावना से प्रेरित होकर चन्द्रमा तथा सूर्य ने उसके इस भेद को प्रकट कर दिया । भगवान् ने अपने चक्र से उस दानव के शिर को धड़ से अलग कर

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत् । चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयद्वसुधातलम् ॥१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै । [1]शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ॥१६
विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः । नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान्समकम्पयत् ॥
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ॥१७
तेऽसुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु । असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥१८
भिन्नानि पट्टिशैश्चापिशिरांसि युधि दारुणैः । तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशं तदा ॥१९
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः । अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ॥२०
ततो हलहलाशब्दः संबभूव समन्ततः । अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ॥२१
परिघैश्चाऽऽयसैः पातैः संनिकर्षैश्च मुष्टिभिः । निघ्नतां समरेऽन्योन्यं[2] शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥२२
छिन्दि भिन्धि प्रधावेति पातयाभिसरेति वै । विश्रूयन्ते[3] महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः ॥२३
एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये । नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ॥२४

दिया ।१२-१४½। अमृत पान करते हुए उस दानव का शिर अति तीक्ष्ण चक्र द्वारा कट कर पृथ्वीतल पर शोभित होने लगा । चक्रद्वारा कटे हुए उस दानव के विशाल शिर पर्वत के शिखर की भाँति वसुधातल को गिरते ही विचलित कर दिया । तभी से राहु का चन्द्रमा और सूर्य के साथ वैर सम्बन्ध चला आ रहा है, और वह आज भी पीड़ा पहुँचाता है । तदनन्तर विष्णु भगवान् ने अपना सुन्दरी स्त्री का रूप छोड़कर अपने अति विकराल विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से दानवों को प्रकम्पित कर दिया । अति विस्तृत एवं तीक्ष्ण भाले सहस्त्रों की संख्या में चारों ओर से दैत्यों की सेना पर पड़ने लगे ।१५-१६। भगवान् के चक्र से छिन्नभिन्न अंगोवाले राक्षसगण मुँह से अत्यधिक रक्त बहने लगे । तलवार, शक्ति एवं गदा की असहनीय चोटों के कारण पृथ्वीतल पर वे गिर गये । उस युद्ध में अति दारुण पट्टिशों से उनके शिर काट डाले गये । तपाये हुए सुवर्ण के समान पुष्पों से सुशोभित राक्षसों के शिर प्रचुर परिमाण में निरन्तर कट-कटकर भूतल पर गिरने लगे ।१८-१९। रक्त से भीगे हुए अंगों वाले, मारे गये, बड़े बड़े विशाल राक्षसों के शरीर युद्धमूमि में पहाड़ों के गेरु से रँगे हुए शिखरों की भाँति सोये हुए दिखाई पड़ रहे थे । तदनन्तर संग्रामभूमि में चारों ओर से 'हल, हला' शब्द गूँजने लगा । एक दूसरे को शस्त्रों से मारते हुए उस संग्रामभूमि में सूर्य लोहित वर्ण के दिखाई पड़ने लगे, अर्थात् सायंकाल आ गया । लोहे के बने हुए परिघों से कुछ लोग एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, एक दूसरे के अतिशय समीप होने के कारण कुछ मुष्टियुद्ध करने लगे । इस प्रकार एक दूसरे को मारते हुए उन लोगों के शब्द आकाश मण्डल को छू सा रहे थे ।२०-२२। 'काटो, मारो, दौड़ो, गिराओ, बढ़ो' इस प्रकार के अति घोर एवं दारुण शब्द चारों ओर से सुनाई पड़ रहे थे । इस अतितुमुल तथा परम भयानक महायुद्ध के छिड़ जाने पर युद्ध भूमि में नर-नारायण देव उपस्थित

---

[1] घ. °भ्यां प्रसत्यद्यापि चैव तौ । वि° । [2] ग. 'न्यं स शब्दो दिवमस्पृ° । [3] ग. ङ. व्यश्रूयन्त ।

तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि । चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनः[1] ॥२५
ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्[2] ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यविक्रमम् ॥२६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः ।
महाप्रभं[3] दनुकुलदैत्यदारणं तथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम् ॥२७
मुमोच वै [4]तदतुलमुग्रवेगवान्महाप्रभं[5] रिपुनगरावदारणम् ।
संवर्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनःपुनर्न्यपतत*वेगवत्तदा[6] ॥२८
व्यदारयद्दितितनयान्सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ।
दहत्क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितः प्रसह्य तानसुरगणान*कृन्तत[7] ॥२९
तत्प्रेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयो पिशाचवत् ।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा ॥३०

हुए । दैत्यसूदन भगवान् नारायण ने नर के हाथों में दिव्य धनुष को देख सुदर्शन चक्र का स्मरण किया ।२३-२५। तदनन्तर स्मरण करते ही आकाश मार्ग से भगवान् का वह सुदर्शन चक्र, जो अमित्रों का नाश करनेवाला, परम तेजोमय, महाभयानक, असह्य पराक्रमवाला था, नीचे उतरा । उसका मण्डल सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान था । जलती हुई अग्नि के समान विकराल अति भयंकर उस सुदर्शन चक्र को आकाशमण्डल से उतरते ही हाथी के शुण्ड के समान विशाल बाहुवाले अच्युत भगवान् ने अपने हाथ में धारण किया और उस अति प्रभावाले, दानव कुल एवं दैत्यों के संहारक, जलती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान, रिपु के नगरों का विध्वंस करनेवाले, संवर्तक नामक प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र को अति उग्र भाव से वेग पूर्वक शत्रुओं पर छोड़ दिया ।२६-२८। वह भीषण चक्र बारम्बार शत्रुओं पर प्रहार करने लगा । युद्धभूमि में पुरुषोत्तम के हाथ से छोड़े गये उस सुदर्शन चक्र ने सहस्रों की संख्या में दैत्यों को विदारित कर दिया, कहीं पर उसने वायु से उद्दीप्त अग्नि की भाँति शत्रुवाहिनी को एकदम भस्मसात् कर दिया तो कहीं पर उन असुर समूहों को बलपूर्वक काट डाला ।२९। भगवान् के हाथों से प्रेरित उस सुदर्शन ने बारम्बार आकाश में तथा पृथ्वी तल पर पिशाच की भाँति रक्तपान किया । तदनन्तर निर्भय चित्त असुरों ने पर्वतों द्वारा बारम्बार देवताओं की सेना को विनष्ट किया । सहस्रों की संख्या में वे महाबलवान् असुर समूह मेघों के समान

---

* अत्र परस्मैपदं भवितुं युक्तम् ।

---

[1] घ. ङ. सूदनम् । त° । [2] ग. °मरातितापन° । [3] ग. °भं दानवदे° । [4] क. ख. तपनमुदग्र° । [5] घ. ङ. °भं दितिजगणाव° । [6] घ. ङ. °दाविदा° । [7] क. ख. घ. °त । प्रवेरि° । ग. °त । प्रवगितं ।

[1]महाबला[2] विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो [3]गगनमहाप्रपातिनः ।
[4]अथासुरा भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ॥३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य [5]सस्वराः ।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना[6] तदाऽद्रिपाताभिहता समन्ततः ॥३२
परस्परं[7] समभिनिगर्जतां मुहू रणाजिरे भृशमभिसंप्रवर्तिते[8] ।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैर्महेषुभिः [9]पवनपथं समावृणोत् ॥३३
विदारयन्गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो महीं लवणजलं च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ॥३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य[10] च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ॥३५

कान्तियुक्त दिखाई पड़ रहे थे । उस समय वे आकाश मण्डल की भाँति विशाल हो रहे थे । अनेक प्रकार से विचित्र बादलों की भाँति रूप धारण करनेवाले वे राक्षस गण अति भयंकर हो गये ।३०-३१। राक्षसों से छोड़े गये, वृक्षों समेत अनेक प्रकार के मेघों के समान दिखाई पड़नेवाले वे विशाल पर्वत, जिनकी चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो गई थीं, शब्द करते हुए एक दूसरे पर शीघ्रता से गिरने लगे । उन पर्वतों के गिरने से पर्वतों एवं वनों समेत सारी पृथ्वी कम्पायमान हो गई, और चारों ओर से चोटों के पड़ने के कारण छिन्न भिन्न हो गई । इस प्रकार उन दोनों वाहिनियों का जब युद्धस्थल में एक दूसरे पर भीषण गर्जन करते हुए बारम्बार घात प्रतिघात होने लगा और देवताओं की सेना में अति आतंक छा गया तब नर ने सुन्दर सुवर्णजटित भूषणों से आभूषित अग्रभाग वाले अपने तीक्ष्ण बाणों से वायु का मार्ग छेंक लिया और छोटे बाणों से पर्वतों के शिखरों को विदारित कर दिया । देवताओं द्वारा ताड़ित किये गये बड़े-बड़े असुर योद्धागण भय के मारे पृथ्वी में, समुद्र के खारे जल में जहाँ, कहीं ठौर पाया प्रविष्ट हो गये ।३२-३४। जलती हुई अग्नि के समान भीषण अति कुपित होकर आकाश में प्रहार करनेवाला सुदर्शन चक्र शान्त हो गया और देवताओं ने विजय की प्राप्ति की । तदनन्तर भली भाँति पूजाकर मन्दराचल को अपने स्थान पर

---

१ क. ख. °हाचला । २ ग. °ला रविगंत° । ३ घ. °नगति प्रतप्यह । अ° । ङ. °नमहीं प्रतप्य च । अथातुरा । ४ क. ख. °थान्तरा । ५ क. ख. भास्वराः । ६ क. ख. ना महीधराः पवनहताः स° । ७ क. ख. °रं भृशमभिगर्जितं मु° । ८ क. ख. वर्तते । ९ ङ. च. परममहाभयैस्तदा । ततो । १० क. ख. घ. निशाम्य ।

[1]विनदय खं दिवमथ चैव सर्वशस्ततो गताः सलिलधरा यथागतम्।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ॥
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलिभिरथामरैः सह ॥३६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२६६२॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

प्रासादभवनादीनां[2] निवेशं विस्तराद्वद । कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः ॥१

सूत उवाच

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा । नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः ॥२

स्थापित किया गया और सभी दिशाओं तथा आकाश में फैले हुए जलधर भी जहाँ से आये थे वहाँ चले गये । देवतागण इस प्रकार अमृत की रक्षाकर परम आनन्दित हुए और उसकी संचित निधि को बलवान् देवताओं के साथ किरीटी (भगवान्) को सुरक्षा के लिए सौंप दिया गया । ३५-३६।

श्री मात्स्य महापुराण में अमृत मन्थन नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।।२५१॥

अध्याय २५२

ऋषियों ने कहा—अब हम लोगों को राजप्रासाद तथा भवन आदि के निर्माण की विधि को विस्तारपूर्वक बतलाइये और यह बतलाइये कि उन्हें किस प्रकार बनाया जाना चाहिये ! वास्तु क्या है ? इसे भी हम लोग जानना चाहते हैं ।१।

सूत ने कहा—भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर,

---

[1] क. ख. विनादयन्स्ववदिशमुपेत्य स° । [2] ग. °नां निवासं वि° । ङ. च. °नां वेशं विस्तरतो वद ।

ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च । वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः । संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा ॥४
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् । पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः ॥५
ललाटस्वेदसलिलमपतद्भुवि भीषणम् । करालवदनं तस्माद्भूतमुद्भूतमुल्बणम् ॥६
[*ग्रसमानमिवाऽऽकाशं सप्तद्वीपां वसुंधराम् । ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ ॥७
तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले । तथाऽपि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा ॥८
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् । क्षुधाविष्टं तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥९
ततः कालेन संतुष्टो भैरवस्तस्य चाऽऽह वै । वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं तवानघ ॥१०
तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् । [2]भवेयं देवदेवेश तथेत्युक्तं च शूलिना ॥११
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः । स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानं प्रपतद्भुवि ॥१२

ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शोनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा वृहस्पति—ये अट्ठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक अथवा प्रणेता माने गये हैं ।२-३½। मत्स्य रूप धारी भगवान् ने संक्षेप में मनु के लिये जिस उत्तम वास्तु विज्ञान का उपदेश किया था उसे ही मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ । प्राचीन काल में अन्धक के वध के भीषण अवसर पर जब शिव जी ने विकराल रूप धारण किया था तब उनके ललाट प्रदेश से स्वेद का एक भीषण विन्दु पृथ्वीतल पर गिरा था । और गिरते ही उससे एक कराल मुखवाला एक अद्भुत प्राणी प्रादुर्भूत हुआ था, उत्पन्न होते ही वह सातों द्वीपों समेत समस्त वसुन्धरा तथा आकाश को लीलने की भाँति उद्यत हुआ और पृथ्वी पर गिरे हुए अन्धक के रक्त विन्दुओं का पान कर गया ।४-७। उस विकराल प्राणी ने अन्धक के युद्ध में पृथ्वीतल पर गिरे हुए समस्त रक्त का पान किया और जब पान करने पर भी संतुष्ट नहीं हो सका तो सदाशिव भगवान् के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा । तीनों लोकों का आहार करने में समर्थ वह विचित्र प्राणी अति क्षुधा से व्याकुल होकर तपश्चर्या करता रहा । कुछ दिनों बाद भैरव ने सन्तुष्ट होकर उससे कहा—'हे निष्पाप ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो उसे माँग लो' ।८-१०। उसने कहा—'देवदेवेश ! मैं यह चाहता हूँ कि तीनों लोकों को ग्रस लेने की सामर्थ्य मुझमें आ जाय ।' त्रिशूलधारी शिव जी ने कहा कि 'ऐसा ही होगा ।' ऐसा कहने के उपरान्त वह विचित्र प्राणी अपने विशाल शरीर से स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल एवं आकाश को छेंकते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा । तब भयभीत चित्त देवताओं, ब्रह्मा, शिव, तथा समस्त दानव, दैत्य एवं

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते ।

---

१ ग. ङ. च. °मपायि पति° । २ क. ख. ङ. भवामि ।

भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथशूलिना । दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः ॥१३
येन यत्रैव चाऽऽक्रान्तं स [1]तत्रैवावसत्पुनः । निवासात्सर्वदेवानांवास्तुरित्यभिधीयते ॥१४
अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः । प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः[2] ॥१५
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः । ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ॥१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य[3] भविष्यति । वस्तूपशमनो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति ॥१७
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाऽऽहारो भविष्यति । वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाऽऽहारो भविष्यति ॥१८
+अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति । एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत्तदा ॥
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततःप्रभृति शान्तये ॥१९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुभूतोद्भवो नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२७११॥

राक्षसों ने ऊपर चढ़कर चारों ओर से उसे रोक लिया । जो लोग उसे जहाँ पर आक्रान्त किये बैठे थे वे वहीं बने रह गये । सभी देवताओं का निवास होने के कारण वह वास्तु नाम से पुकारा गया ।११-१४। इस प्रकार रोके गये उस विचित्र प्राणी ने सभी देवताओं से निवेदन किया—'हे समस्त देवगण ! मेरे ऊपर आप लोग प्रसन्न हों । आप लोगों से निश्चलित किया गया मैं भला नीचे मुख किये हुए देर तक किस प्रकार अवस्थित रह सकूँगा ।' उसके इस निवेदन पर ब्रह्मादि देवताओं ने कहा कि 'वास्तु के प्रसंग में जो बलि दी जायगी, वैश्वदेव के अन्त में जो आहार चढ़ाया जायगा वह निश्चय ही तुम्हारा होगा ।१५-१६½। वास्तु की शान्ति के लिये जो यज्ञ होगा वह भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा । यज्ञोत्सव के प्रारम्भ में दी हुई बलि भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगी । वास्तु पूजा के न करनेवाले तुम्हारे आहार होंगे । अज्ञान से किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा ।' ब्रह्मादि देवताओं के ऐसा कहने पर वह वास्तु नामक प्राणी परम सन्तुष्ट एवं हर्षित हुआ । तभी से लोक में शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ का प्रचलन हुआ है ।१७-१९।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु प्रादुर्भाव नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५२॥

+एतदर्धं नास्ति घ. ङ. च. पुस्तकेषु ।

---

[1] घ. ङ. च. °वाऽभवत्पु° । [2] घ. कृतम् । स्था° । [3] क. ख. °मस्मिन्भवि° ।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि गृहकार्यविनिर्णयम् । यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ॥१
चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः । वैशाखे[1] धेनुरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च ॥२
आषाढ़े[2] भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् । श्रावणे भृत्यलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥३
पत्नीनाशश्चाऽऽश्वयुजे[3] कार्तिके धनधान्यकम् । मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥४
लाभं च बहुशो विन्द्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत् । फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ॥५
अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् । स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥६
आदित्यभौमवर्जं[4] तु सर्वे वाराः शुभावहाः । वर्जं(र्ज्यै) व्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः ॥७
विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु (न) कारयेत् । स्वातौ[5] मैत्रेऽथ माहेन्द्रे[6] गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ॥८

अध्याय २५३

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं उस गृहनिर्माण के समय का निर्णय करने चल रहा हूं, जिस शुभ समय को जानकर लोगों को सर्वदा भवन का आरम्भ करना चाहिये। जो मनुष्य चैत्र के महीने में घर का बनवाना आरम्भ करता है वह व्याधिग्रस्त होता है। वैशाख में प्रारम्भ करनेवाले को धेनु एवं रत्न प्राप्त होते हैं, ज्येष्ठ में मृत्यु होती है।१-२। आषाढ़ में नौकर, चाकर एवं रत्नादि की प्राप्ति तथा पशु आदि की समृद्धि होती है। श्रावण में नौकरों की प्राप्ति तथा भाद्रपद में हानि मिलती है। आश्विन के महीने में गृहनिर्माण करानेवाले की पत्नी का नाश होता है, कार्तिक में धन धान्यादि की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष मास में अन्न की प्राप्ति तथा पूस में चोरों से भय होता है। माघ मास में अनेक प्रकार के लाभ होते हुए भी अग्नि का भय रहता है और फाल्गुन में सुवर्ण तथा अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है—यह समय के बल का विवरण है। -५। गृहारम्भ में अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती हस्त और अनुराधा—ये नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं। रविवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष दिन भी मंगलकारी हैं। इस गृहारम्भ के कार्य में व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कम्भ गण्ड, परिघ, एवं वज्र—इन योगों को भरसक वर्जित रखना चाहिये।६-७½। स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, गान्धर्व, अभिजित्, रोहिणी, वैराज और

---

१ ङ. च °खे धनर°। २ ङ. °ढे भूतिर°। ३ क. ख. °नाशोऽश्विने विद्यात्कात°। ४ क. ख. °वर्ज्यास्तु स°। ५ क. ख श्वेते। ६ ङ. च. °न्द्रे गन्धर्वे भगरोहिणी। राजन्सावि°।

तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् । चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं [1]निरीक्षयेत् ॥९
स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत् । प्रासादेष्वेवमेवं स्यात्कूपवापीषु चैव हि ॥१०
पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् । श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैवानुपूर्वशः ॥११
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम् । विप्राणां मधुरास्वादा [2]कटुका क्षत्रियस्य तु[3] ॥१२
तिक्ता कषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते । अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ॥१३
घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् । ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम् ॥१४
[4]दीप्तौ पूर्वादि गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः । वास्तुः सामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः ॥१५
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च । रत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्यं खातपूरणे ॥१६
अधिके[5] श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम् । फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥१७

सावित्र—इन मुहूर्तों में गृहारम्भ करना चाहिये । चन्द्रमा तथा सूर्य—इनके बलवान् होने के साथ ही साथ शुभ लग्न का निरीक्षण भी करना चाहिये । सर्वप्रथम अन्यान्य कार्यों को छोड़कर स्तंभारोपण करना चाहिये और यही विधि प्रासाद कूप एवं बावलियों के लिए भी मानी गई है ।८-१०। पहिले भूमि की परीक्षा कर पश्चात् वास्तु की कल्पना करनी चाहिये । श्वेत वर्ण, लालवर्ण, पीले वर्ण एवं काले वर्ण—इन चार वर्णों की पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों जातियों के लोगों के लिए प्रशंसित मानी गई है । इसके देख लेने के बाद फिर परीक्षण करना चाहिये । ब्राह्मणों के लिए मधुर स्वादवाली, क्षत्रिय के लिए कड़वे स्वादवाली, वैश्य के लिए तिक्त स्वादवाली तथा शूद्रों के लिये कसैले स्वादवाली पृथ्वी की प्रशंसा की गई है ।११-१२½। इस प्रकार भूमि की परीक्षा हो जाने के बाद एक हाथ विस्तृत एक गड्ढा खोदकर, उसे चारों ओर से भली भांति लीप पोतकर स्वच्छ कर दे । अनन्तर एक कच्चे पुरवे में घी रखकर चार बत्तियाँ उसमें जलाकर रखे, जो चारों दिशाओं की ओर हों ।१३-१४। यदि पूर्व दिशा की बत्ती अधिक काल तक जलती रहे तो ब्राह्मण के लिए उसका फल शुभावह होता है, इसी प्रकार क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए कल्याणकारक समझना चाहिये । यदि सामूहिक रूप से वह वास्तु दीपक चारों ओर बराबर समय तक प्रज्वलित रहते हैं तो प्रसाद एवं साधारण गृह—दोनों के निर्माण के लिए वहाँ की भूमि चारो वर्णों के लिए शुभावह है । एक हाथ गहरे गड्ढे का निर्माण कर उसे उसकी मिट्टी से पूर्ण कर दे और इस प्रकार पृथ्वी की परीक्षा करे ।१५-१६। यदि मिट्टी अधिक मात्रा में शेष रह जाती है तो श्री की प्राप्ति होती है, न्यून हो जाने से हानि होती है तथा सम रहने से न तो हानि ही होती है और न लाभ ही होता है । अथवा हल द्वारा जुतवाई गई पृथ्वी में सभी प्रकार के बीजों को भूमि परीक्षा के लिए बो दे । यदि वे बीज तीन पाँच तथा सात दिनों में उग आते हैं तो उनके फल इस प्रकार घटित होते हैं, तीन रात में जिस भूमि में बीज उग आते

---

[1] ङ. च. °रीक्ष्य च । स्त° । [2] घ. ङ. च. कषाया । [3] घ. ङ. च. तु । कषाय कटुका तद्वद्वैश्य° । [4] च. दीप्ता । [5] ङ. च. °के सुखमा° ।

त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्राऽऽरोहन्ति ताम्यपि । ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा ॥१८
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत् । एकादशीतिपदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च ॥१९
पश्चात्पिष्टेन चाऽऽलिख्य[1] सूत्रेणाऽऽलोड्य सर्वतः । दश पूर्वायता लेखा दश चैवोत्तरायताः ॥२०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव । *एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ॥२१
पदस्थान्पूजयेद्देवांस्त्रिशत्पञ्चदशैव तु । द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश ॥२२
नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत । ईशानकोणादिषु तान्पूजयेद्धविषा नरः ॥२३
शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः । सूर्यः सत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥२४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ॥२५
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः । असुरः शोषपापौ[2] च रोगोऽहिमुख्य एव च ॥२६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा । बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु ॥२७
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान्पूजयेद्बुधः । आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥२८

हैं वह भूमि उत्तमा है, पाँच रातवाली मध्यमा तथा सात रातवाली कनिष्ठा है। कनिष्ठा भूमि को इन कार्यों में सर्वदा वर्जित रखना चाहिये ।१७-१८। पञ्चगव्य एवं ओषधियों द्वारा भली भाँति परीक्षा करने के उपरान्त भूमि को सींच दे और सुवर्ण द्वारा रेखा बनाकर इक्यासी पद का चिह्न निर्मित करे। उसके बाद सभी स्थान को चारों ओर से सूत्र द्वारा जो चूर्ण से रंगा हुआ हो चिह्नित कर दस रेखाएँ पूर्व-पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तर-दक्षिण की ओर खींचे ।१९-२०। सभी प्रकार के वास्तु विभागों में ये नव-नव (९ × ९) अर्थात् इक्यासी पद का वास्तु जानना चाहिये। वास्तु शास्त्र का विज्ञाता सभी प्रकार के वास्तु संबन्धी कार्यों में इसका उपयोग करे। फिर पदस्थ पैंतालीस देवताओं की पूजा करे। उनमें बत्तीस तो बाहर से तथा तेरह भीतर की ओर से पूजने चाहिये ।२१-२२। उनका नाम बतला रहा हूँ तथा उनके स्थानों को भी मुझसे सीख लीजिए। भक्त मनुष्य उन देवताओं की पूजा ईशान आदि कोणों में हवि द्वारा करे। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत, दोनों यम, गन्धर्व, मृगराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, अघदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति और दिति, इन बत्तीस देवताओं की बाहरी ओर से पूजा करनी चाहिये ।२३-२७। तदनन्तर ईशान आदि चारों कोणों में अवस्थित इन देवताओं की बुद्धिमान् पुरुष पूजा करे। आप, सावित्र जय तथा रुद्र, ये चार चारों ओर

---

* इत आरभ्य निबोधत इत्यन्तग्रन्थो न घ. पुस्तके ।

---

[1] क, ख. °लिख्य सू° । [2] ङ. च. °षणश्चैव रोगोऽहिर्मुख्य ।

मध्ये नवपदे[1] ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान्[2] । साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतः शृणु ॥२९
अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्[3] ॥३०
अष्टमश्चाऽऽपवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः । आपश्चैवाऽऽपवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा ॥३१
पदिकानां[4] तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः । तन्मध्ये तु बहिर्विंशद्द्विपदास्ते तु सर्वशः ॥३२
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा । ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ॥३३
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक्पृथक् । +वायुं यावत्तथा रोगात्पितृभ्यः शिखिनं पुनः[5] ॥३४
मुख्याद्भृशं तथा[6] शेषाद्वितथं यावदेव तु । सुग्रीवाददितिं [7]यावन्मृगात्पर्जन्यमेव च ॥३५
एते वंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु । एतेषां यस्तु संपातः पदं मध्यं समं तथा ॥३६
मर्म चैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणगं च यत् । स्तम्भं न्यासेषु वर्ज्यानि तुलाविधिषु सर्वदा ॥३७

से तथा मध्य में ९वे स्थान पर ब्रह्मा तथा उनके समीप में अवस्थित अन्य आठ देवताओं की भी पूजा करनी चाहिये—ये ही मिलकर मध्य के तेरह देवता होते हैं । ब्रह्मा के चारों ओर अवस्थित वे आठ देवता जो क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में दो-दो के क्रम से रहते हैं, साध्य देवगण के नाम से विख्यात हैं, ऐसा जानना चाहिये ।२८-२९। उनके नाम इस प्रकार है, सुनिये—अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर—ये सात तथा आठवें आपवत्स । ये आठ देवता ब्रह्मा के चारो ओर अवस्थित माने गये हैं । आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि, तथा दिति ये पाँच देवताओं के वर्ग हैं, जिनकी पूजा अग्निकोण में करनी चाहिये । उनके बाहर बीस देवता हैं, वे सभी तीन पदों में रहते हैं । अर्यमा, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर ये चार ब्रह्मा के चारों ओर रहनेवाले देवता हैं जो सभी तीन तीन पदो मे अवस्थित रहते हैं ।३०-३३। अब मैं उन्हीं देवताओं के वंशो को जो सरल (?) हैं, पृथक् पुयक् बतला रहा हूँ । वायु से लेकर रोग पर्यन्त, पितृगण से शिखी पर्यन्त, मुख्य से भृश पर्यन्त, शेष से वितथ पर्यन्त, सुग्रीव से अदिति पर्यन्त, तथा मृग से पर्जन्य पर्यन्त—यही वंश कहे जाते हैं ।३४-३५। कहीं-कहीं मृग से लेकर जय पर्यन्त वंश कहा जाता है । पद के मध्य में इनका जो संपात है वह पद, मध्य तथा सम नाम से भी प्रसिद्ध है एवं त्रिशूल ओर कोणगामी जो हैं वे मर्मस्थल कहे जाते हैं । सर्वदा स्तम्भन्यास एवं तुलादि विधि में इन सब को बचाना चाहिये ।३६-३७। मनुष्य को यत्नपूर्वक

+एतदर्धं न ङ. च. पुस्तकयोः ।

---

[1] घ. ङ. च. °पदो ब्र° । [2] घ. ङ. च. °पगाः । सव्ये नैकान्तराविष्टा न्पूर्वां । [3] क. ख. स्मृतः । [4] ङ. पञ्चका° । च. पदका° । [5] घ. °नः सुखाद्भृ° । [6] ङ. च. °था विद्वान्द्वितीयं या° । क. ख. था शोषा । [7] ङ. °वद्भृङ्गो यज्वन्तमे° ।

कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद्यत्नतो जनः । सर्वत्र वास्तुर्निर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः ॥३८
मूर्धन्यग्निः समादिष्टो मुखे चापः समाश्रितः । पृथ्वीधरोऽर्यमा चैव[1] स्कन्धयोस्तावधिष्ठितौ ॥३९
वक्षःस्थले चाऽऽपवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः । नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोतेऽदितिजयन्तकौ ॥४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः । सूर्यसोमादयस्तद्वद्बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ॥४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ । सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ ॥४२
विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ । पूषा पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ॥४३
तथैवासुरशेषौ[2] च वामपार्श्वं समाश्रितौ । पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वद्वितथः सगृहक्षतः ॥४४
ऊर्वोर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ । [3]जङ्घयोर्भृङ्गसुग्रीवौ स्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः ॥५४
जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा । [4]मध्ये नवपदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥४६
*चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः । +ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र [5]कोणेष्वर्धपदास्तथा ॥४७

देवता के पदों पर कीलें गाड़ना उच्छिष्ट भोजनादि छोड़ना तथा चोटें पहुँचाना ऐसे कार्यों को वर्जित रखना चाहिये। यह वास्तु का चक्र सभी स्थलों में पितृवर्ग एवं वैश्वानर के अधीन माना गया है। उसके मुख में अग्नि का निवास माना गया है, मुख में ही जल का निवास भी है, दोनों स्कन्धों पर पृथ्वीधर तथा अर्यमा का निवास है।३८-३९। उसके वक्षःस्थल पर आपवत्स की बुद्धिमानों को पूजा करनी चाहिये। दोनों नेत्रों में दिति और पर्जन्य तथा दोनों कानों में अदिति और जयन्तक तथा दोनों कन्धों पर अवस्थित सर्प और इन्द्र की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार दोनों बाहुओं में सूर्य और चन्द्रमा से लेकर पाँच पाँच देवता अवस्थित हैं।४०-४१। रुद्र और राजयक्ष्मा—ये दोनों देवता बाएं हाथ पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सावित्र और सविता दाहिने हाथ पर स्थित रहते हैं। विवस्वान् और मित्र ये दो उदर में तथा पूषा और पापयक्ष्मा ये दोनों हाथों के मणिबन्धों पर अवस्थित हैं। उसी प्रकार असुर और शेष ये दो बाएँ पार्श्व में अवस्थित हैं। दाहिने पार्श्व में वितथ और ग्रहक्षत हैं।४२-४४। दोनों उरु भागों में यम और जलाधिप, घुटनों में गन्धर्व और पुष्पक को जानना चाहिये, जंघों में भृङ्ग और सुग्रीव तथा दोनों नितंबों पर दौवारिक और मृग हैं। लिंग स्थान पर जय तथा शक्र और दोनो पैरों पर पितृगण अवस्थित हैं, मध्य के नौ पदो में ब्रह्मा हैं जिनकी पूजा वास्तु के हृदय में करनी चाहिये।४५-४६। ब्रह्मा से प्रासाद के निर्माण में चौंसठ पदों वाले वास्तु के पूजने की विधि सुनी गई है, उसमें ब्रह्मा का निवास चार पदों में रहता है, कोणों में आधे पद में देवगण अवस्थित

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—चतुःषष्टिपदं वास्तु प्रासादे ब्रह्मणः स्मृतम्। इति। + इत आरभ्य स्मृता इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ङ. च. पुस्तकयोः।

---

१ क. ख. °व स्तनयो° ! २ क. ख. °रशोषौ। ३ क. ङ. भृंगुसु°। ४ ङ. °ध्ये तु वरदो ब्र°।
५ च. °णेष्वे कपदस्त°।

बहिष्कोणेषु[1] वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः । विंशतिद्विपदाश्चैव चतुः षष्टिपदे स्मृताः ॥४८
गृहरम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते । शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥४९
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम् । हीनाधिकाङ्गतां वास्तोः सर्वथा तु विवर्जयेत् ॥५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं [2]विवर्जयेत् । चतुःशालं त्रिशालं च द्विशालं चैकशालकम् ॥
नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः ॥५१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे एकाशीतिपदवास्तुनिर्णयो नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥ १२७६२ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपान्नामतस्तथा[3] । चतुःशालं चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ॥१

रहते हैं, वास्तु के बाहरवाले कोणों में डेढ़ पद में देबताओं का निवास रहता है, तथा बीस देवता दो पदों में निवास करते हैं, यह चौसठ पदवाले वास्तु के निर्माण की विधि सुनी गई है ।४-७४८। गृहारंभ के अवसर पर गृहपति के जिस अंग में खुजली उठे वास्तु के उसी अंग के स्थान पर गड़ी हुई शल्य अथवा कील आदि को निकाल देना चाहिये । ऐसी विधि प्रासाद एवं गृह दोनों के निर्माण के समय की है । क्योंकि शल्य समेत वास्तु की पूजा भयदायिनी मानी गई है और अशल्य वास्तु की पूजा कल्याणकारिणी है ।४९½। वास्तु निर्माण में अधिक अंग एवं हीन अंग न होने पावें इनको सर्वथा वर्जित रखना चाहिये । नगर, ग्राम एवं देश सभी स्थलों पर इनका वर्जन करना चाहिये । हे ऋषिगण ! अब मैं चतुशाल त्रिशाल, द्विशाल तथा एक शाल वाले भवनों के निर्माण की विधि, नाम तथा स्वरूप का संकेत करते हुए, बतला रहा हूँ, सुनिये ।५०-५१।

श्री मात्स्य महापुराण में इक्यासी पद निर्णय नामक दो सौ तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥२५३॥

अध्याय २५४

सूत ने कहा—अब मैं चारशाला वाले भवनों को, उनके स्वरूप एवं नाम का संकेत करते हुए बतला रहा हूँ । वह चतुःशाल भवन चारों ओर द्वार तथा चौखटों समेत यदि हो, और चारों ओर से एक

---

[1] घ. °षु चाष्टौ तु । [2] ङ. च. प्रकल्पये । [3] क. रूपं नाम° ।

नाम्ना तत्सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये। पश्चिमद्वारहीनं च नान्द्यावर्तं प्रचक्षते ॥२
दक्षिणद्वारहीनं तु वर्धमानमुदाहृतम्। पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ॥३
रुचकं चोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते। सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं [1]धान्यकं च तत् ॥४
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम्। शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ॥५
धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोहविनाशनम्। शालया याम्यया हीनं यद्विशालं तु शालया ॥६
कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिभयावहम्। हीनं पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः ॥७
मित्रबन्धुसुतान्हन्ति[2] तथासर्वभयावहम्। याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम् ॥८
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्। यम सूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्[3] ॥९
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यम्। उदक्पूर्वे तु शाले द्वे दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ॥१०
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्। [4]धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद्विशालकम् ॥११

ही प्रकार से बना हुआ हो तो वह सर्वतोभद्र नामक चतुःशाल है, ऐसा चतुःशाल भवन देवताओं तथा राजा के निवास के लिए मंगलकारक कहा गया है।१½। जिस चतुःशाल भवन में पश्चिम दिशा में द्वार न हो वह नन्द्यावर्त नामक कहा जाता है, दक्षिण दिशा में जिसमें द्वार न हो, वह वर्धमान कहा जाता है, पूर्व दिशा में जिसमें द्वार न हो वह स्वस्तिक कहा जाता है। उत्तर दिशा में जिसमें द्वार न हो वह रुचक नामक चतुःशाल है।२-३½। तीन शाला वाले भवन में यदि उत्तर दिशा की शाला न बनी हो तो उसे धान्यक कहते हैं, ऐसा भवन सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए कल्याण एवं वृद्धि करनेवाला तथा अनेक पुत्रादि का देनेवाला कहा गया है।४½। पूर्व दिशा की शाला जिस त्रिशाल भवन में न हो उसे सुक्षेत्र कहते हैं, ऐसा त्रिशाल भवन धन, यश, दीर्घायु का देनेवाला तथा शोक एवं मोह का विनाशक कहा गया है। दक्षिण दिशा की शाल से विहीन जो त्रिशाल भवन होता है उसे विशाल कहते हैं, ऐसा भवन मनुष्यों के कुल का क्षय करनेवाला तथा सभी प्रकार की व्याधि एवं भयों को देनेवाला कहा गया है।५-६½। इसी प्रकार पश्चिम दिशा की शाला से हीन जो भवन होता है उसका नाम दक्षघ्न कहा गया है, वह मित्र, बन्धु एवं पुत्रों का विनाश करता है तथा सभी प्रकार के भय को उत्पन्न करनेवाला है। जिस भवन में दक्षिण पश्चिम—इन्हीं दो दिशाओं की शाला बनी हो वह धन धान्यादि का देनेवाल कहा गया है, ऐसा भवन सर्वसाधारण के लिए कल्याण एवं वृद्धि का देनेवाला है तथा पुत्रप्रद कहा गया है।७-८½। पश्चिम और उत्तर की दिशाओं में जिस भवन में शाला बनी हुई हो वह यमसूर्य नाम से विख्यात हैं जिसका फल सर्वसाधारण के लिए राजा एवं अग्नि से भय पहुँचाने वाला तथा कुल को क्षय करनेवाला कहा गया है। पूर्व और उत्तर की शाला से युक्त भवन को दण्डशाला कहते हैं जो अकाल मृत्यु का भय देनेवाला तथा शत्रुपक्ष से हानि पहुँचानेवाला कहा गया है।९-१०½। जो पूर्व तथा दक्षिण की शालाओं से युक्त विशाल भवन उसे धानक्य

---

[1] क. ख. धन्यकं। [2] घ. °न्ति यथा सर्वभ°। [3] क. ख. शालिक°। [4] घ. धावक्ष्यं। ङ. च. धेनाख्यं।

तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम् । चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी ॥१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्[1] । कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम् ॥१३
[2]सिद्धार्थवज्रवर्ज्यानि विशालानि सदा बुधैः । अथातः संप्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः ॥१४
पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमुत्तमादिविभेदतः । अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारश्चोत्तमो मतः ॥१५
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाटिष्टभिः करैः । चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ॥१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् । षड्भिः षड्भिस्तथाशीतिर्हीयते तत्र विस्तरात् ॥१७
त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते । सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥१८
चतुः षष्टिस्तु विस्तारात्षड्भिः षड्भिस्तु[3] हीयते । पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत् ॥
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् । चतुश्चतुर्भिर्हीना स्यात्करषष्टिः प्रविस्तरे ॥२०
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते । सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२१

कहते हैं, वह सर्वसाधारण को शस्त्र से भय पहुँचानेवाला तथा शत्रु से पराजित करानेवाला कहा गया है। भवन में पूर्व तथा पश्चिम की ओर बनी हुई चुल्ली (चूल्हा) गृहपति के मृत्यु की सूचना देनेवाली है। उसे स्त्रियों को विधवा करनेवाली तथा अनेक प्रकार का भय पहुँचानेवाली कहा गया है। उत्तर एवं दक्षिण की शालाओं से युक्त भवन को सर्वसाधारण को भय पहुँचानेवाला कहा गया है, अतः ऐसे भवन को नहीं बनवाना चाहिये। सिद्धार्थ (?) एवं वज्र (?) से वर्जित एवं शाला से रहित भवनों को बुद्धिमानों को कभी नहीं बनवाना चाहिये।११·१३½। अब इसके उपरान्त मैं पृथ्वीपति (राजा) के भवन के विषय में आपको बतला रहा हूँ। राजा के भवन पाँच प्रकार के उत्तम आदि नामों से कहे गये हैं। एक सौ आठ हाथ की चौड़ाई वाले भवन को उत्तम माना गया है।, अन्य चार भवनों में चौड़ाई क्रमशः आठ-आठ हाथ कम हो जाती है, इन पाँचो भवनों में चौड़ाई से सवाया अधिक लम्बाई कही गई है। युवराज के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ, उसमें सबसे उत्तम भवन की चौड़ाई अस्सो हाथ की होती है, अन्य चार की चौड़ाई क्रमशः छः छः हाथ कम होती जाती है।१४-१७। इन पाँचों भवनों की चौड़ाई से तिहाई अधिक लम्बाई कही गई है। सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ। उसके सबसे उत्तम भवन की चौड़ई चौंसठ हाथ की मानी गई है, अन्य चार भवनों की चौड़ाई छः छः हाथ कम हो जाती है पाँचों की लम्बाई चौड़ाई से छठें भाग जितनी अधिक होनी चाहिये। अब मन्त्रियों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ, उनमें सबसे उत्तम भवन साठ हाथ का तथा अन्य चार इससे चार चार हाथ कम चौड़े होते हैं।१८-२०। इन पाँचों की चौड़ाई से आठवें भाग जितनी अधिक लम्बाई कही गई है। अब सामन्त एवं अमात्य लोगों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ। इनमें सर्वोत्तम भवन की चौड़ाई अड़तालीस हाथ की कही गई

---

[1] च. °यदायक° । [2] घ. °वर्यं वर्ज्यानि द्विशा° । [3] घ. °ङ्भिः प्रही° ।

चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् । चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं *पञ्चस्वेतेषु शस्यते ॥२२
शिल्पिनां [1]कञ्चुकीनां च वेश्यानां गृहपञ्चकम् । अष्टाविंशत्कराणां तु विहीनं विस्तरे क्रमात् ॥
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव[2] तत् । दूतीकर्मांतकादीनां[3] वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२४
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु । [4]अर्धार्धकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात् ॥२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम् । तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥२६
चत्वारिंशत्तु विस्ताराच्चतुर्भिर्हीयते क्रमात् । पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत् ॥२६
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् । द्वात्रिंशतः कराणां तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ॥२७
आषोडशादिति परं नूनमन्त्यादसायिनाम् । दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेना(णा) थ [5]पादिकम् ॥२९

है. अन्य चारों की चौड़ाई उससे चार चार हाथ कम कही गई है, इन पांचों भवनों की लम्बाई चौड़ई की अपेक्षा सवाई अधिक कही गई है ।२१-२२। शिल्पकार, कञ्चुकी एवं वेश्याओं के पांच प्रकार के भवनों को सनिये, इन सभी लोगों के भवनों की चौड़ाई अट्ठाइस हाथ की कही गई है. चौडाई में दो-दो हाथ की न्यूनता अन्य चार भवनों में हो जाती है। चौड़ाई की अपेक्षा इन भवनों की लम्बाई द्गुनी कही गई है। मध्यम भवनों के लिए भी यही नियम हैं । दूती एवं कर्मचारियों तथा परिवार के अन्य लोगों के पांच प्रकार के भवनों को अब बतला रहा हूँ ।२३-२४। उनकी चौड़ाई बारह हाथ की तथा लम्बाई उसकी सवाई होती है। शेष चार गहों की चौडाई क्रम से आधे-आधे हाथ न्यून होती जाती है। ज्योतिषी, गुरु. वैद्य, सभापति और परोहित—इन सबों के भी पांच प्रकार के भवनों का वर्णन कर रहा हूँ। उनके उत्तम भवन की चौड़ाई चालीस हाथ की होती है शेष की चौडाई क्रम चार-चार हाथ कम होती जाती है । इन पांचो भवनों की लम्बाई चौडाई से छठें भाग जितनी अधिक होती है ।२५-२७। अब साधारणतया चारों वर्णों के लिए पांच प्रकार के गहों का वर्णन कर रहा हँ। उनमें से ब्राह्मण के घर की चौड़ाई बत्तीस हाथ की होनी चाहिये, अन्य जातियों के लिए क्रमशः चार-चार हाथ की कमी होनी चाहिये, अर्थात् ब्राह्मण के उत्तम गृह की चौड़ाई बत्तीस हाथ की हो. मध्यमादि के लिए चार-चार हाथ कम चौड़ाई हो। क्षत्रिय के उत्तम गृह की २८ हाथ चौड़ाई हो। मध्यमादि की चार-चार हाथ कम हो, इसी प्रकार वैश्य के घर की २० हाथ चौड़ाई हो तथा शूद्र के घर की १६ हाथ चौड़ाई हो । किन्तु सोलह हाथ से कम चौड़ाई अन्त्यजों के लिए है, इन उपर्युक्त चारों जातियों के लिए नहीं। लम्बाई के लिए ब्राह्मण के गृह की चौड़ाई से लम्बाई दसवें भाग जितनी अधिक, क्षत्रिय की आठवें भाग, वैश्य के तीसरे भाग एवं शूद्र के चौथाई भाग जितनी अधिक होनी

---

*इत आरभ्य चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यमित्यन्तग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति !

१ ङ. च. पञ्चकानां च । २ ङ. °ध्यमाष्टकमेव तु । भृत्यक° । च. °ध्यमाष्टकमेव तु । द्यूतक° ।
३ क. ख. °र्मान्तिका° । ४ घ. अध्यर्ध° । ५ घ. पट्टिकम् ।

अधिकं [1]दैर्घ्यमित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते । सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु ॥३०
नृपवासगृहं कार्यं भाण्डागारं तथैव च । सेनापतेर्गृहस्यापि [2]चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ॥
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ॥३१
[3]अन्तरप्रभवाणां च स्वपितुर्गृहमिष्यते । तथा हस्तशतादर्धं[4] गदितं वनवासिनाम् ॥३२
सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्या सहितेऽन्विते[5] । चतुर्दशहृते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः ॥३३
पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः । तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता ॥३४
विप्रस्यमहती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत् । दशाङ्गुलाधिका तद्वत्क्षत्रियस्य[6] विधीयते ॥३५
पञ्चत्रिंशत्करा वैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश । [7]तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः ॥३६
शालायास्तु [8]त्रिभागेन(ण) यस्याग्रे वीथिका भवेत् । सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ॥
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भं तदुच्यते । समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ॥३८
शुभदं सर्वमेतस्याच्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम् । विस्तारात्षोडशो भागस्तथा हस्तचतुष्टयम् ॥३९

चाहिये । ऐसी विधि ब्राह्मणादि के गृहों के लिए है ।२८-२९। सेनापति तथा राजा के अन्यान्य गृहों के भीतर राजा के रहने का गृह बनना चाहिये, उसी स्थान पर भाण्डागार भी रहना चाहिये । सेनापति के तथा चारों ब्राह्मणादि वर्णों के ग्रहों के मध्य भाग में सर्वदा राजा के पूज्य लोगों के निवासार्थ गृह बनवाना चाहिये । अन्तरजातिवालों (?) के लिए उनके पिता का घर मिलना चाहिये वनवासियों के लिए पचास हाथ का गृह बनाना चाहिये ।३०-३२। सेनापति और राजा के गृह के परिमाण में सत्तर का योग करने से चौदह का भाग देने पर व्यास में शाला का न्यास कहा गया है । उसमें पैंतीस हाथ पर बरामदे का स्थान कहा गया है. छत्तीस हाथ सात अंगुल लम्बी ब्राह्मण की बड़ी शाला होनी चाहिए, इससे बड़ी नहीं होनी चाहिये । उसी प्रकार दस अंगुल अधिक क्षत्रिय की शाला होनी चाहिये ।३३-३५। वैश्य के लिए पैंतीस हाथ तेरह अंगुल लम्वी शाला होनीं चाहिए । उतने ही हाथ तथा पन्द्रह अंगुल शूद्र की शाला का परिमाण है । शाला की लम्बाई में तीन भाग करके यदि सामने की ओर गली बनी हो तो, वह सोष्णीष नामक वास्तु है । पीछे की ओर हो तो श्रेयोच्छ्रय नाम पड़ता है, दोनों पार्श्वों में यदि वीथिका हो तो वह सावष्टम्भ, तथा चारों ओर वीथिका हो तो सुस्थित नामक वास्तु कहा जाती है ।३६-३८। ये चारों प्रकार की बीथियाँ चारों वर्णों के लिये शुभदायी है । शाला के विस्तार का सोलहवाँ भाग तथा चार हाथ और, यह पहले खण्ड की ऊँचाई

---

[1] च. °र्घ्यव्यामिश्रं ब्राह्म° । [2] ङ. °स्य चोत्तरम् । वासकोशगृ° । [3] ङ. अथान्तरप्रभावानां गृह° । [4] ङ. °शतं शाला गदिता तन्तुशायिमा° । [5] ङ. °हिताः स्मृताः । च° । [6] क. ख. °स्य न विद्यते । [7] ङ. °रैश्च शू° । [8] घ. ङ. च. विभागेन ।

प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीयते । द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ॥४०
पक्वेष्टका भवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात् । दारवैरपि कल्प्या स्यात्तथा मृन्मयभित्तिका ॥४१
गर्भमानेन मानं तु सर्ववास्तुषु शस्यते । गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥४२
संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयो भवेत् । द्वाशाखासु बाहुल्यमुच्छ्रायकरसंमितैः ॥४३
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यते बुधैः । उदुम्बरोत्तमाङ्गं च तदार्धार्धप्रविस्तरात् ॥४४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु गृहमाननिर्णयो नाम
चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५४॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२८०६॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम् । कृत्वा स्वभवनोच्छ्रायं सदा सप्तगुणं बुधैः ॥१

का मान है, अधिक ऊँचा करने से हानि होती है ।३९३। इसके बाद अन्य सभी खण्डों की बारहवें भाग जितनी ऊँचाई सखनी चाहिये । यदि पक्की ईटों की भीत बन रही है तो गृह की चौड़ाई के सोलहवें भाग जितनी मोटाई होनी चाहिये । वह भीत लकड़ी तथा मिट्टी से भी बनाई जा सकती है सभी वस्तुओं में भीतर के मान से लम्बाई चौड़ाई का मान रखना चाहिये । गृह के मान से पचास अंगुल विस्तार और अठारह अंगुल वेध से युक्त द्वार की चौड़ाई रखनी चाहिये और उसकी ऊँचाई चौड़ाई से द्विगुणित होनी चाहिये । जितनो उँचाई द्वार की हो उतनी ही दरवाजे में लगी हुई शाभाओं (बाजुओं) की भी होनी चाहिये । ऊँचाई जितने हाथों की हो उतने ही अंगुल उन शाखाओं की मोटाई होनी चाहिए—ऐसा सभी वस्तुओं में विद्वानों ने बतलाया है । द्वार के ऊपर का उत्तमांग तथा नीचे का चौखट (देहली)—ये दोनों शाखाओं से आधे अधिक मोटे हो अर्थात इन्हें शाखाओं से ड्योढ़े मोटे होने चाहिये ।४०-४४।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु प्रकरण में गृह-मान निर्णय नाम दो सौ चौवनवां अध्याय समाप्त ।२५४॥

अध्याय २५५

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं स्तम्भ के मान के विषय में आप लोगों को बतला रहा हूं । बुद्धिमान्‌पुरुषों को चाहिये कि वे सर्वदा अपने गृह की ऊँचाई को सात से गुणित करके उसके अस्सीवें

अशीत्यंशः पृथुत्वे[1] स्यादग्रे[2] नवगुणे[3] सति । रुचकश्चतुरः स्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ।।२
द्विवज्रः षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः । मध्यप्रदेशे यः स्तम्भो[4] वृत्तो वृत्त इति स्मृतः ।।३
एते पञ्चमहास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु । पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ।।४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु । स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ।।५
त्रिभागेन(णे) ह सर्वत्र चतुर्भागेने (ण) वा पुनः । हीनं हीनं चतुर्थांशात्तथा सर्वासु भूमिषु ।।६
वासगेहानि सर्वेषां [5]प्रविशेद्दक्षिणेन तु । द्वारेण तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ।।७
पूर्वेणेन्द्रनं जयन्तं च द्वारं सर्वत्र शस्यते । याम्यं च वितथं चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ।।८
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणं च प्रशस्यते । उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं शुभदं भवेत् ।।९
तथा वास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत् । द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत्सर्वकुलक्षयः ।।१०
तरुणा द्वेषबाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते । अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ।।११

भाग जितनी खम्भे की मोटाई रखे, उसके मूलभाग में नवगुणित से अस्सीवें भाग जितनी मोटाई रखनी चाहिये। चार कोणवाला स्तम्भ रुचक नाम से विख्यात है, आठ कोनेवाले को वज्र कहते हैं, सोलह कोणवाला द्विवज्र के नाम से विख्यात है तथा बत्तीस कोणोवाला प्रालीनक कहा जाता है।१-२½। मध्य प्रदेश में जो वृत्ताकार (गोला) स्तम्भ रहता है उसे वृत्त नाम से पुकारते हैं। ये पाँच प्रकार के महास्तम्भ सभी प्रकार के वास्तु प्रयोगों में प्रशंसनीय है। ये सभी स्तम्भ पद्म, लता, वल्ली, कुम्भ, पत्र एवं दर्पणादि से चित्रित रहने चाहिये। इन पद्म तथा कुम्भों मे स्तम्भ के नवें अंश जितना अन्तर रहना चाहिये। स्तम्भ के बराबर ऊंचाई को तुला तथा न्यून ऊँचाई वाली को उपतुला कहते हैं।३-५। तृतीय अथवा चतुर्थ अंश से हीन जो तुला रहती हैं वह उपतुला कहाती हैं। सभी भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन उपतुला रहती है। सभी के निवास गृहों में दक्षिण (दाहिनी ओर) ओर से प्रवेश करना चाहिये। अब गृह के उन द्वारों को जैसे बताया गया है बतला रहा हूँ। पूर्व दिशा से इन्द्र और जयन्त नामक देवताओं के पदों पर बना हुआ द्वार सभी गृहों में प्रशंसित माने गये हैं।६-७। बुद्धिमान् लोग दक्षिण दिशा में याम्य और वितथ नाम देवताओं के पदों पर द्वार को जानते हैं, पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त और वरुण के स्थानों पर द्वार प्रशंसित हैं और उत्तर में भल्लाट तथ सौम्य इन दोनों पर शुभदायक द्वार होते हैं। सभी वस्तुओं में द्वार के वेध को वर्जित रखना चाहिये। गली, सड़क या मार्ग द्वारा द्वार के वेध होने पर सभी कुल का क्षय होता है।८-१०। वृक्ष द्वारा वेध होने पर द्वेष की अधिकता होती है, और कीचड़ से वेध होने पर शोक की प्राप्ति होती है। निश्चय है कि सर्वदा कूप द्वारा वेध होने पर गृहपति को मृगी का रोग होता है। नाबदान या जलप्रवाह से वेध होने पर व्यथा

---

[1] क. ख. घ. पृथुत्वं। [2] क. ख. °ग्रेणावगुणैः सह । रु°। [3] घ. °वग्रहैः स°। [4] घ. °म्भो महावृत्त°। [5] क. ख. ङ. प्रवेशे दक्षि°।

व्यथा प्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्निभयं भवेत् । विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतो भवेत् ॥१२
गृहभर्तुर्विनाशः स्याद्गृहेण च गृहे कृते । अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ॥१३
तथा शस्त्रभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु । उच्छ्रायाद्द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥१४
[1]स्वयमुद्घाटिते द्वार उन्मादो गृहवासिनाम् । स्वयं वा पिहिते विद्यात्कुलनाशं विचक्षणः ॥१५
मानाधिके राटभयं न्यूने तस्करतो भवेत् । द्वारोपरि च यद्द्वार तदन्तकमुखं स्मृतम् ॥१६
अध्वनो[2] मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः । वज्रं तु संकटं मध्ये सद्यो भर्तविनाशनम् ॥१७
तथाऽस्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत् । मूलद्वारात्तथाऽन्यत्तु नाधिकं शोभनं भवेत् ॥१८
*कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिर्मूलद्वारं तु शोभयेत् । पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिना चाक्षतोदकैः ॥१९
[[+भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः । उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ॥२०

होती है, तथा कील से वेध होने पर अग्नि भय होता है। देवता से विद्ध होने पर विनाश तथा स्तम्भ से वेध होने पर स्त्री द्वाराक्लेश-प्राप्ति होती है ।११-१२। एक घर से दूसरे घर में वेध पड़ने पर गृहपिता का का विनाश होता है । अपवित्र द्रव्यादि द्वारा वेध होने पर स्त्री बन्ध्या होती है, अन्त्यज के घर से वेध होने पर हथियार से भय होता है । गृह की ऊँचाई से दुगुनी भूमि के बाद यदि वेध पड़े तो उससे वेध का दोष नहीं होता । जिस घर के द्वार अपने आप खुल जाते हैं, उसके दुष्परिणाम से गृह वालों को उन्माद का रोग होता है, इसी प्रकार स्वयं बन्द होने जाने पर भी बुद्धिमान् लोग कुलनाश की सूचना बतलाते हैं ।१३-१५। गृह के द्वार यदि अपने मान से अधिक ऊँचे हैं तो राज भय तथा यदि नीचे हैं तो चोरों का भय जानना चाहिये । एक द्वार के ऊपर जो दूसरे द्वार पड़ते हैं, वे यमराज के मुख कहे जाते हैं । मार्ग के बीच में बने हुए जिस अति दुर्गम गृह की चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्र के समान है, और शीघ्र ही गृहपति के विनाश का कारण है । अन्य द्वारों से पीड़ित जो मुख्यद्वार होता है वह बहुत दोषों का करनेवाला है ।१६-१७½। इसी प्रकार मुख्यद्वार की अपेक्षा अन्य द्वारों को अधिक शोभित नहीं करना चाहिये । घड़े श्रीपर्णी लता एवं वल्लियों से मूलद्वार को अधिक शोभित नही करना चाहिये और उसकी नित्य बलि, अक्षत एवं जल से पूजा करनी चाहिये । गृह की पूर्व दिशा में बरगद वृक्ष सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कहा गया है । दक्षिण भाग में गूलर का पेड़ तथा पश्चिम में पीपल का पेड़ शुभ करनेवाला होता है ।१८-२०। इसी प्रकार उत्तर की दिशा में पाकड़ का पेड़ मंगलकारी होता है इससे विपरीत दिशा में वे

---

* इत आरभ्य विपरीतास्त्वसिद्धय इत्यन्तग्रन्थो ध. पुस्तके नास्ति । +धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके विद्यते ।

---

[1] क. च. °मुत्पाटि° । [2] घ. आत्मानं । ङ. च. अध्वाधं ।

प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये । कण्टकी क्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः ॥२१
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा । न च्छिन्द्याद्यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ॥२२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् । दाडिमीपिप्पलीद्राक्षास्तथा कुसुममण्डपान् ॥२३
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः ।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति ॥२४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु वेधपरिवर्जनं नाम
पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५५॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२८३०॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरं तथा । परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्यात्स्तम्भोच्छ्रायं विचक्षणः ॥१

विपरीत फलदेनेवाले होते हैं। घर के समीप यदि काटोंवाला, दूधवाला आसनादि का वृक्ष हो, जिनमें फल हों तो वे क्रम से स्त्री और सन्तान की हानि करनेवाले होते हैं, यदि कोई उन्हें नहीं काटता है, तो उसे चाहिये की उनके समीप में अन्य शुभदायक वृक्षों को भी लगा दें ।२१-२२। वे शुभ वृक्ष ये हैं—नागकेशर, अशोक, मौलसिरी, जांट, तिलकपुष्पी, चम्पा, अनार, पीपली, दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, नारियल, केला एवं पाटल। इन वृक्षों से संयुक्त गृह अति शुभकारी होता है ।२३-२४।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्या प्रसंग में वेध परिमार्जन नामक दो सो पचपनवां अध्याय समाप्त ॥२५५॥

अध्याय २५६

सूत ने कहा—बुद्धिमान् पुरुष सर्वप्रथम उत्तर की ओर झुकी हुई अथवा समान भाग वाली भूमि की भली भांति परीक्षा करके पूर्व कही गई रीति से स्तम्भ की ऊँचाई आदि का निर्माण करावे । बुद्धिमान्

न देवधूर्तसचिवचत्वराणां [१]समीपतः । कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ॥२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः । पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावतः प्रशस्यते ॥३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे [२]शीर्षकस्तथा । सर्वकामफलो नृणां संपूर्णो [३]नाम वामतः ॥४
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् । अथ सांवत्सरप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ॥५
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् । चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं[४] कारयित्वा सुपूजितम् ॥६
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः । स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ॥७
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालंकारसंयुतम् । ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥८
पायसं भोजयेद्विप्रान्होमं तु मधुसर्पिषा । वास्तोष्पते प्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥९
सूत्रपाते तथा कार्यमेवं स्तम्भोदये पुनः । द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ॥१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा । ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम् ॥११
प्रदक्षिणं च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम् । तर्जनी मध्यमा चैव तथाऽङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥१२
प्रवालरत्नकनकफलं[५] पिष्ट्वा कृतोदकम् । सर्ववास्तु विभागेषु शस्तं पदविलेखने[६] ॥१३

पुरुष को चाहिये कि वह अपना भवन देवालय, धूर्त, एवं सचिव के गृह के पास अथवा चौराहे के पास कभी न बनवाये क्योंकि उनके समीपस्थ होने से दुःख शोक एवं भय की प्राप्ति होती है।१-२। घर के चारों ओर प्रदेश होते हैं, उनमें अगला भाग·······? इस प्रकार के उत्तम प्रदेश को प्रयत्नपूर्वक देख भाल कर गृह निर्माण कराना चाहिये। सर्व प्रथम ज्योतिषी के कथनानुकूल शुभ मुहूर्त में सभी बीजों से युक्त शिला को रत्न के ऊपर रख कर चार ब्राह्मणों द्वारा सुपूजित स्तंभ का निर्माण करा कर वेदों का पारगामी विद्वान् कारीगरों को साथ ले श्वेत वस्त्र धारण कर सभी ओषधियों से युक्त स्नान कराये हुए उस स्तंभ का न्यास करे। विविध प्रकार के अक्षत से युक्त, वस्त्र एवं अलंकारों से सुशोभित उस स्तंभ को ब्राह्मणों की सुमधुर वेदध्वनि, विविध प्रकार के बाजन नृत्य एवं मंगल ध्वनि के साथ स्थापित करे।३-८। ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराये, मधु एवं घी से 'वास्तोष्पते प्रति जानीहि' इस मंत्र के द्वारा सर्वदा हवन करे। सूत्रपात करते समय एवं स्तंभ के उठाते समय भी यह सब विधान पुनः करना चाहिये, इसी प्रकार द्वार का चौखट बैठाते समय तथा गृह प्रवेश के समय भी यह समारोह करना चाहिये। वास्तु की शान्ति के समय भी यही विधान है। ये पाँच प्रकार के वास्तु यज्ञ कहे गये हैं। ईशान कोण में सूत्रपात होता है, आग्नेय कोण में स्तम्भ का आरोपण होता है, वास्तु की प्रदक्षिणा करके उनके पदों का चिह्न निर्मित किया जाता है।९-११½। दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा एवं अंगूठे से मूंगा, रत्न एवं सुवर्ण के चूर्ण से मिश्रित जल द्वारा सभी वास्तु के विभागों में उनके पद की रेखा की

---

[१] क. ख. समन्ततः । [२] ध. र्शणिक° । [३] ध. °मतः स्मृतः । [४] ध. °म्भ वस्त्रालंकारपू° ।
[५] ध. °नकं फलपुष्पाक्षतो° । [६] ध. °खनम् । न ।

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः । न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ॥१४
एभिर्विलिखितं कुर्याद्दुःखशोकभयादिकम् । यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥१५
स्तम्भसूत्रादिकं [1]तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् । आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः परुषं यदि ॥१६
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः । वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम् ॥१७
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत् । तदङ्गसंभवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः ॥१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वा गोमायुर्विलङ्घते । तत्तु शल्यं विजानीयात्खरशब्देऽतिभैरवे ॥१९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः । धनं तत्र विजानीयाद्भागे वा स्वाम्यधिष्ठिते ॥२०
सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे । अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च संभ्रमम् ॥२१
कम्बुशल्येषु जानीयात्पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्]] गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसंभ्रमे ॥२२
[2]स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत् । कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ॥२३

बनानी चाहिये, ऐसा विधान कहा गया है ।१२-१३। राख, अंगार, काष्ठ, नख, शस्त्र, चर्म, सींग, हड्डियाँ, कपाल—इन सब वस्तुओं से कभी भी वास्तु रेखाएँ नहीं खींचनी चाहिये । उनके द्वारा कहे जाने पर दुःख शोक भयादि की प्राप्ति होती है । जिस समय गृह प्रवेश होता रहे उस समय भी कारीगर गृह के सभी अंगों का निरीक्षण करता रहे । स्तम्भ एवं सूत्रादि के निर्माण के अवसर पर भी होनेवाले शकुनापशकुन शुभ एवं अशुभ फल के देने वाले होते हैं ।१४-१५½। यदि ऐसे अवसरों पर कोई पक्षी सूर्य की ओर मुख कर कठोर शब्दों में रुदन करता है अथवा यदि उस समय गृहपति अपने शरीर के किसी अंग पर हाथ रखता है तो यह समझ लेना चाहिये कि वास्तु के उसी अंग पर मनुष्य की हड्डी पड़ी हुई है, जो भय देनेवाली है । सूत्र के अंकित कर देने के बाद यदि गृहपति अपने किसी अंग को स्पर्श करता है तो वास्तु के उसी अंग पर हाथी अश्व तथा कुत्ते की हड्डियाँ हैं, बुद्धिमान् पुरुष ऐसा जान ले ।१६-१८। सूत्र के फैलाये जाते समय यदि उसे शृगाल अथवा कुत्ता लाँघ जाता है, तो ठीक उसी स्थान पर भी हड्डी जाननी चाहिये । अति भयानक गदहे के शब्द होने पर भी ऐसा ही अपशकुन समझना चाहिये । यदि सूत्रपात के समय ईशान कोण में कौवा मीठे स्वर से बोलता है तो वास्तु के उस भाग में, जहाँ पर गृहपति खड़ा है, धन जानना चाहिये । सूत्रपात के समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपति की मृत्यु समझनी चाहिये, कील के नीचे की ओर झुक जाने से व्याधि की शंका समझनी चाहिये ।१९-२०½। उस समय यदि अंगार दिखाई पड़ता है तो उन्माद का भय तथा कपाल दिखाई पड़ता है तो भयागम समझना चाहिये । वास्तु का विज्ञाता यदि शंख अथवा घोंघे की हड्डी का दर्शन करता है तो कुलांगनाओं में व्यभिचार की सम्भावना जाने । यदि भवन निर्माण के समय कारीगर को संभ्रम हो जाता है तो समझ लेना चाहिये कि गृहपति के इस गृह का निश्चय ही विनाश हो जायगा ।२१-२२। यदि स्थापित किया हुआ स्तम्भ कंधे पर गिर पड़ता है अथवा कुम्भ गिर पड़ता है तो गृहपति के शिर में रोग होता है । यदि

---

[1] घ. फलोदयम् । आ° । [2] घ. स्तम्भस्क° । ङ. स्तम्भस्कन्धाच्च्युते ।

*मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धे विदुर्बुधाः[1] । करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ॥२४
बीजौषधिविहीने तु भूतेभ्यो भयमादिशेत् । +प्राग्दक्षिणेन विन्यस्य स्तम्भे छत्रं निवेशयेत् ॥
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यसेत्स्तम्भान्विचक्षणः ॥२५
यस्माद्भयंकरा[2] नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम् । रक्षां कुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥२६
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् । प्रागुदक्प्रणवं कुर्याद्दिङ्मूढं[3] तु न कारयेत् ॥२७
स्तम्भं वा भवनं वाऽपि द्वारं वासगृहं तथा] । दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्न च संवर्धयेद्गृहम् ॥२८
यदि संवर्धयेद्गेहं सर्वमेव[4] विवर्धयेत् । पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ॥२९
दक्षिणे वर्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः । पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ॥३०
वर्धापितं[5] तथा सौम्ये बहुसंतापकारकम् । आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात्तदग्निभयदं भवेत् ॥३१

कलश टूट जाता है तो समझना चाहिये कि सभी परिवार का विनाश होने वाला है। कुंभ अपने स्थान से यदि गिर पड़ता है तो गृह स्वामी की मृत्यु तथा भग्न हो जाने पर वह बन्धन में पड़ता है; ऐसा पण्डित लोग जानते हैं। गृहारंभ के समय यदि उसके परिमाण के हाथों की संख्या नष्ट हो जाती है तो गृहपति का ही नाश समझना चाहिये ।२३-२४। बीज एवं ओषधियों से विहीन होने पर भूतों से भय की प्राप्ति होती है। स्तम्भ को पूर्व तथा दक्षिण दिशा की ओर सर्वप्रथम स्थापित कर उसके ऊपर छत्र डाल देना चाहिये। तदनन्तर विचारवान् पुरुष अन्य स्तम्भों की स्थापना करे। प्रदक्षिणा के क्रम के विना स्तम्भ की स्थापना भय देने वाली कही गयी है अर्थात् दाहिनी ओर से पहले स्थापना करनी चाहिये अतः स्तम्भ के उपद्रवों की नाशक सभी प्रकार की रक्षाओं की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये ।२५-२६। इस प्रकार के उपद्रवों के विनाशार्थ स्तम्भ के ऊपर फलों से युक्त वृक्ष की शाखा डाल देनी चाहिये, स्तम्भ को उत्तर अथवा पूर्व की ओर होना चाहिये, ऐसा बनाना चाहिये कि वह किसी भी दिशा में ठीक तरह से न कहा जा सके, अर्थात् वह दिग्भ्रम उत्पन्न करनेवाला न हो। इस बात का ध्यान भवन, स्तम्भ, निवास गृह, तथा द्वार सब के लिए रखना चाहिये। क्योंकि इस दिशा की अज्ञानता से कुल का नाश होता है ।२७-२८। किसी एक दिशा में घर को अधिक बढ़ाना भी नहीं चाहिये, यदि बढ़ाना है तो चारों ओर बढ़ाना चाहिये। पूर्व दिशा से बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करनेवाला होता है, दक्षिण की ओर बढ़ाने से निश्चय ही मृत्यु की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा की ओर बढ़ी हुई जो वास्तु है वह धनक्षय करनेवाला है, इसी प्रकार उत्तर दिशा की ओर बढ़ाने से बहुत दुःख एवं सन्ताप की प्राप्ति होती है ।२९-३०½। अग्नि कोण में जिस वास्तु में वृद्धि की जाती है उसमें अग्नि का भय होता है। नैऋत्य कोण में बढ़ाने पर शिशु

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. पुस्तके—मृत्युं स्थानच्च्युते कुम्भे स्तम्भभग्ने तथा विदुरिति। +एतदर्धं न विद्यते क. ख. ङ. पुस्तकेषु।

[1] घ. °धाः। कुम्भसं°। [2] क. ख. °द्भयकरं नृ°। घ. °द्भयक°। [3] ङ. °मूलं तु। [4] क. ख. °वंदिक्षु वि°। [5] ग. वर्धितं च त°।

वर्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत् × । वर्धापितं तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥३२
[1]ईशान्यामन्नहानिः स्याद्वास्तौ संवर्धिते सदा । ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत् ॥३३
महानसं तथाऽऽग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम् । गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद्बुधः ॥३४
[2]बन्धस्थानं बहिः कुर्यात्स्नानमण्डपमेव च । धनधान्यं च वायव्ये कर्मशालां ततो बहिः ॥
एवं वास्तुविशेषः स्याद्गृहभर्तुः शुभावहः ॥३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यागृहनिर्णयो नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२८६५॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् । धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा त्विष्टयादिकमतः परम् ॥१

की हानि होती है, वायव्य कोण में बढ़ाने पर वातव्याधि का प्रकोप होता है, ईशान में अग्नि से हानि होती है, सर्वदा इस बात का विचार करना चाहिये । गृह के ईशान कोण में देवता का स्थान तथा शान्तिगृह होना चाहिये ।३१-३३। अग्निकोण में रसोई का घर तथा उसी के पार्श्व में उत्तर दिशा में जल का स्थान रखना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष नैर्ऋत्य कोण में घरेलू सामग्रियों के रखने का स्थान बनाये । पशुओं आदि के बांधने का स्थान तथा स्नानागार गृह के बाहर बनवाना चाहिये । वायव्य कोण में अन्नादि के रखने का स्थान बनवाना चाहिये । कार्य करने की शाला भी निवास स्थान से बाहर बनानी चाहिये, इस ढंग से बना हुआ भवन गृहपति के लिए मंगलकारी होता है ।३४-३५।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्या प्रसंग में गृहनिर्णय नामक दो सौ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥२५६॥

अध्याय २५७

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं उत्तम काष्ठ को काटने की विधि बतला रहा हूं । धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्रों को, जो पंचक नाम से विख्यात हैं, छोड़कर भद्रा आदि का विचार करके

× इत उत्तरमेतदध ङ. पुस्तके स्तम्भो वा भवनं वाऽपि द्वारं वा च गृहं भवेत् ।

---

[1] ङ. °शान्यां तु महाहानिर्वास्तौ । [2] क. ख. वधस्थानं । घ. सर्वस्थानं ।

ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वरं बुधः । प्रथमं बलिपूजां च [1]कुर्याद्वृक्षस्य सर्वदा ॥२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते । अन्यथा न शुभं विद्याद्याम्योपरि निपातनम् ॥३
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत् । कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीडितम् ॥४
गजावरुग्णं च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् । [2]अर्धशुष्कं तथा दारु भग्नशुष्कं तथैव च ॥५
चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसंगमजं तथा । श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम् ॥६
वर्जयेत्सर्वथा दारु यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् । तथा कण्टकिनो वृक्षान्नीपनिम्बविभीतकान् ॥७
श्लेष्मातकानाम्रतरूम्वर्जयेद्गृहकर्मणि । आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ॥८
चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारु हरिद्रवः । द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात्त्रिभिर्वा भवनं शुभम् ॥९
बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत् । एकैकशिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा ॥१०
[3]एता नान्यसमायुक्ताः[4] कदाचिच्छुभकारिकाः । स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः ॥११

ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ दिन में बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ काटने के लिए प्रस्थान करे । सर्वथा सर्वप्रथम उसे काटे जानेवाले वृक्ष की बलिपूजा करनी चाहिये ।१-२। पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर गिरने वाले वृक्ष का काष्ठ गृह निर्माण में मंगलकारी होता है, दक्षिण की ओर गिरे हुए वृक्ष शुभदायी नहीं होते । दूधवाले वृक्षों का काष्ठ घर में नहीं लगाना चाहिये ।३$\frac{१}{२}$। पक्षियों के घोसले जिसमें हों, वायु तथा अग्नि से जिसका कुछ अंग टूट या जल गया हो, हाथी ने जिसकी डाली तोड़ दी हो, बिजली गिरने से जो किसी अंश में भग्न हो गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो, अथवा कुछ अंश किसी कारण वश टूट फूट गये हों, जो देवालय के पास हों, अथवा जिसमें किसी देवता का निवास माना जाता हो, या ग्राम भर में जिसकी प्रसिद्धि हो, जो नदी के संगम पर अवस्थित हो, श्मशानभूमि या कूप पर हो, तालाब आदि जलाशय के किनारे हो, ऐसे वृक्षों को अपनी विपुल समृद्धि एवं उन्नति की कामना करनेवाले को सर्वथा वर्जित रखना चाहिये ।४-६$\frac{१}{२}$। इसी प्रकार गृहकार्य के लिए काँटोंवाले वृक्षों को, कदम्ब को, नीम को, बहेड़ा को, ढेरा को तथा आम के वृक्षों को भी वर्जित करना चाहिये । आसन, अशोक, महुआ, सर्ज एवं शाल के काष्ठ मंगलकारी होते हैं । इसी प्रकार चन्दन, कटहल, देवदारु तथा हरिद्र—इनके भी काष्ठ शुभकारी होते हैं । दो प्रकार के, एक प्रकार के अथवा तीन प्रकार के काष्ठों से शुभ भवन का निर्माण कराना चाहिये, क्योंकि अनेक प्रकार के काष्ठों से बना हुआ भवन अनेक प्रकार का भय देनेवाला होता है ।७-९$\frac{१}{२}$। केवल एक प्रकार के काष्ठ में शीशम का काष्ठ श्रेष्ठ है । श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी को भी अकेले ही लगाना चाहिये । ये काष्ठ अन्य किसी प्रकार के काष्ठों के साथ लगाने से कभी मंगलकरी नहीं होते । इसी प्रकार स्यन्दन (?) कटहल, सरल, अर्जुन एवं पद्माक के वृक्षों के लिए भी विशेषता जाननी चाहिये, ये भी पूर्वोक्त रीति से अन्य काष्ठों के साथ संयुक्त होने से वास्तु कार्य में शुभ फल देने वाले नहीं होते ।१०-११। वृक्ष कटते

---

१ घ. ङ. च. °दृक्षाय स° । २ ग. घ. ऊर्ध्वशुष्कं । ३ ख. ग. एते । ४ च. °युक्ता वस्तुकार्ये शुभप्रदाः । त° ।

एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः । तरुच्छेदे महापीते गोधा विन्द्याद्विचक्षणः ॥१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले [१]सर्पादि निर्दिशेत् । अरुणे सरटं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥१३
कपिले मूषकान्विद्यात्खड्गाभे जलमादिशेत् । एवंविधं सगर्भं तु वर्जयेद्वास्तुकर्मणि ॥१४
पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनः[२] शुभैः । व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वै हृते तथा ॥१५
यच्छेषमायतं [६]विन्द्यादष्टभेदं वदामि वः । ध्वजो [३]धूमश्च सिंहश्च खरः श्वा वृष एव च ॥१६
हस्ती ध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी । ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ॥१७
उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् । दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ॥१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः । पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थांश्च वर्जयेत् ॥१९
तमेवाष्टगुणं कृत्वा कररांशि विचक्षणः । सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ॥२०
अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः स व्ययो मतः । व्ययाधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरं भवेत् ॥
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान्हरिः ॥२१

समय विचक्षण पुरुष को यदि अत्यन्त पीले वर्ण का कोई चिह्न मिलता है तो भावी गृह में गोधा (गोह) का भय जानना चाहिये । मंजीठी के रंग का मिलने पर मेघों (भेक) का भय जानना चाहिये, अरुण वर्ण के चिह्न पर सरट (गिरगिट) का भय जानना चाहिये, मोती के समान श्वेत चिह्न मिलने पर शुक का भय समझना चाहिये ।१२-१३। कपिल वर्ण के चिह्न पर मूषिका का भय तथा तलवार की भाँति चिह्न मिलने पर जल का भय जानना चाहिये । वास्तु कर्म में काष्ठों के काटते समय यदि उपर्युक्त प्रकार के चिह्न मिले तो उन्हें वर्जित रखना चाहिये । यदि पहले ही से कटा हुआ कोई वृक्ष हो तो शुभदायी शकुनों से जाँच पड़ताल कर लेने पर गृहकार्य के लिए लिया जा सकता है । वृक्ष की मोटाई तथा लम्बाई के मान से गुणा कर आठ का भाग दे, जितने हाथ शेष बचें उसके आठ भेद बतला रहा हूँ ।१४-१५½। उनकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वा, वृषभ, हस्ती एवं काक संज्ञा जाननी चाहिये । ध्वज का चारों ओर मुख है, और वह शुभकारी है, विशेषतया वास्तु के पश्चिम दिशा की ओर लगाने से अधिक फल होता है । सिंह का उत्तर मुख रखना चाहिये, वृषभ का पूर्व मुख एवं हस्ती का दक्षिण मुख रहता है, इस प्रकार सात (?) विभागों द्वारा इसे बता चुका ।१६-१८। एक हाथ से ध्वज को, तीन हाथ से सिंह को, पाँच हाथ से वृषभ को तो कह चुका अब इनके अतिरिक्त जो विकोणस्थ हों उन्हें वर्जित करना चाहिये । उक्त कर राशि अंक को आठ से गुणित कर विचक्षण पुरुष सत्ताईस का भाग देकर शेष नक्षत्र माने और उस शेष में फिर आठ का भाग करे । जो शेष बचता है वह व्यय माना गया है, जिस वृक्ष में व्यय अधिक निकले उसे न लगावे, क्योंकि वह अनेक दोषों का करनेवाला है । आय अधिक होने पर शान्ति होती है—ऐसा भगवान् हरि

---

१ ग. च. सर्प विनि° । २ ङ. च. विद्यादष्टभेदं तथा मिथः । ध्व° । ३ ग. ङ. धूम्रश्च ।

कृत्वाऽग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ॥२२
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः ।
संतर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सधूपम् ॥२३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१२८८८॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

क्रियायोगः कथं सिध्येद्गृहस्थादिषु सर्वदा । ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥१

सूत उवाच

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यल्लोकेषु विद्यते ॥२

ने बतलाया है ।१९-२१। गृह बनकर पूर्ण हो जाने पर आगे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आगे करके दही, अक्षत, आम के पल्लव, पुष्प तथा फलादि से सुशोभित जलपूर्ण कलश को देकर तथा अन्य ब्राह्मणों को सुवर्ण एवं सुवस्त्रादि देकर मांगलिक, शान्तिदायक निवास भवन में गृहपति को प्रवेश करना चाहिये । उस समय वेदोक्त एवं गृह्य शास्त्रोक्त विधि से बलिकर्म करके प्रासाद एवं वास्तु की शान्ति के लिए शास्त्रों में जो विधियां कही गई हैं, उनके अनुकूल हवन करे । सुन्दर भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर धूपादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर गृह प्रवेश करना चाहिये ।२२-२३।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्यानुकीर्तन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५७॥

अध्याय २५८

ऋषियों ने कहा—गृहस्थाश्रमवालों में कर्मयोग की सिद्धि किस प्रकार सम्पन्न होती है, क्योंकि ज्ञानयोग की अपेक्षा सहस्रों गुणों से कर्मयोग विशिष्ट माना गया है ।१।

सूत ने कहा—ऋषिगण ! गृहस्थाश्रमियों के कर्मयोग, देवार्चन एवं नाम संकीर्तन का मैं बतला रहा हूँ, जो भोग एवं मोक्ष दोनों का देनेवाला है और पृथ्वी तल को छोड़कर अन्य लोकों में

प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम् । देवयज्ञोत्सवं चापि[1] बन्धनाद्येन मुच्यते ॥३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि[2] यादृग्रूपं प्रशस्यते । शङ्खचक्रधरं शान्तं[3] पद्महस्तं गदाधरम् ॥४
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् । तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥५
[4]क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् । द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु[5] पुरोधसा ॥६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत । खड्गो गदा शरः पद्मं देयं[6] दक्षिणतो हरेः ॥७
धनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः । चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवाऽऽयुधसंस्थितिम्[7] ॥८
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत् । वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते । यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥१०
अधस्तात्पृथिवी [8]तस्य कर्तव्या पादमध्यतः । दक्षिणे प्रणतं तद्वद्गरुत्मन्तं निवेशयेत् ॥११

जिसकी सत्ता नहीं है । देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजा, नामसंकीर्तन, देवयज्ञोत्सव ये ही गृहस्थों के कर्मयोग हैं, इनके द्वारा गृहस्थाश्रमी भव-बन्धन से मुक्त होते हैं ।२-३। सर्वप्रथम तब तक भगवान् विष्णु के स्वरूप को बतला रहा हूँ, जैसा कि कहा गया है । शंख, चक्र, गदा तथा पद्म को हाथों में धारण किये हुए, शान्त विष्णु भगवान् की प्रतिमा कही गई है । उस का शिर छत्र के आकार का होना चाहिये, शंख के समान कंधे तथा मनोहर नेत्र होने चाहिये, नासिका उठी हुई, सुडौल, कान सुतुही के आकार के तथा हाथ और वक्षःस्थल विस्तृत प्रशान्त तथा चढ़ाव-उतार वाले होने चाहिये ।४-५। इन विष्णु भगवान् की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओंवाली होती है और कहीं चार भुजाओं वाली, दो भुजाओं की प्रतिमा पुरोहित द्वारा भवन में स्थापित करानी चाहिये । अष्टभुज भगवान् की निम्नलिखित वस्तुएँ इस प्रकार रहेंगी । विष्णु भगवान् के दाहिनी ओर के चार हाथों में खड्ग, गदा, बाण और कमल रखने चाहिये और बाएँ हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र रहने चाहिये ।६-७½। चतुर्भुज मूर्ति में शास्त्रास्त्रों की स्थिति बना रहा हूँ । उन वासुदेव भगवान् की प्रतिमा में दाहिनी ओर के दो हाथों में गदा और पद्म रखने चाहिये । समृद्धि की इच्छा रखनेवाले को बायीं ओर शंख और चक्र रखने चाहिये । कृष्णावतार की प्रतिमा में बायीं ओर गदा रहनी चाहिये ।८-९½। प्रतिमा में अपनी इच्छा अनुरूप शंख और चक्र को ऊपर उठा हुआ निर्मित करावे, उनके दोनों पादों के मध्य में नीचे की ओर पृथ्वी की मूर्ति रहनी चाहिये और उसी प्रकार विनम्र भाव में गरुड़ की मूर्ति रहनी चाहिये । बायीं ओर से हाथों में कमल लिये

---

[1] ङ. च. °पि स्थापनार्चनमु° । [2] ङ. च. °मि यथास्थानं प्र° । [3] ङ. च. शार्ङ्गपद्मह° । [4] ग. °जं कुर्याच्चतुर्भुजमथापि वा । द्वि° । [5] ङ. च. भुवनेषु । [6] क. ख. दिव्यं । [7] क. ख. घ. °स्थितिः । व° । [8] ग. ङ. च. देवी ।

वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना । गरुत्मानग्रतो वाऽपि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥१२
श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते । तोरणं चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
देवदुंदुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् । *पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥१४
तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः । एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेणास्य पीठिका ॥१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिंनराः । अतःपरं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः ॥१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम् । त्रसरेणुः स विज्ञेयो वालाग्रं तैरथाष्टभिः ॥१७
तदष्टकेन लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता । यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम् ॥१८
स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशाङ्गुलम् । मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥१९
सौवर्णी राजती वाऽपि ताम्री रत्नमयी तथा । शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा ॥२०
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा । शुभदारुमयी वाऽपि देवतार्चा प्रशस्यते ॥२१

हुए सुन्दर मुखवाली लक्ष्मी की स्थापना करनी चाहिये। कल्याण की कामना करनेवाले गरुड़ को भगवान् के आगे भी स्थापित करा सकते हैं।१०-१२। प्रतिमा के दोनों ओर श्री और पुष्टि की मूर्ति रहेंगी जो हाथों में कमल धारण किये रहेंगी। प्रतिमा के ऊपर विद्याधरों के साथ तोरण का निर्माण होना चाहिये। देवताओं की दुन्दुभि तथा गन्धर्वों के दम्पति की प्रतिमा भी रहनी चाहिये। पत्तों और लताओं से युक्त रहना चाहिये, सिंह और व्याघ्र की भी प्रतिमा साथ में बनानी चाहिये।१३-१४। स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों, कल्पलता भी निर्मित हो। इस प्रकार विष्णु की प्रतिमा होगी, उसकी पीठिका विस्तार में तिहाई भाग जितनी होगी अथवा तीन ओर से होगी। देवता, दानव तथा किन्नरों की प्रतिमा नव ताल (अंगूठे से लेकर मध्यमा अंगुली तक फैलाने में जितनी लम्बाई होती है, उसे ताल कहते हैं।) की होनी चाहिये। अब इसके बाद मैं प्रतिमाओं के मान एवं उन्मान की विशेषता बतला रहा हूँ, अर्थात् कितनी ऊँची, कितनी नीची, कितनी मोटी, कितनी लम्बी प्रतिमा होनी चाहिये।१५-१६। जाल के भीतर से सूर्य की किरणों के प्रविष्ट होने पर जो धूलिकण दिखाई पड़ते हैं उसे त्रसरेणु कहते हैं, उस आठ त्रसरेणु के बराबर एक बालाग्र होता है। उसके आठ गुने जितनी एक लिख्या और आठ लिख्या की एक यूका होती है। आठ यूका का एक जव होता है, उन आठ जवों से एक अंगुल होता है।१७-१८। अपनी अंगुली के परिमाण से बारह अंगुल का मुख होता है, इसी मुख के मान के परिमाण से भी अवयवों की कल्पना करनी चाहिये। सुवर्ण की, चाँदी की, ताँबे की, पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, सीसा की, पीतल की, ताँबे और काँसे से मिश्रित धातु की, अथवा अन्य शुभ काष्ठों की बनी हुई देवताओं की प्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है।१९-२१। अंगूठे की गाँठ से लेकर बीते भर तक की लम्बी प्रतिमा की

---

* एतदर्धं न ङ. च. पुस्तकयोः ।

अङ्गुलष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु। गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥२२
आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिकः ततः। मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥२३
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत्। भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद्भवेत् ॥२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः। पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ॥२५
प्रतिमामुखमानेन नव भागान्प्रकल्पयेत्। चतुरङ्गुला भवेद्ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः ॥२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन [1]शोभना। निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम् ॥२७
नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत्[2]। द्विभागेनाऽऽयतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले[3] ॥२८
जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ। चतुर्दशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥२९
उर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत[4]। सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ॥३०
चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च। द्वयङ्गुलस्तु हनुर्ज्ञेय [5]ओष्ठौ द्वयङ्गुलसंमितौ ॥३१

स्थापना अपने घरों में करनी चाहिये, इससे बड़ी प्रतिमा बुद्धिमानों ने घर के लिये नहीं पसन्द की है। बड़े भवन में सोलह अंगुल की प्रतिमा रखनी चाहिये, किन्तु इससे बड़ी कभी नहीं स्थापित करनी चाहिये। इन प्रतिमाओं को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल मध्यम, उत्तम एवं कनिष्ठ कोटि की बनामी चाहिये।२२-२३। प्रवेश द्वार की जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागों में विभक्त कर दे, उसमें एक का भाग छोड़ कर जो शेष बचे, उसके दो भाग जितनी लम्बाई में प्रतिमा बनवाये। बचे हुए भाग में तीन भाग करके एक भाग में पीठिका (देवताओं की मूर्तियों के नीचे का बना हुआ आसन।) बनाना चाहिये वह पीठिका न तो बहुत नीची हो और न बहुत ऊँची हो। प्रतिमा के मुख के मान को नव भागों में विभक्त करे। उसमें चार अंगुल में ग्रीवा तथा एक भाग में हृदय होगा।२४-२६। उसके नीचे के एक भाग में सुन्दर नाभि बनानी चाहिये। उसकी गहराई तथा विस्तार भी एक ही अंगुल कहा गया है। नाभि के नीचे एक भाग में लिंग बनाये, दो भागों में जंघों का विस्तार रखे। घुटनों को चार अंगुल में बनाये, जंघे दो भागों में प्रसिद्ध हैं, पैर चार अंगुल के हों, उसी प्रकार ऐसी मूर्ति का शिर चौदह अंगुल का बनाना चाहिये, ऐसा बिधान बताया गया है।२७-२९। यह तो मूर्ति की ऊँचाई बताई गई अब उसकी मोटाई या विस्तार सुनिये। हे ऋषिगण! मूर्तियों के सभी अवयवों का विस्तार सुनिये। ललाट की मोटाई चार अंगुल की होनी चाहिये, नासिका भी उतने ही अंगुल की ऊँची होनी चाहिये। दाढ़ी दो अंगुल में होनी चाहिये। ओंठ भी दो ही अंगुल के विस्तार में माने गये हैं। मूर्ति के ललाट का विस्तार आठ अंगुलों का होना चाहिये,

---

[1] ग. शोभिना। ङ. च. शोभिता। [2] ङ. च. °त्। त्रिभागमाय°। [3] ङ. च. °ले। द्विभागेनाऽऽयते लङ्घे पा°। [4] ग. °ध मे। स°। [5] क. ख. ओष्ठः स्वाङ्गुलसंमितः। चतुरङ्गु°।

अष्टाङ्गुलं ललाटं च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते । अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवाऽऽनता ॥३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णतीक्ष्णा प्रशस्यते । अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे । तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्चभागिकी[1] ॥३४
द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथाङ्गुलम् । नासाग्रविस्तरं [2]तद्वत्पुटद्वयमथाऽऽनतम् ॥३५
नासापुटबिलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम् । कपोले[3] द्व्यङ्गुले तद्वत्कर्ण मूलाद्विनिर्गते[4] ॥३६
हन्वग्रमङ्गुलं तद्विद्विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत् । *अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी [5]प्रणालसदृशी समा ॥३७
अर्धाङ्गुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे । निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत्[6] ८३॥
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात्षडङ्गुले । कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयावूर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ ॥३९
द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रमेकां तु विस्तृतौ । कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम् ॥४०
ललाटं[7] पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम् । षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य[8] परिणाहः शिरोगतः ॥४१

उतने ही विस्तार में दोनों भौहें भी बननी चाहिये । भौहों की रेखा आधे अंगुल की मोटाई में हो, जो बीच में धनुष की भाँति वक्र हो ।३०-३२। दोनों छोरों पर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, उसकी बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये । आखों की लम्बाई दो अंगुल की हो, चौड़ाई एक अंगुल में हो । उसके मध्य भाग में ऊँचाई होनी चाहिये, छोरों पर शुभ नेत्रों में लालिमा होनी चाहिये । तारा के आधेभाग से पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये ।३३-३४। दोनों भौहो के मध्य में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिये, नासिका का मूलभाग एक अंगुल में रहे । इसी प्रकार नासिका के अग्रभाग एवं दोनों पुटों को बनावे, जो नीचे की ओर झुके हुए हों । नासिका के पुटों के छिद्र आधे अंगुल के हों, दोनों कपोल दो अंगुल के हों जो कानो के मूलभाग से निकले हों ।३५-३६। दाढ़ी का अग्रभाग एक अंगुल में तथा विस्तार दो अंगल में होना चाहिये । आधे अंगुल में भौहों की रेखा हो, जो कालो घटा के समान श्याम बनी हुई हो । नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओंठ आधे-आधे अंगुल के बराबर हो । उसी प्रकार नासिका के दोनों पुट निष्पाव समान बनाने चाहिये । दोनो ओठों के समीपवर्तीभागों को ज्योति (?) के आकार का बनावे और उन्हें कान के मूल से छः अंगुल दूर पर बनावे । दोनो कानो की बनावट भौहों के समान रहेगी और उनकी ऊँचाई चार अंगुल की रहेगी ।३७-३९। कानो के बगल में दो अंगुल रिक्त छोड़े उनका विस्तार एक मात्रा का हो । दोनों कानो के ऊपर मस्तक का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये । ललाट प्रदेश से पीछे की ओर आधे भाग का विस्तार अठारह अंगुल बताया गया, इस प्रकार सारे मस्तक का विस्तार छत्तीस अंगुल

---

* एतदर्धं न विद्यते ग. च. पुस्तकयोः ।

---

[1] क. ख. °गिका । द्वच° । [2] घ. पुटद्वयमुन्नत° । [3] ङ. च. °पो लौ द्वा । [4] ङ. च. °गंतौ । हृ° । [5] घ. °णालीसदृशी तथा । अ° । [6] ग. च. °त् । [उभे तु सृक्विणी तुल्ये क° । [7] क. ख. °लाटात्पृष्ठ° । [8] ङ. च. °ङ्गुलं ग्रीवा पृथु° ।

सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः । केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश ॥४२
ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः । अष्टाङ्गुला भवेद्ग्रीवा पृथुत्वेन [1]प्रशस्यते ॥४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं[2] स्वयंभुवा । स्तनयोरन्तरं तद्वद्द्वादशाङ्गुलमिष्यते ॥४४
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद्द्वयङ्गुलं परिकीर्तितम् । +चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ ॥४५
[3]द्वितालं चापि विस्ताराद्वक्षःस्थलमुदाहृतम् । कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥४६
चतुर्दशाङ्गुलौ [4]पादावङ्गुष्ठौ[5] तु त्रिर(द्विर)ङ्गुलौ । पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं ॥
तथोन्नतम् ॥४७
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा[6] स्यात्प्रदेशिनी । तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली ॥४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते । पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यो गुल्फौ द्वयङ्गुलकौ मतौ ॥४९
पार्ष्णिद्वयंङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चैः प्रकीर्तितः । द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्वयङ्गुलः ॥५०
प्रदेशिनीपरीहणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः । कनिष्ठिकाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः ॥५१

का होता है। और केश समेत उसका विस्तार बयालीस अंगुल का होता है। केशों के अन्त प्रदेश से दाढ़ी तक का विश्तार सोलह अंगुल का होता है ।४०-४२। दोनो कन्धों के विस्तार का मान चौबीस अंगुल का है, ग्रीवा की मोटाई आठ अंगुल की मानी गई है। ब्रह्मा ने स्तन और ग्रीवा के अन्तर में एक ताल का मान बताया है, इसी प्रकार दोनों स्तनों में बारह अंगुल का अन्तर रहता है ।४३-४४। दोनो स्तनो के मण्डल दो अंगुल में कहे गये हैं, दोनों चूचक उन मण्डलों में जव जितने विस्तार में बताये जाते हैं। वक्षः स्थल की चौड़ाई दो ताल की कही गई है, दोनो कक्ष प्रदेश छः अंयुल के होते हैं, जिन्हें बाहुओं के मूल भाग तथा स्तनों के बीच में बनाना चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके दोनों अँगूठे दो या तीन अंगुल के हो। अंगूठे का अग्रभाग उन्नत होना चाहिये तथा उसका विस्तार पांच अंगुल में रहे ।४५-४७। उसी प्रकार अंगूठे के समान ही प्रदेशिनी अंगुली को भी लम्बी बनाना चाहिये, उससे सोलहवे अंश में अधिक मध्यमा अंगुली होगी, अनामिका अंगुली मध्यमा अंगुली की अपेक्षा आठवें भाग जितनी न्यून रहेगी। उसी प्रकार अनामिका से आठवें भाग में न्यून कनिष्ठिका अंगुली रहेंगी। इन दोनों अंगुलियों में तीन पोर बनाने चाहिये। पैरों की गाँठ दो अंगुल में मानी गयी है। दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुल में रहें किन्तु गाँठ की अपेक्षा उसमें एक कला अधिक ही रहे। अंगूठे में दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुल का है,

---

+एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. च. पुस्तकयोः। चूचुके मण्डलस्यान्तः पादमात्रे उभे स्मृते इति।

---

[1] ङ. च. विशिष्यते। [2] ङ. च. °कनालं। [3] च. त्रितालं। [4] ङ. च. पादाक्ष्टौ द्वयङ्गुलतः स्मृतौ। प°। [5] ग. ङ्गुष्ठस्तु द्विरङ्गुलः। प°। [6] ग. घ. च. यामे स्या°।

अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्याङ्गुष्ठस्य विशेषतः । तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः ॥५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चतुर्दश । जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः ॥५३
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः । जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलं तु त्रिरङ्गुलम् ॥५४
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः । [1]एकत्रिंशोपरिष्टाञ्च वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ ॥५५
द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहे षडङ्गुलम् । मणिबन्धादधो विद्यात्केशरेखास्तथैव च ॥५६
[2]मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते । विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशाङ्गुला ॥५७
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ । नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥५८
पुरुषे पञ्चपञ्चाशत्कट्यां[3] चैव तु वेष्टनम् । कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥५९
अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत् । परिणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥६०
आयामो भुजयोस्तद्वद्द्विचत्वारिंशदङ्गुलः । कार्यं तु बाहु शिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम् ॥६१
ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं [4]विद्यादष्टादशाङ्गुलम् । तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते ॥६२

प्रदेशिनी अंगुली का विस्तार तीन अंगुल का होना चाहिये । हे ऋषिगण ! कनिष्ठिका अंगुली क्रमशः इससे आठवें भाग में हीन रहेगी ।४८-५१। विशेषतया अंगूठे की मोटाई एक अंगुल की रखनी चाहिये, उसके आधे भाग जितनी अन्य शेष अंगुलियों की मोटाई रखनी चाहिये । जंघे के अग्र भाग का विस्तार चौदह अंगुल का रहे, मध्यभाग में अटारह अंगुल का विस्तार रहे, जानु के मध्यभाव में इक्कीस अंगुल का विस्तार हो, जानु भाग की ऊँचाई एक अंगुल में तथा मण्डल तीन अंगुल में हो ।५२-५४। उरुओ के मध्यभाग का विस्तार अट्ठाईस अंगुल का हो, इसके ऊपर इकतीस अंगुल, अण्डकोश तीन अंगुल, लिंग दो अंगुल का हो । उसका विस्तार छः अंगुल का हो, मणिबन्ध आदि, केशों की रेखा, मणिकोश इन सब का विस्तार चार अंगुल का हो । कटिप्रदेश का विस्तार अठारह अंगुल में हो ।५५-५७। स्त्रियों की मूर्ति में कटि का विस्तार बाईस अंगुल का तथा स्तन का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये । नाभि के मध्यभाग का विस्तार बयालीस अंगुल का होना चाहिये । पुरुष के कटि प्रदेश में पचपन अंगुल का विस्तार तथा दोनों कक्षों के ऊपर छः अंगुल विस्तार में स्कन्धों के बनने की विधि है । आठ अंगुल के विस्तार में ग्रीवा का निर्माण कहा गया है, इसकी लम्बाई बारह कला की होनी चाहिये ।५८-६०। दोनों भुजाओं की लम्बाई बयालीस अंगुल में हो, बाहु के मूलभाग को सोलह अंगुल के प्रमाण में बनावे । बाहु के ऊपरी अंश तक बारह अंगुल का विस्तार जानना चाहिये । द्वितीय पर्व इसकी अपेक्षा एक अंगुल न्यून कहा गया है, बाहु के मध्यभाग का विस्तार अट्ठारह अंगुल का होना चाहिये । प्रबाहु सोलह अंगुल की होनी चाहिये हाथ के अग्रभाग का मान छः कला में कहा

---

[1] घ. °त्रिंशच्चोपरिष्ठो वृ° । [2] ग. °कोष्ठप° । [3] ग. °ट्यां वै तन्तुवे° । [4] क. ख. °ष्टाङ्गुलं शतम् । त° ।

बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः । षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः ॥६३
सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्च मध्याङ्गुली मता । अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ॥६४
तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते । मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥६५
अङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः । अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः ॥६६
शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते । [1]मध्यमापर्वमध्यं तु अङ्गुलद्वयमायतम् ॥६७
यवो यवेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते । अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ॥६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्वं उदाहृतम् । पर्वार्धे तु नखान्विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः ॥६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः । निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥७०
तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला । स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ॥७१
चतुर्दशाङ्गुलायाममुदरं [2]तासु निर्दिशेत् । नानाभरणसंपन्नाः किंचिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः ॥७२
किंचिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा । नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम् ॥७३

गया है, हथेली का विस्तार सात अंगुल का है, उसमें पांच अंगुलियां मानी गयी हैं। अनामिका अंगुली मध्यमा की अपेक्षा सातवें भाग जितनी हीन रहती है । उसमें भी पाँचवें भाग जितनी न्यून कनिष्ठा अंगुली है। मध्यमा से पाँचवें भाग जितनी न्यून तर्जनी है, अंगूठा तर्जनी के उद्गम से नीचे होना चाहिये किन्तु लम्बाई में उतना ही होना चाहिये । अंगूठे का विस्तार चार अंगुल का जानना जाहिये ।६१-६६। शेष अंगुलियों के विस्तार क्रमशः एक-एक भाग से न्यून होते जाते हैं। मध्यमा के पोरों के मध्यभाग में दो अगुल का अन्तर रहना चाहिये । इसी प्रकार अन्य अंगुलियों के पोरों में एक-एक जव की कमी होती जाती है। अंगूठे के पोरों का मध्यभाग तर्जनी के समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो जव से अधिक कहा गया है, अंगुलियों के पूर्वार्ध में नखो को जानना चाहिये । ६७-६९। उन नखो को चिकना, सुन्दर तथा आगे की ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये । मध्यभाग में पीछे की ओर कुछ नीचा तथा बगल में अंशमात्र ऊंचा बनावे । उसी प्रकार कन्धो के ऊपर दस अंगुल में केशों की लता का निर्माण करना चाहिये। स्त्री प्रतिमाओं को दुर्बलाङ्गिनी बनाना चाहिये । स्तन, उरु प्रदेश एवं जांघों को स्थूल बनाना चाहिये ।७०-७१। उनके उदर प्रदेश की लम्बाई चौदह अगुल की होनी चाहिये । प्रतिमा को अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा उसकी भुजाओं को कुछ मृदु एवं मनोहारि बनाना चाहिये । मुखकृति कुछ अपेक्षाकृत लम्बी हो, अलकावली उत्तम ढङ्ग से बनी हुई हो, नासिका, ग्रीवा एवं ललाट साढ़े तीन अंगुल के होने चाहिये । अधर पल्लवों का विस्तार आधे अंगुल का प्रशस्त माना गया है ।७१-७३। दोनों नेत्र अधर पल्लवों से चार गुने

---

[1] ग. घ. °मामध्यभागं तु । [2] क. ख. नाम ।

अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः । अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ॥
ग्रीवाबलिश्च कर्तव्या किंचिदर्धाङ्गुलोच्छ्रया ॥७४
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च[1] । नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥७५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं
नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५८॥

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ॥ १२९६३ ॥

अथ नवपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान्विशेषतः । दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥१
वाराहो नरसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः । मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयंभुवा ॥२

अधिक विस्तृत होने चाहिये एवं ग्रीवा की वलि आधे अंगुल की ऊँची बनानी चाहिये । इस प्रकार सभी देवताओं की प्रतिमाओं एवं स्त्री देवताओं की प्रतिमाओ के निर्माण में उपर्युक्त नियम का पालन करना चाहिये । यह नव ताल के परिमाण की प्रतिमाओं का वर्णन पापों को नष्ट करनेवाला कहा गया है ।७४-७५।

श्री मात्स्य महापुराण में देवपूजा प्रसंग में प्रतिमा प्रमाण कीर्तन नामक
दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५८॥

अध्याय २५९

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त देवताओं की मूर्ति के विषय में विशेषरूपेण बतला रहा हूँ । इस विषय में ब्रह्मा जी ने बताया है कि राम, विरोचन पुत्र बलि, बाराह एवं नृसिंह, इनकी मूर्तियों का परिमाण दस ताल का होता है । वामन का परिमाण सात ताल का, तथा मत्स्य एवं सूर्य का भी सात

---

[1] क. ख. घ । नव चाल° ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्[1] । स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥३
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः । जटामुकुटधारी च ह्यष्टवर्षाकृतिश्च सः ॥४
बाहू वारणहस्ताभौ वृत्तजङ्घोरुमण्डलः । ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः । हारकेयूरसंपन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ॥६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः । पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलंकृतः ॥७
आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः । खेटकं वामहस्ते तु खड्गं चैव तु दक्षिणे ॥८
शक्तिं दण्डं त्रिशूलं च दक्षिणेषु निवेशयेत् । कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च ॥९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाऽक्षवलयोऽपरः । [2]वैशाखं स्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः ॥१०
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा । तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु ॥११
शङ्खं चक्रं गदा शार्ङ्गं घण्टा तत्राधिका भवेत् । तथा धनुः पिनाकश्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥१२

ताल का कहा गया है । अब इसके उपरान्त रुद्रादि की आकृति का वर्णन कर रहा हूं ।१-२½। रुद्र को पुष्ट भुजाओं, उन्नत एवं पुष्ट स्कन्धों तथा तपाये हुये सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण का बनाना चाहिये । श्वेतवर्ण, सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान, परमतेजोमय तथा जटा में चन्द्रमा से विभूषित बनाना चाहिये जटा एवं मुकुटधारी तथा सोलह वर्ष की इनकी आकृति होनी चाहिये ।३-४। दोनों बाहु हाथी के शुण्डादण्ड की भाँति होने चाहिये, जंघा एवं उसके मण्डल गोले हो । केशों को ऊपर की ओर उठा हुआ तथा नेत्रों को दीर्घ एवं विस्तृत बनाना चाहिये । व्याघ्रचर्मधारी तथा कटि भाग में तीन सूत्रों से बिभूषित बनाना चाहिये । हार, केयूर से सुशोभित तथा सर्पों के आभूषण से इन्हें आभूषित बनाना चाहिये ।५-६। शिव की भुजाओं को विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित, कपोल एवं उरु भाग को पुष्ट तथा भरा हुआ और दोनों ओर दो कुण्डलों से विभूषित बनाना चाहिये । बाहुएँ जानु तक लम्बायमान, सौम्य मूर्ति, सुन्दर मुख, बायें हाथ में ढाल,, दाहिने हाथ तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल का निवेश करना चाहिये । बायें पार्श्व में कपाल, खट्वांग एवं नागों को रखना चाहिये, शिव जी का एक हाथ बर देने वाला है और दूसरा रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए रहता है नन्दीश्वर पर अवस्थित हो उस समय वे नृत्य एवं अभिनय की दशा में रहते हैं ।७-१०। नाचते हुए शिव की प्रतिमा दस भुजाओंवाली बनानी चाहियें, उस समय गज चर्म धारण कराना चाहिये । त्रिपुरदाह के अवसर पर सोलह बाहु बनानी चाहिये । उस समय शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष, घण्टा, पिनाक, विष्णमय शर ये वस्तुएँ अधिक धारण करानी चाहिये । शिव जी की

---

[1] ग. °म् । आपी° । [2] क. ख. °शाखस्था° ।

*चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः । तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान् ॥१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः । न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयंकरः ॥१४
नारसिंहो वराहो वा तथाऽन्येऽपि भयंकरः । नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवताः क्वचित् ॥१५
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा । अधिका शिल्पिनं हन्यात्कृशा चैवार्थनाशिनी ॥१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी । वक्रनासा तु दुःखाय संक्षिप्ताङ्गी[1] भयंकरी ॥१७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी । दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥१८
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम् । शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत् ॥१९
पाणिपादविहीनो यो जायते मारको महान् । जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या । संपूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा ॥२१
एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः । स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्भवम् ॥२२

चतुर्भुज तथा अष्टभुज मूर्ति ज्ञानयोगेश्वर मानी जाती हैं । तीक्ष्ण दाँतों तथा नुकीले नासिका के अग्रभाग वाली एवं अति कराल मुखवाली मूर्ति को लोक में भैरव नाम से कहते हैं और ऐसी मूर्ति प्रत्येक देव मन्दिरों में स्थापित की जाती है ।११-१३½। किन्तु मुख्य मन्दिर में भैरव की स्थापना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये परम भय देनेवाले देवता हैं, इसी प्रकार नृसिंह एवं वाराह आदि भी भयंकर देवता हैं । कभी देव प्रतिमाओं को हीन अंगोंवाली अथवा अधिक अंगोंवाली नहीं बनाना चाहिये । न्यून अंगोंवाली तथा भयानक मुख वाली प्रतिमा निश्चय ही स्वामी का विनाश कर देती है, अधिक अंगो वाली प्रतिमा शिल्पकार का हनन करती है, दुर्बल प्रतिमा धन का विनाश करनेवाली कही गई है । कृष्णोदरी प्रतिमा दुर्भिक्ष डालनेवाली तथा मांसरहित दिखाई पड़नेवाली धननाशिनी है । टेढ़ी नासिकावाली प्रतिमा स्वामी को कष्ट देनेवाली तथा सूक्ष्माङ्गी प्रतिमा भय पहुँचाने वाली मानी गयी है ।१४-१७। चिपटी प्रतिमा दुःख एवं शोक पहुँचानेवाली तथा विना नेत्र की प्रतिमा नेत्रविनाशिनी कही गयी है । मुखविहीन प्रतिमा दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ और पैरवाली अन्य किन्हीं अंगों से हीन, तथा विशेषकर जंघे से हीन प्रतिमा मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद देनेवाली कही गई हैं । सूखे हुए मुखवाली तथा कटि भाग से हीन प्रतिमा राजा को कष्ट देनेवाली कही गई है ।१८-१९। हाथ एवं पाद से विहीन प्रतिमा महामारी का भय देनेवाली है, जंघा एवं घुटने से विहीन प्रतिमा शत्रु को कल्याण पहुँचानेवाली कही गई है । वक्षःस्थल से विहीन प्रतिमा पुत्र एवं मित्रों का विनाश करने वाली है । सभी अंगों से परिपूर्ण जो प्रतिमा होती है, वह सर्वदा आयु एवं लक्ष्मी दोनों की देनेवाली कही गई है ।२०-२१। इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त भगवान् शंकर की प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये । उनकी प्रतिमा के चारों ओर सभी देवगणों को स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये—विशेषतया इन्द्र, नन्दीश्वर

---

* न विद्यतेऽयं श्लोको ग पुस्तके ।

[1] ग. साक्षताङ्गी ।

शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शंकरम् । प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः ॥२३
नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः । सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम् ॥२४
गन्धर्वविद्याधरकिंनराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो[1] महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥२५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयं ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं [2]नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ॥२६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षण एकोनषष्टयधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५९॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१२९८९॥

अथ षष्टयधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अधुना संप्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् । अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् ॥१

एवं महाकाल से युक्त शंकर को बनाना चाहिये। चारों ओर विनम्रभाव से लोकपाल एवं गणपति गणों को बनाना चाहिये ।२२-२३। नचाते एवं भृङ्गी बजाते हुए भूतों तथा वेतालों की मूर्तियाँ भी बनानी चाहिये, जो सभी हृष्ट-पुष्ट तथा परमेश्वर शिव की स्तुति में लीन हों। गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा एवं गुह्यकों के पति तथा महेन्द्र प्रभृति सैकड़ों देवताओं एवं श्रेष्ठ मुनिवरों से नमस्कार किये जाते हुए, अक्ष माला धारण किये हुए; सैकड़ों वृक्षों के पुष्पादि रूप उपहारों को समर्पित करते हुए, सैकड़ों गणों द्वारा पूजित, अमरों एवं मनुष्यों के पूजनीय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर की प्रतिमा बनानी चाहिये ।२४-२६।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२५९॥

अध्याय २६०

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अर्धनारीश्वर शिव की सुन्दर प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूँ। देवदेव शंकर जी के आधे भाग में अति सुन्दर स्त्री का रूप निर्मित होता है। अर्ध

---

[1] ग. °शोऽपि संवृतः सुरेन्द्रमुख्यैरभिवन्द्यमानः । धृ° । [2] ङ. च. °णापरमं प्रजानाम् । इ° ।

ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः । उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ॥२
वासुकिं दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् । बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणे करे ॥
त्रिशूलं वाऽपि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलं च विशेषतः । वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ॥४
उपवीतं च कर्तव्यं मणिमुक्तामयं तथा ॥५
स्तनभारं तथाऽर्धे तु वामे [1]पीतं प्रकल्पयेत्[2] । हारार्धमुज्ज्वलं[3] [4]कुर्याच्छ्रोण्यर्धं[5] तु तथैव च ॥६
लिङ्गार्ध्वमूर्धगं[6] कुर्याद्व्यालाजिनकृताम्बरम् । वामे लम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ॥७
नानारत्नसमोपेतं दक्षिणं भुजगान्वितम् । देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम्[7] ॥८
किंचिदूर्ध्वं तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु । रत्नैर्विभूषितान्कुर्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान् ॥९
सालक्तकं तथा पादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा । अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ॥१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः । संस्थानं तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ॥११

भाग में जटा तथा बाल चन्द्रमा की कला से युक्त शिव की प्रतिमा बनानी चाहिये, उमा के अर्ध भाग में सीमन्त (केशकलाप) एवं तिलक निर्मित करनी चाहिये ।१-२। इस मूर्ति के दाहिने कान के समीप नगराज वासुकि तथा बायें कान के समीप कुण्डल बनाना चाहिये । उसके ऊपर की ओर केशों का आभूषण तथा बालिका (बाली) बनानी चाहिये । दाहिने हाथ में कपाल भी बनाना चाहिये, शूलधारी देवदेव शंकर के दाहिने हाथ में त्रिशूल भी बनाना चाहिये । बायीं ओर दर्पण विशेषतया कमल देना चाहिये, बायें बाहु को केयूर तथा बलय से युक्त बनाना चाहिये । मणि एवं मोतियों से संयुक्त यज्ञोपवीत की रचना करनी चाहिये ।३-५। प्रतिमा के बायें भाग की ओर स्तन का भाग निर्मित करना चाहिये, जो पीले वर्ण का हो । हार का आधा भाग उज्ज्वल वर्ण का हो, नितम्ब का आधा भाग भी उसी प्रकार श्वेतवर्ण का होना चाहिये । लिंग से ऊपर का भाग सिंह के चर्म से परिवृत बनाना चाहिये । बायें भाग को कटि में पहने हुए तीन सूत्रों से युक्त विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित एवं लम्बे वस्त्र से सुशोभित बनाना चाहिये । दाहिने भाग को सर्पों से घिरा हुआ बनाका चाहिये ।६-७½। देव का दाहिना पैर कमल के ऊपर विराजमान रहता है, उससे कुछ ऊपर की ओर बायाँ पैर नूपुर से विभूषित रहना चाहिये, अंगुलियों में विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित अंगूठी रहनी चाहिये । सर्वदा पार्वती के चरणों को महावर के रंग से रंगा हुआ प्रदर्शित करना चाहिये । इस प्रसंग में मैं अर्धनारीश्वर के रूप का यह प्रकार आप लोगों को बता चुका । ऋषिगण ! अब उमा-महेश्वर की मूर्ति के लक्षण सुनिये । उक्त उमामहेश्वर की प्रतिमा मनोहर लीलाओं से युक्त होती है ।८-११।

---

[1] क. ख. पीनं । [2] क. ख. °त् । परा° । [3] ङ. मुत्पलं । [4] ग. °र्याद्योन्यर्धं च त° । [5] घ. ङ. °ण्यर्धं तु [6] ग. °र्धमर्धकं कु° । [7] क. ख. °म् । कंचिदर्धे त° ।

चतुर्भुजं द्विबाहुं वा [1]जटाभारेन्दुभूषितम्[2] । लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ॥१२
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामे कुचभरे करम् । द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ॥१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषं च तथाऽर्धेन्दुकृतासनम्[3] । वामे तु संस्थिता देवी सस्योरौ बाहुगूहिता ॥१४
शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललितानना । सवालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्ज्वला[4] ॥१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित् । हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ॥१६
[5]वामांसं देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः । दक्षिणं तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा ॥१७
स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिजैः[6] क्वचित् । वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ॥१८
कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम् । जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ॥१९
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् । माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः ॥२०
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता । शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ॥२१

उसे जटाओं के भार तथा चन्द्रमा से विभूषित दो अथवा चार बाहुओं से युक्त बनाना चाहिये । तीन नेत्र से युक्त शिव का एक हाथ उमा के स्कन्ध पर विराजमान बनाना चाहिये । दाहिने हाथ में कमल तथा शूल हो, तथा बायें हाथ को उमा के स्तन पर न्यस्त बनाना चाहिये । इस मूर्ति को विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित तथा व्याघ्र के चर्म से परिवृत करना चाहिये । इस मूर्ति को भली भाँति प्रतिष्ठित सुन्दर वेशों से सुसज्जित तथा मुखभाग को आधे चन्द्रमा की भाँति मनोहर बनाना चाहिये । इस मूर्ति के बायें भाग में देवी की मूर्ति होगी, जिसके दोनों वक्ष भाग बाहुओं में निगूढ़ रहेंगे ।१२-१४। शिव के विविध आभूषणों से आभूषित अलकावलि द्वारा पार्वती की प्रतिमा का मुख भाग अति ललित बनाना चाहिये, जिसमें वालिका (बाली) से बिभूषित कान एवं तिलक से विभूषित उज्ज्वल ललाट शोभायमान हो रहा हो । कहीं-कहीं मणियों से जटित कुण्डलों से कानों के आभरण बनते हैं। पार्वती की उक्त प्रतिमा में हार एवं केयूर शोभायमान हों तथा उसका ध्यान शिव के मुख की ओर हो । देवदेव शंकर के बायें भाग को लीला पूर्वक स्पर्श कर रही हो तथा उसका दाहिना हाथ दाहिने भाग से बाहर की ओर बना हुआ हो। अथवा किसी किसी प्रतिमा में शंकर के दाहिने कंधे पर रहता है और अंगुलियों के नखों से कुक्षि प्रदेश में स्पर्श करता रहता है ।१५-१७½। बाएँ हाथ में दर्पण तथा अति सुन्दर कमल देना चाहिये, नितम्ब में लम्बे तीन कटि-सूत्र बने रहने चाहिये । पार्वती के दोनों ओर जया, विजया, स्वामिकार्त्तिकेय तथा गणेश को बनाना चाहिये, और तोरण द्वार पर शिव के गणों तथा यक्षों को बनाना चाहिये । उसी प्रकार माला, विद्याधरों एवं वीणा से सुशोभित अप्सराओं के समूह बनाने चाहिये ।१८-२०। समृद्धि के चाहने वालों को उमेश शिव जी की इस प्रकार की प्रतिमा बनवानी चाहिये । अब सभी पापों के विनाशक शिवनारायण की प्रतिमा का

---

[1] ग. जपमालेन्दु° । [2] क. ख. °भूषणम् । लो° । [3] क. ख. °ताननम् । वा° । [4] च. °कोष्ठका । म । [5] ङ च. वामाङ्गं । [6] ग. °ङ्गुलीभिः क° ।

वामार्धे माधवं[1] विद्याद्दक्षिणे शूलपाणिनम् । बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम् । *चक्रस्थाने गदां वाऽपि पाणौ दद्यादधस्तले[2] ॥२३
शङ्खं [3]चैवोत्तरे दद्यात्कटचर्धं भूषणोज्ज्वलम् । पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ॥२४
दक्षिणार्धं जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्[4] । भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ॥२५
द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् । व्यालोपवीतसंयुक्तं कटचर्धं कृत्तिवाससम् ॥२६
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् । शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ॥२७
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् । तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परे[5] ॥२८
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां[6] दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् । विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥२९
दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं [7]तस्याः प्रकल्पयेत् । कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि ॥३०

प्रकार बतला रहा हूँ । इस प्रतिमा के बायीं ओर के आधे भाग में विष्णु भगवान् तथा दाहिनी ओर के आधे भाग में शूलपाणि को बनाना चाहिये । कृष्ण की दोनों भुजाएँ मणिजटित केयूर से विभूषित होनी चाहिये ।२१-२२। दोनों भुजाओं में शंख एवं चक्र धारण किये हों, तथा मनोहर अंगुलियाँ लालवर्ण की बनी हुई हों । चक्र के स्थान में गदा भी दे दी जानी चाहिये, जो नीचे की ओर हो । उत्तर ओर शंख देना चाहिये कटि के आधे भाग में उज्ज्वल आभूषण हो । पीले वस्त्र पहिनाये गये हों तथा चरण में मणिजटित आभूषण हों । उक्त मूर्ति का दाहिना भाग जटा के भार तथा आधे चन्द्रमा रूप आभूषण से विभूषित बनाना चाहिये । वर देनेवाले दाहिने हाथ को भुजंगों के हार रूप वलय से विभूषित करना चाहिये ।२३-२५। दूसरे हाथ को सुन्दर त्रिशूल से विभूषित बनाना चाहिये । मूर्ति में यज्ञोपवीत के स्थान पर सर्प बने हों, कटि के आधे भाग में गजचर्म परिवृत हो । नाग से विभूषित चरण मणियों तथा रत्नों से अलंकृत हों । शिवनारायण के उत्तम स्वरूप का निर्माण इस प्रकार करना चाहिये ।२६-२७। अब हाथ में पद्म धारण किये हुए गदाधारी महावाराह की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उसके दातों के अर्धभाग अतितीक्ष्ण हों, थूथन बना हुआ हो, मुख हो, बायीं केहुनी पर पृथ्वी हो, दंष्ट्रा के अग्रभाग पर कमलयुक्त भयभीत उबारी हुई पृथ्वी की प्रतिमा हो, जिसका मुख अति विस्मय से सुप्रसन्न हो, ऐसी पृथ्वी को मूर्ति के ऊपर की ओर बनाना चाहिये ।२८-२९। उस पृथ्वी का दाहिना हाथ कटि प्रदेश पर हो, नागेन्द्र के मस्तक पर तथा कूर्म पर महावाराह के एक-एक चरण अवलम्बित हों । सभी लोकपाल गण स्तुति करते हुए चारो ओर बनाये गये हों । नृसिंह की

---

*इत आरभ्य कृत्तिवाससमित्यन्तग्रन्थो ङ च पुस्तकयोर्न ।

---

[1] ङ. च. °वं कुर्याद्द° । [2] क ख. °द्यादगदाभुतः । शं° । [3] ग. चैवोत्तरे । [4] ग. घ. °तल्लक्षण° । [5] क. ख. °र्परम् । दं° । [6] ङ दंष्ट्रयोद्भृतमात्रां तां ध° । [7] ग. घ. तस्य ।

संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् । नारसिंहं तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वद्विदारितमुखेक्षणम्[1] । स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तं दितेः सुतम् ॥३२
विनिर्गतान्त्रजालं च दानवं परिकल्पयेत् । वमन्तं रुधिरं घोरं [2]भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३३
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणबन्धनैः । परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः[3] ॥३४
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् । स्तूयमानं तथा विष्णं दर्शयेदमराधिपैः ॥३५
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम् । पादपार्श्वे तथा[4] बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥३६
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम् । दक्षिणे छत्रिकां[5] दद्यान्मुखं दीनं [6]प्रकल्पयेत् ॥३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः । बन्धनं चास्य कुर्वन्तं गरुडं तस्य दर्शयेत् ॥३८
मत्स्यरूपं तथा मत्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत् । एवंरूपस्तु भगवान्कार्यो नारायणो हरिः ॥३९
ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः । हंसारूढः क्वचित्कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥४०

प्रतिमा आठ भुजाओं से युक्त बनानी चाहिये । उन्हीं के अनुरूप अति भयानक सिंहासन का निर्माण करना चाहिये, उनका मुख और आंखे फैली हुई होनी चाहिये । कानों तक विकराल जटाएँ बिखरी होनी चाहिये, तथा दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को फाड़ रहे हों—ऐसा बनाना चाहिये ।३०-३२। उस दैत्य के पेट से उसकी आतें बाहर घिर पड़ी हों, मुख से रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, वदन एवं आखें अति विकराल हों । कहीं कहीं पर नृसिंह की प्रतिमा को युद्ध सामग्रियों से युक्त दैत्यों से युद्ध करती हुई बनानी चाहिये, और अतिशय थके हुए दैत्य से बारम्बार तर्जित किये जाते हुए दिखाना चाहिये ।३३-३४। उस प्रतिमा में दैत्य को तलवार एवं ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये एवं विष्णु भगवान् की श्रेष्ठ देवगणों द्वारा प्रार्थना की जा रही हो—यह भी दिखाना चाहिये । त्रिविक्रम की प्रतिमा को बता रहा हूँ, जो निखिल ब्रह्माण्ड को उल्लंघित करने के लिए भयानक आकृति से युक्त रहते हैं । उनके चरणों के समीप मे ऊपर की ओर बाहु का निर्माण करना चाहिये ।३५-३६। नीचे की ओर उन्हीं की भांति वामन को कमण्डलु के साथ बनाना चाहिये । दाहिनी ओर छोटी सी छतरी देनी चाहिये, मुख को दीनता व्यक्त करनेवाला बनाना चाहिये । उन्हीं की बगल में जल के कमंडलु को लिए हुए बलि का निर्माण होना चाहिये, और उसी स्थल पर बलि को बांधते हुए गरुड़ को दिखाना चाहिये ।३७-३८। इसी प्रकार मत्स्य (मछली) के आकार में मत्स्य भगवान् की तथा कच्छप की आकृति के समान कूर्म भगवान् की प्रतिमा बनानी चाहिये । इस प्रकार उपर्युक्त नियमों के साथ भगवान् बिष्णु की विविध प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिये । ब्रह्मा को कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंवाला बनाना चाहिये, कहीं पर हंस पर बैठा हुआ तथा कहीं पर कमल पर विराजमान बनाना चाहिये ।३९-४०।

---

[1] ग. °म् । उच्चपो° । [2] ग. ङ. च. °टीकृतलक्ष° । [3] घ. ङ. च. °धिपम् । त° । [4] ग. ङ. च. °धाराहु° । [5] ङ. छत्रमाविद्या° । [6] ङ. प्रदर्शयेत् ।

वर्णतः[1] पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः । कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥४१
वामे दण्डधरं तद्वत्स्रुवं चापि प्रदर्शयेत् । मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः ॥४२
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ्छुक्लाम्बरधरं विभुम् । मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ॥४३
आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः । वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्याः पैतामहे पदे । कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम्[2] ॥४५
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम् । दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम्* ॥४६
स्थापयेत्स्वेष्टनगरे भुजान्द्वादश कारयेत् । चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वने ग्रामे द्विबाहुकः ॥४७
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरः शूलं तथैव च । [3]वरदश्चैव हस्तः स्यादथ चाभयदो भवेत् ॥४८
एते दक्षिणतो ज्ञेयः केयूरकटकोज्ज्वलाः । धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ॥४९
खेटकं ताम्रचूडं च वामहस्ते तु शस्यते । द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात्कुक्कुटोपरि ॥५०

उनकी प्रतिमा का रंग कमल के भीतरी भाग के समान हो, चार बाहुएं हों, सुन्दर नेत्र हों, कमण्डलु बाएं हाथ में हो, दाहिने हाथ में स्रुवा हो। बाएँ हाथ में भी दण्ड तथा स्रुवा धारण किये हुए प्रतिमा बनाई जाती है। उन के चारों ओर देव, गन्धर्व एवं मुनिगण स्तुति कर रहे हों—ऐसा दिखाया जाना चाहिये। ऐसा उपक्रम दिखाया जाना चाहिये मानो वे तीनों लोकों की रचना में प्रवृत्त हो रहे हैं श्वेत वस्त्र धारण किये हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्मा की ऐसी प्रतिमा बनानी चाहिये। मृगचर्मधारी तथा दिव्य यज्ञोपवीतधारी भी उन्हें बनाना चाहिये ।४१-४३। उनकी बगल में आज्यस्थाली (घृत की थाली), रखी गई हो तथा चारों वेदों की मूर्तियाँ हों। उनके बाएं बगल में सावित्री तथा दाहिने बगल में सरस्वती की प्रतिमा बनी हुई हो। पितामह के चरणों के अग्रभाग के पास मुनियों के समूह बने हुए हों। अब मध्याह्न के सूर्य की भाँति परम तेजोमय कार्त्तिकेय की प्रतिमा का प्रकार बता रहा हूँ। उन सुकुमार कार्त्तिकेय को कमल के मध्यभाग के समान रंग में, उनके सुन्दर वाहन मयूर से युक्त, दण्ड एवं चीर से सुशोभित बनाना चाहिये ।४४-४६। अपने इष्ट नगर में उनकी बारह भुजाओं वाली प्रतिमा बनानी चाहिये, तुच्छ नगर में चार भुजाओं से तथा वन और साधारण ग्राम में दो बाहुवाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। शक्ति, पाश, खड्ग, शर और शूल उनके हाथों में शोभायमान हों। एक हाथ अभयदान तथा वरदान देनेवाला बनाना चाहिये—ये छः हाथ केयूर तथा कटक से विभूषित उज्ज्वल वर्ण के दाहिनी ओर बनाने चाहिये ।४७-४८½। धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल, तथा ताम्रचूड़ (मुर्गा) इन वस्तुओं तथा विशेषताओं से युक्त बायीं ओर के हाथों को उसी वर्ण का बनाना चाहिये। दो भुजाओंवाली कार्त्तिकेय की प्रतिमा के बाएँ हाथ में शक्ति तथा दाहिने हाथ को कुक्कुट के ऊपर न्यस्त बनामा चाहिये ।४९-५०।

---

* इतः परं सार्धश्लोको न विद्यते ङ. पुस्तके ।

---

[1] ग. ङ. च. वर्णेन । [2] ङ. °त्यसंनिभम् । षड्भिस्तु वदनैर्युं° । [3] क. ख. °श्चैकह° ।

चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः । वरदो भयदो वापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः ॥५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् । लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्[1] ॥५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम् । स्वदन्तं दक्षिणकर उत्पलं चापरे तथा ॥५३
मोदकं[2] परशुं चैव वामतः परिकल्पयेत् । बृहत्त्वात्क्षिप्तवदनं[3] पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ॥५४
युक्तं[4] तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् । कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् । जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतलक्षणाम् ॥५६
लोचनत्रयसंयुक्तां[5] पूर्णेन्दुसदृशाननाम् । अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥५७
नवयौवनसंपन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ॥५८
[6]त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् । त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्खड्गं चक्रं क्रमादधः ॥५९
तीक्ष्णबाणं तथा शक्ति वामतोऽपि निबोधत । खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च ॥६०

चतुर्भुज कार्त्तिकेय की प्रतिमा के बायीं ओर के दो हाथों में शक्ति और पाश रहने चाहिये, दाहिनी ओर के हाथ में तलवार हो और चौथा हाथ वरदान तथा अभय दान देनेवाला होना चाहिये ।५१। अब हाथी के मुखवाले त्रिलोचन गणेश की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उसे लम्बे उदरवाला, चार बाहुयुक्त, सर्प का यज्ञोपवीतधारी बनाना चाहिये । तथा विस्तृत कर्ण, विशाल तुण्ड, एक दांत वाला तथा फूले हुए उदरवाला बनाना चाहिये । उनके दाहिने हाथ में अपना दाँत तथा अन्य हाथ में कमल होना चाहिये ।५२-५३। प्रतिमा की बायीं ओर मोदक तथा परशु बनाने चाहिये, बृहत् होने के कारण मुख नीचे की ओर विस्तृत, स्कन्ध, पाद एवं हाथ पुष्ट होने चाहिये । ऋद्धि तथा सिद्धि उनकी दोनों ओर से युक्त हो, नीचे की ओर मूषक बना हुआ हो । अब दस भुजाओं वाली कात्यायनी के रूप का वर्णन कर रहा हूँ ।५४-५५। तीनों देवताओं की आकृतियों की अनुकरण करनेवाली, जटा जूट से विभूषित, अर्धचन्द्र से परिलक्षित, तीन नेत्रोंवाली, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली, अलसी के पुष्प के समान नील वर्णवाली, तेजोमय सुन्दर नेत्रों से विभूषित, नव यौवन सम्पन्न, सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित, सुन्दर मनोहारि दाँतों से युक्त, पीन एवं उन्नत स्तनोंवाली त्रिभंगीयुक्त, महिषासुरनाशिनी की प्रतिमा बनानी चाहिये ।५६-५८½। त्रिशूल को उसके दाहिने हाथ में देना चाहिये तथा खड्ग और चक्र क्रमशः उसके नीचे होने चाहिये, तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को भी बायीं ओर से जानना चाहिये । ढाल, पूर्ण धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा तथा परशु—इन सब को

---

[1] घ. °म् । स्तब्धक° । ङ. °म् । शूर्पक° । [2] ग. लड्डुक° । [3] ग. °हत्संक्षिप्तगहनं । ङ. च. । °हत्कुक्षिप्रहसनं । [4] ग. घ. ङ. च. °क्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्या° । [5] ग. घ. ङ. °क्तां पद्मेन्दु । [6] ङ. च. °ङ्गबलिसंछन्नां म° ।

घण्टां व परशुं वाऽपि वामतः संनिवेशयेत् । [* अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥६१
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥६२
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम् । वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ॥६३
+सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया । वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥६४
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् । किंचिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥६५
स्तूयमानं च तद्रूपममरैः संनिवेशयेत्] । इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ॥६६
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम् । पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ॥६७
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम् । वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम् ॥६८
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम् । छत्रचामरधारिण्यः[1] स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ॥६९

भी बायीं ओर से सन्निविष्ट करना चाहिये । प्रतिमा के नीचे की ओर शिरोविहीन महिषासुर की प्रतिमा बनानी चाहिये ।५९-६१। फिर शिर के कटने पर शरीर से निकलता हुआ दानव दिखाना चाहिये । जिसके हाथ में खड्ग हो, हृदय शूल से भिन्न हो, बाहर निकलती हुई जिसकी आतें दिखाई पड़ रही हों, गिरते हुए रक्त से सारे अंग लाल हो रहे हों, फैले हुए लाल नेत्र दिखाई पड़ रहे हों, नागपाश से चारों ओर घिरा हुआ हो, भृकुटी तथा भीषण मुख बने हों, दुर्गा द्वारा पाशयुक्त बाएं हाथ से पकड़ा गया हो । देवी के सिंह को मुख से रक्त वमन करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये ।६२-६४। देवी का दाहिना पैर समान रूप से सिंह के ऊपर स्थित हो तथा बांया पैर कुछ ऊपर की ओर हो । उसका अंगूठा महिष के ऊपर लगा हुआ हो, देवतागण चारों ओर से स्तुति कर रहे हों—यह भी दिखाना चाहिये ।६५-६६। अब सुरराज इन्द्र की प्रतिमा का प्रकार विशेषरूपेण बतला रहा हूँ । सहस्र नेत्रोंवाले देवेन्द्र को मत्तगयन्द पर विराजमान बनाना चाहिये, वक्षःस्थल एवं मुख विशाल हों, स्कन्ध सिंह के समान हो, भुजाएँ विशाल हों, किरीट एवं कुण्डल धारण किये हों, जघन स्थल भुजाएं तथा आंखे विस्तृत तथा पीवर हों, वज्र एवं कमल धारण किये हों, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित हों, देवता तथा गन्धर्वगण पूजा कर रहे हों, अप्सराओं का समूह सेवा में लगा हो, पार्श्व में छत्र चमर धारण किये हुए स्त्रियाँ खड़ी हों, ऐसा दिखाना चाहिये ।६७-६९। सिंहासन

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति । + एतदर्धं न विद्यते ग. ङ. च. पुस्तकेषु ।

---

[1] ग. °रिण्यौ स्त्रियौ पा° ।

सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुतम् । इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम् ॥७०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३०५६॥

अथैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः । रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ॥१
सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत् । मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ॥२
[१]नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् । स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ॥३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत् । वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसाऽऽवृतौ ॥४
प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ । कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ॥५

पर भी स्थित देवराज की प्रतिमा गन्धर्वों के गणों से युक्त बनानी चाहिये, उसकी बायीं ओर इन्द्राणी की प्रतिमा हो, जो कमल धारण किये हुए विराजमान हो ।७०।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिमा लक्षण नामक दो सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६०॥

अध्याय २६१

सूत ने कहा—ऋषिगण ! अब प्रभाकर सूर्य की प्रतिमा को सुनिये । उन सूर्य देव को सुन्दर नेत्रों से सुशोभित, हाथ में कमल धारण किये हुए, रथ पर विराजमान बनाना चाहिये ।१। उस रथ में सात अश्व हों, एक चक्का हो । सूर्यदेव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमल के मध्यवर्ती भाग के समान हो, विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित दोनों भुजाओं में वे कमल धारण किये हुए हों, वे कमल उनके स्कन्ध देश पर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये बनाने चाहिये ।२-३। उनका शरीर पर तक फैले हुए वस्त्र में छिपा हुआ हो । कहीं पर चित्रों में भी उनकी प्रतिमा प्रदर्शित की जानी चाहिये । उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रों में ढकी हुई हो । दोनों चरण तेजोमय हों, मूर्ति के दोनों ओर दण्डी और पिंगल नामक दो प्रतिहारियों को रखना चाहिये, उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषों के हाथों में खड्ग हो ।४-५। एक

---

[१] ङ. °णशोभाभ्यां भु° ।

लिखनीकृतहस्त च पार्श्वे धातारमव्ययम् । नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम् ॥६
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसंनिभः । [1]अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः ॥७
भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः । पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ॥८
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् । दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ॥९
बालार्कसदृशं तस्य [2]वदनं चापि दर्शयेत् । यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ॥१०
कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् । ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम् ॥११
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् । तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥१२
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् । सिंहासनगतं चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥१३
महिषश्चित्रगुप्तस्य करालाः किंकरास्तथा । समन्ताद्दर्शयेत्तस्य [3]सौम्यासौम्यान्सुरासुरान् ॥१४
राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालं च नैर्ऋतम् । नरारूढं महाकायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ॥१५

पार्श्व में हाथ में लेखनी लिये हुए अविनाशी धाता की मूर्ति हो और चारों ओर विभिन्न विभिन्न देवगण निर्मित किये गये हों । इस प्रकार दिवाकर की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये । इन सूर्य का सारथी अरुण है, जिसकी कान्ति पद्मिनी के पत्रों के समान है, उसके दोनों अगल बगल के दो अश्व, जो अन्त में स्थित हैं लम्बी ग्रीवावाले तथा अति सुन्दर बनाने चाहिये ।६-७। भुजङ्गों की रस्सी से बंधे हुए उन सातों अश्वों को लगाम युक्त रहना चाहिये । इस मूर्ति को पद्म पर अथवा वाहन पर अवस्थित बनाना चाहिये, उसके हाथो पर पद्म रहने चाहिये । अब सभी प्रकार के मनोरथों तथा फलों को देनेवाले अग्नि के स्वरूप का लक्षण बतला रहा हूं । अर्धचन्द्राकार आसन पर सुवर्ण के समान कान्तिवाले प्रज्वलित अग्नि की प्रतिमा बनानी चाहिये, उदयकालीन सूर्य की भांति मुख दिखाना चाहिये, यज्ञोपवीत धारी तथा लंबी दाढ़ीवाला बनाना चाहिये ।८-१०। उनके बायें हाथ में कमण्डलु तथा दाहिने हाथ में अक्षसूत्र रहना चाहिये । ज्वालाओं के मण्डल से विभूषित इनका उज्ज्वल वाहन अज बनाना चाहिये । अथवा मस्तक में सात ज्वालाओं से युक्त इनकी प्रतिमा को कुण्ड के मध्य में स्थापित करना चाहिये । अब दण्ड पाशधारी ऐश्वर्यशाली यमराज की प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूं ।११-१२। महान् महिष पर समारूढ काले अंजन के समूह के समान दिखाई पड़नेवाले सिंहासन पर बैठे हुए भी प्रदीप्त अग्नि के समान विकराल नेत्रोंवाले यम की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये । उनके समीप महिष, चित्रगुप्त के विकराल अनुचर वर्ग, मनोहर आकृतिवाले देवताओं तथा असुन्दर आकृतिवाले असुरों की आकृतियों का भी निर्माण होना चाहिये ।१३-१४। लोकपति राक्षसेन्द्र नैर्ऋति की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूं । मनुष्य पर आरूढ महान् आकारवाले चारों ओर राक्षस समूहों से घिरा हुआ,

---

१ ङ. अश्वाश्च बलितग्रीवाः प्रस्थितास्तस्य । २ घ. ङ. वसनं । ३ च. °म्यान्देवासुरांस्तथा । रा° ।

खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसंनिभम् । नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ॥१६
वरुणं च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् । शङ्खस्फटिकवर्णाभं[1] सितहाराम्बरावृतम् ॥१७
[2]झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् । वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रं तु मृगवाहनम् ॥१८
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम् । मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ॥१९
कुबेरं च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम् । महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ॥२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्यग्रकरैस्तथा[3] । हारकेयूररचितं[4] सिताम्बरधरं सदा ॥२१
गदाधरं च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् । नरयुक्तविमानस्थमेवं[5] रीत्या च कारयेद् ॥२२
तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम् । त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम् ॥२३
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनपूर्वशः । ब्रह्माणी ब्रह्मशदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भजा ॥२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः । महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ॥२५

खड्ग हाथ में लिये हुए, अति नीलवर्ण, काले कज्जलगिरि के समान दिखाई पड़नेवाले, नर समूहों से संयुक्त विमान पर समारूढ पीलेरंग के आभूषणों से विभूषित बनाना चाहिये ।१५-१६। महाबलवान् हाथ में पाश धारण करनेवाले वरुण की प्रतिमा का वर्णन कर रहा हूं । उनकी कान्ति शंख अथवा स्फटिक के वर्ण की होती है, श्वेत हार तथा वस्त्र से विभूषित रहते हैं, मीन के आसन पर विराजमान, शान्त, मुकुट और अङ्गदधारण करनेवाले हैं हरिण की सवारी वाले वायु रूप धूम्र को बताऊंगा ।१७-१८। चित्र वस्त्रधारी शान्त युवक तिरछी भौहोंवाले हैं । मृग पर अधिरूढ वरदायक पताका एवं ध्वजा से विभूषित, दोनों ओर कुण्डलों से अलंकृत कुवेर को बतला रहा हूं, वे महान् उदरवाले, विशालकाय एवं आठ निधियों से युक्त हैं, बहुतेरे गुह्यक गण उन्हें घेरे रहते हैं, जिनके हाथ धन सम्पत्ति से युक्त रहते हैं । कुवेर सर्वदा केयूर तथा हार से विभूषित तथा श्वेत वस्त्रधारी रहते हैं ।१९-२१। गदाधारी भी कुवेर की प्रतिमा बनायी जानी चाहिये । उस समय उन्हें वरदान देने में तत्पर मुकुट से विभूषित तथा नर युक्त विमान पर विराजमान, इस प्रकार से निर्मित करना चाहिये । इसी प्रकार ईश, धवल नेत्रोंवाले, श्वेत कान्तिवाले, हाथों में त्रिशूल लिये हुए, त्रिनेत्र वृषभारूढ देवाधिदेव शंकर की प्रतिमा का प्रकार भी बताया जाता है ।२२-२३। अब क्रमानुसार मातृकाओं की प्रतिमाओं का लक्षण बतला रहा हूं । ब्रह्माणी की प्रतिमा ब्रह्म के समान चार मुखोंवाली तथा चार भुजाओं वाली बनानी चाहिये ।२४। उन्हें हंस पर समासीन अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से विभूषित करना चाहिये । इसी प्रकार महेश्वर की प्रतिमा के अनुरूप माहेश्वरी की प्रतिमा निर्मित करनी

---

[1] ग. °भं हार काञ्चीवृतं शुभम् । झ । [2] घ. °नवरं शा° । [3] क. ख. °व्ययक° । [4] ङ. च. °तं चित्राम्ब° । [5] ग. °नस्थं पुष्पके वाऽपि का° ।

जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा । कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्यचतुर्भुजा ॥२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना । रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता ॥२७
हारकेयूरसंपन्ना कृकवाकुधरा तथा । वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता ॥२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा । *सिंहासनगता वाऽपि बालकेन समन्विता ॥२९
वाराहीं च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् । वराहसदृशी [1]देवी शिरश्चामरधारिणी ॥३०
गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी । इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम् ॥३१
गजासनगतां देवीं लोचनर्बहुभिर्वृताम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ॥३२
तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद्वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् । दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ॥३३
दंष्ट्राकरालवदनां[2] कुर्याच्चैव कृशोदरीम् । कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ॥३४
कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम्[3] । [4]मस्तिष्काक्तं च बिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे ॥३५

चाहिये । इन्हे जटा एवं मुकुट से विभूषित, वृषभासीन, मस्तक में चन्द्रमा से विभूषित, तीन हाथों में कपाल, शूल, एवं खट्वांग से युक्त तथा चौथे हाथ को वरदान देने के लिए फैलाया हुआ बनाना चाहिये ।२४-२६। स्वामिकार्त्तिकेय के समान कौमारी की प्रतिमा निर्मित करनी चाहिये, जो श्रेष्ठ मयूर के आसन पर समारूढ हों, लाल वस्त्र तथा शूल और शक्ति धारण किये हुए हों, हार एवं केयूर से युक्त, तथा हाथ में कृकवाकु (मुर्गा) धारण किये हों । वैष्णवी विष्णु के समान गरुड़ के ऊपर विराजमान हों चार बाहुवाली हों । एक भुजा वरदान देने के लिये उद्यत सी दिखाई पड़ती हो, तीन भुजाओं में शंख, चक्र और गदा हो, बालक से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई भी प्रतिमा निर्मित की जाती है ।२७-२९। अब महिष के ऊपर बैठी हुई वाराही की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूं, वे देवी वाराह के समान रहती हैं तथा शिर पर चामर धारण किये हुए रहती हैं ।३०। हाथों में गदा और चक्र धारण किये हुए बड़े बड़े दानवों के विनाश में तत्पर रहती हैं । इन्द्राणी को इन्द्र के समान वज्र, शूल और गदा धारण किये हुए हाथी पर विराजमान बनाना चाहिये ।३१। वें देवी बहुत से नेत्रों से युक्त, तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्तिवाली, दिव्य आभूषणों से आभूषित रहती हैं, तीक्ष्ण खड्ग उनके हाथों में रहता है । उन योगेश्वरी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूं, जिनकी जिह्वा लम्बी, केश ऊपर की ओर उठे हुए तथा हड्डियों के टुकड़ों से जो विभूषित रहती हैं । उनके दांत तथा मुख अति विकराल रहते हैं । उदर को अति दुर्बल बनाना चाहिये, कपालों की मालाएं तथा मुण्ड मालाओं से विभूषित बनाना चाहिये ।३२-३४। बाएं हाथ में रक्त से भीगा हुआ कपाल रहेगा जो मांस तथा रक्त से पूर्ण रहता है । दाहिने हाथ में शक्ति रहेगी ।३५। उस योगेश्वरी की प्रतिमा गृध्रा पर

---

* एतदर्धं न विद्यते ग. घ. च. पुस्तकेषु ।

---

[1] ग. ङ. च. °वी घण्टां चाम° । [2] ग. °ना कृष्णां चैव । [3] घ. च. °म् । सकेशं च शिरोऽन्यस्मिन्शस्त्रीकां दक्षिणे तथा । गृ° । [4] ग मल्लिकाचक्रमालां च बि° ।

गृध्रस्था [1]वायसस्था वा[2] निर्मांसा विनतोदरी । करालवदना तद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना ॥३६
चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा । दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ॥३७
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनीध्वजसंयुता । विनायकं च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ॥३८
वीरेश्वरश्च भगवान्वृषारूढो जटाधरः । वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ॥३९
श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् । सुयौवनां पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ॥४०
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम् । [3]सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः [4]सीमन्तभूषणम् ॥४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां [5]कुण्डलालकैः । कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ ॥४२
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ । पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥४३
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् । नानाभरणसंपन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥४४
पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चमरव्यग्रपाणयः । पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥४५

अथवा काक पर भी बैठी बनायी जानी चाहिये । शरीर में मांस न हो, तथा उदर अति कृश हो मुख अति कराल हो। उसी के अनुरूप तीन नेत्र भी बनाने चाहिये ।३६। चामुण्डा को घण्टा धारण किये हुए तथा बाघ के चर्म से सुशोभित बनाना चाहिये, उसी प्रकार कालिका को नग्न रूप से कपाल धारण किये हुए गधे पर अवस्थित बनाना चाहिए। तथा सुन्दर लाल वर्ण के पुष्पों के आभरण तथा झाड़ की ध्वजा से युक्त प्रदर्शित करना चाहिये। इन मातृकाओं के समीप सर्वदा गणेश की प्रतिमा भी रखनी चाहिये; वे वीरेश्वर भगवान् वृषभारूढ़ जटा धारण किये हुए हाथ में वीणा धारण किये हुए त्रिशूल से सुशोभित मातृकाओं के आगे विराजमान रहते हैं ।३७-३९। नवीन अवस्थावाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उन सुन्दर नवयौवनावस्था वाली लक्ष्मी को उन्नत कपोल, लाल ओष्ठ, तिरछी भौहें, उठे हुए विशाल उरोजवाली तथा मणिजटित कुण्डल से विभूषित बनाना चाहिये। उनका मुखमण्डल अति सुन्दर तथा शिर केश विन्याश से विभूषित रहना चाहिये ।४०-४१। अथवा पद्म, स्वस्तिक तथा शंखों से युक्त कुण्डल एवं अलकावलि से सुशोभित कञ्चुक शरीर में धारण किये हुए तथा दोनों स्तनों पर हार की लरें शोभित हो रही हों—ऐसा निर्मित करना चाहिये । हाथी के शुण्डा दण्ड की भाँति स्थूल तथा विशाल दोनों भुजाएं केयूर तथा कटक से विभूषित हों, बाएं हाथ में कमल तथा दाहिने हाथ में श्री फल देना चाहिये ।४२-४३। उसी प्रकार मेखला का आभूणण भी पहिनाना चाहिये, शरीर की कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान गौर वर्ण की होनी चाहिये । विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर मनोहारी बस्त्रों से सुशोभित करना चाहिये ।४४। उन लक्ष्मी के पार्श्व में चामर धारण किये हुए अन्य स्त्रियों की प्रतिमाएँ भी निर्मित करनी चाहिये; वे लक्ष्मी पद्म के सिंहासन पर बने हुए पद्म के आसन पर ही समासीन हों ।४५। ऊपर से झज्झर को

---

[1] च वामसंस्था । ङ. वा शवस्था । [2] घ. वा कुनासा विगतो° । [3] ग. सुगण्डं च मु° । [4] ङ. च. °भूषितम् । प° । [5] ङ. कुञ्चिताल° ।

करिभ्यां स्नाप्यमानाऽसौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः । [1]प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथाऽपरौ ।।४६
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः । तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ।।४७
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः । नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ।।४८
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी । फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः ।।४९
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः । निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ।।५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः । दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वगोमायूनिषेवितः ।।५१
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशसमावृतम् । दक्षिणे [2]शस्त्रिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम् ।।५२
अथातः संप्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम् । पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम् ।।५३
दक्षिणे पुष्पबाणं च वामे पुष्पमयं धनुः । प्रीतिः स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता ।।५४
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं सारसान्वितम् । पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ।।५५
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च । सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान्कुसुमायुधः ।।५६

शुण्डा दण्ड में लिए हुए दो हाथी स्नान करा रहे हों, उन दोनों हाथियों के अतरिक्त दो दूसरे हाथी उन हाथियों पर जल को झज्जर द्वारा छोड़ रहे हों। गन्धर्व यक्ष तथा लोकेशगण स्तुति पाठ कर रहे हों।४६½। इसी प्रकार यक्षिणी की प्रतिमा सिद्धों एवं असुरों से सेवा की जाती हुई बनानी चाहिये। उसके अगल-बगल में दो कलश रहें तथा तोरण में देवताओं और दानवों की प्रतिमा रहे। नागों की भी प्रतिमा वहाँ रहे, जो खड्ग तथा ढाल धारण किये हों, नीचे की ओर उनका शरीर बनाना चाहिये, नाभि से ऊपर मनुष्य की आकृति रहनी चाहिये। शिर में बराबरी से दिखाई पड़नेवाले दो जिह्वा युक्त फण बनाने चाहिये।४७-४९। पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल आदि जातियों के लोगों को भी बनाना चाहिये जो कि देखने में अति विकृत, भयानक तथा मांसरहित दिखाई दें। क्षेत्रपाल को जटाओं से युक्त, विकृत मुखवाला, नग्न, शृगाल तथा कुत्तों से सेवित बनाना चाहिये, कपाल उसके बाएँ हाथ में देना चाहिये जो शिर के केशों से घिरा हुआ हो। दाहिने हाथ में असुरो का विनाश करनेवाली छूरी देनी चाहिये।५०-५२। अब इसके बाद दो भुजाओं वाले कुसमायुध कामदेव की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उनके एक पार्श्व में मकर की ध्वजा के समेत अश्वमुख का निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथ में पुष्प का बाण तथा बायें हाथ में पुष्पमय धनुष होना चाहिय, दाहिनी ओर भोजन की सामग्रियों के साथ प्रीति की प्रतिमा होनी चाहिये। उनकी बायीं ओर रति की प्रतिमा तथा सारस से युक्त शय्या हो।५३-५४½। उसी के बगल में वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप खर होना चाहिये। प्रतिमा के एक बगल में जल की बावली तथा नन्दनवन हो। इस प्रकार भगवान् कुसुमायुध को प्रयत्नपूर्वक अति सुन्दर बनाना चाहिये। प्रतिमा की मुद्रा कुछ वंकिम हो, मुख विस्मय युक्त

---

[1] प्रतिपालयती कार्यौ शृङ्गा° । [2] क, ख. शक्तिकां ।

संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद्विस्मयस्मितववक्त्रकम् । एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया ॥
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः ॥५७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने प्रतिमालक्षणं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३११६॥

अथ द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

[1]पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान्षोडश कारयेत् ॥१
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता । वृत्तो भागस्तथैकः[2] स्याद्वृतः[3] पटलभागतः ॥२
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः[4] कण्ठपट्टस्तु[5] भागतः[6] । भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥३

कुछ कुछ मुस्कराता हुआ हो । हे ऋषिगण ! मैंने संक्षेप में प्रतिमाओं का यह लक्षण बतलाया है, इन्हें विस्तारपूर्वक बतलाने की क्षमता तो बृहस्पति भी नहीं रखते ।५५-५७।

श्री मात्स्य महापुराण में देवतार्चानुकीर्तन प्रसंग में प्रतिमा लक्षण नामक
दो सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६१॥

अध्याय २६२

सूत ने कहा—अब क्रमशः पीठिका के लक्षणों को मैं आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये । पीठिका की ऊँचाई को सोलह भागों में विभक्त करे ।१। उसमें एक भाग तो पृथ्वी में घुसा हुआ हो । उसके ऊपर के चार भाग जगती माने गये हैं । उनके ऊपर का एक भाग वृत्त, कहलाता है, उसके ऊपर पटल भाग से लेकर एक भाग वृत्त, फिर तीन भागों में कण्ठ, उसके ऊपर तीन भागों में कण्ठपट, उसके

---

[1] ग. ङ. पिण्डिका । [2] ङ. वैवास्य वृत्तभागास्तु भागशः । भा° । [3] घ. °स्याद्वृत्तपट्टस्तु भा° । [4] क. °ण्ठः विण्डाग्पिण्डस्तु । [5] क. ख °ट्टस्त्रिभो° । [6] ग. °तः । धस्य न वृतपट्ट° ।

प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीं यावदेव तु । निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै [1]शेषपट्टिका ॥४
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र कार्यः[2] प्रणालकः । पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥५
विशेषान्देवताभेदाञ्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः । स्थण्डिला वाऽथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥६
पूर्णचन्द्रा च [3]वज्रा च पद्मा वार्धशशी तथा । त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत ॥७
स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः । वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला ॥८
चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् । मण्डला वर्तुला या तु [4]मेखलाभिर्गणप्रिया[5] ॥९
रक्ता[6] द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् । मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्रा वज्रिका भवेत् ॥१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किंचिद्ध्रस्वा तु मूलतः । तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥११
त्रिशूलसदृशी तद्वत्त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता । प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्ता लक्षणान्विता ॥१२
परिवेषं त्रिभागेन (ण) निर्गमं तत्र कारयेत् । विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः ॥१३
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन (ण) सुशोभनः । लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता ॥१४

ऊपर दो भागों में ऊर्ध्वपट्ट तथा शेष भाग को पट्टिका कहा जाता है। एक-एक भाग जगती पर्यन्त दूसरे से प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेष पट्टिका पर्यन्त सब का निर्गम होता है। पट्टिका में जल के निकलने के लिए प्रणाली बना देनी चाहिये। यह सामान्य रूप में सभी पीठिकाओं का लक्षण है।२-५। हे ऋषिगण ! अब विशेष रूप से देवताओं के भेद से पीठिकाओं की विशेषता सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा त्रिकोण ये पीठिकाओं के भेद हैं। अब इनकी अवस्थिति सुनिये। स्थण्डिला पीठिका के चार कोने होते हैं और मेखला आदि इसमें कुछ नहीं होती। वापी पीठिका वह है जिसमें दो मेखलाएं बनी हों, यक्षी को तीन मेखलायुक्त जानना चाहिये।६-८। चार पहलवाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिंग की स्थापना में नही प्रयुक्त करना चाहिये। जो गोलाकार मण्डल से युक्त तथा मेखलाओं से युक्त पीठिका है वह गणों की प्रिय कही जाती है। लाल वर्णवाली, दो मेखलाओं से युक्त पीठिका का नाम पूर्णचन्द्रा है। तीन मेखलाओं से युक्त छः कोनेवाली पीठिका को वज्रिक कहते हैं। मूल भाग में कुछ छोटी, सोलह पहलवाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुष के आकार वाली पीठिका को अर्द्धचन्द्रा कहते हैं।९-११। ऊपर की ओर से त्रिशूल के समान दिखाई पड़नेवाली पूर्व तथा उत्तर की ओर कुछ ढालू उत्तम लक्षणों से युक्त पीठिका को त्रिकोण कहते हैं, इसके तीन भाग परिधि के बाहर रहेंगे और मूल, अग्र तथा ऊपर—इन तीन भागो के विस्तार अधिक रहेंगे। त्रिभाग में सुन्दर जल निकलने की प्रणाली बनी होनी चाहिये। पीठिका को लिंग के आधे भाग की मोटाई से युक्त

---

१ ङ. च. °षपिण्डिका। २ च. कार्या प्रणालिका। पि°। ३ ङ च. चक्री। ४ घ. °ला त्रिगुणा प्रि°। ङ. °ला द्विगुणा प्रि°। ५ ङ. °या प्रोक्ता। च. °या। संरक्ता। ६ घ. रिक्ता।

मेखला तत्त्रिभागेन (ण) खातं चैव प्रमाणतः । अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत्सदा ॥१५
उत्तरस्थं प्रणालं च प्रमाणादधिकं[1] भवेत् । स्थण्डिलायामथाऽऽरोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥१६
गोप्रदा च भरेद्यक्षी वेदी संपत्प्रदा भवेत् । मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका ॥१७
आयुष्प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत् । पुत्रप्रदाऽर्धचन्द्रा स्यात्त्रिकोणा शत्रुनाशिनी ॥१८
देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः । शैले शैलमयीं दद्यात्पार्थिवे पार्थिवीं तथा ॥१९
दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च । नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥२०
अर्चायामसमं[2] दैर्घ्यं लिङ्गयामसमं तथा । यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत् ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम् ॥२१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने पीठिकानुकीर्तनं नाम
द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६२॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३१३७॥

बनाना चाहिये एवं लिंग के तीन भाग जितने प्रमाण में मेखला का खात बनाना चाहिये। अथवा चौथाई हीन बनाना चाहिये किन्तु सर्वदा सुन्दर बनाने का ध्यान रखना चाहिये ।१२-१५। उत्तर की ओर स्थित जल निकलने की प्रणाली प्रमाण से कुछ अधिक ही बनानी चाहिये । स्थण्डिला पीठिका के स्थापित करने से आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है । यक्षी गौ देने वाली कही गई है, वेदी सम्पत्ति देने वाली कही गयी है, मण्डला में कीर्ति प्राप्ति होती है, पूर्णचन्द्रिका वरदान देने वाली कही गई है ।१६-१७। वज्रा दीर्घायु प्रदान करनेवाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गई है, अर्धचन्द्रा पीठिका पुत्र प्रदान करने वाली तथा त्रिकोणा शत्रुनाशिनी है । देवता की पूजा के लिए ये दस पीठिकाएं कही गई हैं। पत्थर की मूर्ति में पत्थर की पीठिका स्थापित करनी चाहिये । मिट्टी की प्रतिमा में मिट्टी की पीठिका देनी चाहिये ।१८-१९। काष्ठ की प्रतिमा में काष्ठ की पीठिका तथा मिश्रित धातुओं की प्रतिमा में मिश्रित धातुओं की पीठिका रखनी चाहिये। मंगल फल की कामना करनेवालों को दूसरे प्रकार की पीठिका नहीं देनी चाहिये। इस पीठिका की लम्बाई मूर्ति में बराबर नहीं रखी जाती इसी प्रकार लिंग की पीठिका में भी लम्बाई में समानता नहीं रखी जाती है । जिस देवता की जो पत्नी हो उसे भी पीठ में निर्मित करना चाहिये । यह संक्षेप में मैंने आप लोगों को पीठिका का लक्षण बतलाया है ।२०-२१।

श्री मात्स्य महापुराण में देतवार्चानुकीर्तन प्रसंग में पीठिका वर्णन नामक दो सौ
बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६२॥

---

[1] क. ख. °धिकारयेत् । स्थ° । [2] क. ख. यामासमं ।

अथ त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणवणमुत्तमम् । सुस्निग्धं च सुवर्णं च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः ॥१
प्रासादस्य प्रमाणेत लिङ्गमानं विधीयते । लिङ्गमानेन वा विद्यात्प्रासादं शुभलक्षणम् ॥२
चतुरस्रे समे गर्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत् । वामेन ब्रह्मसूत्रस्य[1] [2]अर्चाया लिङ्गमेव च ॥३
प्रागुत्तरेण [3]लीनं तु दक्षिणापरमाश्रितम् । पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ॥४
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम् । द्वारं विभज्य पूर्वं तु एकविंशतिभागिकम् ॥५
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत् । तस्यार्धं तु त्रिधा कृत्वा भागं चोत्तरतस्त्यजेत् ॥६
एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत् । भागार्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यं तदिह शस्यते ॥७
*पञ्चभागविभक्तेषु[4] त्रिभागो ज्येष्ठ उच्यते । भाजिते नवधा गर्भे मध्यमं पाञ्चभागिकम् ॥८

अध्याय २६३

सूत ने कहा—अब इसके बाद उत्तम लिंग के लक्षण मैं आप लोगों को बता रहा हूँ। विचक्षण पुरुष अति चिकना सुवर्ण का लिंग निर्मित करे । मन्दिर प्रमाण के अनुरूप लिंग का प्रमाण किया जाता है अथवा लिंग के प्रमाणानुरूप प्रासाद का शुभ लक्षण जानना चाहिये ।१-२। सर्वप्रथम चार कोने वाले समान गर्त में ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये । उस ब्रह्म के बाईं ओर मूर्ति अथवा लिंग की स्थापना करनी चाहिये । वह पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर तो लीन (?) तथा दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर आश्रित (?) रहे । पुर के पश्चिम दिशा की ओर पूर्व द्वार की कल्पना करनी चाहिये और पूर्व दिशा की ओर पश्चिम द्वार तथा दक्षिण और उत्तर की ओर माहेन्द्र द्वार का निर्माण करना चाहिये ।३-४½। प्रथमतः पूर्व द्वार को इक्कीस भागों में विभक्त कर मध्य भाग में ब्रह्मसूत्र की कल्पना करनी चाहिये । इसके अर्द्धभाग को तीन भागों में विभक्त कर उत्तर की ओर एक भाग को छोड़ दे । इसी प्रकार दक्षिण की ओर एक भाग छोड़कर ब्रह्म स्थान की कल्पना करे । उस अर्ध भाग में लिंग की स्थापना प्रशस्त मानी गई है ।५-६। पाँच भागों में विभक्त करके उसमें तीन भागों को ज्येष्ठ कहा जाता है, भीतरी मान को नव भागो में विभक्त करके उसके पंचम भाग को मध्यम कहते हैं। गर्भ के एक भाग में ही नव भाग विभक्त करके लिंगों को स्थापित करे ।७-८½।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठश्च पुस्तके—पञ्चभागेन भक्तं तु त्रिभागे ज्येष्ठमुच्यत इति ।

---

[1] घ. °स्य कृत्वा वालि° । [2] क. ख. °र्चा वा लि° । [3] ग. लिङ्ग° । [4] क. ख. °क्ते वा त्रिभागे ज्यैष्ठयमुच्य° ।

एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत् । समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम् ॥९
[1]ज्येष्ठमर्धं कनीयोऽर्धं तथा मध्यममध्यमम् । एवं गर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ॥१०
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा । [2]कनीयस्त्रिविधं तद्वल्लिङ्गभेदा नवैव तु ॥११
नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधः । भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भं चतुरस्रकम् ॥१२
अष्टास्रं मध्यमं [3]ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य [4]वै ध्रुवम् । विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद्बुधः ॥
अष्टास्रं कारयेत्तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु । [5]षोडशास्रीकृतं पश्चाद्वर्तुलं कारयेत्ततः ॥१४
आयामं तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतं । माहेश्वरं त्रिभागं तु ऊर्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम् ॥१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु छतुरस्रो विधीयते । अष्टाश्रो वैष्णवो भागो मध्यस्तस्य उदाहृतः ॥१६
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गं वृद्धिपदं भवेत् । तथाऽन्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ॥६७
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत् । चतुर्धा तद्विभज्याथ विष्कम्भं तु प्रकल्पयेत् ॥१८
देवतायतनं सूत्रं भागत्रयविकल्पितम् । अधस्ताच्चतुरस्रं तु + अष्टास्रं मध्यभागतः ॥१९

इसी प्रकार गर्भ भाग को समसूत्र में विभक्त करके ज्येष्ठ, कनिष्ठ और मध्यम इन तीन स्थल भागों में विभक्त करे । इस प्रकार गर्भ को तीन भागों में विभक्त करना चाहिये, फिर उनमें तीन प्रकार के ज्येष्ठ, तीन प्रकार के मध्यम और तीन प्रकार के कनीय ये भेद होते हैं, जिससे लिङ्गों के कुल नव प्रकार के भेद हुए । बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि नाभि के आधे भाग में समान आठ भाग करके तीन भागों को छोड़कर चार कोणवाला विष्कम्भ बनाये ।९-१२। लिङ्ग के मध्य भाग में आठ कोण हो, तदनन्तर बचे हुए भाग को दो कोणों से बुद्धिमानों को लांछित करना चाहिये । उसके ऊपर आठ कोणोंवाला बनाये । सोलह कोणोंवाले भाग को गोलाकार में परिणत करे । इन देवता की नाभि में लम्बाई कुण्डलीकृत होगी, एवं माहेश्वर का त्रिभाग ऊर्ध्ववृत्त भाव से अवस्थित होगा । नीचे की ओर ब्रह्मभाग वह होगा जो चार कोणों वाला होगा । मध्य भाग जो आठ कोणोंवाला होगा वह वैष्णव भाग कहा जाता है ।१३-१६। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से निर्मित हुआ लिङ्ग समृद्धिप्रद होता है । इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों द्वारा गर्भमान को बतला रहा हूं । गर्भमान के प्रमाण द्वारा जो उचित लिङ्ग निर्मित होता है. उसे चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ की कल्पना करे एवं देवायतन को सूत्र द्वारा नाप करके तीन भागों में विभक्त करे । जिसमें नीचे का भाग चार कोणोवाला तथा मध्य का भाग आठ कोणोंवाला हो, इसके ऊपर पूज्य भाग और नाभि

+ इत आरभ्य चतुरस्रक इत्यन्तग्रन्थश्च पुस्तके नास्ति ।

---

[1] घ. ङ. ज्येष्ठार्धं कन्यसार्धं च. त° । [2] ग ङ. च. कनिष्ठं त्रिवि° । [3] ग. °थं नागलि° ।
[4] ग. घ. वैष्णव° । [5] ग. ङ. षास्रं ततः प° ।

पूज्यभागस्ततोऽर्धं तु नाभिभागस्तथोच्यते । आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ॥२०
चतुरस्रं[1] परित्यज्य अष्टास्रस्य तु यद्भवेत् । तस्याप्यर्धं परित्यज्य ततो वृत्तं तु कारयेत् ॥२१
शिरः प्रदक्षिणं तस्य [2]संक्षिप्तं मूलतो [3]न्यसेत् । + [4]भ्रष्टपूजं भवेल्लिङ्गमधस्ताद्विपुलं च यत् ॥२२
शिरसा च सदा निम्नं मनोज्ञं लक्षणान्वितम् । सौम्यं तु दृश्यते यत्तु लिङ्गं तद्वृद्धिदं भवेत् ॥२३
अथ मूले च मध्ये तु [5]प्रमाणं सर्वतः समम् । एवंविधं तु यल्लिङ्गं भवेत्तत्सार्वकामिकम् ॥२४
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्गं तदसत्संप्रचक्षते । एवं रत्नमयं कुर्यात्स्फाटिकं पार्थिवं तथा ॥
शुभं दारुमयं चापि यद्वा मनसि रोचते ॥२५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकतंनं नाम त्रिषष्टयधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३१६२॥

भाग कहा जाता है ।१७-१९½। लम्बाई और विस्तार के चौकोने भाग का जो प्रमाण हो, चौकोने भाग को छोड़कर आठ कोने वाले भाग का जो भाग हो, उसके आधे भाग को छोड़कर वृत्ताकार बनावे । अनन्तर शिरोभाग का प्रदक्षिणाकार तथा मूलदेश को संक्षिप्त रूप में न्यास करे, जिस लिङ्ग के नीचे का भाग विस्तृत होता है उसकी पूजा नष्ट हो जाती है, अर्थात् वह पूजनीय नहीं रह जाता ।२०-२२। शिर की ओर से सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्षणों से युक्त तथा सौम्य जो लिङ्ग दिखाई पड़ता है, वह समृद्धि का देनेवाला होता है । मूल भाग में तथा मध्य भाग में जो लिङ्ग एक समान रहता है वह सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है । इन उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त जो लिङ्ग नहीं होते वे असत् कहे जाते हैं, अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं । इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणों से रत्नमय, स्फटिकमय, मिट्टी का, शुभ काष्ठ का भी—जिस प्रकार की रुचि हो—लिङ्ग स्थापित करना चाहिये ।२३-२५।

श्री मात्स्य महापुराण में देवतार्चानुकीर्तन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६३॥

+इत आरभ्य न्यसेदित्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति ।

---

[1] क. ख. घ. °रस्रार्धं प° । [2] ग. सूत्रितं । [3] घ. ङ. च. मवेत् । [4] क. ख. च. ज्येष्ठपूज्यं । [5] क. ख. प्रमाणे ।

अथ चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ॥१

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । कुण्डमण्डपवेदीनां [1]प्रमाणं च यथाक्रमम् ॥२
चैत्रे वा फाल्गुने वाऽपि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥३
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने । पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । आसु प्रतिष्ठा विधिवत्कृता[2] बहुफला भवेत् ॥५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव[3] च । ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥६
हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥७
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते [4]शुभग्रहाः । एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते ॥८

अध्याय २६४

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! अब इन सभी देवताओं की प्रतिमा के स्थापन करने की प्रचलित विधि बतलाइये ।१।

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब मैं आप लोगों से देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की उत्तम विधि बतला रहा हूँ, साथ ही कुण्ड, मण्डप एवं वेदी इन सबों के प्रमाणों को भी क्रमानुरूप बता रहा हूँ। चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख अथवा माघ इन महीनों में सभी देवताओं की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने से मंगलदायी होती है । शुभकारी शुक्ल पक्ष में, जब कि दक्षिणायन बीत चला हो, अर्थात् उत्तरायण में, पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, पूर्णमासी तथा त्रयोदशी तिथियाँ कल्याण देनेवाली कही गई हैं । इनमें की गई विधिपूर्वक प्रतिष्ठा बतुत फल देनेवाली होती है ।२-५। दोनों आषाढ़ नक्षत्र अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, दोनों उत्तरा, उत्तर भाद्रपद, उतरा फाल्गुनी, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि में प्रशस्त माने गये हैं । बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—ये तीनों ग्रह शुभकारी हैं । इन तीनों ग्रहों से शुभ दृष्टि में देखी गयी लग्न तथा नक्षत्र प्रशंसनीय हैं ।६-८। ग्रह और तारा—इन दोनों का बल प्राप्त कर अर्थात् जब ग्रहों एवं ताराओं की शुभ दृष्टि

---

[1] प्रमाणेन । [2] घ. ङ. °रकृत्वा ब° । [3] ग. घ. ङ. च. °रात्रय° । [4] घ. ङ. शुभावहाः ।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च। निमित्तशकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाऽद्भुतादिकम् ॥९
शुभयोगे शुभस्थाने [1]क्रूरग्रहविवर्जिते। लग्न ऋक्षेः प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥१०
अयने विषुवे तद्वत्षडशीतिमुखे तथा। एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११
[2]प्राजापत्ये तु शयनं[3] श्वेते तूत्थापनं तथा। मुहूर्ते स्थापनं कुर्यात्पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ॥१२
प्रासादस्योत्तरे वाऽपि [4]पूर्वे वा मण्डपो भवेत्। हस्तान्षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः ॥१३
मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः। पञ्च सप्तापि चतुरः करान्कुर्वीत वेदिकाम् ॥१४
चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः। प्लक्षद्वारं भवेत्पूर्वं याम्ये चौदुम्बरं भवेत् ॥१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे। भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये ॥१६
सूपलिप्तं तथा[5] श्लक्ष्णं भूतलं स्यात्सुशोभनम्। [6]वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत्पुष्पपल्लवशोभितम्[7] ॥१७
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत्। अव्रणान्कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥१८
चूतपल्लवसंछन्नान्सितवस्त्रयुगान्वितान्। सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥१९

हो, तथा ग्रहों की पूजा करके, शुभ निमित्त शकुनादि को प्राप्तकर अद्भुत आदि बुरे योगों को वर्जित रख, शुभ योग में शुभ स्थान पर क्रूर ग्रहों को वर्जित रख शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रों में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्यों को करना चाहिये। अयन, विषुव और षडशीति (?) मुख इनमें विधिपूर्वक अनुष्ठान द्वारा स्थापना कार्य प्रशस्त माना गया है। विचक्षण मनुष्य को चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्त में शयन, श्वेत में उत्थापन तथा ब्राह्म में स्थापन करे।९-१२। अपने प्रासाद के पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मण्डप का निर्माण कराना चाहिये। मण्डप सोलह हाथ का बनाना चाहिये अथवा बारह हाथ का ही बनवाये, उसके मध्यभाग में वेदी हो, जो चारों ओर से समान तथा पाँच, सात अथवा चार हाथ विस्तृत हो।१३-१४। चतुर्मुख मण्डप के चारों ओर चार तोरण बने हों, पूर्व दिशा में पाकड़ का द्वार हो, दक्षिण में गूलर का हो, पश्चिम की ओर पीपल का तथा उत्तर का द्वार बरगद का बना हुआ हो। तोरण भूमि में एक हाथ प्रविष्ट हों तथा ऊंचाई में चार हाथ ऊँचे हों। भूतल भली भाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। विविध प्रकार के वस्त्रों से तथा पुष्प और पल्लवों से उसे सुशोभित करे।१५-१६। इस प्रकार मण्डप निर्माण करने के उपरान्त चारों द्वारों पर छिद्रादि रहित आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिये जो देदीप्यमान सुवर्ण की भाँति कान्ति युक्त, आम के पल्लवों से आच्छादित, दो श्वेत वस्त्र से युक्त, सभी औषधियों एवं फलों से युक्त तथा चन्दन मिश्रितजल से पूरित हों। इस प्रकार कलश को सुसज्जित कर मण्डप के मध्य में स्थापित कर सुगन्धित द्रव्यादि द्वारा

---

[1] ङ. °रयोबवि। [2] घ. ग. °त्येषु श°। [3] ङ. °षं सततं छ सदा भवेत्। मू°। [4] ङ. वामे। [5] घ. °था शुक्लं रथस्याध्वसु शो°। [6] ग. °द्वत्पञ्चप°। [7] च. °बपूरित°।

एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः । ध्वजादिरोहणं[1] कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥२०
ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् । पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य ॥२१
गन्धधूपादिकं कुर्यात्स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् । बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ॥२२
ऊर्ध्वं तु [2]ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः । संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः [3]शुभाः स्मृताः ॥२३
तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः । त्रिरात्रमेकरात्रं दा पञ्चरात्रमथापि वा ॥२४
अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम् । एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्[4] ॥२५
तस्याप्युत्ततरतः कुर्यात्स्नानमण्डपमुत्तमम् । तदर्धेन त्रिभागेन (ण) चतुर्भागेन (ण) वा पुनः ॥२६
आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद्बुधः । वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः ॥२७
क्षमध्वमिति तान्ब्रूयाद्यजमानोऽप्यतः परम् । देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्[5] ॥२८
अक्षणोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः । सर्वतस्तु बलिं दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसैः ॥२९
शुक्लपुष्पैरलंकृत्य घृतगुग्गुलधूपितम् । विप्राणां[6] वाचनं कुर्याद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्[7] ॥३०

मण्डप के चारो ओर ध्वजा आदि की स्थापना करनी चाहिये ।१८-२०। प्रथमतः सभी दिशाओं में लोकपालों के लिए ध्वजा की स्थापना करनी चाहिये । मण्डप के मध्य भाग में बादल के आकार की ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये, लोकपालों की पताका स्थापित करने के बाद उनके मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें गन्ध-धूपादि समर्पित करे तथा उन्हीं मन्त्रों द्वारा बलि भी दे । ब्रह्मा के लिए ऊपर तथा शेष वासुकि के लिए नीचे पूजा का विधान कहा गया है । संहिताओं में इन देवताओं के लिए जो मन्त्र आये हैं वे मंगलकारी माने गये हैं, उन्हीं मन्त्रों द्वारा लोकपालों की चारो ओर पूजा करनी चाहिये । तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सातरात का अधिवासन करना चाहिये ।२१-२४½। इस प्रकार तोरण तथा अधिवासन करके उक्त मण्डप की उत्तर दिशा की ओर उत्तम स्नानमण्डप का निर्माण करना चाहिये । इसका मान उक्त मण्डप के आधे भाग तिहाई अथवा चौथाई भाग में होना चाहिये ।२५-२६। सर्वप्रथम बुद्धिमान् पुरुष लिंग अथवा मूर्ति को लाकर वस्त्र, आभूषणादि द्वारा कारीगरों की अथवा उनकी, जो उसके परिचारक हैं, पूजा करे और तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि मेरे अपराधों को क्षमा करिये । तत्पश्चात् देवता को बिछौने पर लिटा कर उनकी नेत्र ज्योति संपादित करे ।२७-२८। आगे मैं नेत्रों तथा लिंग के उद्धार का प्रकार संक्षेप में बता रहा हूँ । सर्वप्रथम चारों ओर पीली सरसों, घृत तथा खीर द्वारा बलिप्रदान करे, श्वेत पुष्पों से अलंकृत कर घृत एवं गुग्गुल से धूप कर ब्राह्मणों का आवाहन करना चाहिये और उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा देनी चाहिये ।२९-३०।

---

[1] घ. °जाधिरोपणं । [2] ग. घ. ब्रह्मणो । [3] क. ख. घ. ङ. श्रुती । [4] ख. ङ. च. °नमण्डपषु । त° । [5] घ. °त् । लक्षणोद्धर° । [6] क ख. °णां चार्चनं । [7] ग. घ. ङ. च °म् । सोमकां क° ।

गां महीं कनकं चैव स्थापकाय निवेदयेत् । लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः ॥३१
ओंनमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ॥३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिःष्वपि स्मृतः । एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चने विलेखयेत् ॥३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम् । वृद्ध्यर्थं कारयेद्विद्वानमङ्गल्यविनाशनम्[1] ॥३४
लक्षणोद्धरणं[2] वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः । त्रिधा विभज्य [3]पूज्यायां लक्षणं स्याद्विभाजकम् ॥३५
लेखात्रयं तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् । *न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्रं छेदवर्जितम् ॥३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् । सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथा मध्यमके न्यसेत् ॥३७
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः । [4]लम्बयेत्सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः[5] ॥३८
तावत्प्रलम्बयेद्विद्वान्यावद्भागचतुष्टयम् । भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्संगमं ततः ॥३९

गो, पृथ्वी, तथा सुवर्ण ये वस्तुएँ स्थापना करनेवाले को देनी चाहिये । ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्र द्वारा लक्षण करवायें । वह मन्त्र यह है, 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ।' अर्थात् 'हे भगवन् ! विष्णो ! आप ही शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता एवं विश्वरूप हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं ।'' उपर्युक्त मन्त्र सभी देवताओं की प्रतिमा के नेत्रज्योति संस्कार में उपयोगी माना गया है ।३१-३२½। इस प्रकार देवेश को आमन्त्रित कर सुवर्ण द्वारा उनको चिह्नित करे । तदुपरान्त मांगलिक वाद्य, गीत एवं ब्राह्मणों की वेद ध्वनियों का समारोह करे । विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि के लिये इस अमङ्गल के विनाशक विधान का ऐसा उपक्रम करे । अब लिंग के लक्षणोद्धरण का प्रकार बता रहा हूँ । खूब स्वस्थ चित्त होकर लिंग के तीन भाग कर विभक्त करना चाहिये, और आठ जव का अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करे, वे न तो बहुत मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों, और न उनमें छिद्र हुआ हो ।३३-३६। ज्येष्ठ लिंग में जव के प्रमाण की निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये, उसके ऊपर उससे कुछ सूक्ष्म रेखा बनी हो । फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागों को छोड़ दे और दोनों पार्श्वों में समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे । विद्वान् पुरुष चार भागों तक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवे भाग के ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देना चाहिये । यहीं पृष्ठ

---

*इत आरभ्य चतुष्टयमित्यन्तग्रन्थो न विद्यते ङ. पुस्तके ।

---

[1] घ. °ल्यनिबर्हणम् । ल° । [2] ग. घ. ङ. °णं कुर्याल्लिङ्ग° । [3] ग. पूजार्थे ल° । घ. पूजाङ्ग ल° ।
[4] ग. लब्ध्वा विंशतिरेखां तु पा° । [5] ग. समाम् ।

रेखयोः संगमे[1] तद्वत्पृष्ठे भागद्वयं भवेत् । एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥४०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥२६४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३२०२॥

अथ पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम् । स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥१
सर्वावयवसंपूर्णो वेदमन्त्रविशारदः । पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो[2] दम्भलोभविवर्जितः ॥२
कृष्णसारमये देशे य उत्पन्नः शुभाकृतिः । शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः ॥३
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः । ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः ॥४
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः । मूर्तिपास्तु [3]द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ॥५

भाग में रेखाओं का संगम होगा। इन दो रेखाओं के संगमस्थल पर पृष्ठदेश में दो भाग हो जायँगे। संक्षेप में मैं यह लक्षण भी आप लोगों को बता चुका।३७-४०।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिष्ठानुकीर्तन नामक दो सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६४॥

अध्याय २६५

सूत ने कहा—ऋषिगण! अब मूर्तियों को रक्षा करनेवाले तथा प्रतिष्ठा करानेवालों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये।१। वह शारीरिक सभी अवयवों से सम्पूर्ण, वेद मन्त्रों का विशारद, पुराणों का जाननेवाला, तत्त्वदर्शी, दम्भ एवं लोभ से रहित, कृष्णसार मृग के देश में उत्पन्न हुआ हो, मनोहर आकृति का हो। नित्य शौच (पवित्रता) तथा आचार में तत्पर रहता हो, पाखण्डों से अहित तथा निःस्पृह हो, मित्र, और शत्रु में समता का व्यवहार करनेवाला हो. ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का प्रिय हो, तर्क, वितर्क एवं तत्त्वों का जाननेवावा हो, वास्तुशास्त्र का पारगामी विद्वान् हो।२-४। ऐसा व्यक्ति प्रतिष्ठा कराने के लिए उपयुक्त होता है। आचार्य ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिये जो सर्वदा सभी प्रकार के दोषों से दूर रहता हो, मूर्ति की रक्षा करनेवाले ब्राह्मणों को सत्कुलोत्पन्न तथा सरल स्वभाव का होना चाहिये।५। बत्तीस, सोलह अथवा

---

[1] ग. घ. °गमं तद्वद्द्वौ भागौ पृष्ठतो भ°। [2] ग. °ज्ञो विषयादिवि°। [3] घ. द्विधाचैव।

द्वात्रिंशत्षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः । ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपा वः प्रकीर्तिताः ॥६
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् । गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ॥७
पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन च । शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥८
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपो दिव्येति चापरः । यासां राजेति मन्त्रस्तु आपो हिष्ठेति चापरः ॥९
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः । प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन (ण) अभिवस्त्रेत्युदाहृतम् ॥१०
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते[1] । आभूरजेति च तथा रथे तिष्ठेति चापरः ॥११
रथे ब्रह्मरथे वाऽपि घृतां शिल्पिगणेन तु । आरोप्य[2] चाऽऽनयेद्विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ॥१२
ततः[3] प्रास्तीर्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः । कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत्प्राङ्मुखं ततः ॥१३
ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् । शिरोभागे तु देवस्य जपन्नेवं [4]निधापयेत् ॥१४
आपो देवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान्मातरोऽपि च । ततो दुकूलपट्टैश्च च्छाद्य नेत्रोपधानकम् ॥१५
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः । मधुना सर्पिषाऽभ्यज्य [5]पूज्य सिद्धार्थकैस्ततः ॥१६

आठ ब्राह्मण इस कर्म में आवश्यक होते हैं, वे सभी वेदों के पारगामी विद्वान् हों, ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ—इन तीन प्रकार के भेदों से इनकी तीन श्रेणियाँ रखी गई हैं। लिङ्ग अथवा मूर्ति—जिसकी स्थापना करनी हो, स्नानागार में लाकर गीत तथा माँगलिक शब्दों से उसे स्नान करावे, पंचगव्य, पंच कषाय, मृत्तिका, भस्म, जल—इन सामग्रियों द्वारा चार वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें पवित्रता से स्नान करावे।६-८। वे चार मन्त्र इस प्रकार आरम्भ होते हैं, "समुद्र ज्येष्ठ……" "आपो दिव्य………" "या स्मं राजा………" तथा 'आपो हिष्ठा……' इत्यादि। इस प्रकार देवता की प्रतिमा स्नान कराकर सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दनादि से पूजा कर दो वस्त्रों से ढंककर शयन करावे, यह वस्त्र से ढकने की विधि है।९-१०। तदनन्तर उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते, इस मन्त्र का उच्चारण कर प्रतिमा को उठावे और 'आभूरजा, 'रथे तिष्ठ' इन दो मन्त्रों से रथ पर अथवा ब्रह्मरथ पर शिल्पियों द्वारा रखाकर बिद्वान् पुरुष 'आकृष्णेन……' इत्यादि मन्त्र द्वारा मूर्ति को मन्दिर में प्रवेश करावे और शय्या पर कुश तथा पुष्पों को बिछाकर बुद्धिमान् पूर्वाभिमुख कर धीरे से स्थापित करे। तदनन्तर वस्त्र अथवा सुवर्ण समेत निद्राकलश को देवता के शिरोभाग की ओर इस मन्त्र को जपते हुए स्थापित करावे।११-१४। वे मन्त्र ये हैं, "आपो देवो……" "आपोऽस्मान् मातरो……" इत्यादि। तदनन्तर रेशमी वस्त्र द्वारा नेत्रोपधाम (?) को ढँक दे अथवा विचक्षण पुरुष को चाहिये कि वह रेशमी वस्त्र को ही देवता की प्रतिमा के शिर के नीचे रख दे। फिर मधु और घृत द्वारा स्नान करा कर पीली सरसों से

---

[1] ङ. च. °ते। आवो राजे°। [2] क. ख °ष्य च ततो विद्वा°। [3] ग. °तः प्रस्तीर्य सस्यानि स्था°।
[4] च. नियोजयेत्। [5] ग. धप्य।

आप्यायस्वेति मन्त्रेण या ते रुद्र शिवेति च। उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥१७
सितं प्रतिसरं दद्याद्बार्हस्पत्येति मन्त्रतः। दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापि वा ॥१८
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम्। पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानं पुष्पसंयुतम् ॥१९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि[1] च। भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥२०
अभि त्वा शूर मन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत्। क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वद्भक्ष्यभोज्यान्नपायसैः ॥२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत्समन्तात्परिपूजयेत्। बलिं दद्यात्प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥२२
त्र्यम्बकं यजामह इति सर्वतः शनकैर्भवि। [2]मूर्तिमान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षु विचक्षणः ॥२३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत्। श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥२४
तथा च शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं[3] तथैव च। रक्षोघ्नं च तथा सूक्तं पूर्वतो बह्वृचो[4] जपेत् ॥२५
रौद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम्। तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणे जपेत् ॥२६
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथंतरम्। तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ॥२७
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत्। अथर्वाङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ॥२८

पूजा करा कर 'आप्यायस्व', इस मन्त्र से तथा 'या ते रुद्रे शिवा' इस मन्त्र को अनन्य भाव से चारों ओर से सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पादि से पूजा करे।१५-१७। फिर 'बार्हस्पत्य' मंत्र द्वारा श्वेत वर्ण का सूत का बना हुआ हाथ का कंगन अर्पित करे। तदनन्तर रेशमी सूती अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्रों द्वारा प्रतिमा को भली भाँति ढँककर अगल-बगल में छत्र, चामर, दर्पण आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्प युक्त चँदोवा स्थापित करे। विविध प्रकार के रत्न, ओषधियाँ-अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकार के पात्र, शय्या आसनादि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप 'अभित्वा शूर' इस मन्त्र का जप करते हुए रखे। दुग्ध, मधु, घृत आदि खाद्य सामग्रियों को छहों प्रकार के रसों से संयुक्त अन्नादि एवं दुग्ध की बनी हुई अन्य वस्तुओं को भी चारों ओर रख कर पूजा करे, फिर इस मन्त्र का जप करते हुए प्रचुर परिमाण में बलि दे।१८-२२। वह मन्त्र यह है 'त्र्यम्बकं यजामहे', इत्यादि, इस मन्त्र का धीरे-धीरे जाप हो। तदनन्तर विचक्षण पुरुष सभी दिशाओं में मूर्ति की रक्षा करनेवालों को नियुक्त करे। चारों द्वारों पर चार द्वारपालों को नियुक्त करे। श्रीसूक्त, पावमान, सुमंगलदाई सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त, रक्षोघ्न इन ऋचाओं को पूर्व दिशा से बह्वृच् जप करे।२३-२५। रौद्र, पुरुष सूक्त, सशुक्रिय श्लोकाध्याय तथा मण्डलाध्याय को अध्वर्यु दक्षिण दिशा में जप करे। वामदेव्य, बृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्ति समेत रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड साम को छन्दोग पश्चिम दिशा में जप करे। इसी प्रकार अथर्वाङ्गिरस, नील, रौद्र, रौद्रक समेत

---

[1] घ. च. °पस्कर°।
[2] ग च. °तिमास्था°।
[3] ङ मित्रसू°।
[4] ग. ङ. च. °हृचः पठेत्। रो°।

तथाऽपराजितादेवीसप्तसूक्तं सरौद्रकम् । तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥२९
शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् । शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥३०
पलाशोदुम्बराश्वत्था अपामार्गः शमी तथा । हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ॥३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः । नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत्पुनः ॥३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम् । समेखलेषु ते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चाऽऽदरात् ॥३३
वितस्तिमात्रा योनिः स्याद्गजोष्ठसदृशी तथा । आयता छिद्रसंयुक्ता पार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ॥३४
[1]कुण्डात्कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला । विस्तारेणोच्छ्रयात्तद्वच्चतुरस्रा समा भवेत् ॥३५
वेदिभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः । एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते ॥३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः[2] । शान्तये लोकपालेभ्यो [3]मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं [4]कुर्यात्समाहितः । वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः ॥३८
जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः । देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेता कुण्डेषु संस्मरेत् ॥३९

अपराजित देवी के सप्त सूक्त तथा शान्तिकाध्याय को अथवा उत्तर दिशा में जप करे ।२६-२९। देव प्रतिमा के शिरोभाग की ओर स्थापक व्याहृतिपूर्वक शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हवन करे । पलाश, गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिरचिरा) तथा शमी—इन सब की एक सहस्र लकड़ियों में से एक-एक को छोड़ते हुए देवता के पैर का स्पर्श करे ।३०-३१। इसी प्रकार प्रत्येक बार एक-एक सहस्र हवन कर लेने के उपरान्त नाभि, मध्य, वक्षःस्थल और शिरोभाग का स्पर्श करता जाय । इस प्रकार एक हाथ के बने हुए मेखलायुक्त योनिमुख कुण्ड के ऊपर सभी दिशाओं में बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें । वह योनि एक वित्ते की हो, और हाथी के ओठ के समान हो । आयताकार हो, छिद्रयुक्त हो, इधर उधर दोनों ओर से कलायुक्त तथा ऊँची बनी हो । यह योनि कुण्ड के चारों ओर चार अंगुल ऊँची तथा उतनी ही विस्तृत और समान रूप में बनानी चाहिये तथा चतुरस्र और कलापूर्ण भी होनी चाहिये ।३२-३५। वेदी की भित्ति से तेरह अंगुल छोड़कर नव कुण्ड दूसरे बनाने चाहिये, उन सबों के भी लक्षण यही हैं, जो ऊपर वाले कुण्ड के हैं । अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर मुखकर हवन करना चाहिये । शान्ति के लिए होता सावधान चित्त हो लोकपालों के लिए मूर्तियों के लिए तथा मूर्तियों के अधिदेवताओं के लिए क्रमशः हवन करे । वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम तथा आकाश—ये आठ देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनका कुण्ड में स्मरण करे ।३६-३९। अब इनके अधिपों की मूर्तियों के नामों को कह रहा हूँ,

---

[1] घ. कुण्डकूला° । [2] ग. घ. °गायनैः । ङ. °गाम्वितैः । शा । [3] क ग. मूर्तिपा । [4] ग. घ. ङ. °त्समन्ततः ।

एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः । पृथ्वीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चाऽऽदित्यमेव च । भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥४१
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाऽऽकाशमेव च । सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च ॥४२
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं[1] होममाचरेत् । तथा शान्तिघटं कुर्यात्प्रतिकुण्डेषु[2] सर्वतः[3] ॥४३
शतान्ते वा [4]सहस्रान्ते संपूर्णाहुतिरिष्यते । समपादः पृथिव्यां तु प्रशान्तात्मा विनिक्षपेत् ॥४४
आहुतीनां सु संपातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् । मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥४५
स्थितं च स्नापयेत्तेन संपाताहुतिवारिणा । [5]प्रतियामेषु धूपं तु नैवेद्यं चन्दनादिकम् ॥४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः । पुनःपुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥४७
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः । विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥४८
वासोभिः शयनीयैश्च प्रतियामे च शक्तितः भोजनं चापि दातव्यं [6]यावत्स्यादधिवासनम् ॥४९
बलिस्त्रिसंध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतोदिशम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पूर्वं शेषान्वर्णांस्तु कामतः ॥५०

जो अति पवित्र हैं। शर्व सर्वदा पृथ्वी का पालन करते हैं, इसी प्रकार पशुप अग्नि की, उग्र यजमान को, रुद्र आदित्य की, भव जल की, ईशान वायु की, महादेव चन्द्रमा की और भीम आकाश की रक्षा करते हैं। सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुकूल वैदिक मन्त्रों द्वारा हवन करे, तथा प्रत्येक कुण्डों के लिए सभी ओर से शान्ति घटों की स्थापना करे। सौ आहुति अथवा सहस्र आहुति कर लेने के बाद सम्पूर्णाहुति करनी चाहिये, उस समय पृथ्वी में समान भाव से पद रखे हुए होता शान्त चित्त से सम्पूर्णाहुति को छोड़े। और इन सभी आहुतियों के संपात को पूर्ण कुम्भों के ऊपर छोड़े, मूल, मध्य एवं शिर, इन अंगों में प्रतिमा के उसी के जल द्वारा सेचन करे, और इसी आहुति के जल द्वारा वहाँ के कल्पित देवतागणों को स्नान कराये। प्रत्येक प्रहर के अन्त में पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दनादि द्वारा पूजा किया करे तथा उसी प्रकार पुनः-पुनः हवन भी प्रारम्भ किया करे। इसी प्रकार यजमान को पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये। उन सब को श्वेत वस्त्र द्वारा पूजित करना चाहिये, विचित्र प्रकार के बने हुए सुवर्ण के कटक, सुवर्ण की जंजीर तथा अंगूठी आदि विविध वस्त्रादि' शय्यासन आदि को भी प्रत्येक प्रहर में अपनी सामर्थ्य के अनुसार देते रहना चाहिये। जब तक अधिवासन न हो जाय तब तक भोजन दान भी देना चाहिये। सामान्य जीवों के लिए सभी दिशाओं में तीनों सन्ध्याओं के अवसर पर बलिदान भी देना चाहिये।४०-४९। पहले ब्राह्मणों को भोजन कराये फिर अन्य वर्णवालों को भी अपनी इच्छानुरूप भोजन कराये। रात्रि के समय गीत, वाद्यादि को कराते हुए महान् उत्सव

---

[1] ग. °थाह हो°। [2] क. ख. °षु संन्यसते । श°। [3] ङ. सर्वदा। [4] ङ. च. °न्ते स्रुक्पूर्णा°। [5] ङ. °सिमामनुधू°। [6] ग. घ. च. °वत्स्याधि°।

रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः । सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्मयावता ॥५१
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा । सप्तरात्रमथो कुर्यात्क्वचित्सद्योऽधिवासनम् ॥
सर्वयज्ञफलो [1]यस्मादधिवासोत्सवः सदा ॥५२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिवासनविधिर्नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६५॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३२५४॥

अथ षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

कृत्वाऽधिवासं देवानां शुभं कुर्यात्समाहितः । प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः ॥१
पुष्पोदकेन प्रासादं प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु । पातयेत्पक्षसूत्रं तु द्वारसूत्रं तथैव च ॥२
आश्रयेत्किंचिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः । ईशानीमाश्रितं देवं पूजयन्ति दिवौकसः ॥३

मनाना चाहिये, इस प्रकार जब तक चतुर्थी कर्म न हो जाय तब तक प्रयत्न पूर्वक पूजा करते रहना चाहिये । तीन रात, एक रात, अथवा यदि हो सके तो पाँच रात या सात रात तक अधिवासन करे, कहीं-कहीं सर्वदा अधिवासन किया जाता है, क्योंकि यह अधिवासन विधि सर्वदा सभी यज्ञों के फलों को देनेवाली है ।५०-५२।

श्री मात्स्य महापुराण में अधिवासन विधि नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६५॥

अध्याय २६६

सूत ने कहा—इस प्रकार उपर्युक्त विधि से देवताओं की प्रतिमा के शुभकारी अधिवासन कर्म को करने के उपरान्त एकाग्रचित्त से यजमान प्रासाद के अनुरूप लिंग का अथवा लिंग के अनुरूप प्रासाद के मान का निरूपण करे । पुष्पमिश्रित जल से मन्दिर को धो कर मन्त्रोच्चारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्र को गिरावे अर्थात् नापे ।१-२। बुद्धिमान् पुरुष को मध्य भूमि जानकर कुछ ईशानकोण का आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि ईशानी दिशा में अवस्थित भगवान् शङ्कर की पूजा देवतागण करते हैं । उत्तर दिशा में

---

[1] घ. °स्मात्सर्वयज्ञोत्सवस्तथा । इ° ।

आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम् । शुभं स्यादशुभं प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः ॥४
अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्मशिलाधिका । उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला ॥५
ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तैर्मानलक्षणैः । ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम् ॥६
कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः । देवतार्चाश्रयं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत् ॥७
तत उत्थाप्य देवेशमुत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च । आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत्पुनः ॥८
अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत् । ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत् ॥९
बज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च । पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात् ॥१०
तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च । काक्षी[1] काशी समाक्षीकं गैरिकं चाऽऽदितः क्रमात् ॥११
गोधूमं च यवं तद्वत्तिलमुद्गं तथैव च । नीवारमथ श्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च ॥१२
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम् । अगरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम् ॥१३
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम् । स्वर्लोकपालनाम्ना तु [2]न्यसेदोंकारपूर्वकम् ॥१४

अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्य का फल देनेवाले कहे गये हैं, और कल्याणकारी हैं। बुद्धिमानों ने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओं की स्थापना को अशुभकारी बताया है। लिङ्ग के नीचे कूर्म शिला की स्थापना करनी चाहिये, यह ब्रह्मशिला की अपेक्षा बड़ी तथा गम्भीर होती है । उस कूर्मशिला के ऊपर ब्रह्मभाग से अधिक ब्रह्मशिला स्थापित होती है । उसके ऊपर पहले बताये गये परिमाणों के अनुसार पिण्डिका की स्थापना करनी चाहिये । सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा पिण्डिका को विधिवत् धोकर पुनः पञ्च कषाय के जल से मन्त्रोच्चारण पूर्वक उत्तम रीति से प्रक्षालन करे और देव प्रतिमा के आश्रयवाले मन्त्र से पिण्डिका को अभिमंत्रित करे।३-७। तदुपरान्त 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणा…' इत्यादि मन्त्र से उसे उक्त स्थान से उठाकर मण्डप के मध्य भवन में जहाँ पीठिका रहती है, उसे स्थापित करे। अर्घ्य, पाद्य, एवं मधुपर्क समर्पित करे, फिर एक मुहूर्त तक विश्राम करके रत्नों का न्यास करे। वज्र, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, स्फटिक, पुखराज, इन्द्रनील और नील—इन रत्नों को पूर्व दिशा के क्रम से स्थापित करे । फिर तालक (हरताल), शिलावज्र ? (शिलाजतु), अञ्जन, श्याम, काक्षी, (मुल्तानी मिट्टी) काशी, (……) माक्षीक (मधु) और गेरु—इन सब को आदि के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में रखे। गेहूँ, जव, तिल, मूँग, नीवार (तीनी) सावाँ, सरसों और चावल इन सब को भी पूर्वादि दिशा के क्रम से रखकर चन्दन, लाल चन्दन, अगुरु, अञ्जन, उशीर, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, लक्ष्मणा (श्वेत कटहली) इन्हें पूर्वादि दिशाओं में क्रम से स्थापित करे । प्रत्येक दिशाओं में उस दिशा के लोकपाल का नाम ओंकारोच्चारण के साथ ले लेना चाहिये।८-१४। फिर सभी प्रकार के बीज, सभी धातु, सभी प्रकार के रत्न, औषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग,

---

[1] ग.काञ्जी कौसुम्भमा° । [2] ङ. च. °सेत्प्रणवपू° ।

सर्वबीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा । काञ्चनं पद्मरागं तु पारदं पद्ममेव च ॥१५
कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत्पूर्वादितः क्रमात् । ब्रह्मस्थाने तु दातव्याः संहताः स्युः परस्परम् ॥१६
कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यं चैवाऽऽरकूटकम् । रजतं विमलं पुष्पं लोहं चैव क्रमेण तु ॥१७
काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत् । दद्याद्बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि ॥१८
न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह । इन्द्रस्तु महसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् ॥१९
वज्रहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी ॥२०
धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः । यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक्सदा ॥२१
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः । निर्ऋतिस्तु पुमान्कृष्णः सर्वरक्षोधिपो महान् ॥२२
खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । [1]वरुणो धवलो विष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः ॥२३
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः । वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः ॥२४
पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः । गौरो यश्च पुमान्सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः ॥२५

पद्म, कूर्म, पृथ्वी तथा वृषभ—इन सब को भी पूर्वादि दिशाओं के क्रम से स्थापित करना चाहिये । ब्रह्मा के स्थान पर सभी वस्तुएँ परस्पर समुदित रूप में रखनी चाहिये । सुवर्ण, विद्रुम, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लोह—इन सब को भी क्रम से रखे । इन सभी वस्तुओं के अभाव में सुवर्ण और हरिताल को रखा जा सकता है । यदि कोई बीज और ओषधि नहीं मिल रही है तो उसके स्थान पर सहदेवी और जव रखा जा सकता हैं ।१५-१८। अब न्यास करने के लिए प्रत्येक लोकपालों के क्रम से मन्त्रों को बतला रहा हूं । पूर्व दिशा का स्वामी अति तेज से देदीप्यमान सभी देवताओं का अधिपति इन्द्र है, उसके हाथ में वज्र शोभित है, महा पराक्रमी है, उसे नित्य बारम्बार नमस्कार है । सर्वदेवमय ज्वाला विभूषित आग्नेय पुरुष का वर्ण लाल है, धूम उसका केतु है, सभी शक्तियों से वह अनाधृष्य है, उसे नित्य के लिये नमस्कार है, नमस्कार है । दक्षिण दिशा का स्वामी यमराज कमल के वर्ण के समान है, किरीट धारण करनेवाला है, सर्वदा दण्ड धारण किये रहता है, धर्म का साक्षी है, विशुद्धात्मा है, उसे नित्य बारम्बार नमस्कार है, निर्ऋति पुरुष कृष्णवर्ण का है, सभी राक्षसों का अधिपति है, खड्गहस्त है, महा पराक्रमी है, उसे नित्य का नमस्कार है ।१९-२२½। पश्चिम का स्वामी वरुण पुरुष श्वेत वर्ण का है, विष्णु-स्वरूप है, नदियों का स्वामी है, उसके हाथ में पाश विराजमान है, वह विशाल बाहुओं वाला है, उसे हमारा नित्य का नमस्कार है । वायु पुरुष सर्व वर्ण है, सभी प्रकार के गन्ध का धारण करनेवाला है, उसके हाथों में ध्वजा विराजमान है, उसे हमारा नित्य का नमस्कार है । जो सोम पुरुष गौरवर्ण का, सौम्य

---

[1] ग. ङ. च. °ष्णः सबलो ।

नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः। ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान् ॥२६
शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः। पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः ॥२७
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः। योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥२८
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः। ओंकारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने ॥२९
मन्त्राः स्युः सर्वकार्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः। न्यासं कृत्वा तु [1]मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम् ॥३०
पटेनाऽऽच्छादयेच्छ्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः। तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने ॥३१
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरि निवेशयेत्। ततः स्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्त्वा तु मस्तके ॥३२
ध्यात्वा परमसद्भावाद्देवदेवं च निष्कलम्। देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च ॥३३
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम्। यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत्तथा ॥३४
अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम्। संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम् ॥३५
अक्षरं[2] दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम्। गणेशं वृषसंस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम् ॥३६

आकृति का तथा सभी औषधियों से समन्वित है तथा नक्षत्रों का अधिपति है, उसे नित्य का नमस्कार है ।२३-२५½। ईशान पुरुष शुक्ल वर्ण का, सभी विद्याओं का अधिपति तथा महान् है उसके हाथ में शूल विराजमान है, विरूपाक्ष है, उसे नित्य नमस्कार है। जो पद्मयोनि है, चार मूर्तियों वाला है, वेद जिसके वस्त्र स्वरूप हैं, ऐसे पितामह, यज्ञाध्यक्ष, चतुर्मुख ब्रह्मा को हमारा बारम्बार नमस्कार है। जो अपने अनन्त स्वरूप द्वारा निखिल चराचर ब्रह्माण्ड को पुष्प की भाँति मस्तक पर धारण किये रहता है, उसे हम नित्य नमस्कार करते हैं। ये उपर्युक्त मन्त्र न्यास तथा बलि देते समय ओंकार समेत कहने चाहिये ।२६-२९। सभी कार्यों में ये मन्त्र समृद्धि तथा पुत्र का फल देनेवाले कहे गये हैं। इन सम्पूर्ण मन्त्रों द्वारा न्यास करके घृत से लेपन की हुई शुभ्र प्रतिमा को श्वेत वस्त्र द्वारा यत्नपूर्वक ऊपर से आच्छादित कर दे। तदनन्तर देवेश को उठाकर शुभ्र इष्ट देश में अर्थात् जहाँ स्थापित करना है वहाँ "ध्रुवा द्यौः..." इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए छिद्र पर स्थापित करे। और स्थिर करके हाथ को मस्तक से संयुक्त कर अपने को परब्रह्म का अंश मानकर जिस देवता का जैसा स्वरूप हो वैसा ही उसका ध्यान करे ।३०-३४। अलसी के पुष्प के समान नीले वर्ण के, शङ्ख चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दन भगवान् विष्णु को मैं देवरूप होकर स्थापित कर रहा हूं। इसी प्रकार कभी नष्ट न होनेवाले दस बाहु से सुशोभित अर्द्धचन्द्र द्वारा शिर पर अलंकृत गणों के स्वामी वृषभारूढ़ त्रिलोचन को स्थापित कर रहा हूँ। ऋषिगण जिसकी स्तुति किया करते हैं, ऐसे चार मुखों वाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मा की स्थापना करता हूं। सहस्र किरणों से सुशोभित, शान्त, अप्सराओं के समूहों से संयुक्त पद्महस्त, महा बाहुवाले दिवाकर की स्थापना कर रहा हूं ।३५-३८। रुद्र की स्थापना करते समय रौद्र

---

[1] ग. घ. ङ. रत्नानां। [2] अष्टादशभुजं देवं च°।

ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम् । पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम् ॥३७
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम्[1] । पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥३८
देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान्रुद्रस्य स्थापने जपेत् । विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद्ब्राह्मान्वै ब्रह्मणो बुध ॥३९
सौराः सूर्यस्य जप्तव्यस्तथाऽन्येषु तदाश्रयाः । वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी ॥४०
स्थापयेद्यं तु देवेशं तं प्रधानं प्रकल्पयेत् । तस्य पार्श्वस्थितानन्यान्संस्मरेत्परिवारितः ॥४१
गणं नन्दिमहाकालं वृषं भृङ्गिं रिटिं गुहम् । देवीं विनायकं चैव विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥४२
रुद्रं शक्रं जयन्तं च लोकपालान्समन्ततः । तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान् ॥४३
यो यत्र स्थाप्यते देवस्तस्य तान्परितः स्मरेत् । आवाहयेत्तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥४४
यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः । ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः ॥४५
प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः । नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥४६
तमहं[2] त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम् । आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥४७
आगच्छ भगवन्रुद्रानुग्रहाय शिवो भव । [3]शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥
ओं नमः स्वागतं भगवते नमः, ओं नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु ॥४८

मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये । इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को विष्णु की स्थापना के समय वैष्णव मन्त्रों का तथा ब्रह्मा की स्थापना के समय ब्राह्म मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये । सूर्य की स्थापना के समय सौर मन्त्रों का जप करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य देवताओं की स्थापना के समय उन्हीं के मन्त्रों का जप करना चाहिये । क्योंकि वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो प्रतिमा की प्रतिष्ठा होती है, वह आनन्ददायिनी है ।३९-४०। जिस देवतांश की प्रतिमा प्रमुख रूप से प्रतिष्ठापित की जाती है, वही प्रधान देवता माने जाते हैं, उनके अगल-बगल में स्थित जो अन्य देवता प्रतिष्ठापित होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप से स्मरण करना चाहिये । गण, नन्दिकेश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, गुह, (स्वामिकार्त्तिकेय) देवी, विनायक (गणेश) विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओं के समूह, गन्धर्वों के समूह, यक्षगण, इनमें से सभी को उस जगह में अगल-बगल स्थापित करना चाहिये जहाँ प्रमुख देवता की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई हो । फिर इस मन्त्र द्वारा यत्नपूर्वक रुद्र का आवाहन करना चाहिये ।४१-४४। "जिस भगवान् शंकर के रथ में सिंह तथा व्याघ्र जुड़े हुए हैं, तथा उरग, ऋषिगण, लोकपाल वृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रिय गण, मातृकाएं, चन्द्रमा, विष्णु, पितामह ब्रह्माजी, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य नभचर गण जिसके पार्षद हैं, उन तीन नेत्रों वाले, ईशान, वृषभध्वज, रुद्र, उमापति को गणों समेत तथा पत्नी पार्वती समेत मैं आवाहन कर रहा हूं । हे भगवन् ! यहाँ आइये, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये, एवं कल्याणकारी होइए, शाश्वत फल देनेवाले होइये एवं मेरी दी हुइ पूजा को ग्रहण कीजिये, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है ।४५-४८। मन्त्र, "ॐ नमः स्वागतं

---

[1] ङ °णसेवित । [2] क ख. °महमृक्ष° । [3] ग. °श्वतीं भ° ।

भगवन्मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाऽभिहितं नमो नमः स्वाहा ॥४९
ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । स्नापयेत्तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च ॥५०
मधुशर्करया तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च । शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥५१
यज्जाग्रतो [1]दूरमुदेति ततो विराडजायत इति च ॥ सहस्रशीर्षा पुरुष इति च ॥
अभि त्वा शूर नोनुम इति च ॥ पुरुष एवेदं सर्वमिति ॥ त्रिपादूर्ध्वमिति ॥ येनेदं भूतमिति ॥
नत्वा वाँ अन्य इति ॥५२
सर्वांश्चैतान्प्रतिष्ठासु मन्त्राञ्जप्त्वा पुनःपुनः । चतुष्कृत्वः स्पृशेदद्भिर्मूले मध्ये शिरस्यपि ॥५३
स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथ मूर्तिपम् । आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः ॥५४
दीनान्धकृपणांस्तद्वद्ये चान्ये समुपस्थिताः । ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत् ॥५५
हरिद्रयाऽथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः । चन्दनेन यवैस्तद्वत्तृतीयेऽहनि लेपयेत् ॥५६
मनः शिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत् । सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम्[2] ॥५७

भगवते ममः, ॐ नमः सोमाय, सगणाय, सपरिवाराय, प्रतिगृह्णातु, भगवन् ! मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यंपाद्यमाचमनीयमाससनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा ।" अर्थ—हे भगवन् ! आपका शुभागमन हो, हे सोम ! आप गणों तथा अपने परिवारवर्ग के साथ मन्त्र द्वारा पवित्र तथा ब्रह्मा द्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसन को ग्रहण करें। आपको मैं नमस्कार करता हूं।' तदनन्तर पुण्य दिन का उच्चारण करते हुए एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि कराते हुए, प्रतिष्ठाप्य मूर्ति को दही, क्षीर, घृत, मधु, शक्कर, पुष्प एवं सुगन्धित जल द्वारा एकाग्रचित्त से शिव का ध्यान करते हुए अभिसिंचित करना चाहिये ।४९-५१। उस समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये । वह मन्त्र इस प्रकार प्रारम्भ होते हैं। 'यज्जाग्रतो दूरमुदेति...', ततो विराडजायत...', 'सहस्रशीर्षापुरुष...', 'अभित्वा शूर नोनुम...', 'पुरुष एवेदं सर्वं...', 'त्रिपादूर्ध्वम्...', 'येनेदं भूतम्...', 'नत्वा वाँ अन्य...', इत्यादि । इन उपर्युक्त मन्त्रों को बारम्बार जपते हुए चार बार प्रतिमा के मूल भाग, मध्य भाग तथा शिरोभाग में स्पर्श करे। इस प्रकार स्थापित हो जाने पर यजमान मूर्ति की प्रतिष्ठा करानेवाले विद्वान् पुरुष की, तथा आचार्य की वस्त्र अलंकार एवं आभूषणों से पूजा करे ।५२-५४। दीन, अन्ध, कृपण तथा अन्य लोग जो वहाँ उपस्थित हों, उन सब को भी सन्तुष्ट करे। तदनन्तर प्रथम दिन प्रतिमा का मधु से लेपन करे । इसी प्रकार दूसरे दिन हल्दी तथा सरसों से, तीसरे दिन चन्दन और जव से, चौथे दिन मैनशिल तथा प्रियंगु से लेपन करे, क्योंकि यह लेपन सौभाग्य तथा मङ्गल का देनेवाला, व्याधियों का विनाशक एवं मनुष्यों को परम प्रीति का देनेवाला है, ऐसा वेदों के जाननेवाले जानते हैं ।५५-५६½। इसी प्रकार पाँचवे दिन काले अंजन तथा तिल से, छठें

---

[1] ग. ङ. °मुपैति । [2] ग. घ. ङ. °म् । मनःप्रीं ।

परं प्रीतिकरं नृणामेतद्वेदविदो विदुः । कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत्पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ॥५८
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम् । रोचनागरुपुष्पं[1] तु सप्तमेऽहनि दापयेत् ॥५९
यत्रसद्योधिवासः स्यात्तत्र सर्वं निवेदयेत् । स्थितं न चालयेद्देवमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥६०
पूरयेत्सिकताभिस्तु निश्छिद्रं सर्वतो भवेत् । लोकपालस्य दिग्भागे यस्य संचलते विभुः ॥६१
तस्य लोकपतेः शान्तिर्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः । [2]इन्द्राय वारणं दद्यात्काञ्चनं चाल्पवित्तवान् ॥६२
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद्यमस्य महिषं तथा । [3]अजं च काञ्चनं [4]दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति ॥६३
वरुणं प्रति मुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत् । [5]रीतिकं वायवे दद्याद्मन्त्रयुग्मेन (ण) [6]सांप्रतम् ॥६४
सोमाय धेनुर्दातव्या[7] राजतं वृषभं शिवे । यस्यां यस्यां संचलनं[8] शान्तिः स्यात्तत्र तत्र तु ॥६५
अन्यथा तु भवेद्घोरं भयं कुलविनाशनम् । अचलं कारयेत्तस्मात्सिकताभिः सुरेश्वरम् ॥६६
अन्नं वस्त्रं च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम् । त्रिपञ्च सप्तदश वा दिनानि स्यान्महोत्सवः ॥६७
चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्म कारयेत् । दक्षिणा च [9]पुनस्तद्वद्देया तत्रातिभक्तितः ॥६८

दिन घृत समेत चन्दन व पद्मकेसर से, सातवें दिन रोचना अगरु तथा पुष्प से लेपन करना चाहिये। जिस मूर्ति की स्थापना में शीघ्र ही अधिवासन हो जाय वहाँ इन सब को एक साथ ही लेपन में देना चाहिये। अवस्थित हो जाने पर प्रतिमा को अपने स्थान से विचलित नहीं करना चाहिये। विचलित करनेवाला दोषभागी होता है।५७-६०। जहाँ कहीं छिद्र हो, वहाँ बालू लेकर मूँद देना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक छिद्ररहित कर देना चाहिये। स्थापना के बाद यदि किसी लोकपाल की दिशा की ओर देव की प्रतिमा अपने आप विचलित हो जाती है तो उस लोकपाल की शान्ति करानी चाहिये तथा निम्नलिखित नियम के अनुसार उनको प्रसन्न करने के लिए दक्षिणाएं देनी चाहिये। इन्द्र की शान्ति के लिए हाथी देना चाहिये, निर्धन मनुष्य सुवर्ण दे। अग्नि के लिए तो सुवर्ण का ही दान करना चाहिये, यमराज के लिए महिष का दान करना चाहिये।६१-६२½। नैर्ऋत राक्षस की शान्ति के लिए बकरा तथा सुवर्ण का दान करना चाहिये। वरुण के लिए सुतुहियों समेत मोतियों का दान करना चाहिये। वायु के लिए दो वस्त्रों समेत पीतल का दान करना चाहिये। चन्द्रमा के लिए गौ का दान तथा शिव के लिए चाँदी तथा वृषभ देना चाहिये। जिस-दिशा में संकलन हो, उस-उस दिशा की शान्ति करानी चाहिये। शान्ति न कराने से कुल के विनाश का घोर भय उपस्थित होता है। अतः बालू से प्रतिमा को ऐसा जकड़कर स्थापित करना चाहिये कि वह इधर-उधर विचलित न हो सके।६३-६६। उक्त पुण्य दिन में अन्न, तथा वस्त्र का दान करना चाहिये, पुण्यप्रद जय-जयकार एवं मांगलिक शब्दों का उच्चारण करवाना चाहिये। तीन, पाँच सात अथवा दस दिनों तक महान् उत्सव समारोह मनाना चाहिये। प्रतिष्ठा के चौथे दिन महास्नान तथा चतुर्थी कर्म कराना

---

[1] ख. घ. °नानागपु°। [2] क. ख. °न्द्रायाभर°। [3] ख. च. अन्नं। [4] घ. ङ. °द्याद्गुरवे रा°। [5] ग. कपिलां। घ. ङ. च. रीति काम्। [6] ग घ. ङ. संयुताम्। [7] क. ख. घ. °व्या रजतं सवृषं शि°। [8] ग. ङ. °लत शा°। [9] ग. घ. च यात्तत्रापि शाक्ति°।

देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं निवेदितः पापविनाशहेतोः ।
यस्माद्बुधैः [1]पूर्वमनन्तमुक्तमनेकविद्याधरदेवपूज्यम् ॥६९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम षट्षष्टचधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६६॥

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ॥१३३२३॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम् । अर्घस्यापि समासेन शृणु त्वं विधिमुत्तमम् ॥१
दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु । यवाः सिद्धार्थकस्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैः सह ॥२
गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात् । अग्न्यगारात्तथा तीर्थाद्व्रजाद्गोमण्डलादपि ॥३
कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्धृताऽसीतिमन्त्रवित् । शं नो देवीत्यपां मन्त्रमापो हिष्ठेति वै तथा ॥४

चाहिये, उक्त अवसर पर भी भक्तिपूर्वक भूरि दक्षिणा देनी चाहिये । ऋषिवृन्द ! पाप के विनाशार्थ तुम लोगों को मैं देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की विधि बतला चुका, पण्डितों ने इस विषय को पूर्वकाल में ही अनेक विद्याधर तथा देवताओं से पूज्य एवं अनन्त फलदायी बतलाया है ।६७-६९।

श्री मात्स्य महापुराण में मूर्तिप्रतिष्ठा वर्णन नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६६॥

अध्याय २६७

सूत ने कहा—अब मैं देवप्रतिमा के उत्तम स्नान की विधि का वर्णन कर रहा हूँ । एवं अर्घ्यदान की उत्तम विधि भी संक्षेप में सुना रहा हूँ, सुनो । दही, अक्षत, कुश के अग्रभाग, दुग्ध दूर्वा, मधु, यव, सरसों तथा फल, ये आठ पदार्थ अर्घ के अंग माने गये हैं ।१-२। हाथी और घोड़ा के नीचे की, सड़क और बिल की, शूकर द्वारा गोड़े गये मण्डल की, अग्नि-कुण्ड के समीप की, तीर्थस्थान एवं गौओं के रुकने के समीप की मिट्टी के मन्त्रों का जाननेवाला विद्वान् पुरुष कुम्भ में 'उद्धृताऽसि...' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए डाले । तत्पश्चात् 'शन्नो देवी...' तथा 'आपोहिष्ठा...' इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर जल

---

[1] ङ. °रसंघजुष्टम् । इ° ।

सावित्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥५
तेजोऽसीति घृतं तद्वद्देवस्य त्वेति चोदकम् । कुशमिश्रं क्षिपेद्विद्वान्पञ्चगव्यं भवेत्ततः ॥६
स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः । दधिक्राव्णेति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम् ॥७
आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च । मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन च ॥८
सरस्वत्यै भैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम् । हिरण्याक्षेति मन्त्रेण स्नापयेद्रत्नवारिणा ॥९
कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्य त्वेति कारयेत् । फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत् ॥१०
ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् । ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः ॥११
तस्याप्यर्धेन वा [1]कुर्यात्सपादेन शतेन वा । चतुःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥१२
चतुर्भिरथवा कुर्याद्घटानामल्पवित्तवान् । सौवर्णै राजतैर्वाऽपि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः ॥१३
कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वाऽपि स्नपनं शक्तितो भवेत् । सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा ॥१४
शङ्खपुष्पी[2] तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला । महौषध्यष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत् ॥१५

को, गायत्री 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धीयो यो नः प्रचोदयात्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए, गोमूत्र को, 'गन्धद्वार...' मन्त्र द्वारा गोबर को, 'आप्यायस्व...' मन्त्र द्वारा दुग्ध को, 'दधिक्राव्ण....' मन्त्र द्वारा दही को, 'तेजोऽसि...' मन्त्र द्वारा घृत को, 'देवस्य त्वा...' इस मन्त्र द्वारा जल को, शुद्ध करके सबको मिश्रित करके कुश द्वारा छिड़के । तब वह पचगव्य होता है, इस प्रकार पंचगव्य से स्नान कराने के उपरान्त और फिर दही द्वारा शुद्ध कर लेने पर, 'दधिक्राव्ण....' इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करे ।६-७। फिर 'आप्यायस्व...' इस मन्त्र का उच्चारण कर दुग्ध से, 'तेजोऽसि...., इस मन्त्र द्वारा घृत से, 'मधुवात...' इस मन्त्र द्वारा मधु से तथा पुष्पमिश्रित जल से और 'सरस्वत्यै...' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए ओषधियों से उसका पुनः अभिमन्त्रण करना चाहिये । 'हिरण्याक्ष....' इस मन्त्र से रत्न मिश्रिस जल से स्नान करावे । फिर 'देवस्य त्वा...' इस मन्त्र का उच्चारण कर कुश के जल से स्नान करावे । तत्पश्चात् फलमिश्रित जल द्वारा 'अग्न आयाहि...' इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करावे ।८-१०। तदनन्तर गायत्री मन्त्र द्वारा सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित जल द्वारा अभिमन्त्रित करे और फिर सहस्र कलशों द्वारा अथवा पाँच सौ कलशों द्वारा या उसके भी आधे अर्थात् ढाई सौ कलशों द्वारा या एक सौ पचीस कलशों द्वारा या चौंसठ कलशों द्वारा या उसके आधे बत्तीस कलशों द्वारा अथवा उसके आधे सोलह अथवा आठ या चार कलसों द्वारा अल्प वित्तवाला पुरुष स्नान-क्रिया सम्पन्न करे । यदि दो ही कलश हों तो वह सुवर्ण के, चाँदी के, ताँबे के, पीतल के, काँसे के या मिट्ठी के हों, अर्थात् अपनी शक्ति के अनुकूल घटों द्वारा ही स्नान कराये । सहदेवी, बच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शंखपुष्पी, सिंही तथा सुवर्चला—ये आठ महौषधियाँ हैं, इन्हें महास्नान के समय व्यवहार में लाना चाहिये ।११-१५। जव,

---

[1] ग. घ, ङ. °र्यादथाऽष्टश° । [2] ङ. °ष्पी च वाराही ह्य° ।

यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः । प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः ॥१६
स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा । श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम् ॥१७
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा च शुभया ततः । पञ्चवर्णादिकं तद्वत्पञ्चवर्णं रजस्तथा ॥१८
पूर्वाः कृष्णतिलान्दद्यान्नीराजनविधिर्मतः । एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं[1] बुधः ॥१९
मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम् । ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥२०
देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसन्विते । सर्ववर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते ॥२१
ततस्तु चन्दनं दद्यात्समं कर्पूरकुङ्कुमैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं दर्भपाणिः प्रयत्नतः ॥२२
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितान्गन्धान्प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥२३
चत्वारिंशत्ततो दीपान्दद्याच्चैव [2]प्रदक्षिणान् । त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च ॥२४
त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद्विचक्षणः ॥२५
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥२६

गेहूँ, नीवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु तथा चावल—ये अन्न भी स्नान कार्य में उपयोगी कहे गये हैं । स्वस्तिक, पद्मक, शंख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और तगर—ये आठ वस्तुएँ, गोबर, मिट्टी, पाँच प्रकार के वर्ण, पाँच प्रकार के रज, दूर्वा और काला तिल—इन सब वस्तुओं को नीराजन करते समय व्यवहार में लाये । इस प्रकार नीराजन करने के उपरान्त बुद्धिमान् पुरुष आचमन करे ।१६-१९। मन्दाकिनी का जल इस कार्य में सभी पापों का विनाश करनेवाला तथा मङ्गलकारी है, तत्पश्चात् इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए जोड़े वस्त्र को समर्पित करे । 'हे देव ! आपके लिए बने हुए ये युगल वस्त्र देव निर्मित सूत्र द्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दान से समन्वित, विविध वर्णोंवाले एवं परम रमणीय हैं, इन्हें आप ग्रहण करें' । तत्पश्चात् कपूर और केशर के साथ चन्दन लगावे और हाथ में कुश ग्रहण किये हुए प्रयत्नपूर्वक इस मन्त्र का उच्चारण करे ।२०-२२। 'हे देव ! आपके शरीर बौर चेष्टा (चेहरा) को मैं नहीं जानता, मेरे द्वारा समर्पित किये जाते हुए इन सुगन्धित द्रव्यों को आप ही ग्रहण कर अनुलेपन कर लें ।' तदनन्तर चालीस दीप प्रदान करना चाहिये । और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये । 'हे देव ! तुम्हीं चन्द्रमा और सूर्य—दोनों के ज्योतिः स्वरूप हो, तुम्हीं विद्युत् में प्रकाश करनेवाले अग्निरूप हो, तुम्हीं समस्त ज्योतिःपुञ्ज स्वरूप हो, मेरे इस दीप को ग्रहण करो ।' तदनन्तर इस मन्त्र का उच्चारण कर विचक्षण पुरुष धूपदान करे ।२३-२५। 'हे देव ! वह वनस्पतियों का अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त, सुगन्धित द्रव्यों में श्रेष्ठ धूप मैं अति भक्तिपूर्वक आपको अर्पित कर रहा हूँ, आप इसे ग्रहण करें ।' तदनन्तर 'हे

---

[1] ग. °धाद्दाचं ततस्ततः । म° । [2] ग. घ. °क्षिणम् । त्वं ।

ततस्त्वाभरणं दद्यान्महाभूषाय ते नमः। अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम् ॥२७
देवकुम्भैस्ततः [1]कुर्याद्यजमानोऽभिषेचनम्। चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥२८
सपञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः। देवस्य त्वेति मन्त्रेण साम्ना चाऽऽथर्वणेन च ॥२९
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः। सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान्संपूज्य यत्नतः ॥३०
स्थापकं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः। यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् ॥३१
यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत्। सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात्तृप्यन्ति[2] सर्वदेवताः ॥३२

नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम्।
विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम् ॥३३
पाषण्डिनं यस्तु करोति [3]भक्त्या विहाय विप्राञ्छ्रुतिधर्मयुक्तान्[4]।
गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः ॥३४

महान् आभूषणों से विभूषित देव ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ।' इस मन्त्र द्वारा आभूषण अर्पित करे। इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से सात रात तक महोत्सव करने के बाद देवकुम्भों द्वारा यजमान अभिषेचन करे, उनकी संख्या चार हो, आठ हो, अथवा दो हो या एक ही हो।२६-२८। श्वेत वस्त्रों के ढँके हुए, पञ्चरत्न युक्त कलशों द्वारा 'देवस्य त्वा...' इस मन्त्र अथवा साम या आथर्वण मंत्र द्वारा अथवा नवग्रह के यज्ञों में अभिषेक के जो मन्त्र कहे गये हैं, उन मन्त्रों द्वारा स्नान कर यजमान श्वेत वस्त्र धारण करे एवं यत्नपूर्वक देवताओं की पूजा कर स्थापना करानेवाले की वस्त्र अलंकार एवं आभूषणों द्वारा पूजा करे। और यज्ञ कार्य में आनेवाले अन्य सभी पात्रादि तथा मण्डपस्थ सामग्रियों को, तथा जो कुछ भी वस्तुएँ वहाँ पड़ी हुई हों, उन सब को भी आचार्य को दे दे; क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न होते हैं।२९-३२। इस देवप्रतिमा के स्थापन के कार्य को दुःशील, दम्भी एवं संन्यासी आदि विशेष चिह्न धारण करने वालों द्वारा नहीं कराना चाहिये, प्रत्युत श्रुतियों के पारगामी गृहस्थाश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण द्वारा कराना चाहिये। जो व्यक्ति केवल भक्ति के कारण वैदिक धर्मों में परायण विद्वान् पण्डितों को छोड़कर अपने पाषण्डी गुरु को इस कार्य में नियुक्त कर लेता है, उसका कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तथा वह शीघ्र ही अपूज्य हो जाता है। उस स्थान पर पिशाचों का आधिपत्य हो जाता है, प्रतिमा को लोग थोड़े

---

[1] ग. घ. °मानाभि°। [2] क. ख. घ. °प्यन्ते स°। [3] ङ. बुद्ध्या। [4] ग. °र्मनिष्ठान्। गु°।

स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा अपूज्यतां यात्यचिरेण लोके ।
विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले [1]स्यात्प्रपूज्यतां याति चिरं च कालम् ॥३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतास्नानं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६७॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३३५८॥

अथाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

प्रासादाः कीदृशाः सूत कर्तव्या भूतिमिच्छता । प्रमाणं लक्षणं तद्वद्वद विस्तरतोऽधुना ॥१

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम् । वास्तौ परीक्षिते सम्यग्वास्तुदेहविचक्षणः ॥२
वास्तूपशमनं कुर्यात्समिद्भिर्बलिकर्मणा । जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने ॥३

ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं । ब्राह्मणों द्वारा करायी गई स्थापना से देव प्रतिमा कल्याणकारिणी होती है, और चिरकाल तक लोग उसकी पूजा करते रहते हैं ।३३-३५।

श्री मात्स्य महापुराण में देवप्रतिमा स्नान नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६७॥

अध्याय २६८

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! समृद्धि के इच्छुक लोगों को प्रासादों की रचना किस प्रकार करानी चाहिये ? उनका प्रमाण क्या है ? लक्षण क्या है ? इस विषय को अब विस्तार पूर्वक हम लोगों को बताइये ।१।

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब मैं प्रासादों की विधि को बता रहा हूँ, सुनिये । वास्तु के शरीर को जाननेवाला विचक्षण पुरुष वास्तु की परीक्षा कर लेने के बाद बलिकर्म तथा समिधाओं द्वारा वास्तु की शान्ति करे । जीर्ण प्रासाद के उद्धार, बाटिका के आरोपण, नूतन गृह में प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवन के निर्माण, एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद में परिवर्तन, प्रासाद तथा गृहों में दूसरे द्वार की

---

[1] ग. ङ. च. °स्थात्तत्पू° ।

नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने । द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ॥४
वास्तूपशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः । एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये च पृष्ठतः ॥५
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डेहस्तप्रमाणके । यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः[1] ॥६
पालाशैः खादिरैश्चापि मधुसर्पिःसमन्वितैः । कुशदूर्वामयैर्वाऽपि मधुसर्पिःसमन्वितैः ॥७
कार्यस्तु [2]पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि[3] वा । होमान्ते[4] भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत् ॥८
तद्वद्विशेषनैवेद्यमेवं दद्यात्क्रमेण तु । ईशकोणे घृताक्तं[5] तु शिखिने विनिवेदयेत् ॥९
ओदनं सफलं दद्यात्पर्जन्याय घृतान्वितम् । [6]जयाय च ध्वजान्पीतान्पैष्टं कूर्मं च संन्यसेत् ॥१०
इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टं च कुलिशं तथा । वितानकं च सूर्याय धूम्रं सक्तुं तथैव च ॥११
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यं दद्याद् भृशाय च । शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात्सक्तूंश्च वायवे ॥१२
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम् । गृहक्षताय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनम् ॥१३
[7]गन्धौदनं च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृङ्गिकाम् । मृगाय यावकं दद्यात्पितृभ्यः कृसरा मता ॥१४
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णबलिं तथा । सुग्रीवेऽपूपकं[8] दद्यात्पुष्पदन्ताय पायसम् ॥१५

रचना, इन सभी अवसरों पर पूर्व कथित रीति से विचक्षण पुरुष सर्वप्रथम वास्तु की शान्ति कराये। तदनन्तर वास्तु के मध्य भाग में पृष्ठ प्रदेश पर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्ड में, जो तीन मेखलाओं से युक्त बना हुआ हो, जव, काले तिल तथा दुग्धवाले वृक्षों की समिधाओं द्वारा हवन कराना चाहिये।२-६। मधु एवं घृत से संयुक्त पलाश अथवा खदिर की समिधाओं का, अथवा मधु तथा घृत से संयुक्त कुश और दूर्वा का हवन करना चाहिये। होम के अन्त में पाँच बेल के फलों द्वारा अथवा पाँच बेल के बीजों द्वारा तथा विविध प्रकार की भक्ष्य एवं भोज्य सामग्रियों द्वारा वास्तु प्रदेश में बलि देनी चाहिये।७-८। तथा विशेष नैवेद्य भी तथोक्त क्रम से देना चाहिये। वह क्रम इस प्रकार है। ईशान कोण में घृत से संयुक्त नैवेद्य अग्नि के लिए समर्पित करना चाहिये, फल तथा घृत संयुक्त ओदन पर्जन्य के लिए, जय के लिए पीली ध्वजाएँ तथा आटे से बना हुआ कूर्म देना चाहिये।९-१०। इन्द्र के लिए पाँच रत्न तथा आटे का कुलिश देना चाहिये, सूर्य के लिए धूम्र वर्ण का वितान तथा सत्तू, सत्य के लिए घी और गेहूँ, भृश को मत्स्य, अन्तरिक्ष को शष्कुली (पूड़ी), वायु को सत्तू, पूषा को लावा, वितथ को चना और ओदन, गृहक्षत्र को मधु और अन्न, यम को मांस और ओदन गन्धर्व को सुगन्धित ओदन, भृङ्गराज को भृङ्गिका, मृग को महावर, पितरों को खिचड़ी, दौवारिक को दन्तकाष्ठ तथा आँटे की कृष्ण बलि, सुग्रीव को पूवा, पुष्पदन्त को खीर, वारुण को कुश समूह से संयुक्त पद्म, असुरगणों को सुवर्णयुक्त पिष्टक तथा मदिरा, शोष को

---

[1] ग. घ. °क्षकैः। पा°। [2] ग. °बिल्वैः पञ्चबी°। [3] ङ. °ल्वैर्बीजैरन्यैर°। [4] घ. °न्ते नवभो°। [5] क. ख. °तान्नं तु। [6] ग. जयन्ताय ध्व°। [7] ग. गन्धोदकं। [8] क. ख. पुष्पकं। ग. पूरिकां।

कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मं च वारुणे[1] । पिष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरा मता ॥१६
घृतौदनं च [2]शोषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे । घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे [3]पुष्पफलानि च ॥१७
सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम् । भल्लाटस्थानके दद्यात्सोमाय[4] घृतपायसम् ॥१८
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा । दित्यै तु पूरिका दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः ॥१९
क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि । सावित्रे लड्डुकान्दद्यात्समरीचं कुशौदनम् ॥२०
सवितुर्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनम् । विवस्वते पुनर्दद्याद्रक्तचन्दनपायसम् ॥२१
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम् । घृतौदनं च मित्राय रुद्राय घृतपायसम् ॥२२
आमं पक्वं तथा मांसं देयं स्याद्राजयक्ष्मणे । पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च दापयेत् ॥२३
शर्करापायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि । पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं[5] चरुम् ॥२४
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत् । एवं संपूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा ॥२५
सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद्ब्राह्मणे गां पयस्विनीम् । राक्षसीनां बलिर्देयः अपि यादृग्यथा शृणु ॥२६
मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम् । ईशानभागमाश्रित्य [6]चरक्यै विनिवेदयेत् ॥२७
मांसौदनं च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च । आग्नेयीं दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत् ॥२८

घृत समेत ओदन, पापयक्ष्मा को जव का अन्न, रोग को घी का बना हुआ लड्डू, नाग को पुष्प और फल, मुख्य को घी तथा मूँग और ओदन, सोम के लिए भल्लाट के स्थान पर घृत और खीर, भग के लिए साठी का चावल तथा अदिति के लिए पिष्टक, पिष्टक और पोलिक तथा दिति के लिए पूरी की बलि दे दे—यह वास्तु के बाहरी भाग की बलिष्ठा प्रकार है।११-१९। यम को क्षीर, आपवत्स को दही, सावित्र को लड्डू तथा मरिच के साथ कुशमिश्रित जल, सविता को गुड़ और अपूप, जय को घृत और चन्दन तथा विवस्वान् के लिए पुनर्वार लाल चन्दन तथा खीर दे । इन्द्र को घृत समेत हरिताल और ओदन दे, मित्र को घृत मिश्रित ओदन तथा रुद्र को घृत और खीर दे। राजयक्ष्मा को पका हुआ तथा कच्चा मांस दे, पृथ्वीधर को मांस खण्ड तथा कुम्हड़े दे। अर्यमा के लिए पुनर्वार शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जव, तिल, अक्षय तथा चरु दे । विविध प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थ ब्रह्मा के लिए दे । इस प्रकार से विधिपूर्वक पूजित देवगण सर्वदा शान्ति करते हैं।२०-२५। अन्य उपस्थित लोगों के लिए सवर्ण का तथा ब्राह्मण को दूध देनेवाली गौ का दान करना चाहिये । राक्षसियों के लिए जिस प्रकार की बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनो। मांसयुक्त ओदन, घृत, तथा रक्त समेत पद्मकेसर—इन सब वस्तुओं को ईशानकोण की ओर चरकी नामक राक्षसी को निवेदित करना चाहिये । मांस मिश्रित

---

[1] क. ख. वारुणम् । [2] क. शेषाय । ग. ङ. सोमाय । [3]. ग. पुष्पं फलान्वितम् । भक्ष्यमुख्या° । [4] ग. °य मधुपा° । [5] घ. °तहविश्चरु° । [6] ङ. शरावे ।

दध्योदनं सरुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम् । पीतरक्तं बलिं दद्यात्पूतनायै सरक्षसे ।।२९
वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम् । पायसं चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात् ।।३०
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः । ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत् ।।३१
*द्विजान्सुपूजयेद्भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः । एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत् ।।३२
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्तने । पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये ।।३३
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम् । नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ।।३४
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं[१] बुधः । गृहे वाऽऽयतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ।।३५
न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुधनक्षयः । जीवेद्वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं च तिष्ठति ।।३६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुदोषोपशमनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२६८।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ।।१३३९४।।

ओदन, रुधिर तथा हरिद्रायुक्त ओदन—इन सब वस्तुओं को आग्नेयकोण की ओर विदारी नामक राक्षसी के लिए निवेदित करना चाहिये। रक्त समेत दही, ओदन, हड्डियों के टुकड़े तथा पीतरक्त की बलि राक्षस समेत पूतना नामक राक्षसी के लिए नैऋंत्यकोण में देनी चाहिये ।२६-२९। वायव्यकोण में पापा नामक राक्षसी के लिए, मदिरा, आसव, मछली, मांस तथा खीर—को देना चाहिये। क्रमानुरूप इन वस्तुओं को देते समय अपना नाम उच्चारित कर लेना चाहिये । और मन्त्र के आदि में प्रणव का उच्चारण करते हुए अन्त में नमस्कार भी करना चाहिये। तदनन्तर यजमान को सभी ओषधियों से युक्त जल के द्वारा स्नान कराना चाहिये। यजमान को भक्तिपूर्वक अपने गृह पर समुपस्थित लोगों की तथा शान्तिकर्म में नियुक्त ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु की शान्ति करने के बाद कर्म प्रारम्भ करना चाहिये ।३०-३२। प्रासाद, भवन एवं उद्यान के प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्धार के समय या पुर अथवा गृह में प्रवेश करते समय सभी दोंषों के विनाशार्थ रक्षोघ्न और पावमान सूक्तों के पाठ कराने के बाद तथा नृत्य और मांगलिक गीत वाद्यों के साथ ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन कराना चाहिये । इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो बुद्धिमान् पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिर आदि के प्रारम्भ अथवा प्रवेश आदि के अवसरों पर करते हैं, वें दुःख नहीं झेलते, उन्हें न तो किसी व्याधि का भय होता है, न बन्धुजनों का तथा सम्पत्ति का विनाश ही होता है, प्रत्युत इसके प्रभाव से वह इस लोक में सौ वर्ष तक जीवित रहता है और स्वर्ग में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है ।३३-३६।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु दोष नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।।२६८।।

---

*इत आरभ्य सर्वदोषापनुत्तय इत्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते ।

अथैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत्षोडशभागिकम् । तस्य मध्ये चतुर्भिस्तु भागैर्गर्भं तु कारयेत् ॥१
भागद्वादशकं सार्धं ततस्तु परिकल्पयेत् । चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः ॥२
चतुर्भागेन (ण) भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणत. । द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायप्रमाणतः ॥३
शिखरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा । गर्भसूत्रद्वयं चाग्रे विस्तारो मण्डपस्य[1] तु ॥४
आयतः स्यात्त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तः[2] सुशोभनः । पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥५
भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद्बुधः । गर्भसूत्रसमो[3] भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥६
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम् । तथाऽन्यं तु प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः ॥७
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः । पिण्डिकार्धेन[4] भागः स्यात्तन्मानेन तु भित्तयः ॥८

अध्याय २६९

सूत ने कहा—इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार के वास्तु बलि करने के उपरान्त वास्तु को सोलह भागों में विभक्त करे, जिनमें से चार भागों में मध्य भाग की कल्पना करे । और तदनन्तर बारह भागों में प्रासाद की कल्पना करे । बुद्धिमानों को चारों दिशाओं में बाहर निकलने का मार्ग भी जानना चाहिये ।१-२। प्रमाण के चौथाई भाग जितनी भीत की ऊंचाई होनी चाहिये और भीत की ऊँचाई के प्रमाण से द्विगुणित शिखर (गुम्बद) की ऊँचाई होनी चाहिये । शिखर की ऊँचाई के चौथे भाग जितनी प्रदक्षिणा बनानी चाहिये । गर्भ (मध्य भाग) के माप का द्विगुणित मण्डप के अग्रभाग का विस्तार होना चाहिये, और तीन भागों से युक्त लम्बाई होगी, जो भद्रयुक्त रहेगी । विचक्षण पुरुष को गर्भमान को पांच भागों में विभक्त कर एक भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये । गर्भसूत्र के समान आगे मुखमण्डप की रचना करनी चाहिये ।३-६। यह सामान्यतः प्रासाद का लक्षण है, जिसे मैं बतला चुका । अब अन्य प्रासाद की रचना का प्रकार बता रहा हूँ, जो लिंग मान के आधार पर निर्मित होता है । बुद्धिमान् पुरुषों को लिंग पूजा की उपयोगी पीठिका बनानी चाहिये । पिण्डिका के अर्ध भाग को विभक्त कर उक्त अर्धांश मान में भित्ति की रचना करनी चाहिये । एवं बाहरी भीत के प्रमाण के अनुरूप

---

[1] घ. ङ. °ण्डलस्य । [2] ग. ङ. युक्तं सुशोभनम् । प° । [3] क. ख. °समाद्भागा° । ग. घ बम भा । [4] क. र्धे विभा° ।

बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत्पुनः । भित्त्युच्छ्रायात्तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः ॥९
शिखरस्य[१] चतुर्भागात्कर्तव्या च प्रदक्षिणा । प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत् ॥१०
तस्य चार्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः । प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ [२]कपोलौ गर्भमानतः ॥११
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयात्तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत् । मञ्जर्याश्चार्धभागेन शुकनासां[३] प्रकल्पयेत् ॥१२
ऊर्ध्वं तथाऽर्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह । वेद्याश्चोपरि यच्छेषं [४]कण्ठश्चामलसारकः ॥१३
एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद्बुधः । अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम् ॥१४
गर्भमानप्रमाणेन प्रासादं शृणुत द्विजाः । विभज्य नवधा गर्भं मध्ये स्याल्लिङ्गपीठिका ॥१५
पादाष्टकं तु [५]रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत् । मानेन तेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते ॥१६
पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्[६] । स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः ॥१७
चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु । शुकनाशं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता ॥१८
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत् । [७]कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽत्र विधीयते ॥१९

ही ऊँचाई भी करनी चाहिये । भीत की ऊँचाई से द्विगुणित शिखर की ऊँचाई होनी चाहिये ।७-९। शिखर के चतुर्थ भाग परिमित प्रदक्षिणा करनी चाहिये । प्रदक्षिणा के बराबर ही आगे का मण्डप निर्मित करना चाहिये । उसके आधे भाग में आगे की ओर मुख मण्डप बनाना चाहिये । प्रासाद से गर्भमान के अनुसार दो कपोल निकालने चाहिये । उसके ऊपर भीत की ऊँचाई से मंजरी की कल्पना करनी चाहिये । मंजरी के अर्धं भाग में शुक नासा की रचना करनी चाहिए, और ऊपर वाले आधे भाग में वेदी बंध की रचना करानी चाहिये । वेदी के ऊपर जो शेष भाग रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक है ।१०-१३। इस प्रकार विभाग करके मनोहर प्रासाद की रचना बुद्धिमानों को करनी चाहिये । अब अन्य प्रकार के प्रासाद के लक्षणों को बतला रहा हूँ ।१४। हे ऋषिगण ! मध्य भाग के मान के अनुसार प्रासाद की रचना का प्रकार आप लोग सुनें । मध्यभाग को नव भागों में विभक्त कर मध्य में लिङ्ग की पीठिका स्थापित करे । अगल-बगल में पादाष्टक को अति रुचिर तथा कल्पित करे, उन्हीं के मान के अनुसार भीत का विस्तार करना चाहिये । उस पाद को पाँच गुणित करने पर जो गुणनफल हो, वही भीत की ऊँचाई है, और इसकी द्विगुणित ऊँचाई शिखर की होगी ।१५-१७। शिखर को चार भागों में विभक्त कर आधे दो भागों में शुकनासा की कल्पना करनी चाहिये, तीसरे में वेदिका मानी गई है, चतुर्थ में कण्ठ और अमलसार की कल्पना करनी चाहिये । इस प्रासाद में कपाल का मान द्विगुणित माना गया है । मनोहर पत्तियों तथा लताओं से तथा अण्डकों से विभूषित बनाना चाहिये । यह तीसरे ढङ्ग के प्रासाद का प्रकार मैं तुम्हे बता चुका । हे ऋषि-

---

[१] च °खरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्र° । [२] क. ख. ङ. कपालौ । [३] ग. घ. ङ. °नासं प्र° । [४] ग. कण्ठे मामलकारकम् । ए° । [५] ग. शिखरं । ङ. सुचिरं । [६] ग. ङ. °त् एवं च शि° । [७] क. ख. कपाल° ।

शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः । प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः ॥२०
सामान्यमपरं[1] तद्वत्प्रासादं शृणुत द्विजाः । त्रिभेदं कारयेत्क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥२१
रथाङ्कस्तेन[2] मानेन [3]बाह्यभागविनिर्गतः[4] । नेमी पादेन विस्तीर्णा [5]प्रासादस्य [6]समन्ततः ॥२२
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यात्तस्य मानं भवेदिह । स एव भित्तेरुत्सेधा द्विगुणः शिखरो मतः ॥२३
प्राग्ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते । कारयेत्सुषिरं [7]तद्वत्प्राकारस्य त्रिभागतः ॥२४
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन [8]निष्काषेण विशेषतः । कुर्याद्वा पञ्चभागेन [9]प्राग्ग्रीवं कर्णमूलतः ॥२५
स्थापयेत्कनकं तत्र गर्भान्ते[10] द्वारमूलतः । एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥२६
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः । एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना ॥२७
मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा । विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च ॥२८
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः । सिंहास्यो नन्दनश्चैव[11] नन्दिवर्धनकस्तथा ॥२९

वृन्द ! अब साधारण रीति से एक अन्य प्रकार के प्रासाद का वर्णन सुनिये ।१८-२०½। जहाँ पर देवता स्थित होते हैं, उस क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त कर उसी परिमाण में बाहर की ओर निकला हुआ रथाङ्क बनाना चाहिये । प्रासाद के चारों ओर चतुर्थ भाग में विस्तृत नेमी बनानी चाहिये । मध्य भाग को उससे द्विगुणित करना चाहिये, वही उसका मान है, और वही भीत की ऊंचाई भी है, शिखर की ऊँचाई उससे द्विगुणित मानी गयी है । उस प्रासाद का प्राग्ग्रीव पाँच भाग में होगा, उसका निष्कास बतला रहा हूँ, उसे प्राकार के तीन भाग में छिद्र युक्त बनाना चाहिये, प्राग्ग्रीव को पाँच भागों में—विशेषतया निष्काष से—बनाना चाहिये ! अथवा कर्णमूल से पाँच भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये ।२१-२५। द्वारमूल के मध्य भाग में सुवर्ण की स्थापना करनी चाहिये । इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ—इन तीन प्रकारों वाला बनाना चाहिये । वे चाहे लिंग के परिमाण भेद से हों अथवा रूप भेद से हों । इन प्रासादों के निर्माण की विधि मैं संक्षेप में बतला चुका, अब इनके नाम सुनिये ।२६-२७। मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्र, नन्दन, नन्दिवर्धनक, हंस,

---

[1] ङ. °मापेन प° । [2] घ. ङ. °थाङ्कितेन । [3] ङ. च. गंतम् । ने° । [4] घ. °ताः । एक पादे° । [5] क. ख. °सादः स्यात्सम° । [6] ग. °तः । भित्तिश्च त्रिगुणा कार्या तस्या मा° । ङ. च. °तः । भित्तिश्च द्विगुणा कार्या तस्या मा° । [7] ग. °प्राग्ग्रीवं मा° । [8] घ. निष्काशेन । [9] क. ख. प्राग्ग्रीवे । [10] ग. घ. ङ. च. °न्ते हार° । [11] च. °व निषिव° ।

हंसो वृषः[1] [2]सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः । प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः ॥३०
शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः । नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते ॥३१
मन्दरो द्वादश प्रोक्तः कैलासो नवभूमिकाः । विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः ॥३२
स [3]चाष्टभूमिकस्तद्वत्सप्तभिर्नन्दिवर्धनः[4] । विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः ॥३३
षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः । अनेकशिखरस्तद्वत्सर्वतोभद्र उच्यते[5] ॥३४
चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः । [6]वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः ॥३५
वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः । सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो[7] गजो गजसमस्तथा ॥३६
कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद्भूमिकानवकोच्छ्रयः । [8]अङ्गुलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः ॥३७
*षोडशास्रः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः । पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् ॥३८
तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकात्रयम् । षोडशास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥३९

वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक—ये प्रासादों के नाम हैं, ऋषिगण ! अब इनके विभागों को सुनिये ।२८-३०। सौ शृङ्गोंवाले, चार द्वार वाले तथा सोलह खण्डों में ऊँचे विविध प्रकार के विचित्र शिखरों से युक्त प्रासाद को मेरु कहते हैं। मन्दर बारह खण्डों वाला कहा गया है तथा कैलास नव खण्ड का होता है। विमान और छन्दक भी उन्हीं की भाँति अनेक शिखरों और मुखों से युक्त होते हैं और आठ खण्डों वाले होते हैं। नन्दिवर्धन सात खण्डों वाला होता है । नन्दन विषाणक से संयुक्त रहता है। सोलह पहलों वाले विविध प्रकार के रूपों से सुशोभित अनेक शिखरों से संवलित प्रासाद को सर्वतोभद्र कहते हैं ।३१-३४। इसे चित्रशाला से संयुक्त तथा पाँच खण्डों वाला जानना चाहिये । बलभी तथा छन्दक को भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखों से युक्त जानना चाहिये । ऊँचाई में वृषभ के समान तथा मण्डल में बिना पहल के सिंह प्रासाद को सिंह की आकृति का जानना चाहिये, गज को गज के समान ही जानना चाहिये ।३५-३६। उसी प्रकार कुम्भ को आकृति में कुम्भ की भाँति तथा ऊँचाई में नव खण्डवाला बनाना चाहिये । अंगुली के पुट की भाँति उपस्थित पाँच अण्डकों से विभूषित चारों ओर से सोलह पहल वाले प्रासाद को मुद्गक जानना चहिये, इसके दोनों पार्श्वों में चन्द्रशालाएँ होंगी तथा ऊँचाई दो खण्डों से युक्त होगी ।३७-३८। उसी प्रकार की बनावट पद्मक की भी होगी केवल ऊँचाई में यह तीन खण्डों वाला होगा । इसके शिखर विचित्र तथा सुन्दर दिखनेवाले होते

---

*इत आरभ्य षडुन्नत इत्यन्तग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति ।

---

१ च. वृषभवर्णश्च प° । २ घ. ङ. सुपर्णश्च प° । ३ ग. °प्तभूर्न° । ४ ग. °नः । विश-तिकः स° । ङ. °न । त्रिशाण्डकं° । ५ घ. °ते । चन्द्रशा° । ६ ग. घ. ङ. °द्वच्छूकनासं त्रयान्वितः । वृ° । ७ ग. °यो नन्दिनंन्दिस° । ८ ग. लीयकसं° ।

मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालो विभूषितः । प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः ॥४०
अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते । पर्यस्तगृहराजो वै गरुडो नाम नामतः ॥४१
सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः । भूमिकाषडशीतिस्तु बाह्यतः सर्वतो भवेत् ॥४२
तथाऽन्यो [1]गरुडस्तद्वदुच्छ्रायाद्दशभूमिकः[2] । पद्मकः षोडशास्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः ॥४३
पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीवृक्षक इति स्मृतः । पञ्चाण्डको द्विभूमिश्च गर्भे हस्तचतुष्टयम् ॥४४
वृषो भवति नाम्नाऽयं प्रासादः सार्वकामिकः । सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा वै मयोदिताः ॥४५
सिंहास्येन समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः । चन्द्रशालैः समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः ॥
ऐष्टका दारवाश्चैव शैला वा स्युः सतोरणाः ॥४६
मेरुः [3]पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मन्दरः पञ्चहीनकः । चत्वारिंशत्तु कैलाश्चतुस्त्रिशद्विमानकः ॥४७
नन्दिवर्धनकस्तद्वद्द्वात्रिंशत्समुदाहृतः । त्रिंशता नन्दनः प्रोक्तः सर्वतो भद्रकस्तथा ॥४८
वर्तुलः पद्मकश्चैव विंशद्धस्त उदाहृतः । गजः सिंहश्च कुम्भश्च वलभीच्छन्दकस्तथा ॥४९
+एते षोडशहस्ताः स्युश्चत्वारो देववल्लभाः । कैलासो मृगराजश्च विमानच्छन्दको मतः ॥५०

हैं और यह भी सोलह पहलों वाला होता है । मृगराज प्रासाद वह है, जो चन्द्रशाला से विभूषित तथा प्राग्ग्रीव से युक्त और छः खण्डों में रचा गया हो । गज प्रासाद अनेक चन्द्रशालाओं से युक्त होगा । गरुड़ नामक प्रासाद गृहराज को भी अपमानित करने वाला, तीन चन्द्रशालाओं से विभूषित तथा सात खण्डों में उच्च होता है । उसके बाहर की ओर सब छियासी खण्ड होंगे ।३९-४२। एक अन्य प्रकार का भी गरुड़ प्रसाद है जो ऊँचाई में दस खण्डों से युक्त है । पद्मक सोलह पहलों वाला तथा पूर्व कथित गरुड़ से दो खण्ड अधिक ऊँचा होता है । पद्म के समान ही श्री वृक्षक प्रासाद का परिमाण सुना जाता है । उसमें पांच अण्डक, दो खण्ड, तथा मध्य भाग में चार हाथ का विस्तार होता है ।४३-४४। वृष नामक यह प्रासाद नाम से ही सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है । मैंने पांच सात प्रासादों के प्रकार वर्णित किये हैं, अतः अन्यान्य वे प्रासाद, जिनका वर्णन नहीं किया गया, उन्हें सिंहास्य के प्रमाणानुरूप जान लेना चाहिये । सभी चन्द्रशालाओं से संयुक्त तथा प्राग्ग्रीव से संवलित रहेंगे । इन्हें ईंटों से, लकड़ी अथवा पत्थर से बनाना चाहिये और तोरण समेत बनवाना चाहिये ।४५-४६। मेरु प्रसाद पचास हाथ के परिमाण में रहता है, मन्दर उससे पांच हाथ न्यून अर्थात् पैंतालीस हाथ के परिमाण में । कैलास का विस्तार चालीस हाथ तथा विमान चौंतीस हाथ का होता है । उसी प्रकार नन्दिवर्धनक का परिमाण बत्तीस हाथ का, नन्दन का तथा सर्वतोभद्र का तीस हाथों का जानना चाहिये । वर्तुल और पद्मक का परिमाण बीस हाथों का, गज, सिंह, कुम्भ, वलभी, तथा

+इत आरभ्य मम्मतमित्यन्तग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति ।

---

[1] ङ. च. °दुच्छ्रायो दश° । [2] क. ख. °कः । भूमिकाषो° । [3] म. ङ. च. पञ्चसहस्रः स्या° ।

एते द्वादशहस्ताः स्युरेतेषामिह सम्मतम् । गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयो हंसो दश उदाहृतः ॥५१
एवमेते प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः । यक्षराक्षसनागानां मातृहस्तात्प्रशस्यते ॥५२
तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गे शुभावहाः । श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्यमस्य प्रकीर्तिताः ॥५३
तथा हंसादयः पञ्च [1]कन्यसे शुभदा मताः । बलभीच्छन्दके गौरी जटामुकुटधारिणी ॥५४
वरदाऽभयदा[2] तद्वत्साक्षसूत्रकमण्डलुः । गृहे तु रक्तमुकुटा उत्पलाङ्कुशधारिणी ॥
वरदाऽभयदा चापि पूजनीया सभर्तृका ॥५५
तपोवनस्थामितरां तां तु [3]संपूजयेद्बुधः । देव्या विनायकस्तद्वद्वलभीच्छन्दके [4]शुभः ॥५६

इतिश्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६९॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३४५०॥

अथ सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि मण्डपानां तु लक्षणम् । मण्डपप्रवराम्वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः ॥१

छन्दक को सोलह हाथों का जानना चाहिये—ये चारों देवताओं को अति प्रिय हैं कैलास, मृगराज तथा विमानच्छन्दक—ये बारह हाथ के माने गये हैं।४७-५०½। गरुड़ आठ हाथों का तथा हंस दस हाथों का कहा गया है, इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त शुभ लक्षण सम्पन्न इन प्रासादों की रचना करनी चाहिये यक्ष, राक्षस और नागों के प्रासाद मातृहस्त से प्रशस्त माने गये हैं । श्री वृक्षक आदि आठ मध्यम लिंग के लिये कहे गये हैं । इसी प्रकार हंसादि पाँच कनिष्ठ लिंग के लिए शुभदायक माने गये । बल भी और छन्दक प्रासाद में गौरवर्ण, जटा मुकुट धारण करने वाली, वरदान देनेवाली, अभयदान देने वाली अक्षसूत्र और कमण्डलु धारण करनेवाली एवं शुभदायिनी है।५१-५४½। गृह में लाल मुकुट धारण करने वाली, कमल एवं अंकुश विभूषित वरदान देने वाली अभयदायिनी पति समेत मातृका का पूजन करना चाहिये । तपोवन में अवस्थित उसे बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार पूजित करे । देवी के लिए और विनायक के लिए बलभी और छन्दक ये दोनों शुभदायी हैं।५५-५६।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रासादानुकीर्तन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२६९॥

अध्याय २७०

सूत ने कहा—ऋषि वृन्द ! अब मैं मण्डपों का लक्षण बतला रहा हूँ, और प्रासाद के अनुरूप

---

[1] ग. कनिष्ठे । [2] ङ. °दा रूपदा । [3] ग. °येत्पुनः । देव्यौ वि° । ङ. 'येत्पुनः । देव्यौ विनायकौ तद्वद्व । [4] ङ. शुभौ ।

विविधा मण्डपाः कार्या ज्येष्ठमध्यकनीयसः । नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥२
पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः । कौशल्यो बुद्धिसंकीर्णो गजभद्रो जयावहः ॥३
श्रीवत्सो विजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिंजयः । यज्ञभद्रो विशालश्च सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः ॥४
भागपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः । सुग्रीवो [1]हरितश्चैव कर्णिकारः शतर्धिकः ॥५
सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च । सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः ॥६
स्तम्भा यत्र चतुःषष्टिः पुष्पकः समुदाहृतः । द्विषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिः सुव्रत उच्यते ॥७
अष्टपञ्चाशकस्तम्भः कथ्यतेऽमृतनन्दनः । कौशल्यः षट् च पञ्चाशच्चतुष्पञ्चाशता पुनः ॥८
नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः । जयावहस्तु पञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तद्विहीनकः ॥९
विजयस्तद्विहीनः स्याद्वास्तुकीर्तिस्तथैव च । द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिंजयोऽपरः ॥१०
चत्वारिंशद्यज्ञभद्रस्तद्विहीनो विशालकः । षट्त्रिंशच्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः ॥११
द्वात्रिंशद्भागपञ्चस्तु त्रिंशद्भिर्नन्दनः स्मृतः । अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः ॥१२

श्रेष्ठ मण्डपों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये । ज्येष्ठ, मध्यम, और कनिष्ठ--इन भेदों से विविध प्रकार के मण्डपों की रचना करनी चाहिये । उन सभी का नाम मैं बता रहा हूँ । पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन कौशल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिञ्जय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र, तथा सुभद्र—ये सत्ताइस प्रकार के मण्डप हैं । हे द्विजगण ! इनके लक्षणों को सुनिये ।१-६। जिस मण्डप में चौंसठ स्तम्भ लगे हों उसे पुष्पक कहते हैं, बासठ स्तम्भों वाले को पुष्पभद्र कहते हैं । साठ स्तम्भों वाले को सुव्रत कहते हैं ।७। अट्ठावन स्तम्भ वाला अमृतनन्दन नामक मण्डप है, कौशल्य छप्पन स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं । चौवन स्तम्भ जिस मण्डप में हों उसका नाम संकीर्ण है, उससे दो स्तम्भ कम जिसमें हों वह गजभद्रक है । जयावह पचास स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं, अड़तालीस स्तम्भों वाले मण्डप को श्रीवत्स, छियालीस स्तम्भोंवाले को विजय कहा जाता है उसी प्रकार वास्तुकीर्ति भी छियालीस स्तम्भों वाला मण्डप है, श्रुतिजय चौवालीस स्तम्भों का है । यज्ञभद्र मण्डप में चालीस स्तम्भ होते हैं, विशालक में उससे दो स्तम्भ न्यून रहते हैं अर्थात् उसमें अड़तीस स्तम्भ लगते हैं । सुश्लिष्ट में छत्तीस स्तम्भ होते हैं, शत्रुमर्दन में उससे दो स्तम्भ न्यून रहते हैं । अर्थात् वह चौंतीस स्तम्भों वाला है, भागपंच में बत्तीस स्तम्भ लगते हैं, तीस स्तम्भों वाले को नन्दन कहते हैं, अट्ठाईस स्तम्भ वाले मण्डप को मानव, तथा छब्बीस स्तम्भों वाले को मानभद्र मण्डप कहते हैं ।८-१२। इसी प्रकार सुग्रीव चौबीस स्तम्भों वाला, हरित बीस स्तम्भों

---

[1] घ. हर्षणश्चै° ।

चतुर्विंशस्तु सुग्रीवो द्वाविंशो हरितो मतः । विंशतिः कर्णिकारः स्यादष्टादश शतधिकः ॥१३
सिंहोभवेद्द्विहीनश्च श्यामभद्रो द्विहीनकः । सुभद्रस्तु तथा प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः ॥१४
मण्डपाः कथितास्तुभ्यं यथावल्लक्षणान्विताः । त्रिकोणं [1]वृत्तमर्धेन्दुमष्टकोणं द्विरष्टकम् ॥१५
चतुष्कोणं तु कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु । राज्यं च विजयश्चैव[2] आयुर्वर्धनमेव च ॥१६
पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद्भवेत् । एवं तु शुभदाः प्रोक्ताश्चान्यथा त्वशुभावहाः ॥१७
चतुः षष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत् । विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रायं तत्त्रिभागः कटिर्भवेत् ॥१८
विस्तारार्धो भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः । गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं त्रिगुणमायतम् ॥१९
*तथा द्विगुणविस्तीर्णमुखस्तद्वदुदुम्बरः । विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥२०
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते । कनिष्ठमध्यमं ज्येष्ठं यथायोगं प्रकल्पयेत् ॥२१
अङ्गुलानां शतं सार्धं [3]चत्वारिंशत्तथोन्नतम् । त्रिंशद्विंशोत्तरं[4] चान्यद्धन्यमुत्तममेव च ॥२२
शतं चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत् । अधिकं दशभिस्तद्वत्तथा षोडशभिः शतम् ॥२३

वाला, कर्णिकार बीस स्तम्भों वाला; शतधिक अट्ठारह स्तम्भों वाला, सिंह सोलह स्तम्भों वाला श्यामभद्र चौदह स्तम्भों वाला, सुभद्र बारहँ स्तम्भों वाला कहा गया है । लक्षणों समेत मण्डपों के नाम तुम्हें बतला चुका । इन मण्डपों को, तीन कोनवाला, गोलाकार, अर्धचन्द्राकार, आठ कोनवाला, दस कोनवाला, अथवा चार कोन वाला स्थापित करना चाहिये । ऐसे मण्डपों के स्थापन से राज्य की प्राप्ति होती है, विजय मिलती है, और आयु की वृद्धि होती है पुत्र लाभ होता है लक्ष्मी की पुष्टि होती है—ये फल त्रिकोण के क्रम से जानने चाहिये । इस प्रकार के बनाये हुए मण्डप मङ्गलकारी होते हैं अन्य प्रकार के मण्डप अशुभकर हैं ।१३-१७। गृह के मध्य में चौंसठ पदों की कल्पना कर मध्य में द्वार बनाये, चौड़ाई से ऊँचाई दुगुनी होनी चाहिये और उसके कटि भाग को तृतीयांश परिमित बनाना चाहिये । चौड़ाई का आधा मध्य भाग होना चाहिये, और उसके चारों ओर अन्य भीतें रहेंगी । मध्य भाग का चतुर्थांश जितना हो उसका त्रिगुणित लम्बा और, द्विगुणित विस्तृत, द्वार होना चाहिये जो गूलर का बना हुआ हो । दोनों शाखाओं का विस्तार द्वार के विस्तार का चतुर्थांश हो । तीन, पाँच, सात अथवा नव शाखाओं द्वारा द्वार बनता है । वे क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ कहलाते हैं।१८-२१। एक सौ साढ़े चालीस अंगुल ऊँचे द्वार को उत्तम द्वार कहते हैं, अन्य दो प्रकार के द्वार एक सौ तीस तथा एक सौ बीस अंगुल के होते हैं । वायु के निकलने के लिये एक सौ अस्सी अंगुल ऊँचा द्वार होना चाहिये । उसी प्रकार एक सौ दस, एक सौ सोलह

---

*एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. ङ. च. पुस्तकेषु—उच्छ्रायः पादविस्तीर्णशाखातद्वदुदुम्बर इति ।

---

[1] क. ख. °मर्धं तु ह्यष्ट° । [2] ग. °व शत्रूच्चाटन° । [3] घ. °शद्विरुन्नतम् । धन्यमुत्तममायुष्यं धनधान्यकमे° । [4] ग. °रं धन्यमुत्तमं पञ्चमेन तु । श° ।

शतमानं तृतीयं च नवत्याऽशीतिभिस्तथा । दशद्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा ॥२४
अन्यानि वर्जनीयानि मानसोद्वेगदानि तु । द्वारवेधं प्रयत्नेन सर्ववास्तुषु वर्जयेत् ॥२५
वृक्षकोणभ्रमिद्वारस्तम्भकूपध्वजादिभिः[1] । कुड्यश्वभ्रेण वा विद्धं द्वारं न शुभदं भवेत् ॥२६
क्षयश्च दुर्गतिश्चैव प्रवासः क्षुद्भयं तथा । दौर्भाग्यं बन्धनं रोगो दारिद्र्यं कलहं तथा ॥२७
विरोधश्चार्थनाशश्च [2]सर्वं वेधाद्भवेत्क्रमात् । पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरवृक्षास्तु दक्षिणे ॥२८
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलविभूषितम् । उत्तरे सरलैस्तालैः[3] शुभा स्यात्पुष्पवाटिका ॥२९
सर्वतस्तु जलं श्रेष्ठं स्थिरमस्थिरमेव च । पार्श्वतश्चापि कर्तव्यं परिवारादिकालयम्[4] ॥३०
याम्ये तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम् । महानसं तथाऽऽग्नेये नैर्ऋत्येऽथ विनायकम् ॥३१
वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका । उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुत्तरे ॥३२
वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम् । पुरतो वृषभस्थानं शेषे स्यात्कुसुमायुधः ॥३३
जलवापी तथैशाने विष्णुस्तु जलशाय्यपि । एवमायतनं कुर्यात्कुण्डमण्डपसंयुतम् ॥३४

एक सौ, नब्बे तथा साठ अंगुल के ऊँचे द्वार होने चाहिये। सर्वदा उपर्युक्त दस प्रकार के द्वार कहे गये हैं।२२-२४। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्वारों को वर्जित रखना चाहिये क्योंकि वे चित्त को उद्विग्न करने वाले कहे गये हैं। सभी वस्तुओं में द्वार के सामने वेध को वर्जित रखना चाहिये। सामने की ओर वृक्ष, कोणभ्रभिद्वार, स्तम्भ, कूप, ध्वजा, भीत और श्वभ्र इन सबों से विद्ध हुआ द्वार मङ्गलकारी नहीं होता। क्षय, दुर्गति प्रवास, क्षुधा का भय, दुर्भाग्य, बन्धन भय, रोग, दारिद्र्य, कलह विरोध, धनहानि,—ये सब कुपरिणाम क्रमशः द्वार वेध से होते हैं, ।२५-२७½। पूर्व दिशा में फल वाले वृक्ष, दक्षिण दिशा में दुग्धवाले वृक्ष, पश्चिम दिशा में विविध भाँति के कमलों से सुशोभित जल तथा उत्तर दिशा में शाल और ताल के वृक्षों से युक्त पुष्पवाटिका मंगलदायिनी है।२८-२९। जल सभी दिशाओं में श्रेष्ठ है, वह चाहे चल हो अथवा अचल हो। मुख्य भवन के दोनों पार्श्वों में परिवार वर्ग का निवास होना चाहिये, दक्षिण की ओर तपोवन अथवा तपस्या का स्थान, उत्तर में मातृकाओं का भवन, आग्नेय कोण में पाकशाला, नैर्ऋत्य कोण में गणेश का निवास, पश्चिम की ओर लक्ष्मी का निवास, वायव्य में गृहमालिका, उत्तर में यवशाला, निर्माल्य का स्थान, पश्चिम की ओर चन्द्रादि देवता का बलिदान देने का स्थान, सामने की ओर वृषभ का स्थान और शेष भाग में कुसुमायुध कामदेव का स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये।३०-३३। ईशान कोण में जलयुक्त बावली रहेगी तथा वहीं जल में शयन करनेवाले विष्णु भगवान् का भी स्थान रहेगा। इस प्रकार कुण्ड और मण्डप से संयुक्त

---

[1] क. ख. घ. °जादपि। कु°। [2] ग. सर्वमेतत्क्रमाद्भवेत्। पू°। [3] ग. ङ. च. °रलस्तालः शु°। [4] घ. °रार्थका°। ङ. च. °रालयादिकम्। या°।

घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम् ।
यः कारयेत्सुरगृहं विविधध्वजाङ्कं श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च ।।३५
एवं गृहार्चनविधावपि शक्तितः स्यात्संस्थापनं सकलमन्त्रविधानयुक्तम् ।
गोवस्त्रकाञ्चनहिरण्यधराप्रदानं देयं गुरुद्विजवरेषु तथाऽन्नदानम् ।।३६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रसादानुकीर्तनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७०।।

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ।।१३४८६।।

अथैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

पूरोर्वंशस्त्वया सूत सभविष्यो निवेदितः । सूर्यवंशे नृपा ये तु भविष्यन्ति हि तान्वद ।।१
तथैव यादवे वंशे राजानः कीर्तिवर्धनाः । कलौ युगे भविष्यन्ति तानपीह वदस्व नः ।।२

आयतन का निर्माण करना चाहिये । घण्टा, वितान, तोरण तथा चित्र से सुशोभित, नित्य महोत्सव से प्रमुदित जनसमूह के साथ विविध ध्वजाओं से विभूषित देव मन्दिर को जो पुरुष बनवाता है, उसे कभी लक्ष्मी नहीं छोड़ती और स्वर्ग में उसकी पूजा होती है। इसी प्रकार सभी मन्त्रों और विधानों से युक्त स्थापन की विधि को अपनी शक्ति के अनुरूप गृहपूजन के अवसर पर भी करना चाहिये । उस समय स्थापन करनेवाले को गुरु तथा ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, सुवर्ण के आभूषण सुवर्ण तथा पृथ्वी का दान देना चाहिये और अन्न दान भी करना चाहिये ।३४-३६।

श्री मात्स्य महापुराण में प्रासाद अनुकीर्तन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।२७०।।

अध्याय २७१

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! पिछली कथा के प्रसंग में आप पुरुवंशी राजाओं के वंश का भविष्य समेत वर्णन तो हम लोगों को सुना चुके हैं, अब सूर्यवंश में जो राजा लोग होंगे, कृपया उन्हें हमें बताइये ? इसी प्रकार यादव वंश में कलियुग में जो कीर्तिशाली राजा पृथ्वी पर होंगे, उन्हें भी हमें बताइये ? तथा इन वंशों के अन्त हो जाने पर जो अन्य शुभ व्रत-परायण जातियाँ भविष्य में राज्य करेंगी उन्हें भी हमें

[1]वंशान्ते ज्ञातयो याश्च राज्यं प्राप्स्यन्ति सुव्रताः । ब्रूहि संक्षेपतस्तासां यथाभाव्यमनुक्रमात् ॥३

सूत उवाच

बृहद्बलस्य दायादो वीरो राजा ह्युरुक्षयः । उरुक्षयसुतश्चापि वत्सद्रोहो[2] महायशाः ॥४
वत्सद्रोहात्प्रतिव्योमस्तस्य पुत्रो दिवाकरः । तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्या नगरी शुभा ॥५
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः । सहदेवस्य भविता ध्रुवाश्वो वै महामनाः ॥६
तस्य भाव्यो महाभागः प्रतीपश्वश्च तत्सुतः । प्रतीपाश्वसुतश्चापि सुप्रतीपो भविष्यति ॥७
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् । किंनराश्वः सुनक्षत्राद्भविष्यति परंतपः ॥८
किंनराश्वादन्तरिक्षो भविष्यति महामनाः । सुषेणश्चान्तरिक्षाच्च सुमित्रश्चाप्यमित्रजित् ॥९
सुमित्रजो बृहद्राजो बृहद्राजस्य वीर्यवान् । पुनः कृतंजयो नाम धार्मिकश्च भविष्यति ॥१०
कृतंजयसुतो विद्वान्भविष्यति रणेजयः । भविता संजयश्चापि वीरो राजा रणेजयात् ॥११
संजयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धौदनो नृपः । शुद्धौदनस्य भविता सिद्धार्थः पुष्कलः सुतः ॥१२
प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः । क्षुद्रकात्कुलको भाव्यः कुलकात्सुरथः स्मृतः ॥१३

बताइये ? क्रमशः हमारी इन जिज्ञासाओं को आप संक्षेप में बताइये तथा इसी के साथ यह भी बताइये कि भविष्य में कौन सी विशेष घटनाएँ घटित होंगी ।१-३।

सूत ने कहा—राजा बृहद्बल का उत्तराधिकारी राजा उरुक्षय तथा उरुक्षय का पुत्र महायशस्वी वत्सद्रोह होगा । वत्सद्रोह का पुत्र राजा प्रतिव्योम तथा उसका पुत्र दिवाकर होगा । उसी के राज्य के मध्य देश में सुन्दर अयोध्या नामक नगरी होगी । दिवाकर का पुत्र महायशस्वी सहदेव होगा । तथा सहदेव का पुत्र महानुचेता ध्रुवाश्व नामक राजा होगा ।४-६। उस ध्रुवाश्व का पुत्र महाभाग भाव्य तथा भाव्य का पुत्र प्रतीपाश्व होगा । उस प्रतीपाश्व का पुत्र सुप्रतीप नामक राजा होगा । उसका पुत्र मरुदेव होगा, मरुदेव से राजा सुनक्षत्र उत्पन्न होगा । राजा सुनक्षत्र का पुत्र परम तपस्वी राजा किन्नराश्व होगा । किन्नराश्व का पुत्र महामना अन्तरिक्ष नामक राजा होगा । अन्तरिक्ष का पुत्र सुषेण तथा शत्रुओं को जीतनेवाला सुमित्र नामक पुत्र होगा ।७-९। उनमें सुमित्र का पुत्र बृहद्राज और बृहद्राज का पुत्र परम बलवान् तथा धार्मिक कृतंजय नामक पुत्र होगा । कृतञ्जय का पुत्र विद्वान् रणेजय नामक राजा होगा । उस रणेजय से संजय नामक राजा की उत्पत्ति होगी । संजय का पुत्र शाक्य तथा शाक्य का पुत्र शुद्धोदन होगा । शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ तथा सिद्धार्थ का पुत्र पुष्कल होगा ।१०-१२। उससे प्रसेनजित् की उत्पत्ति होगी, उससे क्षुद्रक की उत्पत्ति होगी । क्षुद्रक से कुलक और कुलक से राजा सुरथ होगा । राजा सुरथ से सुमित्र की उत्पत्ति होगी, जो अपने वंश

---

[1] ङ. संधान्ते । [2] ग. ङ. च. °त्सव्यूहो ।

सुमित्रः सुरथाज्जातो ह्यन्त्यस्तु भविता नृपः। एते चैक्ष्वाकवः प्रोक्ता भविष्या ये कलौ युगे ॥१४
बृहद्बलान्ववाये तु भविष्याः कुलवर्धनाः । अत्रानुवंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः ॥१५
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति । सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१६
इत्येवं मानवो वंशः प्रागेव समुदाहृतः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधा ये बृहद्रथाः ॥१७
पूर्वेण ये जरासंधात्सहदेवान्वये नृपाः । अतीता वर्तमानाश्च भविष्यांश्च निबोधत ॥१८
सङ्ग्रामे भारते वृत्ते सहदेवे निपातिते । सोमाधिस्तस्यदायादो राजाऽभूत्स गिरिव्रजे ॥१९
पञ्चाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत् । श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिं समास्तस्यान्वयेऽभवत् ॥२०
अप्रतीपी[1] च षट्त्रिंशत्समा राज्यमकारयत् । चत्वारिंशत्समास्तस्य निरमित्रो दिवं गतः ॥२१
पञ्चाशतं समाः षट् च सुरक्षः प्राप्तवान्महीम् । बृहत्कर्मा त्रयोविंशदब्दं राज्यमकारयत् ॥२२
[2]सेनाजित्संप्रयातश्च भुक्त्वा [3]पञ्चशतं महीम् । श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥२३
अष्टाविंशतिवर्षाणि महीं प्राप्स्यति वै विभुः । अष्टपञ्चाशतं षट् च राज्ये स्थास्यति वै शुचिः ॥२४

का अन्तिम राजा होगा । ये इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, जो कलियुग में उत्पन्न होंगे और राजा बृहद्बल के वंश में होनेवाले कहे जायँगे । ये कुल की वृद्धि करनेवाले राजागण हैं । प्राचीन गाथाओं के जाननेवाले ब्राह्मणों ने इस वंश परम्परा की सूचना देनेवाला एक श्लोक इस प्रकार कहा है । "इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति । सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।" अर्थात् इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का यह वंश राजा सुमित्र की अवधि के बाद समाप्त हो जायेगा । कलियुग में यह वंश राजा सुमित्र को प्राप्त कर विश्राम करेगा' ।१३-१६। इस प्रकार यह मानववंश प्राचीनकाल से ही वर्णित हो रहा है । अब इसके बाद बृहद्रथ के वंशवाले मागधों का मैं वर्णन कर रहा हूँ । सहदेव के वंश में होनेवाले उन भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये, जो जरासंध से उत्पन्न होंगे । महाभारत के संग्राम के समाप्त हो जाने पर सहदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमाधि उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ, जो गिरिव्रज में अपना राज्य करता था, उसने अट्ठावन वर्षों तक राज्य किया । उसी के वंश में श्रुतश्रवा नामक राजा हुआ, जो चौंसठ वर्षों तक राज्य करता रहा ।१७-२०। उसके बाद अप्रतीपी नामक राजा हुआ, जो छत्तीस वर्षों तक राज्य करता रहा । उसका पुत्र निरमित्र था, जो चालीस वर्षों तक राज्य कर स्वर्गवासी हुआ । उसके बाद राजा सुरथ हुआ, जिसने छप्पन वर्षों तक राज्य किया । तदनन्तर बृहत्कर्मा ने तेईस वर्षों तक राज्य किया । उसके बाद राजा सेनाजित् ने पचास वर्षों तक पृथ्वी का पालन कर स्वर्गयात्रा की । तदनन्तर श्रुतिञ्जय नामक राजा होगा, जो चालीस वर्षों तक राज्य करेगा ।२१-२३। उसके बाद विभु अट्ठाईस वर्षों के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होगा । तदनन्तर राजा शुचि चौंसठ वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद क्षेम नामक राजा होगा, जो अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी

---

[1] ग. घ. °प्रतापी । [2] घ. सेनजि° । [3] ग. घ. पञ्चाशतं ।

अष्टाविंशत्समा राजा क्षेमो भोक्ष्यति वै महीम् । अनुव्रतश्चतुःषष्टिं राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान् ॥२५
पञ्चविंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम् । भोक्ष्यते निर्वृतिश्चेमामष्टपञ्चाशतं समाः ॥२६
अष्टाविंशत्समा राज्यं त्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः । चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च [1]द्युमत्सेनो भविष्यति ॥२७
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रः[2] प्रकाश्यते । द्वात्रिंशत्तु समा राजा ह्यचलस्तु भविष्यति ॥२८
रिपुंजयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् । द्वात्रिंसत्तु नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ॥२९
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तेषां राज्यं भविष्यति । जयतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलको भवेत् ॥३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तन एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३५१६॥

अथ द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

बृहद्रथेष्वतीतेषु[3] वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु । [4]पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ॥१

का उपभोग करेगा । तदनन्तर पराक्रमी राजा अनुव्रत होगा, जो चौंसठ वर्षों तक राज्य करेगा उसके उपरान्त राजा सुनेत्र पच्चीस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा । तदनन्तर राजा निवृति होगा जो अट्ठावन वर्षों तक राज्य करेगा ।२४-२६। उसके बाद राजा त्रिनेत्र अट्ठाईस वर्ष तक धरातल पर राज्य करेगा । तदनन्तर राजा द्युमत्सेन होगा । जो अड़तालीस वर्ष तक राज्य का कार्य करेगा । उसके बाद राजा महीनेत्र का पृथ्वी पर प्रकाश होगा, जो तैंतीस वर्षों तक रहेगा । तदुपरान्त राजा अचल का बत्तीस वर्षीय राज्यकाल प्रारम्भ होगा । उसके बाद रिपुञ्जय होगा, जो पचास वर्षों तक पृथ्वी पर रहेगा । इस प्रकार ये बत्तीस वृहद्रथ के वंशज राजा होंगे । उनका राज्यकाल कुल मिलाकर एक सहस्र वर्ष का होगा । विजयशील क्षत्रिय राजाओं में पुलक नामक बालक उत्पन्न होगा ।२७-३०।

श्री मात्स्य महापुराण में राजवंश कीर्तन नामक दो सौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥२७१॥

अध्याय २७२

सूत ने कहा—बृहद्रथ एवं अवन्ति देशीय वीतिहोत्र राजाओं के बाद पुलक अपने स्वामी राजा को

---

[1] घ. दृढसेनो। [2] ख. महीं नेत्रः प्रशास्यते । घ महीं नेत्रः प्रशस्यते । [3] ग. °द्रथे व्यतीते तु वी° ।
[4] ग. घ. ङ. पुलिकः ।

मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलकोद्भवः । स वै प्रणतसामन्तो [1]भविष्यो न[2] च धर्मतः ॥२
त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः । अष्टाविंशतिवर्षाणि पालको भविता नृपः ॥३
विशाखयूपो भविता त्रिपञ्चाशत्तथा समाः । एकविंशत्समा राजा सूर्यकस्तु भविष्यति ॥४
भविष्यति नृपस्त्रिंशत्तत्सुतो नन्दिवर्धनः । द्विपञ्चाशत्ततो भुक्त्वा प्रनष्टाः पञ्च ते नृपाः ॥५
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति । वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्
शिशुनाकस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥६
काकवर्णः सुतस्तस्य षड्विंशत्प्राप्स्यते महीम् । षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति ॥७
चतुर्विंशत्समाः सोऽपि क्षेमजित्प्राप्स्यते महीम् । अष्टाविंशतिवर्षाणि विन्ध्यसेनो भविष्यति ॥८
भविष्यति समा राजा [3]नवकान्वायनो[4] नृपः । भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति ॥९
अजातशत्रुर्भविता सप्तविंशत्समा नृपः । चतुर्विंशत्समा राजा वंशकस्तु भविष्यति ॥१०
उदासी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः । चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा नन्दिवर्धनः ॥११
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति । इत्येते भवितारोऽत्र[5] वंशे वै शिशुनाकतः ॥१२

मारकर राजगद्दी पर अपने पुत्र का अभिषेक करेगा । संभ्रान्त क्षत्रियों के देखते-देखते ही वह पुलक का बालक सामन्तों से वन्दनीय तो होगा, किन्तु धर्मतः नहीं, केवल शक्ति के भरोसे । वह नरोत्तम पृथ्वीतल पर तेईस वर्षों तक राज्य करेगा । अट्ठाईस वर्षों तक पालक नामक राजा होगा, उसके बाद विशाखयूप नामक राजा होगा, जो तिरपन वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद सूर्यक नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्षों तक राज्य करेगा ।१-४। उसके बाद उसका पुत्र नन्दिवर्धन राजा होगा, जो तीस वर्षों तक राज्य करेगा--इस प्रकार बावन (?) वर्षों तक ये पाँच राजा राज्य का उपभोग कर नष्ट हो जायँगे । (वस्तुतः इन पाँचों के राज्य-काल का योग एक सौ पचपन वर्ष होता है ।) इन राजाओं के समस्त यश को अपहृत कर शिशुनाक नामक राजा होगा, जो वाराणसी नगरी में अपने पुत्र को राज्यासन पर प्रतिष्ठापित कराकर गिरिव्रज का आश्रय लेगा । यह शिशुनाक चालीस वर्ष तक राजा होगा ।५-६। उसका पुत्र काकवर्ण होगा, जो छब्बीस वर्षों तक पृथ्वी का राजा रहेगा, उसके बाद छत्तीस वर्षों तक क्षेमधर्मा नामक राजा होगा । तदनन्तर चौबीस वर्षों तक क्षेमजित् नामक राजा राज्य करेगा, उसके बाद फिर अट्ठाईस वर्षों तक राजा विन्ध्यसेन का राज्य होगा । फिर नव वर्ष तक कान्वायन नामक राजा होगा, तदनन्तर उसका पुत्र भूमिमित्र होगा जो चौदह वर्षों तक राज्य करेगा । फिर सत्ताईस वर्षों तक राजा अजातशत्रु रहेगा, उसके बाद चौबीस वर्ष तक वंशक नामक राजा होगा ।७-१०। तदनन्तर तैंतीस वर्षों तक उदासी नामक राजा होगा, उसके बाद चालीस वर्षों तक राजा नन्दिवर्धन का शासन-काल होगा । फिर तैंतालीस वर्ष तक महानन्दी राजा होगा—ये सब राजा शिशुनाक के उपरान्त पृथ्वीतल के

---

[1] ग. घ. भविष्ये । [2] ङ. च. नयवर्जितः । [3] ङ. °वकण्ठाय° । [4] घ. काधाय° । [5] क. ख. °रो वे दश द्वौ शिशुनाकजाः । श° ।

शतानि त्रीणि पूर्वाणि षष्टिवर्षाधिकानि तु । शिशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः ॥१३
एतैः सार्धं भविष्यन्ति यावत्कलि नृपाः परे । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः ॥१४
चतुर्विंशत्तथैक्ष्वाकाः पाञ्चालाः सप्तविंशतिः । काशेयास्तु [१]चतुर्विंशदष्टाविंशतिहैहयाः ॥१५
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशदश्मकाः पञ्चविंशतिः । कुरवश्चापि षट्त्रिंशदष्टाविंशास्तु मैथिलाः ॥१६
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः । एते सर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः ॥१७
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः । उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः ॥१८
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः । एकराट् स महापद्मो एकच्छत्रो भविष्यति ॥१९
अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि पृथिव्यां च भविष्यति । *सर्वंक्षत्रमथोत्साद्य[२] भाविनाऽर्थेन चोदितः ॥२०
सुकल्पादिसुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः । महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ॥२१
उद्धरिष्यति कौटिल्यः समैर्द्वादशभिः सुतान् । भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो[३] मौर्यान्गमिष्यति ॥२२
भविता शतधन्वा च तस्य [४]पुत्रस्तु षट् समाः । बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥२३

राजा होंगे । इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ साठ वर्षों तक शिशुनाक वंशीय राजा राज्य करेंगे, जो क्षत्रियों में निम्नकोटि के क्षत्रिय होंगे । इन्हीं राजाओं के साथ इतने ही समय में कलियुग में अन्य राजागण भी राज्याधिकारी होंगे, जो सभी समसामयिक होंगे ।११-१४। उनका विवरण इस प्रकार है—चौबीस इक्ष्वाकुवंशीय, सत्ताईस पाञ्चाल के, चौबीस काशी के, अट्ठाईस हैहयवंशीय, बत्तीस कलिंग देशीय, पच्चीस अश्मक, छत्तीस कुरुदेश के, अट्ठाईस मैथिल देश के तेईस शूरसेन देश के तथा बीस बीतिहोत्र के—ये सभी एक समय में ही राज्य करनेवाले होंगे। महानन्दि का पुत्र कलियुग के अंशरूप से उत्पन्न महापद्म नामक राजा होगा, जो शूद्र के गर्भ से समुत्पन्न होकर सभी क्षत्रियों का विनाशक होगा । उसके उपरान्त सभी राजा लोग शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न होंगे ।१५-१८½। वह महापद्म नामक राजा एकच्छत्र सम्राट् होगा, जो अट्ठासी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा, और भावीवश अन्य सभी क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर निष्कण्टक राज्य करेगा । तदनन्तर उस महापद्म के वंश में सुकल्प आदि आठ राजा होंगे, जो क्रमशः केवल बारह वर्षों तक राज्य करेंगे ।१९½। बारह वर्षों तक उन महापद्मवंशीय आठ राजाओं के राज्य के बाद कौटिल्य राज्य का उद्धार करेगा, तदनन्तर सौ वर्षों तक उक्त नव नन्द राजाओं के पृथ्वी का राज्य करने के बाद मौर्य वंश के अधिकार में राज्य जायगा । इसके पश्चात् उसका पुत्र शतधन्वा होगा, जो छः वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद उसका पुत्र बृहद्रथ होगा जो सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा । तदनन्तर छत्तीस वर्ष तक राजा शक होगा ।

---

* इत आरभ्य गमिष्यतीत्यन्तग्रन्थो नास्ति घ. पुस्तके ।

---

१ घ. विशास्तु है° । २ ग. च. °क्षत्र तथोत्पाटय भा° । ३ ग. ङ. °तो मोक्षो भविष्य° । ४ ग. घ. पुत्रास्तु ।

षट्त्रिंशत्तु समा राजा भविता शक एव च । सप्तानां दश वर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति ॥२४
राजा दशरथोऽष्टौ [1]तु तस्य पुत्रो भविष्यति । भविता नव वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥२५
इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम् । सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान्गमिष्यति ॥२६
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान् । कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशत्तु समा नृपः ॥२७
भविताऽपि वसुज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै नृपः । वसुंमित्रस्तथा भाव्यो दश वर्षाणि वै ततः ॥२८
ततोऽन्तकः [2]समे द्वे तु तस्य पुत्रो भविष्यति । भविष्यति समास्तस्मात्त्रीण्येवं स पुलिन्दकः ॥२९
भविता वज्रमित्रस्तु समा राजा पुनर्भवः । द्वात्रिंशत्तु समाभागः समाभागात्ततो नृपः ॥३०
भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश । दशैते क्षुद्रराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम् ॥३१
शतं पूर्णं शते द्वे च [3]ततः शुङ्गान्गमिष्यति । अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य[4] ह्यवनीं नृपः ॥३२
देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः । भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो नृपः[5] ॥३३
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति । नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु ॥३४
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु । इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः काण्वायना नृपाः ॥३५

शक के बाद उसका नाती सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा । उसका पुत्र राजा दशरथ होगा, जो आठ वर्षों तक राज्य करेगा । तदनन्तर उसका पुत्र सप्तति नव वर्ष राज्य करेगा । ये दस मौर्य वंशीय राजा होंगे, जो एक सौ तैंतीस वर्षों तक पृथ्वी का राज्य करेंगे । तदनन्तर उसके हाथ से शुंग वंश में अधिकार जायेगा । सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथ वंशज राजाओं का विनाश कर स्वयं राजा हो, छत्तीस वर्षों तक राज्य करायेगा ।२०-२७। उसके बाद वसुज्येष्ठ नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक राज्य करेगा । तदनन्तर वसुमित्र नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर अन्तक नामक राजा दो वर्ष, फिर उसका पुत्र पुलिन्दक तीन वर्ष तक राज्य करेगा । पुलिन्दक के बाद वज्रमित्र नामक (१४ वर्ष तक) राजा होगा, उसके बाद समाभाग (भागवत) नामक राजा होगा जो बत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा ।२८-३०। समाभाग के बाद देवभूमि नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा । ये दस छोटे-छोटे राजा इस वसुन्धरा का तीन सौ वर्ष तक उपभोग करेंगे । इसके बाद राज्य शुङ्गवंशियों के हाथ से चला जायेगा । राजा देवभूमि का अमात्य वसुदेव राजा को मारकर पृथ्वी शासक होगा, जो शौङ्ग नाम से विख्यात होगा, जो काण्वायन अर्थात् कण्ववंशी नाम से नव वर्ष तक राज्य करेगा ।३१-३३। उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, जो चौदह वर्ष तक राज्य करेगा । उसका पुत्र नारायण होगा, जो बारह वर्ष तक राज्य करेगा । उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राज्य करेगा । ये शुङ्गभृत्य राजा काण्वायन नाम

---

[1] ङ तु भविष्यन्ति च तत्सुताः । भ° । [2] ग. समाः सप्त त° । [3] ग. °तः । स्वर्गं गमि° ।
[4] ग ङ च. °ह्य व्यसनी नृप । दे° । घ. °ह्य व्यसनातुरम् । दे° । [5] ग. ङ. द्विजः ।

चत्वारिंशद्द्विजा ह्येते कण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम् । चत्वारिंशत्पञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम् ॥३६
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये । येषां पर्यायकाले तु [१]भूमिरान्ध्रान्गमिष्यति ॥३७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७२॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३५५३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

काण्वायनास्ततो भृत्याः सुशर्माणः [२]प्रसह्यताम् । शुङ्गानां चैव यच्छेषं क्षपित्वा तु बलीयसः ॥१
शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम् । त्रयोविंशसमा राजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥२
*कृष्णभ्राता यवीयांस्तु अष्टादश भविष्यति । श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ॥
पूर्णोत्सङ्गस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥३

से कहे गये हैं । ये काण्व नामक चालीस (चार) द्विज राजागण पैंतालीस वर्ष तक राज्य करेंगे सामन्तों से प्रणाम किये जानेवाले राजागण परमधार्मिक होंगे। इनके बाद पृथ्वी आन्ध्रवंशीय राजाओं के हाथ चली जायेगी ।३४-३७।

श्री मात्स्य महापुराण में राज्यवंश-कीर्तन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७२॥

अध्याय २७३

सूत ने कहा—तदनन्तर सुशर्मा नामक सुप्रसिद्ध काण्वायन राजा को, जो कि शुंग भृत्यों का अन्तिम राजा था, शुङ्गवंशीय शेष राजाओं को पराजित कर उन्हीं का सजातीय शिशुक नामक आन्ध्र राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा । वह राजा शिशुक तेईस वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर उसका छोटा भाई कृष्ण अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद उसका पुत्र श्रीमल्लकर्णि दस वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर पूर्णोत्सङ्ग नामक राजा होगा, जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा ।१-३। उसके बाद शान्तकर्णि (शातकीर्ण) नामक

---

* एतदर्धं न विद्यते क. ख. पुस्तकयोः ।

---

[१] ग. °मिरिद्धा भविष्य । [२] घ. प्रगृह्य ।

पञ्चाशच्च समाः षट् च शान्तकर्णिर्भविष्यति । दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः ॥४
आपीतको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति । दश चाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ॥५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु । स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ॥६
मृगेन्द्रः स्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रयः । कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताऽष्टौ समा नृपः ॥
एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥८
भविता रिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः । ततः संवत्सरान्पञ्च हालो राजा भविष्यति ॥९
पञ्च मन्दुलको राजा भविष्यति समा नृपः । पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्यो भविष्यति ॥१०
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति । चकोरः स्वातिकर्णस्तु षण्मासान्वै भविष्यति ॥११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति । राजा च गौतमीपुत्रो ह्येकविंशत्यतो नृपः ॥१२
अष्टाविंशः सुतस्तस्य पुलोमा वै भविष्यति । शिवश्रीर्वै पुलोमा तु सप्तैव भविता नृपः ॥१३
शिवस्कन्धः शान्तिकर्णाद्भविता ह्यात्मजः समाः । नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः ॥१४
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समास्ततः । चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समा दश ॥१५
पुलोमा सप्त वर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति । एकोनविंशतिर्ह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ॥१६

राजा छप्पन वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर शान्तिकर्णि का पुत्र लम्बोदर अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद आपीतक नामक उसका पुत्र बारह वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर मेघस्वाति नामक राजा होगा जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद स्वाति नामक राजा होगा और वह भी अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर स्कन्दस्वाति नामक राजा होगा, जो केवल सात वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद मृगेन्द्र स्वातिकर्ण नामक राजा तीन वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर कुन्तल स्वातिकर्ण राजा होगा जो आठ वर्ष तक राजा होगा । उसके बाद स्वातिवर्ण नामक राजा एक वर्ष तक राज्य करेगा ।४-८। तदनन्तर पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण नामक राजा होगा । उसके बाद पाँच वर्ष तक हाल नामक राजा राज्य करेगा । तदनन्तर मन्दुलक नामक राजा होगा जो पाँच वर्ष राज्य करेगा । उसके बाद पुरीन्द्रसेन, तदनन्तर सौम्य स्वभाव सुन्दर शान्तिकर्ण नामक राजा होंगे जो एक वर्ष तक राज्य करेंगे । फिर चकोर स्वातिकर्ण नामक राजा होगा, जो छः महीने तक राज्य करेगा ।९-१०। तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वाति नामक राजा राज्य करेगा । उसके बाद गौतमीपुत्र नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर गौतमीपुत्र का पुत्र ब्रलोमा (पुलोमा) अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद शिवश्री पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर यज्ञश्री शान्तिकर्णिक नामक राजा होगा, जो उन्तीस वर्ष तक राज्य करेगा ।११-१४। उसके बाद छः वर्ष तक विजय नामक राजा होगा । तदनन्तर उसका पुत्र चण्डश्री शान्तिकर्ण राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद दूसरा पुलोमा नामक राजा होगा जो सात

तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च । आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः ॥१७
सप्तैवाऽऽन्ध्रा भविष्यन्ति दशाऽऽभीरास्तथा नृपाः । सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश । त्रयोदशगुरुण्डाश्च हूणा ह्येकोनविंशतिः ॥१९
यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्ताशीतिं महीमिमाम् । सप्त गर्दभिला भूयो भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम् ॥२०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता । शतानि त्रीण्यशीतिं च शतान्यष्टादशैव तु ॥२१
शतान्यर्धचतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश । गुरुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसंभवाः ॥२२
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु । आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्विपञ्चाशतं समाः ॥२३
सप्तषष्टिस्तु वर्षाणि दशाऽऽभीरास्तथैव च । तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः ॥२४
भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः । तैर्विमिश्राः जनपदा[1] आर्या म्लेच्छाश्च सर्वशः ॥२५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः । लुब्धानृतब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ॥२६
कल्किना तु हताः सर्वे आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः । अधार्मिकाश्च येऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥२७

वर्ष तक राज्य करेगा । इस प्रकार ये उन्तीस आन्ध्र राजागण पृथ्वी का उपभोग करेंगे । उनके राज्य के वर्ष भोग करने पर चार सौ साठ वर्ष होंगे । तदनन्तर उन आन्ध्रवंशीय राजाओं के सेवकों के वंशज राज्य के अधिकारी होंगे । जिनमें सात आन्ध्र वंशीय होंगे, दस आभीर (अहीर) वंश के होंगे, सात गर्दभिल तथा अट्ठारह शक वंशीय होंगे ।१५-१८। आठ यवन, चौदह तुषार, तेरह गुरुण्ड तथा उन्नीस हूण वंशीय राजा होंगे । आठ यवन राजागण सतासी वर्ष राज्य करेंगे । सात गर्दभिलवंशीय राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे । सात सहस्र वर्षों तक तुषारों के अधीन यह वसुन्धरा कही गई है । फिर सौ वर्ष, अस्सी वर्ष तथा तीन वर्ष अर्थात् १८३ वर्ष, एक सौ अट्ठारह वर्ष तथा चार सौ पचास वर्ष तक तेरह गुरुण्ड जातीय म्लेच्छ वंशज राजागण शूद्रों के साथ पृथ्वी का उपभोग करेंगे । तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र वंशीय राजा राज्य करेंगे, श्री पार्वतीय बावन वर्ष राज्य करेंगे ।१९-२३। दस आभीर राजा सड़सठ वर्ष राज्य करेंगे । कालवश उनके विनष्ट हो जाने पर किलकिला नामक राजा होंगे, जो यवन जाति के होंगे । धर्म, काम, अर्थ—तीनों दृष्टियों से सभी प्रान्तों में आर्य लोग उनकी संस्कृति से विमिश्रित हो जायँगे, सभी लोग आश्रम धर्म का विपर्यय करने लगेंगे, परिणामतः प्रजा नष्ट होने लगेगी, राजा लोग लोभी तथा झूठ बोलने वाले हो जायँगे । कलियुग के प्रभाव से सभी आर्य तथा म्लेच्छ लोग प्रभावहत हो जायंगे । अधार्मिकों की वृद्धि होगी, पाषण्ड बढ़ जायगा ।२४-२७।

---

[1] ग. °दा म्लेच्छप्रायाश्च सर्वतः । अ° ।

प्रनष्टे नृपवंशे तु संध्याशिष्टे कलौ युगे । किंचिच्छिष्टाः प्रजास्ता[1] वै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥२८
असाधवो ह्यसत्त्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिताः । अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः ॥२९
अशरण्याः परित्रस्ताः संकटं घोरमाश्रिताः । सरित्पर्वतवासिन्यो भविष्यन्त्यखिलाः प्रजाः* ॥३०
नृपवंशेषु नष्टेषु प्रजाः सर्वगृहाणि च । नष्टस्नेहा निरापत्रास्त्यक्तभ्रातृसुहृद्गणाः ॥३१
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा अधर्मनिरताश्च ताः । पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुंधराम् ॥३२
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके[2] । निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ॥३३
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके । ससंध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ॥३४
एवं वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो यो मया क्रमात् । अतीतो वर्तमानश्च तथैवानागतश्च यः ॥३५
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः । एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ॥३६
पौलोमास्तु तथाऽऽन्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः । अनन्तरं शतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ॥३७

इस प्रकार सन्ध्या मात्र शेष रह जाने पर कलियुग में जब सभी राजवंश नष्ट हो जायेगा, तब थोड़े रूप में प्रजा शेष रह जायगी, जो धर्म के विनष्ट हो जाने से विश्रृंखलित रहेगी । असत्कर्म परायण, निर्बल, व्याधि और शोक से जर्जरित, अनावृष्टि से पीड़ित, एक दूसरे के संहार की इच्छुक वे सारी प्रजाएँ बिना किसी की शरण प्राप्त किये, अति संकट से ग्रस्त हो भयभीत भाव से नदियों तथा पर्वतों में आश्रय लेंगी ।२८-३०। राजवंशों के समूल नष्ट हो जाने पर सारी प्रजाएँ घर द्वार से विहीन हो, स्नेह रहित, लज्जा रहित, भाई मित्रादि को छोड़, वर्णाश्रम धर्म से विमुख हो, घोर पाप कर्म करती हुई, वृक्षों के पत्ते, मूल और फलों का आहार करने लगेंगी और वृक्षों के पत्तों का वस्त्र धारण करेंगी और जीविका के लिए सारी पृथ्वी का चक्कर लगाएँगी । कलियुग के अवसान के समय इस प्रकार के घोर संकट में प्रजाएं पड़ेंगी और कलियुग के साथ ही समूल नष्ट हो जायँगी । देवताओं के एक सहस्रवर्षात्मक कलियुग के सन्ध्या समेत बीत जाने पर सतयुग की प्रवृत्ति होगी ।३१-३४। इस प्रकार क्रमानुसार भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन राजवंश का वर्णन मैं तुम से कर चुका, संक्षेप में इसे इस प्रकार समझिये कि महापद्म के राज्याभिषेक से लेकर परीक्षित् के जन्म तक एक सहस्र पचास वर्ष का समय होता है । पुनः पौलोम आन्ध्र से लेकर महापद्म के राजत्व काल तक का समय आठ सौ छत्तीस वर्ष का होता है ।३५-३७। परीक्षित् के समय से लेकर आन्ध्र वंशीय राजाओं के अन्त समय तक का प्रमाण वेदों

---

* इतः परं सार्धश्लोको न विद्यते क. ख. पुस्तकयोः ।

---

[1] ग. °जास्त्यक्त्वा गृहाणि च वनानि च । नष्टस्नेहनिवासतव्यास्त्यक्तभ्रातृसुहृद्गणाः । अ° ।

[2] च. न्तरे । नि° ।

तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादा परीक्षितः। भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥३८
सप्तर्षयस्तदा प्रांशुप्रदीप्तेनाग्निना समाः। सप्तविंशतिभाव्यानामान्ध्राणां तु यदा पुनः ॥३९
[1]सप्तर्षयस्तु वर्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले। सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं [2]शतम् ॥४०
सप्तर्षीणामुपर्येतत्स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया। समा दिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥४१
एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु वै। सप्तर्षीणां च[3] यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि ॥४२
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि। तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ता व्योम्नि शतं समाः ॥४३
नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्। सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम् ॥४४
ब्राह्मणास्तु चतुर्विशे भविष्यन्ति शतं समाः। ततः प्रभृत्ययं सर्वो लोको व्यापत्स्यते भृशम् ॥४५
अनृतोपहता लुब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः। श्रौतस्मार्तेऽतिशिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥४६
संकरं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः। ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्थाः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥४७
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः[4]। क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम्[5] ॥४८

एवं पुराणों के जाननेवाले ऋषियों ने भविष्य पुराण में इस प्रकार परिगणित किया है। जब पुनः सत्ताईस आन्ध्र वंशीय राजाओं का उदय होगा उस समय सप्तर्षिगण प्रदीप्त अग्निमय एवं उन्नत स्थिति में होंगे। वे सप्तर्षिगण प्रत्येक नक्षत्र मण्डल में एक सौ वर्ष तक निवास करते हैं। उन सातों ऋषियों के वर्ष प्रमाण उनके वर्ष के प्रमाणों के अनुरूप ही होते हैं। सप्तर्षियों के बारे में यह बात स्मरण की जाती है कि देवताओं का साठ वर्ष सप्तर्षियों का एक वर्ष होता है।३८-४१। इसी परिमाण के अनुसार सप्तर्षिगण का दिव्यकाल में अन्तर बताया जाता है। रात्रि के समय सप्तर्षियों से पूर्व दिशा में जो नक्षत्र उदित होते हैं सौ वर्ष बाद उनके साथ सप्तर्षि मण्डल का मिलन आकार में होता है। नक्षत्रों और उन सप्तर्षियों के संयोग का यही निदर्शन बताया जाता है। वह सप्तर्षि राजा परीक्षित् के समय में मघा नक्षत्र में स्थित थे।४२-४४। उनके चौबीसवें नक्षत्र में आने पर सौ वर्ष राज्य करनेवाले ब्राह्मण राजा होंगे। तभी से लेकर यह लोक अत्यन्त विपत्ति में पड़ जायंगे। उस समय मिथ्या व्यवहार में लीन, लोभी, धर्म, अर्थ एवं काम सभी ओर से पापाचारी वैदिक एवं स्मृतियों के कहे गये नियमों के पालन में अतत्पर, वर्णाश्रम धर्म एवं मर्यादा से विहीन सारी प्रजाएँ संकर वर्ण की हो जायँगी। सभी दुर्बलात्मा हो अज्ञानान्धकार में डूब जायँगी। ब्राह्मण शूद्र योनि में हो जायंगे, शूद्र मन्त्रों के जाननेवाले हो जायंगे, उन्ही मन्त्रों के जानने के लोभवश ब्राह्मण शूद्रों की उपासना करेंगे।४५-४७½। क्रमशः सभी जातियों के लोग अपने अपने आश्रम धर्मों को छोड़कर अन्य आश्रम के लोगों का धर्म अपनाएँगे। इस प्रकार नाममात्र से शेष वे सारी प्रजाएँ युग की समाप्ति होने पर विनष्ट हो

---

[1] ग. ङ. सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने न°। [2] ग. समाः। [3] ग. घ. ङ. च. यः पूर्वमुद्यन्वै दृश्यते नि°।
[4] ङ. °प्रा वेदार्थं°। [5] ङ. °र्णान्ते बलाबलम्। क्ष°।

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये । यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ॥४९
प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे शृणु । [1]चतुःशतसहस्रं तु वर्षाणां वै स्मृतं [2]बुधैः ॥५०
चत्वार्यष्टसहस्राणि संख्यातं मानुषेण तु । दिव्यं वर्षसहस्रं तु सदा [3]संध्या प्रवर्तते ॥५१
निःशेषे तु तदा तस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते । ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्तितः ॥५२
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तं भविष्यति । ऐलं क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदो विदुः ॥५३
एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥५४
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः । वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते ॥५५
देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः । महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ॥५६
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ[4] नवविंशे चतुर्युगे । सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥५७
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्याऽऽदिर्भविष्यति । देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः ॥५८
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्ये तु चतुर्युगे । एवं सर्वेषु विज्ञेयं संतानार्थं तु लक्षणम् ॥५९
क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति[5] कृते युगे । सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ॥६०

जायंगी । जिस दिन कृष्ण स्वर्गगामी हुए उसी दिन कलियुग का प्रारम्भ हुआ इसका प्रमाण मुझसे सुनिये । बुद्धिमान् लोग उस कलियुग का प्रमाण चार लाख बत्तीस सहस्र मानव वर्ष मानते हैं, एक सहस्र दिव्य वर्ष उसकी संध्या होती है ।४८-५१। उस कलियुग के समाप्त होने पर सतयुग का प्रारम्भ होता है । ऐल और इक्ष्वाकु वंशीय दो राजा सहदेव नाम से कहे गये हैं । इक्ष्वाकु का राजवंस राजा सुमित्र के अन्त तक होगा । सोमवंश के जाननेवाले ऐलवंशीय क्षत्रियों को चंद्रवंश में सक्रांत जानते हैं । ये विवस्वान् के कीर्तिशाली पुत्र कहे गये हैं, जो भूतकाल में, वर्तमानकाल में तथा भविष्यत्काल में होनेवाले हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र — ये सभी जातियाँ वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान् मनु की सन्तान हैं ! इस प्रकार वंश कीर्तन समाप्त किया जाता है ।५२-५५। पुरुवंशीय राजा देवापि और ऐक्ष्वाक (इक्ष्वाकु वंशीय राजा) ये दोनों अपने महान् योगबल द्वारा कलाप ग्राम में निवास करते थे । उन्तीसवें चतुर्युगों में ये दोनों राजा क्षत्रिय जाति के नेता होंगे, मनु का पुत्र सुवर्चा इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं में सर्वप्रथम राजा होगा । उन्तीसवें चतुर्युग के प्रारम्भ में वह अपने वंश का मूलपुरुष होगा । देवापि का पुत्र सत्य ऐलवंशीय राजाओं में प्रमुख होगा । भविष्यत्कालीन चतुर्युग में ये दोनों क्षात्रधर्म के प्रवर्तक होंगे । इसी प्रकार सभी वंशों में सन्तति के लक्षणों को जानना चाहिये ।५६-५९। कलियुग के क्षीण हो जाने पर सतयुग के सातों ऋषिगण उन तात्कालिक राजाओं के साथ स्थित रहते हैं तथा त्रेता

---

[1] घ. °तुःषष्टित° । [2] ग घ. ङ. °धैः । षष्टिर्वर्षस° । [3] क. ख. ग. घ. संख्या । [4] ङ. °रौ निवृत्ते तु च° । [5] ग घ. ति कलौ य । ङ. च °ति चतुर्युगे ।

*बीजार्थं[1] वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः । एवमेवं तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ॥६१
सप्तर्षयो नृपैः सार्धं संतानार्थं युगे युगे । एवं क्षत्रस्य चोत्सेधः संबन्धो वै द्विजैः स्मृतः ॥६२
मन्वन्तराणां संताने संतानाश्च श्रुतौ स्मृताः । अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षत्रस्य संभवाः ॥६३
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथा क्षयः । सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वं क्षयोदयौ ॥६४
एतेन क्रमयोगेन(ण)ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः । उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ युगे ॥६५
अनुयान्ति युगाख्यं तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् । जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ॥६६
रिक्तेयं वसुधा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः । द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ॥६७
ऐलं चैक्ष्वाकुवंशं च प्रकृतिं परिचक्षते । राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथाऽन्ये क्षत्रिया भुवि ॥६८
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः । एषामेकशतं पूर्णं [2]कुलानामभिरोचते ॥६९
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद्द्विगुणं स्मृतम् । भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथातथम् ॥७०
ते ह्यतीताः सनामानो ब्रुवतस्तान्निबोध[3] मे । शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः ॥७१

के मध्य भाग तक रहते हैं । वे पुनः ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के बीजार्थ उत्पन्न होंगे—इसी प्रकार सभी कलियुग एवं अन्य युगों में सन्तान के लिए वे विद्यमान रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक युगों में राजाओं के साथ सातों ऋषिगण प्रजाओं की उत्पत्ति के लिए अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों की उत्पत्ति का सम्बन्ध कहा जाता है।६०-६२। प्रत्येक मन्वन्तरों में सृष्टि के विषय में अतिक्रान्त युगधर्म ब्राह्मण क्षत्रियगण की सन्तान कही जाकर श्रुतियों से कीर्तित होते हैं। उन सन्ततियों की जिस प्रकार प्रशान्ति होती है, जिस प्रकार क्षय होता है जिस प्रकार दीर्घायु प्राप्ति होती है, जिस प्रकार उदय एवं ह्रास होता है, उसे सप्तर्षि गण जानते हैं । इस प्रकार के क्रम योग से ऐल और ऐक्ष्वाकुवंशीय राजगण त्रेता में उत्पन्न होकर कलि युग में विनाश को प्राप्त होते हैं, एक मन्वन्तर के विनाश तक युग संज्ञा कही जाती है।६३-६५½। जमदग्नि के पुत्र परशुराम द्वारा क्षत्रियों के विनष्ट कर देने पर यह सारी पृथ्वी राजाओं से विहीन होकर रिक्त हो गई थी। अब राजाओं के दो वंश की सब उत्पत्ति बता रहा हूँ, मुझसे सुनो। ऐल और ऐक्ष्वाकुवंशीय राजा प्रकृति कहे गये हैं, इन राजाओं के वंशज तथा अन्य क्षत्रियगण पृथ्वी पर प्रचुर परिमाण में अवस्थित हैं। ऐल वंशीय राजाओं का विस्तार बहुत अधिक है, उतना ऐक्ष्वाकु वंशियों का नहीं है, इनकी वंश संख्या में तो एक सौ राजा परिगणित हैं। इसी प्रकार भोजवंशीय राजाओं का विस्तार इनसे क्रमशः द्विगुणित है।६६-६९½। भोजवंशीय राजाओं से परिमाण में द्विगुणित अन्य क्षत्रियगण हैं । वे सभी अपने अपने नामों के साथ व्यतीत हो चुके हैं मैं बतला रहा हूँ सुनो । उनमें प्रतिविन्ध्य नामवालों की संख्या १००

---

* इत आरभ्य युगे युग इत्यन्तग्रन्थो ङ. पुस्तके न विद्यते ।

[1] घ. वीर्यार्थं । [2] घ. °मतिरोचितम् । ता° । ङ. च. °मधिरोहताम् । ता° । [3] ग. घ. ङ. च. °धत । श°।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः । शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः[1] शतम् ॥७२
ततः शतं च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः । तथाऽपरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशबिन्दवः[2] ॥७३
इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः । एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७४
मनोर्वैवस्वतस्याऽऽसन्वर्तमानेऽन्तरे विभोः । तेषां तु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः ॥७५
न शक्यो विस्तरस्तेषां संतानस्य परस्परम् । तत्पूर्वापरयोगेण वक्तुं वर्षशतैरपि ॥७६
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे । एते देवगणैः सार्धं शिष्टा ये तान्निबोधत ॥७७
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः । अवशिष्टा युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम् ॥७८
एतद्वः कीर्तितं सम्यक्समासव्यासयोगतः । पुनर्वक्तुं बहुत्वात्तु न शक्यं विस्तरेण तु ॥७९
उक्ता राजर्षयो ये तु अतीतास्ते युगैः सह । ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशांपते ॥८०
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान्धारयेन्नरः । लभते स वरान्पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् ॥८१

है, नागों की संख्या १०० है, हय की संख्या १०० है, धार्तराष्ट्र की संख्या १०० है जनमेजय की संख्या ८० है, १०० ब्रह्मदत्तों की संख्या है, कुरुवीरों की संख्या १०० है । तदनन्तर पञ्चालों की संख्या १०० है । काशिकुशादि की संख्या १०० है । इनके अतिरिक्त जो अन्य नीप और शशिबिन्दु नामक हैं उनकी संख्या दो सहस्र है ।७०-७३। वे सभी यज्ञ करनेवाले तथा भूरि दक्षिणा प्रदान करनेवाले थे । इस प्रकार सैकड़ों सहस्रों की संख्या में राजर्षिगण इस पृथ्वीतल पर व्यतीत हो चुके हैं । जो प्रभावशाली वैवस्वत मनु के वर्तमान अन्तर (अवधि) में जन्म ग्रहण कर चुके हैं । उनके मरण और उत्पत्ति में अब लोक की स्थिति ही प्रमाण भूत है । उनके सन्तान का विस्तार कौन पहले हुआ कौन बाद में हुआ—इस प्रकार समय विभागकर सैकड़ों वर्षों में भी नहीं बताया जा सकता ।७४-७६। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में अट्ठाइस की संख्या में इन नृपति गणों के वंश देवताओं के साथ व्यतीत हो चुके हैं । जो शेष हैं, उन्हें सुनिये, वे वंशधर राजागण संख्या में तैंतालीस हैं, जो भविष्यत्काल में होनेवाले हैं । उन अवशिष्ट वैवस्वत महात्माओं की संज्ञा उनके युगों के साथ है । इस प्रकार मैं कुछ वंशो को विस्तार और कुछ को संक्षेप में तुम लोगों को सुना चुका । उनकी संख्या बहुत अधिक होने के कारण मैं विस्तारपूर्वक बतलाने में असमर्थ हूँ ।७७-७९। हे राजन् ! मैने जिन ययातिवंशीय राजाओं के वंशधर राजर्षियों की चर्चा की है वे सभी युगों के साथ समाप्त हो चुके हैं, वे सभी कान्तिमान् एवं यशस्वी थे । जो मनुष्य उनके नामों को याद रखता है वह इस लोक के निम्न पाँच दुर्लभ वरदानों

---

[1] ग. घ. करणं । ङ. करिणां । [2] घ. च. । यजन्तप्राश्चनेवेस्तु सों नि° ।

आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते । धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ॥८२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भविष्यराजानुकीर्तनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७३॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३६३५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम् । सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥१
कृतकृत्यो भवेत्केन मनस्वी धनवान्बुधः । महादानेन दत्तेन तन्नो विस्तरतो वद ॥२

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानानुकीर्तनम् । दानधर्मेऽपि [1]यन्नोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥३
तदहं संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥४

को प्राप्त करता है, अर्थात् उसे आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग एवं पुत्र की प्राप्ति होती है तथा इनके स्मरण एवं श्रवण करने से बुद्धिमान् को परम स्वर्ग की प्रप्ति होती है ।८०-८२।

श्री मात्स्य महापुराण में भविष्यकालिक राजाओं का वर्णन नामक दो सौ
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७३॥

अध्याय २७४

ऋषियों ने कहा—सूतजी ! अर्थ के विषय में सभी शास्त्रों में उसे न्यायपूर्वक एकत्र करना, एकत्र किये गये को बढ़ाना तथा उसकी रक्षा करना एवं सत्पात्र में दान करना इन सबों का नियम पढ़ा जाता है। किन्तु मनस्वी बुद्धिमान् धनी पुरुष किस महादान के करने से कृतार्थ होता है, इसे बिस्तारपूर्वक हमें बताइये ।१-२।

सूत ने कहा—अब इसके बाद मैं तुम लोगों को उस महादान की विधि बतला रहा हूँ जिसे महा तेजस्वी विष्णु भगवान् ने दान-धर्म को बतलाने के अवसर पर भी नहीं बतलाया है। उस सर्वश्रेष्ठ महादान को मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, वह मनुष्यों के सभी पापों को विनष्ट करनेवाला तथा दुःस्वप्नों का

---

[1] ब. यत्प्रोक्तं ।

यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥५
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । आद्यं तु सर्वदानानां [1]तुलापुरुषसंज्ञकम् ॥६
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् । कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम् ॥७
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च । हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ॥८
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च । द्वादश [2]विश्वचक्रं तु ततः कल्पलतात्मकम् ॥९
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च । महाभूतघटस्तद्वत्षोडशं परिकीर्तितम् ॥१०
सर्वाण्येतानि कृतवान्पुरा शम्बरसूदनः । वासुदेवस्तु भगवानम्बरीषोऽथ भार्गवः ॥११
कार्तवीर्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च । कुर्युरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः ॥१२
यस्माद्विघ्नसहस्रेण महादानानि सर्वदा । रक्षन्ते देवताः सर्वा एकैकमपि भूतले ॥१३
एषामन्यतमं कुर्याद्वासुदेवप्रसादतः । न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले ॥१४
तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ । महादानमखं कुर्याद्विप्रैश्चैवानुमोदितः ॥१५
एतदेवाऽऽह मनवे परिपृष्टो जनार्दनः । यथावदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥१६

विनाशक है। उस दान को पृथ्वीतल पर भगवान् वासुदेव ने सोलह प्रकार का बतलाया है, वे सभी अति पुण्यप्रद, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले, सभी पापों को नष्ट करनेवाले तथा मंगलकारी हैं ।३-५। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवतागण उनकी पूजा करते हैं। उन सभी दानों में सर्वप्रथम दान तुला पुरुष का दान है, तत्पश्चात् हिरण्यगर्भ दान, ब्रह्माण्ड दान, कल्पवृक्ष दान, एक सहस्र गो-दान, सुवर्ण कामधेनु दान, हिरण्याश्व दान, हिरण्याश्वरथ दान, हेम-हस्ति-रथ दान, पंचलांगलक दान, धरादान, विश्वचक्र दान, कल्पलता दान, सप्तसागर दान, रत्नधेनु दान, तथा महाभूत घटदान—ये सोलह दान कहे गये हैं ।६-१०। प्राचीन काल में इन उपर्युक्त सभी दानों को शम्बरासुर के शत्रु भगवान् वासुदेव ने किया था, तदनन्तर अम्बरीष, भार्गव, कार्तवीर्यार्जुन, प्रह्लाद, पृथु तथा अन्यान्य भरत आदि राजाओं ने किया था । इस पृथ्वीतल पर इन सब दानों में से एक-एक दान की सर्वदा सभी देवता सहस्रों विघ्नों से सर्वदा रक्षा करते हैं। इनमें से भूतल पर यदि एक दान भी वासुदेव भगवान् की कृपा से विघ्नरहित सम्पन्न हो जाय तो उसके सत्फल को देवराज इन्द्र भी अन्यथा करने में समर्थ नहीं हैं ।११-१४। अतः मनुष्य को भगवान् वासुदेव, शंकर एवं विनायक की आराधना कर विप्रों का अनुमोदन प्राप्त कर यह महादान यज्ञ करना चाहिये । हे ऋषिवर्यगण ! इसी बात को मनु के पूछने पर भगवान् जनार्दन ने उन्हें बतलाई थी, उसी को यथार्थ रूप में तुम लोगों को मैं बतला रहा हूँ, सुनो ।१५-१६।

---

[1] ग. ङ. च. °संज्ञितम् । हि° । [2] ङ. विष्णुचक्रं ।

मनुरुवाच

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च। रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत ॥१७

मत्स्य उवाच

यानि नोक्तानि गुह्यानि महादानानि षोडश। तानि ते कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥१८
तुलापुरुषयोगोऽयं येषामादौ विधीयते। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥१९
युगादिषपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु। संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥२०
सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च। यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥२१
द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते। तीर्थे वाऽऽयतने गोष्ठे कूपारामसरित्सु च ॥२२
गृहे [1]वाऽऽयतने वाऽपि तडागे रुचिरे तथा। महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ॥२३
अनित्यं जीवितं यस्माद्वसु चातीव चञ्चलम्। केशेष्वेव गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥२४
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। षोडशारत्निमात्रं तु दश द्वादश वा करान् ॥२५

मनु ने कहा—हे अच्युत ! इस पृथ्वीतल पर जितने परम पुनीत मङ्गलदायी अति गोपनीय दान कहे गये हैं, उन्हें मुझे बतलाइये।१७।

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनु ! जिन सोलह महादानों को आज तक मैंने अति गोपनीय समझकर किसी से नहीं बतलाया है, उन्हीं को यथार्थ रूप में क्रमशः तुम्हें बतला रहा हूँ। इन सभी दानों में तुला पुरुष का दान सर्वप्रथम कहा गया है। अयन के प्रारम्भ होने के अवसर पर, विषुव के अवसर पर, पुण्य दिन को, व्यतीपात, दिनक्षय, युगादि दिवसों को, सूर्य-चन्द्र के ग्रहण के अवसर पर, मन्वन्तर के प्रारम्भ होने के दिन, संक्रान्ति के दिन, वैधुति योग के अवसर पर, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, पर्व के दिन, द्वादशी तथा अष्टका तिथि पर, यज्ञोत्सव अथवा विवाह के अवसर पर अथवा दुःस्वप्न के देखने पर या किसी अद्भुत घटना के घटित होने पर, जिनकी चर्चा पूर्व के अध्यायों में आ चुकी है, यथेष्ट द्रव्य या ब्राह्मण के मिल जाने पर, या जब जहाँ श्रद्धा हो जाय, किसी तीर्थ या मन्दिर में, गौओं के ठहरने के स्थान पर, कूप, बगीचा, या नदी के तट पर अथवा अपने घर या समीपवर्ती मन्दिर में अथवा पवित्र तालाब के किनारे इन उपर्युक्त महादानों को संसार के भय से भयभीत मानव को देना चाहिये। क्योंकि यह जीवन अस्थायी है, सम्पत्ति चञ्चल है, मृत्यु सर्वदा केश पकड़ कर अपने पास खींच रही है—इस भावना से अनुप्राणित होकर प्राणी को धर्माचरण करना चाहिये।१८-२४। अतः उक्त पुण्यतिथियों के आने पर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर सोलह अरत्नि परिमित या दस अथवा बारह

---

[1] ङ. च. वाऽपितडागादौ रुचिरे विधिवत्तथा।

मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननं[1] बुधः । सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकरा तथा ॥२६
तन्मध्ये [2]तोरणं कुर्यात्सारदारुमयं बुधः । कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः[3] ॥२७
समेखलायोनियुतानि कुर्यात्संपूर्णकुम्भानि महासनानि ।
सुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सुयज्ञपात्राणि सुविष्टराणि ॥२८
हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूपपुष्पोपहाराणि सुशोभनानि ।
पूर्वोत्तरे हस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ॥२९
अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां तत्रैव कार्यं फलमाल्यवस्त्रैः ।
लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् ॥३०
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् ।
द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् ॥३१
शालेङ्गुदीचन्दनदेवदारुश्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्चनोत्थम् ।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितं च ॥३२

हाथ का मण्डप निर्मित करवाये, विद्वान् पुरुष को उस मण्डप को चार सुन्दर प्रवेश द्वारों से युक्त बनवाना चाहिये। उसके भीतर सात हाथ परिमित वेदी बनाकर मध्य में पाँच हाथ परिमित एक अन्य वेदी की रचना करनी चाहिये। उसके मध्य भाग में बुद्धिमान् पुरुष साल काष्ठ की बनी हुई तोरण लगवाये। विचक्षण पुरुष चारों दिशाओं में चार कुण्डों की रचना करे।२५-२७। उस कुण्ड को मेखला और योनि से युक्त बनाना चाहिये, उसके समीप भरे हुए कलशों की स्थापना करनी चाहिये, तथा उन्हें बड़े-बड़े आसन, सुन्दर तांबे के बने हुए दो पात्र, यज्ञ के उपयोग में आनेवाले सभी पात्र, सुन्दर विष्टर आदि से सुशोभित करना चाहिये। वे कुण्ड एक हाथ परिमित हो, तथा तिल, घृत, धूप, पुष्प तथा अन्य शुभ उपहारों से सुशोभित हों। पूर्व तथा उत्तर दिशा के कोण में एक हाथ परिमित जो वेदी होगी वह ग्रहादि तथा देवेश्वर के पूजन के लिए होगी ।२८-२९। उस स्थान पर ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु की पूजा विविध प्रकार के फलों, मालाओं तथा पुष्पों से करनी चाहिये। चारों ओर लोकपालों के वर्ण के अनुरूप वर्णों वाली पताकाएँ हो, ध्वजाएँ मध्य भाग में घण्टियों से युक्त हों, चारों द्वारों पर दूध वाले वनस्पतियों के बने हुए तोरण सुशोभित हों। द्वारों पर दोनों बाजुओं के पास माला, सुगन्धि, धूप, सुन्दर वस्त्र एवं रत्नों से सुशोभित दो कलश रखे हों।३०-३१। तदनन्तर शाल, इङ्गुदी, चन्दन, देवदारु, श्रीपर्णी, बिल्व, अथवा प्रियकाञ्चन—इन काष्ठों में से किसी एक के बने हुए दो स्तम्भों को दो हाथ पृथ्वी में गाड़ कर विधिवत् अचल करे और उन्हें पाँच हाथ ऊँचा रखे। उन दोनों स्तम्भों के

---

[1] क. ख. °द्रासनं । [2] ग. °णं कृत्वा शारदानुपमं बु° । [3] घ. ङ. °णः । सुमे° ।

तदन्तरं हस्तचतुष्टयं *स्यादथोदरङ्गश्च[1] तदङ्गमेव ।
समानजातिश्च तुलाऽवलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता ॥३३
दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात्पृथुत्वमस्यास्तु दशाङ्गुलानि ।
सुवर्णपट्टाभरणा तु कार्या सा लोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः ॥३४
युता सुवार्णेन तु रत्नमाला विभूषिता माल्यविलेपनाभ्याम् ।
चक्रं लिखेद्वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम् ॥३५
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत्पुष्पफलोपशोभम् ।
अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्याः सरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ॥३६
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला ये चाऽऽर्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः ।
गुरुश्च वेदान्तविदार्यवंशसमुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ॥३७
पुराणशास्त्राभिरतोऽतिदक्षः [2]प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः ।
सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामः ॥३८

भीतर चार हाथ का अन्तर रहे और फिर उन दोनों से मिला हुआ एक सजातीय काष्ठ लगावे, फिर उसी से सजातीय काष्ठ की बनी हुई तुला मध्यभाग में सुवर्ण निर्मित पुरुष से युक्त अवलम्बित करे, वह तुला लम्बाई में चार हाथ लम्बी तथा दस अंगुल मोटी हो, उसमें लोहे की बनी हुई शृंखलाओं को युक्त करे तथा सुवर्ण निर्मित वस्त्र से विभूषित करे।३२-३४। यह तुलादण्ड सुवर्ण रचित रत्नमाला द्वारा विभूषित तथा विविध प्रकार के पुष्प एवं चन्दनादि से अलंकृत हो । फिर पृथ्वी पर विविध रंग के रजों से पद्म के मध्य के आकार का चक्र लिखे और उसे पुष्पों द्वारा विकीर्ण करे, उसके ऊपर पाँच वर्ण वाले पुष्प और फलों से सुशोभित वितान तनवाये । तदनन्तर वेदों को भली-भाँति जानने वाले, सुन्दर आकृतिवाले, सद्वंश में उत्पन्न, शीलवान् पुरोहितों को नियुक्त करना चाहिये, वे पुरोहितगण प्रत्येक विषियों में दक्ष, पटु, अपने अनुकूल, आर्य देशोत्पन्न तथा द्विजेन्द्र होने चाहिये । ३५-३६½। गुरु वेदान्त विद्या जाननेवाला, आर्यवंशसमुद्भूत, शीलवान्, सत्कुलोत्पन्न, सुन्दर आकृति वाला, पुराण एवं शास्त्रों में निरत रहने वाला, अति पटु, सरल एवं गम्भीर वाणी बोलने वाला, श्वेत वस्त्रधारी, कुण्डल, सुवर्ण सूत्र, केयूर तथा कण्ठाभरण से शोभायमान हो।३७-३८। मण्डप में पूर्व दिशा से दो ऋग्वेद जाननेवाले बैठें, दो यजुर्वेद जाननेवाले दक्षिण दिशा में बैठें।

---

* अत्र अथोत्तरं यच्च तदङ्गमेवेति भवितुं युक्तम् ।

---

[1] घ. °थोत्तरं पञ्च त° । च. °थोत्तरं गां च त° । [2] ग. °रतरस्वभावः । सि° ।

पूर्वेण ऋग्वेदविदावस्थाऽऽस्तां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च शस्तौ ।
स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ तु पश्चादाथर्वणावुत्तरतस्तु कार्यौ ॥३९
विनायकादिग्रहलोकपालवस्वष्टकादित्यमरुद्गणानाम् ।
ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात् ॥४०
जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणापि यथास्वरूपम् ।
होमावसाने कृततूर्यनादो गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम् ॥
आवाहयेल्लोकपतीन्क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥४१
एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेशः ।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॐ इन्द्राय नमः ॥४२
एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टः ।
तेजस्विना लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॐ अग्नये नमः ॥४३
एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चितदिव्यमूर्ते ।
[1]शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॐ यमाय नमः ॥४४

दो सामवेद जानने वाले विद्वानों को पश्चिम दिशा में दो अथर्ववेद के जाननेवाले को उत्तर दिशा में नियुक्त करना चाहिये । विनायकादि ग्रह, लोकपाल, आठों वसुगण आदित्यगण मरुद्गण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं वनस्पतियों के अपने मन्त्रों द्वारा चार हवन करने चाहिये ।३९-४०। तथा इनके सूक्तों का क्रमानुरूप शुद्ध-शुद्ध जप करवाना चाहिये । हवन हो जाने के उपरान्त तुरुही आदि वाद्यों का शब्द करते हुये गुरु बलि, पुष्प एवं धूपों को लेकर क्रमशः सभी लोकपालों का आवाहन यजमान समेत इन मंत्रों द्वारा करे । देवताओं के स्वामी, वज्रधारण करनेवाले, सभी अमर, सिद्ध एवं साध्यों से स्तुति किये जाते हुए, अप्सराओं के समूहों द्वारा पङ्खा डुलाये जाते हुए भगवन् इन्द्र ! यहाँ आइये, यहाँ आइये, हमारे यज्ञ की रक्षा कीजिये आपको हमारा नमस्कार है'' , ऐसा कह कर 'ॐ इन्द्राय नमः' इन्द्र को हमारा नमस्कार है–ऐसा कहे ।४१-४२। "हे सभी देवताओं के हवनीय द्रव्यों को प्राप्त करनेवाले, आप यहाँ आवें, यहाँ आवें आप की चारों ओर से श्रेष्ठ मुनिगण सेवा कर रहे हैं, तेजस्वी लोकपालगण आप के साथ विराजमान हैं, आप कवि हैं हमारे यज्ञ की आप रक्षा करें आप को हमारा नमस्कार ।'' ऐसा कह "ॐ अग्नये नमः अग्नि को हमारा नमस्कार है— ऐसा कहे ।'' "हे सूर्य के पुत्र धर्मराज, सभी देवताओं से पूजित, दिव्य स्वरूप भगवान् ! आप यहाँ आवें, यहाँ आवें, हे सभी शुभ अशुभ आनन्द एवं शोक के स्वामी अधीश्वर ! कल्याण के लिए हमारी रक्षा करें, हमारे यज्ञ की रक्षा करें, आपको हमारा नमस्कार है । ऐसा कह 'ॐ यमायनमः' यमराज को हमारा नमस्कार है' ऐसा

---

[1] ग. °न्दसुधाम° ।

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं[1] विशालवेतालपिशाचसंघैः ।
ममाध्वरं पाहि शुभादिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ओं निर्ऋतये नमः ॥४५
एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन [2]पर्जन्यमहाप्सरोभिः ।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ओं वरुणाय नमः ॥४६
एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसंघैः ।
प्राणाधिपः [3]कालकवेः सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ओं वायवे नमः ॥४७
एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ओं सोमाय नमः ॥४८
एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम् ।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ओ ईशानाय नमः ॥४९
एह्येहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिंनरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसार्धमनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ओ अनन्ताय नमः ॥५०

कहे ।४३-४४। हे राक्षसों के समूहों के नायक, विशाल वेताल तथा पिक्षाचों के समूहों को साथ ले आप यहाँ आवें, और हमारे इस यज्ञ की रक्षा करें । हे मंगल कार्यों के सर्वप्रथम स्वामी, तुम लोकेश्वर हो, हे भगवन् ! आपको हमारा नमस्कार है, ऐसा कह 'ॐ निऋंतये नमः' निऋंति को हमारा नमस्कार है, ऐसा कहे ।४५। हे भगवान् वरुण ! आप समस्त जलचर गण एवं समुद्रों के समूहों के साथ बादलों एवं अप्सराओं के विराट् समूहों को साथ लेकर हमारे यज्ञ में सम्मिलित होइये । हे विद्याधरों एवं अमरों द्वारा गीयमान भगवान् आपको हमारा नमस्कार है । ऐसा कह 'ॐ वरुणाय नमः' वरुण को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे । हे कालकवि के सहायक और प्राणों के स्वामी वायुदेव ! यम पर अधिरूढ़ होकर सिद्धों के समूहों के साथ आप हमारे यज्ञ में रक्षार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये, भगवन् ! आपको हमारा नमस्कार है । ऐसा कह 'ॐ वायवे नमः' वायु को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे ।४६-४७। हे यज्ञों के स्वामी भगवन् सोमदेव ! नक्षत्रगणों, सभी ओषधियों तथा पितरगणों के साथ आप हमारे यज्ञ में समुपस्थित हों, उसकी रक्षा करें और हमारे द्वारा दी गई पूजा ग्रहण करें, आपको हमारा नमस्कार है ।' ऐसा कह 'ॐ सोमाय नमः' भगवान् सोमदेव को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे । हे विश्वेश्वर ! लोकेश ! यज्ञों के स्वामी ईशान देव ! त्रिशूल, कपाल, खट्वांग धारण करनेवाले अपने गणों के साथ हमारे यज्ञ में सिद्धि प्रदानार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये— आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह 'ॐ ईशानाय नमः'—ईशानदेव को हम नमस्कार करते हैं ।४८-४९। हे पाताल एवं पृथ्वी धारण करनेवालों के स्वामी ! नागाङ्गनाओं तथा किन्नरों द्वारा गीयमान ! अनन्त भगवन् ! यक्ष,

---

[1] क. ख. °स्त्वं सर्वैस्तु वे° ।
[2] ग. घ. ङ. °ण्यसहा° । च. ण्यदाऽप्स° ।
[3] ङ. °कलास ।

एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभाव विशाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ओं ब्रह्मणे नमः ॥५१
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥५२
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो [1]मदनो गावो देवमातर एव च ॥५३
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदाऽन्विताः । इत्यावाह्य सुरान्दद्यादृत्विग्भ्यो हेमभूषणम् ॥५४
कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च । अङ्गुलीयपवित्राणि वासांसि शयनानि च ॥५५
द्विगुणं गुरवे दद्याद्भूषणाच्छादनानि च । जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम् ॥५६
तत्रोषितास्तु ते सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् । आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥५७
ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो[2] वेदपुंगवैः । त्रिप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥५८
शुक्लमाल्याम्बरो[3] भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत् । नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता ॥५९
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना । एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च ॥६०

उरगपति एवं देवगणों के साथ यहाँ आइये और हमारे यज्ञ की रक्षा करिये, ऐसा कहे 'ॐ अनन्ताय नमः' अनन्त को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे । हे विश्वाधिपति ! मुनीन्द्र ! पितर, देवता एवं लोकपालों के साथ आप यहाँ आइये । हे अमित प्रभावशाली ! आप समस्त जगत् के विधाता हैं, हे भगवन् ! आप हमारे इस यज्ञ में प्रविष्ट हों, आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह 'ॐ ब्रह्मणे नमः' ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे ।५०-५१। इस त्रैलोक्य में जितने स्थावर जंगमात्मक जीवगण हैं—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के साथ वे सभी हमारी रक्षा करें । देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषिगण, कामदेव, गौएँ, देवमाताएँ—ये सभी हमारे इस यज्ञ में प्रमुदित होकर रक्षा करें । इस प्रकार देवताओं का आवाहन कर पुरोहितों को सुवर्ण का आभूषण दे ।५२-५४। सुवर्ण निर्मित कुण्डल, सूत्र, कटक, अंगूठी, पवित्र सुन्दर वस्त्र तथा शय्या का दान करे । गुरु के लिए ये उपर्युक्त वस्तुएँ द्विगुणित रूप में दे, भूषण, आच्छादनादि वस्त्र सभी को । उस समय सभी दिशाओं में जप करनेवालों को शान्तिकाध्याय का जप करते रहना चाहिये ।५५-५६। वे सभी जप करनेवाले, पुरोहित तथा आचार्य उसी मण्डप में निवास कर उपर्युक्त प्रकार से अधिवासन कर प्रत्येक कार्यों के प्रारम्भ में, मध्य में तथा अन्त में स्वस्तिवाचन करे । तदनन्तर मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते हुए वेदज्ञानियों द्वारा स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर अञ्जलि में पुष्प ले श्वेत वस्त्र धारण कर उस तुला को अभिमंत्रित करे ।५७-५८½। हे सभी देवताओं की शक्ति स्वरूप ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, तुम सत्य की आश्रयभूत हो, समस्त जगत् को धारण करनेवाली हो, विश्वयोनि ने तुम्हें साक्षी रूप में निर्मित किया है, तुम्हारी एक तुला पर सभी सत्य हैं, दूसरी पर सौ

---

[1] घ. ङ. मुनयो । [2] ङ. च. तो विप्रपु° । [3] ग. °म्बरधरस्तां तु° ।

धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते । त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ॥६१
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते । योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥६२
स एकोऽधिष्ठितो देव त्वयि तस्मान्नमो नमः । नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ॥६३
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारकर्दमात् । पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवधिवासनम् ॥६४
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलामारोहयेद्बुधः । सखड्गचर्मकवचः[1] सर्वाभरणभूषितः ॥६५
धर्मराजमथाऽऽदाय[2] हैमं सूर्येण संयुतम् । कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन्हरेर्मुखम् ॥६६
ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुंगवाः । समादभ्यधिकं यावत्काञ्चनं चतिनिर्मलम् ॥६७
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः । क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत् ॥६८
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥६९
त्वया धृतं जगत्सर्वं[3] तुले स्थावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणी ॥७०
ततोऽवतीर्य गुरवे[4] पूर्वमर्धं निवेदयेत् । ऋत्विग्भ्योऽपरमर्धं तु दद्यादुदकपूर्वकम् ॥७१

असत्य हैं, हे जगत् की कल्याणकारिणी ! धर्म एवं अधर्म के करनेवालों के मध्य में तुम्हारी स्थापना हुई है, इस प्रकार हे तुले ! तुम सभी जीवों के कार्यकलापों में प्रमाणरूप से उपस्थित कही गई हो, मुझे तोलते हुए तुम इस संसार से उबार लो, तुम्हें हमारा नमस्कार है । जो तत्त्वों में पच्चीसवें माने जानेवाले पुरुष संज्ञक सभी तत्त्वों के स्वामी भगवान् हैं, वे एक मात्र तुम्हीं में अधिष्ठित हैं । हे देवि ! तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे तुला कहे जानेवाले भगवन् गोविन्द ! तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है ।५९-६३। हे हरि ! इस संसार रूप कीचड़ से तुम हमें उबार लो । इस प्रकार पुण्यकाल में अधिवासन कर पुनः प्रदक्षिणा कर तुला पर बुद्धिमान् पुरुष आरोहण करे उस समय वह खड्ग, चर्म, कवच एवं सभी आभरणों से अलंकृत हो । फिर सुवर्ण निर्मित सूर्य समेत धर्मराज को बँधी हुई मुट्ठीवाले दोनों हाथों से पकड़ कर रखे और विष्णु के मुख की ओर ताकता हुआ स्थित रहे ।६४-६६। तदनन्तर ब्राह्मणों को चाहिये कि तुला की दूसरी ओर यजमान की तौल से कुछ अधिक शुभ्र निर्मल चमकता हुआ सुवर्ण रखे । पुष्टि की कामना करनेवाला श्रेष्ठ मनुष्य जब तक सुवर्ण की तुला भूमि पर स्पर्श न कर ले तब तक सुवर्ण रखता जाय । फिर क्षण मात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे । 'हे सभी जीवों की साक्षी रूप, सर्वदा वर्तमान् रहनेवाली देवि ! तुम परमेष्ठी पितामह द्वारा निर्मित हुई हो, हे तुले ! तुम सभी स्थावर जंगमात्मक जगत् के धारण करनेवाली हो, हे सभी जीवों का आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि ! तुम्हें हमारा नमस्कार है ।६७-७०। इस प्रकार निवेदन कर तुला से उतर कर सुवर्ण का आधा भाग गुरु को निवेदित करे, एवं बचे हुए आधे भाग को आचमन कर पुरोहितों

---

[1] ग. घ. °वची. स° । [2] ग. °थार्कं च करयोर्न्यस्य व्यक्तिमाप् । क° । [3] क. ख. घ. 'र्वं सह त्या' । [4] ग. ङ. °वे सर्वं° ।

गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत् । प्राप्य तेषामनुज्ञां तु तथाऽन्येभ्योऽपि दापयेत् ॥७२
दीनानाथविशिष्टादीन्पूजयेद्ब्राह्मणैः सह । न चिरं [1]धारयेद्गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः ॥७३
तिष्ठेद्भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम् । शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति मानवः ॥७४
अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत् । प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ॥७५
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
कल्पकोटिशतं यावत्तस्मिँल्लोके महीयते ॥७६

कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः ॥७७

यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके ।
यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः[2] प्राप्नोति धाम स पुरंदरदेवजुष्टम् ॥७८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने तुलापुरुषदानं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७४॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३७१३॥

में बाँट देना चाहिये । फिर गुरु को तथा पुरोहितों को इसके अतिरिक्त ग्राम एवं रत्नादि का दान देना चाहिये, और उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणादि को भी दान करे, विशेषतः दीन एवं अनाथों को भी ब्राह्मणों के साथ दान दे । बुद्धिमान् पुरुष उस तौले गये सुवर्ण को अधिक देर तक अपने घर न रखे, क्योंकि यदि वह यजमान के घर में रह जाता है तो उसे भय देनेवाला, शोक एवं व्याधि का बढ़ानेवाला होता है, और शीघ्र ही दूसरे को दे देने पर श्रेय को प्राप्त करता है ।७१-७४। इस प्रकार की विधि से जो पुरुष तुला पुरुष को दान देता है, वह प्रत्येक मन्वन्तरों में प्रतिलोकों के स्वामित्व पद पर निवास करता है । किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर चढ़कर अप्सराओं से सुपूजित हो बिष्णुपुर को जाता है, एवं सौ कोटि कल्पों तक उस लोक में पूजित होता है ।७५-७६। फिर पुण्यकर्म क्षय होने पर इस पृथ्वी लोक में राजराजेश्वर होता है। अनेक राजाओं के मुकुट की मणियों से उसके पैर का आसन शोभायमान होता है, और इस जन्म में भी उसी दान के माहात्म्य से वह श्रद्धा समेत सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान करता है, और प्रचण्ड प्रताप से समस्त राजाओं को पराजित करता है । जो पुरुष इस तुला पुरुष के दान को दिये जाते हुए देखता है, दूसरे अवसर पर उसका स्मरण करता है, लोक में पढ़कर उसकी विधि को सुनाता है, जो इसकी विधियों को सुनता है, या पढ़ता है, वह भी इन्द्र के समान स्वरूप धारण कर पुरन्दर प्रभृति देवगणों से सेवित स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है ।७७-७८।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान अनुकीर्तन प्रसंग में तुलापुरुष दान नामक दो सौ चौहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ।।२७४।।

---

[1] ङ. च. °हे हेमसंतोलितं । [2] ङ. °पः सोऽपि प्रमोदशतसंयुततत्स्वरूपः प्रा° ।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत् । ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥२
कुर्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं बुधः[1] । पुण्याहवाचनं कृत्वातद्वत्कृत्वाऽधिवासनम् ॥३
ब्राह्मणैरानयेत्कुम्भं तपनीयमयं शुभम्[2] । द्विसप्तत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ॥४
त्रिभागहीनविस्तारमाज्यक्षीराभिपूरितम् । दशास्त्राणि[3] च रत्नानि दात्रसूचीं तथैव च ॥५
हेमनालं सपिटकं बहिरादित्यसंयुतम् । तथैवाऽऽवरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम् ॥६
पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वद्धैमदण्डकमण्डलू । पद्माकारं पिधानं स्यात्समन्तादङ्गुलाधिकम् ॥७
मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागसमन्वितम्[5] । तिलद्रोणोपरिगतं वेदिमध्ये[6] व्यवस्थितम् ॥८

अध्याय २७५

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं हिरण्यगर्भ नामक सर्वश्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ, जो महापातक का विनाश करनेवाला है । इस हिरण्यगर्भ दान में भी तुला पुरुष के दान की भाँति पुण्य दिन को पुरोहितों द्वारा मण्डप को यज्ञ सामग्रियों तथा आभूषण आच्छादनादि से सुशोभित कर बुद्धिमान् पुरुष उपवास कर लोकपालों का आवाहन करे ।१-२½। तुला पुरुष की भाँति पुण्याहवाचन एवं अधिवासन करके ब्राह्मणों द्वारा सुवर्णमय मांगलिक कलश को मण्डप में मँगवाये, वह कलश बहत्तर अंगुल ऊंचा सुबर्ण कमल के गर्भ की भाँति हो तथा घृत एवं दुग्ध आदि से दो भागों में भरा हुआ हो एक तिहाई भाग रिक्त हो । दस अस्त्र, रत्न, छूरिका और सूची समीप में हो, तथा सुवर्ण का नाल पिटारी समेत रखा हो । कलश के बाहर आदित्य की प्रतिमा बनी हुई हो । उसकी नाभि पर आवरण हो, तथा सुवर्ण का यज्ञोपवीत पहिनाया गया हो ।३-६। उसी प्रकार कलश के समीप में सुवर्ण का दण्ड तथा कमण्डलु रखा गया हो, कलश के चारों ओर से एक अंगुल से अधिक पद्म के आकार का उसका ढकना बना हो । वह सुन्दर कलश मोतियों की की लड़ियों से सुशोभित तथा पद्मरागमणि से युक्त, वेदिका के मध्य भाग में द्रोण परिमित तिल के ऊपर स्थापित हो ।७-८। तदनन्तर मांगलिक शब्दों एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि किये

---

[1] ग. च. पुनः । [2] ग. घ. ङ. °म् । द्वास° । [3] घ. °शाखण्डानि च° । [4] क. ख. दात्रीं । [5] ग. घ. 'गद-लान्वि' । [6] घ. ङ. °ध्ये ततोऽर्चयेत् ।

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च । सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो[1] वेदपुंगवैः ॥९
शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१०
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च । सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः ॥११
भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः । ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे ॥१२
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय । नमो हिरण्यगर्भाय[2] गर्भे यस्य पितामहः ॥१३
यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥१४
एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्याऽऽस्त उदङ्मुखः । मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ ॥१५
जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम् । गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥१६
कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुंगवाः । गीतमङ्गलघोषेण गुरुरुत्थापयेत्ततः ॥१७
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः । सूच्यादिकं च गुरवे दद्यान्मन्त्रमिमं जपेत् ॥१८
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः । चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः[3] ॥१९
यथाऽहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम । त्वद्गर्भसंभवादेष दिव्यदेहो भवाम्यहम् ॥२०

जाते समय वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी प्रकार की औषधियों से स्नान कराया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हो पुष्पाञ्जलि ग्रहण किये इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे भगवन् हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, सातो लोकों तथा देवताओं के स्वामी, जगत् के विधाता, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है।९-११। हे विश्व के धारण करनेवाले परमात्मनेन ! तुम्हारे गर्भ में भू-लोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा अदि देवगण विराजमान हैं तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे भुवनों के आधार ! भुवनो के आश्रय ! हिरण्यगर्भ तुम्हारे गर्भ में पितामह का आश्रय है, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे देव ! जिस कारण आप भूतात्मा कहे गये हैं, तथा प्रतिभूतों में आप व्यवस्थित रहते हैं, इस कारण इस अशेष दुःख-संसार सागर से मेरा उद्धार करें।१२-१४। इस प्रकार आमन्त्रित कर उन सामग्रियों के समीप वेदी के मध्य भाग में प्रविष्ट हो उत्तराभिमुख बैठकर अपनी मुट्ठियों से धर्मराज तथा चतुर्मुख ब्रह्मा को भलीभाँति पकड़कर, अपने घुटनों के बीच में शिर कर पाँच श्वास खींचने के समय तक उसी प्रकार स्थित रहे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणगण हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त तथा उन्नयन संस्कार कराये, तब गीत एवं मांगलिक स्वरों के साथ आचार्य यजमान को ऊपर उठाये और जातकर्म आदि अन्य सोलहों क्रियाओं का संस्कार करावे। फिर यजमान उन सूची आदि सामग्रियों को गुरु को इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करे।१५-१८। हिरण्यगर्भ को हमारा नमस्कार है, विश्वगर्भ को हमारा नमस्कार है, इस चराचर जगत् के गृहभूत को हमारा नमस्कार है, हे सुरोत्तम ! जिस प्रकार मरणधर्मा (मरनेवाला) प्राणी मैं कुछ दिन पूर्व जन्म ले चुका हूँ

---

[1] य. °तो द्विजपुं। [2] ग. °यश्च लोकपि°। [3] ग. घ. °मः। मात्राऽहं'।

चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुंगवाः । स्नापयेयुः प्रसन्नाङ्गाः सर्वाभरणभूषिताः ॥२१
देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने । अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम् ॥२२
दिव्येनानेन वपुषा चिरं जीव सुखी भव । ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः ॥२३
ते पूज्याः सर्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया । तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥२४
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् । ग्रामं वा विषयं वाऽपि यदन्यदपि संभवेत् ॥२५
अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽहनि निवेदयेत् । हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके महीयते ॥२६
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत् । कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते ॥२७
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः [1]सिद्धसाध्यैरमरचमरमालाबीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमथ बन्धून्पुत्रपौत्रान्प्रपौत्रानपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेकएव ॥२८

उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण यह मैं पुनः दिव्य शरीरवाला होऊँ! इसके बाद सभी आभूषणों से विभूषित प्रसन्न शरीरवाले वे ब्राह्मणगण चार कलशों द्वारा यजमान का स्नान करवायें। उस समय यजमान सुवर्णमय आसन पर आसीन हो। ब्राह्मणगण स्नान करवाते समय 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र का पाठ करें और कहें कि आज उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अंगों का हम लोग अभिषेक करवा रहे हैं।१९-२२। इस दिव्य शरीर से अब तुम चिरकाल तक जीवित रहो और आनन्द का उपभोग करो। तदनन्तर विचक्षण यजमान को उस हिरण्यगर्भ को उन ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिये। उन ब्राह्मणों की सर्वतोभावेन पूजा करनी चाहिये, तथा उनकी आज्ञा से अन्यान्य बहुत से ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिये। वहाँ की अन्य सभी सामग्रियों को गुरू को दान दे देना चाहिये।२३-२४। पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन एवं पात्रादि विविध सामग्रियाँ, ग्राम, अन्य पदार्थ तथा सम्पत्ति, तथा अन्यान्य जिन किन्हीं वस्तुओं के दान करने की अभिलाषा हो गुरु को समर्पित करे। इस प्रकार की विधि से पुण्यदिन को जो इस हिरण्यगर्भ नामक महादान को करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।२५-२६। प्रत्येक मन्वन्तर में लोकपालों के पुरों में वह निवास करता है तथा सौ कोटि कल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है।२७। कलियुग के पापों से विनिर्मुक्त वह प्राणी सिद्धों तथा साध्यों द्वारा पूजित होकर अप्सराओं द्वारा देवताओं के योग्य चमरों से बीजित (हवा किया जाता हुआ) होकर नरक में गिरे हुए सैकड़ों पितरों, बन्धुओं, पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों तक को अकेला तार देता है। इस प्रकार मर्त्यलोक में इस हिरण्यगर्भ दान की विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा सुनता है वह भी विष्णु भगवान् की भाँति भली प्रकार से सिद्धगणों द्वारा पूजित होता है, तथा हितैषिता की

---

[1] ग. °द्धसंघैरमलच° ।

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्मधुरिपुरिव लोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः ।
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम् ॥२९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यगर्भप्रदानविधिर्नाम
पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७५॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३७४२॥

अथ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम् । यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत् । ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥२
लोकेशवाहनं[1] कुर्यादधिवासनकं तथा । कुर्याद्विशपलादूर्ध्वमा सहस्राच्च शक्तितः ॥३
कलशद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः । [2]दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षडवेदाङ्गसमन्वितम् ॥४

दृष्टि से इस दान को करने की जो सूझ देता है, वह देवपतियों का नायक होता है और उस पद से कभी च्युत नहीं होता ।२८-२९।

श्री मात्स्य महापुराण में महादानानुकीर्तन में हिरण्यगर्भप्रदानविधि नामक दो सौ पचहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ॥२७५॥

अध्याय २७६

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सभी दानों में श्रेष्ठ महापापों का विनाश करने वाले ब्रह्माण्ड-दान की विधि को बतला रहा हूँ । तुला पुरुष दान के समान पुण्य दिन को प्राप्त कर पुरोहित का निश्चय; मण्डप की रचना, यज्ञ की सामग्री भूषण तथा अच्छादनादि सामग्री को एकत्र करे । तथा लोकपालों का आवाहन कर अधिवासनादि विधि सम्पन्न करे ।१-२½। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल बीस पल* से ऊपर एक सहस्र पल तक का दो कलशों से संयुक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनवाये । वह ब्रह्माण्ड आठों दिग्गजों तथा छहों अंगों समेत वेदों से युक्त हो, आठों लोकपालगण भी

---

[1] घ ङ. °नं तद्वद° । [2] ग दिक्पालाष्ट° ।

*एक पल की तौल बराबर है चार कर्ष के : और एक कर्ष बराबर है सोलह मासे के ।

*लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम् । शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥५
वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम् । वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥६
कौशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् । तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ॥७
पूर्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे । प्रकृतिं दक्षिणे देशे संकर्षणमतः परम् ॥८
पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम् । अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम् ॥९
[1]समन्ताद्गुडपीठस्थानर्चयेत्काञ्चनान्बुधः[2] । स्थापयेद्वस्त्रसंवीतान्पूर्णकुम्भान्दशैव तु ॥१०
दशैव धेनवो देयाः [3]सहेमाम्बरदोहनाः । पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः ॥
भक्ष्यभोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः ॥११
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुंगवैः । इमामुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाऽथ प्रदक्षिणम् ॥१२
नमोऽस्तु विश्वेश्वर [4]विश्वधाम जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते ।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम् ॥१३

साथ हों, मध्य भाग में चतुर्मुख ब्रह्मा स्थित हों, शिव, विष्णु तथा सूर्य शिखर पर अवस्थित हों, उमा तथा लक्ष्मी भी वहीं बनी हों।३-५। वसुगण, आदित्यगण तथा मरुद्गण गर्भ में हों, महारत्नों से सुशोभित हों। वह ब्रह्माण्ड एक बीते से लेकर सौ अंगुल तक मोटा तथा ऊँचा हो सकता है। उस ब्रह्माण्ड को सुन्दर रेशमी वस्त्र से चारों ओर परिवेष्टित कर एक द्रोण तिल पर स्थापित करे, उसके चारों ओर अन्य अठारह प्रकार के अन्नों को लाकर सुशोभित करे। पूर्व दिशा से अनन्तशायी की, दक्षिण और पूर्व के कोण पर प्रद्युम्न की, दक्षिण दिशा में प्रकृति की, दक्षिण पश्चिम के कोण पर संकर्षण की, पश्चिम दिशा में चारों वेदों की, उसके बाद अनिरुद्ध की, उत्तर दिशा में अग्नि की, ईशान कोण में सुवर्ण निर्मित वासुदेव की परिकल्पना करनी चाहिये।६-९। बुद्धिमान् पुरुष इन सभी देवताओं की प्रतिमा सुवर्ण निर्मित कराके गुड के आसन पर स्थित कर पूजा करे। तथा अन्य दस पूर्ण कुम्भों को वस्त्र से परिवेष्टित कर स्थापित करे। इसी के साथ सुवर्ण वस्त्र एवं दोहन के पात्र के साथ दस गौएं दान करनी चाहिए, उनके साथ पादुका, जूता छत्र, चमर, आसन, दर्पण, भक्ष्य, भोज्य, सामग्रियां, अन्न, दीप, ईख, फल, पुष्प एवं चन्दनादि भी हों। हवन एवं अधिवासन के समाप्त होने के बाद वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने के बाद यजमान तीन बार प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण करे।१०-१२। हे विश्वेश्वर! विश्वधाम! सातो ऋषि, लोक अमर एवं भूतल के स्वामी, जगत् के प्रसवकर्त्ता भगवन्! तुम अपने गर्भ के साथ हमारी रक्षा

---

[1] ग. °न्ताद्वरपी°। [2] घ. °डपिण्डाढ्याः पल्लवैश्च समन्विताः। स्या°। [3] ग. सघण्टाम्ब°।
[4] ङ. च °श्वरूप विश्वेश्वराधार जगत्सवित्रे।

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम् ।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥१४
एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं दद्याद्द्विजेभ्यो दशधा विभज्य ।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समं भजेच्छेषमनुक्रमेण ॥१५
स्वल्पे च होमं गुरुरेक एव कुर्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या ।
स एव संपूज्यतमोऽल्पवित्ते[1] यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥१६
इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्याद्ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महाद्विमनम् ।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारेरानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः ॥१७
संतारयेत्पितृपितामहपुत्रपौत्रबन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं[2] सः ।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघमानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम् ॥१८

करो ।१३। जो दुःखी हैं वे सुखी हों, चराचर सभी जीवों के पापपुञ्ज नष्ट हो जायँ, तुम्हारे दान रूप शस्त्र से ताड़ित पापों एवं दोषों का विनाश हो जाय ।' इस प्रकार उस अमरगणों एवं विश्व को गर्भ में धारण करनेवाले भगवान् रूप उस ब्रह्माण्ड को प्रणाम कर उसे दस भागों में विभक्त कर ब्राह्मणों को दान कर दे, उसमें से दो भाग गुरु को दे और शेष भागों में से समान भाग ब्राह्मणों को दे ।१४-१५। स्वल्प हवन में एक गुरु को ही एक अग्नि का विधान कर नियुक्त करना चाहिये और अल्प वित्त में यथोक्त वस्त्र आभूषणादि से उसी की पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार की विधि से इस लोक में से जो मनुष्य इस ब्राह्मण दान की क्रिया को सम्पन्न करता है, वह महान् विमान में आरुढ़ हो, सभी कलुषों के नष्ट हो जाने के कारण अति शुद्ध शरीर हो अप्सराओं के साथ मुरारि के आनन्ददायक पद की प्राप्ति करता है ।१६-१७। इस ब्रह्माण्ड दान रूप परिधि के द्वारा जिस पुरुष ने अपने पाप समूहों को चूर्ण विचूर्ण कर दिया है उसने अपने सैकड़ों पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, बन्धु, प्रियजन, अतिथि, स्त्री को तथा अशेष मातृकुल को तार दिया तथा आनन्द किया । इस ब्रह्माण्ड दान की विधि को देवताओं के मन्दिरों तथा धार्मिकों के गृहों में जो

---

[1] घ. °वितर्यं । [2] ग. °तान्यभीक्षणम् । ब्र° ।

इति पठति शृणोति वा य एतत्सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणाम् ।
मतिमपि च ददाति मोदतेऽसावमरपतेर्भवने सहाप्सरोभिः ॥१९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने ब्रह्माण्डप्रदानविधिर्नाम
षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७६॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३७६१॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम् । महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत् । पुण्याहवाचनं कृत्वा लोकेशावाहनं तथा ॥२
ऋत्विङ्मंडपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । काञ्चनं कारयेद्वृक्षं नानाफलसमन्वितम् ॥३
नानाविहगवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत् । शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रं प्रकल्पयेत् ॥४

पढ़ता है अथवा सुनता है, मति ही देता है वह अमरपति के भवन में अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है ॥१८-१९॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में ब्रह्माण्ड प्रदान विधि नामक दो सौ छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥२७६॥

अध्याय २७७

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं सभी पातकों के विनाश करनेवाले अत्युत्तम कल्पपादप दान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। तुला पुरुष दान की भाँति उत्तम पुण्य दिन प्राप्त कर तथा ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन तथा लोकपालों का आवाहन कर पुरोहित वरण, मण्डप रचना, यज्ञ सामग्री आभूषण आच्छादनादि का समारम्भ करे। तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित सुवर्ण का वृक्ष बनवाये, उस पर विविध प्रकार के पक्षी, वस्त्र तथा आभूषण की रचना करे। इस वृक्ष को अपनी शक्ति के अनुरूप कम से कम तीन पल से लेकर एक सहस्र पल तक का बनवाना चाहिये ।१-४। इस सुवर्ण से आधे का कल्प

[1]अर्धक्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत्कल्पपादपम् । गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥५
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम् । कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत् ॥६
संतानं पूर्वतस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् । मन्दारं दक्षिणे [2]भागे श्रिया[3] सार्धं घृतोपरि ॥७
पश्चिमे [4]परिभद्रं तु सावित्र्या सह जीरिके[5] । सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् ॥८
[6]तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम् । कौशेयवस्त्रसंवीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥९
तथाऽष्टौ पूर्णकलशान्पादुकाशनभाजनम् । दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ॥१०
फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टाद्वितानकम् । तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ॥११
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुंगवैः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१२
नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने । विश्वंभराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ॥१३
यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः । [8]मूर्तामूर्तपरं[9] बीजमतः पाहि सनातन ॥१४
त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः । संतानाद्यैरुपेतः सन्पाहि संसारसागरात् ॥१५

पादप बनवाना चाहिये, और एक प्रस्थ परिमाण गुड के ऊपर उसे दो स्वेत वस्त्रों से संयुक्त कर स्थापित करे, वह कल्पवृक्ष ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव से संयुक्त हो सूर्य समेत पाँच शाखाओं वाला हो, उनके निम्नभाग में स्त्री समेत कामदेव की कल्पना करे ।५-६। उस कल्पपादप की पूर्व दिशा में चतुर्थांश से संतान वृक्ष की कल्पना करे, दक्षिण दिशा की ओर श्री के साथ मन्दार को घृत के ऊपर कल्पित करे, पश्चिम दिशा में जीरा के ऊपर सावित्री के साथ पारिभद्र की कल्पना करे, उसी प्रकार तिलों के ऊपर गौ के साथ हरिचन्दन वृक्ष को चतुर्थांश द्वारा उत्तर दिशा फलसंयुक्त कल्पित करे ।७-८। तथा रेशम वस्त्र से वेष्टित, ईश, पुष्पमाला एवं फलों से संयुक्त आठ पूर्ण कलशों को स्थापित करे, तथा पादुका, आसन, पात्र, दीप, जूता, चामर एवं आसन से संयुक्त फलों एवं पुष्पों से सुशोभित वितान को ऊपर ताने। उन वृक्षों के चारों ओर अठारह प्रकार के धान्य को रखे । इस प्रकार हवन और अधिवासन की समाप्ति हो जाने पर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने पर यजमान तीन प्रदक्षिणा कर के इस मंत्र का उच्चारण करे ।९-१२। हे कल्पपादप, चिन्तित प्रयोजनों को पूर्ण करनेवाले, विश्वमूर्ति, विश्वम्भर देव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, हे सनातन ! जिस कारण से तुम्हीं विश्वात्मा हो, ब्रह्मा हो, स्थाणु (शिव) हो, दिवाकर हो, एवं अमूर्त हो, इस चराचर विश्व के परम कारण रूप हो अतः मेरी रक्षा कीजिये ।१३-१४। तुम्हीं अमृत सर्वस्व हो, अनन्त हो, अव्यय पुरुष रूप हो सन्तान आदि दिव्य वृक्षों से संयुक्त आप इस संसार सागर से मेरी रक्षा कीजिये । इस प्रकार आमंत्रित कर

---

[1] ग. अविक्लिष्टं सु° । ङ. अर्धकृष्णसु° ।
[2] क. ख. पार्श्वे ।
[3] घ. °या परमया युतम् । प° ।
[4] क. ख. °रिजातं तु ।
ग. कारयेत् ।
[6] ग. घ. ङ. तृतीयांशेन ।
[7] ग घ. ङ. °कासन ।
[8] क. ख. मूर्तोऽमू° ।
[9] ग. घ. °मूर्तः प° ।

एवमामन्त्र्य तं दद्याद्गुरवे कल्पपादपम् । चतुर्भ्यश्चाथ ऋत्विग्भ्यः संतानादीन्प्रकल्पयेत् ॥१६
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्गुरवे चाभिपूजनम् । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयवान्भवेत् ॥१७
अनेन विधिना यस्तु[1] प्रदद्यात्कल्पपादपम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं भवेत् ॥१८
अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणकिंनरैः । भूतान्भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्गोत्रसंयुतान्[2] ॥१९
स्तूयमानो दिवः पृष्ठे[3] पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्ततः । नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः ॥
नारायणकथासक्तो नरायणपुरं व्रजेत् ॥२१
यो वा पठेत्सकलकल्पतरुप्रदानं यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा ।
सोऽपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभिर्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः ॥२२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कल्पपादपप्रदानविधिर्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७७॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३७८३॥

उस कल्पवृक्ष को गुरु को समर्पित करे और अन्य चार पुरोहितों को उन अन्य सन्तानादि वृक्षों को दे। स्वल्प सामग्रियों के होने पर एकाग्नि पूजन की भाँति एक गुरु की ही पूजा करनी चाहिये, इस दान में न तो कृपणता करनी चाहिये और न विस्मय ही करना चाहिये ।१५-१७। इस उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य कल्पपादप का दान करता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। सिद्ध, चारण, किन्नर एवं अप्सराओं से घिरा हुआ वह मानव अपने भूत तथा भविष्यकाल में होनेवाले सगोत्रीय पूर्व पर पुरुषों को तारता है, स्वर्ग के पृष्ठ पर पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्रों के समूहों से स्तुति किया जाता हुआ वह प्राणी सूर्य के समान तेजस्वी विमान से विष्णुलोक को जाता है और वहाँ सौ कल्पों तक निवास करता है तदनन्तर पुनः राजाधिराज होकर जन्म ग्रहण करता है और भगवान् नारायण के पराक्रम से संयुक्त होकर उन्हीं की भक्ति में निरत रहता है, उन्हीं की कथाओं में उसकी आसक्ति होती है, और पुनः इस पुण्य के प्रभाव से नारायण के पुर को प्राप्त करता है। अथवा जो मनुष्य इस कल्पपादप की दान विधि को समग्र पढ़ता है, सुनता है या जो अल्प वित्तशाली पुरुष केवल स्मरण करता है, वह भी इन्द्रलोक को प्राप्त होकर पाप निर्मुक्त शरीर से अप्सराओं के साथ मन्वन्तर पर्यन्त निवास करता है।१८-२२।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान अनुकीर्तन प्रसंग में कल्पपादप प्रदान विधि नामक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७७॥

---

[1] ख. ग. घ. °स्तु महादानं निवेदयेत् । स° । [2] ग. घ. °येद्रोमसंमिता । [3] क. ख. °ष्ठे पितृपुत्रअपौत्रकान् । वि° ।

अथाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम् ॥१
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकाम्[1] । पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा ॥२
लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् । पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ॥३
ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत् ॥४
+गोसहस्राद्विनिष्कृष्य गवां दशकमेव च । गोसहस्रं बहिः कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषितम् ॥
सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम् ॥५
अन्तः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत् । सुवर्णघण्टिकायुक्तं[2] कांस्यदोहनकान्वितम् ॥६
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलंकृतम् । कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धसमन्वितम् ॥७
हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैरुपशोभितम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम् ॥८

अध्याय २७८

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं सभी पापों को दूर करने वाले अति उत्तम गो सहस्र प्रदान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। युग एवं मन्वन्तर के प्रारम्भ होने की उत्तम तिथि को प्राप्त कर अपनी शारीरिक शक्ति के अनुरूप तीन रात दुग्ध का व्रत रखे अथवा एक रात का ही रखे, तथा तुला पुरुष के दान की भांति लोकपालों का आवाहन, पुण्याहवाचन, हवन तथा अन्यान्य कार्यों को विधिपूर्वक सम्पन्न करे और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्रियों, आभूषण तथा आच्छादनादि को यथास्थान रखे एवं निर्दिष्ट लक्षणों से संयुक्त वृषभ को वेदी के मध्य भाग में बैठावे।१-४। और वेदी के बाहर एक सहस्र गौओं को वस्त्र पुष्पादि से विभूषित कर सींगों को सुवर्ण जटित तथा पैरों को चाँदी से अलंकृत करे। फिर उन सहस्र गौओं में से दस गौओं को अलग कर भीतर वेदी में प्रवेश करा कर पुनः वस्त्रों एवं पुष्पों से पूजा करे, उन्हें सुवर्ण की घण्टी से सुशोभित तथा काँसे से बने दोहन पात्र से संयुक्त करे, सुवर्ण की तिलक लगावे, सुनहले वस्त्र से अलंकृत करे, रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित कर मालाओं एवं सुगन्धित वस्तुओं से पूजित करे।५-७। सुवर्ण एवं रत्नमय सींगों तथा चमरों से सुशोभित कर, पादुका, जूता, छत्र, भाजन एवं आसन से संयुक्त करे। उन दसों गौओं के मध्य में सुवर्ण के नन्दिकेश्वर को रखे, जो रेशमी वस्त्र से

+ एतदर्धं न विद्यते क. ख. पुस्तकयोः ।

---

[1] ग. घ. °दिकम् । प° । [2] ग. घ. ङ. °क्तं ताम्रदो° ।

गवां दशकमध्ये स्यात्काञ्चनो नन्दिकेश्वरः । कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः ॥९
लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः । कुर्यात्पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ॥१०
शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु । गोशदेऽपि दशांशेन सर्वमेतत्समाचरेत् ॥११
पुण्यकालं समासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः । सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुंगवैः ॥१२
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः । नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ॥१३
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः । गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति [1]भुवनान्येकविंशतिः ॥१४
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः । गावो मे अग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च ॥१५
गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् । यस्मात्त्वं वृषरूपेण [2]धर्म एव सनातनः ॥१६
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन । इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम् ॥१७
[3]सर्वोपकरणोपेतं गोयुतं[4] च विचक्षणः । ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेत् ॥१८
गवां च शतमेकैकां तदर्धं वाऽथ विंशतिम् । दश पञ्चाथ वा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया ॥१९
नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत् । बह्वयश्चैकस्य दातव्या धीमताऽऽरोग्यवृद्धये ॥२०

परिवेष्टित तथा विविध अलंकारों से विभूषित हों। द्रोण परिमित नमक के शिखर पर पुष्प माला ईख तथा फलों से संयुक्त उस नन्दिकेश्वर को स्थापित करे। इन सब सामग्रियों का समारम्भ सौ पल सुवर्ण से ऊपर तीन सहस्र पल तक अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल करे। इन सब का दशम अंश सौ गौओं के दान में व्यय करे।८-११। फिर पुण्यकाल को प्राप्त कर गीत एवं मांगलिक शब्दों के होते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी औषधियों के जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमयुक्त अंजलि बाँधकर इस मंत्र का उच्चारण करे। हे रोहिणी रूप, विश्वमूर्ति, विश्व की माताओ ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, तुम सभी लोकों को धारण करने वाली हो, हे माताओ ! तुम गौओं के अंगों में इक्कीसों भुवनों का निवास है।१२-१४। ब्रह्मादि देवगण तुम्हीं में निवास करते हैं, हे रोहिणीस्वरूपा ! तुम सब को हमारा नमस्कार है तुम सभी हमारी रक्षा करो हे गौ मातृगण ! तुम मेरे अग्रभाग में रहो, पृष्ठभाग में रहो, नित्य मेरे शिर पर रहो, मैं गौओं के मध्य में ही निवास करूँगा हे सनातन ! नन्दिकेश्वर देव ! जिस कारण तुम सर्वदा विद्यमान रहनेवाले वृषभ स्वरूप से भगवान् अष्टमूर्ति (शिव) के अधिष्ठान माने गये हो अतः मेरी रक्षा करो।१५-१६½। इस प्रकार आमंत्रित कर सभी सामग्रियों के साथ गौ और उक्त नन्दिकेश्वर को गुरु को दान करना चाहिये तथा उन दसों गौओं में से एक-एक गाय को तथा इन गौओं में से एक-एक सौ, पचास-पचास, अथवा बीस, बीस, गौओं को पुरोहितों को देना चाहिये और उनकी आज्ञा से अन्य को दस, दस, अथवा पांच पांच गौएँ देनी चाहिये।१७-१९। एक ही गाय बहुतों को नहीं देनी चाहिये; क्योंकि ऐसी रीति दोषपूर्ण है प्रत्युत बुद्धिमान् यजमान को आरोग्यवृद्धि

---

[1] ग. °नानिचतुर्दश । ब्र° । [2] ङ. °मर्मूर्तिः स° । [3] ङ. °पस्कर । [4] घ. ङ. °युगं च ।

पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः । श्रावयेच्छृणुयाद्वाऽपि महादानानुकीर्तनम् ॥२१
तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद्यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् । अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥२२
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । सर्वेषां लोकपालानां लोके संपूज्यतेऽमरैः ॥२३
प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत्पुत्रपौत्रसमन्वितः । सप्त लोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥२४
शतमेकोत्तरं तद्वत्पितॄणां तारयेद्बुधः । मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥
यावत्कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्पुनः ॥२५
अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः । वैष्णवः[1] योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात् ॥२६
पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं सुतम् । अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्र एव वा ॥
गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति ॥२७
तस्य कर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च । संसारसागरादस्माद्योऽस्मान्संतारयिष्यति ॥२८

के लिए एक एक को अनेक गौएँ देनी चाहिये । तदनन्तर इस प्रकार एक सहस्र गोदान करनेवाला यजमान एक दिन के लिये पुनः दुग्ध का व्रत रखे और इस महादान का अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने ।२०-२१। यदि विपुल समृद्धि का वह इच्छुक है तो उस दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये । इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य एक सहस्र गौओं का दान करता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणों से सेवित होकर सूर्य के समान तेजस्वी विमान से, जिसमें घण्टियों की माला शोभायमान रहती है, सभी लोकपालो के लोकों में अमरों द्वारा पूजित होता है एवं वहाँ पुत्र पौत्रादि समेत प्रत्येक मन्वन्तरों में निवास करता है तथा सात लोकों का अतिक्रमण कर शिवपुर को जाता है ।२२-२४। बुद्धिमान् दाता अपने इस महत्पुण्यकर्म के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती एक सौ एक पितरों को तथा नाना पक्ष के पुत्र पौत्रादि युक्त पितरों को साथ ले जब तक सौ कल्प नहीं बीतता तब तक भोग करता है तथा पुनः राजाधिराज होता है । इस नवीन जन्म में भी वह शिव के ध्यान में परायण हो सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करता है तथा वैष्णव योग की उपासना कर पुनः बन्धन से मुक्त होता है ।२५-२६। सहस्र गौ दान करनेवाले पुत्र का पितरगण अभिनन्दन करते हैं, और सर्वदा अपने हृदय में वे यह अभिकांक्षा करते रहते हैं कि क्या हमारे कुल में कोई पुत्र, नाती ऐसा होगा जो सहस्र गौ दान करके हम सबों को नरक से उबारेगा अथवा इस सहस्र गौ के महादान में किसी कार्य में नियुक्त होगा, या देखने के लिए जायेगा, इस संसार सागर में डूबते हुए हम लोगों को उबार लेगा । इस प्रकार इस सहस्र गौ के प्रदान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है अथवा देखता है,

---

[1] ग, घ. ङ. °वं लोकमासाद्य त° ।

इति पठति य एतद्गोसहस्रप्रदानं सुरभुवनमुपोयात्संस्मरेद्वाऽथ पश्येत् ।
अनुभवति सुखं वा[1] मुच्यमानो निकामं प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम् ॥२९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने गोसहस्रप्रदानविधिर्नामाष्टसप्तत्य-
धिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७८॥
आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३८१२॥

अथ नवसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम् । सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ॥१
लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम् । तुलापुरुषवत्कुर्यात्कुण्डमण्डपवेदिकम् ॥२
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्गुरुरेकः समाहितः । काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥३
उत्तमा [2]पलसाहस्रा तदर्धेन तु मध्यमा । कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता ॥४

वह देवलोक को प्राप्त होता है, तथा भव बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर निरन्तर आनन्द का अनुभव करते हुए सभी पापों से विनिर्मुक्त शरीर हो इन्द्रलोक को प्राप्त करता है ॥२७-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन में सहस्र गौ प्रदान विधि नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७८॥

अध्याय २७९

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मनुष्यों को सभी मनोरथों के देनेवाले, महापातकनाशी कामधेनु के दान की विधि मैं बतला रहा हूँ। पूर्व कथित प्रणाली के अनुरूप लोकपालों का आवाहन तथा अधिवासन कर तुलापुरुषदान की तरह इसमें भी कुण्ड मण्डप एवं वेदी की रचना करनी चाहिये । स्वल्प वित्त में एकाग्नि की भाँति सुस्थिर चित्त एक मात्र गुरु को ही एतदर्थ नियुक्त करे। और अति विशुद्ध सुवर्ण की धेनु और वत्स बनवाये ।१-३। इसमें उत्तमा गौ एक सहस्रपल की होती है, उससे आधे की मध्यमा तथा उससे भी आधे की कनीयसी कही गई है। यदि असमर्थ है तो वह भी

---

[1] ग. घ. ङ. वाच्यमानो । [2] क. ख. हस्री त° ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत् । वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम् ॥५
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलंकृताम् । कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥६
तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् । [1]इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम् ॥
भाजनं चाऽऽसनं तद्वत्ताम्रदोहनकं तथा ॥७

कौशेयवस्त्रद्वयसंयुतां गां दीपातपत्राभरणाभिरामाम् ।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां[2] सुवर्णशृङ्गीं परिरूप्यपादाम् ॥८
रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः ।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभिर्वितानकं चोपरि पञ्चवर्णम् ॥९
[3]स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।
आवाहयेत्तां गुरुणोक्तमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥१०

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि ॥११

तीन पल से ऊपर की ही बनवाये । तदनन्तर वेदी में काले मृगचर्म को एक प्रस्थ परिमित गुड़ के साथ बिछावे और उसके ऊपर अति मूल्यवान् रत्नों से अलंकृत उस धेनु को स्थापित करे। उस गौ के साथ आठ कुम्भ हों तथा विविध प्रकार के फल हों। वेदी के चारों ओर अठारह प्रकार के अन्नों को रखे तथा उसी प्रकार आठ ईख का दण्ड, एवं विविध प्रकार के फलों को रखे । और उसी के पास पाँच आसन, तथा तांबे के बने हुये दोहन पात्र भी रखे ।४-७। तदनन्तर दो रेशमी वस्त्रों से सुशोभित, घंटी से युक्त, सुवर्ण जटित सींगों और चांदी जटित पैरों वाली गौ को, जो चारों ओर से सभी प्रकार के रसों से, हल्दी से, जीरा से धनिया से तथा शक्कर से लेपन की गई हो, ऊपर पांच वर्ण के तने हुए वितान के नीचे, मांगलिक वेद ध्वनि के बीच स्नान कर यजमान सुन्दर पुष्प हाथों में लिये हुए गुरु द्वारा उच्चारित मंत्रों से आवाहित करे और हाथ में कुश लेकर ब्राह्मण को दे ।८-१०। और प्रार्थना करे हे विश्वेश्वरी ! तुम सभी देवताओं की मन्दिर स्वरूपा हो, एवं त्रिपथगा (गंगा) समुद्र एवं पर्वत सभी की अंग स्वरूपा हो, तुम्हारे दान रूप शस्त्र से विचूर्णित हो गये हैं पाप समूह जिसके—ऐसा मैं परम सन्तोष का लाभ कर रहा हूँ, तुम्हें हमारा नमस्कार है ।११। हे जननि ! इस संसार में यथाभिलषित फल एवं अर्थ को देनेवाली

---

[1] ग. °ण्डादिकं। [2] ग. घ. °ण्टां गणित्रिकाचन्द्रकरौप्यपा° । [3] ग. घ. स्नानं ततो ।

लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि[1] भवदुःखमुपैति मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं त्वां कामधेनुमिति [2]देवगणा वदन्ति ॥१२
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय[3] विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति धाम स पुरंदरदेवजुष्टं कन्यागणैः[4] परिवृतः पदमिन्दुमौलेः ॥१३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यकामधेनुप्रदानविधिर्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७९।।

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३८२५॥

अथाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् । यस्य [5]प्रदानाद्भुवने चानन्तं फलमश्नुते ॥१
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥२

तुम्हें प्राप्त कर भला कौन मर्त्य ऐसा है जो संसार के दुःखों में पड़े, हे मातः! संसार के दुःखों को शान्त करने के लिये तुम निश्चय ही यत्नशील हो इसीलिये देवगण तुम्हें कामधेनु कहते हैं। इस प्रकार सत्कुलोत्पन्न, शीलवान्, रूपवान्, गुणवान् ब्राह्मण को आमंत्रित कर जो व्यक्ति इस सुवर्णनिर्मित कामधेनु का दान करता है वह पुरन्दर प्रभृति देवताओं से सुसेवित तथा कन्या-समूहों से घिरा हुआ शंकर के लोक को प्राप्त करता है।१२-१३।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्य कामधेनु दान विधि नामक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२७९॥

अध्याय २८०

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं परम श्रेष्ठ हिरण्याश्व के दान की विधि बता रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य भुवन में अनन्त फल की प्राप्ति करता है। तुला पुरुष दान की भाँति पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि का पाठ करा लोकपालों का आवाहन करे। तथा पूर्वकथित रीति से ही मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, भूषण, आच्छादन एवं यज्ञ सामग्रियों को एकत्र करे।

---

[1] क. ख. हि भुवि दुः° । [2] क. वेदविदो । [3] ग. °य यः कारयेत्कन° । ङ. °य यः श्रद्धया कन° ।
[4] °न्याशतैः परिवृतं प° । [5] ग. घ. ङ. प्रसादाद्भु° ।

ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्धेमवाजिमखं बुधः ॥३
स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि । कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेमवाजिनम् ॥४
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमा सहस्रपलाद्बुधः । पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः ॥५
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम् । शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुताम् ॥६
ततः सर्वौषधिस्नानस्नापितो वेदपुंगवैः । इमामामुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥७
नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट । वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात् ॥८
त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर । [1]यस्माद्भासयसे लोकानतः पाहि सनातन ॥९
एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत् । दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम् ॥१०
गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजश्चापि पूजयेत् । सर्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत् ॥११
सर्वं शय्यादिकं दत्त्वा भुञ्जीतातैलमेव हि । पुराणश्रवणं तद्वत्कारयेद्भोजनादनु[2] ॥१२
इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः पुण्यं समासाद्य दिनं नरेन्द्र ।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् ॥१३

बुद्धिमान् यजमान यदि स्वल्पवित्त है तो एकाग्नि की भाँति केवल गुरु द्वारा ही इस सुवर्णाश्व का यज्ञ संपादित करे ।१-३। उस सुवर्ण निर्मित अश्व को वेदी के मध्य में कृष्ण मृगचर्म एवं तिल के ऊपर स्थापित करे, तथा रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित करे । बुद्धिमान् पुरुष इस सुवर्णाश्व को अपनी शक्ति के अनुरूप तीन पल से ऊपर एक सहस्र पल तक का बनवाये तथा पादुका, जूता, छाता, चामर, आसन एवं पात्रों से संयुक्त कर परिपूर्ण आठ कलशों से युक्त माला, पुष्प ईख एवं फल से भी संयुक्त करे । उसी प्रकार सभी सामग्रियों समेत सुन्दर शैया भी सुवर्ण निर्मित मार्तण्ड के समेत वहाँ रखे ।४-६। फिर वेदज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा सभी ओषधियों से विमिश्रित जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर इस मंत्र का उच्चारण करे । हे सभी देवों के स्वामी ! वेदों के लाने वाले देव ! अश्वरूपधारी ! तुम इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो । हे भास्कर ! तुम्हीं सात भागों में विभक्त होकर छन्दोरूप धारण कर सभी लोकों को भासित करते हो, हे सनातन ! इसलिये मेरी भी रक्षा करो ।७-९। इस प्रकार कह कर उस अश्व को गुरु को दान करे । दान देकर पाप के नष्ट हो जाने के कारण वह मनुष्य सूर्य के अक्षयलोक को प्राप्त करता है । अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल गौओं द्वारा अन्य पुरोहितों की पूजा करे, तथा सभी प्रकार के अन्न एवं सामग्रियों को गुरु को निवेदन करे । एवं सभी शैया आदि वस्तुओं को निवेदित कर तैल को छोड़ कर भोजन करे, और भोजन के पश्चात् पुराणों का श्रवण करे ।१०-१२। हे नरेन्द्र ! इस प्रकार पुण्य दिन को प्राप्त कर इस सुवर्णाश्व दान को विधि के अनुकूल जो मनुष्य करता है वह पापों से विमुक्त होकर सिद्धों द्वारा पूजित होकर मुरारि

---

[1] ग. ङ. च. °स्माद्भ्रामय° । [2] क. ख. 'नादिकम् इ° ।

इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन युक्तः ।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽभिपश्येत् ॥१४
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके ।
साऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरंदरमहेश्वरदेवजुष्टम् ॥१५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वप्रदानविधिर्नामाशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ॥२८०॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३८४०॥

अथैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥२

के पद को प्राप्त करता है। इस सुवर्णाश्व के दान विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा देखता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्तकर सुवर्णमय विमान द्वारा सूर्य के लोक को प्राप्त करता है तथा देवपतियों की बधुओं द्वारा पूजित होता है।१३-१४। अथवा जो अल्पवित्त पुरुष इसकी विधि को सुनता है, स्मरण करता है तथा सुवर्णाश्व दान की विधि का लोक में अभिनन्दन करता है, वह भी सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध शरीर वाला हो पुरन्दर, महेश्वर प्रभृति देवेशों से सेवित परम पुनीत स्थान को प्राप्त करता है ॥१५॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्याश्व प्रदान विधि नामक दो सौ अस्सीवाँ
अध्याय समाप्त ॥२८०॥

अध्याय २८१

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रद अश्वरथ नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ जो महापापों को नष्ट करने वाला है। इस दान में भी पूर्व कथित तुला पुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्त कर यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यन आदि मांगलिक ध्वनि कराकर लोकपाल आदि का आवाहन करे।१-२। तथा पूर्व कथित रीति से पुरोहित-वरण, मण्डप निर्वाण, यज्ञ-सामग्री, आभूषण तथा

ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा [1]काञ्चनं स्थापयेद्रथम् ॥३
[2]सप्ताश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम् । ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् ॥४
लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम् । चतुरः पूर्णकलशान्धान्यान्यष्टादशैव तु ॥५
कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् । माल्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् ॥६
यो यद्भक्तः पुमान्कुर्यात्स तन्नाम्नाऽधिवासनम् । छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकम् ॥७
गोभिर्विभवतः सार्धं दद्याच्च [3]शयनादिकम्[4] । अभावात्त्रिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद्बुधः ॥८
अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथ वाजिभिः । द्वाभ्यामपि युतं [5]दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम् ॥९
चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ । पुण्यकालमथावाप्य पूर्ववत्स्नापितो द्विजैः ॥१०
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः । शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥११
नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरंगमाय ।
धाम्नामधीशाय [6]दिवाकराय पापौघदावानलदेहिशान्तिम् ॥१२

आच्छादनादि को एकत्र करे । फिर कृष्ण मृगचर्म पर तिलों के ऊपर सुवर्णमय रथ की स्थापना करे । वह रथ सात अश्वों से युक्त अथवा पाँच अश्वों से युक्त हो । चार चक्के हों, जुआ बना हो, इन्द्रनील मणि के कलश तथा ध्वजाओं से सुशोभित हो, आठों लोकपालों से युक्त हो । पद्मराग मणि के दल बने हों, चार भरे हुए मंगल कलश तथा अठारह प्रकार के धान्य भी रखे हों ।३-५। सुन्दर रेशमी वस्त्रों से सुशोभित हो, ऊपर चंदोआ तना हो, पुष्प माला, ईख तथा फल से संयुक्त एवं पुरुष से समन्वित हो । जो पुरुष उस देवता का विशेष भक्त हो उसी के नाम का उच्चारण कर उसमें अधिवासन कराये । छत्र, चमर, रेशमी वस्त्र, जूते, पादुका और गौओं के साथ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार शय्या आदि का दान करे । बुद्धिमान् पुरुष अभाव में तीन पल सुवर्ण से अधिक तौल का रथ बनवाये ।६-८। आठ चार अथवा दो ही अश्वों से युक्त रथ हो, उसी प्रकार रथ के अनुकूल सुवर्ण की ध्वजा एवं सिंह भी उसके साथ हों । उस रथ एवं अश्व के आरोही दोनों अश्विनीकुमार हैं, जो उन्हीं अश्वों पर अवस्थित रहकर चक्कों की रक्षा का कार्य करते हैं । इस प्रकार पुण्यकाल प्राप्तकर ब्राह्मणों द्वारा पूर्वकथित मंत्रादि एवं ओषधियों के जल से स्नान कर यजमान के हाथों में पुष्पाञ्जलि लिये हुए तीन प्रदक्षिणा कर, श्वेत वस्त्र धारण कर इस निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुये दान करे ।९-११। 'हे विश्वात्मन् ! वेदतुरंगम, पापविनाशन, तेजोधिपति पापौघ के दावानल ! दिवाकर ! तुम हमें शान्ति प्रदान करो, हमारा तुम्हें नमस्कार है । तुम आठों वसुगण, आदित्यगण

---

[1] घ. च. °नं कारये° । [2] क. ख. अष्टाश्वं । [3] ख. घ. ङ. च. °नासनम् । अ° । [4] क ख. °म् । आ भारात्त्रि° । [5] ग. °मवाजिध्व° । [6] घ. च. भवाभवाय ।

वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥१३
इति तुरगरथप्रदानमेतद्भवभयसूदनमत्र यः करोति ।
स कलुषशपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥१४
देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभावमाक्रम्य [1]मण्डलमखण्डितचण्डभानोः ।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानवक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहाऽऽस्ते ॥१५
इति पठति शृणोति वा य इत्थं कनकतुरगरथप्रदानमस्मिन् ।
न स नरकपुरं व्रजेत्कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥१६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वरथप्रदानविधिर्नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३८५६॥

एवं मरुत् गणों के धाता हो, परम निधान हो, अतः तुम्हारी कृपा से पाप-पुञ्ज के विनाश हो जाने से मेरा हृदय धर्म की एकस्वरूपता को प्राप्त करे ।१२-१३। इस प्रकार विधिपूर्वक इस लोक में जो मनुष्य भवभयनाशक इस तुरगरथ प्रदान नामक महादान को देता है वह कलिकलुष के परदों के विनष्ट हो जाने से विमुक्त शरीर हो पिनाकपाणि के पुनीत पद की प्राप्ति करता है, तथा इसके अमोघ प्रभाव से देदीप्यमान शरीर द्वारा अखण्डित चण्डभानु के निखिल मण्डल को आक्रान्त करता है एवं समस्त देहधारियों को विजित कर सिद्धों की स्त्रियों के भ्रमर रूप नेत्रों से पीत कमलमुख हो चिरकाल पर्यन्त ब्रह्मा के साथ निवास करता है ।१४-१५। इस मर्त्यलोक में जो प्राणी इस सुवर्ण तुरग रथ नामक महादान की विधि को पढ़ता है, सुनता है वह कभी नरकलोक को नहीं जाता और बारंबार नरकासुर के शत्रु भगवान् कृष्ण (विष्णु) के लोक को प्राप्त करता है ॥१६॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्याश्वरथ प्रदान विधि नामक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८१॥

---

[1] ग. ङ. °खण्डमच° ।

अथ द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम् । यस्य [1]प्रदानाद्भुवनं[2] वैष्णवं याति मानवः ॥१
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत् । विप्रवाचनकं कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥
ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥२
अत्राप्युपोषितस्तद्वद्ब्राह्मणैः सह [3]भोजनम् । कुर्यात्पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम् ॥३
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् । कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद्रथम् ॥४
लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम् । मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥५
तथाऽष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः । दीपकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम् ॥६
ध्वजे तु गरुडं कुर्यात्कूबराग्रे विनायकम् । नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् ॥७
कौशेयं पञ्चवर्णं तु अम्लानकुसुमान्वितम् । चतुर्भिः कलशैः सार्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम् ॥८

अध्याय २८२

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं मंगलकारी सुवर्ण के हस्ती रथ नामक महादान का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य विष्णु के लोक को प्राप्त करता है ।१। पूर्व कथित तुला पुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद तिथि प्राप्त कर बुद्धिमान् यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक वाचन कराकर लोक पालों का आवाहन करे तथा उसी प्रकार पुरोहित-वरण मण्डप-रचना, यज्ञ-सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि का प्रबन्ध करे। इस महादान में भी उपवास रखकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। मणियों से सुशोभित पुष्परथ के आकार के समान सुवर्ण का रथ बनवाये, जिसमें विचित्र वलभियाँ (छज्जे) बनी हों तथा चार चक्के हों। उस रथ को कृष्ण मृगचर्म के ऊपर रखे गये एक द्रोण परिमित तिल पर स्थापित करे ।२-४। उस रथ पर आठों लोकपालों तथा ब्रह्मा, सूर्य एवं शिव की प्रतिमाएँ भी बनी हों। मध्य भाग में लक्ष्मी के समेत विष्णु भगवान् की भी मूर्ति हो। उसमें पात्र, आसन, चन्दनादि सामग्रियाँ, अठारह प्रकार के अन्य दीपिका, जूता, छत्र दर्पण एवं पादुकाएँ भी हों। ध्वज पर गरुड़ की तथा जूआ के अग्रभाग पर विनायक की कल्पना करे। रथ विविध प्रकार के फलों से युक्त हो तथा उसके ऊपर चँदोवा तना हुआ हो। उसके ऊपर चारों ओर से पाँच वर्णों के रेशमी वस्त्र शोभित हो रहे हों तथा सुन्दर विकसित पुष्पों से भी वह सुशोभित किया गया हो चार मांगलिक कलश तथा आठ गौएँ भी साथ हों ।५-८। मोतियों

---

[1] ग प्रसादाद्भ° । [2] घ, °नात्सततं वैधस्वं या° । [3] घ, शोभनम् ।

चतुर्भिर्हेममातङ्गैर्मुक्तादामविभूषितैः[1] । स्वरूपतः करिभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदयेत् ॥९
कुर्यापञ्चपलादूर्ध्वमा[2] भारादपि शक्तितः । तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुंगवैः ॥१०
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥११
नमो नमः शंकरपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात् ॥१२
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमत्र[3] ।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढ ॥१३
यस्मात्त्वमेव [4]भवसागरसंप्लुतानामानन्दभाण्डमृतमध्वरपानपात्रम् ।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं चामीकरेभरथ माधव [5]संप्रदानात् ॥१४
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत्सकलपापविमुक्तदेहः ।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः ॥१५

की मालाओं से सुशोभित चार सुवर्ण के हाथी हों । स्वरूपतः इन हाथियों को रथ में संयुक्त कर दान करना चाहिये । अपनी शक्ति के अनुकूल इस दान में पाँच पल सुवर्ण की तौल से एक भार तक सुवर्ण लगाना चाहिये । इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के बीच स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों को दान करे ।९-११। 'हे तेजोमय स्यन्दन ! तुम शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर एवं वासुदेव से सेवित हो, वेद पुराण एवं सभी यज्ञ तुम्हारी सेवा में निरत हैं, अतः हमारी रक्षा करो । हे रथाधिरूढ स्वामिन् । जिस आनन्द के कारण गुण, रूपविमुक्त, परम गोपनीय मुरारि के पद को एक मात्र योगदृष्टि द्वारा मुनिगण समाधिकाल में देखते हैं, वह तुम्हीं हो ।१२-१३। हे माधव ! तुम्हीं भवसागर में डूबने वालों को आनन्द देने वाले, अमृत स्वरूप, तथा यज्ञों में पान के पात्र हो, अतः तुम इस सुवर्णमय हस्तीयुक्त रथ के दान से हमारे पाप-पुञ्जों को नष्ट कर हमारे ऊपर प्रसन्न हो । इस प्रकार प्रणाम करके जो पुरुष कनक हस्तीयुक्त रथ का दान करता है वह सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध देह हो, विद्याधर, देवगण, मुनीन्द्रगण द्वारा सेवित, शंकर के अदृष्ट लोक को प्राप्त करता है और पूर्व जन्म के किये गये दुष्कर्मों के समूह रूप प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं में झुलसते हुए,

---

[1] ग. घ. ङ. च. °षितम् । स्व° । [2] घ. °ध्वंमभावाद° । [3] क. ख. ग. घ. °मन्तः । यो° ।
[4] क. ख. °भागमृतमध्वगपारपत्र° । [5] ग. घ. दानम् । इ° ।

[१]कृतदुरितवितानप्रज्वलद्वह्निजालव्यतिकरकृतदाहोद्वेगभाजोऽपि[२] बन्धून् ।
नयति स[३] [४]पितृपुत्रान्बान्धवानप्यशेषान्कृतगजरथदानाच्छाश्वतं[५] सद्म विष्णोः ।।१६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमहस्तिरथप्रदानविधिर्नाम
द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८२।।

आदितः श्लोकानां समष्टचङ्काः ।।१३८७२।।

अथ त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ।।१
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य युगादिग्रहणादिकाम् । भूमिदानं नरो दद्यात्पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ।।२
खर्वटं खेटकं वाऽपि ग्रामं वा सस्यशालिनम् । निवर्तनशतं वाऽपि तदर्धं वाऽपि शक्तितः ।।३

दुःख भोगने वाले अपने समस्त बन्धुओं, पितरों, पुत्रों, परिवार वर्गों को इस हस्तिरथ के दान से विष्णु भगवान् के शाश्वत लोक में पहुँचाता है ।।१४-१६।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हेम हस्तिरथ प्रदान विधि नामक दो सौ बयासीवाँ
अध्याय समाप्त ।।२८२।।

अध्याय २८३

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलाङ्गलक नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ । युगादि की तथा ग्रहण आदि की पुण्य तिथियों को प्राप्तकर मनुष्य पाँच हलों से युक्त भूमि का दान करे । पर्वत तथा नदी से तटवर्ती ग्राम को, कृषि कर्म के योग्य ग्राम को, जो अन्नादि से युक्त हो, एक सौ निवर्तन (नीचे मूल में निवर्तन का परिमाण दिया गया है) अथवा उसके आधे को, अपनी शक्ति के अनुकूल दान करे ।१-३। विचक्षण यजमान पाँच काष्ठमय हलों को

---

१ ग. ङ. तानादुल्लसद्व° । २ क. ख. `तदेहो` । ३ ग. घ. च । ४ घ. °त्रान्रीरवाद्य्प्य` ।
५ ग. °दानः शाश्व` ।

सारदारुमयान्कृत्वा हलान्पञ्च विचक्षणः । [1]सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान्पञ्च च काञ्चनान् ।।
कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ।४
वृषाल्लक्षणसंयुक्तान्दश चैव धुरंधरान् । सुवर्णशृङ्गाभरणान्मुक्तालाङ्गूलभूषणान् ।।५
रूप्यपादाग्रतिलकान्रक्तकौशेयभूषणान् । स्रग्दामचन्दनयुताञ्शालायामधिवासयेत्[2] ।।६
पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम् । एकस्मिनेव कुण्डे तु [3]गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत् ।।७
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा । तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ।।८
ततो मङ्गलशब्देन शुल्कमाल्याम्बरो बुधः । आहूय द्विजदांपत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ।।९
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत् । शय्यां सोपस्करां दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम् ।।१०
तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तादधिवासयेत् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।११
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत् । यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ।।१२
धुरंधराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे । यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१३
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मं एव दृढा भवेत् । दण्डेन सप्तहस्तेन [4]त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ।।१४

सभी सामग्रियों से युक्त कर तथा अन्य पांच सुवर्ण के बने हुए हलों को कम से कम पांच पल तौल से ऊपर एक सहस्र पल तक बनवाये । दस वृषभों को, जो उत्तम लक्षणों से युक्त हों, उनकी सींगें सुवर्ण से जटित हों, पूँछों पर मोती की लड़ियों का आभूषण हो, पैरों में चाँदी मढ़ी हो, शिर पर तिलक लगे हों, लाल रेशमी वस्त्र से सुशोभित हों, माला तथा चन्दन से युक्त हों, शाला में अधिवासित कराये ।४-६। तथा पर्जन्य आदित्य एवं रुद्र को खीर की चरु निवेदित करे । एक ही कुण्ड में गुरु तथा इन सबों को निवेदित करे इस दान के हवन कार्य में पलाश की समिधाएँ, घृत तथा काले तिल को रखना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे ।७-८। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के मध्य शुक्ल वस्त्र एवं पुष्प धारण कर बुद्धिमान् पुरुष द्विज दम्पति का आवाहन कर सुवर्णमय सूत्र, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्ण के कटक, एवं मणियों द्वारा पूजा करे । सभी सामग्रियों समेत शय्या तथा एक दूध देनेवाली गाय का दान करना चाहिये । चारों ओर अठारह प्रकार के अन्नों को रखना चाहिये । तब हाथों में कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण कर निवेदन करे ।९-११। यतः सभी देवगण, स्थावर एवं चर जीव भारवाही वृषभों के अंग में निवास करते हैं, अतः शिव में हमारी भक्ति हो । यतः अन्य सभी दान भूमिपान की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं करते अतः इस दान से मेरी भक्ति धर्म में दृढ़तर हो । सात हाथ के दण्ड से तीस दण्ड नापने पर एक निवर्तन होता है और इसके तिहाई अंश से

---

[1] ग. °पस्करमंयुक्ता° । [2] क. ख. °त् । धरण्यादि° । [3] ग. घ. ङ. °रुर्यस्मै नि° । [4] ग घ. ङ. इण्डा नि° ।

त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः । मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः ॥
विधिनाऽनेन तस्याऽऽशु क्षीयते पापसंहतिः ॥१५
तदर्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् । भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१६
यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमेर्भासां पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि ।
तावन्ति शंकरपुरे स समा हि तिष्ठेद्भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥१७
गन्धर्वकिंनरसुरासुरसिद्धसंघैराधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम् ।
संपूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः शंभोः पदं व्रजति चामरनायकः सन् ॥१८
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति गोभूमिलाङ्गलधुरंधरसंप्रदानात् ।
तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमेर्दानं [1]विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय ॥१९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने पञ्चलाङ्गलप्रदानविधिर्नाम
त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८३॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३८९१॥

न्यून को गोचर्म कहते हैं—यह मान प्रजापति ने कहा है ।१२-१४½। जो बुद्धिमान् पुरुष इस मान के अनुसार एक सौ निवर्तन भूमि को इस विधि से दान करता है उसके पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट होने जाते हैं अथवा उसका अर्द्ध भाग या गोचर्म मात्र अथवा एक भवन बनाने योग्य स्थान मात्र भूमि का जो दान करता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है ।१५-१६। जो पुरुष इस मर्त्य लोक में भूमि प्रदान करता । उस भूमि में जितने भी लाङ्गलक के मुखमार्ग होते हैं तथा सूर्यपूत्री के अङ्ग में जितनी रोमावलि है, उतने ही वर्षों तक वह शंकरपुर में निवास करता है तथा गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर एवं सिद्धों के समूहों द्वारा चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमान को प्राप्त कर पिता, पितामह एवं बन्धुवर्गों से युक्त चामर नायक होकर शम्भु के पद को प्राप्त होकर पूजित होता है । मनुष्य इस गौ, भूमि, लाङ्गल एवं वृषभों के प्रदान करने से इन्द्रत्व आदि अविनाशशील पदों को प्राप्त करता है । अतः पापपुञ्ज परदे को नष्ट करनेवाले भूमि के दान को भूति एवं समृद्धि के लिये मनुष्य को अवश्यमेव देना चाहिये ।१७-.९।

श्री मात्स्य महापुराण में महादानानुकीर्तन प्रसंग में पञ्चलाङ्गलप्रदान विधि नामक दो सो तिरासीवाँ
अध्याय समाप्त ॥२८३॥

---

[1] घ. च. °यमतिभू° । ङ. °यमभिभूतिभवाभवा° ।

अथ चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम् । पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम् ॥१
कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बूद्वीपानुकारिणीम् । मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥२
लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम् । नदीनदसमोपेतां सप्तसागरवेष्टिताम् ॥३
महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम् । हेम्नः पलसहस्रेण तदर्धेनाथ शक्तितः ॥४
शतत्रयेण वा कुर्याद्द्विशतेन शतेन वा । कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः ॥५
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः । ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥६
वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा [1]तिलानुपरि विन्यसेत् । तथाऽष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥७
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत् । वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ॥८
तथांऽशुकानि रम्याणि श्रीखण्डशकलानि च । इत्येवं कारयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥९

अध्याय २८४

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं मनुष्यों के अमङ्गल का विनाश करनेवाले सर्वश्रेष्ठ धरादान नामक दान की विधि को बतला रहा हूँ। इन दान में जम्बूद्वीप के आकार की भाँति सुवर्णमयी पृथ्वी की रचना करवाये, उसके मध्य भाग में सुमेरु हो, पर्वतों की मर्यादा बनी हो, आठो लोकपाल एवं नवों वर्षों से युक्त हो, नदी एवं नदों से समन्वित तथा सातों समुद्रों से परिवेष्टित हो ।१-३। उसे महारत्नों से जटित, वसु, रुद्र तथा आदित्यों से संयुक्त बनवाये। इस पृथ्वी को एक सहस्र पल सुवर्ण के तौल की बनानी चाहिये अथवा अपनी शक्ति के अनुकूल उसके आधे भाग द्वारा। अथवा तीन सौ पल, दो सौ पल, या एक सौ पल का बनवाये। विचक्षण पुरुष अपनी असमर्थता में पाँच पल से ऊपर की बनवाये। बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे। और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि सामग्रियों को यथास्थान रखे ।४-६। वेदी पर कृष्ण मृगचर्म के ऊपर तिल रखकर उस पर पृथ्वी की प्रतिमा रखे तथा अठारह प्रकार के अन्नों, रसों तथा लवणादि को रखे। सभी ओर भरे हुए आठ मांगलिक कलशों को स्थापित करे। चँदोवा, रेशमी वस्त्र, तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित करे। तथा मनोहर रेशमी वस्त्रों, चन्दनों के

---

[1] क. ख. °लानामुपरि न्य° ।

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।१०
पुण्यं कालमथाऽऽसाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः ।।११
धात्री त्वं सर्वभूतानामतः पाहि वसुंधरे । वसु धारयसे यस्माद्वसु चातीव निर्मलम् ।।१२
वसुंधरा ततो जाता तस्मात्पाहि [1]भयादलम् । चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ।।१३
अनन्तायै नमस्तस्मात्पाहि संसारकर्दमात् । त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे [2]गौरीति चाऽऽस्थिता ।।१४
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा । बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ।।१५
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वंभरा स्मृता । धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा ।।
एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् । एवमुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।।१७
धरार्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् । शेषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।१८
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम् । पुण्यकाले तु संप्राप्ते स पदं यति वैष्णवम् ।१९
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथाऽऽवसेत् ।।
[3]पितॄन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् ।।२०

टुकड़ों से अलंकृत कर अधिवासन करने के बाद शुक्ल वस्त्र तथा पुष्पमाला धारण कर श्वेत वर्ण के आभूषणों से विभूषित हो कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल में इस मन्त्र का उच्चारण करे । 'हे वसुन्धरे ! तुम्हीं सभी देवताओं की भावनरूपा हो, सभी जीवों की धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो ।७-११½। अतः तुम सभी प्रकार के अति निर्मल पुष्टिकारक अन्नादि को धारण करनेवाली हो अतः वसुन्धरा तुम्हारा नाम है अतः मेरी संसार के भय से रक्षा करो । हे अचले ! यतः चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्त को नहीं प्राप्त कर सकते अतः तुम अनन्ता हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस संसार रूप कीचड़ से मेरी रक्षा करो । तुम्हीं ने विष्णु में लक्ष्मी, शिव में गौरी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की है, ब्रह्मा के समीप तुम्हीं गायत्री हो, चन्द्रमा में तुम्हीं ज्योत्स्ना तथा रवि में तुम्हीं प्रभा हो । बृहस्पति में तुम्हीं बुद्धि नाम से प्रसिद्ध हो, मुनियों में तुम्हीं मेघा नाम से विख्यात हो ।१२-१५। यतः तुम समस्त विश्व में व्याप्त हो अतः विश्वम्भरा नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है, तुम्हे हीं धृति, स्थिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुमती तथा रसा नाम से लोग पुकारते हैं, हे देवि ! अपनी इन विमल विभूतियों से तुम इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो ।' इस प्रकार उच्चारण कर पृथ्वी की मूर्ति को ब्राह्मणों को निवेदित करे । धरा के आधे भाग को अथवा चौथाई भाग को गुरु को समर्पित करे । शेष को बराबर भागों में पुरोहितों को प्रणतिपूर्वक समर्पित करे ।१६-१८। इस प्रकार उपर्युक्त विधि समेत पुण्यकाल में जो मनुष्य सुवर्णनिर्मित कल्याणी वसुन्धरा का दान करता है वह वैष्णव पद को प्राप्त करता है । तथा किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान द्वारा

---

[1] ग. भवार्णवात् । च° । ङ. भयाचलात् । च ।
[2] ङ. °री सती स्थि° ।
[3] ग. घ. पितृपुत्रप्रपौ° ।

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादपि कलुषवितानैर्मुक्तदेहः समन्तात् ।
दिवममरवधूभिर्याति संप्रार्थ्यमानो पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः ॥२१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमपृथिवीदानमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८४॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३६१२॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । विश्वचक्रमिति ख्यातं महापातकनाशनम् ॥१
तपनीयस्य शुद्धस्य [1]विश्वचक्रं तु कारयेत् । श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्धेन तु मध्यमम् ॥२
तस्यार्धेन कनिष्ठं स्याद्विश्वचक्रमुदाहृतम् । अन्यद्विंशत्पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥३

नारायण के पुर में प्राप्त होकर तीन कल्प पर्यन्त निवास करता है एवं संख्या में इक्कीस पितरों, पुत्रों तथा पौत्रों का उद्धार करता है। इस प्रकार इस सुवर्णनिर्मित धरा दान की विधि को मनुष्य किसी प्रसंग से पढ़ता है, अथवा श्रवण करता है वह अपने सभी पाप के वितानों से मुक्त शरीर होकर अमराङ्गनाओं द्वारा प्रार्थित होकर सहस्रों देवताओं द्वारा सेवित शंकर के निर्मल लोक को प्राप्त करता है।१९-२१।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान प्रसंग में हेम पृथ्वीदान माहात्म्य नामक दो सौ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥२८४॥

अध्याय २८५

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त विश्वचक्र नामक महापातकनाशी अति श्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ। अति शुद्ध सुवर्ण का विश्वचक्र निर्मित करवाये, यह विश्वचक्र एक सहस्र पल सुवर्ण की तौल का उत्तम होता है, उससे अर्धभाग में मध्यम होता है, उससे भी आधे का कनिष्ठ बताया गया है। अशक्त पुरुष एक अन्य प्रकार के बीस पल तौल के विश्वचक्र को निवेदित करे।१-३।

---

[1] क. ख. विषुवादिषु का°।

षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् । नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ॥४
शङ्खचक्रेऽस्य पश्र्वे तु देव्यष्टकसमावृतम् । द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम् ॥५
अत्रिर्भृगुर्वसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥६
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति च क्रमात् । तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता ॥७
चतुर्थे द्वादशाऽऽदित्या वेदाश्चत्वार एव च । पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥८
लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गास्तथैव च । सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानि च कारयेत् ॥९
अन्तरान्तरतो देवान्विन्यसेदष्टमे पुनः । तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात्परिकल्पयेत् ॥१०
ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । विश्वचक्रं ततः कुर्यात्कृष्णाजिनतिलोपरि ॥११
तथाऽष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् । पूर्णकुम्भाष्टकं चैव वस्त्राणि विविधानि च ॥१२
माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं चापि कारयेत् । ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही ॥
होमाधिवासनान्ते वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१३
इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम् । नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः ॥१४
परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात् । तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यन्ति योगिनः ॥१५

यह चक्र सोलह अरों वाला, घूमता हुआ तथा आठ नेमिवाला हो, नाभि के पद्म में योगारूढ़ चतुर्भुज विष्णु स्थित रहें। उनके पार्श्व में शंख एवं चक्र हो, आठों देवियाँ चारों ओर से घेरे हुये हों। दूसरे आवरण में उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, रामचन्द्र, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध, तथा कल्कि—इन सब को क्रम को क्रम से स्थापित करे ।४-६½। तीसरे आवरण में मातृकाओं तथा वसुओं से युक्त गौरी हों, चतुर्थ में बारहों आदित्य तथा चारों वेद हों, पाचवें में पाँचों महाभूत तथा ग्यारहों रुद्रगण हो, छठें आवरण में आठों लोकपाल तथा दिशाओं के दिग्गज हों, सप्तम में सभी प्रकार के मांगलिक अस्त्रों को तथा अष्टम में थोड़े-थोड़े अन्तर पर देवताओं को स्थापित करे। शेष भागों में तुला पुरुष दान की भाँति अन्य देवताओं को कल्पित करे ।७-१०। तथा पुरोहितवरण, मण्डप-निर्माण, यज्ञ सामग्री, भूषण, अच्छादनादि को भी उसी प्रकार रखे। तब उक्त विश्वचक्र को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थापित करे। तथा अठारह प्रकार के अन्न, रस, लवण आदि, आठ भरे हुए मांगलिक कलश, विविध प्रकार के वस्त्र, पुष्प-माला आदि, ईख, फल, रत्न वितान—इस सब को भी यथास्थान रखे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के होते हुए यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर हवन एवं अधिवासन के उपरान्त कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हे विश्वमय, विश्वचक्रात्मन् ! तुम्हें हमारा नमस्कार है ।११-१४। तुम परम आनन्दस्वरूप हो, पाप रूप कीचड़ से हमारी रक्षा कीजिये , यतः इस तेजोमय विश्वचक्र को, जिसके गुणों की कोई सीमा नहीं है, योगीगण सदा

हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम् । वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः ॥१६
अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह । विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं परम् ॥१७
आयुधं चापि वासश्च भवादुद्धर [1]मामतः । इत्यामन्त्र्य च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः ॥१८
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते । वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः ॥१९
सेव्यतेऽप्सरसां संघैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम् । प्रणमेद्वाऽथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने ॥
तस्याऽऽयुर्वर्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत् ॥२०
इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।
हरिभवनमुपागतः स [2]सिद्धैश्चिरमभिगम्य नमस्यते शिरोभिः[3] ॥२१
असुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः ।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥२२

देखते हैं, हृदय में तत्त्व रूप से धारण करते हैं, अतः उसे हमारा नमस्कार है, यह विश्वचक्र वासुदेव में अवस्थित है और इस चक्र के मध्यभाग में माधव स्थित हैं, अतः एक दूसरे के आधार पर यहाँ अवस्थित दोनों को हमारा नमस्कार है । यतः यह विश्वचक्र सभी बड़े पातकों का विनाश करने वाला कहा गया है, भगवान् का आयुध स्वरूप है तथा उनका निवास रूप भी है, अतः इस भव से वह मेरी रक्षा करे ।१५-१७½। इस प्रकार आमंत्रित कर जो मनुष्य मत्सर रहित हो इस विश्वचक्र का दान करता है वह सभी पापों से विमुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है, तथा वैकुण्ठ लोक को प्राप्त कर चतुर्बाहुत्व एवं सनातनत्व को प्राप्ति करता है ।१८-१९। वहाँ अप्सराओं के समूहों द्वारा सेवित होकर वह तीन सौ कल्प पर्यन्त निवास करता है । अथवा जो व्यक्ति इस विश्वचक्र का निर्माण कर प्रतिदिन प्रणाम करता है उसकी आयु बढ़ती है तथा नित्य लक्ष्मी की वृद्धि होती है ।२०। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरों से युक्त समस्त जगत् एवं देवताओं के अधिष्ठान रूप इस चक्र को वितरित करता है वह विष्णु भवन को प्राप्त होता है तथा उसको सिद्ध गण शिर झुकाकर नमस्कार करते हैं। वह पुरुष सुवर्णनिर्मित सुदर्शन के दान से निष्पाप होकर शत्रुओं को विकराल रूप में तथा कामिनिओं को मदन की भाँति सुन्दर कमनीय रूप में दिखाई पड़ता है तथा शुभदर्शन केशव की भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है। इस सोलह अरों वाले सुवर्ण निर्मित चक्र के दान करने से किये गये महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और कर्त्ता मुरारि की श्रेष्ठ

---

[1] ग. मामितः । [2] ग. द्वैरमरवरैश्च न° । [3] क. ख. °भिः । शुभद° ।

कृतगुरुदुरितानि षोडशारप्रवितरणे प्रवराकृतिर्मुरारेः ।
अभिभवति भवोद्भवानि[1] भित्त्वा भवममितो भवने भयानि भूयः ।।२३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने विश्वचक्रप्रदानविधिर्नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२८५।।

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ।।१३९३५।।

अथ षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । महाकल्पलतानाम महापातकनाशनम् ।।१
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।।२
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः । चामीकरमयीः कुर्याद्दश कल्पलताः समाः ।।३
नानापुष्पफलोपेता [2]नानांशुकविभूषिताः । विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः ।।४

आकृति प्राप्त करता है तथा भव भय का भेदन कर बारम्बार जन्म मरण के भय को भी दूर करता है ।२१-२३।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में विश्वचक्र प्रदान विधि नामक दो सौ पचासीवां अध्याय समाप्त ।।२८५।।

अध्याय २८६

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं महापापों को नष्ट करनेवाले अति उत्तम महाकल्पलता नामक महादान की विधि बतला रहा हूं। पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करवा कर पूर्वकथित तुला पुरुष दान की विधि के समान पुरोहित वरण, मण्डप-निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करे तथा उसी प्रकार बुद्धिमान् यजमान लोकपालों का आवाहन करे ।१-२½। सुवर्णनिर्मित बराबर परिणाम की दस कल्पलताएं बनवाये, जो विविध प्रकार के फलों से युक्त तथा विविध प्रकार के रेशमी वस्त्रों से विभूषित हों। वे लताएँ विद्याधरों तथा गरुड के दम्पति से सुशोभित

---

[1] क. ख. °द्भवन्ति भीत्या भवममितो भुव° । [2] घ. ङ. च. नानाशु° ।

पुष्पाण्यादित्सुभिः सिद्धैः फलानि च विहंगमैः । लोकपालानुकारिण्यः[1] कर्तव्यास्तासु देवताः[2] ॥५
ब्राह्मीमनन्तशक्तिं च लवणस्योपरि न्यसेत् । अधस्तांल्लतयोर्मध्ये पद्मशङ्खकरे शुभे ॥६
इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा । [3]रजन्यजस्थिताऽग्नायी स्रुवपाणिस्थानले ॥७
याम्ये च महिषारूढागदिनी तण्डुलोपरि । घृते तु नैर्ऋती स्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे ॥८
वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी । *पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ॥९
सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता । माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी ॥१०
मौलिन्यो वरदास्तद्वत्कर्तव्या [4]बालकान्विताः । शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमा सहस्रात्प्रकल्पयेत् ॥११
सर्वासामुपरि स्थाप्यं पञ्चवर्णं वितानकम् । धेनवो दश कुम्भाश्च वस्त्रयुग्माणि चैव हि ॥१२
मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैव च । ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो बुधः ॥
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१३

हों । उन कल्पलताओं को पुष्प चुनने के इच्छुक सिद्धों, फल चुनने के इच्छुक पक्षियों तथा लोकपालों के समान आकृतिवाली वन देवताओं से युक्त बनाना चाहिये ।३-५। फिर लवणराशि के ऊपर ब्रह्मा एवं अनन्त (विष्णु) की शक्ति (पत्नी) को स्थापित करे । दो लताओं के निम्नभाग में उन दोनों मंगलदात्री देवियों को पद्म एवं शंख से सुशोभित हाथों वाली बनावे । पूर्व दिशा में गुड के ऊपर कुलिश का अस्त्र धारण किये हुए हाथी पर विराजमान इन्द्राणी को स्थापित करे । तत्पश्चात् अग्नि कोण में अग्नायी को हरिद्रा से सुशोभित अजा पर अवस्थित हाथ में स्रुवा लिये हुए स्थापित करे । दक्षिण दिशा में तण्डुल पर महिषारूढ़ गदा धारण किये हुए स्थापित करे । नैर्ऋत कोण में घृत के ऊपर खड्ग समेत नेर्ऋति की स्थापना करे ।६-८। पश्चिम दिशा में दुग्ध पर नाग पाश धारण किये हुए मत्स्य पर आरुढ़ वारुणी को, वायुकोण में शर्करा के ऊपर मृगारूढ़ पताकिनी की स्थापना करे । उत्तर दिशा मे तिल पर निधि पर सत्तारूढ़ शंखिनी की स्थापना करे । वृषभारुढ़ माहेश्वरी को नवनीत पर त्रिशूल धारण किये हुए स्थापित करे ।९-१०। अन्य मुकुट धारण करने वाली वरदायिनी देवियों को भी बालकों के साथ स्थापित करना चाहिये । इस महाकल्पलता दान में अपनी शक्ति के अनुकूल पाँच पल के ऊपर एक सहस्र पल तक की तौल में सुवर्ण रहना चाहिये । इन सभी के ऊपर पाँच रंगों में रंगे हुए वितान को तानना चाहिये, फिर धेनु, दस कलश तथा दो वस्त्र का दान देना चाहिये । इसमें से दो मध्यम लताओं को, गुरु को तथा अन्य पुरोहितों को देना चाहिये । तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के होते हुए स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो घ. पुस्तके—पिनाकिनी च वायव्ये मृगसंसक्ततत्परेति ।

---

[1] ग घ. ङ. °नुसारिण्यः । [2] ङ. च. °ताः । ब्रह्माणं च ततः शक्ति ल° । [3] क. °जनीसंस्थि° ।
[4] घ. बालिका° ।

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो [1]ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः ।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥१४
इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं भवभयसूदनकारि यः करोति ।
अभिमतफलदे स नागलोके वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत् ॥१५
पितृशतमथ तारयेद्भवाब्धेर्भवदुरितौघविघातशुद्धदेहः ।
सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः परिवृतमम्बुजसंसदाऽभिवन्द्यः ॥१६
इति विधानमिदं दिगङ्गनानां कनककल्पलताविनिवेदकम् ।
पठति यः स्मरतीह तथेक्षते स पदमेति पुरंदरसेवितम् ॥१७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कनककल्पलताप्रदानविधिर्नाम
षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८६॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३९५२॥

उच्चारण करे ।११-१३। 'हे पाप विनाशिनी मातृगण ! निखिल ब्रह्माण्ड एवं लोकेश्वरों की पालना करने वाली ! याचकों को आशंसा से अधिक फल प्रदान करने वाली ! तुम कल्पलता वधुओं को तथा दिशाओं की बधुओं को हमारा बारम्बार नमस्कार है ।१४। इस प्रकार सभी दिगंगनाओं के दान को, जो भयभयहारी है, जो पुरुष करता है वह अभिमत फलदायी नागलोक में पितामह के तीस वर्ष तक निवास करता है। तथा सैकड़ों पितरों को भवसागर से तारता है, संसार के घोर पापों के विनष्ट हो जाने के कारण विशुद्ध शरीर हो सहस्रों देवांगनाओं से घिरा हुआ पद्मयोनि ब्रह्मा की सभा में अभिनन्दनीय होता है। इस प्रकार दिगंगनाओं के तथा कनक कल्पलता के दान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है तथा देखता है, वह पुरन्दर प्रभृति देवपतियों द्वारा सेवित पद को प्राप्त करता है ।१५-१७।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में कनक-कल्पलता प्रदान विधि नामक दो सौ
छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८६॥

---

[1] ङ. ब्रह्माण्डला° ।

अथ सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥२
ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् । कारयेत्सप्त कुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ॥३
प्रादेशमात्राणि तथाऽरत्निमात्राणि वै पुनः । कुर्यात्सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥४
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि । प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः ॥५
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः । चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च ॥६
षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा । स्थापयेल्लवणस्थं तु ब्राह्मणं काञ्चनं शुभम् ॥७
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम् । भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये[1] निशाधिपम्[2] ॥८
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम् । सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः ॥९

अध्याय २८७

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त अति उत्तम सभी पापों के विनाशक सप्तसागर नामक महादान की विधि बता रहा हूं । तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्तकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करवा कर बुद्धिमान् पुरुष लोकपालों का आवाहन करे तथा मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, यज्ञ सामग्री, भूषण, आच्छादनादि का प्रबन्ध भी उसी भाँति से करे। विचक्षण पुरुष सुवर्ण निर्मित सात कुण्डों का निर्माण करे ।१-३। ये सातों कुण्ड एक प्रदेश (तर्जनी समेत फैले हुए अंगूठे की दूरी को प्रादेश कहते हैं ।) मात्र तथा अरत्नि (बँधी हुई मुट्ठी समेत हाथ की लम्बाई को अरत्नि कहते हैं) मात्र के होने चाहिये और इनकी तोल सात पल से लेकर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार एक सहस्र पल तक की हो । इन सभी कुण्डों को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थापित करे । विचक्षण पुरुष प्रथम कुण्ड को लवण द्वारा पूर्ण करे, द्वितीय कुण्ड को दुग्ध से तृतीय को घृत से, चतुर्थ को गुड़ से, पञ्चम को दही से छठें को शक्कर से तथा सातवें को तीर्थों के जल से पूर्ण करे । लवण पर सुन्दर सुवर्ण निर्मित ब्रह्मा की स्थापना करे ।४-७। दुग्ध कुण्ड के मध्य में भगवान् विष्णु को, घृत में महेश्वर को, गुड़ में भास्कर को, दही में चन्द्रमा को, शक्कर में लक्ष्मी को तथा जल में पार्वती को स्थापित करे। सभी कुण्डों को सभी ओर से सभी रत्नों तथा अन्नों द्वारा अलंकृत करे । तुलापुरुष दान की भाँति अन्य विधानों को सम्पन्न करे । तदनन्तर

---

[1] घ. °ध्येऽमराधि° । [2] ग. सुराधिपम् ।

तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत् । ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुंगवैः ॥१०
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमो वः सर्वसिधूनामाधारेभ्यः सनातनाः ॥
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः ॥ ॥११
क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षुसारामृतेन भुवनत्रयजीवसंघान् ।
[1]आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तस्मान्ममाप्यघविघातमलं दिशन्तु ॥१२
[2]यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव [3]तीर्थामरासुरसुबद्धमणिप्रदानम्[4] ।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ॥१३
इति ददाति रसामृतसंयुताञ्छुचिरविस्मयवानिह सागरान् ।
अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पदमुपैति [5]हरेरमरार्चितः ॥१४

वरुण के मंत्र द्वारा कराये गये हवन के उपरान्त वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का उच्चारण करे । 'हे सनातन सागरगण ! आप सब जीवों के प्राणदायक सभी नदियों के आधारस्वरूप हैं, आप को हमारा बारम्बार नमस्कार है ।८-११। आप लोग अपने दुग्ध, जल, घृत, दही, मधु, लवण, इक्षुसार (शक्कर) प्रभृति अमृत द्वारा तथा रत्नादि सम्पत्तियों द्वारा तीनों लोकों के जीव-समूहों को आनन्द देने वाले हैं अतः हमारे पाप पुञ्जों का भी विनाश करें । आप ही लोग संसार के तीर्थों, देवताओं तथा असुरगणों को पवित्रता एवं सुन्दर मणियों के प्रदान करनेवाले हैं तथा लोक के पापक्षय, अमृत विलेपन एवं भूषण के लिये उन्हें धारण करते हैं अतः मेरे गृह में भी आपकी उस लक्ष्मी का निवास हो, इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से जो मनुष्य पवित्र तथा अविस्मित होकर रस एवं अमृतों से संयुक्त निर्मल सुवर्ण के बने हुए कुण्डों का दान करता है वह देवताओं द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु का

---

१ ग. आजीवयन्ति । २ ङ. °स्तभवनेषु भवत्त एव । ३ ग. °रनिब° । घ. °रनिबद्धपणिप्रमावान् । पा° । ४ ङ. प्रतानाम् । पा° । ५ ग. ङ. रावृतः ।

सकलपापविधौतविराजितः [1]पितृपितामहपुत्रकलत्रकम् ।
नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम् ॥१५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने सप्तसागरप्रदानविधिर्नाम
सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८७॥
आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१३९६७॥

अथाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥१
पुण्यं दिनमथाऽऽसाद्य तुलापुरुषदानवत् । लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत् ॥२
भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम् । धेनुं रत्नमयीं कुर्यात्संकल्प्य विधिपूर्वकम् ॥३
स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः । पुष्परागशतं तद्वद्घोणायां परिकल्पयेत् ॥४

पद प्राप्त करता है एवं सभी पापों के धुल जाने से सुन्दर निर्मल शरीर हो नरलोक में व्याकुल होते हुए पिता, पितामह, पुत्र एवं कलत्रादि को शीघ्र ही शिवलोक को पहुँचा देता है ।१२-१५।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में सप्त सागर दान विधि नामक दो सत्तासीवाँ
अध्याय समाप्त ॥२८७॥

अध्याय २८८

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अत्युत्तम मनुष्यों को गोलोक का फल देने वाले रत्नधेनु नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन प्राप्त कर लोकपालों का आवाहन कर धेनु की कल्पना करे ।१-२। पृथ्वी पर द्रोण परिमित लवण समेत कृष्ण मृगचर्म बिछाकर बिधिपूर्वक संकल्प के साथ रत्नमयी धेनु का निर्माण करे। बुद्धिमान् पुरुष इक्यासी पद्मराग मणियों को मुख में स्थापित करे, उसी प्रकार नासिका में एक सौ

---

[1] ङ. च. त्रशतत्रपम् । न° ।

ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः । भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते ॥५
काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम् । ग्रीवायां नेत्रपटलं गोमेदकशतान्वितम् ॥६
इन्द्रनीलशतं पृष्ठे [1]वैदूर्यंशतपार्श्वके । स्फाटिकैरुदरं [2]तद्वत्सौगन्धिकशतैः कटिम् ॥७
खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् । सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दने ॥८
कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यनाभिं च कारयेत् । गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् ॥९
तथाऽन्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसंधिषु । कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् ॥१०
गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धं स्वरूपतः । पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्समीपे ताम्रदोहनम् ॥११
कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः । कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥१२
तथा धान्यानि सर्वाणि पादाश्चेक्षुमयाः स्मृताः । नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णं वितानकम् ॥१३
एवं विरचनं कृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुमामन्त्रयेत्ततः ॥
गुडधेनुवदावाह्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥१४

पुष्पराग, ललाट में सुवर्ण का तिलक, दोनों आँखों में सौ मुक्ताएं, दोनों भौंहों में सौ विद्रुम, दोनों कानों में दो सुतुही लगावे ।३-५। सींगे सुवर्ण की बनी हों, शिर सौ हीरों, का बना हो, कण्ठ और आँखों की पलको में सौ गोमेदक, पृष्ठभाल में सौ इन्द्रनील, दोनों पार्श्वस्थानों में सौ वैदूर्य उसी प्रकार सौ वैदूर्य मणियों द्वारा उदर तथा सौ सौगन्धिक द्वारा कटि देश का निर्माण करे ।६-७। खुरों का सुवर्णमय तथा पूंछ को मुक्ता की लड़ियों से, दोनों नथुनों को सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियों से बनाकर कर्पूर और चन्दन से अर्चित करे। रोमों के स्थान पर केसर तथा नाभि को चाँदी का बनवाये। गुदाभाग में सौ गारुत्म (लाल) मणियों को लगावे, अन्य रत्नों को संधिभाग पर लगावे। जीभ को शक्कर से तथा गोबर से बनवाये। घृत का गोमूत्र तथा दही और दूध के स्थान पर दही और दूध ही रखे। पूछ के अग्रभाग पर चमर दे तथा गौ के समीप में ही तामे की बनी हुई दोहनी रख दे ।८-११। अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार सुवर्णनिर्मित आभूषण पहिनावे तथा गौ के चतुर्थ अंश से उसी प्रकार उसका बछड़ा बनावे। इस प्रकार गौ एवं बछड़े की रचना के बाद सभी प्रकार के अन्न, ईख के दण्ड, विविध प्रकार के फल, पांच प्रकार के विभिन्न रंगों वाला वितान—इन सब को भी यथास्थान सजावे। तदनन्तर हवन एवं अधिवास करे और तब पुरोहितों को दक्षिणा देने के उपरान्त धेनु का आमंत्रण करे और पूर्वोक्त गुड़धेनु दान की भाँति आवाहन कर यह कहे—'हे देवि ! यतः रुद्र, सूर्य, ब्रह्मा, एवं विष्णु ये सभी देवगण तुम में सभी देवताओं का अवस्थान

---

[1] च °श्वंयो। स्फा°। [2] घ. °शतात्कटि°।

त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति रुद्रेन्द्रसूर्यकमलासनवासुदेवाः ।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता मां पाहि देवि भवसागरपीडचमानम् ॥१५
आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिवृत्य भक्त्या दद्याद्द्विजाय गुरवे [1]जलपूर्विकां ताम् ।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः ॥१६
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदनसरूपः [2]स्थानमभ्येति [3]शंभोः ॥१७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने रत्नधेनुप्रदानविधिर्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८८॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१३६८४॥

मानते हैं, समस्त त्रिभुवन तुम्हारे शरीर में व्याप्त है, अतः भवसागर से पीड़ित होने वाले मुझको तुम बचाओ ।१२-१५। इस प्रकार आमन्त्रण कर भक्तिपूर्वक उस गौ को हाथ में जल लेकर ब्राह्मण गुरु को दान करे । जो व्यक्ति इस प्रकार उपवास कर पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर इस दान को करता है वह पापों से रहित शरीर वाला होकर मुरारि के परम पुनीत पद को प्राप्त करता है । इस प्रकार सभी विधियों का जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनु नामक दान का वितरण करता है वह अति तेजोमय विमान प्राप्त कर सभी पापों से विमुक्त हो, बन्धुओं, पुत्रों तथा पौत्रों समेत कामदेव के समान सुन्दर स्वरूप धारण कर शिव का स्थान प्राप्त करता है ॥१६-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में रत्नधेनु दान नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८८॥

---

[1] ग. घ. °पूर्वकर्ता । यः । [2] घ. °मर्कस्य याति इ । [3] च. विष्णोः ।

अथैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्य उवाच

अथातः संप्रक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥१
पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवचनम् । ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥२
तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम् कारयेत्काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः ॥३
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणतः । क्षीराज्यपूरितं तद्वत्कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥४
पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । लोकपालान्महेन्द्रांश्च स्वस्ववाहनमास्थितान् ।।
वराहेणोद्धृतां तद्वत्कुर्यात्पृथ्वीं सपङ्कजाम् ॥५
वरुणं चाऽऽसनगतं काञ्चनं मकरोपरि । हुताशनं मेषगतं वायुं कृष्णमृगासनम् ॥६
तथा कोशाधिपं कुर्यान्मूषकस्थं विनायकम् । विन्यस्य घटमध्ये तान्वेदपञ्चकसंयुतान् ॥७
ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद्यजुर्वेदस्य पङ्कजम् । सामवेदस्य वीणा [1]स्याद्वेणुं दक्षिणतो न्यसेत् ॥८

अध्याय २८९

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अति उत्तम, महापापों को नष्ट करनेवाले महाभूत घट नामक दान की विधि बता रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करा कर पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करना चहिये तथा लोकपालादि का आवाहन भी उसी तरह करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इस दान में बहुमूल्य रत्नों द्वारा जड़ित सुवर्ण का कलश निर्मित करवाये।१-३। उसका प्रमाण एक प्रादेश से सौ अंगुल तक का होना चाहिये। उसे दुग्ध एवं घृत से पूर्ण कर कल्पवृक्ष से युक्त करे। वहीं पर पद्मासन पर अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपालगण, देवराज इन्द्रादि देवगणों को भी अपने-अपने बाहनों पर आरुढ़ बनावे। उसी प्रकार बाराह द्वारा उबारी गई कमल समेत पृथ्वी की भी रचना करनी चाहिये।४-५। मकर के ऊपर आसन लगाये हुए सुवर्णनिर्मित वरुण, मेष पर आरूढ अग्नि, कृष्णमृग पर आरूढ वायु तथा कोशाधिप रूप में मूषक पर अवस्थित विनायक—इन सब को पाँचों वेदों समेत उक्त घट में स्थापित करे। वेदों में ऋग्वेद का प्रतीक अक्षसूत्र, यजुर्वेद का कमल, सामवेद की वीणा है। वेणु को दक्षिण ओर स्थापित करना चाहिये। अथर्ववेद का

---

[1] ग. घ. °स्याद्वेनुं द°।

अथर्ववेदस्य पुनः स्रुवस्रुवौ कमलं करे । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥९
परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम् । पादुकोपानहच्छत्रं दीपिकाभूषणानि च ॥१०
शय्यां च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णं वितानकम् । स्नात्वाऽधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥११
नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे । महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम ॥१२
यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् । ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षयाऽस्तु मे ॥१३
इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥१४
विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः । स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम् ॥१५
षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः । न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते ॥१६
इह पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक् ।
मुररिपुभवने वै मन्दिरे[1] वाऽर्कलक्ष्म्या त्वमरपुरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम् ॥१७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तनं नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८९॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः ॥१४००१॥

प्रतीक, स्रुक्, स्रुवा तथा कमल है—इन्हें हाथों में रखे। वरदायक पंचम वेद पुराण का प्रतीक अक्षसूत्र एवं कमण्डलु है।६-९। उस कलश के चारों ओर सभी प्रकार के अन्न, चमर, आसन, दर्पण, पादुका, जूता, छत्र, दीपक, एवं आभूषणादि को अलंकृत करे तथा सुन्दर शय्या, जलपूर्ण कलश तथा पाँच प्रकार के रंगों वाला वितान ताने। स्नान करने के उपरान्त यजमान अधिवासन हो चुकने के बाद इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे सभी महाभूतों के अधिदेवगण! इस चराचर जगत् में आप लोग सभी देवताओं के आधार स्वरूप हैं, आप लोगों को हमारा नमस्कार है, हमें शान्ति एवं कल्याण दीजिये।१०-१२। यतः इस निखिल ब्राह्मण्ड के जीवों में इन महाभूतों के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नही है, अतः इनकी कृपा से मेरी लक्ष्मी अक्षय हो।' इस प्रकार उच्चारण कर जो व्यक्ति महाभूत घट का दान करता करता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है।१३-१४। तथा पितरों एवं बन्धु वर्गों के साथ सूर्य के समान तेजस्वी बिमान पर आरूढ़ होकर सुन्दरी स्त्रियों द्वारा प्रार्थित होकर वैष्णव लोक को प्राप्त करता है। जो मानव इस जबत् में इन उपर्युक्त सोलहों दानों का अनुष्ठान करता है, उसको लोक में पुनर्वार नहीं आना पड़ता। इन दानों की विधियों को वासुदेव के समीप जो पढ़ता है तथा भली भाँति पुत्र, पिता एवं स्त्री के साथ श्रवण करता हैं, वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर निश्चय ही देवाङ्गनाओं के साथ मुरारि (विष्णु) के लोक में कल्प पर्यंन्त आनन्द का अनुभव करता है।१५-१७।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८९॥

---

[1] ङ. ˚न्दिरैश्चारुलक्ष्म्या चिरममंरैव˚ ।

अथ नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

कल्पमानं त्वया प्रोक्तं मन्वन्तरयुगेषु । इदानीं कल्पनामानि समासात्कथयाच्युत ॥१

मत्स्य उवाच

कल्पानां कीर्तनं वक्ष्ये महापातकनाशनम् । यस्यानुकीर्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते ॥२
प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः । वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथंतरोऽपरः ॥३
रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः [1]षष्ठो देव इति स्मृतः । सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते ॥४
सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः । तम[2] एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतः परः ॥५
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोऽथ चतुर्दशः । कौर्मः पञ्चदशः प्रोक्तः [3]पौर्णमास्यामजायत ॥६
षोडशो नारसिंहस्तु समानस्तु ततोऽपरः । आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्तथा परः ॥७
मानवो विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः । वैकुण्ठश्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्पस्तथापरः ॥८

अध्याय २९०

मनु ने कहा—हे अच्युत ! मन्वन्तर एवं युगों का वर्णन करते समय कल्प का प्रमाण तो बताया था, अब कल्पों के नामों को संक्षेप मुझे बताइये ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब मैं तुम्हारे अनुरोध पर कल्पों का वर्णन कर रहा हूँ, जो महान् पातकों को नष्ट करनेवाला है तथा जिसके अनुकीर्तन से वेद के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है। सभी कल्पों में प्रथम श्वेत कल्प है, दूसरा नीललोहित कल्प है, तीसरा कल्प वामदेव तथा चौथा रथन्तर नामक है ।२-३। पांचवें कल्प का नाम रौरव कहा गया है, इसी प्रकार षष्ठ देव, सप्तम बृहत्कल्प, अष्टम कन्दर्प कल्प, नवम सद्यःकल्प, दशम ईशान कल्प, ग्यारहवां तमःकल्प, बारहवां सारस्वत कल्प, तेरहवां उदान, चौदहवां गारुड तथा पन्द्रहवां कौर्म नामक कल्प है, जो पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ था। सोलहवां नरसिंह, सत्रहवां समान कल्प, अठारहवां आग्नेय, उन्नीसवाँ सोमकल्प, बीसवां मानवकल्प, इक्कीसवां तत्पुमान-कल्प, बाईसवां बैकुण्ठ, तेईसवां लक्ष्मी कल्प, चौबीसवां सावित्रिकल्प, पच्चीसवां घोर, छब्बीसवां बाराह,

---

[1] ग. घ. ङ. षष्ठः प्राण इ° । [2] ग. घ. ङ. व्यान । [3] घ. ङ. मासी प्रजायते । षो° ।

चतुर्विंशतिनमः प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः । पञ्चविंशस्ततो घोरो वाराहस्तु ततोऽपरः ॥९
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथा परः । माहेश्वरस्तु स प्रोक्तस्त्रिपुरं यत्र घातितम् ॥१०
पितृकल्पस्तथाऽन्ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः पुरा । इत्येवं ब्रह्मणो मासः सर्वपातकनाशनः ॥११
आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन्यस्य विधीयते । तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा ॥१२
संकीर्णास्तामसश्चैव राजसाः सात्त्विकास्तथा । रजस्तमोमयास्तद्वदेते त्रिंशदुदाहृताः* ॥१३
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां व्युष्टिरुच्यते । अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु दिवाकरे ॥
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥१४
यस्मिन्कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा । तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ॥१५
सात्त्विकेष्वधिकं तद्वद्विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् । तथैव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परां गतिम् ॥१६
ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत्पर्वणि पर्वणि । यस्य धर्मे मतिर्ब्रह्मा करोति विपुलां श्रियम् ॥१७
यस्तु दद्यादिमान्कृत्वा हैमान्पर्वणि पर्वणि । ब्रह्मविष्णुपुरे वासं मुनिभिः पूज्यते दिवि ॥१८
सर्वपापक्षयकरं कल्पदानं यतो भवेत् । मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात्कल्पान्विचक्षणः ॥१९

सत्ताईसवां वैराज, अट्ठाईसवां गौरी कल्प, उन्तीसवां माहेश्वर है, जिसमें त्रिपुर की हत्या हुई थी ।४-१०। तीसवां पितृकल्प है, जो प्राचीन काल में ब्रह्मा की अमावस्या थी । इस प्रकार ये सभी तीसों कल्प ब्रह्मा के महीने हैं, जो सभी पातकों के नष्ट करनेवाले हैं । प्रारम्भ में ही जिस कल्प में जिसका माहात्म्य वर्णित किया गया है, उसी के नाम पर उस कल्प का नाम रखा गया है । ये सभी कल्प संकीर्ण, तामस, राजस, सात्त्विक तथा रजस्तमोमय—इन भेदों से युक्त तीस कहे हैं ।११-१३। संकीर्ण (संयुक्त) कल्पों में सरस्वती तथा पितरों का, तामस में अग्नि का तथा शिव का, राजस (दिवाकर) में ब्रह्मा का अधिक माहात्म्य कहा गया है । प्राचीन काल में ब्रह्मा ने जिस कल्प में जिस पुराण को कहा गया है उसी कल्प का माहात्म्य उस पुराण में वर्णित है । उसी प्रकार सात्त्विक कल्पों में विष्णु भगवान् का माहात्म्य उत्तम रूप से वर्णित है, योग में सिद्धि प्राप्त करने वाले लोग उनके पाठ से परम गति को प्राप्त होते हैं ।१४-१६। जो व्यक्ति इन ब्रह्म तथा पद्म नामक पुराणों का पाठ करता है, भगवान् ब्रह्मा धर्म में उसकी वृद्धि कर देते हैं तथा विपुल सम्पति प्रदान करते हैं । जो व्यक्ति पर्व तिथियों पर सुवर्णनिर्मित कल्पों का दान करता है, वह ब्रह्मा तथा विष्णु के पुर में निवास करते हुए स्वर्ग में मुनियों द्वारा पूजित होता है ।१७-१८। क्योंकि ये कल्पों के दान सभी पापों के नष्ट करनेवाले हैं । विचक्षण पुरुष मुनि के समान स्वरूप बनाकर इन कल्पों का दान करे । हे राजन् ! पुराण की यह

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ग. घ. पुस्तकयोः—राजसास्तामसास्तद्वत्त्रयस्त्रिंशदुदाहृता इति ।

पुराणसंहिता चेयं तव भूप मयोदित । सर्वपापहरा नित्यमारोग्यश्रीफलप्रदा ॥२०
ब्रह्मसंवत्सरशतादेकाह शैवमुच्यते । शिववर्षशतादेकं निमेषं वैष्णवं विदुः ॥२१
यदा स विष्णुर्जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् । यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं [1]निमीलति ॥२२

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो मत्स्यरूपी जनार्दनः । पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत ॥२३
वैवस्वतो हि भगवान्विसृज्य विविधाः प्रजाः । स्वान्तरं पालयामास मार्तण्डकुलवर्धनः ॥२४
यस्य मन्वन्तरं चैतदधुना चानुवर्तते । पुण्यं पवित्रमेतद्वः कथितं मत्स्यभाषितम् ॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां यदेतन्मूर्ध्नि संस्थितम् ॥२५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्पानुकीर्तनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९०॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१४०२६॥

संहिता मैं तुम्हें बता चुका, यह सभी पापों को दूर करनेवाली तथा नित्य आरोग्य एवं श्री प्रदान करनेवाली है। ब्रह्मा के सौ वर्ष का शिव का एक दिन होता है, तथा शिव के सौ वर्ष का विष्णु का एक निमेष (एक दृष्टि विक्षेप करने का समय) होता है—ऐसा लोग जानते हैं। जब ये विष्णु जागते हैं तभी यह जगत् भी चेष्टावान् होता है, और जब वे शान्तात्मा होकर शयन करते हैं तब सभी जगत् शान्त हो जाता है।१९-२२।

सूत ने कहा—मनु से ऐसी बातें करने के बाद मत्स्य रूपधारी भगवान् जनार्दन सभी जीवों के देखते-देखते वहीं पर अन्तर्हित हो गये। और विवस्वान् के पुत्र मार्तण्ड कुलवर्द्धन भगवान् मनु ने विविध प्रजाओं की सृष्टि कर अपनी अवधि तक पालन किया, जो मन्वन्तर अभी तक चल रहा है। इस मत्स्य भगवान् द्वारा कहे गये पुण्यप्रद पवित्र पुराण को तुम लोगों को सुना चुका, यह मत्स्य पुराण सभी शास्त्रों में शिरोभूषण रूप से व्यवस्थित है।२३-२५।

श्री मात्स्य महापुराण में कल्पानुकीर्तन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥२९०॥

---

[1] ङ. प्रलीयते।

अथैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं [1]विश्वरूपिणा । मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥१
यत्राऽऽदो मनुसंवादो ब्रह्माण्डकथनं तथा । सांख्यं शारीरकं प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम् ॥२
देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च । मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम् ॥३
मन्वन्तराणामुद्देशो वैन्यराजाभिवर्णनम् । सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसंगमनं तथा* ॥४
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च । पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च ॥५
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा । कार्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्तनम् ॥६
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दैत्यशापस्तथैव च । कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनस्तथा ॥७
पुराणकीर्तनं तद्वत्क्रियायोगस्तथैव च । [2]व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्तण्डशयनं तथा ॥८
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम् । तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च ॥९
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च । तथाऽनन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा ॥१०

अध्याय २९१

सूत ने कहा—विश्वस्वरूप मत्स्य भगवान् के कहे हुए सम्पूर्ण मत्स्य पुराण को जो धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि देनेवाला है, तुम लोगों को बता चुका। जिसके प्रारम्भ में मनु का संवाद, ब्रह्माण्ड का कीर्तन, तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से कहे गये शारीरक सांख्य का वर्णन है।१-२। तदनन्तर देवताओं एवं असुरों की उत्पत्ति, मरुत् की उत्पत्ति, मदन द्वादशी वृत्तान्त, लोकपालों की पूजा, मन्वन्तरों का उद्देश्य, वैन-राज का वर्णन, सूर्य और वैवश्वत की उत्पत्ति, बुध का संगम, पितरों का वंश वर्णन, श्राद्धकाल निर्णय, पितृ तीर्थों में प्रवास, सोम की उत्पत्ति, सोमवंश का कीर्तन, ययाति का चरित, कार्तवीर्य का माहात्म्य, वृष्णिवंश का कीर्तन, ।३-६। भृगुशाप, विष्णु का दैत्यादि के प्रति शाप, पुरुवंश का कीर्तन, हुताशन का वंश वर्णन, पुराणों का कीर्तन, क्रियायोग का कीर्तन, नक्षत्रसंज्ञक व्रत, मार्तण्ड शयन, कृष्णाष्टमी व्रत, रोहिणी चन्द्र व्रत, तड़ाग विधि माहात्म्य, पादपोत्सर्ग विधि, सौभाग्य शयन व्रत, अगस्त्य व्रत, अनन्त तृतीया व्रत, रसकल्याणिनी व्रत ।७-१०। आर्द्रानन्दकरी व्रत, सारस्वत व्रत, उपरागभिषेक व्रत, सप्तमीस्नपन व्रत, भीम द्वादशी

---

* इतः परमेतदर्धं ग. पुस्तके—गौर्या नामाष्टशतकं पितृवंशानुकीर्तनम् । इति ।

---

[1] ग. विश्वयोनिना । घ. विष्णुरू° । [2] ग. घ. व्रतनक्षत्रपरुषं मा° ।

आर्द्रानन्दकरी तद्वद्व्रतं सारस्वतं पुनः । उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुनः ॥११
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा । अशून्यशयनं तद्वत्तथैवाङ्गारकव्रतम् ॥१२
सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशी तथा । मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च ॥१३
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी । तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा ॥१४
संक्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम् । षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ॥१५
प्रयागस्य तु माहात्यं[1] भुवनस्यानुकीर्तनम् । [2]ऐलाश्रमव्रतं तद्वद्द्वीपलोकानुकीर्तनम् ॥१६
सूर्यचन्द्रगतिस्तद्वदादित्यरथवर्णनम् । तथाऽन्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ॥१७
भुवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुराघोषणं तथा । [3]पितृप्रचारमाहाम्यं मन्वन्तरविनिर्णयः ॥१८
वज्राङ्गस्य तु संभूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च । तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुमन्त्रणम् ॥१९
पार्वतीसंभवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम् । अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च ॥२०
गौरीतपोवनं तद्वद्विश्वनाथप्रसादनम् । पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम् ॥२१
कुमारसंभवस्तद्वत्कुमारविजयस्तथा । तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् ॥२२
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् । वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ॥२३
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम् । तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ॥२४

व्रत, अनङ्गशयन व्रत, अशून्यशयन व्रत, आङ्गारक व्रत, सात सप्तमियों का व्रत, विशोकद्वादशी व्रत, दस प्रकार के मेरुओं के दान की विधि ।११-१३। ग्रह शान्ति, ग्रहों के स्वरूप का कथन, शिव चतुर्दशी, सभी प्रकार के फलों के त्याग का व्रत, सूर्यवार व्रत, संक्रान्ति स्नपन, विभूति द्वदशी व्रत, साठ व्रतों का माहात्म्य, स्नान विधि का क्रम, प्रयाग का माहात्म्य, समस्त भुवनों का कीर्तन, ऐलाश्रय वर्णन, द्वीपों एवं लोकों की चर्चा, सूर्य और चन्द्रमा की गति, आदित्य के रथ का वर्णन, अन्तरिक्ष में उसका गमन, ध्रुव का माहात्म्य, सुरेन्द्रों का भवन, त्रिपुर के प्रति घोषणा, पितरों के पिण्डदान का माहात्म्य, मन्वन्तरों का निर्णय ।१४-१८। वज्राङ्ग की उत्पत्ति, तारकासुर की उत्पत्ति, तारकासुर का महत्त्व वर्णन, ब्रह्मा के साथ देवों की मन्त्रणा, पार्वती की उत्पति, शिव का तपोवन गमन, कामदेव के शरीर का दाह, रतिशोक, गौरी का तपोवन गमन, विश्वनाथ की प्रसन्नता, पार्वती और सप्तऋषियों का संवाद, पार्वती के विवाह अवसर पर मंगलादि का वर्णन, कुमार की उत्पत्ति, कुमार की विजय, तारक का घोर संहार, नरसिंह का वर्णन ।१९-२२। पद्मोद्भव का विसर्ग, अन्धकासुर का सहार, वाराणसी का माहत्म्य, नर्मदा का माहात्म्य, प्रवरों की अनुक्रमणिका, पितरों की गाथा, उभयमुखी दान, कृष्ण मृगचर्म का दान, सावित्री की कथा, राजधर्म, यात्रा के निमित्त कथन, स्वप्न एवं मांगलिक सुभ

---

[1] क. ख °त्म्यं सर्वतीर्थानु° । [2] क. ख. पैलाश्रमफलं । [3] क. ख. °तृपिण्डदमा° ।

तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च । यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्तनम् ॥२५
वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवाथ वराहजम् । क्षीरोदमथनं तद्वत्कालकूटाभिशासनम् ॥२६
देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च । प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवताराधनं ततः ॥२७
प्रासादलक्षणं तद्वन्मण्डपानां तु लक्षणम्[1] । भविष्यद्राजनिर्देशो[2] महादानानुकीर्तनम् ॥
कल्पानुकीर्तनं तद्वद्ग्रन्थानुक्रमणी तथा ॥२८
*एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् । एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥२९
+अस्मात्पुराणात्सुकृतं नराणां तीर्थावलीनामवगाहनानाम् ।
समस्तधर्माचरणोद्भवानां सदैव लाभश्च महाफलानाम् ॥३०
एतत्पुराणं परमं सर्वदोषविघातकम् । मत्स्यरूपेण हरिणा कथितं मनवेऽर्णवे ॥३१
अस्मात्पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
नारायणस्याऽऽस्पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यवपुः सुखी स्यात् ॥३२
×पुराणमेतत्सकलं रहस्यं श्रद्धान्वितः पुण्यमिदं शृणोति ।
स चाश्वमेधावभृथप्रभावं फलं समाप्नोति हरप्रसादात् ॥३३

शकुनों एवं अपशकुनों का निरूपण, वामन का माहात्म्य, वराह का माहात्म्य क्षीरसागर का मन्थन, कालकूट की उत्पत्ति ।२३-२६। देवासुर संग्राम, वास्तुविद्या का वर्णन, प्रतिमा के लक्षण, देवाराधन की सरणि, प्रासादों के लक्षण, मण्डपों के लक्षण, भविष्यत्कालीन राजाओं की चर्चा, महादानों के देने की विधि तथा माहात्म्य, कल्पों का वर्णन—यही संक्षेप में इस महान् ग्रन्थ की क्रमिक सूची है । मत्स्यपुराण की यह सब कथाएँ परम पुनीत, दीर्घायु प्रदान करनेवाली, यश की वृद्धि करनेवाली, कल्याण दायिनी, तथा घोर से घोर पापों को नष्ट करनेवाली तथा शुभ हैं ।२७-२९। मनुष्यों को इस पुराण से सभी तीर्थसमूहों में स्नान करने से, सभी कर्मों के विधिवत् आचरण करने से जो महान् पुण्य फल प्राप्त होते हैं, वे सभी प्राप्त होते हैं । इस परम पवित्र, सभी दोषों को नष्ट करनेवाले तथा परम श्रेष्ठ मत्स्य पुराण को समुद्र में स्थित मनु के लिये मत्स्य रूपधारी भगवान् श्रीहरि ने स्वयं कहा था । इस पवित्र मत्स्य पुराण के एक चरण मात्र को जो पढ़ता है वह भी पापरहित हो निश्चय ही इसके पुण्य के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण कर नारायण के पद को प्राप्त करता है तथा सुखी होता है ।३०-३२। इस गोपनीय पुण्यप्रद समस्त मत्स्य पुराण को जो मनुष्य सुनता है, वह

---

* एतच्छ्लोकस्थानेऽयं पाठो घ. पुस्तके—प्रोक्तं पुराणं मत्स्योक्तं सर्वधर्मसमन्वितम् । तत्सर्वं तव कल्याणमेनत्पापहरं शुभम् । इति । +एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तक एव वर्तते । ×इत आरभ्य अपराजित इत्यन्तग्रन्थश्च पुस्तके वर्तते ।

---

[1] क. ख. °म् । पुरुवंशे तु संप्रोक्तं भविष्यद्राजवर्णनम् । तुलादानादिबहुशो । [2] घ. °ष्यराज्ञामुद्देशो ।

शिवं विष्णुं समभ्यर्च्य ब्राह्मणं सदिवाकरम् । श्लोकं श्लोकार्धपादं वा श्रद्धया यः शृणोति वा ॥
श्रावयेद्वाऽपि धर्मज्ञस्तत्फलं शृणुत द्विजाः ॥३४
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो लभते महीम् । वैश्यो धनमवाप्नोति सुखं शूद्रस्तु विन्दति ॥३५
आयुष्मान्पुत्रवांश्चैव लक्ष्मीवान्पापवर्जितः । श्रुत्वा पुराणमखिलं शत्रुभिश्चापराजितः ॥३६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनुक्रमणिका नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९१॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः ॥१४०६२॥

अथ पुराणश्रवणकालीनधर्माः

*श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः । वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥१
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः । तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥२
पुराणं ये च संपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः । शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राः स्युर्न संशयः ॥३

शिवजी की प्रसन्नता से अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के बाद किये गये अवभृथ स्नान के समान प्रभावशाली फल की प्राप्ति करता है । हे द्विजगण ! इस मत्स्य पुराण के एक श्लोक को अथवा आधे श्लोक को भी जो पुरुष श्रद्धा से सुनता है अथवा दूसरे को सुनाता है उसका फल सुनिये । वह पुण्यशाली शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं सूर्य की विधिवत् पूजा करने का जो फल प्राप्त होता है, वह सब प्राप्त करता है । इस समस्त मत्स्य पुराण को सुनकर ब्राह्मण विद्या प्राप्त करता है, क्षत्रिय को पृथ्वी की प्राप्ति होती है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र को सुख की प्राप्ति होती है तथा आयुवाले, पुत्रवाले, लक्ष्मीवान्, एवं पापरहित होकर शत्रुओं द्वारा पराजित भी नहीं होते ॥३३-३६॥

श्री मात्स्य महापुराण में अनुक्रमणिका नामक दो सौ एक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥२९१॥

[अब इसके बाद पुराणों के सुनने के समय कैसा आचरण करना चाहिये, इसकी विधि बतला रहे हैं ।]

श्रद्धा और भक्ति से युक्त अन्य किसी भी कार्य में अभिलाषा न रख, वाणी को वश में रख, पवित्र शरीर और हृदय से निश्चिन्त मन हो पुण्यभागी श्रोताओं को पुराणों की कथा श्रवण करनी चाहिये । जो अधम, मनुष्य विना भक्ति के पुण्य कथा को सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो कुछ होने का नहीं वे जन्म जन्म दुःख के भागी होते हैं ।१-२। जो मनुष्य ताम्बूल आदि पूजा सामग्रियों द्वारा पुराण की पूजा कर कथा श्रवण करते हैं

---

* अयं ग्रन्थो घ. पुस्तकेऽधिकं उपलब्धः ।

कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः । भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च संपदः ॥४
सोष्णीषमस्तका ये च कथा शृण्वन्ति पावनीम् । ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥५
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् । श्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नयन्ति यमकिंकराः ॥६
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः । अक्षय्यनरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥७
ये वै वरासनारुढा ये च मध्यासनास्थिताः । शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥८
असंप्रणम्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते । तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः ॥९
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः । गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत् ॥१०
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान्कथां वै पापहारिणीम् । ते वै जन्मशतं मर्त्याः सूकराः संभवन्ति हि ॥११
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् । ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्तथैव च ॥१२
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः । ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥१३
ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम् ॥१४
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः । कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥१५
ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम् । कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥१६
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च ॥१७

वे निश्चय ही दरिद्रता से सदा हीन रहते हैं । जो मनुष्य कथा के कहते समय उठकर कार्यान्तर से अन्यत्र चले जाते हैं उनकी स्त्री तथा सम्पत्ति दूसरे की भोग्य हो जाती हैं। जो अवम मनुष्य पवित्र कथा को पगड़ी बांधकर सुनते हैं वे पापी बगुले होते हैं। जो नीच मनुष्य पान खाते हुए पवित्र कथा को सुनते हैं उन्हें यम के दूत गण कुत्ते का मल खिलाते हुए अपने लोक को ले जाते हैं। जो दम्भी मनुष्य उच्च आसनादि पर बैठकर कथा श्रवण करते हैं वे अक्षय नरक का भोग करने के बाद भी कौआ होते हैं। इसी प्रकार जो व्यास की अपेक्षा श्रेष्ठ आसन पर अथवा मध्यम आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं।३-८। जो व्यक्ति बिना प्रणाम किये कथा सुनते हैं वे विष खानेवाले होते हैं तथा सोते हुए कथा सुननेवाले मनुष्य अजगरयोनि में जन्म लेते है। जो मनुष्य कथा कहनेवाले व्यास के समान आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं वे गुरु की शय्या पर गमन करने के समान घोर अपराध के भागी बनकर नरक को जाते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वालों तथा पवित्र कथाओं की निन्दा करते हैं वे सौ जन्मों में सूकर योनि जन्म धारण करते हैं कथा के कहते समय जो मनुष्य वक्ता को बुरे उत्तर देते हैं वे गदर्भ तथा गिरगिट योनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य अपने जीवन में कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं करते वे घोर नरक का भोग करने के बाद वनसूकर होते हैं। जो उत्तम मनुष्य कथा के समय बिना सुने भी अनुमोदित करते हैं वे परम शाश्वत पद को प्राप्त करते हैं। जो शठ मनुष्य कथा के समय विघ्न पहुँचाते हैं, वें कोटि वर्षों तक नरक

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥१८
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनुमत्तमम् । भोगिनो ज्ञानसंपन्ना भवन्ति च भवे भवे ॥१९
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये । पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम् ॥२०
एवंविधविधानेन पुराणं शृणुयान्नरः । भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥२१
पुस्तकं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालंकरणादिभिः । वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रयत्नवान् ॥२२
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्मण्डलड्डुकपायसैः ॥२३
त्वं व्यासरूपी भगवान्बुद्ध्या चाऽऽङ्गिरसोपमः । पुण्यवाञ्शीलसंपन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२४
प्रसन्नमानसं कुर्याद्दानमानोपचारतः । त्वत्प्रसादादिमान्धर्मान्संपूर्णाञ्श्रुतवानहम् ॥२५
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः । यशस्वी च भवेन्नित्यं यः कुर्यादेवमादरात् ॥२६
नारदोक्तानिमान्धर्मान्यः कुर्यान्नियतेन्द्रियः । कृत्स्नं फलमवाप्नोति पुराणश्रवणस्य वै ॥२७

का भोग कर फिर ग्रामसूकर होते हैं। जो मनुष्य दूसरे लोगों को पौराणिक कथाएं सुनाते हैं वे सैकड़ों कोट कल्पों तक ब्रह्म लोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वाले पुरुषों को आसन के लिए कम्बल, मृगचर्म या वस्त्रादि अथवा मंच या अन्य चर्मादि देते हैं, वे स्वर्गलोक प्राप्त कर यथेप्सित भोगों का उपभोग कर ब्रह्मादि देवों के बीच अवस्थित रह निरामय पद की प्राप्ति करते हैं। जो मनुष्य पुराण के लिये सुन्दर आसन प्रदान करते हैं वे प्रत्येक जन्मों में उत्तम भोगों को भोग कर ज्ञानवान् भी होते हैं। जो व्यक्ति महाघोर पातकी तथा मध्यम पाप कर्म करनेवाले हैं वे पुराणों के सुनते ही परम पद को प्राप्त करते हैं।१९-२०। इस प्रकार की विधि से जो लोग पुराण का श्रवण करते हैं वे यथेप्सित भोग करके विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। कथा की समाप्ति के बाद वस्त्र एवं अलंकार आदि से पुस्तक की पूजा करनी चाहिये तथा प्रयत्न पूर्वक अन्यान्य ब्राह्मणों के साथ बाचक की पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार बाचक को गौ, भूमि एवं वस्त्रादि देना चाहिये। तत्पश्चात् मण्ड, लड्डू तथा खीर आदि से ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। 'हे वाचक! आप हमारे लिये व्यास, वसिष्ठ, भार्गव, अत्रि, अङ्गिरा प्रभृति मुनियों की भाँति पूजनीय हैं, पुण्यवान् हैं, शीलवान् हैं, सत्यवादी हैं, जितेन्द्रिय हैं।' इस प्रकार निवेदन कर पवित्र भावना एवं प्रसन्न मन से श्रद्धा एवं भक्ति समेत व्यास की पूजा करे तथा यह कहे कि 'हे महानुभाव! आपकी कृपा से मैंने इन सब धार्मिक चर्चाओं को सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर जो भगवान् के मुख कमल से विनिःसृत इस पुण्यकथा का श्रवण करते हैं एवं आदरपूर्वक उपर्युक्त व्यवहार करते हैं वे नित्य यशस्वी होते हैं। नारद द्वारा कहे गये इन पुराणों के सुनने के नियमों का जो मनुष्य इन्द्रियों को बस में रखकर पालन करते हैं वे पुराण श्रवण के अविकल फल को प्राप्त करते हैं ॥२१-२७॥

सूत उवाच

मत्स्यरूपी स भगवान्मनवे बुद्धिशालिने । अवापोद्‌घातसहितमुक्त्वा ह्यन्तर्दधौ तदा ॥२८

इति पुराणश्रवणकालीनधर्माः ।

इति श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं मत्स्यपुराणं समाप्तम् ।

सूत ने कहा—मुनिगण ! उस समय इस प्रकार पुराणों को सुनते समय पालन किये जानेवाले धर्मों के इस अवशिष्ट भाग को मत्स्य रूपधारी जनार्दन भगवान् परम बुद्धिमान् मनुजी को सुनाने के बाद अन्तर्हित हो गये ।।२८।।

श्री द्वैपायन मुनि रचित मत्स्य महापुराण समाप्त ।

श्रीरस्तु